॥ प्रथमावृत्ती की प्रस्तावना ॥

गाथा—एयं खु णाणीणो सारं । जं न हिंसइ किंचणं ॥
अहिंसा समयं चेव । एताव तं वियाणिया ॥

सु० प्र० प्र० २४ गा० १०

इस अपार संसार सागर में परिभ्रमण करने प्राणी को जन्म मृत्यु आदि कष्ट से मुक्त करने वाला एक 'धर्म' ही है, सब धर्मावलम्बी इस कथन को मान्य करते हैं और यह भी स्वीकारते हैं कि 'दया में ही धर्म है'।

यद्यपि सब धर्म में दया को ही प्रधान पद दिया है तथापि सब धर्मावलम्बी दया का सत्य स्वरूप समझ सके नहीं हैं क्योंकि कितनेक धर्मावलम्बी ऐसा समझते हैं कि बीमार प्राणी को मरने से दुःख रूप जिन्दगी से छुडाने से दया होती है, कितनेक सिंह सर्प विच्छु षटमलादि क्षुद्र प्राणीयों को मारने में दया समझते हैं, कितनेक यज्ञ में पशुओं को बलिदान देने में दया समझते हैं, इत्यादि, किन्तु इन्द्रियों पर तथा स्वार्थान्धता पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त करने वाला जैन धर्म तो सूक्ष्म बादर त्रस स्थावर सब जीवों की रक्षा (दया) में ही धर्म मानता है और स्वार्थ से परमार्थ को प्रथम पद देता है, इस प्रबल्यता के कारण से ही शंकराचार्य [illegible] जैसे प्रबल प्रति स्पार्धियों के सन्मुख बौधादि धर्मों की तरह जैन धर्म को जे[illegible] हिन्द की पवित्र भूमिका को छोड़कर भगना नहीं पड़ा किन्तु काय[illegible] " [illegible] बना रहा। [illegible] ? पु[illegible]

जैन धर्म में दान शील तप और भाव इन चारों को धर्म [illegible] बनने के कारण बताये हैं। दान धन के जोर से शील मन के जोर से औ[र] [illegible] पुनः भो[illegible] के जोर से होता है किन्तु इन तीनों में जैसे भाव प्रवर्तते हैं [illegible] क्षाच[illegible] होता है, भाव के सुधारने के लिये ज्ञान की परमावश्यकता है [illegible] ास (भाव पूर्वक किये हुए उक्त तीनों काम संसार (भव भ्र[illegible] :तप[illegible] वाले होते हैं और मिथ्याभाव से संसार को बढ़ाने वाले [illegible]

जैन धर्म में मति श्रुति अवधि मनः पर्यव और केवल यों ज्ञान क पांच प्रकार कहे हैं जिसमें श्रुति ज्ञान मुख्य है क्योंकि श्रुति ज्ञान के सहाय से ही चारों ज्ञान की प्राप्ति हो सकती हैं, जीवों को सत्यासत्य का भांन कराने वाला, विवेकवन्त बनाने वाला, सम्यक् रास्ते लगाने वाला, मोक्ष स्थान में पहुंचाने वाला परम सहायक श्रुति ज्ञान ही है, इस दुषम कलि-काल के घोर अंधकार में श्रुति ज्ञान मशाल के समान प्रकाश करता है, श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के दशवें अध्ययन में कहा है कि " न हु जिणो अज्ज दीसइ " अर्थात् पांचवें आरे में तीर्थंकर के तो दर्शन नहीं होंगे, किन्तु तीर्थंकर मार्ग के प्रवर्तक साधु आदि के दर्शन हो सकेंगे, इसलिये रे जीव ! तू उनसे न्याय पथ प्राप्त करने में समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

ऐसे परमोपकारिक श्रुति ज्ञान का रक्षण व प्रसार करना यह कर्त्तव्य मुमुक्षुओं को परमावश्यकीय है, इस वक्त सुभाग्योदय से थोड़े परिश्रम थोड़े खरच में श्रुति ज्ञान का प्रसार करने का साधन मुद्रायण यन्त्रादि (छापा) का सहज सहाय प्राप्त होगया है।

जो जो साधु महात्मा और जो जो गृहस्थ श्रुति ज्ञान का रक्षण व [illegible]ार करते हैं वे सबही धन्यवाद के पात्र हैं किन्तु तीन महीने जितने [illegible]प समय में इतना बड़ा ग्रन्थ बनाने वाले बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलक [illegible]जी महाराज और इतने बड़े ग्रंथ का अमूल्य लाभ देने वाले दक्षिण [illegible]ाद के राजा बहादुर लालाजी सुखदेव सहाय जी ज्वाला प्रसादजी [illegible]शे धन्यवाद के पात्र हैं, क्योंकि इतना बड़ा ग्रन्थ इतने थोड़े समय [illegible]नाने वाले और इतने बड़े ग्रंथ का अमूल्य लाभ देने वाले हमारे [illegible]न साधु मार्गीय वर्ग में यद्यपि पर्यंत कोई हमारे सुनने में व देखने में [illegible] आया और इसही लिये यहां उक्त दोनों उपकार कर्ताओं का संक्षिप्त वृतांत लिखना मैं उचित्त ही समझता हूं।

ग्रंथ कर्त्ता का संक्षिप्त जीवन वृतान्त।

मारवाड देश के 'मेडते' शहर के रहीस मंदिरमार्गी बड़े साथ ओसवाल जाति के शेठ कस्तूरचंद जी कासटीया व्यापारार्थ मालवा देश के 'आसटे' शहर में रहे थे. उनकी अकस्मात् मृत्यु होने से उनकी सुपत्नी जबरांबाई को वैराग्य प्राप्त हो ४ पुत्रों को छोड साधुमार्गी संप्रदायमें दीक्षा ले १८ वर्ष संयमपाल स्वर्गस्थ बनी। माता, पिता, पत्नी, वृद्ध लघु भ्रात के वियोग से उदास हो केवलचंदजी भोपाल शहर में आ रहे और पित्र धर्मानुसार पंच प्रतिक्रमण नव स्मरणादि कण्ठाग्र कर क्रिया करने लगे. उस वक्त श्री कुंवरजी ऋषि जी महाराज का भोपाल आगमन हुआ उन का व्याख्यान सुनने फूलचंदजी धाडीवाल केवलचंदजी को जबरी से ले गये, सुयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुति स्कंध प्रथम अध्ययन चतुर्थ उद्देश की दशवीं गाथा का उस वक्त व्याख्यान चल रहा था, वह श्रवण कर सद्धर्म प्राप्त करने के खतीले बन केवलचंदजी प्रति दिन व्याख्यान सुनने लगे प्रतिक्रमण पच्चीस बोल का थोकादि कण्ठस्थ कर दीक्षा लेने के भाव होगये किंतु भोगावली कर्मोदय से स्वजनों ने जबरी से छोटमलजी टांटियां की पुत्री हुलासा बाई के साथ लग्न कर दिया. दो पुत्र को छोड वह भी मृत्यु पाई, पुनः सम्बन्धियों की प्रेरना से पुत्र पालनार्थ लग्नार्थ मारवाड जाते रास्ते में पूज्य श्री उदय सागर जी महाराज के दर्शनार्थ 'रतलाम' उतरे यहां अनेक शास्त्र व ग्रन्थ के ज्ञाता युवावस्था में सजोड ब्रह्मचर्य व्रतधारक कस्तूरचन्दजी लसोड मिले और कहने लगे "विष का प्याला सहज ही गिरगया पुनः उसे भरने क्यों सज्ज होते हो? पूज्य श्री जी ने भी कहा "एक वक्त वैरागी बन पुनः बनडे (वर) बनने को सज्ज होते हो इत्यादि सुन केवलचंदजी ब्रह्मचर्य व्रत धारन कर पुनः भो[पाल] गये और दीक्षा लेने सज्ज बने किन्तु आज्ञा नहीं मिलनेसे एक महीने भिक्षाचर[ी कर] आज्ञा प्राप्त की सं० १९४२ चेत शुक्ला ५ को श्री पुना ऋषि जी के पास [दीक्षा] धारनकर पुज्य श्री खूबाऋषिजी महाराजके शिष्य बने, ज्ञानाभ्यासकर तप

मतमतान्तर के दाखले दलीलों से गृहितार्थ सिद्ध कर व्याख्यान के प्रभाव से कई अजैन जैन बने, स्थिलधर्मी दृढ़धर्मी बने राजा बहादुर लालाजी सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी जैसे जैन स्थम्भ दानवीर महाप्रभाविक श्रावक रत्न और अनेक शास्त्रादि ज्ञाता दुष्कर तपकृता सौभाग्यावस्था में चारों स्कन्ध पालक सब को सुखदायनी गुलाबबाई जैसी श्राविका रत्न यह दोनों रत्न अत्युत्तम पके।

तपस्वीराज श्री केवलऋषिजी महाराज के शिष्य श्री सुखाऋषिजी आश्विन में बीमार हो फाल्गुन में स्वगर्स्थ बने, आगे उष्ण ऋतु प्राप्त होने से विहार हुआ नहीं दूसरा चौमासा भी लालाजी ने अत्याग्रह से वहां ही कराया, इस चौमासे में तपस्वीराज के बीमार होने से तथा वृद्धावस्था के कारन से ६ चौमासे वहां ही हुये. जिसमें तपस्वीराज श्री केवलऋषिजी महाराज के प्रयास से तो लक्खों पंचेन्द्रियों को अभय दिया और महाराज श्री अमोलक ऋषिजी ने अनेक ग्रन्थ बनाये और राजा बहादुर लाला जी प्रमुख कई श्रावकों ने उन्हें छपवा कर अमूल्य वितीर्ण किये. सं० १९७१ श्रावण बदी १३ मंगल को तपस्वीराज स्वर्गस्थ बने, बाद पांच जने दीक्षा लेने सज्ज हुये जिसमें से तीन को योग्य जान राजा बहादुर लालाजी ने अत्योत्सव से फाल्गुन शुक्ला १३ शनीवार को दीक्षा दिलाई. देवऋषिजी राजऋषि और उदयऋषिजी आगे उष्ण ऋतु में नव दीक्षितों के साथ बिकट पथ क्रमण दुष्कर जान अनेक वर्षों से होती हुई सिकन्द्राबाद वालों की बिनती को स्वीकार कर वहां चौमासा किया चौमासे में शास्त्रोद्धार कार्यारम्भ राजा बहादुर लालाजी ने कराया. श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने ३ वर्ष में ३२ही शास्त्रों के मूल का और हिन्दी भाषानुवाद बनाकर लिख दिये. ४२०००) रु० का सद्व्यय कर सब शास्त्रों की १०००–१००० प्रति ५ वर्ष में छपवाकर सब स्थान अमूल्य वितीर्ण किये. सब सवा लाख पुस्तक अमूल्य दीगई, मध्य में सं० १९७२

फाल्गुन में मोहनऋषि की दीक्षा हुई, यह युवक मुनि बड़े प्रभावशाली बनते, किन्तु सं० १९७५ के चैत कृष्णा ८मी को श्री देवऋषिजी और श्री मोहनऋषिजी दोनों ही स्वर्गस्थ बन गये. सं० १९७४ के आश्विन में राजा बहादुर लालाजी सुखदेवसहायजी भी स्वर्गस्थ होगये।

शास्त्रोद्धार कार्य समाप्त होते ही सं० १९७७ पोष शुक्ला २ को हैद्राबाद से विहार कर शास्त्रज्ञ गम्भीर्यादि गुणालंकृत श्रावक वारिष्टर 'नवलमलजी सूरजमलजी थोका' की अनेक वर्षों से होती हुई विज्ञप्ति को स्वीकार कर करनाटक देश के 'यादगिरी' ग्राम आये, तहां विज्ञप्ति अर्थ अनेक ग्राम के श्राविकादि एकत्र हो इस साल करनाटक में विचरने की विज्ञप्ति कबूल कराई, अनेक ग्राम के जैन, वैष्णव, इसलाम, राज-वर्गी आदि लोगों को धर्म प्रेमी बना 'रायचूर' चौमासा किया, धर्मोद्योत बहुत ही हुआ, महाराज श्री की कीर्ती से अकर्षाय बैंगलोर के ७० श्रावक श्राविका विज्ञप्ति अर्थ आये. राज श्रीमान् सेठजी श्री गिरधारीलाल जी अन्नराजजी सांकला ने यहां से विहार किये बाद बेंगलोर में बिराजे वहां तक तन से धन से यथोचित सेवा करना स्वीकार किया. उपकार का कारन जान अनेक वर्षों से अत्याग्रह से होती हुई बेंगलोर वालों की विज्ञप्ति को स्वीकार कर २६७ मील बेंगलोर पधारे. १ जैन "साधुमार्गी पौषधशाला" २ "जैन रत्न अमोल पाठशाला" और ३ "जैन पुस्तकालय" यह तीनों संस्था कायम हुई. दो कषाईयों ने, तथा जज साहब ने हिंसा के त्याग किये. १५००० धर्मोन्नति फण्ड में ४४००) जीव दया फण्ड में रुपये हुए, इग्यारा रंगीये नवरंगीये वगैरा बहुत उपकार हुआ, और भी उपकार हो रहा है. ऐसेही महात्मा के कर कमलों से निर्माण हुआ यह ग्रन्थ है।

प्रथमावृति प्रसिद्ध कर्त्ता का संक्षिप्त वृतान्त।

हरियाणा (पंजाब) देश दिल्ली जिले के महेन्द्रगढ़ (कानोड) में अग्रवाल वंश शिरोमणि श्रीमान लालाजी नेतरामजी सकुटुम्ब रहतेथे,

इन्होंने जैन साधुमार्गी पंथ के प्रवर पण्डित श्री रत्नचंदजी महाराज के पास सम्यक्त्व तथा सामायिकादि ज्ञान प्राप्त कर धर्म धुरन्धर बने. कई साधु साध्वी की दीक्षा इन के घर से हुई. सं० १८९८ पौष कृष्णा ६ के 'रामनरायण' नामक इनके पुत्र हुऐ वे विद्याभ्यास और लग्न सम्बंध हुए बाद व्यापारार्थ दक्षिण हैद्राबाद आये अपनी कौशल्यता से हि० हा० महबूब अली खां बादशाह के प्रेम पात्र बने लक्खों रुपये कमाये और व्यापारी वर्ग में अग्रसर बने. लालाजी रामनारायण जी के पुत्र नहीं होने से सुखदेव सहायजी को दत्त पुत्र लिये, इनका जन्म सं० १९२० पौष शुक्ला पूर्णिमा को हुआ । यह महा प्रतापी श्री मंगलसेन जी महाराज के पास सम्यक्त्व, सामायिक व सैंकड़ों स्तवन, लावणी आदि ज्ञान प्राप्त कर हैद्राबाद आये साधु दर्शन के अभाव से जैन मन्दिर में जाने लगे और हजारों रुपये खर्च करके एक मन्दिर भी बनवाया. इनके सं० १९५० में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को, ज्वालाप्रसादजी नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई. इनकी मेवा खोरी के लिये १००) रुपये महीना बादशाह देते थे. लालाजी की तरफ से एक विशाल दानशाला महेन्द्रगढ़ में स्थापन की है और हैद्राबाद में सदाव्रत दिया जाता है जिसमें प्रतिदिन सैंकड़ों अनाथ अपंगों का पोषन होता है और दान पुण्यार्थ तथा संसारार्थ लक्खों रुपये का व्यय किया और कर रहे हैं ।

जब से तपस्वीराज श्री केवलऋषिजी महाराज का हैद्राबाद बिराजना हुआ तब से लालाजी सुखदेवसहायजी निरंतर व्याख्यान श्रवन का लाभ लेते दत्त चित्त श्रवन करते बुद्धी की तीव्रता से पुनः सत्य सनातन जैन साधुमार्गीय धर्म के दृढ श्रद्धालू बन मन से तन से धन से यथोचित धर्मोन्नति चारों तीर्थ की भक्ति आदि लाभ लेने लगे. प्रथम चातुर्मास की दीपावली के दूसरे दिन बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषि जी महाराज उत्तराध्ययनजी के २१०० गाथा का स्वाध्याय सुनाकर ज्ञान वृद्धी का उपदेश

किया स्वयं लिखित 'जैन तत्त्व प्रकाश' ग्रंथ को खूबी समझाई लालाजी का मन ज्ञान वृद्धी की तरफ अकर्षाया जैन तत्त्व प्रकाश की १२०० प्रति छपवाकर ७०० प्रति 'जैन समाचार' अखबार के ग्राहकों को और ५०० अन्य को दी ८०० प्रति अन्य २ ग्रहस्थोंने भी छपवाई थी सब २०००ही अमूल्य दीगई.

लाला जी सुखदेव सहाय जी श्वे० स्था० कान्फ्रन्स का अधिवेशन जब रतलाम में हुआ तब वहां गये थे सं० १९६७ के चैत में स्वयं खर्च से सिकन्द्राबाद में कान्फ्रन्स कराई थी जिसमें कान्फन्स के खरच के सिवाय जीव रक्षादि फण्ड में रु० ७०००) दिया प्रेस के लिये रु० ५०००) दिये जिसका "सुखदेव सहाय जैन प्रि० प्रेस" अजमेर में चलरहा है और कान्फ्रन्स के कर्मचारियो को सैकड़ों रुपये का इनाम वगैरा दे अच्छा यश लिया था कान्फ्रेंस प्रेसीडेन्ट आदि सबकी तरफ से चांदी के पान दान में लाला जी को 'मान पत्र' दिया था सं० १९७० के आश्विन कृष्णा १२ को लाला जी राम नरायण जी का देहान्त हुये बाद लाला जी सुखदेव सहाय जी को निजाम सरकार (बादशाह) की तरफ से राजा बहादुर की उपाधी से विभूषित किये गये थे.

राजा बहादुर लालाजी सुखदेव सहायजी में उदारता शरलता कोमलता निरभिमानीपना, कार्यदक्षता दीर्घ दृष्टी विवेक बुद्धी परोपकारी पना इत्यादि गुन गौरव स्वाभाविक थे गरीब अनाथ अपंगों तथा श्रीमान कोई गरीब स्थिती को प्राप्त हुआ हो उसको यथोचित सहायता पहुंचाकर सैकड़ों जीवों का आशीर्वाद प्राप्त करते थे. जाति गुण तथा स्वधर्मीयों में हजारों रुपये का लेन देन होता था किन्तु किसी की इज्जत को हरक पहोंचे वा न्यायालय में जाना पडे ऐसा कभी नहीं किया राजा बहादुर लालाजी का मुद्रा लेख यह था कि "महंगा रोवे एक वार, सस्ता रोवे बारम्बार" तथा दोहा—मांगन आया सो मरगया, मरे सो मांगन जाय ।
सब के पहिले वह मरा, जो होते ही नट जाय ॥

इससे हरएक कार्य को अच्छा बनाते प्रार्थी की प्रार्थना साफ भंग नहीं करते, गुप्त दान के बडे शौकीन थे. थोडा बोलते और बहुत करते तथा लालाजी का बचन तो पत्थर की लकीर समान अचल था. राजा बहादुर लालाजी ने १—श्वे० स्था० कान्फ्रेन्स का पांचवां अधिवेशन. २—तीन महा पुरुषों का दीक्षा महोत्सव. ३—जैन ग्रन्थों का अमूल्य प्रसार और ४ जैन शास्त्रोद्धार यह ४ काम जैसे बने हैं वैसे दूसरे से बने हों यह आज तक हमारे सुनने में नहीं आया लालाजी को अपने आयुष्यान्त ६ महीने पहिले ही समझ में आगया था. तबही से घरका योग्य बन्दोवस्त किया. जो कर्जा देने योग्य नहीं थे ऐसे गरीबों के नाम हजारों रुपये के दस्तावेज (स्टांप) फाड फेंक दिये. जिसने जितना दिया उतना ले हजारों रुपये माफ कर फारकती दे दी. कोई पूछते तो उत्तर देते कि "अपनी सुख से उपजीविका चले तो अपनी तथा दूसरे की आत्मा को दुःख क्यों देना ?" आरम्भ भी बहुत घटा दिया और हजारों रुपये का पुण्य दान किया. एक अच्छी जैन संस्था कायम करने का निश्चय किया था और सलाह लेने को कई स्थान पत्र भी दिया था किन्तु उनका उत्तर आये पहिले ही लालाजी बीमार होगये. तब महाराज श्री सिकंद्राबाद से आये कुछ सुनाकर वापिस चले गये उस दिन से रोग कुछ कम हुआ आश्विन कृष्णा १३ को साधु दर्शन के भाव कर कपडे पहने उस वक्त डाक्टर आया, उससे बात की डाक्टर के पृष्ट फिराते ही "कोई किसी का नहीं" यह अंतिम बोलते स्वर्गस्थ बन गये।

रत्नों की खान में रत्न ही उत्पन्न होते हैं तैसेही लालाजी सुखदेव सहायजी के पुत्र रत्न लालाजी ज्वाला प्रसादजी लालाजी के समान ही उदारता शरलता गम्भीर्यता निराभिमान आदि गुण अलंकृत हैं. दृढ धर्मी प्रिय धर्मी धर्म धुरंधर बनकर मन से तन से धन से धर्म को खूब दीपा रहे हैं।

निवेदक—पद्मासिंह जैन,

जौहरी बाजार—आगरा.

बाल ब्रह्मचारी पंडित मुनिराज श्री अमोलक ऋषिजी महाराज के बनाये तथा सद्बोध से प्रसिद्धी में आये शास्त्र व ग्रन्थ।

नं०	शास्त्रों के नाम	प्रति
१	श्री आचाराङ्ग जी	११००
२	,, सुयगडांग जी	११२५
३	,, ठाणांग जी	,,
४	,, समवायांग जी	,,
५	,, भगवती जी	,,
६	,, ज्ञाताधर्मकथांगजी	,,
७	,, उपाशकदशांगजी	,,
८	,, अन्तगडदशांगजी	,,
९	,, अनुत्तरोववाईजी	,,
१०	,, प्रश्नव्याकरजी	,,
११	,, विपाकजी	,,
१२	,, उववाईजी	,,
१३	,, राजप्रश्नीजी	,,
१४	,, जीवाभिगमजी	,,
१५	,, पन्नवणाजी	,,
१६	,, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिजी	,,
१७	,, चंद्रप्रज्ञप्तिजी	,,
१८	,, सूर्यप्रज्ञप्तिजी	,,
१९ से २३	,, निरियावलिकादि पंच	,,
२४	,, व्यवहारजी	,,

नं०	ग्रन्थों के नाम	प्रते
२५	,, बृहद्कल्पजी	११२५
२६	,, निशीथजी	,,
२७	,, दशाश्रुतस्कंधजी	,,
२८	,, दशवैकालिकजी	१५००
२९	,, उत्तराध्ययनजी	,,
३०	,, नन्दीजी	११२५
३१	,, अनुयोगद्वारजी	,,
३२	,, आवश्यकजी	,,
३३	श्री जैन तत्त्व प्रकाश तीन आवृती	६०००
३४	श्री परमात्म मार्ग दर्शक	१०००
३५	,, मुक्ति सोपान गुणस्थानरोहण अढीशतद्वारी	,,
३६	,, शास्त्रोद्धारमीमांसा	११२५
३७	,, केवलऋषिजीकी जीवनी	११००
३८	,, ध्यान कल्पतरु वृक्षयुक्त हिन्दी दो आवृती	२७००
	,, गुजराती आवृती	५००
३९	धर्मतत्व संग्रह हिन्दी तीन आवृति	४५००
	,, गुजराती	१२००

नं०	शास्त्रों के नाम	प्रति
४०	अघोद्धार कथागार	१५००
४१	मदन सेठ चरित्र	१०००
४२	चन्द्रसैन लीलावती चरित्र	१२००
४३	जयसेण विजयसेणचरित्र	१०००
४४	वीरसेण कुसुम श्री चरित्र	,,
४५	जिनदास सुगुनी चरित्र	,,
४६	सिंहल कुमार चरित्र	,,
४७	मंदिरा सती चरित्र	,,
४८	भुवन सुन्दरी चरित्र	,,
४९	सम्वेगसुधा सोनी चरित्र	,,
५०	भीमसेन हरीसेन चरित्र	११००
५१	सद्धर्म बोध	
	,, मराठी पंचावृति	६५००
	,, कनाडी दोआवृति	३०००
	,, हिंदी प्रथमावृति	२०००
५२	सची संवत्सरी	२००
५३	जैनामुल्यसुधा—पद्य	१०००
५४	तत्त्व निर्णय	२०००
५५	नित्यस्मरण	२०००
५६	नित्य पठन	५००
५७	प्रातः पाठ	२०००
५८	श्रीवीर स्तुति पद्यात्मक	२०००

नं०	ग्रन्थों के नाम	प्रति
५९	केवलानन्द छन्दावली चार आवृति	४५००
६०	मनोहर रत्न घन्नावली	१०००
६१	जैन सुबोध हीरावली	१०००
६२	जैन सुबोध रत्नावली	१०००
६३	जैन शिशुबोधनी	१०००
६४	जैन गणेश बोध	१२००
६५	भक्तामर हिंदी अर्थ	१०००
	,, मूल	१०००
६६	युरोप में जैन धर्म	५००
६७	प्रातः पाठ धर्म फल—प्रश्नोत्तरी	१०००
६८	अनुपूर्वीयों	,,
६९	पंच कल्यान	१०००
७०	जैनामृत सुबोध माला	,,
७१	श्रावक नित्य स्मरण	,,
७२	आत्म हित बोध	१५००
७३	श्रावक व्रत	२०००
७४	गुलाबी प्रभा	१२५०
७५	शास्त्र स्वाध्याय	५००
७६	स्वर्गस्थ मुनि युगल	५००

७७	चोइसठाणा का थोक	५००
७८	दान का और छे काया का	१०००
७९	शास्त्र स्वाध्याय द्वितीय प्रति	१०००

उक्त पुस्तकों में से १ से ३२ नम्बर तक की पुस्तकें तो श्री जिनेश्वर भगवान् प्रणीत और श्री गणधर जी महाराज रचित हैं. ३३ से ५८ नम्बर तक की पुस्तकें श्री अमोलक ऋषिजी महाराज की रचित हैं. ५९ नम्बर की तपस्वी राज श्री केवल ऋषिजी महाराज की रचित. ६० नम्बर की पूज्य श्री मनोहरदास जी की सम्प्रदाय के पंडित राज श्री रत्नचन्द जी महाराज तथा कविवर श्री धनीदासजी महाराज रचित हैं. ६१-६२ नम्बर की कवि राज श्री हीरालालजी महाराज की. ६१ नम्बर की पंडितवर्य श्री अमीऋषिजी महाराज की. ७१ सुखव श्री दृगडऋषिजी महाराज की और श्रावकों की रचित हैं. जिनकी शुद्ध वृति श्री अमोलक ऋषि जी महाराज के हाथ से लिखवाई तथा इन ही के सद्बोध से प्रसिद्ध हुई. यों सब ७६ प्रकार के शास्त्र ग्रंथों की कुल * १३२९५० प्रति + प्रायः सबही अमूल्य दीगई हैं. इस प्रकार इस ग्रंथ के कर्ता महाराज श्री के परम प्रयास से सारे भारत वर्ष में जैन साधु मार्गीय समाज सूर्य तुल्य प्रकाश किया है. यह अनुकरण प्रत्येक विद्वर मुनिवरों को करना उचित है।

पद्मसिंह जैन.

---

* कुल प्रति तो १२८४५० होती हैं किन्तु निरिया वलिका पंचक के पांच सूत्रों के अलग २ गिनने से ४५०० प्रति मिलाने से १३२९५० प्रति हो जाती हैं।

× प्रायः शब्द इसलिये लगाया है कि-जैना मत्य सुधा बम्बई के रत्नचिन्तामणि जैन मित्र मण्डल की तरफ से, गुजराती ध्यान कल्पतरु मांगरोल वालों की तरफ से शास्त्र की १००-१०० प्रति मणिलाल की तरफ से और जैन तत्व प्रकाश प्रथमा वृति की कुछ प्रति बाड़ीलाल भाई की तरफ से मूल्य लेकर दी गई हैं।

लाला साहब का दान

श्रीमान् राज्यमान् दानवीर जैनस्थम्भ राजा बहादुर लालाजी सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी जौहरी दक्षिण हैदराबाद वालों के जैन धर्मार्थ १४८००० किया हुआ रुपे के सद् व्यय की याददास्ती

४२००० जैन धर्म के परम माननीय बत्तीस शास्त्रोद्धार कार्य के लिये।

२१००० प्रगट दान कान्फरन्स प्रेस स्थानकादिका चंदा वगैरा शुभ कार्यमें।

१०००० कान्फरन्स का मण्डप भोजन व इनामादि में।

१०००० तीन महापुरुषों की दीक्षा उत्सवादि में।

१२००० जैन तत्त्व प्रकाशादि पुस्तकों की छपाई वगैरा ज्ञान बृद्धी के कार्य में.

१३००० दुःख पीडित स्वधर्मीयों को तथा आये गये को गुप्तदान.

२५००० फुटकर मकान भाडा प्रभावना जीवदयादि कार्य में.

१५००० साधु के दर्शन हुए पहले हैदराबाद में जैन मंदिर बनवाने में.

यो १४८००० रुपे का खरच तो सिर्फ जैन धर्मार्थ किया ऐसा अंदाज से यहां लिखा है इसमें कमी होने का सम्भव नहीं है.

ऐसे दान वीरों का अनुकरण प्रत्येक श्रीमानों को करना उचित है.

निवेदक—

पद्मसिंह जैन आगरा

द्वितीयावृत्ति प्रस्तावना ।

श्लोक—पुराणमित्येव न साधु सर्वं । न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते ।। मूढः पर प्रत्यय नेयबुद्धिः ॥

अर्वाचीन काल के बहुत से लोग प्राचीन काल की बातों पर विशेष विश्वास रखते हुए नूतन बातों पर विश्वास कम रखते हैं, उनको उन्मार्ग में गमन करते रोक सन्मार्ग में प्रवृती करने के उपकारिक बुद्धी से उक्त श्लोक कर्ता सूचित करते हैं कि—"पुरानी बातें सब सच्ची नहीं होती हैं. तैसे ही नवीन बातें सब मिथ्या नहीं होती हैं किन्तु सद्बुद्धी और सत्शास्त्र द्वारा सत्पक्षी परीक्षा के अंत में सत्य जानने में आती हुई बातों को ही सत्पुरुष स्वीकार करते हैं और मूढ़-मूर्ख निर्णय करने की दरकार नहीं रखते रूढ़ी मार्गानुगामी बनते हैं. गर्धव पुच्छग्राही की तरह कदाग्रही बन पाद प्रहार सहते भी असत्य पक्षाभि मुख ही बने रहते हैं।" इसलिये मुमुक्षुओं को यह नया और यह पुराना इस झगड़े में नहीं फंस निर्णय पूर्वक सत्य को स्वीकार करना उचित है ।

सर्वज्ञ कथित शास्त्रानुसार न कोई पदार्थ नया उत्पन्न होता है और न किसी पुराने का विनाश होता है. जीव और अजीव के प्रमाणु अनादि और अनन्त हैं. जैसे घटके फूटने से घट पर्याय का नाश होता है किन्तु मृतिका का नाश नहीं होता है. वही मृतिका मृतिका में मिल पुनः सरावलादि रूप धारन कर लेती है तैसे ही पदार्थों का रूपान्तर दृष्टी गत होता है वह पर्याय का ही पलटा है न कि पदार्थ का । ऐसे ही धर्म और अधर्म [पाखण्ड] भी अनादि अनन्त है. क्योंकि दिन रात्रि की तरह प्रति पक्ष प्रत्येक के सदैव होते ही हैं. इसलिये पुराने ही सत्य हैं ऐसा मानने वाले को हेय (छोडने योग्य) पदार्थ कोई रहा ही नहीं । इस न्याय से ही सद्बुद्धी और सत्शास्त्र द्वारा निर्णित बना धर्म उपादेय (आदरने योग्य) और अधर्म हेय (त्यागने योग्य) है ।

प्राय: सब धर्माध्यक्षों मत मतान्तरों के शास्त्रों दाखले दलीलों से अपने २ मत को सनातन सिद्ध करने में और अन्य को अर्वाचीन व मिथ्या ठहराने में किञ्चित कचास नहीं रखते हैं, जिससे अल्पज्ञ मुमुक्षु असत्यासत्य का निर्णय करने में असमर्थ बन घोटाले में पड जाते हैं, मानों उस घोटाले का निकन्दन करने के लिये ही यह "जैन तत्व प्रकाश" ग्रन्थ निर्माण हुआ है. यद्यपि इससे भी अत्युत्तम कई ग्रन्थ प्रसिद्ध हो चुके हैं तथापि प्रत्येक प्राणियों की बुद्धी में न्यून्याधिकता होती है और जो जिन को सत्य प्रतिभाष हो उसे प्रसिद्धी में लाना यह परमार्थिक पुरुषों का स्वाभाविक कर्तव्य होता है इस हेतु से यह ग्रन्थ भी प्रसिद्ध किया गया है. कितनेक अन्य ग्रन्थ कर्ताओं की तरह इस ग्रन्थ के कर्ता ने कहीं भी ऐसा आग्रह नहीं किया है कि मेरी मान्यता तुम्हें कबूल करना ही चाहिये, किन्तु इसमें तो अपनी श्रद्धा को अनेक मत मतान्तर के शास्त्र दाखले दलीलों से निर्णय कर मुमुक्षु को दर्शित किये हैं. मानों या न मानों यह अवलम्बन पाठक श्रोता की इच्छा पर है। "विषय और कषाय को सर्वांश नाश करे वही देव हैं; विषय कषाय की बृद्धी के कारणोंसे अलग रहे अभ्यान्तर विषय कषाय के निग्रह करने में उद्यमी रहे वेही गुरू हैं और जिन २ कर्तव्यों से विषय कषाय का नाश होवे वह धर्म है, यही मेरी अटल श्रद्धा है तुम्हारे हृदय में यह कथन सत्य मालुम पड़े तो स्वीकार करो?" ऐसे हमने बहुदा ग्रन्थ कर्त्ता के मुख से श्रवण किया है।

"जैन तत्व प्रकाश" ऐसा इस ग्रन्थ का नाम पठन कर जैन सिवाय अन्य मतावलम्बियों को इसके पठन से बंचित नहीं रहना चाहिये. क्यों कि इस ग्रन्थ की रचना केवल जैन शास्त्र के आधार से ही नहीं कीगई है. किन्तु इसमें के मुख्य २ कथन को सिद्ध करने के लिये अनेक मतान्तर के शास्त्रों व दाखले दलीलों से स्याद्वाद शैली का अवलम्बन कर सत्यार्थ सिद्ध कर बताया है, वह किसी भी सत्य पक्षी का अन्त:करण किञ्चित

मात्र दुख न पावे इस प्रकार सरलता और मधुरता के साथ रोचक शब्दों में उल्लेख किया है इसलिये हरेक पाठकों को कुछ न कुछ लाभ तो अवश्य ही प्राप्त होगा.

इस वक्त समालोचना करने का रिवाज प्रचलित होने से प्रथमावृती प्रसिद्ध कर इसकी कुछ भी प्रसंशा नहीं करते हुए तटस्थ रह प्रतीक्षा करते थे कि देखें जैन समाज इस विषय में क्या मत देता है जैन समाज के कर कमलों में यह ग्रन्थ उपस्थित होते ही प्राण प्यारा बन गया स्वल्प समय में २००० प्रती खपगई. साधुमार्गी, मन्दिरमार्गी, दिगम्बर, तेरापथी, शिव, वैष्णव, इसलाम इत्यादि के हिन्दी, गुजराती, उरदू, अंग्रेजी आदि में सैकड़ों प्रसंशा पत्र और हजारों याचना पत्र हिन्द के सिवाय अफरीका योरव आदि देशों से प्राप्त हुए तब हमने जाना कि इस जमाने में ऐसी पुस्तक की परमावश्यकता है. उस वक्त द्वितीयावृती प्रसिद्ध कराने बैंगलोर निवासी सेठजी गिरधारीलालजी अन्नराजजी और सिकन्धराबाद निवासी शेठ निहालचन्दजी गम्भीरमलजी के सुपुत्र सहश्रमलजी उमंगी बने, तब "जैन तत्व प्रकाश" में किसी को कुछ विशुद्धता या अशुद्धी मालूम हुई हो तो हमें दर्शाइये सादर स्वीकार उचित सुधार करेंगे, ऐसी ५०० आहि-रातों छपवाकर योग्य स्थान भेजी गई किन्तु गुणरत्नाकर पूज्य श्री सोहनलालजी (पंजाबी) महाराज के सिवाय किसी ने भी कुछ उत्तर नहीं दिया तब जाना कि यह बहु मान्य और शुद्ध है. तब कुछ शुद्धी और ७-८ फारम जिसकी वृद्धी कर दूसरी बार भी २००० प्रति छपवाई गई.



"तृतीया वृति-प्रस्तावना"

श्लोक—धर्माज्जन्मकुले शरीरपटुता सौभाग्य-मायुर्बलं ॥
धर्मेणैव भवति निर्मलयशो विद्यार्थसंपत्तयः ॥
कान्तारच्च महाभयाच्च सततं धर्मः परित्रायते ।
धर्मः सम्यगुपासितो भवति हि स्वर्गापवर्गप्रदः ॥ १ ॥

जितनी जिस ग्रन्थ की आवृति अधिक प्रसिद्ध होती है उतना ही वह ग्रन्थ जन समाज में अधिक प्रिय बना माना जाता है। इस जैन तत्व प्रकाश की द्वितीयावृति बहुत शीघ्रता से खप गई, कई साधुओं ने अपने नव दीक्षित साधु को शीघ्रता से तत्वज्ञ तथा व्याख्यानी बनाने को इसका पठन कराने लगे. कितनेक श्रावक साधु के अभाव में चौमासे में इसका व्याख्यान सुनाने लगे. कितनेक ग्रामों के जैनों जो वैष्णव वादि अन्य धर्मावलम्बी बन रहे थे वे इसे पढ़ जैनी बन गये हैं. और कितनेक स्थान झगडे की शान्ति के लिये साक्षी रूप इस ग्रन्थ को मँगाया है. इस प्रकार यह ग्रन्थ आदरनीय माननीय बना. हजारों याचना पत्र आने लगे किन्तु पुस्तकों के खप जाने से सबको निराश होना पडा. । भव्य भाग्योदय से परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के प्रवर पंडित श्री सुखाऋषिजी महाराज के कृपा पात्र शिष्य वर्य आर्य तपस्वीराज श्री देवजी ऋषिजी महाराज के कर कमल में कमला के सदृश यह ग्रन्थ स्थापन होते ही पठन मननादि करते मनमोहन बना और इसका विशेष प्रसार परमोपकार का निश्चयात्मक प्रतिभास होते ही महाराष्ट्र खानदेश बरारादि में विहार करते इस ग्रन्थ के यथार्थ गुन सुनाते जचाते रूचाते भव्यों का चित्ताकर्ष इस ओर होते ही यथा शक्ति द्रव्यार्पण कर ग्रन्थ को प्रसिद्ध कराने की उत्सुकता दर्शाई. उस वक्त दक्षिण हैदराबाद निवासी दानवीर राजा

बहादुर लालाजी सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने दक्षिण सिकंद्राबाद में जैन शास्त्रोद्धार कार्यालय स्थापन करा जिसके मैनेजर झोबाला (काठियावाड़) के शेठ मणिलाल शिवलाल को बनाया था उसही शास्त्रोद्धार प्रि० प्रेस में यह ग्रन्थ छपाना उचित समझा और वहां रु० ३१४६) भेजे वे लिखते हैं, शास्त्रोद्धार कार्य के मध्य में तो यह काम हो सका नहीं किन्तु कार्य पूर्ण होते ही महाराज श्री अमोलक ऋषिजी को कुछ संशय आने से मणिलाल से कहा कि जैन तत्व प्रकाश के रुपये हैदराबाद के ज्ञानवृद्धी खाते में जमा करा देना चाहिये. उसने जमा कराये. फिर कार्यालय का हिसाब लालाजी ज्वालाप्रसादजी ने मणिलालजी से मांगा उसमें घोटाला होने से रात को मणिलाल भाग गया। फिर तपास करते मालूम हुआ कि जैन तत्व प्रकाश के नाम के रु० ३०००) हाली ही जमा कराये हैं जिसके कलदार रु० २६००) हुए, बाकी के इसके रुपये और भी इगतपुरी व मांजळ गांव वगैरा स्थान के आये हुए ज्ञान वृद्धी खाते के सैकड़ों रुपे मणिलाल के पास ही रह गये, सरकार के जरिये से द्रव्य प्राप्त करने की कितनेक ने सलाह दी किन्तु जिसको ऊँचा चढ़ाया उसको पटकना लालाजी ने पसंदनहीं किया तथा इसमामले में ऐसीहि साधुजी की सम्मति होने से सरकार में जाना उचित नहीं समझा, सम भाव से हजारों रुपे का नुकसान सह कर चुप रहे. शास्त्रोद्धार कार्य की समाप्ती होते धर्मप्रचार के हेतु खरीदी हुई वस्तु से धर्म कार्य होता रहे इस हेतु से विश्वासनीय और उपकारिक स्थान 'जैन पथप्रदर्शक' पत्र के मैनेजर आगरे वाले पद्मसिंहजी जैन को जान शास्त्रोद्धार प्रेस उन्हीं को दिया और जैन तत्व प्रकाश छापने के बदल बात की भाषा शुद्ध कराने का ठहराव कर एक प्रति द्वितीयावृति की पद्मसिंहजीको दी. महाराज श्री के करनाटक देशमें बिहारकिये बाद परमसिंहजी ने जैनतत्वप्रकाशका प्रथमप्रकरण किसी दिगम्बरजैन के पास से लिखवाकर अवलोकनार्थ महाराजश्री को भेजा किन्तु महाराजश्री ने पसन्द

किया नहीं और बहुत सी सूचना के साथ वह पीछा भेजा. पुनः दूसरी वक्त उसका उतारा करा महाराजश्री के पास भेजा वह भी महाराज श्री ने पसंद किया नहीं और अपने हाथ से ही लिखना पसंद कर अनेक शुद्धी वृद्धी के साथ प्रथम खण्ड रायचूर से तथा दूसरा खण्ड बैंगलौर से लिखकर आगरे भेजा. इस उक्त जैन तत्व प्रकाश नूतन प्रकार का ही बन गया है. द्वितीयावृती में का कितनाक नोट का कथन मूल में और मूल का कथन नोट में लिखा गया है. तैसे ही प्रमाण का तथा वाममार्गीयों के कथन की और सवैया श्लोक आदि की भी वृद्धि की गई है. इत्यादि शुद्धावृद्धि करने पर भी छद्मस्तता के योग से और दृष्टी दोष से जो अशुद्धी रह गई हो उसे शुद्ध कर गुण ही गुण के ग्राहक बन गुणों को स्वीकार कर धर्मात्मा बनो कि जिससे उक्त श्लोक के कथनानुसार धर्म के परम प्रताप से उत्तम कुल में जन्म, शारीरिक आरोग्यता, सौभाग्य, दीर्घायु, सामर्थ्य, निर्मल-यशः धर्म-सम्पत्ति और विद्या इनकी प्राप्ति होवे और महारण्य शत्रु संकटादि आफत से धर्म सदैव बचाव होकर आगे स्वर्ग के तथा मोक्ष के परमानन्द परमसुख के भोक्ता बनो, इसही इच्छा से इस प्रस्तावना की समाप्ति करता हूं।

सैक्रेटरी
ज्ञान वृद्धीखात हैद्राबाद दक्षिण



तपस्वीजी श्रीदेवजी ऋषिजी महाराज का संक्षिप्त वृत्तान्त

कच्छ देशान्तरगत पुनडी ग्राम के निवासी सेठ 'अम्बाजी' के ज़ेष्ट पुत्र 'जेठाभाई' संवत् १९२६ में व्यापारार्थ मुम्बई शहर के भात बाजार में रहे. जिनकी सुपुत्री मीरांबाई से सं० १९२९ की दीपावली के शुभ दिन पुत्र रत्न की प्राप्ती हुई जिनका नाम 'देवजी' रक्खा. संवत् १९३८ में मीरांबाई का देहोत्सर्ग हुए बाद देवजी कांदावाडी (नासिक) में अपने काकाजी घारसीभाई की दुकान पर रहकर व्यापार कला में कौशल्य बन सं० १९४५ में बम्बई के जीवाजी की चाल में देवजी जेठी के नाम से धान्य की दुकान की, अच्छी पैदासी देखकर घारसी अम्बा और लखमसी लद्धा इनके सरीकती बने. सं० १९४९ में चिंचपोकली स्थानक में परम पूज्य श्रीकहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के स्थविर पद विभूषित आर्य श्री हर्षा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य स्याद्वादवारीधी बालब्रह्मचारी श्री सुखाऋषिजी महाराज, विवेक विलासी श्री हीराऋषिजी महाराज प्रवर पण्डित श्री अमीऋषिजी महाराज ठाने ३ का चातुर्मास हुआ, तब यहां खेतसी भाई की दीक्षा हुई और सद्बोधामृत के श्रवन से देवजी भाई वैरागी बने, दीक्षा लेने की पिता की आज्ञा न मिलने से उक्त महाराज श्री के साथ पायचारी नाशक आये. पूर्व सूचनानुसार शेठ लालजी चांपसी तथा गोंडल के कडवा भाई कल्याणजी ने जेठा भाई को समझाकर आज्ञापत्र लिया. शेठ दामजी लखमीचंदजी के साथ नासिक आये, बम्बई में दीक्षा देने की विज्ञप्ति की किन्तु महाराज श्री ने स्वीकारी नहीं, तब बम्बई वाले पीछे गये और चिंचपोकली स्थानक के सेक्रेटरी भाई प्रेमचंद अभयचंद मारफतिया नाशिक आकर अर्ज की.

कि "पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के जो साधु गुजरात में विचरते हैं और पुज्य श्री लवजी ऋषिजी के ही तीसरे पाट पर विराजे पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी की सम्प्रदाय के आप हैं इसलिये दोनों सम्प्रदाय का मूल एक ही है, इसलिये परस्पर एक होना इस काल में बहुत लाभदायक है, जो आप सूरत पधारो तो यह काम हो सकेगा।" इत्यादि कथन महाराज श्री को लाभकारक मालुम होने से नाशिक वालों की विनंती को स्वीकार न कर सतपुडे पहाड को उल्लंघन कर क्षुधा, तृषा, शीत, तापादि परिषह सह कर महाराज श्री सूरत पधारे. मारफतियाजी खंभायत बंदर जाकर पूज्य श्री हर्षाऋषिजी महाराज को दोनों सम्प्रदायों में सम्प करने का कथन समझाया पूज्य श्री वृद्ध होने,से आसके नहीं किन्तु लाभ का कारण जान श्री लल्लू ऋषिजी, श्री देव करन ऋषिजी, श्री हीरा ऋषिजी और श्री चतुरु ऋषिजी ठाने ४ को सूरत भेजे, बडे प्रेम से परस्पर मिले एक सम्भोग हुआ. सं० १९४९ चैत कृष्ण ३ को दीक्षा उत्सव कायम हुआ. १००० के अंदाज श्रावक श्राविका बम्बई से आये और बम्बई संघ के खरच से महोत्सव हो दीक्षा हुई. 'देवजी ऋषिजी' नाम स्थापन किया. वहां से श्री लल्लू ऋषिजी ठा० ४ ने बम्बई चौमासा किया जहां बेलजी ऋषिजी की दीक्षा हुई और श्री सुखाऋषिजी महाराज ठा० ५ ने सं० १९५० का धूलिये (खानदेश) चौमासा किया। यहां पांचों ऋषिजी को दीक्षा गुलाबचंदजी श्री श्रीमाल ने दिलाई. वहां से मालवे पधारे और सं० १९५१ का भोपाल चौमासा किया. सं० १९५२ का श्री हर्षाऋषिजी महाराज के साथ ठाने ११ ने मन्दसौर चौमासा किया और सं० १९५३ का चौमासा इन्दौर कर के सं० १९५४ में भोपाल पधारे, उस वक्त नाशिक के निवासी मराठे गनपतराव पाटिल के पुत्र सखाबाई के अंग जात सखाजी राव महाराज श्री के दर्शनार्थ आये और बैरागी बने ४ ग्राम की खेती छोडी और बहुत

परिवार को छोड़ कर सुजालपुर में पंचों की आज्ञा से दीक्षा ली। सं० १९५५ में सुखाऋषिजी के चेले हुए सखाऋषिजी नाम रखा सं० १९५६ का चौमासा देवास सं० १९५७ का धार चौमासा कर इच्छावर पधारे तब श्री सुखाऋषिजी बीमार हुए किन्तु यहां का हवा पानी अनुकूल नहीं होने से और जंघाबल क्षीण होजाने से श्री देवऋषिजी पृष्ट पर उठा १६ कोस भोपाल ले गये। अनेक औषधोपचार करते भी आराम नहीं हुआ और सं० १९५८ द्वितीय श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को स्वर्गस्थ बने। उस वक्त श्री हर्षाऋषिजी महाराज के पास सखाऋषिजी थे वे कालुऋषिजी के साथ भोपाल आके देवजीऋषिजी को श्री हर्षाऋषिजी के पास ले गये। पिपलोदे, आगर, भोपाल, उज्जैन, आगर, साजापुर, गंगधार, बड़ोद, साजापुर, भोपाल, गंगधार, इस प्रकार चौमासे करे। सं० १९७२ को दक्षिण में पधारे और भुसावल, हिंगणघाट, अमरावती, बरोरा, सोनई, बम्बई, चौमासा किया. यहां सखाऋषिजी के प्रतापी शिष्य प्रतापऋषिजी सात वर्ष संयमपाल स्वर्गस्थ बने (सं० १९७७) में सं० १९७८ का नाशिक १९७९ चौमासा जलगाम बाद भुसावल में श्री तुलाऋषि जी की दीक्षा हुई, सं० १९८० का चौमासा चांदूर बाजार में हुआ और जेठ में नागपुर में वृद्धी ऋषि जी की दीक्षा हुई, और यह १९८१ का चौमासा आपने नागपुर में ही किया। जिससे सनातन जैन धर्म का खूब प्रचार हुआ।

तपस्वीराज श्री देवऋषिजी महाराज ने १९५९ से सं० १९८० तक २१ वर्ष में इसप्रकार तपश्चर्या की -१—२—३—४—५—६—७—८—९—१०—११—१२—१३—१४—१५—१६—१७—१८—१९—२०—२१—२२—२३—२४—२५—२६—२७—२८—२९—३०—३१—३२—३३—३४—३५—३६—३७—३८—४१ और दूसरी वक्त ८-९-१०-११-१२-१३-१३ १४-१५-१५ १६-१७-१८—१९—२०—२१—२२—२३ और २४ ऐसी महान् तपश्चर्या में भी सदैव दोनों वक्त व्याख्यान तीन घंटे का मौन तथा नित्य नियम एक घंटे खड़े रह

कर रात्रि को दो बजे ध्यान, इस प्रकार स्वात्मा और परात्मा का उद्धार करता महात्मा मुनिवर के सबोध से और सदप्रयास से ऐसे ज्ञान भंडारसमान महान् ग्रन्थ रत्न को हम प्रसिद्धी में रखने को समर्थ हुये हैं. इसके पठन मनन से जिन २ को सद्गुण का लाभ मिलेगा वह सब तपस्वीराज महाराज के ही आभारी जानना.

कृतज्ञ—प्रसिद्ध कर्ता.

तपस्वीराज श्री देवजी ऋषिजी महाराज के शब्दोध से इस ग्रन्थ के छापने में द्रब्य की सहायता कर्ता सद्गृहस्थों के मुबारिक, नाम व रुपये ।

५०२ श्रीयुत रामलालजी सुखलालजी चौरडीया, बरोरा,
४०५ हिंगणघाट जैन साधुमार्गी श्री संघ
३०० बरोरा जैन साधुमार्गी श्री संघ
३०० सोनई (अहमद नगर) जैन साधुमार्गी श्री संघ
१०१ श्री० सोभाग मल जी, मूथा इच्छावर
१०० श्री० बादरमल जी बांठीया (भीनासर) बीकानेर
१०१ श्रीयुत जगन्नथजी चम्पालालजी, बरोरा
१०० ,, भवानीदासजी चुन्नीलालजी कटारिया, हिंगणघाट
५१ ,, भनमलजी चन्दमलजी पारख, बरोरा
५० ,, अमाचन्दजी हीरालालजी खेतपालीया, कुरावाली
४१ ,, आलमचन्दजी सोभाचन्दजा लोढ़ा, हिंगणघाट
० ,, गुलाबचन्द जी मूलचन्दजी वेद गांधी, चांदा पी. सी.
३५। ,, मुर्तिजापुर (म्हाड़) जैन साधुमार्गी श्री संघ
३ ,, कस्तूरचन्द पन्नालालजी कावरिया, हाट पिंपला
१ ,, आसारामजी मिलापचन्द पाठी, बरोरा
१ ,, दुलीचन्दजी बोरा, वणीपेठ
१ ,, मानमलजी पूनमचंदजी नाहार, हिंगणघाट
६ ,, जवाहरमलजी नथमलजी, मंगरूर

२५ ,, मोतीलालजी मुणोत, बम्बई
२५ ,, लूणकरणजी सोभाचंदजी गांधी, हिंगणघाट
२५ ,, छोगमलजी सुगनचंदजी, कुरी
२५ ,, चम्पारामजी मनसुखलालजी पोरवाल, शुजालपुर
२५ ,, गुलाबचंदजी शिबलालजी श्री श्रीमाल धूलीया
२५ ,, मोतीलालजी चोपड़ा, बम्बई
२५ ,, धीराजी नवलमलजी, अमरावती
२५ ,, मगनमलजी गुलाबचंदजी, ,,
२५ ,, रतनचंदजी फतेलालजी मुणोत ,,
२१ ,, छोगमलजी जीवराजजी, हिंगणघाट
२१ ,, जसराजजी खेमराजजी सिंगी ,,
२१ ,, अमरचंदजी समदड़िय, बरोरा
१६ ,, मोतीचंदजी कस्तूरचंदजी, बंब नेवरी
१५ ,, ताराचंदजी लोढ़ा, चांदोड
१५ ,, राजमलजी सुगनचंदजी ओसवाल, हिंगणघाट
१५ ,, माणकचंदजी गोलोछा ,,
१३ ,, आलमचंदजी शोभाचंदजी ,,
१२ ,, हर्षचंदजी हेमचंदजी आगेवाणी
११ ,, हीराचंदजी चांदमलजी चंगेडिया, बरोरा
११ ,, कालूरामजी गनेशमलजी गोठी, जेना
११ ,, नथमलजी चांदमलजी पांढरा, कवड़ा
११ ,, धूलचंदजी हीरालालजी मोदी, जेना
११ ,, कओडीमलजी बीजराजजी दूगड, चिचाला
११ ,, हजारीमलजी कन्हैयालालजी कोटेचा, नांदेपेरा
११ ,, भोमसिंहजी ओकारलालजी बोरा, वरोरा

११ „ आसकरणजी छाजेड, चांदोड बाजार
११ „ स्वरूपचंदजी सूरजमलजी पगारिया, बदनूर
११ „ रावतमलजी चंपालालजी वेद, नागपूर
११ „ मंगलचंदजी रांका, चांदोड
११ „ सूरजमलजी भेरूंदानजी बेथानी, नागपूर
११ „ बुधमलजी जेठमलजी कुकडा, पुलगांव
११ „ कस्तूरचंदजी रेवतमलजी सिंघी, हिंगणघाट
११ „ धोकलचंदजी धनराजजी, अमरावती
११ „ धनराजजी विसनराजजी „
११ „ धनराजजी मोतीलालजी, बरोरा
११ „ जुहारमलजी गनेशमलजी संकलेचा, बडनेर
११ „ जवहारमलजी कुंदनदनमलजी छोकड,
१० „ अमरचंदजी हीरालालजी खेत पलिया, कुर्रा
१० „ कुंदनमलजी चंदनमलजी, बाबल गांव
१० „ वनमाली जेठा, मुर्तिजापुर०
१० „ कालूरामजी मुलतानमलजी, अमरावती
९ „ गुजराती संघ आगे वानी जलग
९ „ उत्तमचंदजी बक्तावरमलजी
९ „ भीकमचंदजी छीतरमलजी
७ „ जयचन्दजी
७ „ विभूतमलजी
७ „ बक्तावरमलजी
७ „ भेरूंदासजी
७ „ मुलतानमलजी
७ „ सूरजमलजी

७ ,, लादुलाल जी रतनलाल जी चंडालिया बरोरा
७ ,, चांदमल जी मूलचन्द जी चंगेडिया ,,
७ ,, आलमचन्द जी गुलाबचन्द जी सूथा मुथा मांडा
७ ,, पीरचन्द जी अमरचन्द जी बोथरा वोरी
६ ,, उमरचन्द जी हीरालाल जी कुन्हा
६ ,, पुरनचन्द जी रुपचन्द जी .... अमरावती
६ ,, उत्तमचन्द जी कस्तूरचन्द जी.... अेरड।
५ ,, जगन्नाथ जी चन्नीलाल जी बोरा....बरोर
५ ,, हमारिमल जी मिश्रीमल जी ... ,,
५ ,, छोगमल जी दीपचद जी चोपड़ा ,,
५ ,, चंनणमल जी मिश्रिमल जी मोदी ,,
५ ,, रतनचन्दजी कोचर वरोरा
५ ,, छीतरमल जी गुलाबचन्द जी बोरा ,,
५ ,, देवकरन जी नारायण जी मुथा....,,
५ ,, बक्तावरमल जी हेमराज जी संचेती.... धानोली
५ ,, बक्तावरमलजी चुन्नीलाल जी बोरडिया बरोरा
५ ,, हेमराज जी बदरीलाल जी दुगड ,,
५ ,, घेवरचन्द जी मेघराज जी मोदी ,, ...सागर
५ ,, सागरमल जी राजमल जी बोरा चन्दणखेडा
५ ,, गणेशमल जी जयवन्तराज जी गोठी घोडपेठ
५ ,, गुलाबचन्द जी इन्द्रचन्द जी मोदी पीरली
५ ,, रतनचन्द जी बैद ....मुंगोली
५ ,, राजमल जी चौथमल जी सिंघी .... धीवाल
५ ,, मूलचद जी मोतीलाल जी कोटेचा वोदवड

५ ,, बुलाखीदास जी माणकचन्द जी गोलछा हिंगणघाट
५ ,, छगनमल जी जवेरीमल जी ललवानी खैरी
५ ,, राजमल जी मोतीलाल जी चपलोद नेवरी
५ ,, लच्छामल जी पन्नालाल जी बम्ब ,,
५ ,, फूलचन्द जी मानकचन्द जी अमरावती
५ ,, निहालचन्द जी बच्छराज जी .... ,,
५ ,, दीपचन्द जी .... मलकापुर
५ ,, बालचन्द जी घासीराम जी .... अमरावती
५ हस्तिमल जी वस्तीमळ जी .... हिंगणघाट
५ ,, चुन्नीलाल जी सावतमल जी .... धामणगांव
५ ,, हजारीमल जी रुपचन्द जी देवडा बडनेर
४ , लचन्द जी गुलाबचन्द जी संचेती बरोरा
४ ,, देवकरन जी मांगीलाल जी कोठारी- बोरी
४ ,, चन्दनमल जी शिवदानमल जी सिंघी मांडोरी
४ ,, छगनमल जी सांवलसुखा जी .... अमरावती
४ ,, सोभाग्यचन्द जी गांधी .... हिंगणघाट
४ ,, मोतीलाल जी चांदमल जी .... भुसावल
४ ,, घेवरचंद जी नेमीचंद जी .... तरालौं
४ ,, बाजार चांदूर ....
४ ,, श्रीयुत मूलचन्द जी केशरीचन्द जी परतवाड़ा
३ ,, बादरमल जी बोरा पांचगांव
३ ,, मुन्नालाल जी भेरूलाल जी चोरडया मेवरी
३ ,, मगनमल जी छगनमल जी हिंगणघाट
३ ,, गंगाराम जी नेमीचंद जी सुराना बलगाव

२॥ श्री तिलोकचन्द जी पुषराज जी अमरावती
२॥ श्री भारमल जी लालाजी अमरावती
२॥ श्री रूघराज जी खामगांव
२॥ श्री घेवरचन्द जी गांधी बरोरा
२ श्री चन्दनमल जी केशरीमल जी मोदी बरोरा
२ श्री अखेचन्द जी हजारीमल जी दुगड बरोरा
२ श्री चुन्नीलाल जी शोभाचन्द जी चंडालिया साकरवाड़
२ श्री दीपचन्द जी मोदी मजरा
२ श्री रिखवदास जी आसकरन जी बोरा कोढ़ा
२ श्री हंसराजजी मोतीलाल जी मोहथा बरोरा
२ श्री बोदुलाल जी कोटेचा बरोरा
२ श्री बनालाल जी गोरुलाल जी कोटेचा नांदेपेरा
२ श्री फतेलाल जी चौधरी डोंगरगांव
२ श्री नथमल जी वैद अमरावती
२ श्री घासीलाल जी कुस्थलचन्द जी खजानची कामठी
२ श्री घेवरचन्दजी केशरीमल जी बोथरा नरसाडा
२ श्री हीरालाल जी हर्षचन्द जी वम्ब नेवरी
२ श्री छोगमल जी मोतीलाल जी रातडिया वाघली
२ श्री जसराज जी किसनलाल जी अमरावती
२ श्री केशरीमल जी धनराज जी अमरावती
२ श्री मानमल जी किसनदास जी हिंगणघाट
२ श्री जीवराज जी मुलतानमल जी तराला
२ श्री जेठमल जी केशरीमल जी ऊणी
२ श्री हंसराज जी फुलचन्द जी भुसावल
२ श्री चुन्नीलाळ जी छाजेड कुन्हा

१ श्रीयुत छोटमलजी बांठिया नागपुर
१ ,, गुप्तज्ञान पट्टी बडनेरा
१ ,, मंगलजी दुल्लनजी गुजराती अमरावती
१ ,, नथमलजी मुथा की सुपत्नी अमरावती
१ ,, चांदमलजी कुन्दनमलजी मूथा करोस
१ ,, चन्दणमलजी अम्बादासजी मोदी ,,
१ ,, मंगलचन्दजी पन्नालालजी छाजेड़ चांदोड
१ ,, पूनमचन्दजी तातेड ,,
१ ,, राजमलजी मुथा ,,
१ ,, रूपचन्दजी छाजेड ,,
१ ,, उदेचन्दजी सिंघी ,,
१ ,, बुधमलजी रांका ,,
१ ,, इन्दुरचन्दजी सुगनचन्दजी आंडोरी
१ ,, हेमचन्दजी गुजराती अमरावती
१ ,, लूणकरणजी गांधी अकोला
१ ,, गुलाबचन्दजी मुणोत बडनेरा
१ ,, जुहारमलजी लालचंदजी ,,
१ ,, हर्षचन्दजी चरोरा
१ ,, हेमराजजी ,,
१ ,, घेवरचन्दजी मिश्रीमलजी अमरावती
१ ,, रामदासजी हीराचंदजी ,,
१ ,, जसराजजी लालचंदजी ,,
१ ,, रतनचंदजी किशनचंदजी धामणगांव
१ ,, गणेशमलजी कासवा हिंगणघाट
१ ,, खुशालचंदजी कहानजी अमरावती
१ ,, पन्नालालजी नांदगांव

१	,,	छोगमलजी दीपचन्दजी	बरोरा
१	,,	छगनी बाई	,,
१	,,	चुन्नीलालजी श्रावगी	अमरावती
१	,,	चंदनमलजी मूथा	बरोरा
॥	,,	प्रतापमलजी मिश्रीलालजी	अमरावती
॥	,,	दुलीचन्दजी	,,

यह सब ३०९०) रुपये होते हैं, इसमें ५६ रुपये का फर्क आता है, भेजने वाले का नाम तथा द्रव्य का पता न लगने से नहीं लिखा गया है।

पाठक गणों! उक्त टीपका अवलोकन करने से आप जान सकोगे कि वक्त पर दी हुई रुपये आठ आना जैसी रकम भी किस प्रकार महालाभ के देने वाली बन जाती है इसलिये ही यह टीप यहां विस्तार से दी गई है कि जिसे आप पठनकर इसका अनुकरण करें और ज्ञान वृद्धीके अत्युत्तम कार्य में यथा शक्ति द्रव्य व्यय कर महालाभ के भागी बन सृष्टी में अपने नाम को चिरस्थाई कर दीजिये मुज्ञेषु, किमधिकं।

पद्मसिंह जैन
जोहरी बाजार आगरा

श्री जैन तत्त्व प्रकाश तृतीयावृत्ति की विषयानुक्रमणिका।

प्रकरण पहिला "अरिहन्त के गुण"

प्रकरण दूसरा "सिद्ध के गुण"

प्रकरण तीसरा—आचार्य के गुणः

प्रकरण चौथा उपाध्याय के गुण।

प्रकरण पांचवां साधु के गुण ।

पूर्वार्ध प्रमथ खण्डम् समाप्तम्

द्वितिय—खण्डम्

प्रकरण पहिला—'धर्म प्राप्ति'

प्रकरण चौथा—'सम्यक्त्व।

प्रकरण पांचवां--श्रावकाचार

प्रकरण छटवां अन्तिम शुद्धि ।

इति जैनतत्व प्रकाश ग्रन्थ की तृतियावृत्ति की अनुक्रमाणिका समाप्त

श्री जैन तत्व प्रकाश तृतियावृत्ति का

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	तत्व	तत्व
२	६	लव	लव
,,	१२	२ प्रवचन, ४ शास्त्र	२ प्रवचन (शास्त्र) ४ गुरु
४	[नोट] ८	भद्री ४८	भद्री ४८सर्वभद्री
७	१५	जाते हैं	जाताहै.
८	२०	३५ केवल	१५ केवल
१०	७	बोलगे	बोलने
,,	१०	निरिच्छत	निरिच्छित
१९	१५	एक पूर्व	एक लक्ष पूर्व
२०	९	,,	,,
२२	१८	फिर ६ वर्ष	फिर ६ लक्ष वर्ष
२३	१७	वतमान	वर्तमान

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
२४	१७	४०१०००	४१४०००

जम्बू द्वीप भर्तक्षेत्र के भाविस्य के २४ तीर्थंकरों

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
२९	२६	२४	२४ "एकधज जी१४"
३८	१०	श्रीबाहुजी	श्री बाहु स्वामी जी
३९	२	बप्रा	वप्रा विजय
,,	१३	सुप्रभु	सूरप्रभू
,,	२१	बिजयधर	वज्रधर
४१	२३	( )	२१००००००००
४३	१४	तित्थरा	तित्थयरा
४४	२०	अलौरा	अलोए
४५	३	ही प्रश्न उद्भव में स्वाभाविक	में स्वाभाविक ही प्रश्न उद्भव
४५ (नोट)१		वर्जन	वजन
४६	१०	७ योजन चौडा	७ योजन चौडा, मध्य में ५ योजन चौडा, ऊपर दोनों दीवे का सन्धी स्थान ७योजन-चौड़ा
,,	११	चौडा ऊपर	चौडा ऊपरदोनों कौनेके
४६	नोट १०	के वालाग्र	के वालाग्र ८ हेम वय एरण वय क्षेत्र के मनुष्यों के वालाग्र
४८	१०	योजन बीच	योजन
५०	११	४८००००००	८४०००००
५१	(नोट)१	सिरो	सिरो

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
,,	नो०	कुभी	कुंभी
५४	१५	फैलाने	ढोलने
५६	२०	रहते हैं	०
५७	१२	पागभी	पगभी
५९	१	सागरोपम	कछ अधिक सागरोपम
,,	३	कुछ अधिक	०
,,	७	सूर्य	सुवर्ण
६४	२	मनुष्य	मनुष्य लोक
,,	९	अब	०
,,	२४	३५००	६२,५००
६६	९	और	०
,,	११	वैश्रम	वैश्रमण
६७	१७	कहते हैं	कहते हैं और सुखहानी रुप छः आरों को अवसर्पेनी काल कहते हैं.
६८	७	अनियणा	अनियगणा
६९	१३	६३,६६,६६६६ ६६,६६.६६,६६ ६६,६६,६६.	६६६६६६६६६ ६६,६६६,६६
,,	१४	छांछट क्रोड,	छांछट क्रोड छांछटलाख
७०	१६	कुल	कौम
७१	११	रीपन	रोपन
७२	६	में	०
,,	१६	वायु से	वायु वृष्टि आदि से

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
७५	(नोट) ९	दक्ष	दश
७७	५	२ माधव	माधव
८०	७	१ सुशील	१० सुशील
,,	इस पृष्ट में अंक बहुत स्थान छूट गये हैं		
८७	१३	मरु	मेरु
,,	१५	छै	दो
८९	५	वृक्ष है	वृक्ष है ॐ
,,	८	१००००० ॐ	१०००००
,,	(नोट) १०	१६८४२	१६८४२ $\frac{2}{12}$
,,	,, ११	,,	,,
९०	४	८३७१ $\frac{1}{12}$	१६५९२ $\frac{2}{12}$
९२	२४	राजधानी	राजधानी गंभीर मालनी नदी
,,	(नोट) १	विजय	विजय और २५वीं वप्ता विजय
,, ९४	४	बढते २९५	बढते बढते ९५०००
,,	१०	तक	में
,,	१३	चारसो योजन	चारसो योजन दूर चारसो योजन
,,	१५	आगे	आगे पांचसो योजन
,,	१६	तरफ	तरफ छै सो योजनपर
,,	१८	और	और सात सो योजन
,,	१९	आगे	आगे आठ सो योजन
,,	२१	उनसे	उनसे नवसो योजन.
,,	२३	दाढों के	दाढों
९५	३	आरे की	आरे के प्रथम के विभाग
,,	१०	अधिक	अधिक योजन

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
९५	१४	कलसे के	कलसे की
९७	१०	यह	इसके
,,	११	चोडा है	चौडा
९९	२	भूमि	भूमि से
१०१	(नोट)७	बाहिर	बाहिर ७२
१०२	,, १८	पुनर्वस्तु	पुनर्वसु
,,	,, ,,	मघा	मघा
१०५	२०	आणन	आणत
१०८	१	पहिले	पाहिले दूसरे
१०९	२	दुर्गन्धनीय	दुगच्छनीय
११०	१९	अंगलाइ	अंगनाई वाले
,,	२०	वाले	०
,,	२२	सवार्थ	सर्वार्थ
११२	१४	३३३३	३३०००
,,	,,	कमल	कवल
,,	(नोट)	तिरलोक	तिरछालोक
११३	९	(सिद्धी	सिद्धो
,,	१०	लोयगो	लोयग्गे
,,	१२	सुद्वा	सुहा
,,	(नोट)२	'उक्त सिद्ध होने का' इत्यादि नोट ११४ वें पृष्ट की है	
११४	२२	लिंग शब्द के स्थान लिंगी पढना.	
११५	५	जाये	निकले
,,	८	और	जोतिषी और
११७	८	नियहांति	नियट्ठंति

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
११७	,,	तथण	सत्थण
,,	१४	विद्दे	निद्दे
११८	८	अव्य	अव्यय
१२०	(नोट)१	इस	कथन इस
१२२	,, ,,	रासणा	एसणा
१२३	३	रागओवा	एगओवा
,,	१६	नाणाइ	जाणाइ
,,	१७	कोहं	लोहं
१२४	९	साचित्तमंतवा	साचित्त मंतवां
,,	२२	विपरीत	०
१२५	१	सवं	सव्वं
१२५	६	रणातमत्त	णो गत्त
,,	(नोट)२	सगां	सग्गी
,,	,, ,,	कमालं	कम्मलं
,,	,, ८	तिब	तिय
१२७	(नोट)२	शुक्ल	शुक्लपक्ष
,,	,, ७	अट्ठी	अट्ठी—हड्डी
,,	,, ११	सग्रास	लग्रास
१२८	७	ज्ञान	ज्ञाता
१२९	१२	दिट्ठीयं	दिट्ठीयं
१३१	७	गृहस्थ	०
१३३	(नोट)८	गई	गड
,,	,, १०	सीठी	मट्टी
,,	,, २०	निमंत्र	निमंते

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
१३३ (नोट)	२९	१७	१६
१३४ ,,	६	न्हारकते	न्हाखते
,, ,,	९	के	संयोग
,, ,,	१३	संमय	संयम
१३५ ,,	९	६	०
,, ,,	१२	गगाइकत	मगाइकंत
,, ,,	२६	कगंछ	दुगंछ
१३६	५	आठों	अहो
,,	,,	(८पहर)	(८ पहर)
,,	१०	डर है	डर है, असंख्यात समूर्छिम जीव की घात वगैरा दोष लगे
१३८	५	कार्य	काया
१४१	१७	तजारा	तज्जाए
,,	१८	अज्जारा	अज्जाए
१४४	११	काने को कान	शब्द से कान को
,,	१३	काया	माया
१४५ नो०	२८	१४	४
१४६	३	कांटे	कोट
,, नो०	३	कोलाऊ	बोलावु
१४८	९	गवच	प्रवचन
१४८	२०	ज्ञान	जीन
१४९	१४	ज्ञा	ज्ञाता
,,	१६	रस्पर	परस्पर
,,	२०	संसारी	संसोगी

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
१५०	४	३	३ परिहार=संयम संयम+विशुद्ध निर्मल=परिहार विशुद्ध
१५३	१०	गये	गछे तैसे
,,	२१	असरणुपेहा	असरणाणु पेहा
,,	२२	अकेला	अकेला
१५४	१०	अभिग्रिक	अभोगिरे
१५५	१०	वस्त्र	वाद्य
१५६	७	आर	और पीछे के
१५७ नो०	१५	उरसु	उत्सून
१५८ ,,	१०	अतिरिक्त	अती रक्त
,, ,,	२३	त्र कषाय	तीव्र कषाय
१६०	१	भार	मार
,,	२४	युक्त	उक्त
१६२	२३	स्पष्ट	स्पष्ट वचनी
१६४	४	उत्थी	इत्थी
,,	८	,,	,,
१६५	१	च	दहु
१६७	१२	चितिगिच्छा	वितिगिच्छा
,,	१३	चिकित्सा	विचिकित्सा
,,	१४	उमायं वायाउाणि	उमायं वा पाउाणि
१६८	१५	भाण	माणे
,,	२०	निरादिक	दिरविक
१७०	२१	कुव्वइ	कुव्वइ
,,	२२	काल	फांस

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
१७१	२०	छोड	साथळे
,,	२५	कमची	कुमजी
१७३	५	योग	जोग
१७४	२२	(यक्षस्वी)	(वचस्वी) १४ यशवन्त हो सो जसंसी (यशस्वी)
१७५	१५	विषयहार	विष पहार
१७७	१८	भणभणाटादि	मणमणाटादि
१७८	,,	ज्ञन	ज्ञान
१८२	१८	शास्त्र	शस्त्र
१८३	२	आचंति	आवंति
,,	१७	विधि में	विधि, तृतीय अध्ययन में
१८४	१६	अथतथ्य	यथातथ्य
१८४	१२	चलवीर्य	बालवीर्य
,,	२५	आद्र	आर्द्र
१८५	१	पेठाल	पेढाल
१८८	६	दहा	वहां
,,	१२	प्रजाने से	प्रज्वालने से
१८९	२४	उदायत	उदायन
१९०	१६	मरने	मरते २
,,	२५	स्वामी १०	स्वामी के १०
१९१	४	उरछा	उदधी
१९३	२०	वर्ग के	वर्ग के ६
१९७	१४	दूसरे विपाक	दूसरे सुख विपाक
२००	१६	अभिए	[illegible]

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
२००	१७	नग	नगरी
२०१ (नोट)	२६	सब	सूर्ये

२०२ के पृष्ठ से २०८ के पृष्ठ तक भूल से १०२ से १०८ छपे हैं ।

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
२०५	१६	निम्रजला	निमग्न जला
२१०	१५	१	१८
२११	७	पढान	परिठाना (न्हाकना)
२१२	२१	विनय गीत	विनीत
२१३	१	शलक	एलक
,,	२	न ो	नमी
२१५	५	इस वक्त	इस वक्त इन सिवाय
,, नोट	१३	धूलिका	चूलिका
,, ,,	२७	विन्दे	देविन्दो
२१६ ,,	१	हिं द्दी विष	दि ट्ठी विष
,, ,,	३	२२ कन्या कल्प	कल्पा कल्प
,, ,,	,,	चल कल्प	चूल कल्प
,, ,,	,,	सहपत्रयगा	महापन्नवणा
,, ,,	४	पम्माय पस्यम्	पस्माय परमायं
,, ,,	६	इस इस	इस
,, ,,	१०	था मैं	॥१॥
,, ,,	,,	आयं तीसु कुमाल	आवंतीसुकुमाल
,, ,,	११	वृद्ध दादा जी	वृद्ध वादी जी
,, ,,	१५	यह	वह
,, ,,	,,	से करे	से पूर्ण करे
,, ,,	१६	परूयन	परूपना

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
,, ,,	१७	फिर मन्दे	फिर मन्दिर
२१९	८	रानी	रानी
२२१	१४	इन्द्र	इन्द्र वंदन कर
२२२ (नोट)	५	पेदु वे	पेडू में
,, ,,	१८	६रोहिनी	६ रोहिनी
,, ,,	२४	वा कहते	वायु कहते
२२३	१	माता दुग्धनतर	माता का दूध नन्तर
,, (नोट)	१३	बल	वाल
,, ,,	,,	नह	यह
२२४	२	ऋषिन-	ऋषि ने
,,	६	बिहुड	पिहुड
,, (नोट)	८	अन्नश्वासो	अन्न के १ श्वासो
,, ,,	११	शासा	शाखा
,, ,,	१५	बीच	ऊपर
,, ,,	१६	अठा	१ आढ़ा
,, २२	२	आठक	१ आढक
२२५	१५	से	से
,,	२२	चक्र	वक्र
२२८	७	वर्जित	गर्जित
२२८	२४	तृण	रोडी (ऊकरडा)
२२९	२	आयो	आवो
२३०	३	चल	चलीगई
२३१	१६	श्रमण	श्रमण
,, (नोट)	३	१धृत	१धृति (धैर्य)

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
२३२	७	यद्दी	यादि
२३६	८	येनि	नेमी
२३८	पृष्ट के नोटकी १०वीं सतर से आगे की सतरें सब २३९ पृष्ट की २ सतर की नोट है,		
२३८ (नोट)	१५	गाणा	णाणा
२३९	७	दुर्गंधनीय	दुर्गंधनीब
२४०	४	इनको	इन तीन
२४१ (नोट)	३	ऽदं	ऽहं
२४२	७	के	सत्यके
,, (नोट)	७	पता	पना
२४४	१	रहे	देवे
२४५	१२	तक	तक्र (छाछ)
,,	१४	होता है,	होता है, तैसे ही शरीर को विना तापये आत्मा भी शुद्ध नहीं होता है
२५२	१	जैसे	तैसेही
,,	२१	दाने	दाने आदि स्थावर और
२५३	१८	विलणता	विचक्षणता
२५४	२०	परिच्य	परिचय
२५५	१०	पाखण्ड	पाखण्डी
२५६	१२	अपवादी	अपवादादि
२५७	२	दैत्व	दैन्य
,,	२३	ज्ञाती	ज्ञानी
२५८	३	शोभित	शोभित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५९	१	२४	२४ प्रकार के
,,	४	संयंभूरमण	संयंभूरमण समुद्र
,,	१८	अन्तान्ताक्रिया	अन्तक्रिया
२६१	२	कारा	काए
,,	११	श्रमण	श्रमण
,,	२१	सम्य	सम्यक्
२६५ (नोट)	२	अर्हंपि	अर्हंपि तीसे
२६६	२	हुयेहोने	ये होने
२६७	१३	साचित्र	सचित्त
२६९	१२	यम	संयम
२७३	१७	समानुसार	समयानुसार

२७३ से २८० के पृष्ठांक २७९ से २८६ भूल से छपे हैं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८०	१३	उपकर	उपकरन
,, (नोट)	१	१६॥	उत्कृष्ट १५॥ हजार
२८१	२०	दो	०
,,	२१	उच्चार	उच्चार
२८३	५	वोर में	बांट में
,,	११	अपछंप्त	स्वच्छन्दा
,,	१८	इवी	रवी
,, (नोट)	४	यही	यद्दो
२८५	२२	स्थान	संयमस्थान
२८६	२०	कर्म	कर्दम
२८२	७	दुष्ट	दृष्ट
,,	,,	सेडोपकर	संडोपकरण

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
२८३ (नोट)	८	प्रत्येक वृद्धादि	प्रत्येक बुद्धादि
२८४	२१	माला (दाने) के	माला के दाने
,,	२३	मन के	(मन के)
,,	२३	मन	मन के
२८७	५	विक्षेप	निक्षेप
,,	१३	मक्ष	समक्ष
२८८	१४	वातें	नाते
,,	१७	सत्थ	जत्थे
,,	२०	प्रभोग	उपभोग
२८९	४	कुसा	पहुसा
,,	,,	मंजा	मजा
२९०	३	अडुवा	अदुवा
,, (नोट)	९	खल	खलु
,, ,,	१९	अनंत	अन्त
२९३	१७	१७	१९
२९४ (नोट)	१३	वर्ण	२ वर्ण
२९५ ,,	९	१४००००	१४०००
,, ,,	,,	,,	,,
,, ,,	१७	१८७५	१९७५
२९६	१५	आयुष्य है.	आयुष्य है, यहां से अ पुण्य की वृद्धी हुई त काया जिव्हा और न शिका का धारक चिं मत्कुण कुंथवा प्रमुख तेन्द्रिय बना

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
२६६	२०	सज्ञी	असज्ञी
२९९	८	में है	है
३००	२	मगध देश जगराजग्ही	मगध देश राजगृही
,,	१३	दशा	दशारण
३०४	१८	आयु वाले का	आयु का
३०५ (नोट)	५	वय मे	वयमेव
,, ,,	७	स्तुष्णा	स्तृष्णा
३०७	४	इन्द्रिया नें	इदियन
,, (हैडिंग)	२१	आरोग्य व काया	आरोग्य काया व
,,	२४	नवी हुई	नवहुइ
३०८	१६	ही है	की है
३१०	१९	कार्य	कार्य
३११	७	जीवों	षटकाय जीवों
३१२	२	कुतर्कों	कुतर्कों
,,	५	होंने	होने से
,, (नोट)	६	जेन रमक्षती	जे नरा मांस भक्षाति
३१४	११	हेनरा	अहेनाय
,,	१६	जणशुई	जणयइ
३१९	२३	एकान्त	एकन्तरा
३२०	३	काल किच्चा	कालं मासे कालं किच्चा
३२१ (नोट)	११	वाजा	वाला
,, ,,	१६	चिना	वांचन
३२२ ,,	१७	सद्भाभी	सद्भाव
३२३	१४	जान	ज्ञान

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
३२३	१८	करोलि	करोति
३२३	२०	मेघस्थ	मेघस्य
३२४	१२	सांड़नी	सांडोनी
,,	२४	भागा	भाग्य
३२८ (नोट)	३	रक्ष	रक्षक
३३२	१	पृथ्वी	०
३३४	२	अठाई	अढाई
,,	६	आवा	आइ-
३३५	५	पद्मया	पश्नया
३३६	६	वनकंद	ब्रजकन्द
३३७	५	(कथली)	कोथली
३३८	८	मधुर	मयुर
,,	११	पांख वाले	पांखों वाले सामंत पक्षी
,,	,,	पांखों वाले	पांखों वाले वितित पक्षी
,, (नोट)	४	महोरोर	महोरग
३३९	१९	८—८	७—७
,,	२२	सुरासुवा	सुए सुवा
,,	,,	पुरा सुवा	पुएसुवा
३४०	४	होते हैं	होते हैं वे अपर्याप्ताही मर जाते हैं. इससे
३४१	२३	व्यापक	लोक व्यापक
३४४	५	जेण	लेण
३४८	२३	वरवर	वखर
३४९	३	चकू का हाथ	चक्कू के हाथा

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
३४९	१७	काया	कायां
३५०	११	वक्रता	वक्रत (९)
,,	२०	सइ के	इस के
३५१	२	बनावते हैं	बना बताते हैं.
३५३	८	से	से अजीव
,,	१३	यदि	यदि हिंसा
,,	२३	अनिषडम	अनापडगी
३५४	१०	सो	सो निरन्त्र
,,	११	तदुभय	तदुमय
,,	१३	बागरी	बीमारी
,,	२४	अनुभाव	अनुभाग
३५५	१४	४ कषाय	४ अकषाय
,,	२०	अचत्त	अचेल
३५६	१	४५ एकत्व	४४ एकत्व ४५ अन्यत्व
३५७	६	घातिक	स्वभाव वर्त्ते
३५८	२३	रूप	रूप गन्ध
३५९	४	जो कषय	नो कषय

३५९ इस पृष्ट में बहुत स्थान मामारा का यारा हो गया है.

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
३६०	१९	×	५
,,(नोट)	१	अघोपाङ्ग	अङ्गोपाङ्ग
,, ,,	२	अङ्कोपाङ्ग	,,
३६२	६	७	६
३३६	४९	प्रदेशबन्ध	अनुभागबन्ध
३६६	५	समयग	सम्यग्

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
३६६	१३	संवर	बन्ध
३६७	८	नहीं	नहींसंवर
,,	१५	समुरुढ़	समभीरुढ
,,	२३	रहीहै	रहेहुये
३६८	२४	समान	समाप्त
३६९	३	अड्ग	अङ्ग
,, (नोट)	४	लच्छे	लद्दे
,, ,,	५	ऊचाइ	झ चाई
३७१	९	धर्मास्ति	धर्मास्तिआदि
३७३	१	सब	तब
३७६	५	रूठ	रूढ
३७६	१३	आश्रय	आश्रव
,,	१८	समम्प	सकम्प
,, (नोट)	२	अभाव	आत्मभाव
,, ,,	४	दोतीन	तोतीन
३७७	१	फक्त	०
,,(नोट)	३	रई	रवई
३८०	११	लेन	तेल
,,	२२	भाविय	भव्य शरीर
३८१	२	पा त्थे	पासत्थे
,,	७	महावलम्बी	मठावलम्बी
३८२ (नोट)	२	उपभाव	उपशम भाव
३९२	१२	अवयवराणं	अवयवयाणं
३९४	४	होती	अनहोती

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
३९४	१०	वापात्मा	यथात्मा
३९५	१६	रह्यो इव	भरह्योइव
३९६	१२	प्रत्याख्यानी	अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी संज्वलन
,,	२२	पुन	गुन
३९६	२१	भो न	भोजन
४००	१५	पालन	शुद्धपालन
,,	१९	जघय	जघन्य
४०१	१०	क्षायिक्त्वी	क्षायिक सम्यक्त्वी
४०७	१६	प्रवृत	प्रवृतक
४२३ (नोट)	७	मूडा बुयत	मुंडाबुं पत
४२४	१५	प्राणिनो	प्राणिनो
३३१	११	मनः	मानः
४३४	८	गुरु पडवा	गुडी पडवा
४३५	६	मवत हैं	मचाते हैं
४३९ (नोट)		कत	कर्ता
४४७	३	जो-	०
४४९	१	ववक्ष	वृक्ष
४५०	१	शास्त्रों	शास्त्रों
४५३ (नोट)	४	विश्वाश्रिय	विश्वासनीय
,,	,, ११	वाहर	शेहर
,,	,, २४	कंर	का
,,	,, २७	सीता	गंगा
,,	,, २८	न तो	नदी तो

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
३६६	१३	संवर	बन्ध
३६७	८	नहीं	नहींसंवर
,,	१५	समुरुढ़	समभीरुढ
,,	२३	रहींहै	रहेहुये
३६८	२४	समान	समाप्त
३६९	२	अड्ग	अङ्ग
,, (नोट)	४	लच्छे	लद्धे
,, ,,	५	ऊचाइ	झ चाई
३७१	९	धर्मास्ति	धर्मास्तिआदि
३७३	१	सब	तब
३७६	५	रूठ	रूढ
३७६	१३	आश्रय	आश्रव
,,	१८	समम्प	सकम्प
,, (नोट)	२	अभाव	आत्मभाव
,, ,,	४	दोतनि	तोतीन
३७७	१	फक्त	०
,, (नोट)	३	रई	रवई
३८०	११	लेप	तेल
,,	२२	भविय	भव्य शरीर
३८१	२	पा तथे	पासत्थे
,,	७	महावलम्बी	मठवलम्बी
३८२ (नोट)	२	उपभाव	उपशम भाव
३९२	१२	अवयवराणं	अवयवयाणं
३९४	४	होती	अनहोती

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
३९४.	१०	वापात्मा	यथात्मा
३९५	१६	रहो इव	भरहोइव
३९६	१२	प्रत्याख्यानी	अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी संज्वलन
,,	२२	पुन	गुन
३९६	२१	भो न	भोजन
४००	१५	पालन	शुद्धपालन
,,	१९	जघय	जघन्य
४०१	१०	क्षायिकत्वी	क्षायिक सम्यक्त्वी
४०७	१६	प्रवृत	प्रवृतक
४२३ (नोट)	७	मूडा बुयत	मुंडाबुं पत
४२४	१५	प्राणिनो	प्राणिनो
३३१।	११	मन:	मान:
४३४	८	गुरु पडवा	गुडी पडवा
४३५	६	मवल हैं	मचाते हैं
४३९ (नोट)		कत	कर्ता
४४७	३	जो-	०
४४९	१	ववक्ष	वृक्ष
४५०	१	शास्त्रों	शास्त्रों
४५३ (नोट)	४	विश्वाश्रिय	विश्वासनीय
,,	,, ११	बाहर	शेहर
,,	,, २४	कंर	का
,,	,, २७	सीता	गंगा
,,	,, २८	न तो	नदी तो

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
४५३	,, ,,	उतनी दी	उतनी ही
४५४	१३	डो ।	डोरा
४५६	३	प्रति ।	प्रतिमा
४५७	१०	परितो	परिता
,,	११	खेयन्तोंह	खेयन्नेहिं
४५८	६	सत्य	सत्व
४६०	२	लक्षण	•
४६३	६	३३	३४
४६५	८	आश्रय	आश्रव
४६६	१६	विन ज्ञान	विन सम्यक्त्व
,,	,,	सम्यक्त्व की	ज्ञान की
४६७	१	उवएसएसेणं	उवएसणं
४६९	१४	क्षम	क्षय
,,	१५	ढकी समान	ढकी आग्नि समान
४७१	१३	२	५
४७२	२	ोता	होता
,,	८	। ते	तैसे
४७४	७	पाप को कम्पाते	पाप से कम्पाते
४७६	७	विलम्ब	तथा नीम
४७७	७	हैं	हैं वे
,,	८	करने	करनेसे
४७८	११	मिथ्यात्वीयों	मिथ्या त्वीयों के
,,	१६	में	में से
४८१	२४	पर	प त्र

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
४८४	६	आचारित्र	अचारित
,,	८	कदार्पि	कन्दर्पि
,,(नोट)	७	उ त है	उचित है
४८५(नोट)	४	नेसे	लेनेसे
४८९	११	संताव	संसत्त्व
४९४(नोट)	३	रात्रीको	०
४९५	२	इसी	इसीप्रकार
५०१	१२	कर	०
५०१ ,,(नोट)	४	ताडे	तोडे
५०३	४	घडालें	डाले
५०६	६	सचित्त	सचित्तपानी
,,(नोट)	५	नेपाडी	गपोडी
५०९	१९	सम्यक्त्वीका	सम्यक्त्वका
५१०	२१	पा ना	पाता
५११	२१	आदिभोजन	आदिभाजनन
५१२	२४	पृथवी अग्नि	पृथवी पानीअग्नि
५१४	३	चूहे	बिल्ली
,,	२५	कि	०
५१५(नोट)	१	थुंके	फूंके
५१६	५	भस्म	भाव
५१९	८	मिया	मिथ्या
५२१	१३	दृष्टी	दृढ
,,	२४	सिनगार,नासमझ	सिनगारना,
५२४	१३	माता	मोती
५२५	१	शब्द	शब्दकाअर्थ

शुद्धाशुद्धी पत्र ।

पृष्ठ	सतर	अशुद्ध	
५२६(नोट)	१३	मैंबसों	
५३३	२३	तीनकरन	
५३४	८	घेडे	
५३५ (नोट)	२	दिपा	
५३८	१५	उछलने	
५४०	९	फूली	
५४१(नोट)	२०	किसीके	
५४३	३	लिय	
५५३	८	ताडव	
५५४	१०	मुक्त	
५५५(नोट)	५	दप्र	
५५८	१६	जब	
५५९	२३	पटल	
५६८	१४	जे ाब	
५७३	५	असरोचित्त,	
५७८	१८	ममुष्य	
५७९	३	सद्व्य	
५८०	१६	सेवन के करने	
५८३	४	कुदबची	
,,	११	कल्हर	
५८४	४	खारी मीठा मैला	खा
५९२	९	सामल	सोम
,,	१०	चक्र	चक्र
५९९	१	का	

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
६१९	८	उपभोग	उपभोग परिभोग
६२०	५	४	३ भोगने को तत्पर रहा कल्ल क्रमण करे४
,,	१२	अहोराची	अहोरात्री
,,	५	मणग	वणग
,,	२४	अणु जाणढा	अणु जाणहा
६२२	६	वि ।	विना
६२४	२०	चावारे तथा	चौवीसत्था
६२५	११	वनते	वने
,,	२५	पाना	पानी
,,	११	तथा	नेथा
६२७	२३	कोई वादिका	कोद्रवादिका
६२८	१५	पुण्यवान् !	पूज्य भगवान
,,	(नोट) १	ताव कर के गरम किया	सिकताव करने गरम किया
६३०	१०	पाण	पाणं खाइमं
,,	११	एयं	रायं
६४१	२	उवदृणाय	उवट्टणाये
,,	६	लीनती	विनाली
,,	८	हूं	होवूं
,,	१५	सोदिये	सोहियं
,,	१८	छद्मस्ती	छद्मस्तता
६४२	४	सत्येषण	सल्लेषणा
,,	१९	आरोहणा	आराहणा
,,	२२	ने	को
६४३	१	युक्त	•
,,	,,	गुण	गुण युक्त
६५५	६	वेदमीयो दया	वेदनीयोदय

पृष्ट	सतर	अशुद्ध	शुद्ध
६५५	२१	४००	५००
६५९	१	नीचे के अंग को और	ऊपर के अंग की तरफ
		प्रथम लक्ष को	फिर लक्ष्य को
,,	१४	आयु के	आयुष्यादि
,,	१५	आमात्म	परमात्मा
६६०	३	पपवो	पसवो
,,	४	खन्धारी	खन्धाणी
,,	६	वहा	महा
,,	८	ा दि	आदि
६६०	१८	अल्प	अन्य



इन के सिवाय और भी अशुद्धियां इस पुस्तक में बहुत सी रह गई हैं कारण—१ सिकन्द्राबाद शास्त्रोद्धार कार्यालय में शास्त्रों छपाने छापने में बपरा कर घिसा हुआ टाइप ही से यह ग्रंथ छपा होने से बहुत स्थान में टूटे अक्षरों भुने अक्षरों मात्राओं विरामों नहीं उठने से—२ ग्रन्थ की दूसरी कौपी शीघ्रता से लिखने से याने रायचूर से बेंगलोर तक के बिकट पथ में विहार भिक्षा और नबे क्षत्र में तीन वक्त व्याख्यान तथा जैन जैनेतरों से वार्तालाप प्रश्नोत्तरादि से निवृत्ति काल में लिखकर समय पर मैटर भेजने की चिन्ता से—३ ग्रन्थकर्ता के आशय से जैन धर्म के गूढ तत्वों का अनजान पुरूफ शुद्ध कर्ता होने से. और—४ छापने का काम बिलम्ब के भय से कम दरकारी के साथ करने से इत्यादि कारणों से तृतियावृत्ति में प्रथमावृत्ति कर्ता विषय भाषादि की विशेष सुद्धि करने पर किंबहु नूतन भाषा रूप परिणामों पर भी अशुद्धियां अधिक रह गई हैं. इसे पाठक गण इस शुद्धाशुद्धि पत्रानुसार विशेषज्ञ स्वप्रज्ञानुसार शुद्ध कर यत्ना पूर्वक गुणग्राहक बुद्धि से पठन करेंगे तो वे अवश्य ही सम्यग् ज्ञानादि गुण प्राप्ति रूप लाभ के सद्भागी बनेंगे। अमोलक ऋषि—

* श्री *

जैन तत्व प्रकाश

* प्रवेशिका *

सिद्धाणं णमो किच्चा । संजया णं च भावओ ॥
अत्थ धम्मं गई तच्चं । अणुसुट्ठी सुणेह मे ॥ १ ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र अ० २० ।

अर्थ "सिद्ध"– आरिहन्त सिद्ध और संजती–आचार्य उपाध्याय और साधु, इन को विशुद्ध भाव से नमस्कार कर के यथा तथ्य–सत्य सर्व अर्थ की सिद्धी करनेवाला ऐसा जो ग्रहण करने योग्य धर्म है उसका स्वरूप अनुक्रम से कहता हूं, अहो भव्य जीवों? उसे मन वचन काया के योग को स्थिर कर श्रवण करो !

प्रथम खण्डम्

"सिद्धाणं णमो किच्चा"

विशेषार्थ–सिद्ध भगवन्त दो प्रकार के होते हैं (१) भाषक (बोलते) सिद्ध सो–अरिहन्त भगवन्त, जैसे उत्तराध्ययन जी सूत्र के ९ वें अध्याय में नमीरायजी को संसार अवस्था में "जाइ सरीतु भयवं" भगवन्त ने जाति का स्मरण किया, यों भगवन्त कहे हैं, और उक्त सूत्र के १९ वें अध्ययन में मृगापुत्र को "जुगराय दमीसरे" युगराज पद भोगते ही दमीश्वर–ऋषीश्वर कहे हैं, तैसे अरिहन्त भगवन्त भी भविष्य काल में सिद्ध होने वाले हैं, इस लिए उनको भी सिद्ध कहे हैं । (२) सर्वकार्य को सिद्ध कर सर्व कर्म कलङ्क रहित निजात्म स्वरूपी सच्चिदानन्द (सत्–चित–आनन्द) रूप पद को प्राप्त हुए हैं उनको अभाषक (बिना बोलते) सिद्ध कहते हैं, इन दोनों प्रकार के सिद्ध भगवन्त का सविस्तार वर्णन आगे क्रम से अलग २ प्रकरण में किया जायगा ।

प्रकरण पहिला "अरिहन्त" *

जो चैतन्य(जीव) प्रथम के तीसरे भव में निम्नोक्त २० बोलों में के किन्ही बोलोंकी यथा उचित्त आराधना करते हैं वे आगेके तीसरे भव में अरिहन्त पद को प्राप्त करते हैं।

तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करने के २० बोल।

गाथा—अरिहन्त सिद्ध पवयण, गुरू थेर बहुस्सुए तवस्सी सु ॥
वच्छ लयाय तेसिं, अभिक्ख णाणोव ओगेय ॥ १ ॥
दंसण विणय आवस्सएय, सीलव्वएय निरवइयारे ॥
खणलव तवच्चियाए, वेयावच्चं समाहीयं ॥ २ ॥
अपुव्वणाण गहणे, सुय भत्ती पवयणेप्पभाविणया ॥
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरतं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ ‡

अर्थ—१ अरिहन्त, २ सिद्ध, ३ प्रवचन, ४ शास्त्र, ५ स्थविर-वृद्ध, ६ बहुसूत्री—पंडित, ७ तपस्वी, इन सातों के गुणानुवाद करने से ८ बाराबार ज्ञान में उपयोग लगाने से, ९ सम्यक्त्व (समकित) निर्मल पालने से, १० गुरू आदिक पुज्यजनों का विनय करने से, ११ देवसी रायसी पाक्षी चौमासी और सम्वत्सरी इन पांचोंही आवश्यक (प्रतिक्रमण) को निरन्त्र करने से, १२ शील—ब्रह्मचर्यादि वृत प्रत्याख्यान

* नोट—१ राग द्वेष शत्रु को नष्ट करने से अरिहन्त कहते हैं, २ सुरिन्द्र नरिन्द्रादि के पूज्यनीय होने से अर्हन्त और ३ कर्मांकूर का नाश करने से अरुहन्त कहलाते हैं।

‡ दोहा—अरिहन्त सिद्ध सूत्र गुरू, स्थविर बहुसूत्री जान। गुन करते तपस्वी तने, उपयोग लगावत ज्ञान ॥ १ ॥ शुद्ध सम्यक्त्व नित्य आवश्यक, व्रत शुद्ध शुभ ध्यान ॥ तपस्या करते निर्मली, देत सुपात्र दान ॥ २ ॥ वैय्यावच सुख उपजावते, अपूर्व ज्ञान उद्योत ॥ सूत्र भक्ति मार्ग दिपत, बन्धे तीर्थंकर गोत्त ॥ ३ ॥

अतिचार (दोष) रहित पालन करने से, १३ निवृत्ती–वैराग्य भाव सदैव रखने से, १४ बाह्य (प्रगट) और आभ्यन्तर (गुप्त) तपश्चर्या करने से, १५ सुपात्र दान देने से, १६ गुरू रोगी तपस्वी वृद्ध और नव दीक्षित इनकी वैय्यावच्च–सेवा भक्ति करने से, १७ समाधी भाव–क्षमा करने से, १८ अपूर्व–नितनया ज्ञानाभ्यास करने से, १९ बहुतमान आदर पूर्वक जिनेश्वर के वचनों का श्रद्धान करने से, और २० तन से धन से मन से जैन धर्म की उन्नती करने से, इन २० कामों में के किसी भी काम के करने वाला प्राणी तीर्थंकर गोत्रोपार्जन करता है वह बीच में देव-लोक का तथा ▯ नर्क का एक भव करके तीसरे भवमें तीर्थंकर–अरिहन्ता होता है।

अरिहन्त पद को प्राप्त करने वाला प्राणी–मनुष्य लोक के १५ कर्म भूमी के क्षेत्र में, आर्य देश में, उत्तम–निर्मल कुल में मातेश्वरी को १४ उत्तम स्वप्न+ होने के साथ ही अवतार लेता है, सवा नव महीने पूर्ण हुए चन्द्रग्रहादि उत्तम योग शुभ मुहूर्त में मतिज्ञान श्रुतिज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञान सहित जन्म ‡ लेता है, उस वक्त *छप्पन कुमारिका देवियां जन्म महोत्सव करती हैं,

▯ कृष्ण महाराज तथा श्रेणिक राजा की तरह ।

+ १४ स्वप्नों के नाम—ऐरावत हस्ति, २ धोरी बैल, ३ शार्दुलसिंह, ४ लक्ष्मी देवी, ५ पुष्प की दो माला, ६ पूर्ण चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ इन्द्रध्वजा, ९ पूर्ण कलश, १० पद्म सरोवर, ११ क्षीर समुद्र, १२ देव विमान, १३ रत्नों का ढेर, और १४ निर्धूम अग्नि की ज्वाला, नर्क से आने वाले तीर्थंकर की माता १२ वा स्वप्न देव विमान के स्थान भुवनपति देव का भुवन देखती है।

‡ १ अवतरते हैं उसे चवन कल्यान २ जन्मको जन्म कल्यान ३ दीक्षाको दीक्षाकल्यान ४ केवल ज्ञान उत्पन्न होवे उसे ज्ञान कल्यान और ५ मोक्ष जावे उसे मोक्ष कल्याण कहते हैं।

*छप्पन कुमारिका के नाम—१ भोगंकरा, २ भोगवती, ३ सुभोगा, ४ भोग-मालीनी, ५ सुवत्सा, ६ वत्समित्रा, ७ पुष्पमाला, ८ आनिन्दिता (यह आठ नीचे लोक की रहने वाली) ९ मेघंकरा, १० मेघवती, ११ सुमेघा, १२ मेघमालीनी, १३ तोयधरा १४

चौसटइन्द्र। मेरुपर्वत के पण्डग वन में बहुत उमंग और धूम धाम से जन्म महोत्सव करते हैं, यह इन्द्रों का जीत व्यवहार (परस्परा से रिवाज चला आता) है, फिर तीर्थंकर के पिता जन्म महोत्सव करके उत्तम नाम स्थापन करते हैं, वे तीर्थंकर बाल क्रीडाकर यौवनावस्था को प्राप्त हुए बाद जो भोगावली कर्मोदय हो तो उत्तम स्त्री से पानिग्रहण कर शुष्क—रुक्ष वृती से भोग भोगते हैं, फिर दीक्षा धारन करने से पहिले नित्यप्रति एक क्रोड आठ लक्ष इसप्रकार तीन अर्व अट्ठासी लक्ष सुवर्ण (मोहर) का बारह महीने में दान देते हैं, यह उदारता जैनी लोगों को अनुकरणीय है।

फिर ९ लोकान्तिक देव देवलोक से आकर चेताते हैं तब आरंभ और परिग्रह का त्रिविध २* त्याग कर दीक्षा धारन करते हैं कि तत्काल चौथे मनः पर्यव ज्ञान की प्राप्ती होती है, फिर कुछ काल छद्मस्त रहते हैं, तब तक देव दानव (पशु) मानव सम्बन्धी अनेक प्रकार के उप-

विचित्रा, १५ वारीषेणा, १६ वलाहका (यह ८ ऊंचे लोक में रहने वाली) १७ नन्दोत्तरा, १८ नंदा, १९ आनन्दा, २० नन्दीवर्धना, २१ विजया, २२ वैजयंती, २३ जयंती, २४ अपराजित। (यह ८ पूर्व रुचक पर रहने वाली) २५ समाहारा, २६ सुप्रदत्ता, २७ सुप्रबुद्धा, २८ यशोधरा, २९ लक्ष्मीवती, ३० शेषवती, ३१ चित्र गुप्ता, ३२ वसुंधरा (यह ८ दक्षिण रुचक पर रहने वाली) ३३ इलादेवी, ३४ सुरादेवी, ३५ पृथ्वी, ३६ पद्मावती, ३७ एक नाशा, ३८ नवमिका, ३९ भद्रा, ४० सीता (यह ८ पश्चिम रुचक पर रहने वाली) ४१ अलंबुसा, ४२ मितकेशी, ४३ पुंडरिका, ४४ वारुणी, ४५ हांसा, ४६ सर्वप्रभा, ४७ श्री भद्री, ४८ (यह ८ उत्तर रुचक पर रहने वाली) ४९ चित्रा, ५० चित्रकरा, ५१ शतेरा, ५२ वसुदामीनी, (यह ४ विदिशा रुचक की रहने वाली) ५३ रूपा, ५४ रूपासिका, ५५ सूरूपा और ५६ रूपवती (यह ४ विदिशारु चक द्वीप की रहने वाली) यह ५६ कुमारी हैं।

१ ६४ इन्द्र—१० भुवन पति देव के २० इन्द्र, १६ वाणव्यन्तर देव के ३२ इन्द्र, ज्योतिषी के २ इन्द्र, और १२ देवलोक के १० इन्द्र यों ६४ इन्द्र हुये इनके नाम दूसरे प्रकरण में देखिये।

* त्रिविध २ के ९ भेद (भांगे) १ मन से करे नहीं, २ मनमें करावे नहीं, ३ मन से करते को अच्छा जाने नहीं, ४ वचनसे करे नहीं, ५ वचनसे करावे नहीं, ६ वचन से करते को अच्छा जाने नहीं, ७ काया से करे नहीं, ८ काया से करावे नहीं, और ९ काया से करते को अच्छा जाने नहीं, इन ९ भागों से पाप का पूर्ण रिती त्याग होता है।

सर्ग प्राप्त होते हैं उनको समभाव से सहते हैं, ※ अनेक प्रकार का दुष्कर तपश्चरन कर घनघातिक चार कर्मों का क्षय करते हैं, यथा—१ प्रथम दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय होने से अनन्त गुणात्म यथाख्यात चारित्र वाले होते हैं । उक्त मोहिनी कर्म का क्षय होते ही— २ ज्ञानावर्णीय, ३ दर्शना वर्णीय और ४ अन्तराय इन तीन कर्मों का तत्काल नाश होता है। ज्ञानावर्णीय कर्म के क्षय होनेसे अनन्त केवल ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे सब द्रव्य क्षेत्र काल भाव और भव को जानने लगते हैं, २ दर्शना वर्णीय कर्म के क्षय होने से अनन्त केवल दर्शन को प्राप्ति होती है जिससे उक्त द्रव्यादि पांचों को देखने लगते हैं और ३ अन्तराय कर्म के क्षय होने से अनन्त—दान लब्धि—लाभ लब्धि—भोग लब्धि—उपभोग लब्धि और अनन्त वीर्य लब्धि की प्राप्ति होती है जिससे अनन्त शक्तिवंत होते हैं, शेष—१ वेदनीय, २ आयुष्य, ३ नाम और ४ गोत्र, यह चार कर्म भुने हुए बीजके जैसे निरंकूर (उत्पन्न होने की शक्ती रहित) रहजाते हैं; वे आयुष्य कर्म के क्षय होने के साथ ही साथ क्षय हो जाते हैं,

उपरोक्त चारों घनघातिक कर्मों के क्षय करने से ही अरिहन्त पदकी प्राप्ति होती है, वे अरिहन्त भगवन्त १२ गुण, ३४ अतिशय, ३५ वानी के गुण सहित होते हैं और १८ दोष रहित होते हैं, जिनका सविस्तार से वर्णन आगे किया जाता है ।

अरिहन्त के १२ गुण ।

१ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त चारित्र, ४ अनन्त तप, ५ अनन्त * बल वीर्य, ६ अनन्त क्षायिक सम्यक्त्व, ७ वज्र वृषभ-

※ कोई विना उपसर्ग सहे भी केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

* अरिहन्त के बलका परिमाण—२००० सिंह का बल एक अष्टापद पक्षी में, १००००० अष्टापद का बल १ बलदेव में, २ बलदेव का बल, १ वासुदेव में, २ वासुदेव का बल, १ चक्रवर्ती में, १००००००० चक्रवर्ती का बल १ देवता में १००००००० देवता का बल १ इन्द्र में, ऐसे अनन्त इन्द्र भी मिल कर अरिहन्त की कनिष्ठा अंगुली को भी हिला नहीं सकते हैं ।

नारा च संघयन, ८ समचतुरस संस्थान, ९ चौतीस अतिशय, १० पैंतीस वानी के गुण, ११ एक हजार आठ उत्तम लक्षण, और १२ चौसठ इन्द्रों के पूज्यनीय, यह १२ गुण युक्त अरिहन्त भगवन्त होते हैं । *

अरिहन्त के ३४ अतिशय ।

१ मस्तकादि सब शरीर के बाल मर्यादा से अधिक, (बुरे लगे ऐसे) बढ़े नहीं, २ रज मैल प्रमुख अशुभ लेप शरीर को लगे नहीं, ३ लोहू मांस गौ के दूध से भी आधिक उज्वल और मीठा होवे, ४ श्वाशोच्छास में पद्म कमल से भी अधिक सुगन्ध आवे, ५ आहार और निहार चर्म चक्षु वाला देख नहीं सके, किन्तु अवधिज्ञान वाला देख सकता है; ६ धर्म चक्र आकाश में गरणाट शब्द करता हुआ जब भगवान चलते हैं तब आगे आगे चलता है और भगवान ठहरते हैं तब ठहरता है

* कितनेक अनन्त चतुष्टय—१ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त चारित्र, ४ अनन्ततप और अष्ट प्रतिहार्य,—१ आशोक वृत्त, २ सिंहासन, ३ तीन छत्र, ४ चौसट जोड़े चमर के, ५ प्रभा मंडल, ६ अचेत फूलों की वृष्टी, ७ दिव्य ध्वनी, ८ और अन्तरित्त में साडी बारा क्रोड गेबी बाजे मिल कर भी अरिहन्त के १२ गुण कहते हैं ।

जिस क्षेत्र (ग्राम) में अन्य मतावलम्बियों अधिक होते हैं या बहुत परिषद का आगम जैसा होता है वहां देवताओं समवसरण की अलोकिक रचना रचते हैं, यथा—प्रथम कोट (किल्ला) चांदी का बना सुवर्ण के कंगूरे करते हैं । उसके भीतर १३०० धनुष्य का अन्तर छोड़ दूसरा कोट सुवर्ण का बना रत्नों के कंगूरे करते हैं, उसके अन्दर १३०० धनुष्य का अन्तर छोड़ तीसरा कोट रत्नों का बना मणिरत्न के कंगूरे करते हैं, उसके मध्य में तीर्थंकर अष्ट प्रतिहार्य युक्त विराजते हैं । तीर्थंकर से ईशान कौन में–१ श्रावक २ श्राविका, और ३ वैमानिक देव बैठते हैं, अग्नि कौन में, ४ साधु, ५ साध्वी, और ६ वैमानिक देव की देवीयां बैठती हैं, वायु कोन में ७ भुवनपति देव, ८ वाणव्यन्तर देव और ९ ज्योतिषी देव बैठते हैं । नैऋत कौन में १० भुवनपति की देवी, ११ वाण व्यन्तर की देवी और १२ ज्योतिषी की देवी बैठती हैं, यों १२ जाति की परिषदा भराती हैं । (कितनेक ४ जाति के देव ४ जाति की देवांगना और मनुष्य मनुष्यनी तिर्यंच तिर्यंचनी ऐसे १२ परिषद कहते हैं) समवसरण के प्रथम कोट में चडने के १०००० पक्तिये दूसरे और तीसरे कोट में चढ़ने के ५००–५०० पंक्तिये होते हैं, सब २०००० पंक्तिये एक एक हाथ के अन्तर से होते हैं । ४ हाथ का १ धनुष्य, २००० धनुष्य का १ कोस, इस हिसाब से २॥ कोस का ऊंचा समवसरण होता है, किन्तु तीर्थंकर के अतीशय से और चढ़ने वाले की उमंग से चढ़ते हुये थकते नहीं हैं, ऐसा दिगम्बर आम्नाय के शास्त्र में लिखा है ।

७ लम्बी लम्बी मोतियों की झालर युक्त एकके ऊपर एक ऐसे तीन छत्र भगवान के सिर पर आकाश में दीखते हैं, ८ गौ के दूध और कमल के तन्तुओं से भी अती उज्वल बाल वाले रत्न जडित दान्डि युक्त चमर भगवान के दोनों तरफ बीजते (हिलते) हुए दीखते हैं, ९ स्फटिक रत्न के समान निर्मल देदीप्यमान सिंह के स्कन्ध के संस्थान अनेक रत्नों से जडा हुआ अन्धकार का नाश करने वाला पाद पीठका युक्त सिंहासन पर भगवान बिराजते हैं ऐसा दीखता है, १० अति ऊंचा रत्न जडित स्थम्भ वाली अनेक छोटी छोटी धजाओं के परिवार से वेष्टित इन्द्रध्वजा भगवान के आगे दीखती है, ११ अनेक शाखा प्रति शाखा पत्र फल पुष्प सुगन्धी छांया वाला ध्वजा पताकाओं से सुशोभित आशोक वृक्ष भगवन्त पर छांया करता हुआ भगवन्त से बारहगुना ऊंचा दीखता है, १२ शरद ऋतु के जाज्वल्यमान सूर्य से भी १२ गुना अधिक तेज वाला अन्धकार का नाशक प्रभामंडल * अरिहन्त के पृष्ट भाग में देखाता है, १३ अरिहन्त जहां २ बिहार करते—चलते हैं, वहां वहां ज़मीन गड्डे (टेकरे) रहित बराबर—सम—पृथ्वी बन जाते हैं, १४ बम्बुलादि के कांटे पाव में न लगे ऐसे उलटे होजाते हैं, १५ शीतकाल में उष्ण और उष्ण-काल में शीत ऋतु की सी सुख दाता ऋतु बन जाती है, १६ मन्द २ शीतल सुगन्धी वायु भगवान से एक योजन चारों तरफ चलती है जिस से सब अशुचि वस्तु दूर चली जाती है, १७ बारीक २ सुगन्धी अचेत पानी की वृष्टी भगवान के चारों ओर एक योजन में होती है, जिस से धूल दब जाती है, १८ देवता के वैक्रैय से बनाए पांचों रंग के अचित, जिनके टेंट नीचे और मुख ऊपर ऐसे फूलों की घुटने प्रमाने वृष्टी भगवान के चारों ओर एक योजन तक होती है, १९ अमनोज्ञ (खराब) वर्ण

* ग्रन्थ में लिखा है कि-प्रभामंडल के प्रभाव से चारों दिशा में चार मुख तीर्थंकर के दीखते हैं, जिससे व्याख्यान सुनने वालों को ऐसा मालुम होता है कि भगवान हमारे ही सन्मुख देख रहे हैं, अथा को चतुर्मुखी कहने का भी यही कारण होगा।

गंध रस और स्पर्श का नाश होता है, २० मनोज्ञ (अच्छे) वर्ण गंध रस स्पर्श का उद्भव होता है, २१ भगवान के चारों तरफ एक योजन में रही हुई परिषद व्याख्यान बराबर श्रवन करती है, और व्याख्यान सभी को प्रिय लगता है, २२ भगवान व्याख्यान अर्धमागधी * आधी मगध देश की और आधी सब देश ¶ की (मिश्रित) भाषा में देते हैं, २३ आर्य देश के, अनार्य देश के, मनुष्य, द्विपद (पक्षी) चतुष्पद (पशु) अपद (सांपादि) इत्यादि सब भगवान की भाषा में समझ जाते हैं, २४ भगवान का व्याख्यान सुनने से जाती वैर (जैसा कि—सिंह बकरी का कुत्ता बिल्ली का) और भवान्तर का वैर नष्ट हो जाता है; २५ भगवान को देखते ही मताभिमानी अन्य दर्शनीय अभिमान को छोड नम्र बनजाते हैं, २६ भगवान के पास वादी प्रतिवादी वाद करने को आते तो हैं किंतु उत्तर देने में असमर्थ होजाते हैं, २७ (भगवान के चारों तरफ २५—२५ योजन तक) इति भीति अर्थात् टीडी मुषकादि का उपद्रव नहीं होवे, २८ मरी मारी अर्थात हैजे प्लेगादि की बीमारी नहीं होवे, २९ स्वदेश के राजा का और सेना का उपद्रव नहीं होवे, ३० पर-देश के राजा का और सैना का उपद्रव नहीं होवे, ३१ अति (बहुत) वृष्टी नहीं होवे. अनावृष्टी (पानी नहीं वरसे) ऐसा नहीं होवे, ३२ दुर्भिक्ष-दुष्काल नहीं होवे, और ३४ जहा पहिले इति भीती मरी मारी स्वचक्री का भय हो वहा भगवान चले जावें तो तत्काल ही नाश हो जावे, यह ३४ आतिशय में से ४ अतिशय जन्म से होते हैं, १५ केवल ज्ञान उत्पन्न हुए वाद होते हैं और १५ देवताओं के किए हुए होते हैं।

---

* सूत्र—"भगवंचणएश अद्धमागहीए भासाए धम्ममांइक्खती" उववाइ सूत्र ।

¶ हरेक उपदेशक को इस प्रभु की वानी के गुण को ध्यान में लेना चाहिये । यूरोपियन वक्ताओं का उपदेश प्रबल असर कर्ता होता है । जिस का सबब यही है कि वे उपदेशक होने का अभ्यास करते हैं ।

अरिहन्त की बाणी के ३५ गुण ।*

१ संस्कार युक्त बचन बोलें, २ एक योजन में रही परिषद अच्छी तरह से श्रवन कर सके ऐसे उच्च स्वर (बुलंद आवाज़) से बोलें, ३ 'रे' 'तू' इत्यादि तुच्छता रहित सादे और मान पूर्वक बचन बोलें. ४ मेघ गरजन के समान भगवान की बाणी सूत्र से और अर्थ से गंभीरता पूर्ण होती है, उच्चार और तत्त्व दोनों में बाणी का रहस्य बहुत गहन होता है, ५ जैसे गुफा में और शिखर बन्ध प्रशाद में बोलने से प्रति ध्वनी उठती है तैसे ही भगवान की बाणी में भी प्रतिध्वनी उठती है (Thundering Tone) ६ घृत व सहत के समान स्निग्ध बचन श्रोता को परिणमते हैं, ७ भगवान के बचन ६ राग और ३० रागनी युक्त परिणमने से जैसे पुंगी पर नाग और वीणा पर मृग तल्लीन हो जाते हैं तैसे ही श्रोता भी तल्लीन हो जाते हैं, (Harnmonious Tone) ८ भगवान के बचन सूत्र रूप होते हैं जिनमें शब्द थोडे और अर्थ बहुत होता है, ९ भगवान के बचन परस्पर विरोध रहित होते हैं, जैसे प्रथम 'अहिंसा परमो धर्मः' कह कर फिर धर्मार्थ हिंसा करने में दोष नहीं ऐसे विरोधी बचन कभी नहीं बोलते हैं । १० चलते हुये परमार्थ को पूर्ण कर फिर दूसरा अर्थ ग्रहण करें, यों अलग २ अर्थ कहें परन्तु गड़बड़ करें नहीं । ११ ऐसा खुलासे से कहें कि श्रोताओं को किंचित भी संशय उत्पन्न नहीं होवे । १२ बडे २ पण्डित भी भगवान के बचन में किंचित मात्र भी दोष नहीं निकाल सके ऐसे निर्दोष बचन बोलें । १३ जिन्हे सुनते ही श्रोताओं का मन एकाग्र होजावे । सबको मनोज्ञ ‡ लगे ऐसे बचन बोलें ।

* हरेक उपदेशक को उक्त प्रभु की बानी के गुन ध्यान में लेने चाहिये । यूरोपियन धकाओं का उपदेश प्रबल असर कर्ता होता है जिसका सबब यही है कि वे उपदेश देने की शिक्षा प्राप्त करते हैं ।

‡ वेद भी कहते हैं, "सत्यंब्रूहि प्रियंब्रूहि" अर्थात् सत्य ऐसा बोलो कि जो श्रोता को प्रिय भी लगे ।

१४ बडी विलक्षणता से देश कालके अनुसार बोलें। १५ मिलते हुये बचनों से अर्थ का विस्तार तो करें परन्तु ऊटपटांग व्यर्थ बातें कह २ कर समय पूरा न करें। १६ जीवादि नव पदार्थ के स्वरूप को प्रकाश करते सारसार रूप कहें असार को छोड दें। १७ सांसारिक क्रिया की निःसार बातों को संक्षेप में पूरी करदें अर्थात् ऐसे पदों को संक्षेप में समाप्त कर आगे का पद कहें। १८ इस प्रकार खुलासे से कथा रूप कहें कि जिसका मतलब छोटा सा बच्चा भी समझ जाय। १९ अपनी श्लाघा (परसंशा) और दूसरे की निन्दा नहीं करें "पाप की निन्दा करें परन्तु पापी की निन्दा नहीं करें।" २० दूध और मिश्री से भी अधिक मधुरता भगवान की वाणी में होने से श्रोता व्याख्यान छोड कर जाना नहीं चाहते हैं। २१ किसी की भी गुप्त बात प्रगट होवे ऐसे मार्मिक बचन नहीं कहें २२ योग्यता से अधिक गुणानुवाद कर किसी की खुशामद नहीं करें किन्तु योग्यतानुसार गुण कहें। २३ जिससे उपकार होवे और आत्मार्थ सिद्ध होवे ऐसा सार्थ धर्म कहें। २४ अर्थ को छिन्न भिन्न कर तुच्छ नहीं बनावें। २५ व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध बचन ‡ कहें २६ बुलन्द भी नहीं, बहुत सुस्त भी नहीं; और बहुत शीघ्रता से भी नहीं ऐसे मध्यस्त बचन कहें। २६ श्रोताजनों को प्रभू की वाणी श्रवन कर चमत्कार प्राप्त हो जिस से बोल उठें कि—अहो! अहो! प्रभु के कहने की शक्ति और वाक्य चातुरी आश्चर्य कारक है। २८ ऐसे हर्ष युक्त कहें कि जिससे सुनने वाले को उसका हुबहु (यथार्थ) रस परिगमें। २९ व्याख्यान के बीच में विश्रांति नहीं लेते, विलम्ब रहित कहें। ३० सुनने वाला जो मन में प्रश्न धार कर आया हो उसका समाधान विना पूछे ही होजावे। ३१ एक बचन की अपेक्षा से दूसरा बचन कहें और जो

‡ व्याकरण की कितनी आवश्यकता है सो इससे समझिए। हितकारी कथन भी अशुद्ध वाणी से कहा हुआ श्रोता के हृदय में असर नहीं करता है। इसलिये वक्ता-वर्ग को व्याकरण अवश्य ही पढ़नी चाहिये।

कहे सो श्रोता के हृदय में बैठ जावे । ३२ अर्थ, पद, वर्ण, वाक्य सब अलग २ कहें । ३३ सात्विक बचन ऐसे कहें कि इन्द्रादि महा प्रतापियों से भी क्षोभित नहीं बनें । ३४ प्रचलित अर्थ की सिद्धी जहां तक नहीं होवे वहां तक दूसरा अर्थ नहीं निकालें । एक कथन दृढ करके दूसरा निकालें और ३५ व्याख्यान देते हुए कितना भी दीर्घकाल व्यतीत होजावे तो भी भगवान कभी थकें नहीं किन्तु अधिकाधिक उत्साह बढता ही रहे ।

अरिहंत १८ दोष रहित होते हैं ।

१—'मिथ्यात्व'—जो वस्तु जैसी है उसको वैसी नहीं श्रद्धते, विपरीत (उलटा) श्रद्धान करे उसे मिथ्यात्व कहते हैं । अरिहन्त अनन्त क्षायिक सम्यक्त्वी होने से इस दोष रहित हैं इसलिये जगत् के पदार्थ जैसे हैं वैसी ही अरिहन्त की श्रद्धान है । २ 'अज्ञान'—वस्तु को नहीं जानें तथा विपरीत जाने सो अज्ञान । अरिहन्त केवल ज्ञानी होने से सर्व लोकालोक चराचर पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जानते देखते हैं । ३ 'मद' अपने गुणों का गर्व होवे सो मद, आरिहन्त सब गुण सम्पन्न होने से किंचित भी मद नहीं करते हैं । कहा भी है कि—"सम्पूर्ण कुम्भो न करोती शब्दं" अर्थात् सम्पूर्णता का चिन्ह यही है कि गर्व नहीं करना । और भी "विनयवन्त भगवन्त कहावे (तो भी) न काहु को सीस नमावे" अर्थात् आरिहन्त विनयके सागर होकर भी किसी के आगे लघुता नहीं बताते हैं । ४ 'क्रोध'—"क्षमा सूरा आरिहन्ता" कहे जाते हैं । अरिहन्त क्षमाके सागर होते हैं । ५ 'माया'—दगा कपट को कहते हैं, अरिहन्त तो महा शरल स्वभावी होते हैं । ६ 'लोभ' इच्छा-तृष्णा को कहते हैं । अरिहन्त प्राप्त हुई महा ऋद्धि का त्याग कर साधु होते हैं और अतिशयादि महा ऋद्धि अनिच्छित ही प्राप्त होने से महा सन्तोषी होते हैं । ७ 'राति' खुशी मनोज्ञ वस्तु की प्राप्ती से होती है । अरिहन्त

तो अवेदी, अकषायी वीतरागी होने से तिल मात्र भी रती—खुशी को प्राप्त नहीं होते हैं। ८ 'अरति' नाखुशी अमन्योज्ञ वस्तु के संयोग से होती है। आरिहन्त समभावी होने से कदापि किसी भी दुःख प्रद संयोग से दुःखी (खेदित) नहीं होते हैं। ९ 'निद्रा' आरिहन्त के दर्शना वर्णिय कर्म के नाश होनेसे निरन्त्र जागृतही रहते हैं। १० 'शोक' चिन्ताको कहते हैं, आरिहंत त्रिकाल के ज्ञाता होने से किसी का आश्चर्य भी नहीं होता है और शोक भी नहीं होता है । ११ 'अलीक'—झूठ बोलने को कहते हैं। अरिहन्त निस्पृही होने से कभी किंचित मात्र भी झूठ नहीं बोलते हैं अर्थात् वचन नहीं पलटते हैं। एकान्त सत्य ही सत्य प्रकाशते हैं। १२—चोरी मालिककी बिना आज्ञा वस्तुको ग्रहण करे सो चोरी। अरिहंत निरिच्छत होनेसे मालिक की बिन आज्ञा किसी वस्तु को कदापि ग्रहण नहीं करते हैं। १३ 'मत्सर' अपने से अधिक देख ईर्षा हो उसे मत्सर कहतेहैं। अरिहन्त से अधिक गुणधारक तो कोई होता ही नहीं। किन्तु गोशाला वत यदि कोई फितूर कर अपनी प्रतिष्टा बढावे तो भी अरिहन्त कभी मत्सर-ईर्षा भाव धारन नहीं करते हैं। १४ 'भय' डर को कहते हैं। १ इहलोक भय सो मनुष्य का भय, २ परलोक भय सो तिर्यच देवता का, ३ आदान भय-धनादिका, ४ अकस्मात भय, ५ आजीविका भय, ६ मृत्यु भय और ७ पूजा श्लाघा भय, आरिहन्त अनन्तबली होने से इन सातों भय रहित होतेहैं। किसीका भय धारन नहीं करते हैं। १५ 'हिंसा' छः काय जीवों की घात को हिंसा कहते हैं। महा दयालु अरिहन्त त्रस स्थावर सब की हिंसा से सर्वथा प्रकारसे निवृतते हैं। और "मतमारो २" ऐसे उपदेश से दूसरोंसे भी हिंसा छुडाते हैं, हिंसाके कृत को अच्छा भी नहीं जानते हैं। १६ "प्रेम" अरिहन्त नें शरीर, स्वजन धन के स्नेहका तो त्याग करही दिया है तैसे ही बंदक तथा निन्दक पर भी समभावी है। इसलिये पूजा करने वाले पर संतुष्ट हो उसका कार्य सिद्ध नहीं करते हैं और अशातना करने वाले पर रुष्ट हो दुःख

नहीं देते हैं सदैव समभावी रहते हैं । १७ 'क्रीडा' सर्व प्रकार की क्रीडा के अरिहन्त त्यागी हैं । गाना बजाना रास खेलना रोशनी करना मंडप बनाना भोगोपभोग लगाना इत्यादि हिंसक क्रिया कर जो अरिहन्त को प्रसन्न करना चाहते हैं वे बडे मोह मुग्ध हैं और १८ 'हंसी' किसी अपूर्व वस्तु के देखने से हंसी आती है । अरिहन्त सर्वज्ञ होने से उनसे कोई भी वस्तु गुप्त नहीं है । इसलिये कोई भी वस्तु व बचन उनको अपूर्व नहीं लगने से हंसी कदापि नहीं आती है । इस प्रकार १८ दोष रहित अरिहन्त होते हैं ।

अरिहन्त को नमोत्थुणं (नमोस्तव) ।

उक्त प्रकार अन्तान्त गुण के धारक "अरिहंताण" चतुरघनघातिक कर्म तथा कर्मोत्पादक राग द्वेष रूप शत्रु को मारने वाले, 'भगवंताणं'‡ भव भ्रमण के नाशक तथा १२ गुन * धारक "आदि गराणं" श्रुत धर्म और चारित्र धर्म की आदि के कर्ता (प्रथम धर्म की स्थापना अरिहंत करते हैं उसे गणधर आचार्यादि आगे चलाते हैं) ‖ 'तित्थयराणं' साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चारों तीर्थ के कर्ता अरिहन्त होने से ही तीर्थंकर कहलाते हैं "सहसं बुद्धाणं" भगवान को प्रथम ही अवधीज्ञान के होने से उनको कर्त्तव्य कर्म का ज्ञान होता है जिससे वे गुरू के उपदेश बिना ही स्वयमेव प्रति बोधित होते हैं और स्वमेव दीक्षा धारन करते हैं. "पुरिसोत्तमाणं" एक हजार अष्ट उत्तम लक्षणादि गुणकर जगत् के सर्व पुरुषों में परमोत्तम पुरुष भगवान होते

‡ * 'भग' शब्द के १४ अर्थ होते हैं, यथा- १ ज्ञानवन्त, २ महात्म्यवन्त, ३ यशस्वी, ४ वैराग्यवन्त, ५ मुक्तात्मा-निर्लोभी, ६ रूपवन्त, ७ वीर्यवन्त, ८ प्रयत्नवन्त उत्साही, ९ मुमुक्षु, १० श्रीमन्त-अति शयादियुक्त, ११ धर्मवन्त और ऐश्वर्यवन्त-सर्व पूज्य यह १२ अर्थ तो अरिहंत के लागू होते हैं । और सूर्य तथा योनी यह २ अर्थ लागू नहीं होते हैं ।

‖ संसार से पार करे उसे तीर्थ कहते हैं । ग्राम घर पर्वत नदी पार कर्ता नहीं होने से भगवन्त ने उक्त चार ही तीर्थ कहे हैं ।

हैं. "पुरिससिहाणं" जैसे सिंह सूरवीर निडर वनचरों को क्षोभित करता स्वेच्छा चार वन में प्रवृतता है तैसे भगवान भी संसार रूप वन में निडर हो पाखंडियों को क्षोभित करते स्वयं के प्रवर्त्ता ये मार्ग में प्रवृत्तते हैं। "पुरिस वर पोंडरीया णं" जैसे पौंडरिक कमल कीचड और पानी से अलिप्त रहा हुआ रूप और सुगन्ध कर अनुपम होताहै तैसे भगवान भी काम रूप कीचड और भोग रूप पानी से अलिप्त रह महा दिव्य रूप और महा यश रूप महा सुगन्ध कर अनुपम होते हैं.卐 "पुरिसवर गंधहत्थिणं" जैसे गन्ध हस्ति चतुरंगणी सेना में श्रेष्ट और अपने शरीर की गन्ध से पर चक्री की सेना का पलायन करता है तथा अस्त्र शस्त्र के प्रहार की परवाह नहीं करता हुआ शत्रु सेना का दमन करता आगे बढ़ाही चला जाता है तैसे भगवान भी चतुर्विध संघ में श्रेष्ठ सदुपदेश पराक्रम से और यशः रूप गन्ध से पाखंडियों को भगाते हैं. पाखंडियों की तरफ से होते हुए परिषहोपसर्ग की चिन्ता नहीं करते मुक्ति पथ में आगे बढ़े चले ही जाते हैं. "लोगुत्तमाणं" व्यवहारिक और निश्चयिक सम्पत्ती कर सर्व लोक के सब प्राणियों से भगवान ही अत्युत्तम होते हैं. "लोग नहाणं" अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त के रक्षक होने से सर्व लोक के भगवान ही नाथ हैं. "लोग हियाणं" उपदेश और प्रवृत्ती द्वारा भगवान ही सब लोक में हित कर्ता हैं. "लोग पइवाणं" दीपक के समान भव्यों के हृदय रूप सदन का मिथ्या रूप घोरन्धकार का नाश कर ज्ञान प्रकाश से सत्यासत्य धर्माधर्म का यथा तथ्य स्वरूप दर्शाने वाले भगवान ही देश प्रकाशी सच्चे प्रदीप हैं. "लोग पज्जोयगराणं" सूर्य के समान जन्म समय

卐 गाथा—जहा पउम जलो जायं नोव लिप्पइ वारीणा ॥ एवं अलित कामेयं । तं वूय बुम महाणं ॥ उत्रा० अ० २५,

अर्थ—जैसे पद्म कमल कीचड़ से उत्पन्न हो जल में वृद्धी पा पुनः कीचड़ और पानी से लिप्त नहीं होता है तैसे ही महात्मा भी काम रूप कीचड़ से उत्पन्न हो भोग रूप पानी में वृद्ध पाये काम भोग का त्याग कर पुनः काम भोग से लिप्त नहीं होते हैं।

में तथा केवल ज्ञान हुए बाद सब लोक में प्रकाश कर्ता होने से भगवान ही सर्व प्रकाशिक सच्चे सूर्य हैं. [आगे का सूत्रार्थ दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं.]

दृष्टान्त—किसी धनाढ्यको देशान्तरमें जाते हुए रास्तेमें चोर भुलाकर भयंकर अटवीमें लेगये और धन छीनकर उसकी आंखोंके पट्टी बांधकर उसे झाडसे बांधकर चले गये इतने में उसके सुभाग्योदयसे कोई महाराज सिकारार्थ चतुरंगनी सेना के साथ उस अटवी में आये उस दुखी की दयाला कर कहा डरे मत, यों अभय दिया. आखों की पट्टी खोल चक्षु दान दिया. इच्छित स्थान जाने का रास्ता बता मार्ग दान दिया. पहुंचाने को सुभट साथ में दे शरण दिया, उप जीविका के लिये द्रव्य दे जीवित दान दिया. फिर ऐसे फंद में नहीं फसना इत्यादि बोध दानदे उसे इच्छित स्थानके पथमें पहुंचाया.

भावार्थ—ज्ञानादि गुण रूप द्रव्य के धारक जीवरूप मुसाफिरको मुक्त पथ में जाते संसार रूप अटवी में कर्म रूप चोर भुलाकर लेगये. ज्ञानादि द्रव्य हरन कर अज्ञान की पट्टी बांध ममत्व रूप वृक्ष से बाध दिया तीर्थकर रूप महाराजा चतुर्विध संघ रूप सेना से परिवृत पाखण्ड रूप क्षुद्रों की शिकारार्थ संसाराटवी में फिरते दुखी जीवों को देख करुणा लाकर "माहणो माहणो" अर्थात् मत मारो, मत मारो ऐसे दया मय निर्घोषसे 'अभयदयाणं' सब जगत जन्तुओं को सातों भय से मुक्त करने वाले, छुडाने वाले सच्चे अभयदाता भगवान ही हैं "चक्खू दयाणं" ज्ञान रूप नेत्रों पर बंधा ज्ञानावर्णीय कर्म (अज्ञान) रूप पट्टी को दूर कर ज्ञान रुप चक्षु के दाता भगवान ही हैं. "मग्ग दयाणं" अनादि से भूले संसारारण्य परिभ्रमण करते प्राणी को मोक्ष मार्ग के दर्शक व प्रवर्त्तक भगवान ही हैं. 'शरण दयाणं' चतुरगति के दुःख से त्रासित प्राणी को ज्ञान रूप सुभट के शरण दाता भगवान ही हैं. "जीवदयाणं" मोक्षस्थान तक पहुचाने को संयम रूप उपजीवित के दाता भगवान ही हैं। "वोही दयाणं"—फिर प्राणी संसार के फन्द में न फसता सीधा सिद्ध गति को प्राप्त करले ऐसे सद्बोध दाता भगवान ही हैं।

(इति भावार्थ) "धम्मदयाणं" आत्मोन्नति से पतित जीवों को धारन करने वाला श्रुत और चारित्र धर्म के दाता भगवान ही हैं। "धम्मदेशीयाणं" एक योजन के मंडल में रही द्वादश परिषद को स्याद्वाद सत्य शुद्ध निरोपम यथा तथ्य धर्म का स्वरूप धर्म देशना (व्याख्यान) द्वारा दर्शाने वाले भगवान ही हैं " धम्म नायगाणं " चतुर्विधसंघ रूप तांडे के रक्षक व परिवृतक नायक (मालिक) भगवन्त ही हैं। " धम्मसार हीणं" धर्म रूप रथारूढ चारों तीर्थ को उन्मार्गसे जाते फिरा कर सन्मार्ग में प्रवर्ताने—(लगाने) वाले सच्चे सारथी भगवान ही हैं।

दृष्टान्त—एक बडा सार्थवाही सब मार्ग का ज्ञाता बहुत परिवार से परिवर्त हुआ रास्ते जाते लोगों से बोला कि—"अहो लोगों ! आगे मरुस्थल में जल वृक्ष रहित अटवी को प्रसार करते दुःख परिषह प्राप्त हो उसे समभाव से सहन करते प्रसार करना। अटवी में एक मनोरम्य बाग है उसे देखने से ही महा दुःख होता है और उसमें जाने वाला प्राण मुक्त होता है, इसलिये उसकी तरफ दृष्टी भी नहीं करते सीधे २ रास्ते से अटवी समाप्त करना। आगे सब सुखदाता उपवन प्राप्त होगा।" यह सार्थवाही का उपदेश जिन्होंने नहीं माना वे क्षुधा तृषा से व्याकुल बने उस बगीचे में गये और किम्पाक वृक्ष के अतिमिष्ट फलों को भक्षण करते ही कोट्पात विच्छु के दंश से भी अधिक वेदना से व्याकुल बने अरराट करते अकाल मृत्यु को प्राप्त हुये। और जिन्हों ने सार्थवाही की आज्ञा मानी वे अटवी को पार कर उपवन में जा परमसुखी बने।

भावार्थ—सार्थवाही सो अरिहन्त भगवान, साथ का परिवारसो चारों संघ अटवी सो युवा अवस्था प्राप्त बगीचा सो स्त्री, जिन्होंने अरिहन्त की आज्ञा का भंग किया वह दुःखी और पालन की सो मोक्ष उपवन को प्राप्त कर सुखी हुए।

"अपडिहय वरणाण दंसण धराणं" अप्रतिहत—दूसरे से घात को प्राप्त न होवे ऐसे केवल ज्ञान और केवल दर्शन के धारक. "वियट्ट छउमाणं" छद्मस्थ (ढकी हुई) अवस्था से निवृर्त कर्म आच्छादन से भगवान के आत्म प्रदेश खुल्ले होगये। "जिणाणं, जावयाणं" जिन्होंने सारे जगत् जन्तुओं का पराभव किया ऐसे कर्म शत्रुओं को अरिहन्तने जीते. और अपने अनुयायियों को भी कर्म शत्रु जीतने की युक्ति बता कर जिताते हैं 'तिन्नाणं तारियाणं" दुस्तर संसार सागर को भगवान आप तिरते हैं और अपने अनुयायियों को तारते हैं। "बुद्धाणं, बोहीयाणं" भगवान स्वयं महा तत्त्वज्ञ हैं और अपने अनुयायियों को भी तत्त्वज्ञ बनाते हैं। "मुत्ताणं, मोयगाणं" राग द्वेष कर समुत्पन्न हुये कर्म बन्धन से भगवान मुक्त हुये—छूटे और अपने अनुयायियों को भी उक्त बन्धन से मुक्त करते हैं—छुडाते हैं। "सव्वनु सव्व दरसीणं" सर्वज्ञ सर्व दर्शी, सूक्ष्म बादर त्रस स्थावर, कृत्रिम अकृत्रिम, नित्य आनित्य, इत्यादि जगत् के सब पदार्थों को ज्ञान से जानते हैं और दर्शन से देखते हैं।

यह यत्किञ्चित अरिहन्त के गुणों का कथन किया, किन्तु ऐसे २ अनन्तान्त गुण गण के धारक आरिहन्त भगवन्त होते हैं।

———:o:———

दश कर्म भूमि क्षेत्र के तीनों काल की चौवीसी के ७२० तीर्थंकरों के नाम।

जम्बुद्वीप भरत क्षेत्र, भूत काल के २४ तीर्थंकर, १ श्री केवल ज्ञानीजी २ श्री निर्वाणीजी, ३ श्री सागरजी, ४ श्री महाशयजी, ५ श्री विमल प्रभुजी, ६ श्री सर्वानुभुति जी, ७ श्री श्रीधरजी, ८ श्री श्रीदत्त जी, ९ श्री दामोदरजी, १० श्री सुतेजजी, ११ श्री स्वामीनाथजी, १२ श्री मुनिसुव्रतजी, १३ श्री समितिजिनजी, १४ श्री शिवगतीजी, १५ श्री अस्तांग जी, १६ श्री नमीश्वरजी, १७ श्री अनिलनाथजी, १८ श्री यशोधरजी,

१९ श्री कृतार्थजी, २० श्री जिनेश्वरजी, २१ श्री शुद्धमतिजी, २२ श्री शिवंकरजी, २३ श्री स्यान्दननाथजी और २४ श्री सम्प्रातजी।

जम्बुद्वीप भरतक्षेत्र के वर्तमान के २४ तीर्थंकरों के नामादि— १ भूत काल की चौबीसीके अंतिम (२४वें) तीर्थंकरके मोक्ष गये बाद अठारह(१८[1]) क्रोडा क्रोड[2] सागरोपम बाद इक्षाग भूमि[3] (ईख के खेत के किनारे) में नाभी कुलकर की पत्नी मरु देवी से वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर 'श्री ऋषभदेवजी' (आदिनाथजी) का जन्म हुआ, इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण का जैसा पीला, वृषभ (बैल) का लक्षण, देहमान ५०० धनुष का, आयुष्य ८४ लक्ष[4] पूर्व का, जिसमें ८३ लक्ष पूर्व गृहवास में रह, और एक लक्ष पूर्व संयमपाल, तीसरे आरे के ३ वर्ष ८॥ महीने बाकी थे तब दश हजार साधुयों के साथ मोक्ष को प्राप्त हुये।

२ फिर ५० लक्ष क्रोड सागर बाद अयुध्या नगरी के जित शत्रु राजा की विजयादेवी रानी से दूसरे तीर्थंकर 'श्री अजितनाथजी' का जन्म हुआ। इनका शरीर सुवर्ण जैसा पीला, हस्तिका लक्षण, देहमान ४५० धनुष्य का, आयुष्य ७२ लक्ष पूर्व का जिसमें ७१ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे एक लक्ष पूर्व संयम पाल कर एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये।

---

[1] पहिला आरा ४ कोटाकोटिक सागरोपम का, दूसरा आरा ३ कोटाकोटी सागरोपम का, तीसरा आरा २ कोटाकोटी सागरापेम का यों ९ सागर उत्सर्पिनी काल के और ९ कोटाकोटी अवसर्पिनी काल के तीनों आरे के ऐसे १८ कोटा कोटी सागर तक तीर्थंकर उत्पन्न होने का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

[2] क्रोड की संख्या को क्रोड की संख्या से गुना करकेजो अंक आवे उसे क्रोडाक्रोड कहते हैं.

[3] उस वक्त तक ग्राम नहीं वसे थे.

[4] लक्षण—चिन्हको कहते हैं, यह पांव में होते हैं कोई छाती में भी कहते हैं.

[5] ७० लक्ष ५६ हजार वर्ष को एक क्रोड से गुणा करे तब ७०५६०००००००००० इतने वर्ष एक पूर्व के होते हैं।

३ फिर १० लक्ष क्रोड सागर बाद श्रावस्ति नगरी के जीतारी राजा की सेनादेवी रानी से तीसरे तीर्थंकर 'श्री सम्भवनाथजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, अश्व का लक्षण, देहमान ४०० धनुष्य का आयुष्य ६० लक्ष पूर्व का. जिसमें ५९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयोंके साथ मोक्ष गये.

४ फिर १० लक्ष क्रोड सागर बाद बनीता नगरी के संवर राजा की सिद्धार्था रानी से चौथे तीर्थंकर 'श्री अभिनन्दनजी' का जन्म हुआ. इन का शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला कपि (बंदर) का लक्षण. देहमान ३५० धनुष्य का. आयुष्य ५० लक्ष पूर्व का. जिसमें ४९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे. एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये.

५ फिर ९ लक्ष क्रोड सागर बाद कंचनपुर नगर के मेघरथ राजा की सुमंगला रानी से पांचवें 'श्री सुमतिनाथजी' तीर्थंकर का जन्म हुआ इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, क्रौंच पक्षी का लक्षण, देहमान ३०० धनुष्य का, आयुष्य ४० लक्ष पूर्व का, जिसमें ३९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे एक पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये।

६ फिर ९० हजार क्रोड सागर बाद कौसम्बी नगरी के श्रीधर राजा की सुसिमा रानी से छट्ठे तीर्थंकर 'श्री पद्मप्रभुजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण मानक जैसा लाल, पद्म कमल का लक्षण, देहमान २५० धनुष्य का, आयुष्य ३० लक्ष पूर्व का, जिसमें २९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे. एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये।

७ फिर ९ हजार क्रोड सागर के बाद वाणारसी नगरी के प्रतिष्ट राजा की पृथ्वी देवी रानी से सातवें तीर्थंकर 'श्री सुपार्श्वनाथजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, स्वस्तिक का लक्षण, देहमान २०० धनुष्य का, आयुष्य २० लक्ष पूर्व का, जिसमें १९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्षको गये.

१९ श्री कृतार्थजी, २० श्री जिनेश्वरजी, २१ श्री शुद्धमतिजी, २२ श्री शिवंकरजी, २३ श्री स्यान्दननाथजी और २४ श्री सम्प्रातजी।

जम्बुद्वीप भरतक्षेत्र के वर्तमान के २४ तीर्थंकरों के नामादि— १-भूत काल की चौबीसीके अंतिम (२४वें) तीर्थंकरके मोक्ष गये बाद अठारह (१८*) क्रोडा क्रोड † सागरोपम बाद इक्षाग भूमि ‡ (ईख के खेत के किनारे) में नाभी कुलकर की पत्नी मरु देवी से वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर 'श्री ऋषभदेवजी' (आदिनाथजी) का जन्म हुआ, इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण का जैसा पीला, वृषभ (बैल) का लक्षण, देहमान ५०० धनुष का, आयुष्य ८४ लक्ष§ पूर्व का, जिसमें ८३ लक्ष पूर्व गृहवास में रह, और एक लक्ष पूर्व संयमपाल, तीसरे आरे के ३ वर्ष ८॥ महीने बाकी थे तब दश हजार साधुयों के साथ मोक्ष को प्राप्त हुये।

२ फिर ५० लक्ष क्रोड सागर बाद अयुध्या नगरी के जित शत्रु राजा की विजयादेवी रानी से दूसरे तीर्थंकर 'श्री अजितनाथजी' का जन्म हुआ- इनका शरीर सुवर्ण जैसा पीला, हस्तिका लक्षण, देहमान ४५० धनुष्य का, आयुष्य ७२ लक्ष पूर्व का जिसमें ७१ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे एक लक्ष पूर्व संयम पाल कर एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये।

* पहिला आरा ४ कोटाकोटिक सागरोपम का, दूसरा आरा ३ कोटाकोटी सागरोपम का, तीसरा आरा २ कोटाकोटी सागरोपम का यों ९ सागर उत्सर्पिनी काल के और ९ कोटाकोटी अवसर्पिनी काल के तीनों आरे के ऐसे १८ कोटा कोटी सागर तक तीर्थंकर उत्पन्न होने का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

† क्रोड की संख्या को क्रोड की संख्या से गुना करकेजो अंक आवे उसे क्रोडाक्रोड कहते हैं.

‡ उस वक्त तक ग्राम नहीं वसे थे.

॥ लक्षण—चिन्हको कहते हैं, यह पांव में होते हैं कोई छाती में भी कहते हैं.

§ ७० लक्ष ५६ हजार वर्ष को एक क्रोड से गुणा करे तब ७०५६०००००००००० इतने वर्ष एक पूर्व के होते हैं।

३ फिर १० लक्ष क्रोड सागर बाद श्रावस्ति नगरी के जीतारी राजा की सेनादेवी रानी से तीसरे तीर्थंकर 'श्री सम्भवनाथजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, अश्व का लक्षण, देहमान ४०० धनुष्य का आयुष्य ६० लक्ष पूर्व का. जिसमें ५९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयोंके साथ मोक्ष गये.

४ फिर १० लक्ष क्रोड सागर बाद बनीता नगरी के संवर राजा की सिद्धार्था रानी से चौथे तीर्थंकर 'श्री अभिनन्दनजी' का जन्म हुआ. इन का शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला कपि (बंदर) का लक्षण. देहमान ३५० धनुष्य का. आयुष्य ५० लक्ष पूर्व का. जिसमें ४९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे. एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये.

५ फिर ९ लक्ष क्रोड सागर बाद कंचनपुर नगर के मेघरथ राजा की सुमंगला रानी से पांचवें 'श्री सुमतिनाथजी' तीर्थंकर का जन्म हुआ इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, क्रौंच पक्षी का लक्षण, देहमान ३०० धनुष्य का, आयुष्य ४० लक्ष पूर्व का, जिसमें ३९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे एक पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये।

६ फिर ९० हजार क्रोड सागर बाद कौसम्बी नगरी के श्रीधर राजा की सुसिमा रानी से छट्ठे तीर्थंकर 'श्री पद्मप्रभुजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण मानक जैसा लाल, पद्म कमल का लक्षण, देहमान २५० धनुष्य का, आयुष्य ३० लक्ष पूर्व का, जिसमें २९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे. एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये।

७ फिर ९ हजार क्रोड सागर के बाद वाणारसी नगरी के प्रतिष्ट राजा की पृथ्वी देवी रानी से सातवें तीर्थंकर 'श्री सुपार्श्वनाथजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, स्वस्तिक का लक्षण, देहमान २०० धनुष्य का, आयुष्य २० लक्ष पूर्व का, जिसमें १९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्षको गये.

८ फिर ९०० क्रोड सागर बाद चन्द्रपुरी नगरी के महासेन राजा की लक्ष्मना देवी रानीसे आठवें तीर्थंकर 'श्री चन्द्रप्रभुजी' का जन्म हुआ देह का वर्ण हीरे के जैसा श्वेत, चन्द्रमा का लक्षण देहमान १५० धनुष्य का आयुष्य १० लक्ष पूर्व का, जिसमें ९ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे. एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये ।

९ फिर ९० क्रोड सागर बाद काकन्दी नगरी के सुग्रीव राजा की रामादेवी रानी से नववें तीर्थंकर 'श्री सुविधीनाथजी' का जन्म हुआ इनके शरीर का वर्ण हीरे के समान श्वेत, मगरमच्छ का लक्षण, देहमान १०० धनुष्य का, आयुष्य २ लक्ष पूर्व का, जिसमें एक पूर्व गृहवास में रहे और एक लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये.

१० फिर ९ क्रोड सागर पीछे भद्दलपुर नगरी के दृढ रथ राजाकी नन्दादेवी रानी से दशवें तीर्थंकर 'श्री शीतलनाथ जी' का जन्म हुआ. देह का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, श्री वत्सस्वस्तिक का लक्षण, देहमान ९० धनुष्य का, आयुष्य १ लक्ष पूर्व का, जिसमें पौन लक्ष पूर्व गृहवास में रहे, और पाव लक्ष पूर्व संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये.

११ फिर एक क्रोड सागर में एक अब्ज छांसट लक्ष छब्बीस हजार वर्ष कम के बाद सिंहपुरी नगरी के विष्णु राजा की विष्णु देवी रानी से इग्यारवें तीर्थंकर 'श्री श्रेयासनाथ जी हुये । इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, गेंडे का लक्षण, देहमान ८० धनुष्य का, आयुष्य ८४ लक्ष पूर्व का, जिसमें ६३ लक्ष पूर्व गृहवास में रहे. २१ लक्ष पूर्व संयम पाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये ।

१२ फिर ५४ सागर बाद चम्पापुरी नगरी के वसुपुज्य राजा की जयादेवी रानी से बारवें तीर्थंकर 'श्री वासपूज्यजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण माणक जैसा लाल भैंसे का लक्षण, देहमान ७० धनुष्य, आयुष्य ७२ लक्ष वर्ष का, जिसमें १८ लक्ष वर्ष गृहवास में रहे, ५४

लक्ष वर्ष संयम पाल ६०० साधुयों के साथ मोक्ष गये।

१३ फिर ३० सागर बाद कम्पिलपुर नगर के कृतवर्म राजा की श्यामादेवी रानी से तेरवें तीर्थंकर 'श्री विमलनाथ जी' का जन्म हुआ इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, बराह का लक्षण, देहमान ६० धनुष्य का, आयुष्य ६० लक्ष वर्षका जिसमें ४५ लक्ष वर्ष गृहवास में रहे और १५ लक्ष वर्ष संयमपाल ६०० साधुयों के साथ मोक्ष गये।

१४ फिर ९ सागर बाद अयोध्या नगरी के सिंहसैन राजा की सुयशा रानी से चौदवें तीर्थंकर 'श्री अनन्तनाथ जी' का जन्म हुआ, इन के शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, सीकरे पक्षी का लक्षण, देहमान ५० धनुष्य का, आयुष्य ३० लक्ष वर्ष का, जिसमें २२॥ लक्ष वर्ष गृहवास में रहे और ७॥ लक्ष वर्ष संयमपाल ७०० साधुयों के साथ मोक्ष गये.

१५ फिर ४ सागर के बाद रत्नपुरी के भानु राजा की सुवृता रानी से पन्द्रहवें तीर्थंकर 'श्री धर्मनाथजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, बज्र का लक्षण, देहमान ४५ धनुष्य का आयुष्य १० लक्ष वर्ष का, जिसमें से ९ लक्ष वर्ष गृहवास में रहे, और एक लक्ष वर्ष संयमपाल ८०० साधुयों के साथ मोक्ष गये।

१६ फिर ३ सागर में पौनपल्य कम के बाद हस्तनापुर के विश्वसेन राजा की अचिला रानी से सोलवें तीर्थंकर 'श्री शान्तिनाथजी' का जन्म हुआ, इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, मृग का लक्षण, देहमान ४० धनुष्य, आयुष्य १ लक्ष वर्ष का जिसमें ७५ हजार वर्ष गृहवास में रहे और २५ हजार वर्ष संयमपाल ९०० साधुयों के साथ मोक्ष गये.

१७ फिर आधे पल्योपमबाद गजपुर नगर के सुर राजा की श्रीदेवी रानी से सत्रहवें तीर्थंकर 'श्री कुंथुनाथजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला. बकरे का लक्षण, देहमान ३५ धनुष्य का आयुष्य ९५ हजार वर्ष का. जिसमें से ७१। हजार वर्ष गृहवास में रहे,

और २३॥ हजार वर्ष संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये ।

१८ फिर पाव पल्योपम में से एक क्रोड एक हजार वर्ष कम के बाद हस्तिनापुर नगर के सुदर्शन राजा की देवीरानी से अठारवें तीर्थंकर 'श्री अरहनाथजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला, नन्दावर्त स्वस्तिक का लक्षण, देह का नाप ३० धनुष्य का, आयुष्य ८४ हजार वर्ष का, जिसमें से ६३ हजार वर्ष गृहवास में रहे और २१ हजार वर्ष संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये ।

१९ फिर एक क्रोड एक हजार वर्ष बाद मिथला नगरी के कुम्भ राजा की प्रभावती रानी से उन्नीसवें तीर्थंकर 'श्री मल्लीनाथजी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण पन्ने जैसा हरा. कुम्भका लक्षण देहमान २५ धनुष्य का, आयुष्य ५५ हजार वर्षका जिसमें से १०० वर्ष गृहवास में रहे ५४९०० वर्ष संयमपाल ५०० साधु और ५०० आर्यायों के साथ मोक्ष गये ।

२० फिर ५४ लक्ष वर्ष बाद राज गृही नगरी के सुमित्र राजा की पद्मावती रानी से बीसवें तीर्थंकर 'श्री मुनिसुवृतजी' का जन्म हुआ इनके शरीर का वर्ण नीलम जैसा श्याम कुर्म काछवे का लक्षण देहमान २० धनुष्य का, आयुष्य ३० हजार वर्ष का जिसमें से २२॥ वर्ष गृह-वास में रहे ७॥ हजार वर्ष संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये,

२१ फिर ६ वर्ष बाद मथुरा नगरी के विजय राजा की विप्रादेवी रानी से इक्कीसवें तीर्थंकर 'श्री नमीनाथजी' का जन्म हुआ इन के शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला. निलोत्पल कमल का लक्षण देहमान १५ धनु-ष्य का. आयुष्य १० हजार वर्ष का जिसमें से ९ हजार वर्ष गृहवास में और एक हजार वर्ष संयमपाल एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये.

२२ फिर ५ लक्ष वर्ष बाद सौरीपुर नगर के समुद्र विजय राजा की शिवा देवी रानी से बाईसवें तीर्थंकर 'श्री अरिष्टनेमीनाथ जी' का जन्म हुआ, इनके शरीर का वर्ण नीलम जैसा श्याम, शंख का लक्षण, देहमान

१० धनुष्य का, आयुष्य १ हजार वर्ष का जिसमें से ३०० वर्ष गृहवास में रहे और ७०० वर्ष संयमपाल ५३६ साधुयों के संग मोक्ष गये।

२३ फिर ८४ हजार वर्ष बाद बाणारसी नगरी के अश्वसेन राजा की आमांदेवी रानी से तेईसवें. तीर्थंकर 'श्री पार्श्वनाथ जी' का जन्म हुआ. इनके शरीर का वर्ण पन्ने जैसा हरा सर्प का लक्षण देहमान ९ हाथ का, आयुष्य १०० वर्ष का जिसमें ३० वर्ष गृहवास में रहे और ७० वर्ष संयमपाल कर एक हजार साधुयों के साथ मोक्ष गये,

२४ फिर २५० वर्ष पीछे क्षत्री कुंड नगर के सिद्धार्थ राजा की त्रिसला देवी रानी से चौबीसवें तीर्थंकर 'श्री महावीर स्वामी' का जन्म हुआ इनके शरीर का वर्ण सुवर्ण जैसा पीला सिंहका लक्षण देहमान ७ हाथ का आयुष्य ७२ वर्षका जिसमें से ३० वर्ष गृहवास में रहे और ४२ वर्ष संयमपाल चौथे आरे के ३ वर्ष ८॥ महीने वाकी रहे तब अकेलेही मोक्ष को गये.

—:०:—

प्रथम तीर्थंकर 'श्री ऋषभदेवजी' से लगाकर अन्तिम तीर्थंकर 'श्री महावीर स्वामी जी' तक एक क्रोडा क्रोड सागर से कुछ अधिक उसमें, ४२००० वर्ष कम का अन्तर जानना।

—:०:—

उक्त बतमान चौबीसी के अन्तर शाश्वते हैं. भूत काल म अनन्त चौबीसी इसही अन्तर से हुई और भविष्य काल में भी अनन्त चौबीसी इसही अन्तर से होगी. सब तीर्थंकरों का देहमान आयुष्य उक्त वर्तमान चौवीसी के जितना ही जानना. विशेष इतना ही है कि-उत्सर्पिनी काल में प्रथम तीर्थंकर से अन्तिम तीर्थंकर तक उक्त प्रमाने हो और अवसर्पिनी काल में अन्तिम तीर्थंकर से पहिले तक उलट कहना.

यह जंबूद्वीप दक्षिण भर्त क्षेत्र के वर्तमान काळ में हुए चौवीस तीर्थंकरों के गणधरादि परिवार जानना।

तीर्थंकरों के नाम	गणधर संख्या	केवल ज्ञानी	मनःपर्यव ज्ञानी	अवधी ज्ञानी	चउदेपूर्व पाठी	वेक्रयल ब्धावंत	चर्चावा दीविजय	साधु	साध्वी	श्रावक	श्राविका
श्री ऋषभदेव जी	८४	२००००	१३५००	९०००	४७५०	२०६००	१२६५०	८४०००	३०००००	३५००००	५५४०००
श्री अजितनाथ जी	९५	२२०००	१२५००	९४००	३७२०	२०४००	१२४००	१०००००	३३००००	२९८०००	५४५०००
श्री संभघनाथ जी	१०२	१५०००	१२१५०	९६००	२१५०	१९८००	१२०००	२०००००	३३६०००	२९३०००	६३६०००
श्री अभिनंदन जी	१११	१४०००	११६५०	९८००	१५००	१९०००	११०००	३०००००	६३००००	२८८०००	५२७०००
श्री सुमतीनाथ जी	१००	१३०००	१०४५०	११०००	२४००	१८४००	१०४००	३२००००	५३००००	२८१०००	५१६०००
श्री पद्मप्रभु जी	१०७	१२०००	१०३००	१००००	२३००	१६१०८	९६००	३३००००	४२००००	२७६०००	५०५०००
श्री सुपार्श्वनाथ जी	९५	११०००	९१५०	९०००	२०३०	१५३००	८४००	३०००००	४३००००	२५७०००	४९३०००
श्री चन्द्राप्रभु जी	९३	१००००	८०००	८०००	२०००	१४०००	७६००	२५००००	३८००००	२५००००	४७९०००
श्री सुविधिनाथ जी	८८	७५००	७५००	८४००	१५००	१३०००	६०००	२०००००	१२००००	२२९०००	४७१०००
श्री शीतलनाथ जी	८२	७०००	७५००	७२००	१४००	१२०००	५८००	१०००००	१०६०००	२८९०००	४५८०००
श्री श्रेयांशनाथ जी	७७	६५००	६०००	६०००	१३००	११०००	५०००	८४०००	१०३०००	२७९०००	४४८०००
श्री वासु पूज्य जी	६६	६०००	६५००	५४००	१२००	१००००	४७००	७२०००	१०००००	२१५०००	४३६०००
श्री विमलनाथ जी	५७	५५००	५५००	४८००	११००	९०००	३६००	६८०००	१००८००	२०८०००	४२४०००
श्री अणंतनाथ जी	५०	५०००	५०००	४३००	१०००	८०००	३२००	६६०००	६२०००	२०६०००	४०१०००
श्री धर्मनाथ जी	४३	४५००	४५००	३६००	९००	७०००	२८००	६४०००	६२४००	२०४०००	४१३०००
श्री शांतीनाथ जी	३६	४३००	४०००	३०००	८००	६०००	२४००	६२०००	६१६००	१९००००	३९००००
श्री कुंथुनाथ जी	३५	३२००	३३४०	२५००	६७०	५१००	२०००	६००००	६०६००	१७९०००	३८१०००
श्री अरहनाथ जी	३३	२८००	२५५१	२६००	६१०	७३००	१६००	५००००	६००००	१८४०००	३७२०००
श्री मल्लीनाथ जी	२८	२२००	१७५०	२२००	६६८	२९००	१४००	४००००	५५०००	१८३०००	३७००००
श्री मुनीसुव्रत जी	१८	१८००	१५००	१८००	५००	२०००	१२००	३००००	५००००	१७२०००	३५००००
श्री नमीनाथ जी	१७	१६००	१२५०	१६००	४५०	५०००	१०००	२००००	४१०००	१७००००	३४८००४
श्री रिष्टनेमी जी	११	१५००	१०००	१५००	४००	१५००	८००	१८०००	४००००	१६९०००	३३६०००
श्री पार्श्वनाथ जी	१०	१०००	७५०	१०००	३५०	११००	६००	१६०००	३८०००	१६४०००	३३९०००
श्री महावीर स्वामी	११	७००	५००	७००	३००	७००	४००	१४०००	३६०००	१५९०००	३१८०००

१ श्रेणिक राजा का जीव प्रथम नर्क से आकर पाहिले श्री पद्मनाभजी होंगे? २ श्री महावीर स्वामी जी के काका सुपार्श्व जी का जीव देवलोक से आकर दूसरे 'श्री सुरदेवजी' होंगे. ३ कोणिक राजा का पुत्र उदाइ राजाका जीव देवलोक से आकर तीसरे 'श्री सुपार्श्वजी' होंगे. ४ पोटिला अनगार का जीव तीसरे देवलोक से आकर चौथे 'श्री स्वयंप्रभुजी' होंगे. ५ दृढ युद्ध श्रावक का जीव पांचवें देवलोक से आकर पांचवें 'श्री सर्वानुभुतिजी' होंगे. ६ कार्तिक शेठ का जीव प्रथम देवलोक से आकर छट्ठे 'श्री देवश्रुतिजी' होंगे[2]. ७[3] शंख श्रावक का जीव देवलोक से आकर सातवें 'श्री उदयनाथजी' होंगे. ८[4] आणन्द श्रावक का जीव देवलोक से आकर आठवें 'श्री पेढालजी' होंगे. ९[5] सुनन्द श्रावक का जीव देवलोक से आकर नववें 'श्री पोटिल्लजी' होंगे. १०[6] पोखली श्रावक के धर्म भाई सतक श्रावक का जीव देवलोक से आकर दशवें 'श्री सतकजी' होंगे. ११ कृष्ण जी की माता देवकी रानी का जीव नर्क से आकर ग्याहरवें 'श्री मुनिव्रतजी' होंगे. १२ श्री कृष्णजी का जीव तीसरी नर्क से आकर बारहवें 'श्री अममजी' होंगे. १३ सुजेष्टा जी का पुत्र, सत्य की रुद्र का जीव, नर्क से आकर तेरहवें 'श्री निःकषायजी' होंगे. १४ कृष्ण जी के भ्राता बलभद्रजी का जीव पांचवें देवलोक से आकर चौदहवें 'श्री निष्पुलाकजी' होंगे. १५ राजगृही के धन्ना सार्थ वाही की बन्धव पत्नी सुलसा श्राविका का जीव देवलोक से आकर पन्द्रहवें 'श्री निर्ममजी' होंगे. १६ बलभद्रजी की माता रोहिणी का जीव देवलोक

१–पाटली पुर पति, २–प्रथम देवलोक के इन्द्र का आयुष्य दो सागरोपम का है और इन का अन्तर थोडा है इस लिये जो कार्तिक शेठ का जीव प्रथम देवलोक का इन्द्र हुआ हैं वह इन को नहीं जानना किन्तु दूसरे कोई कार्तिक शेठ हैं. ३–भगवती सूत्र में कहे थे शंख श्रावक यह नहीं हैं परन्तु कोई दूसरे हैं ४–उपाशक दशांग में कहे हुवे महावीर स्वामी के श्रावक यह नहीं है परन्तु कोई दूसरे हैं. यह समक्य दृष्टि, मांडलिक राजा, चक्रवर्ती, साधु, केवल ज्ञानी और तीर्थंकर इन ६ पद्वीयों के धारक होंगे. ५–यह भी उक्त ६ पद्वीयों के धारक होंगे ६–यह भी उक्त ६ पद्वी पावेंगे ७–कितनेक कहते हैं कि यह

से आकर सोलहवें 'श्री चित्रगुप्तजी' होंगे. १७ कोलापाक वेहराने वाली रेवती गाथा पत्नी का जीव देवलोक से आकर सत्रहवें 'श्री समाधिनाथजी' होंगे. १८ सततिलक श्रावक का जीव देवलोक से आकर अठारहवें 'श्री संवरनाथजी' होंगे. १९ द्वारका-दाहक द्वीपायन ऋषि का जीव देवलोक से आकर उन्नीसवें 'श्री यशोधरजी' होंगे. २० करण का जीव देवलोक से आकर बीसवें 'श्री विजयजी' होंगे. २१ निग्रन्थ पुत्र (मल्लनारद) का जीव देवलोक से आकर इक्कीसवें 'श्री मल्यदेवजी' होंगे. २२ अम्बन्ड श्रावक का जीव देवलोक से आकर बाईसवें 'श्री देवचन्द्रजी' होंगे. २३ अमर का जीव देवलोक से आकर तेईसवें 'श्री अनन्तवीर्यजी' होंगे. और २४ सतक जी का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से आकर चौबीसवें 'श्री भद्रकरजी' होंगे.*

१३ वें तीर्थंकर होंगे परन्तु १३ वें का अन्तर ४६ सागर का होता है इस लिये यह मिलता नहीं हैं किन्तु पश्चानुपूर्वी से १३वें होते हैं. ८–कितनेक गांगली तापस को भी सत तिलक कहते हैं. तत्त्व केवली गम्य. ९–इन को कितनेक १०० कौरवों के भाई भी कहते हैं और कितनेक चंपापुरी पति श्री वास पूज्यजी के परिवार के भी कहते हैं तत्त्व केवली गम्य १०–कितनेक इन को रावण के वक्त का नारद कहते हैं. ११–यह उववाइ सूत्र में कहे अम्बर श्रावक नहीं हैं किन्तु सुलसा श्राविका की परीक्षा की वे हैं

* उक्त चौवीस तीर्थंकरों का अन्तर मिलाते हुए कितनेक का अन्तर मिलता नहीं है जिससे जाना जाता है कि कितनोंने तो तीर्थंकर गोत्रोपार्जन कर लिया है और कितनेक आगे के भवान्तरों में तीर्थंकर गोत्रोपार्जन करेंगे, किन्तु उन का नाम यहां खोल दिया है. जैसे महावीर स्वामीजी का नाम २१ भव पहिले ही मारिच के भवमें श्री ऋषभदेव जीने खुला कर दिया था. तत्त्व केवली गम्य.

जम्बुद्वीप ऐरावत क्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम ।

भूत काल के २४	वर्तमान काल के २४	भविष्य काल के २४
१ श्री पंचरूपजी	१ श्री बालचन्द्रजी	१ श्री सिद्धार्थजी
२ " जिनधरजी	२ ,, सुव्रतजी	२ ,, बिमलसैनजी
३ " सम्प्रतकजी	३ ,, अग्निसैनजी	३ ,, जयघोषजी
४ " उरमतजी	४ ,, नन्दसैनजी	४ ,, आनन्दसेनजी
५ " आदिछांयजी	५ ,, दत्तजी	५ ,, सुरमंगलजी
६ " अभीनन्दजी	६ " व्रतधरजी	६ ,, वज्रधरजी
७ " रत्नसैनजी	७ ,, सोमचन्द्र जी	७ ,, निर्वाणजी
८ " रामेश्वरजी	८ ,, धृतिधीरजी	८ ,, धर्मद्विजजी
९ " रंगोजितजी	९ ,, शान्तीपहोथजी	९ ,, सिद्धसेनजी
१० " विनपासजी	१० ,, शिवसातिजी	१० ,, महासैनजी
११ " आरोवसजी	११ " श्रेयांसजी	११ ,, रविमित्र जी
१२ " शुभध्यानजी	१२ ,, सुतजलजी	१२ ,, शान्तिसैनजी
१३ " विप्रदत्तजी	१३ ,, श्रेयसैनजी	१३ ,, चन्द्रदेवजी
१४ " कुँवारजी	१४ ,, उरपशान्तजी	१४ ,, महाचन्द्रजी
१५ ,, सर्वसहेलजी	१५ ,, सत्यसैनजी	१५ ,, सुतांजनजी
१६ ,, परमंजनजी	१६ ,, अनन्तवीर्यजी	१६ ,, निकरणजी
१७ ,, सौभाग्यजी	१७ ,, पार्श्वनाथजी	१७ ,, सुव्रतजी
१८ " दिवाकरजी	१८ ,, अभीधानजी	१८ ,, जिनेन्द्रजी
१९ ,, वृतविन्दूजी	१९ " सरुदेवजी	१९ ,, सुपार्श्वजी
२० ,, सिद्धकान्तजी	२० ,, श्रीधरजी	२० ,, सुकौशल्यजी
२१ ,, ज्ञानसरीजी	२१ ,, शाकंटजी	२१ ,, अनन्तजी
२२ ,, कल्पद्रुमजी	२२ ,, अग्निप्रभुजी	२२ ,, विमलप्रभुजी
२३ ,, तीर्थफलजी	२३ " अग्निदत्त जी	२३ ,, अमृतसैनजी
२४ ,, ब्रह्मप्रभूजी	२४ ,, वीरसैनजी	२४ ,, अग्निदत्तजी

पूर्व धात की खण्ड भतक्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम

भुतकाल के २४	वर्तमान काल के २४	भविष्य काल के २४
१ श्री रत्नप्रभुजी	१ श्री युगादिदेवजी	१ श्री सिद्धनाथजी
२ ,, अमितदेवजी	२ " सिंहदत्तजी	२ " समकितजी
३ ,, संभवजी	३ " महासेनजी	३ " जिनेन्द्रनाथजी
४ ,, अकलङ्कजी	४ " परमार्थजी	४ " सम्पतनाथजी
५ ,, चन्द्रनाथजी	५ " वरसेनजी	५ " सर्वस्वामीजी
६ ,, शुभंकरजी	६ " समुद्ररायजी	६ " मुनिनाथजी
७ ,, तत्वनाथजी	७ " बुद्धरायजी	७ " सुविष्टजी
८ ,, सुन्दरनाथजी	८ " उद्योतजी	८ " अइतनाथजी
९ ,, पुरन्दरजी	९ " आर्यवजी	९ " ब्रह्मशान्तीजी
१० ,, स्वामीदेवजी	१० " अभयजी	१० " परवनाथजी
११ ,, देवदत्तजी	११ " अप्रकम्पजी	११ " आकामुषजी
१२ ,, वासदत्तजी	१२ " प्रेमनाथजी	१२ " ध्याननाथजी
१३ ,, श्रेयनाथजी	१३ " पद्मानन्दजी	१३ " कल्पजिनेशजी
१४ ,, विश्वरूपजी	१४ " प्रियकरजी	१४ " संवरनाथजी
१५ ,, तप्ततेजजी	१५ " सुकृतजी	१५ " सुचीनाथजी
१६ ,, प्रतिबोधजी	१६ " भद्रसेनजी	१६ " आनन्दनाथजी
१७ ,, सिद्धार्थजी	१७ " मुनिचन्द्रजी	१७ " रवीप्रभुजी
१८ ,, अमलप्रभुजी	१८ " पंचमुष्टिजी	१८ " चन्द्रप्रभुजी
१९ ,, संयमजी	१९ " गंगेयकजी	१९ " सुनन्दजी
२० ,, देवेन्द्रजी	२० " गणधरजी	२० " सुकरणजीनाथ
२१ ,, प्रयनाथजी	२१ " सर्वांगदेवजी	२१ " सुकर्मजी
२२ ,, विश्वनाथजी	२२ " ब्रह्मदत्तजी	२२ " अनुमायजी
२३ ,, मेघनन्दजी	२३ " इन्द्रदत्तजी	२३ " पार्श्वनाथजी
२४ " त्रयनेत्रकायजी	२४ " दयानाथजी	२४ " सरस्वतनाथजी

पूर्व धात की खण्ड एरावत क्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम

भूत काल के २४	वर्तमान काल के २४	भविष्य काल के २४
१ श्री ऋषभनाथजी	१ श्री विश्वचन्द्रजी	१ श्री रत्नकोष जी
२ ,, प्राएमित्रजी	२ ,, कपिलजी	२ ,, चउस्न जी
३ ,, सातीनाथजी	३ ,, ऋषभजी	३ ,, ऋतुनाथ जी
४ ,, सुमइजिनजी	४ ,, प्रयातेजजी	४ ,, परमेश्वर जी
५ ,, अकुजिनजी	५ ,, प्रशमजी	५ ,, सुमुक्तिक जी
६ ,, अतीताजिनजी	६ ,, विसमांगजी	६ ,, मुहृच्च जी
७ ,, कलसेणजी	७ ,, चारित्रनाथजी	७ ,, नाकेश जी
८ ,, सर्वजिनजी	८ ,, प्रभादित्यजी	८ ,, प्रसस्त जी
९ ,, प्रबुद्धनाथजी	९ ,, मंजुकजी	९ ,, निराहार जी
१० ,, प्रव्रजिनजी	१० ,, पितवासजी	१० ,, अमूर्ती जी
११ ,, सोधर्माजिनजी	११ ,, सुरेशपुज्यजी	११ ,, द्यावर जी
१२ ,, तमोघरिपुजी	१२ ,, दयानाथजी	१२ ,, सेतीगन्ध जी
१३ ,, वज्रजिनजी	१३ ,, सहश्रभुजजी	१३ ,, अरुहनाथ जी
१४ ,, प्रबुद्धसेनजी	१४ ,, जिनसिंहजी	१४ ,, सहश्रचित्त जी
१५ ,, प्रबंधजी	१५ ,, रेफनाथजी	१५ ,, देवनाथ जी
१६ ,, अजितजिनजी	१६ ,, बाहुजिनजी	१६ ,, दयाद्विप जी
१७ ,, प्रमुखीजिनजी	१७ ,, यमालजी	१७ ,, पुष्फनाथ जी
१८ ,, पल्योपमजी	१८ ,, अजोगीजी	१८ ,, नरनाथ जी
१९ ,, अकोपजिनजी	१९ ,, अभोगीजी	१९ ,, सगइनाथ जी
२० ,, निष्टान्तजी	२० ,, कामरिपुजी	२० ,, तपाधिक जी
२१ ,, मृगनाभीजी	२१ ,, अरणीबाहुजी	२१ ,, दशानन जी
२२ ,, देवजिनजी	२२ ,, तमनाशजी	२२ ,, अरणक जी
२३ ,, प्रायछनजी	२३ ,, गर्भज्ञानीजी	२३ ,, दशानिक जी
२४ ,, शिवनाथजी	२४ ,, एकराजजी	२४ ,, भौतिक जी

पश्चिम धात की खण्ड भर्त क्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम

भूतकाल के २४	वर्तमानकाल के २४	भविष्यकाल के २४
१ श्री बज्र स्वामीजी	१ श्री पश्चिमाजिनजी	१ श्री वीरा जी
२ ,, चन्द्रदत्त जी	२ ,, पुष्पदन्त जी	२ ,, विजयप्रभु जी
३ ,, सूर्य स्वामी जी	३ ,, अर्हन्त जी	३ " महामृगेन्द्र जी
४ ,, पुरुष जी	४ ,, सुचरित्र जी	४ " चिन्तामणी जी
५ ,, स्वास स्वामी जी	५ ,, सिद्धानन्द जी	५ " आशोक जी
६ ,, अवबोध जी	६ ,, नन्दक जी	६ ,, द्वी मृगेन्द्र जी
७ ,, विक्रम जी	७ ,, पद्मरूप जी	७ " उपत्रास जी
८ ,, निर्घट जी	८ ,, उदयनाभ जी	८ " पद्मचन्द्र जी
९ ,, कराइ जी	९ ,, रकमोध्वजजी	९ " बोधकेन्द्र जी
१० ,, प्रतरीजी	१० ,, कृपाल जी	१० " हितहीम जी
११ ,, निर्वाण जी	११ ,, पोटल जी	११ " उत्तराहिक जी
१२ ,, धर्महेतु जी	१२ ,, सिद्धेश्वर जी	१२ " आपासिक जी
१३ ,, चउमुखी जी	१३ ,, अमृतेन्द्र जी	१३ " देवजय जी
१४ ,, कृतेन्द्र जी	१४ ,, स्वामनाथ जी	१४ ,, नारीक जी
१५ ,, स्वयंभूय जी	१५ ,, भोगीलग जी	१५ ,, अनौघ जी
१६ ,, विमलादित्य जी	१६ ,, सर्वार्थ सिद्ध जी	१६ " नागिन्द्र जी
१७ ,, देवप्रभु जी	१७ ,, मेघानन्द जी	१७ " निलोत्फल जी
१८ ,, धरणेन्द्र जी	१८ ,, नंदीश्वर जी	१८ " अप्रकम्प जी
१९ ,, सती स्वामी जी	१९ ,, हरहरनाथ जी	१९ " परोहित जी
२० ,, उदयामद जी	२० ,, आधिकश्राक जी	२० " उमेन्द्र जी
२१ ,, सिद्धार्थ जी	२१ ,, स्वांतिक जी	२१ " विश्वनाथ जी
२२ ,, धर्मोपदेश जी	२२ ,, नन्दस्वामी जी	२२ " तीवध जी
२३ ,, क्षेत्र स्वामी जी	२३ ,, कुडपास जी	२३ " अरहाजिनेन्द्र जी
२४ ,, हरिश्चन्द्र जी	२४ ,, वारोचन जी	२४ " जयजिनेन्द्र जी

पश्चिम धात की खण्ड ऐरावत क्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम।

भूतकाल के २४	वर्तमानकाल के २४	भविष्यकाल के २४
१ श्री सुमेरूजी	१ श्री औसाहितजी	१ श्री सुसंभवजी
२ ,, जिनरक्षितजी	२ ,, जिन स्वामीजी	२ ,, पल्युनाथजी
३ ,, अतीर्थजी	३ ,, स्तिमितेन्द्रजी	३ ,, पूरवासजी
४ ,, प्रसस्तदत्तजी	४ ,, अभिधानजी	४ ,, सौंदर्यजी
५ ,, निरदमजी	५ ,, पुष्पकजी	५ ,, गागीजिनजी
६ ,, फूलादीजी	६ ,, मण्डिकजी	६ ,, त्रिविक्रमजी
७ ,, वृधमानजी	७ ,, प्रहरजी	७ ,, नरासिंहजी
८ ,, स्मृतेन्द्रजी	८ ,, मदन सिंहजी	८ ,, मृगवसुजी
९ ,, संखानन्दजी	९ ,, हस्तौदजी	९ ,, सौमेश्वरजी
१० ,, कल्पकीर्तीजी	१० ,, चन्द्रपार्श्वजी	१० ,, सधासारजी
११ ,, हरीदानजी	११ ,, अजबोधजी	११ ,, अप्पापमलजी
१२ ,, वाहुस्वामीजी	१२ ,, जिनाधारजी	१२ ,, त्रिविधाजिनजी
१३ ,, भार्गचजी	१३ ,, जीवीसूतिकजी	१३ ,, जीमकजी
१४ ,, सुमेन्द्रजी	१४ ,, कसूरपंथजी	१४ ,, मानधाताजी
१५ ,, पांवपतिजी	१५ ,, सुवर्णजी	१५ ,, अश्वसैनजी
१६ ,, विपोपितजी	१६ ,, अश्वानिकजी	१६ ,, विद्याधरजी
१७ ,, ब्रह्मचारीजी	१७ ,, हरीवासजी	१७ ,, सूलोभनजी
१८ ,, आसकृतजी	१८ ,, व्रयषामीजी	१८ ,, मौननिधानजी
१९ ,, चारित्रसम्पन्नजी	१९ ,, धर्म देवजी	१९ ,, पौंडरिकजी
२० ,, परिनामकजी	२० ,, धर्मचन्द्रजी	२० ,, चित्रणजी
२१ ,, धर्मेशजी	२१ ,, नन्दीनाथजी	२१ ,, ममणऋद्धिजी
२२ ,, कवोजिनजी	२२ ,, पावनजी	२२ सर्वकालजी
२३ ,, नीतीनाथजी	२३ ,, पार्श्वनाथजी	२३ ,, भूरासरजी
२४ ,, कौस्तिकजी	२४ ,, चित्रस्वामीजी	२४ ,, सुन्यागजी

पूर्व पुष्करार्ध भरत क्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम।

भूतकाल के २४	वर्तमान काल के २४	भविष्य काल के २४
१ श्री मदनकाय जी	१ श्री जगन्नाथ जी	१ श्री वसंतध्वज जी
२ " सुरश्वामी जी	२ ,, प्रभास जी	२ ,, प्रियजमत जी
३ " निरागाथ जी	३ ,, सुरश्वामी जी	३ ,, स्त्री जयत जी
४ " प्रलम्बताप जी	४ ,, भारतिस जी	४ " सत्तभाय जी
५ " पृथ्वीपति जी	५ " द्रगनाथ जी	५ " परब्रह्म जी
६ ,, चारित्रनाथ जी	६ " विजितकृतजी	६ ,, अम्लीश जी
७ " अप्राजित जी	७ " अवसाननाथजी	७ ,, प्रबाधक जी
८ " सुवोधकाथ जी	८ " प्रबोधनाथ जी	८ " त्रीनयन जी
९ ,, बुद्धकाय जी	९ " तपोनिधी जी	९ ,, वहुलाय जी
१० ,, बेतालसहायजी	१० ,, पावकाय जी	१० " प्रमात्मप्रसंग जी
११ ,, त्रीमुष्ट जी	११ " त्रीपुरेस जी	११ ,, भूमप्राय जी
१२ ,, मुनिबोधक जी	१२ ,, शोकताप जी	१२ " गो स्वामी जी
१३ ,, भर्तस्वामी जी	१३ " श्रीवास जी	१३ " कल्यानप्रकाशजी
१४ ,, धर्माधिस जी	१४ " मनोहर जी	१४ " मंडलाय जी
१५ " धरणीश जी	१५ " शुभकर्म जी	१५ " महावंश जी
१६ " प्रभादेव जी	१६ ,, इष्टस्वामी जी	१६ " तेजोदय जी
१७ " आनन्ददेव जी	१७ " अमलेन्द्र जी	१७ ,, दिव्यजोति जी
१८ " आनन्दप्रभु जी	१८ " धर्मवक्ष जी	१८ " प्रबोध जी
१९ " सर्वतीर्थ जी	१९ " प्रशाद जी	१९ ,, अभयंकर जी
२० " निरूपमा जी	२० ,, प्रभामृगाक जी	२० ,, अप्रामित जी
,, कुम्भराय जी	२१ ,, अकलंक जी	२१ ,, दिव्यशक् जी
,, विहारगृह जी	२२ " सकटप्रभु जी	२२ ,, वृतस्वामी जी
,, धरणीशराय जी	२३ ,, गागेन्द्र जी	२३ ,, विधान जी
,, विकशाय जी	२४ ,, ध्यानजिन जी	२४ ,, निःकर्मक जी

पूर्व पुष्करार्ध ऐरावत क्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम ।

भूतकाल के २४	वर्तमानकाल के २४	भविष्यकाल के २४
१ श्री कान्तनाथजी	१ श्री शंकरजी	१ श्री यशोधरजी
२ ,, उपदिष्टजी	२ ,, अडवसाजी	२ ,, सुकृतजी
३ ,, आदित्यदेवजी	३ ,, नगनाथजी	३ ,, अविघोषजी
४ ,, अस्थानकजी	४ ,, नगनाद्विपजी	४ ,, निर्वाणजी
५ ,, प्रभाचन्द्रजी	५ ,, नष्टपाषण्डजी	५ ,, वृतवसजी
६ ,, वेणुकायजी	६ ,, स्वप्नबोधजी	६ ,, अतीराजजी
७ ,, त्रीभानुजी	७ ,, तपोधनजी	७ ,, विश्वजिननाथजी
८ ,, ब्रह्मब्रह्मायजी	८ ,, पुष्पकेतजी	८ ,, अर्जुननाथजी
९ ,, बजुंगजी	९ ,, धर्मकायजी	९ ,, तपेश्वरजी
१० ,, आविरोधनाथजी	१० ,, वीतरागजी	१० ,, शरीकायजी
११ ,, अपापजी	११ ,, चन्द्रकीर्तीजी	११ ,, महीशायजी
१२ ,, लोकन्तरजी	१२ ,, अनुक्रतजी	१२ ,, सुग्रीवजी
१३ ,, जराधिशजी	१३ ,, उद्योतकजी	१३ ,, दृढप्रयायजी
१४ ,, बोधकजी	१४ ,, तमोवासजी	१४ ,, दयानीतायजी
१५ ,, सुमरनाथजी	१५ ,, मधुनाथजी	१५ ,, अवसरायजी
१६ ,, प्रभादित्यजी	१६ ,, मरुदेवजी	१६ ,, तुवरायजी
१७ ,, वच्छलजी	१७ ,, दयामयजी	१७ ,, सर्वशीलजी
१८ ,, जिनालयजी	१८ ,, वृषभेश्वरजी	१८ ,, प्रातिजातकजी
१९ ,, तुषारनाथजी	१९ ,, शीतलतनजी	१९ ,, जीतेन्द्रजी
२० ,, भुवन स्वामीजी	२० ,, विश्वनाथजी	२० ,, तपाद्योतजी
२१ ,, सुकुमायजी	२१ ,, महाप्रायजी	२१ ,, रत्नकिरणजी
२२ ,, देवाधीदेवजी	२२ ,, नन्दनायजी	२२ ,, लछननाथजी
२३ ,, अकारमजी	२३ ,, तमोनिभजी	२३ ,, दिव्यसामजी
२४ ,, विनसायजी	२४ ,, महाभरजी	२४ ,, सुप्रशादजी

पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप भरतक्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम

भूतकाल के २४	वर्तमानकाल के २४	भविष्यकाल के २४
१ श्री पद्मचन्द्रजी	१ श्री सर्वांगजी	१ श्री प्रभावकजी
२ श्री रत्नशरीरजी	२ " विधुतप्रभुजी	२ " विनयचंदजी
३ " अजोगजी	३ " पद्मकरजी	३ " सुभावकजी
४ " सिद्धार्थजी	४ " बलनाथजी	४ " दिनकरजी
५ " ऋषभनाथजी	५ " योगीश्वरजी	५ " अनन्ततेजजी
६ " हरिश्चन्द्रजी	६ " सुवसुमंगजी	६ " धनदत्तजी
७ " गुणाधिपजी	७ " चलापितजी	७ " श्रीपोरषजी
८ " पत्रकायजी	८ " कुमलकजी	८ " जिनदत्तजी
९ " ब्रह्मनाथजी	९ " प्रतज्ञायजी	९ " पार्श्वनाथजी
१० " कुलाद्विपजी	१० " नीमेदकजी	१० " मुनिसिन्धुजी
११ " मुनिश्चन्द्रजी	११ " पापहरजी	११ " आस्तिकजी
१२ " रायऋषिजी	१२ " मुक्तिचन्द्रजी	१२ " भवनकरायजी
१३ " विश्ववायजी	१३ " अवकाशजी	१३ " नृपनाथजी
१४ " आज्ञदर्दितजी	१४ " जयचन्द्रजी	१४ " नारायणजी
१५ " रवीश्वामीजी	१५ " मलधरजी	१५ " परस्यमोक्षजी
१६ " सोमदत्तजी	१६ " सुसाजितजी	१६ " भूपतजी
१७ " जयस्वामीजी	१७ " मलसिन्धुजी	१७ " सुदृष्टजी
१८ " मोक्षनाथजी	१८ " अवधरायजी	१८ " भवभीरजी
१९ " अग्रभानजी	१९ " जतंधरजी	१९ " नन्दजी
२० " धनुवागजी	२० " गणाधिपजी	२० " भारंवायजी
२१ " मुक्तनाथजी	२१ " अकमिकजी	२१ " वासवसायजी
२२ " रोमंचकजी	२२ " वनीतायजी	२२ " परवासवजी
२३ " प्रसिद्धनाथजी	२३ " वीतरागजी	२३ " प्रभाशिवजी

पश्चिम पुष्कराधं द्वीप ऐरावत क्षेत्र के ७२ तीर्थंकरों के नाम

भूतकाल के २४	वर्तमान काल के २४	भविष्य काल के २४
१ श्री उपशान्तजी	१ श्री गंगकेयजी	१ श्री आदेशजी
२ ,, फाल्गुनजी	२ ,, मल्लीवासजी	२ ,, वृद्धमायजी
३ ,, पुर्वासजी	३ ,, भीमजी	३ ,, विनयानन्दजी
४ ,, सुन्दरजी	४ ,, दयानाथजी	४ ,, मुनिभर्तजी
५ ,, गौरवजी	५ ,, भद्रनाथजी	५ ,, इन्द्रकायजी
६ ,, त्रीविक्रमजी	६ ,, स्वामीजिनजी	६ ,, चन्द्रकेतूजी
७ ,, नरसिंहजी	७ ,, हनकनाथजी	७ ,, ध्वजदन्तजी
८ ,, भरंवासजी	८ ,, नन्दबोधजी	८ ,, वस्तुबोधजी
९ ,, परमसौम्यजी	९ ,, रूपविजयजी	९ ,, मुक्तिगतीजी
१० ,, सुखदावरजी	१० ,, बज्रनाभजी	१० ,, धर्मबोधजी
११ ,, अपायजिनजी	११ ,, सन्तोषजी	११ ,, देवांगजी
१२ ,, विविधायजी	१२ ,, सुधर्मजी	१२ ,, मरिंचजी
१३ ,, सिद्धकजिनजी	१३ ,, फनेश्वरजी	१३ ,, जीवनाथजी
१४ ,, माघाप्रियजी	१४ ,, वीरचन्द्रजी	१४ ,, जसोधरजी
१५ ,, अश्वपायजी	१५ ,, सिद्धानकजी	१५ ,, गौतमजी
१६ ,, विद्याधरजी	१६ ,, स्वच्छनाथजी	१६ ,, नर्भासुधाजी
१७ ,, सुलोचनजी	१७ ,, कोपछायजी	१७ ,, प्रबोधकजी
१८ ,, मुनिद्विपजी	१८ ,, अमुकामुकजी	१८ ,, सदानिकजी
१९ ,, पुण्डरिकजी	१९ ,, धर्मधामजी	१९ ,, चरित्रनाथजी
२० ,, चित्रगणजी	२० ,, शकुसेनजी	२० ,, सदानन्दजी
२१ ,, मतइन्द्रजी	२१ ,, क्षेमंकरजी	२१ ,, वेदरथजी
२२ ,, अवकजी	२२ ,, दयानाथजी	२२ ,, सुधानकजी
२३ ,, भूरस्वापजी	२३ ,, कीर्तीसायजी	२३ ,, ज्योतिमूर्तीजी
२४ ,, पुन्यागजी	२४ ,, शुभंकरजी	२४ ,, सरागधजी

पांचों महाविदेह क्षेत्र के १६० तीर्थंकरों के नाम ।

जम्बुद्वीप की महाविदेह के ३२		धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व महा विदेह के ३२		धात की खण्ड द्वीप की पश्चिम महाविदेह के ३२
	१६ ,, महाकायजी		१६ ,, अमृतवाहनजी	
	१७ ,, अमरकेतुजी		१७ ,, पोर्णिमेन्द्रजी	
१ श्री जयदेवजी	१८ ,, अरण्यवासजी	१ श्री वीरचन्द्रजी	१८ ,, रेवांकितजी	१ श्री दत्तजी
२ ,, करणभद्रजी	१९ ,, हरीहरजी	२ ,, वत्ससेनजी	१९ ,, कल्पशाकजी	२ ,, भूमिपतिजी
३ ,, लक्ष्मीपतीजी	२० ,, रामचन्द्रजी	३ ,, नलकान्तजी	२० ,, नलणादित्तजी	३ ,, मेरूदत्तजी
४ ,, गंगाधरजी	२१ ,, शांतीदेवजी	४ ,, मुजकेशजी	२१ ,, विद्यापतिजी	४ ,, सुमित्रजी
५ ,, विशालचन्द्रजी	२२ ,, अन्नतर्कतजी	५ ,, ऋकमाकजी	२२ ,, सुपार्श्वजी	५ ,, सेननाथजी
६ ,, प्रियंकरजी	२३ ,, गजेन्द्रप्रभुजी	६ ,, क्षेमंकरजी	२३ ,, भानूनाथजी	६ ,, प्रभानन्दजी
७ ,, अमरधरजी	२४ ,, सागरचन्द्रजी	७ ,, मृगांकजी	२४ ,, प्रभंजनजी	७ ,, पद्माकरजी
८ ,, श्रीकृष्णनाथजी	२५ ,, महेश्वरजी	८ ,, मुनिमूर्तिजी	२५ ,, विशिष्ठनाथजी	८ ,, महाघोषजी
९ ,, अनन्तहृदयजी	२६ ,, लक्ष्मीचन्द्रजी	९ ,, विमलचन्द्रजी	२६ ,, जलप्रभुजी	९ ,, चन्द्रप्रभुजी
१० ,, गुणगुप्तजी	२७ ,, ऋषभनाथजी	१० ,, आगामिकजी	२७ ,, महाभीमजी	१० ,, भूमिपालजी
११ ,, पद्मनाथजी	२८ ,, सौम्यकान्तजी	११ ,, दुष्करतपजी	२८ ,, ऋषिपालजी	११ ,, सुमतिसेनजी
१२ ,, जलधरजी	२९ ,, नेमीभद्रजी	१२ ,, वसुद्वीपजी	२९ ,, कुंडदन्तजी	१२ ,, अतीभूतजी
१३ ,, युगादित्यजी	३० ,, अजितभद्रजी	१३ ,, महल्लनाथजी	३० ,, महावीरजी	१३ ,, तीर्थभूतजी
१४ ,, वरदत्तजी	३१ ,, महीधरजी	१४ ,, वनदेवजी	३१ ,, मृतानन्दजी	१४ ,, ललीतांगजी
१५ ,, चन्द्रकेतुजी	३२ ,, राजेन्द्रश्वरजी	१५ ,, वलभृतजी	३२ ,, तीर्थेश्वरजी	१५ ,, अमरचन्द्रजी

पांचों महाविदेह क्षेत्र के १६० तीर्थंकरों के नाम ।

१६ श्री समाधीनाथजी
१७ ,, मुनिचन्द्रजी
१८ ,, महेन्द्रजी
१९ ,, शशांकजी
२० ,, जगदीश्वरजी
२१ ,, देवेन्द्रजी
२२ ,, गुणनाथजी
२३ ,, नारायणजी
२४ कपिलनाथजी
२५ ,, प्रभाकरजी
२६ ,, जिनरक्षितजी
२७ ,, सकलनाथजी
२८ ,, सीलारनाथजी
२९ ,, उद्योतनाथजी
३० ,, वज्रंधरजी
३१ ,, सहस्रधरजी
३२ ,, आशोकदत्तजी

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व महा विदेह के ३२

१ श्री मेघवाहनजी
२ ,, जीवरक्षकजी
३ ,, महापुरुषजी
४ ,, पापहरजी
५ ,, मृगाङ्कजी
६ ,, सुरसिंहजी
७ ,, जगतपूज्यजी
८ ,, सुमतिनाथजी
९ ,, महामहेन्द्रजी
१० ,, अमरभूतिजी
११ ,, कुमारचन्द्रजी
१२ ,, वीरसेनजी
१३ ,, रमणनाथजी
१४ ,, स्वयंभूनाथजी
१५ ,, अचलनाथजी
१६ ,, मकरकेतुजी
१७ ,, सिद्धार्थनाथजी
१८ ,, सफलनाथजी
१९ ,, विजयदेवजी
२० ,, नरसिंहनाथजी
२१ ,, सीतानन्दजी
२२ ,, बृन्दारकजी
२३ ,, चन्द्रतपजी
२४ ,, चन्द्रगुप्तजी
२५ ,, दृढरथनाथजी
२६ ,, महायशजी
२७ ,, उष्माकजी
२८ ,, प्रद्युम्नजी
२९ ,, महातेजजी
३० ,, पुष्पकेतुजी
[illegible] ,, कामदेवजी
[illegible] ,, समरकेतुजी

पुष्करार्द्ध द्वीप के पश्चिम महाविदेह के ३२

१ श्री प्रश्नचन्द्र जी
२ ,, महासेनजी
३ ,, बज्रनाथजी
४ ,, सुवर्णबाहुजी
५ ,, कुरुविन्दजी
६ ,, वज्रवीर्यजी
७ ,, विमलचन्द्रजी
८ ,, यशोधरजी
९ ,, महाबलजी
१० ,, वज्रसेनजी
११ ,, विमलबोधजी
१२ ,, भीमनाथजी
१३ ,, मेरुप्रभुजी
१४ ,, भद्रगुप्तजी
१५ ,, सुदृढसिंहजी
१६ ,, सुव्रतनाथजी
१७ ,, हरिश्चन्द्रजी
१८ ,, प्रतिमाधारजी
१९ ,, प्रतिश्रेयजी
२० ,, प्रतिसेणजी
२१ ,, कनककेतुजी
२२ ,, आजितवीरजी
२३ ,, फाल्गुमित्रजी
२४ ,, ब्रह्मभूतजी
२५ ,, हितकरजी
२६ ,, बरुणदत्तजी
२७ ,, यशकीर्तिजी
२८ ,, नागेन्द्रकीर्तिजी
२९ ,, महीकृतब्रह्मजी
३० ,, महेन्द्रजी
३१ ,, बृद्धमानजी
३२ ,, सुरेन्द्रदत्तजी

यह जम्बुद्वीप के भरतक्षेत्र में वर्तमान काल के दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथजी के वक्त में हुये उत्कृष्ट पद १७० तीर्थंकरों के नाम कहे. इसमें से १६ तीर्थंकर तो नीलम जैसे श्याम वर्ण के हुये. ३८ पन्ने जैसे हरे वर्ण के हुये. ३० मानक जैसे लाल वर्ण के हुये. ३६ सुवर्ण जैसे पीले वर्ण के हुये और ५० हीरे जैसे श्वेत वर्ण के हुये. ऐसा ग्रन्थकारों का कथन है ।

वर्तमान काल में पंच महाविदेह क्षेत्र में २० तीर्थंकर हैं ।

प्रथम तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी जी जम्बुद्वीप के सुदर्शन मेरूपर्वत से पूर्व दिशा के महाविदेह की ८वीं पुष्कलावती नाम की विजय की पुण्डरिक गणी नगरी के श्रेयांस राजा की सत्य की रानी से हुये. इनके वृषभ (बैल) का लक्षण. और स्त्री का नाम रुकमणी.

२ जम्बूद्वीप के सुदर्शनमेरू पश्चिम की महाविदेह की २८वीं वप्रा विजय की विजया नगरी के सुसढ राजा की सुतारा रानी से दूसरे "श्रीयुगमन्दर स्वामी" हुये इनके छग (बकरे) का लक्षण और स्त्री का नाम प्रियंगमा.

३ जम्बूद्वीप के सुदर्शनमेरू से पूर्व के महाविदेह की ९मीं वच्छ विजय की सुसीमा नगरी के सुग्रीव राजा की विजिया देवी रानी से तीसरे "श्री बाहुजी स्वामी" हुये. इनके लक्षण मृग (हिरन) का स्त्री का नाम मोहना.

४ जम्बुद्वीप के सुदर्शन मेरू पर्वत से पश्चिम महाविदेह की २४वीं नलिनावती विजय की वितशोका नगरी के निसढ राजा की विजिया रानी से चौथे 'श्री बाहुजी' हुये इनके मर्कट (बंदर) का लक्षण और स्त्री का नाम किम्पुरिषा.

५ पूर्व धात की खड द्वीप के विजय मेरू से पूर्व की महाविदेह की ८वीं पुष्कलावती विजय की पुण्डरिक गणी नगरी के देवसेन राजा की देव सेना रानी से पांचवें 'श्री सुजात स्वामी' हुये. इनके सूर्य का लक्षण और स्त्री का नाम जयसेना.

६ पूर्व धात की खण्ड द्वीप के विजय मेरू से पश्चिम महाविदेह की २५वीं वप्रा विजया नगरी के मित्र भुवन राजा की सुमंगलारानी से छट्ठे 'श्री स्वयंप्रभु स्वामी' हुये. इनके लक्षण चंद्रमा का और स्त्री का नाम वीरसेना.

७ पूर्व धात की खंडद्वीप के विजयमेरू से पूर्व के महाविदेह की ९मीं वच्छ बिजय की सुसिमा नगरी के कीर्ती राजा की वीर सेना रानी से सातवें 'श्री ऋषभानन्द स्वामी' हुये. इनके सिंह का लक्षण और स्त्री का नाम जयवती

८ पूर्व धात की खंड द्वीप के विजय मेरू से पश्चिम महाबिदेह की २४वीं नलिनावती विजय की वित शोका नगरी के मेघराजा की मंगला रानी से आठवें 'श्री अनन्त वीर्य स्वामी' हुये. इनके छग (बकरे) का लक्षण और स्त्री का नाम विजयवती.

९ पश्चिम धात की खंड द्वीप के अचल मेरू पूर्व दिशा के महाविदेह की आठवीं पुष्कलावती विजय की पुण्डरिक नगरी के नाग राजा की भद्रा रानी से नववें 'श्री सुप्रभु स्वामी' हुये. इनके सूर्य का लक्षण और स्त्री का नाम विमला।

१० पश्चिम धात की खंड द्वीप के अचल मेरू से पश्चिम के महाविदेह में २५वीं वप्रा विजय की विजया नगरी के विजयराजा की विजया देवी रानी से दशवें 'श्री विशालधर स्वामी' हुये. इनके चन्द्रमा का लक्षण और स्त्री का नाम नन्दसेना।

११ पश्चिम धात की खंड द्वीप के अचल मेरू से पूर्व के महाविदेह की ९वीं वच्छ विजय की सुसीमा नगरी के पद्मरथ राजा की सरस्वती रानी से इग्यारवें 'श्री विजयधर स्वामी' हुये इनके वृषभ का लक्षण और स्त्री का नाम विजया देवी।

१२ पश्चिम धात की खंड द्वीप के अचल मेरू से पश्चिम महाविदेह की २४वीं नलिनावती विजय की वितशोका नगरी के वाल्मिक राजा की

पद्मावती रानी से बारवें 'श्री चन्द्रानन स्वामी' हुये. इनके वृषभ का लक्षण और स्त्री का नाम लीलावती।

१३ पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के मन्दिर मेरू से पश्चिम महाविदेह की ८वीं पुष्कलावती विजय की पुण्डरिकगणी नगरी के देवकर राजा की यशोज्वलरणुका रानी से तेरहवें 'श्री चन्द्रबाहु स्वामी' हुये. इनके पद्मकमल का लक्षण और स्त्री का नाम सुन्धरा देवी।

१४ पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के मन्दिर मेरू से पश्चिम महाविदेह की २८वीं वप्रा विजय की विजय नगरी के कुलसेन राजा की यशोज्वला रानी से चौदहवें 'श्री ईश्वर स्वामी' हुये इनके चन्द्रमा का लक्षण और स्त्री का नाम भद्रवती।

१५ पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के मन्दिर मेरू से पश्चिम महाविदेह की ९वीं वच्छ विजय की सुसिमा नगरी के महाबल राजा की महिमावती रानी से पन्द्रहवें 'श्री भुजंग स्वामी' हुये. इनके पद्म कमल का लक्षण और स्त्री का नाम गर्वसेना।

१६ पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के मन्दिर मेरू से पश्चिम महाविदेह की २४वीं नलिनावती विजय की वितशोका नगरी के वीरसेन राजा की सेनादेवी रानी से सोलहवें 'श्री नेमप्रभुजी स्वामी' हुये. इनके सूर्य का लक्षण और स्त्री का नाम मोहनादेवी।

१७ पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के विद्युतमाली मेरू से पूर्व महाविदेह की ८वीं पुष्कलावती विजय की पुण्डरिकगणी नगरी के भूमीपाल राजा की भानुमति रानी से सत्रहवें 'श्री वीरसेन स्वामी' हुये. इनके वृषभ का लक्षण और स्त्री का नाम राजसेना।

१८ पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के विद्युतमाली मेरू से पश्चिम महाविदेह की २८वीं वप्रा विजय की विजिया नगरी के देवसैन राजा की उमादेवी

रानी से अठारहवें 'श्री महाभद्र स्वामी' हुये. इनके हाथी का लक्षण और स्त्री का नाम सूर्यकान्ता ।

१९ पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के विद्युत माली मेरू से पूर्व महाविदेह की ९वीं वच्छविजय की सुसिमा नगरी के सर्वानुभूति राजा की गंगा देवी रानीसे उन्नीसवें 'श्री देवसैन स्वामी' हुये. इनके चन्द्रमा का लक्षण और स्त्री का नाम पद्मावती ।

२० पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के विद्युत माली मेरूसे पश्चिम महाविदेह की २४वीं नलिनावती विजय की वितशोका नगरी के राजपाल राजाकी कननी रानी से बीसवें 'श्री अजितवीर्य स्वामी' हुये. इनके लक्षण स्वस्तिक का और स्त्री का नाम रत्नमाला ।

उक्त २० ही विहरमान तीर्थंकरों का जन्म, जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र में सत्रहवें 'श्री कुंथुनाथजी के निर्वान (मोक्ष) गये बाद एकही समय में हुआ और बीसवें 'श्री मुनिसुव्रत जी के निर्वान गये बाद, बीसों ही ने एक ही समय दीक्षा ली, बीसों ही एक महीने छद्मस्त रहकर एक ही समय केवल ज्ञान की प्राप्ति की और यह बीसों ही इसही भरतक्षेत्र की भविष्य काल की चौबीसी के सातवें तीर्थंकर 'श्री उदयनाथजी' के निर्वान गये बाद एक ही साथ मोक्ष जायेंगे. इन बीस ही विहरमान तीर्थंकरों का देहमान ५०० धनुष्य का और आयुष्य ८४ लक्ष पूर्व का जिसमें ८३ लक्ष पूर्व तो गृहवास में रहे और १ लक्ष पूर्व संयम पाल कर मोक्ष पधारेंगे. इन बीसों ही वर्तमान तीर्थंकरों के चौरासी २ गणधर हैं. दश २ लक्ष केवल ज्ञानी हैं. सो सो क्रोड (एक २ अर्ब) साधु हैं. सो सो क्रोड ही साध्वीयां हैं. यों बीसों ही के सब मिलकर दो क्रोड केवल ज्ञानी दो हजार क्रोड ( ) साधु और दो हजार क्रोड साध्वीयों की संख्या होती है. यह बीसों ही तीर्थंकर जिस समय मोक्ष जांयगे उसही समय दूसरी विजय में जो जो तीर्थंकर * उत्पन्न हुये होंगे वे दीक्षा गृहण कर तीर्थंकर पद को प्राप्त

* जघन्य २० तीर्थंकरों से कभी कम नहीं होते हैं इसलिये वर्तमान के २० ही मोक्ष गये

होजाते हैं. ऐसा अनादी काल से होता चला आया है और आगे अनंत काल तक होता ही रहेगा अर्थात् जघन्य (कम से कम) २० तीर्थंकरों से तो कम कभी नहीं होंगे और उत्कृष्टे (ज्यादा से ज्यादा) १७० तीर्थंकरों से अधिक नहीं होंगे. यों अनन्त तीर्थंकर भूत काल में होगये २० वर्तमान में हैं और अनन्त तीर्थंकर भविष्य काल में होंगे।

सब तीर्थंकरों का जघन्य आयुष्य ७२ वर्ष का. इस से कम नहीं होता है. और उत्कृष्टा आयुष्य ८४ लक्ष पूर्व का. इससे अधिक नहीं होता है. सब तीर्थंकरों का देहमान जघन्य ७ हाथ* का होता है इससे कम नहीं होता है और उत्कृष्टा ५०० धनुष्य का इससे अधिक नहीं होता है. सब तीर्थंकरों का शरीर रज, मैल, स्वेद, (पसीना) खेंकर, श्लेषम, काग रेखादि दुष्ट लक्षणों और तिल मशादि दुष्ट व्यंजनों से रहित और चन्द्र सूर्य ध्वजा, कुम्भ, पर्वत, मगर, सागर, चक्र, शंख, स्वस्तिक ऐसे १००८ उत्तमोत्तम लक्षणों से अलंकृत सूर्य के समान महा प्रकाशिक. निर्धूम अग्नि के समान देदीपप्यमान अति मनोहर होता है।

उस ही वक्त २० दूसरे तीर्थंकर पद को प्राप्त होने ही चाहिये। इस हिसाब से एक तीर्थंकर गृहस्थावास में एक लक्ष पूर्व के होवें तब दूसरे क्षेत्र में दुसरे तीर्थंकर का जन्म होजाना चाहिये और यह एक पूर्व के होवें तब अन्य क्षेत्र में तीसरे का भी जन्म हुआ चाहिये। यों कोई लक्ष पूर्व आयुष्य वाले कोई दो लक्ष पूर्व आयुष्य वाले यावत् कोई ८३ लक्ष पूर्व आयुष्य वाले, यों एकएक तीर्थंकर के पीछे ८३ तीर्थंकर गृहस्थावास में होवें, और एक तीर्थंकर पद भोगते होवें, जब चौरासी वे मोक्ष जावें तब ८३ वें अन्य क्षेत्र में तीर्थंकर पद को प्राप्त हो जावें, और किसी अन्य क्षेत्रमें एक तीर्थंकर का जन्म होजावे। एकएक तीर्थंकर के पीछे ८३-८३ तीर्थंकर गृहस्थावासमे होवें तो २०ही तीर्थंकरोंके पीछे ८३ × २० = १६६० तीर्थंकर गृहस्थावास में और २० तीर्थंकर पद भोगते हुये सब १६८० तीर्थंकर कम से कम एक ही वक्त में होने चाहियें। लेकिन इतने तीर्थंकर हो कर भी कभी भी परस्पर मिलते नहीं है। यह अनादी अनन्त रीत है।

* शास्त्र में जो जीवों की अवगेहना (देहमान) का प्रमान बताया है वह इस वर्तमान पांचवें आरे के १०५०० वर्ष जायगे अर्थात् पांचवां आरा आधा व्यतीत हो जायगा उस वक्त जो मनुष्य होंगे उनके हाथ का प्रमान बताया है इस ही प्रमान से उक्त तीर्थंकरोंका देहमान जानना यों तो तीर्थंकरों अपने २ अंगुल से १०८ अंगुलके ऊंचे १२ अंगुल का मस्तक यों सब १२० अंगुल के ऊंचे होते हैं.

मानतुंगाचार्य कहते हैं कि—

श्लोक-वसंत तिलकावृत्तम्।

स्त्रीणां शतानि शतसो जनयन्ति पुत्रान्। नान्या सुतं तव दुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानु सहश्र रश्मिं। प्राच्येव दिग् जनयति स्पुरदं सुजालम्॥

अस्यार्थम्—जैसे ग्रह नक्षत्र ताराओं को जन्म देने वाली तो अनेक दिशायें हैं किन्तु सूर्य को जन्म देने वाली तो केवल पूर्व दिशाही है तैसेही इस विश्वालय में पुत्र को जन्म देने वाली तो हजारों स्त्रिया हैं। परन्तु तीर्थंकर के समान पुत्र रत्न को जन्म देने वाली तो केवल तीर्थंकर की माता ही है. अन्य कोई भी माता ऐसे पुत्र रत्नको जन्म नहीं देती है. अर्थात् तीर्थंकर के समान कोई दूसरा इस जगत में होता ही नहीं है.

ऐसे अनन्तान्त गुणों के धारक सकल अघ के वारक, सकल जग के सुधारक नारिन्द्र सुरिन्द्र आदि त्रिजगत् के वंदनीय पूज्यनीय अरिहन्त महा पुरुष होते हैं।

गाथा—तित्थरा मे पसियन्तु, कित्तिय वंदिय महिया।
जेय लोगस्स उत्तमा सिद्धा, आरुग्ग बोही लाभं समाही वर मुत्तमादिन्तु

जो सर्व लोक में उत्तम सिद्धस्थान को प्राप्त होने वाले तीर्थंकरों की मैं वचन से कीर्ति करता हूं, काया कर वंदन करता हूं और मन कर भाव पूजा करता हूँ अहो तीर्थंकरों! मेरे पर पसन्द होकर मुझे आरोग्य बोध वीज सम्यक्त्व लाभ और प्रधान उत्तम समाधी की बक्सीस करो!!

परमपूज्य श्री कहान जी ऋषि जी महाराज की सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी
श्री अमोलक ऋषि जी महाराज विरचित 'जैनतत्त्वप्रकाश' ग्रन्थ का
प्रथम 'अरिहन्तस्तव' नामक प्रकरण समाप्तम्॥ १॥



प्रकरण दूसरा ।

'सिद्ध'

शिव मयल मरूय । मणंत मक्खय मवा बाहा ॥
मपुणरावत्ति । सिद्धि गइ नाम धेयं ॥

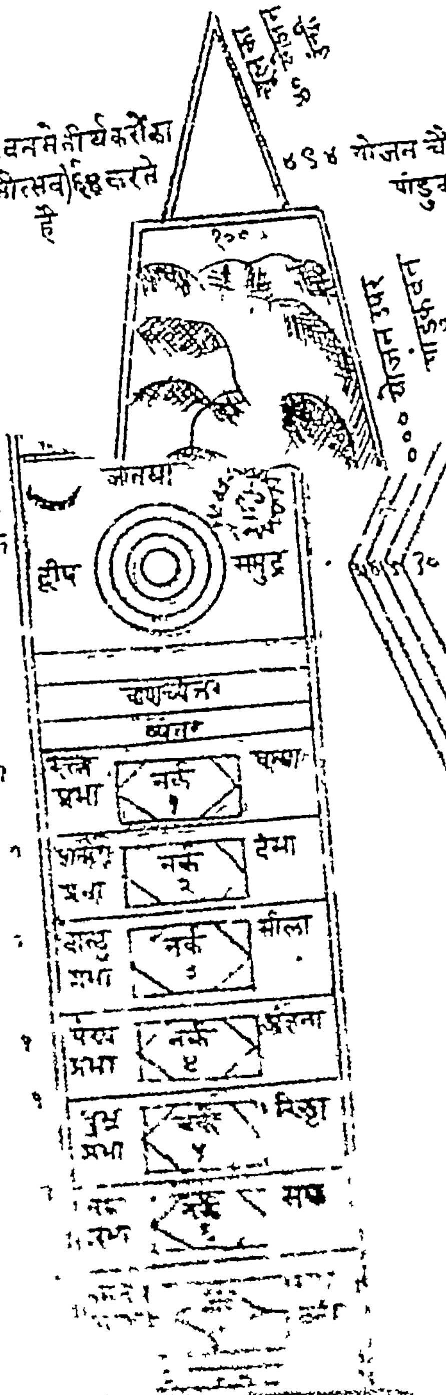
अर्थात्—'शिव' जहा शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासादि तथा दंश, मत्सर, सर्पादि किसी भी प्रकार का किञ्चित्-मात्र उपद्रव (दुःख) नहीं हो, 'मयल'—जहां से कदापि हलन चलन गमनागमन नहीं हो, 'मरूय'—जहां कर्मांकूर की उत्पत्ति नहीं हो, 'मणंत'—जहां कदापि अन्त (सर्व से नाश) नहीं हो, 'मक्खय'—जहा कदापि किसी के अवयवादि का देश से क्षर ... बा'—जहां शारीरिक, (रोगादि) मानसिक (ग्रो... वा ... पुणरावत्ति'—जिस स्थान से ...
कि
से
'[

उत्तर— ... पइट्ठिया सिद्धा।

इहं बोंदी चइत्ताणं । तत्थ गंतू...

अर्थात्—हे शिष्य ! अलोक से लगकर ...

अग्र भाग में सिद्ध स्थिर रहे हैं जो प्राणी सिद्ध हुए हैं उन्होंने इस मनुष्य



सुदर्शन मेरु पर्वत
१००००० योजन ऊंचा है
पांडुकवन में तीर्थंकरों का
४९४ योजन चौड़ा
पांडुकवन
द्वीप
समुद्र
रत्न प्रभा
नर्क १
नर्क २
बालु प्रभा
नर्क ३
पंक प्रभा
नर्क ४
अंजना
धूम प्रभा
नर्क ५

ल

लोक में शरीर को छोडा है और लोक के ऊपर के अग्र-स्थान में जाकर सिद्ध हुए हैं ।

उक्त कथन के जानने से अन्तःकरण ही प्रश्नउद्भव में स्वाभाविक होता है कि जिस लोक के अग्रस्थान में सिद्ध है वह लोक किसे कहते है और उसका आकार भाव क्या है ?

'लोकालोक का वर्णन' ।

लोक शब्द की 'लुक' धातु है जिसका अर्थ देखना होता है. अर्थात् जो देखने में आवे उसको लोक कहना और इसका प्रतिपक्षी अर्थात् जो देखने में नहीं आवे वह अलोक.

अलोक-अनन्तान्त—अपरम्पार अखण्ड अमूर्तिक केवल आकाश्ति काय (पोलार) मय है और जैसे किसी महास्थान के मध्य में छींका लटकाया हो तैसे अलोक के मध्य में लोक है. विवाह प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र में कहा है कि—जैसे जमीन पर एक दीपक उलटा रख कर उस पर दूसरा दीपक सुलटा रखे और उस पर तीसरा दीपक उलटा रखने से जैसा आकार बनता है तैसा इस लोक का आकार है । यह लोक नीचे सात रज्जु + चौडा है. वहां से ऊपर की और अनुक्रम से प्रदेश २ कमी होता ५ सात रज्जु ऊपर आवे वहा दोनों दीपक की सन्धि के स्थान एक रज्जु चौडा रह गया, आगे क्रम से बढता २ दूसरे तीसरे दीपक की सन्धि के स्थान ३॥ रज्जु ऊपर आवे वहां पांच रज्जु चौडा है और आगे क्रम से घटता २ तीसरे दीप के ऊपर के अन्तिम विभाग स्थान ३॥ रज्जु आवे वहां एक रज्जु चौडा है. यों सम्पूर्ण लोक नीचे से ऊपर

+ रज्जु का प्रमाण—३,८१,२७,९७० इतने मन के वजन को एक भार कहते है. ऐसे १,००० भार का लोहे का गोला, उसे कोई देवता ऊंचे स्थान से नीचे को डाले वह गोला ६ महीने ६ दिन ६ पहर और ६ घड़ी में जितना क्षेत्र (स्थान) उल्लं-घन कर नीचे आवे उतने को एक रज्जू प्रमाने जगह कहना.

तक सीधा १४ रज्जुका लम्बा और घनाकार मपती से ३४३ रज्जु प्रमान होताहै. [अर्थात् सम्पूर्ण लोकके बिरमस्थानको सम करने से चौरस सात रज्जु लम्बा सात रज्जु चौडा और सात रज्जु जाडा (मोटा) स्थान होवे इस प्रकार ७×७=४९ और ४९×७ ३४३ रज्जु होते हैं. [अर्थात् सम्पूर्ण लोक के एक रज्जू लम्बा एक रज्जू चौडा और एक रज्जू जाडा ऐसे खण्ड की कल्पनाकी जावें तो सब खण्ड (टुकडे) ३४३ होते हैं.]

जिस प्रकार वृक्ष त्वचार (छाल) करके चारों ओर से वेष्टित (घिरा हुआ) होता है इस प्रकार सम्पूर्ण लोक भी तीन प्रकारके बालियों से वेष्टित है. पहिला बलिया घनोदधी (जमे हुये पानी) का नीचे मध्य में २००० योजन * का चौडा. नीचेके दोनों कौनेमें ७ योजन चौडा ऊपर के दोनों कौने में ५ योजन चौडा, ऊपर मध्य में २ कौस चोडा

* योजन का प्रमान—जिस के दो भाग की कल्पना भी न हो सके ऐसे अनंत सूक्ष्म के प्रमानु के संयोग से १ वादर प्रमानु होता है. अनन्त वादर प्रमानु जितना वडा एक उष्ण श्रेणिक (गरमी के) पुद्गल, ८ उष्ण श्रेणिक जितने वडे शीत श्रेणिक (सरदी के पुद्गल,) ८ शीत श्रेणिक जितनी वडी एक ऊर्ध्व रेणू (तरवले में दीखे वह) ८ ऊर्ध्व रेणु जितना वडा एक त्रसरेणु (त्रस जीव चलने से उडे वह) ८ त्रस रेणु जितना वडा एक रथरेणु (रथ चलते उडे वह) ८ रथरेणु जितना वडा देव कुरू उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र, ८ देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितना वडा एक हरीवास रम्यकवास क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र ८ हरीवास रम्यकवास क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितना जाडा १ हेमवय एरण्य क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितना जाडा १ पूर्व महाविदेह पश्चिम महाविदेह क्षेत्र के मनुष्य का वालाग्र ८ पूर्व पश्चिम महाविदेह क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्र जितना जाडा १ भर्त ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यका वालाग्र. ८ भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्यके वालाग्र जितनी जाडी एक लीख, ८ लीख जितनी जाडी १ युका. ८ युका जितना जाडा १ जव मध्य ८ जव मध्य जितना जाडा १ अंगुल, ६ अंगुल का १ पउ (मुट्ठी) २ पउ की एक वेहथी २ वेहथी का १ हाथ २ हाथ की १ कुच्छी २ कुच्छीका १ धनुष्य, २००० धनुष्यका १ गाउ (कोस) ४ गाउ का १ योजन (यह योजन अशाश्वता) वस्तु के मापका और ४००० गाउका १ योजन शाश्वता वस्तु के प्रमान का, इस प्रकार आगे भी सर्व स्थान योजना करनी.

है । दूसरा बलिया घन वात (जमी हवा) का, नीचे २०००० योजन चौडा नीचे के दोनों कौने में ५ योजन चौडा ऊपर मध्य में ४ योजन चौडा; ऊपर दोनों दीपक की सन्धीस्थान ५ योजन चौडा ऊपर के दोनों कौने में ४ योजन चौडा और ऊपर के मध्य में १ कोस चौडा। तीसरा बलिया तनुबात (तनी हवा) का नीचे २०००० योजन चौडा, नीचे के दोनों कौने में ४ योजन चौडा ऊपर मध्य में ३ योजन चौडा ऊपर दोनों दीपक की सन्धी के स्थान ४ योजन चौडा, ऊपरके दोनों कौनों में ३ योजन चौडा और ऊपर के मध्य में १५७५ धनुष्य चौडा है. यहां सिद्ध भगवंत हैं ।

जिस प्रकार घर के मध्य विभाग में स्थम्भ खडा होता है उस प्रकार लोक के मध्य एक रज्जू चौडी और १४ रज्जू नीचे से ऊपर तक लम्बी त्रसनाल है. * त्रसनाल के अन्दर त्रस और स्थावर दोनों प्रकार के जीव हैं. बाकी सब लोक केवल स्थावर जीवों से भरा है.

उक्त लोक के तीन विभाग किये हैं अधो (नीचा) लोक, मध्य (तिरछा) लोक और उर्ध (ऊंचा) लोक इनमें से प्रथम अधो लोक का वर्णन करते हैं ।

अधोलोक का वर्णन ।

(नर्क का वर्णन ।)

लोक के नीचे अलोक के ऊपर बलिये के अन्दर एक रज्जू ऊंची और ४६ रज्जु के घनाकार विस्तार में सातवीं माघवती (तमतमा प्रभा)

---

* त्रसनाल के बाहिर त्रसजीव ३ कारन से पाते हैं. यथा–१ किसी त्रस जीव ने त्रसनाल के बाहिर के स्थावर जीव में उत्पन्न होने का आयु बन्ध किया वह मरणान्तिक समुद्घात करते आत्म प्रदेश के तन्तु रूप श्रेणी त्रसनाल के बाहिर प्रसारे तब २ त्रसजीव आयु पूर्ण कर विग्रहगति कर त्रसनाल के बाहिर जावे तब. और ३ केवली समुद्घात करते वक्त ४ थे ५ वें समय सब लोक में प्रदेश पूर्ण करे तब.

नामक नर्क है इस में १०८००० योजन का जाडा पृथ्वी मय पिण्ड है ५२॥ हजार योजन नीचे और ५२॥ योजन ऊपर छोड कर बीच में ३ हजार योजन की पोलार में एक पाथडा (गुफा जैसी जगह) है. जिस में काल, महाकाल, रुद्र, महारुद्र और अपइठ नामक पाँच नर्का-वास--'नेरइए * नर्क के जीवों के रहने के स्थान हैं जिस में असंख्यात कुम्भीयें और असंख्यात नेरइए हैं जिन का ५०० धनुष्य का देहमान और जघन्य २२ सागरोपम उत्कृष्टा ३३ सागरोपम का आयुष्य है उक्त सातवीं नर्क की हद्दी के ऊपर एक रज्जु ऊंची और ४० रज्जु घनाकार विस्तार में छट्ठी मघा (तम प्रभा) नामक नर्क है जिस में १,१६००० योजन का पृथ्वी पिण्ड है १००० योजन नीचे और १००० योजन पीच ऊपर छोड कर बीच में १,१४००० योजन का पोलार है जिसमें ३ पाथडे और २ अन्तर हैं अन्तर तो खाली हैं और पाथडे में ९९,९९५ नर्कावास हैं जिसमें असंख्यात कुम्भियें और असंख्यात नेरइये हैं जिन का २५० धनुष्य का देहमान और जघन्य १७ सागरोपम उत्कृष्ठा २२ सागरोपम का आयुष्य है.

उक्त छट्ठी नर्क की हद्दी के ऊपर एक रज्जू ऊंची और ३४ रज्जू घनाकार विस्तार में पाचवी रिष्ठा (धूमप्रभा) नामक नर्क है जिस में १,१८००० योजन का पृथ्वी पिण्ड है १००० योजन ऊपर और १००० योजन नीचे छोड बीच में १,१६००० योजन की पोलार है, जिस में ५ पाथडे और ४ अन्तर हैं. अन्तर खाली हैं और पाथडे में ३००००० नर्कावास हैं, जिसमें असंख्यात कुम्भीये और नेरइयेहैं, जिनका १२५ धनुष्य का देहमान और जघन्य १० सागरोपम उत्कृष्टा १७ सागरोपम का आयुष्य है।

* जैसे मकान की मंजिल होती हैं तैसे नर्क के मंजिल को अन्तर कहते हैं और मंजल के बीच पृथ्वी का पिंड होता है तैसे ही अंतर के बीच के पिंड को पाथडे कहते । यह पाथडे पोले हैं जिनमें नरकावास हैं इनमें नरक के जीव नेरइये रहते हैं।

उक्त पांचवी नर्क की हद्दी के ऊपर एक रज्जु ऊंची और २८ रज्जु घनाकार विस्तार में चौथी अंजना (पंखप्रभा) नामक नर्क है जिसमें १,२०,००० योजन का पृथ्वी पिंड है. १००० योजन नीचे १००० योजन ऊपर छोड बीच में १,१८००० योजन की पोलार है. जिसमें ७ पांथडे और ६ अन्तर हैं, अन्तर खाली हैं. और पांथडों में १०,००००० नर्कावास हैं. जिनमें असंख्यात कुम्भीयां और असंख्यात नेरइये हैं. जिनका ६२॥ धनुष्य का देहमान और जघन्य ७ सागरोपम उत्कृष्टा १० सागरोपम का आयुष्य है.

उक्त चौथी नर्क की हद्दी के ऊपर एक रज्जू ऊंची और २२ रज्जू घनाकार विस्तार में तीसरी 'सीला' (वालुप्रभा) नाम की नर्क है जिसमें १,२८००० योजन मोटा पृथ्वी पिण्ड हैं, १००० योजन नीचे और १००० योजन ऊपर छोड बीच में १,२६००० योजन की पोलार है, जिसमें ९ पांथडे और ८ अन्तर हैं. अन्तर खाली हैं और पांथडों में १५,००,००० नर्कावास हैं. जिनमें असंख्यात कुम्भीयां और असंख्यात नेरइय हैं जिनका ३१। धनुष्य का देहमान और जघन्य ३ सागरोपम उत्कृष्ट ७ सागरोपम का आयुष्य है.

उक्त तीसरी नर्क की हद्दी के ऊपर एक रज्जू ऊंची और १६ रज्जू के घनाकार विस्तार में दूसरी 'वंसा' (शर्कप्रभा) नामक नर्क है, जिसमें १३२००० योजन का पृथ्वी पिण्ड है, १००० योजन नीचे १००० योजन ऊपर छोड बीच मे १,३०,००० योजन की पोलार है. जिसमें ११ पाथडे और १० अन्तर हैं. अन्तर खाली हें और पांथडों में २५००००० नर्कावास हैं जिनमें असंख्यात कुम्भीयें और असंख्यात नेरइय हैं, जिनका १५॥ धनुष्य १२ अंगुल का देहमान और जघन्य १ सागर उत्कृष्ट ३ सागर का आयुष्य है।

उक्त दूसरी नर्क की हद्दी के ऊपर एक रज्जू ऊंची और १० रज्जू

घनाकार विस्तार में पहिली 'घमा' (रत्नप्रभा) नामक नर्क है जिसमें १,८०,००० योजन का पृथ्वी का पिण्ड है, १००० योजन नीचे और १०००योजन ऊपर छोड बीचमें १,७८००० योजनकी पेलारमें १३ पांथडे और १२ अन्तर हैं, एक ऊपर का और एक नीचे का अन्तर तो खाली है और बीच के १० अन्तरों में असुर कुमारादि १० जाति के भुवनपति देवता रहते हैं और पाथडों में ३०,००००० नर्कावास हैं. जिनमें असंख्यात कुम्भीया और असंख्यात नेरइय हैं. जिमका ७॥ धनुष्य और ६। अंगुल का देहमान और आयुष्य जघन्य १०००० बर्ष का उत्कृष्ट १ सागरोपम का है *।

उक्त सातों ही नर्क के सब मिलकर ४८ पांथडे ४२ अन्तर और ८४००००० नर्कावास होते हैं, सब नर्कावास अन्दर से गोलाकार और बाहिर से चौकोने पाषानमय भूमी तलवाले महा दुर्गन्ध मय और हजारों बिच्छुओं के दंश से भी अधिक दुखप्रद स्पर्श वाले हैं। सातवीं नर्क का 'अपइठ' नामक नर्कावास १००००० योजन का लम्बा चौडा गोलाकार है और प्रथम नर्क का 'सीमन्त' नामक नर्कावास ४५००००० योजन का लम्बा चौडा गोलाकार है बाकी सब नर्कावास असंख्यात २

* वर्ष, पल्योपम, सागरोपम का परिमान-आंख के एक टमके में असंख्यात समय बीत जातेहैं, ऐसे असंख्यात समय की १ आंवलिका काल, ३७७३ आंवलिका का १ श्वाच्छोश्वास, ३७७३ निरोगी मनुष्य के श्वाच्छोश्वास का १ मुहुर्त (कच्ची दो घड़ी) ३० मुहुर्त की अहोरात्री (दिन रात) १५ अहोरात्रिका १ पक्ष, २ पक्ष का १ महीना, २ महीने की १ ऋतु वसन्तादि ३ ऋतु की १ अयन, उत्तरायन दक्षिणायन २ अयन का १ वर्ष, ५ वर्ष का १ युग। एक योजन का लम्बा चोड़ा गोल और एक ही योजन का ऊंडा ऐसे कूवे में देव कुरु उत्तर कुरु क्षेत्र के मनुष्य के १ दिन से सात दिन तक के बच्चे के बालाग्र एक के दो विभाग तीक्ष्ण शस्त्र से भी न होवे ऐसे बारीक कर उक्त कूवे को टूंस २ कर ऐसा भरे कि उस पर से चक्रवृत्ति की सेना भी चली जाय तो वह दबे नहीं, फिर उस कूप में से १००-१०० वर्षके बाद एक बालाग्र निकालते २ जब वह कूवा साफ खाली होजावे उसमें एक भी बालाग्र न रहे, उतने वर्ष को एक पल्योपम कहना। ऐसे १० क्रोडा क्रोडी (१०००००००००००००००) कूवे खाली होवे उतने वर्षों के समूह को १ सागरोपम कहना।

योजन के लम्बे चौडे हैं तीन २ हजार योजन के ऊंचे हैं, जिसमें से १००० योजन ऊपर और १००० योजन नीचे छोड बीच में १००० योजन के पोले हैं ।

प्रत्येक नर्क के नीचे अलग २ तीन २ बलिकार्ध (आधी चूडी जैसे) हैं यथा—१ 'प्रथम बलिकार्ध घनोदधी (जमे पानी) का २००० योजन का है. उसके नीचे दूसरा बलिकार्ध घनवाय (जमे वायु) का उससे असंख्यात गुना अधिक है, उसके नीचे तीसरा बलिकार्ध तनुवाय (तने वायु) का उससे असंख्यात गुना अधिक है. उसके नीचे असंख्यात गुना आकाश है. जैसे पारे पर पत्थर और हवा में बेलुन (गुब्बारा) ठहरता है तैसे ही उक्त तीनों बलिकार्ध के आधार पर सातों नर्क ठहरी हैं.

१ रत्नप्रभा नर्क कृष्ण वर्ण भयंकर रत्नों से व्याप्त है । २ शर्कर प्रभा भाले बरछी से अधिक तीक्षण कंकरों से व्याप्त है. ३ बालु प्रभा भडभुंजे की भाड की उष्ण रेती से भी अधिक उष्ण रेती से व्याप्त हैं, ४ पंकप्रभा रक्त मांस रस्सी के कीचड से व्याप्त है, ५ धुम्रप्रभा राई मिरच के धूम्र से भी अधिक खारे धूंवे से व्याप्त है. ६ तमप्रभा घोर अंधकार से व्याप्त है और ७ तमतमा प्रभा में घोरानघोर अंधकार व्याप्त है।

नर्क के नर्कावास की भींत में ऊपर बिल * के आकार योनी स्थान (नेरइय के उत्पन्न होने की जगह) है उसमें पापी प्राणी उत्पन्न होकर १ वहां रहे अशुभ पुद्गलों का आहार ग्रहण कर आहार पर्याप्त होते हैं, २ जिससे फिर वैक्रय शरीर निष्पन्न होने से शरीरपर्या कर पर्याप्त होते हैं. ३ फिर शरीर से इन्द्रियों का आकार बनने से इन्द्रिय पर्याकर पर्याप्त

* सुयगडांग सूत्र के ५ वें अध्याय में 'अहो सिरोकट्टु उयवे इ दुगां' अर्थात् नर्क में उत्पन्न होते नेरइये नीचा सिर कर पड़ते ऐसा कहा है. ऐसे ही प्रश्न व्याकरन सूत्र के प्रथम आश्रय द्वार में भी कहा है, जिससे जाना जाता है कि नेरइये का उत्पत्ती स्थान ऊपर बिल ही होना चाहिये । इसका विशेष खुलासे वार कथन दिगम्बर आम्नाय के ग्रन्थ में है । बिल-नेक कंभी में भी उत्पन्न स्थान कहते हैं ।

होते हैं. ४ फिर इन्द्रियों द्वार वायु को ग्रहण और मुक्त करते श्वाच्छोश्वास पर्याकर पर्याप्त होते हैं, ५ फिर मन और भाषा का साथ ही बन्धकर पांचों पर्या से पर्याप्त हो बिल के नीचे रही कुम्भी में नीचे सिर और ऊपर पैर कर गिरते हैं. वे कुम्भीयां चार प्रकार की कही हैं: यथा— ऊंट की गर्दन की जैसी बांकी. २ घृत के कुप्पे (सीदडे) के जैसी मुख चौडा और अधो भाग संकीर्ण—सकडे वाली, ३ डिब्बे के जैसी—ऊपर नीचे बराबर और ४ तीजारे (अफीम) के दोडे के जैसी—पेट चौडा मुख सकडा और अन्दर चारों तरफ तीक्षण धारों वाली। इनमें से किसी एक कुम्भी में गिरे बाद उस नेरइय का शरीर फूल जाता है जिससे कुम्भी में फस तीक्षण धारके चुभने से अती दुःखी हो पुकारता है, तब परमाधामी (यम) देव उसे चिमटे से खैंचकर निकालते हैं उस वक्त उसके शरीर के खण्ड २ (टुकडे २) होकर निकलते हैं जिससे अति दुःख तो होता है, किन्तु वह मरता नहीं है, क्योंकि कृत कर्म के फल भुक्ते बिना छुटकारा नहीं होता है. जैसे बिखरा हुआ पारा मिल जाता है, तैसे ही उस नेरइय के शरीर के टुकडे मिल कर फिर यथोचित्त शरीर बन जाता है।

१५ जाति के परमाधामी देव कृत दुःख।

वह नेरइया जब क्षुधा तृषा से व्याकुल हो भोजन पान की याचना करता है तब जैसे कोई आम के फल को मसल कर ढीला बनाता है तैसे 'अम्ब' नामक परमा धामी नेरइय के शरीर को मर्दन कर उसकी नशोंको स्थिल कर निर्बल बना देताहै, २ जैसे कोई अम्ब के रस को निकाल गुठली छिलका अलग २ फैंक देता है, तैसे "अम्बरस" नामक परमाधामी नेरइये के शरीर के रक्त मांस हड्डी चर्म रूप पुद्गलों को अलग २ कर फैंक देताहै. ३ जैसे सिपाही चोरको मारता है. तैसे 'शाम' नामक परमाधामी नेरइये को मारता है. ४ जैसे सिंह कुत्ते बिल्ली अपने भक्ष को ग्रहण कर चीडफाड

कर मांस निकालते हैं तैसे 'सबल' नामका परमाधामी नेरइये के शरीर को चीर फाड कर मांस जैसे पुद्गलों को निकालते हैं, ५ जैसे देवी के भोपे बकरे आदि को त्रिसूल से छेदते हैं शूली से भेदते हैं तैसे 'रुद्र' परमाधामी नेरइये का छेदन भेदन करते हैं. ६ जैसे कसाई मांस के खण्ड २ करता है तैसे "महारुद्र" नामका परमाधामी नेरइये के शरीर के खण्ड २ करतेहैं. ७ जैसे हलवाई गरम तेलमें पुडी भुजीया तलताहै तैसे 'काल' नामका परमाधामी नेरइयेका मांस काट २ कर तेल में तल २ कर उसे ही खिलाते हैं. ८ जैसे मुरदार जानवर का मांस पक्षी चूंट २ कर खातेहैं तैसेही "महाकाल" नामका परमाधामी नेरइये का मांस चिमटे से चूंट कर २ उसे ही खिलाते हैं. ९ जैसे वीर पुरुष संग्राम में तलवार से शत्रु का संहार करता है तैसे 'असीपत्र' नामका परमाधामी तलवारसे नेरइयों के शरीर के तिल २ जैसे सूक्षम खंड करते हैं १० जैसे शिकारी कांन तक धनुष्य को तान बान से पशु के शरीर को भेदताहै तैसे 'धनुष्य' नामका परमाधामी धनुष्य बानसे नेरइयेके शरीर को भेदता है, ११ जैसे गृहस्थी निम्बू आदि को चीर फाड कर मशाले भर घडे में आचार डालते हैं तैसे 'कुम्भी' परमाधामी नेरइये के शरीर को चीर फाड मशाला भर कुंभीमें पचातेहैं, १२ जैसे भडभूंजा ऊष्ण रेती की कडाई में चने आदि धान्यको भूंजता है तैसे 'वालु' नामका परमाधामी नेरइये को उष्ण वालू में भूंजते हैं १३ जैसे धोबी वस्त्र को धोता है नीचोडता है. तैसे 'वेतरणी' परमाधामी नेरइये को वेतरनी नदी की सिला पर पछाड २ धोता निचोडता है. १४ जैसे शोकीन बगीचे की हवा खाते हैं तैसे "खर स्वर" नामका परमाधामी वैक्रायके बनाये शाल्मली वृक्षके वन में नेरइये को बैठाकर हवा चलाताहै जिससे वे पत्ते तलवार बरछी की धार जैसे तीक्ष्ण नेरइयेके अंगपर पडतेहैं त्योंही अंग कट कर गिर पडता है. यों सब शरीर का छिन्न भिन्न करते हैं और १५ जैसे ग्वाला बकरीयों को बाडे में ठूंस २ के भरता है तैसे 'महाघोष' नामका परमाधामी अन्धेरे सकडे कोठे में नेरइये को ठूंस २ कर खचाखच भरते हैं.

जो मांस आहारी प्राणी नर्क में उत्पन्न हुए हैं उनको यमदेव उन के शरीर का मांस चिमटे से तोड तेल में तलकर रेती में भूंज कर उन्हें खिलाते हुए कहते हैं कि–तू मांस भक्षन में लुब्ध था सो तुझे यह भी पसन्द करना चाहिये ! मदिरा और बिना छाने पानी पीने वाले को तांबा सीसा तरुआ लोहे का उकलता २ रस संडासी से मुंह फाड़ कर पिलाते हुए कहते हैं कि–लीजिये ! यह भी बडी लज्जतदार है ? वेश्या और परस्त्रीगमनी को तपाकर लाल बनाई हुई फोलाद की पुतली से द्रढालिंगन बलात्कार मे कराते हुए कहते हैं अय दुष्ट ! तुझे परस्त्री प्यारी लगती थी तो अब क्यों रोता है. कुमार्ग में चलने वाले का और खोटे उपदेश द्वारा अन्य को कुमार्ग में चलाने वाले को झगझगाते लाल अंगारों पर चलाते हैं । जानवरों और मनुष्यों पर अधिक भार लादने वालों के पास डोंगर में कंकर कांटे के रास्ते में लक्खों टन वजन की गाडी खिंच वाते हैं ऊपर तीक्ष्ण आरों का चाबुक प्रहार करते हैं। कूप, तालाब, नदी आदि के पानी में मस्ती करने वाले को बिना, छना पानी काम में लाने वाले को, बेहद पानी फैलाने वाले को वैतरनी नदी के उष्ण तीक्ष्ण पानी में डाल कर उस के शरीर को छिन्न भिन्न कर डालते हैं. सांप बिच्छू पशु पक्षी आदि प्राणी के मारने वाले को यमदेव सांप बिच्छू सिंह आदि का रूप बना कर चीर फाड डालते हैं, तीक्ष्ण जहरीले दंश से उन को त्रासित करते हैं. वृक्ष छेदन करने वाले के शरीर को छेदन करते हैं. माता पितादि वृद्धों को सन्ताप उपजाने वाले का हृदय भाले से भेदते हैं. दगा चोरी करने वाले को ऊंचे पहाड से पटकते हैं 'श्रोतेन्द्रिय प्रिय' राग रागिनी के अत्यन्त शोकीन के कान में उकलता २ शीशा डालते हैं. 'चक्षुरेन्द्रिय' से परस्त्री और ख्याल तमासे के निरीक्षण में गृधी की आंखें शूल से फोडते हैं. घ्राणेन्द्रिय से पुष्प अतरादि के अत्यन्त आसक्त को राई मिरच का तीक्ष्ण धूम्र सुंघाते हैं. रसेन्द्रिय से चुगली, निन्दा,

लबाडी करने वाले के मुंह में कटारी भरते हैं. यों कितनेक को घानी में पीलते हैं, अंगारों में पचाते हैं, महावायु में उडाते हैं. इत्यादिक पूर्व कृत्य कर्मानुसार अनेक प्रकार के महा दुःखों से दुःखित करते हैं. वे नेरइये उक्त दुःख से घबराये हुए बडी लाचारी और दीनता से दोनों हाथ की दशों अंगुलियों मुंह में डाल, पांव में पड प्रार्थना करते हैं. हम अब ऐसा पाप नहीं करेंगे ! हमें मत मारो ! मत सतावो ! लेकिन उन करुणामय शब्दों से उन परमाधामी (परम-अधर्मियों) को बिल्कुल भी दया नहीं आती है उन की प्रार्थना पर बिल्कुल लक्ष नहीं देते हुए उन के कथन को ठट्ठे में उडाते हुए उन्हें अधिक २ दुःख देते हैं।

यहां स्वभाव से ही दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं,—यथा १ नेरइये को परमाधामी क्यों दुःखित करते हैं, और २ परमाधामीयों को वह पाप लगता है या नहीं ?

उत्तर—जैसे कितनेक निर्दयी लोग शिकार खेलने में, हाथी बैल भैंसे मेष कुत्तों के लडाने में आनन्द मानते हैं तैसे ही असंख्य अग्नि, पानी, वनस्पति के जीवों की घात हो ऐसे अज्ञान तप के प्रभाव से ही परमाधामी देव होते हैं वे नेरइयों को सन्ताप उत्पन्न करने में ही आनन्द मानते हैं. और २ पाप तो जो करता है उन सब को ही लगता है, ऐसे पाप के योग से ही वे परमाधामी देव मर कर बकरे मुर्गे आदि नीच योनियों में उत्पन्न हो अपूर्ण आयु में ही मारे जाते हैं.

उक्त प्रकार की परमाधामी कृत वेदना सिर्फ तीसरी नर्क पर्यन्त है और चौथी पंचमी नर्क में जैसे नये कुत्ते के आने से दूसरे कुत्ते उस पर टूट पडते हैं और दांतों से और पञ्जों से उसे त्रासित करते हैं तैसे ही नर्क में एक नेरइये पर टूट दूसरे पडते हैं और उन्हें महा परिताप उत्पन्न करते हैं उस वक्त जो सम्यकदृष्टी नेरइये हैं वे तो पूर्व कर्मों का उदय मात्र जान समभाव से दुःख सहते हैं, दूसरे को दुःख नहीं देते हैं, और जो

मिथ्य द्रष्टी हैं वे परस्पर लातों मुक्कों से तथा वैक्रय शस्त्र बना कर प्रहार करते हैं, मारामारी करते हैं और छटी सातवीं नर्क में, गोमय (गोबर) के कीडे के जैसे वज्रमय मुख वाले कुंथुवे के रूप बना कर परस्पर एक के शरीर में आर पार निकल जाते हैं, सब शरीर में चलनी के जैसे छिद्र कर महा भयंकर परिताप उपजाते हैं, इस प्रकार महा दुःख भोगते हैं।

१० प्रकार की क्षेत्र वेदना।

१ 'अनन्त क्षुधा'—जगत में जितने खाद्य (खाने जैसे) पदार्थ हैं उतने सब एक ही नेरइये को दे दिये जाय तो भी उसकी तृप्ति नहीं होवे, ऐसे क्षुधातुर सदैव रहते हैं. २ 'अनन्त तृषा'—सब समुद्रों का पानी भी एक नेरइये को दे दिया जाय तो भी वह तृप्त नहीं होवे ऐसे तृषातुर सदैव रहते हैं. ३ 'अनन्त शीत'—लक्ष मन लोहे का गोला शीत योनि नर्क के स्थान में छोडते ही वह शीत के जोर से छार २ हो विखर जाय ऐसी तीव्र वहां पर शीत है. यदि कोई वहां के नेरइये को उठा कर हिमालय के वर्फ में सुलादे तो वह उसे वडा ही आराम का स्थान समझे. ऐसी सरदी वहां सदैव है. ४ 'अनन्तताप' नर्क के उष्ण योनिक स्थान में लक्ष मन लोहे का गोला छोडते ही गल कर पानी सा हो जावे और यदि कोई उस स्थान के नेरइये को जलती हुई भट्टी में सुलादे तो वह वडा ही आराम माने. ऐसी गरमी वहां सदैव रहती है. 'अनन्त महा ज्वर'—नेरइये के शरीर में सदैव जलन रहती है. ६ 'अनन्त खुजली'—नेरइये सदैव शरीर कुचरते ही रहते हैं रहते हैं. ७ 'अनन्त रोग'—जलोदर, भगंदर, खांसी, स्वास कुष्ट आदि १६ वडे रोग और ५,६८,९९,५८५ प्रकार के छोटे रोग नेरइये के शरीर में सदैव प्रकट रहते हैं. ८ 'अनन्त अनाश्रय'—नेरइये को कोई भी किसी भी प्रकार की मदद आश्रय दिलासा देने वाला नहीं है. ९ 'अनन्त शोक'—नेरइये सदैव निरन्तर चिन्ता ग्रसित बने रहते हैं. और १० 'अनन्त

भय'—जहां क्रोडों सूर्य भी मिलकर प्रकाश नहीं कर सक्ते ऐसा घोर अन्धकार मय नर्क का स्थान है इस लिये नर्क (न=नहीं+ऽर्क=सूर्य) नाम है. तैसे ही नेरइयों के शरीर भी काले महा भयंकर हैं. और चारों तरफ मार मार की पुकार हो रही है इत्यादि कारण से नर्क के नेरइये प्रति क्षण भय-व्याकुल बन रहे हैं। इन १० ही प्रकार की क्षेत्र वेदना से सातों ही नर्कों के जीव सदैव अनुभवते निरन्तर महा त्रासित हो रहे हैं, आंख के टमके जितना भी आराम नहीं है।

प्रश्नः—ऐसी महा दुःख प्रद नर्क में किस पापोदय से जीव जाता है?

उत्तरः—सुयगडांग सूत्रके प्रथम स्कंध के ५वें अध्ययन में कहा है।

गाथा—तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य। जे हिंसाति आयसुहं पडुच्चा॥
जे लूसए होइ अदत्तहारी। ण सिक्खति सेय वियस्स किंचि॥४॥
पागब्भि पाणे वहुणं तिवाती। अनिव्वते घात मुवेति बाले॥
णिहो णि सं गच्छति अंतकाले। अहोसिरं कट्टु उवेइ दुग्गं॥

अर्थ—जो प्राणी अपने सुखके लिये त्रस (बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चउरेन्द्रिय पचेन्द्रिय और स्थावर (पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति) के जीवों की तीव्र-निर्दय-क्षुद्र परिणाम से हिंसा-घात करता है, मर्दन कर परिताप उपजाता है. पर द्रव्य का हरन (चोरी) करता है—रास्ते जाते को लूटता है, सेवन (अंगीकार) करने योग्य हिंसादि पाप को निवृती रूप व्रत और नवकारसी आदि इच्छा निरूंधन रूप प्रत्याख्यान का शिक्षन (ज्ञान) प्राप्त नहीं करता है, हिंसादि पाप कृत्य के कामों को पुण्य के कृत्य बताने का बचन का धृष्ट (धीठा) पना करताहै, क्रोधादि चतुर कषाय से (अनन्तानबन्धी) से नहीं निवृत्ति वाला अज्ञानी मृत्यु के बाद नीचा मस्तक कर के अन्धकार मय महा विषम नर्क स्थान में जाता है और महा दुःख पाता है.

भुवनपति देव का वर्णन।

पूर्वोक्त प्रथम नर्क के १२ अन्तर असंख्यात योजन के लम्बे चौडे हैं और ११,५८३ योजन के ऊंचे हैं जिन के दो विभाग हैं, यथा १ दक्षिण और २ उत्तर, १२ अन्तर में से १ ऊपर का और १ नीचे का यह दो अन्तर तो खाली पडे हैं और बीच के दश अन्तरों में अलग २ दश जाति के (भुवनपति) भुवन वासी देवता रहते हैं. उक्त दश विभागों में से ऊपर के प्रथम विभाग में असुरकुमार जाति के देवता रहते हैं. जिनके दक्षिण के विभाग में ४४ लक्ष भुवन हैं जिनके चमरेन्द्रजी मालिक हैं. चमरेन्द्रजी के ६४००० सामानिक देव, २,५६,००० आत्मरक्षक देव ६ अग्रमहेषी (बडी) इन्द्राणीयां, एक एक इन्द्राणी के छः छः हजार का परिवार ७ अणिका (सैना *) ३ परिषदाः—१ अभ्यन्तर परिषदाके २४,००० देव, मध्य परिषद के २८,००० देव, बाहिर परिषद के ३२,००० देव, हैं. तैसे ही अभ्यन्तर परिषद की ३५० देवी, मध्य परिषद की ३०० देवी, बाहिर परिषदकी २५० देवीहैं। देवताओंका आयुष्य जघन्य १०००० वर्षका उत्कृष्टे १ सागरोपमका इनकी देवीयोंका आयुष्य जघन्य १०००० वर्ष का उत्कृष्टे ३॥ पल्योपम का। और उत्तर के विभाग में ४० लक्ष भुवन हैं, जिन के मालिक बलेन्द्रजी हैं। बलेन्द्रजी के ६०,००० सामानिक देव, २,४०,००० आत्मरक्षक देव, ६ अग्रमहेषी (बडी) इन्द्राणी, एक एक के छः छः हजारका परिवार, ७ अणिका (सैना) ३ परिषद १ अभ्यन्तर परिषद के २०,००० देव, मध्य परिषद के २४,००० देव, बाहिर परिषद के २८,००० देव हैं. तैसे ही अभ्यन्तर परिषद की ४५० देवी, बाहिर परिषद की ३५० देवी हैं। इन देवातायों का आयुष्य

* १ गंधर्व की, २ नाटक की, ३ अश्व की, ४ हस्ति की, ५ रथ की, ६ पैदल की और ७ भैंसे की यह सात प्रकार की सैना है.

जघन्य १०,००० वर्ष से कुछ अधिक उत्कृष्ट १ सागरोपम और इनकी देवियों का जघन्य १०००० वर्ष से कुछ अधिक और उत्कृष्ट ४॥ पल्योपम से कुछ अधिक है।

दूसरे अन्तर में नागकुमार जाति के देवता रहते हैं, जिनके दक्षिण के विभाग में ४४ लक्ष भुवन हैं जिनके धरणेन्द्रजी मालिक हैं और उत्तर के विभाग में ४० लक्ष भुवन हैं जिन के भूतेन्द्रजी मालिक हैं. तीसरे अन्तर में सूर्यकुमार नाम के देव रहते हैं. इनके दक्षिण विभाग में ३८ लक्ष भुवनहैं जिनके वेणु इन्द्र और उत्तर विभागमें ३४ लक्ष भुवनहैं जिन के मालिक वेणुदलिन्द्र हैं. चौथे अन्तर में विद्युत्कुमार जाति के देवता रहते हैं. दक्षिण के हरिकान्त इन्द्र हैं और उत्तर के हरीशेखरेन्द्र हैं. पांचवें अन्तर में अग्निकुमार जाति के देवता रहते हैं। दक्षिण के अग्नि शिखरेन्द्र और उत्तर के अग्निमाणवेन्द्र हैं। छट्ठे अन्तर में द्विपकुमार जाति के देवता रहते हैं. दक्षिण के पूर्णेन्द्र और उत्तर के विशेष्टेन्द्र, सातवें अन्तर में उदधीकुमार जाति के देवता रहते हैं। दक्षिण के जलकान्तेन्द्र और उत्तर के जलप्रभेन्द्र हैं। आठवें अन्तर में दिशाकुमार जाति के देव रहते हैं. दक्षिण के अमीतेन्द्र और उत्तर के आमितवहनेन्द्र, नवमे अन्तर में वायुकुमार जाति के देव रहते हैं. दक्षिण के वलवकेन्द्र हैं और उत्तर के प्रभंजनेन्द्र, और दशवें अन्तरमें स्थनितकुमार जाति के देव रहते हैं जिन के दक्षिण दिशा के घोपेन्द्र हैं और उत्तर दिशा के महाघोपेन्द्र हैं. इन में चौथे विद्युतकुमार से स्थनित कुमार तक अलग २ दक्षिण में चालीस २ लक्ष और उत्तर में छत्तीस २ लक्ष भुवन हैं. दूसरे नागकुमार से दशवे स्थानित कुमार तक जाति के देवों को नवनीकाय [नव जाति] के देव कहते हैं, दक्षिण के नवनीकाय के इन्द्र के सब के अलग२ छःछः हजार सामानिक देवहैं. चौवीस२ हजार आत्मरक्षक देवहैं पांच२ अग्रमहेषी इन्द्राणियां हैं, एक २ के पांच २ हजार का परिवार है. सात २

अनिका तीन २ परिषदा—अभ्यन्तर परिषदके ६०,००० देव, मध्य परिषदके ७०००० देव बाहिरके परिषदके ८०००० देवहैं तैसेही अभ्यन्तर परिषदकी १७५ देवी, मध्य परिषदकी १५० देवी बाहिर परिषदकी १२५ देवी; उक्त नव ही जाति के देवता का आयुष्य जघन्य १०,००० वर्ष का उत्कृष्टे १॥ पल्योपम का, देवी का आयुष्य जघन्य १०,००० वर्ष का उत्कृष्टे ३/४ (पौन) पल्योपम का, और उत्तर के नवनी काय के इन्द्र के सब के अलग २ छः छः हजार सामानिक देव चौबीस २ हजार आत्मरक्षक देव, पाँच २ अग्र महेषी इन्द्राणी, एकएक के पांच २ हजारका परिवार ७ अणिका, ३ परिषदा—१ अभ्यन्तर परिषद के ५०,००० देव, मध्य परिषद के ६०,००० देव, बाहिर की परिषद के ७०,००० देव हैं, तैसे ही अभ्यन्तर परिषद की २२५ देवी, मध्य परिषद की २०० देवी, बाहिर परिषद की १७५ देवी, नवही जाति के देवता का आयुष्य जघन्य १०,००० वर्ष से कुछ अधिक उत्कृष्टे कुछ कम दोपल्योपम का, देवियों का आयुष्य जघन्य १०,००० वर्ष से कुछ अधिक उत्कृष्टे कुछ कम १ पल्योपम। दशही अन्तर के दाक्षिण दिशा के सब भुवन ४,६०००००० होते हैं और उत्तर के सब भुवन ३,६६०००००० होते हैं। इनमें छोटे से छोटा भुवन तो जम्बुद्वीप प्रमाने (१ लक्ष योजन के) मध्यम अढाई द्वीप प्रमाने (४५ लक्ष योजन के) और बडे से बडा असंख्य द्वीप समुद्र प्रमाने (असंख्यात योजन के) हैं. सब भुवन अन्द्र चतुष्कोन बाहिर गोलाकार रत्नोंमय, महाप्रकाशिक, सब सुख सामग्री युक्त हैं। संख्यात योजन के भुवन में संख्याते और असंख्याते योजन के भुवन में असंख्याते देव रहते हैं. कुमारों (बच्चों) की तरह क्रीडा करने वाले होनेसे कुमार कहे जाते हैं।

भुवन पति देव की जाति	शरीर का वर्ण	वस्त्र का वर्ण +	मुकुट का चिन्ह ×
१ असुर कुमार	कृष्ण	रक्त	चूडामणी
२ नाग कुमार	श्वेत	हरे	नागफणी
३ सुवर्ण कुमार	कनक	श्वेत	गरूड
४ विद्युत्कुमार	रक्त	हरे	बज्र
५ अग्नि कुमार	रक्त	हरे	कलस
६ द्वीप कुमार	रक्त	हरे	सिंह
७ उदधी कुमार	श्वेत	हरे	अश्व
८ दिशा कुमार	रक्त	श्वेत	हस्ति
९ वायु कुमार	हरा	गुलाबी	मगर
१० स्थनित कुमार	कनक	श्वेत	सरावला वृधमान

नोट— + उक्त रंग के वस्त्र पहनने का शोक अधिक है.

× यह चिन्ह देवताओ के मुकुट में होते हैं. इससे इनकी जाति की पहिचान होती है.

यह सातवीं नर्क के नीचे के चरमान्त से रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त तक ७ रज्जू ऊंचा और १६९ रज्जू घनाकार प्रमान में अधोलोक का वर्णन सम्पूर्ण हुआ ।

'मध्य (तिरछे) लोक का वर्णन '

पूर्वोक्त रत्नप्रभा के ऊपर १००० योजन का पृथवी पिंड है उसमें से १०० योजन नीचे और १०० योजन ऊपर छोड बीचमें ८०० योजनकी पोलार है जिसमें असंख्यात नगर (ग्राम) हैं. उनमें ८ जातिके व्यन्तर देव रहते हैं,

यथा—१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किंपुरुष, ७ महोरग, और ८ गन्धर्व । ऊपर जो १०० योजन पिण्ड छोडा उस में से १० योजन नीचे १० योजन ऊपर छोड बीच में ८० योजन की पोलार में भी असंख्यात नगर हैं, उनमें भी ८ जाति के बाण व्यन्तर देव रहते हैं. यथा—१ आनपन्नी, २ पानपन्नी, ३ इसीवाइ, ४ भूइ वाइ, ५ कन्दिय, ६ महा कान्दिय, कोहन्ड और ८ पहंग देव.

उक्त ८०० योजन की और ८० योजन की पोलार में जो असंख्यात व्यन्तर के और असंख्यात बाणव्यन्तर के नगर हैं वे छोटे से छोटे तो भरत क्षेत्र प्रमाने (५२६ योजन से कुछ अधिक) हैं, मध्यम महाविदेह क्षेत्र प्रमाने (३३,६८४ योजन से कुछ अधिक) हैं, और बडे से बडे जम्बुद्वीप प्रमाणे (१ लक्ष योजन के) हैं ।

उक्त ८०० योजन की और ८० योजन की पोलार में भी दो विभाग हैं यथा—१ दक्षिण और २ उत्तर, जिसमें रहने वाले १६ जाति के व्यन्तर और बाणव्यन्तर देवों की एक २ जाति पर दो दो इन्द्र हैं. यों १६ जाति के ३२ इन्द्र हैं, जिनके नाम निम्न यंत्र में हैं, उन एक २ इन्द्र के चार २ हजार सामानिक देव, सोलह २ हजार आत्मरक्षक देव, चार २ अग्रमहेषी इन्द्राणीयां एक २ हजार का परिवार, ७ अनिका, ३ परिषदा—१ अभ्यंतर की परिषद के ८००० देव, मध्य परिषद के १०००० देव, बाहिर की परिषदके १२००० देव । उक्त सोलह जाति के देवों का आयुष्य जघन्य १०,००० वर्ष का उत्कृष्टे आधी पल्योपम का । व्यन्तर और बाणव्यंतर देव चपल स्वभाव के धारक मनोहर नगर में देवीयों के साथ नृत गायन करते इच्छित भोग भोगते पूर्वोपार्जित पुण्य के फल अनुभवते हुये विचरते हैं ।

८०० योजन की प्रथम प्रतर के ८ जाति के व्यंतर देवों का यंत्र			८० योजन की दूसरी प्रतर के ८ जाति के वाण व्यंतर देवों का यंत्र			दोनों प्रतर के देवों के शरीरका वर्ण और मुकुटका चिह्न	
८ व्यन्तर देवों के नाम	दक्षिण दिशा के इन्द्र के नाम	उत्तर दिशा के इन्द्र के नाम	८ वाण व्यंतर देव के नाम	दक्षिण दिशाके इन्द्र के नाम	उत्तर दिशाके इन्द्र के नाम	शरीर का वर्ण	मुकुट का चिह्न
१ पिशाच	कालेन्द्र	महाकालेन्द्र	आनपन्नी	सन्निहितेन्द्र	सन्मानेन्द्र	कृष्ण	कंदव वृक्ष
२ भूत	सुरुपेन्द्र	प्रतिरूपेन्द्र	पानपन्नी	धातेन्द्र	विधातेन्द्र	कृष्ण	शाली वृक्ष
३ यक्ष	पूर्णभद्रेन्द्र	मणिभद्रेन्द्र	ईसीवाइ	ईसीन्द्र	इसीपतेन्द्र	कृष्ण	बड वृक्ष
४ राक्षस	भीमेन्द्र	महाभीमेन्द्र	भूइवाइ	ईश्वरेन्द्र	महेश्वरेन्द्र	श्वेत	पाडली वृक्ष
५ किन्नर	किन्नरेन्द्र	किंपुरुषेन्द्र	कंदीये	सुवच्छेन्द्र	विशालेन्द्र	हरा	आशोक वृक्ष
६ किंपुरुष	सुपुरुपेन्द्र	महापुरुपेन्द्र	महाकंदीये	हास्येन्द्र	हास्यरतीन्द्र	श्वेत	चंपक वृक्ष
७ महोरग	अतिकायेन्द्र	महाकायेन्द्र	कांहंडग	श्वेतेन्द्र	महश्वेतेन्द्र	कृष्ण	नाग वृक्ष
८ गंधर्व	गीतरतिन्द्र	गीतरसेन्द्र	पहंगदेवा	पहंगेन्द्र	पहंगपतेन्द्र	कृष्ण	टिम्बरू वृक्ष

मनुष्य लोक का वर्णन ।

जहां हम रहते हैं यह मनुष्य पूर्वोक्त रत्नप्रभा पृथ्वी की छत्त मध्य भाग (बीच) में सुदर्शन मेरू पर्वत है, इसके जमीन के अंदर के के मध्य में गौ रतन के आकार ८ रूचक प्रदेश हैं, वहां से ९० नीचे और ९०० योजन ऊपर ऐसे १८०० योजन का ऊंचा रज्जू घनाकार विस्तार में तिरछा लोक है, इसमें ९०० योजन नीचे और बाणव्यन्तर देव रहते हैं जिनका वर्णन पाहिले कर दिया गर ऊपर के ९०० योजन में द्वीप समुद्र और ज्योतिषी चक्र है जिसका अब किया जाता है।

मेरू पर्वत का वर्णन ।

सर्व पृथ्वी के मध्य में जो सुदर्शन मेरू पर्वत है, वह मल स्थम्भ के आकार गोल नीचे चौडा और ऊपर सकडा नीचे से ऊपर तक १००००० योजन का ऊंचा जिसमें १००० योजन पृथ्वी में और ९९००० योजन पृथ्वी के ऊपर है, और पृथ्वी के अंदर मूल में १००९० $\frac{१०}{११}$ योजन चौडा है। पृथ्वी पर १०००० योजन चौडा है. यों क्रमसे घटता २ शिखर में १००० योजन चौडा रह गया है। सम्पूर्ण पर्वत के ३ काण्ड (विभाग) हैं—यथा १ पृथ्वी के अंदर मृतिका पाषान कंकर और बज्र रत्न मय १००० योजन का है, २ पृथ्वी पर स्फटिकरत्न अंकरत्न रूपा और सुवर्ण मय ६३००० योजन में है. वहां से आगे ३रा काण्ड रक्त सुवर्णमय ३६००० योजन में है, मेरू पर्वत पर ४ वन (बाग) हैं. यथा—१ पृथ्वी पर चारों गजदन्ता पर्वत और सीता सीतोदा नदी से आठ विभाग वाला पूर्व पश्चिम में २२००० योजन लम्बा और उत्तर दक्षिण में २५० योजन चौडा 'भद्रशाल' नामक वन है, २—वहा से ५०० योजन ऊपर मेरूपर्वत के चारों तरफ घिरा हुआ वलियाकार ५०० योजन चौडा नन्दन वन है, ३ वहां से ३५,०० योजन ऊपर मेरूपर्वत के चारों ओर वलियाकार फिरता हुआ ५०० योजन चौडा

'सोमानस' वन है, ४ वहां से ३६००० योजन ऊपर मेरू के चारों ओर फिरता हुआ बलियाकार ४९४ योजन चौडा 'पंडग' वन है। इस पंडग वन के चारों दिशा में अर्जुन (श्वेत) सुवर्णमय अर्धचन्द्राकार चार सिला हैं, जिनके नाम—१ पूर्व में पाण्डुक सिला और पश्चिममें रक्त सिला, इन दोनों पर दो दो सिंहासन हैं, जिन पर जंबूद्वीप के पूर्व और पश्चिम महाविदेह के क्षेत्रों में जन्में चार तीर्थंकरों का जन्मोत्सव होता है, ३ दक्षिण में पाण्डु कम्बल सिला है, इस पर भरत क्षेत्र के जन्में तीर्थंकरों का और ४ उत्तर में रक्त पाण्डु कम्बल सिला जिसपर एरावत क्षेत्रमें जन्मे तीर्थंकरों का जन्मोत्सव होता है। इस वन के बीच में ४० योजन ऊंची, तले १२ योजन चौडी मध्यम ८ योजन चौडी और अन्त में ४ योजन चौडी वेडूर्य (हरे) रत्न में एक चूलिका (शिखा समान डोंगरी) है।

जम्बू द्वीप का वर्णन ।

पृथ्वी पर मेरू पर्वत के चारों ओर घिरा हुआ थाली के आकार पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक १००००० योजन का गोल 'जम्बूद्वीप' नामक द्वीप है. इसमें मेरू पर्वत से ४५००० योजन दक्षिण दिशा में विजय द्वार के अंदर 'भर्त' नामक क्षेत्र है। यह विजय द्वार से चूल हिमवन्त पर्वत तक सीधा ५२६ $\frac{६}{१९}$ (६ कला*) का चौडा है। चूल हेमवन्त पर्वत के पास १४,४७१ योजन लम्बा है। इस भरत क्षेत्र के मध्य में पूर्व पश्चिम १०,७२० $\frac{१२}{१९}$ (१२ कला) लम्बा, उत्तर दक्षिण में ५० योजन चौडा २५ योजन ऊंचा ६। योजन भूमी के अन्दर ऊंडा रूपे का 'वैताडय' नामक पर्वत है। इस पर्वत में ५० योजन लम्बी (आरपार) १२ योजन चौडी ८ योजन ऊंची महाअंधकार व्याप्त दो गुफा हैं. यथा—१ पूर्व में खण्ड प्रपात और २ पश्चिम में 'तमश' गुफा है. इन गुफा के मध्य की भींती से

* एक योजन के १९ वें भाग को १ कला कहते हैं।

निकली और तीन २ योजन गंगा और सिन्धु में मिली दो नदियां हैं—१ उमग जला और दूसरी निमग जला।

पृथ्वी से १० योजन ऊपर बेताड्य पर्वत पर १० योजन चौडी और बेताड्य पर्वत जितनी लम्बी दो विद्याधर श्रेणी * हैं. दक्षिण की श्रेणी में गगन वल्लभ प्रमुख ५० नगर हैं और उत्तर की श्रेणी में रथपुर, चक्रवाल प्रमुख ६० नगर हैं. जिनमें रोहिणी, प्रज्ञाप्ति, गगन गामिनी. प्रमुख हजारों विद्यायों को सिद्ध करने वाले विद्याधर (मनुष्य) रहते हैं. वहां से १० योजन ऊपर उक्त प्रकार की और भी दो अभीयोगी श्रेणी हैं. वहां प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्र जी के द्वारपाल पूर्व दिशा के मालक 'सोम महाराज' और २ दक्षिण के मालिक 'यम महाराज' ३ पश्चिम के मालिक 'वरुण महाराज' उत्तर के मालक 'वैश्रम महाराज' के आज्ञा धारक—१ अन्न के रक्षक 'आण झमक' २ पानी के रक्षक 'पान झमक' ३ सुवर्णादि धातु के रक्षक 'लेन झमक' ४ मकान के रक्षक 'सेन झमक' ५ वस्त्र के रक्षक 'वत्थ झमक' ६ फल के रखवाले 'फल झमक' ७ फूल के रखवाले 'फूल झमक' ८ फल फूल साथ रहें जिनके रखवाले 'फल फूल झमक' ९ पान भाजी के रखवाले 'अविपत झमक' और १० बीज धान्य के रखवाले 'बीज झमक' इन १० जाति के देवतायों के भवन हैं. यह देवों अपने २ नाम प्रमाने वस्तु की बाणव्यन्तर देवों से रक्षा करने के लिये त्रिकाल (प्रातः, मध्यान्ह, सन्ध्या) में फेरी देने निकलते हैं इन तीनों काल में तो सुखेच्छुयों को अवश्य ही धर्माराधन करना चाहिये। उक्त अभियोगी श्रेणी से ५ योजन ऊपर १० योजन चौडा पर्वत जितना लम्बा वैताड्य पर्वत का शिखर है. यहा ९ योजन के ऊंचे अलग २ नव कूट (डूगरी) है. यहां महा ऋद्धि का धारक वैताढ्य पर्वत का मालिक 'वैताड्य गीरी कुमार' देवता का भुवन है.

---

* पर्वत पर खुल्ली फिरने योग्य जगह को श्रेणी कहते हैं.

भर्त क्षेत्र के मध्य में वैताढय गिरी के आजाने से १—दक्षिणार्ध भर्त और २ उत्तरार्ध भर्त ऐसे दो विभाग होगये हैं और भर्त के उत्तर की हद का कर्ता चूल्ल हेमवन्त पर्वत के मध्य की पद्मद्रह के पूर्व और पश्चिम के द्वार से निकली हुई गंगा और सिन्धु नदी वैताडय पर्वत के नीचे से निकल लवण समुद्र में मिलने से भर्त क्षेत्र के छः विभाग होगये हैं जिससे 'षट खण्ड' कहते हैं।

जम्बूद्वीप के पूर्व के विजयद्वार के नीचे के नाले से लवण समुद्र का पानी भरत क्षेत्र में आने से नव योजन विस्तार वाली खाडी के किनारे पर तीन देव स्थान हैं यथा:—१ पूर्व में मागध, मध्य में वरदाम और पश्चिम में प्रभास यह तीर (किनारे) पर होने से तीर्थ कहे गये हैं.

पश्चिम में खाडी, पूर्व में वैताडय, दक्षिण में गंगा नदी और उत्तर में सिन्धु नदी इन चारों के बीच में ११४ $\frac{११}{१६}$ योजन के अन्तर से १२ योजन लम्बा और ९ योजन चौडा अयुध्या नगर है *।

'काल चक्र का वर्णन'

भरत क्षेत्र में २० क्रोडा क्रोड सागरोपम का काल चक्र १२ आरे वाला सदैव फिरता है इसके सुख वृद्धी रूप छः आरों को उत्सर्पिणी काल कहते हैं यहां प्रथम अवसर्पिणी काल का वर्णन करते हैं।

१ चार क्रोडा क्रोड सागरोपम के पहिले 'सुखमा सुखमी' (एकान्त सुख वाले) आरे में मनुष्य का देहमान तीन कोस का आयुष्य तीन पल्योपम का होता है, जिनके शरीर में २५६ पृष्ट करंड (पासुली, हड्डीयां) 'वज्र ऋषभ नाराच' संघयन 'समचतुरस्र' संस्थान होता है। महास्वरूपवान शरल स्वभावी स्त्री पुरुष का जोडा होता है. इनकी इच्छा दश प्रकार के

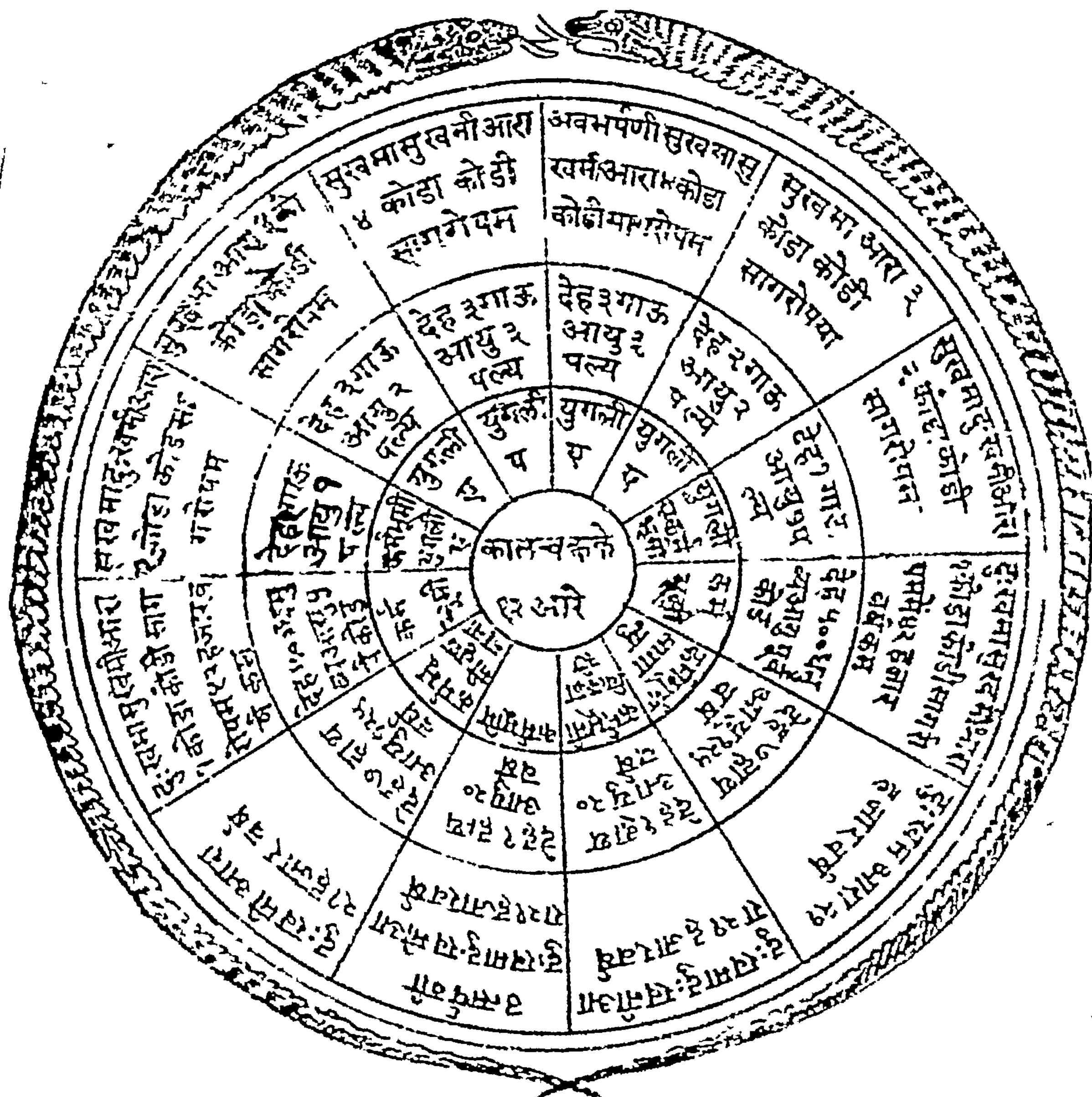
* अयोध्या नगरी के स्थान जमीन में शाश्वता पद्मपद स्वस्तिक का चिन्ह अंकित है. कर्म भूमीयों की उत्पत्ती की वक्त इन्द्र महाराज इसी स्थानपर नगर बसाते हैं. ऐसा वृद्ध पुरुषों का कथन है.

कल्पवृक्षों से पूर्ण होती है यथा—१ 'मतंङ्ग वृक्ष' जिससे मधुर फल प्राप्त होते हैं. २ 'भिङ्गा' बृक्ष से सुवर्ण रत्न के बर्तन मिलते हैं. ३ 'तुटियङ्गा' बृक्ष ४९ जाति के वादिंत्र के मनोहर नाद सुनाते हैं. ४ 'जोति' बृक्ष रात्री में सूर्य समान प्रकाश करते हैं. ५ 'दीव' बृक्ष दीपक समान प्रकाश करते हैं. ६ 'चितङ्गा बृक्ष' से सुगंधी फूलों के भूषण प्राप्त होते हैं. ७ चित्तरसा वृक्ष से १८ प्रकार के मनोज्ञ भोजन मिलते हैं. ८ 'मनोवेगा' बृक्ष से सुवर्ण रत्न के भूषन मिलते हैं. गिहंगारा' बृक्ष से ४२ मंजल के महल जैसे हो जाते हैं. और १० अनियणा बृक्ष से उत्तम २ वस्त्र प्राप्त होते हैं. प्रथम आरे के मनुष्यों को आहार की इच्छा तीन दिन के अन्तर से होती है तब शरीर प्रमाने * आहार करते हैं. उस वक्त मट्टी का स्वाद भी मिश्री जैसा मिष्ठ होता है. प्रथम आरे के स्त्री पुरुष का आयुष्य ६ महीने बाकी रहते हैं तब युगलनी एक पुत्र पुत्री के जोडे को प्रसूतती है. उन बच्चे बच्चों का ४९ दिन पालन किये बाद वे होशियार हो दम्पती बन सुखोपभोगानुभव करते विचरते हैं और उनके माता पिता एक को छींक और दूसरे के उबासी आते ही मृत्यु पाकर देवगती × में जाते हैं, क्षेत्राधिष्टित देव उन युगल के मृत्यक शरीर को क्षीर समुद्र में प्रक्षेप कर देते हैं।

२ उक्त प्रकार प्रथम आरे की समाप्ति होते ही तीन कोडा कोडी सागरोपम का 'सुखमा' (केवल सुखही) नामक दूसरा आरा प्रारम्भ होता है. उस वक्त पहिले से वर्ण गन्ध रस स्पर्श की उत्तमता से अनन्त गुणी हीनता प्राप्त हो जाती है. क्रम से घटते २ कोस का देहमान. दो पल्योपम का आयुष्य और १२८ पृष्ठ करंड रह जाती हैं. दो दिनान्त्र आहार की इच्छा होती है और पृथ्वी का स्वाद शक्कर जैसा रह जाता है. मृत्यु के

* पहिले आरे में तूर जितना, दूसरे आरे में बोर जितना, और तीसरे आरे में आमले जितना आहार युगल मनुष्य करते हैं। ऐसा ग्रन्थकार कहते हैं × युगल का जितना आयुष्य मनुष्य गति में होता है उससे कुछ कम आयुष्य देव गति में पाते हैं।

काल चक्र



जैसे गाडीका चक्र (पइडा) बारे आरे करके फिरता है. तैसे ही पंच भरत और पंच एरवत क्षेत्रमे कालचक्र छे अवसर्पणीके और छे उत्सर्पणीके यों १२ आरे करके २० कोडाकोडी सागर का एक चक्र (आंटा) खाता है ऐसे अनंत कालचक्र व्यतीत होगये और अनंतही होजायंगे [यह पृष्ट ६७ के १४ मी ओलीकी टीप है.]

कल्पवृक्षों से पूर्ण होती है यथा—१ 'मतंङ्ग वृक्ष' जिससे मधुर फल प्राप्त होते हैं. २ 'भिङ्गा' वृक्ष से सुवर्ण रत्न के वर्तन मिलते हैं. ३ 'तुटियङ्गा' वृक्ष ४९ जाति के वादिंत्र के मनोहर नाद सुनाते हैं. ४ 'जोति' वृक्ष रात्री में सूर्य समान प्रकाश करते हैं. ५ 'दीव' वृक्ष दीपक समान प्रकाश करते हैं. ६ 'चितङ्गा वृक्ष' से सुगंधी फूलों के भूषण प्राप्त होते हैं. ७ चित्तरसा वृक्ष से १८ प्रकार के मनोज्ञ भोजन मिलते हैं. ८ 'मनोवेगा' वृक्ष से सुवर्ण रत्न के भूषन मिलते हैं. गिहंगारा' बृक्ष से ४२ मंजल के महल जैसे हो जाते हैं. और १० अनियणा बृक्ष से उत्तम २ वस्त्र प्राप्त होते हैं. प्रथम आरे के मनुष्यों को आहार की इच्छा तीन दिन के अन्तर से होती है तब शरीर प्रमाने * आहार करते हैं. उस वक्त मट्टी का स्वाद भी मिश्री जैसा मिष्ठ होता है. प्रथम आरे के स्त्री पुरुष का आयुष्य ६ महीने बाकी रहते हैं तब युगलनी एक पुत्र पुत्री के जोडे को प्रसूतती है. उन बच्चे बच्ची का ४९ दिन पालन किये बाद वे होशियार हो दम्पती बन सुखोपभोगानुभवे करते विचरते हैं और उनके माता पिता एक को छींक और दूसरे के उबासी आते ही मृत्यु पाकर देवगती × में जाते हैं, क्षेत्राधिष्टित देव उन युगल के मृतक शरीर को क्षीर समुद्र में प्रक्षेप कर देते हैं।

२ उक्त प्रकार प्रथम आरे की समाप्ति होते ही तीन कोडा कोडी सागरोपम का 'सुखमा' (केवल सुखही) नामक दूसरा आरा प्रारम्भ होता है. उस वक्त पहिले से वर्ण गन्ध रस स्पर्श की उत्तमता से अनन्त गुणी हीनता प्राप्त हो जाती है. क्रम से घटते २ कोस का देहमान. दो पल्योपम का आयुष्य और १२८ पृष्ठ करंड रह जाती हैं. दो दिनान्तर आहार की इच्छा होती है और पृथ्वी का स्वाद शक्कर जैसा रह जाता है. मृत्यु के

* पहिले आरे में तूर जितना, दूसरे आरे में बोर जितना, और तीसरे आरे में आमले जितना आहार युगल मनुष्य करते हैं। ऐसा ग्रन्थकार कहते हैं × युगल का जितना आयुष्य मनुष्य गति में होता है उससे कुछ कम आयुष्य देव गति में पाते हैं।

छै महीने बाकी रहते हैं तब युगलनी एक पुत्र पुत्री को प्रसवती है. बच्चे बच्ची को ६४ दिन पालन किये बाद वे परस्पर दम्पती (स्त्री, भरतार) बन सुखोपभोग करते विचरते हैं. और इसका कथन पहिले जैसा जानना।

३ यों दूसरा आरा समाप्त होते ही क्रोडा क्रोड सागरोपम का तीसरा 'सुखमा दुखम' (सुख बहुत दुःख थोडा) नामक आरा शुरू होता है. तब पहिले से अधिक वर्ण गन्ध रस स्पर्श्य की उत्तमता में हानि हो जाती है. क्रमसा घटते २ एक कोस का देहमान एक पल्योपम का आयुष्य, ६४ पृष्ठ करंड, एक दिनान्त्र आहार की इच्छा. पृथ्वी का स्वाद गुड जैसा रह जाता है. मरने के ६ महीने पाहिले युगलनी पुत्र पुत्री का जोडा जन्मती है. जिनका ७९ दिन प्रति पालना किये बाद वे स्त्री भरतार बन सुख से विचरने लगते हैं. और सब कथन पहिले आरे जैसा जानना * ।

तीसरे आरे के तीन विभाग में से प्रथम के दो विभाग तक उक्त रचना रहती है. जब ६६,६६,६६,६६,६६,६६,६६,६६,६६,६६,६६ (छांसठ लक्ष क्रोड छांसठ हजार क्रोड, छांसठ सो क्रोड, छांसठ क्रोड, छांसठ हजार, छांसठ सो छांसठ) सागरोपम तीसरे आरे के बाकी रहे तब काल स्वभाव के प्रभाव से कल्प वृक्षों से अपूर्ण वस्तु की प्राप्ति होने से उन युगल मनुष्यों में परस्पर विवाद झगडा होने लगता है. उसे मिटा शान्त करने के लिये ही क्रमसे मानों १५ कुल करों (विद्वत्र-प्रतापी) मनुष्यों की उत्पत्ती होती है.× प्रथम के पांच कुलकरों तक 'हकार दंड' फिर पांच तक 'मकार' दंड

* उक्त तीनों आरों के तिर्यंच भी युगलिये होते हैं।

× पहिले कुल करका एक पल्योपम के दशवें भाग का, दूसरे का एक पल्योपम के सौ वें भाग का, तीसरे का एक पल्योपम के हजार में भाग का, चौथे का दश हजार में भाग का, पांचवें का एक पल्य के लक्ष में भाग का. छट्टे का एक पल्य के दश लक्षमें भाग का सातमें का एक पल्योपम के क्रोड़ में भाग का, आठमें का एक पल्योपम के दश क्रोड़ में भाग का, नव में का एक पल्य के सो क्रोड़ में भाग का, दशवें का एक पल्य के हजार क्रोड़ में भाग का, इग्यारवें का एक पल्य के दश हजार क्रोड़ में भाग का, बारमें का एक पल्यके एक लक्ष क्रोड़ में भाग का, तेरवें का एक पल्यके दश लक्ष क्रोड़में भागका चौदवें का एक पल्य के क्रोड़ाक्रोड़ भाग का और पंदरवें का ८४ लक्ष पूर्व का आयुष्य होना है ऐसा पद्म पुरान में लिखा है।

और फिर पांच कुलकरों तक 'धिक्कार' दंड की नीति चलती है, अर्थात् उन झगडते युगलों के 'है' ! 'मत' ! 'धिक' कहने से वे शरमिन्दा हो शान्त बन जाते हैं. यहां तक तो 'अस्सी' नोकरी कर, 'मस्सी' व्योपार कर और 'कस्सी' खेती कर आजीविका करने की जरूरत नहीं होने से यह 'अकर्म भूमी' और जोडसे उत्पन्न हो जोडे से रहने से यह 'जुगल' मनुष्य कहलाते हैं. फिर तीसरे आरे के जब ८४ लक्ष पूर्व ३ वर्ष ८॥ महीने बाकी रहते हैं. तब पूर्वोक्त अयोध्या नगर के स्थान पन्द्रहवें कुलकर से प्रथम तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं. काल के प्रभाव से कल्प बृक्षों से जब कुछ भी प्राप्ती नहीं होती है तब क्षुधा से पीडित मनुष्य व्याकुल बने देख उनकी करुणा लाकर वहां स्वभाव से उगा हुआ २४ प्रकार का धान्य मेवा वगैरा उन मनुष्यों को वे तीर्थंकर बतलाते हैं. कच्चा धान्य खाने से उनका पेट दुःखता जान अरणीकाष्ट से अग्नि उत्पन्न कर उसमें पकाने को कहते हैं. भोले मनुष्य अग्नि से धान्य जलता देख कहते हैं कि इसका ही उदर पूर्ण नहीं होता तो यह हमें क्या देगी ! तब तीर्थंकर प्रथम कुम्भकार की स्थापना कर उसे वर्तन बनाना बताते हैं. फिर ४ कुल* १८ श्रेणी‡ १८ प्रश्रेणी यों ३६ कुल स्थापते हैं पुरुष† की ७२ कला, स्त्री§ की ६४ कला, १८ लिपी,‖ १४

* चार कुल—कोतवालादि न्यायाधीश का 'उग्रकुल' २ गुरुस्थानी ऊंच पुरुषों का भोग कुल, ३ मंत्रियों का राजकुल और ४ प्रजा का क्षत्री कुल ॥ ‡ क्षत्रिय कुल की १८ श्रेणी १८ प्रश्रेणी ३६ कोम, यथा—१ कुम्भकार, २ माली, ३ कृषो, ४ वन कर, ५ चित्र कार, ६ चूडीगर, ७ दरजी, ८ कलाल, ९ तम्बोली, १० रंगरेज, ११ गोपाल, १२ वढ़ई, १३ तेली, १४ धोबी, १५ हलवाई, १६ नायिक, १७ कहार, १८ बन्धारे, १९ सीसगर, २० संगृही, २१ काछी, २२ कुंदीगर, २३ कागजी, २४ रेवारी, २५ ठंठेरी, २६ पटवे, २७ सिलावट, २८ भडभूंजा, २९ सोनार, ३० चमार, ३१ सुनार, ३२ धींवर, ३३ गिरा, ३४ सिकलीगर, ३५ कसारे, ३६ वणिक,

† पुरुष की ७२ कला—१ लेखन, २ गणित, ३ रूप प्रावृत, ४ नृत्य, ५ गीत, ६ ताल, ७ वादित्र, ८ वंशी, ९ नर लक्षन, १० नारी लक्षन, ११ गजलक्षन, १२ अश्वलक्षन, १३ दंडलक्षण, १४ रत्न परीक्षा, १५ धातुर्वाद, १६ मंत्र वाद, १७ कवीत बनाने की, १८ तर्क शास्त्र, १९ नीति शास्त्र, २० तत्त्व विचार (धर्म शास्त्र) २१ ज्योतिष शास्त्र, २२ वैद्यक शास्त्र, २३ षट् भाषा, २४ योगाभ्यास, २५ रसायन, २६ अंजन, २७ स्वप्न शास्त्र, २८ इन्द्रजाल, २९ कृषो कर्म, ३० वस्त्र विधी, ३१ जूवा, ३२ व्यापार, ३३ राज सेवा, ३४ शकुन विचार, ३५ वायुस्थंभन, ३६

विद्या ॐ वगैरा बताते हैं. फिर जितानुचारनुसर स्वर्ग से इन्द्र आकर बडे

अग्नि स्थंभन, ३७ मेघ वृष्टी, ३८ विलेपन, ३९ मर्दन, ४० उर्ध गमन, ४१ सुवर्ण सिद्धी, ४२ रूपसिद्धी, ४३ घट वन्धन, ४४ पत्र छेदन, ४५ मर्म भेदन, ४६ लोका चार, ४७ लोकारंजन, ४८ फलाकर्षन, ४९ अफलापन, ५० धार वन्धन, ५१ चित्रकला, ५२ ग्राम वसना, ५३ कटक उतारना, ५४ शकट युद्ध, ५५ गरुड युद्ध, ५६ दृष्टीयुद्ध, ५७ वाग युद्ध, ५८ मुष्टि युद्ध, ५९ बाहु युद्ध, ६० दण्ड युद्ध, ६१ शास्त्र युद्ध, ६२ सर्प मर्दन, ६३ व्यन्तर मर्दन, ६४ मंत्र विधी, ६५ तन्त्र विधी, ६६ यन्त्र विधी, ६७ रूप पाक विधी, ६८ सुवर्ण पाक विधी, ६९ वन्धन, ७० मारन, ७१ स्थम्भन, ७२ संजीवन ।

ॐ स्त्री की ६४ कला–१ नृत्य, २ चित्र, ३ औचिन्त्य, ४ वादित्र, ५ मन्त्र, ६ जन्त्र, ७ ज्ञान, ८ विज्ञान, ९ दम्भ, १० जलस्थम्भन, ११ गीतगान, १२ तालतान, १३ मेघ वृष्टी, १४ आराम रोपन, १५ आकार गोपन, १६ धम विचार १७ धर्मनीति, १८ शकुन विचार, १९ क्रिया कल्प, २० प्रशाद नीति २१ सस्कृत, २२ वर्णिका वृद्धी, २३ सुवर्ण वृद्धी, २४ सुगन्ध करण, २५ लीला संचरण, २६ गज तुरंग परीक्षा, २७ स्त्री पुरुष लक्षन, २८, काम क्रिया, २९ लिपी छेदन, ३० तत्काल बुद्धी, ३१ वस्तु शुद्धी, ३२ वैधक क्रिया, ३३ सुवर्ण रत्न शुद्धी, ३४ घट कामण, ३५ सार परिश्रम, ३६ अंजन योग, ३७ चूर्ण योग, ३८ हस्त लाघव, ३९ वचन पटुत्व, ४० भोज्य विधी, ४१ वाणिज्य विधी, ४२ काव्यशक्ति, ४३ व्याकरण, ४४ शालीखण्डन, ४५ मुख मण्डन, ४६ कथा कथन, ४७ कुसुम गुंथन, ४८ शृंगार सजन, ४९ सर्व भाषा ज्ञान, ५० अभिमान, ५१ आभरण विधी, ५२ भृत्योपचार, ५३ गृहाचार, ५४ सञ्चय करण, ५५ निराकरण, ५६ धान्य रंधन, ५७ केश बन्धन, ५८ वीणानाद, ५९ वितंडवाद, ६० अंक विचार, ६१ सत्य साधन, ६२ लोक व्यवहार, ६३ अत्याक्षरी, ६४ प्रश्न प्रहेली ।

ॐ लिपी १८ प्रकार की–१ हंसलिपी, २ भूत लिपी, ३ यक्ष लिपी, ४ राक्षस लिपी, ५ यवलिपी, ६ तुरकी लिपी, ७ किरली लिपी, ८ द्राविडीलिपी, ९ सैंधवी लिपी, १० मालवी लिपी, ११ कनडी लिपी, १२ नागरी लिपी, १३ लाटी लिपी, १४ फारस लिपी, १५ अनिमत लिपी, १६ चाणक्की लिपी, १७ मूलदेव लिपी, और १८ उड्डी लिपी, इन १८ लिपी की देश विशेष अनेक तरहकी वनी है जैसे माधवी, लटी, चौड़ी, डाहली, तेलंगी, गुजराती, सोरठी, मराठी, कोकणी, खुरसाणी, सिंहली, हारी, कीरी, हम्मीरी, परतीरी, मस्सी, मालवी, महायोधी, इत्यादि ।

ॐ लोकोत्तर १४ विद्या १ गणितानुयोग, २ करणानुयोग, ३ चरणानुयोग ४ द्रव्यानुयोग ५ शिक्षा कल्प, ६ व्याकरण, ७ छन्द विद्या, ८ अलंकार, ९ ज्योतिष १० निर्युक्ति, ११ इतिहास, १२ शास्त्र, १३ मीमांसा और १४ न्याय.

लोकोत्तर १४ विद्या–१ ब्रह्म, २ चातुरी, ३ बल, ४ वाहन, ५ देशना, ६ बाहु ७ जल तरन, ८ रसायन, ९ गायन, १० वाद्य, ११ व्याकरण, १२ वेद, १३ ज्योतिष और १४ वैदिक.

उक्त ४ कुल, ३६ कौम, ७२ तथा ६४ कला, १८ लिपी, १४ विद्या अनादि से चली आती हैं और अनन्त काल तक ऐसी ही रहेंगी. किन्तु काल प्रभाव से भरत क्षेत्र में लुप्तालुप्त होती रहती हैं, महा विदेह क्षेत्र में सदैव बनी रहती हैं.

आडम्बर से उन तीर्थंकर का राज्याभिषेक कर राजा बनाते हैं. लग्नोत्सव कर पानी ग्रहन कराते हैं. ज्यों २ कुटुम्ब बृद्धी होती है त्यों २ ग्राम नगरादि की बृद्धी होती जाती है. यों भर्त क्षेत्र की आबादी होजाती है. फिर तीर्थंकर राज ऋद्धी को त्याग कर संयम ले तपश्चर्या कर घनघातिक कर्म का क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थ की स्थापना करते हैं, धर्म की बृद्धी कर आयु का अन्त कर में मोक्ष जाते हैं।

तीसेर आरे में उसी वक्त उत्तम राज कुल में तीर्थंकर समान किन्तु कुछ मंदसे १४ स्वप्न मातेश्वरी को दे चक्रवर्ती महाराज का भी जन्म होता है. इनका भी ५०० धनुष्य का देहमान ८४ लक्ष पूर्व का आयुष्य ४० लक्ष अष्टापद के बल के धारक, युवास्था प्राप्त हुऐ प्रथम मांडलिक राज्य हो फिर १३ तेले कर भर्त क्षेत्र के ६ ही खंड में एक छत्र राजके कर्ता होते हैं।

चक्रवर्ती महाराज की ऋद्धि।

सात एकेन्द्रिय (पृथ्वी काय मय) रत्न—१ 'चक्ररत्न' सेना के आगे आकाश में गरणाट शब्द करता चलता है छः खंड साधने का रास्ता बताता है. २ 'छत्ररत्न' सेना के ऊपर १२ योजन लम्बा ९ योजन चौडा छत्र रूप बनजाता शीत ताप वायु से रक्षण करता है. ३ 'दंडरत्न' विसम स्थान को समकर रास्ता सडक जैसा बनाता है और वैताडय पर्वत के दोनों गुफा के द्वार खुले करता है. (यह तीनों रत्न चार २ हाथ के लम्बे होते हैं) ४ खड्गरत्न ५० अंगुल लम्बा १६ अंगुल चौडा, आध अंगुल जाडा अति तीक्षण हजारों कोस रहे शत्रु का सिर छेद कर डालता है. (यह चारों रत्न आयुध शाला में उत्पन्न होते हैं) ५ 'मणिरत्न' चार अंगुल लम्बा दो अंगुल चौडा होता है. इसे ऊंचे स्थान पर रखने से चन्द्रमा के जैसा १२ योजन में प्रकाश करता है. और हस्ति के कान के बान्धने से सवार को किसी भी प्रकार का भय नहीं होता है. ६ 'कांगनीरत्न' छहो तरफ से चार २ अंगुल

सुनार के ऐरन के समान ६ तले ८ कौने १२ हांसे वाला, ८ सौनैये जितना वजन में होता है. इससे बैताडय पर्वत की दोनों गुफायों में एक २ योजन के अन्तर एक धनुष्य के गोलाकार ४९ मंडल करते हैं जिनका चंद्रमा के समान प्रकाश चक्रावर्ती जिन्दे रहते हैं तहां तक बना रहता है. ७ 'चर्म रत्न' दो हाथ का लम्बा होता है. यह १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौडी नाव रूप हो जाता है। इसमें चक्रवर्ती की सेना सवार हो गंगा सिन्धु जैसी महा नदीयों से पार होजाती हैं. (पीछे के तीनों रत्न लक्ष्मी भण्डार में उत्पन्न होते हैं) सात पंचेन्द्रिय रत्न—१ सेनापति रत्न, बीच के दोनों खण्ड तो चक्रवर्ती साधते हैं और चारों कौन के चारों खण्ड सेनापति साधते तथा वैताढ्य की गुफा के द्वार दंड प्रहार से खोल कर, म्लेच्छों का पराजय करता है, २ 'गाथापति' चर्म रत्न को पृथ्वी के आकार बना उस पर २४ प्रकार का धान्य और सब प्रकार के मेवे मसाले शाक भाजी दिन के प्रथम प्रहर में लगाता है वे दूसरे पहर में सब पक्क जाते हैं उन्हे तीसरे पहर में तैयार कर चक्रवर्ती आदि को खिला देता है. ३ 'बढाई' रत्न मुहूर्तमात्र में १२ योजन लम्बा ९ योजन चौड़ा ४२ भूमिये (खंड) महल, पौषधशाला, हटशाला, घुड़शाला, बाजार आदि सब सामिग्री युक्त नगर बना देता है उस में रास्ते चलते चक्रवर्ती सपरिवार निवास करते हैं. ४—पुरोहित रत्न शुभ मुहूर्त बतावे, लक्षण (सामुद्रिक) व्यंजन स्वप्न अंग स्फुरण वगैर के फल कहे. शान्ति पाठ पढे, जप करे (यह चारों रत्न चक्रवर्ती के नगर में ही होते हैं) ५—स्त्री रत्न (श्री देवी) वैताढ्य पर्वत के उत्तर श्रेणी के मालिक विद्याधर की पुत्री महा स्वरूपवती सदा कुमारिका समान युवती रहती है इस का देहमान चक्रवर्ती से चार अंगुल कम होता है यह पुत्र प्रसव नहीं करती किन्तु किसी वक्त मुक्ताफल प्रसवती है. ६—अश्व रत्न (कमलापत घोडा) पूंछ से मुख तक १०८ अंगुल लम्बा खुर से कान तक ८० अंगुल ऊंचा, क्षण में इच्छित स्थान पहुंचाने

४ इस प्रकार तीसरा आरा समाप्त होते ही एक कोडा कोड सागरोपम में ४२००० हजार वर्ष कम का 'दुःखमा सुखम' (दुःख बहुत सुख थोडा) नामका चौथा आरा लगता है. तब पूर्व पेक्षा वर्णादि के शुभ पुद्गलों की अनन्त गुण हानि होती है. क्रमसः घटते २ देहमान ५०० धनुष्य का और आयुष्य एक क्रोड पूर्व का, ३२ पृष्ट करंड दिन में एक वक्त भोजन की इच्छा रह जाती है. और ६ संघयन* ६ संस्थान× वाले तथा ५ गतियों में जाने वाले मनुष्य होते हैं, २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती ९ बलदेव ९ वासुदेव ९ प्रति वासुदेव भी इस ही आरे में होते हैं।

* जिस के हड्डियां हड्डी की सन्धियां, ऊपर वेष्टन वज्र का हो वह वज्र ऋषभ नारच संघयन, २ जिस के हाड किल्ली तो वज्र की हो किन्तु ऊपर वेष्टन सामान्य हो सो ऋषभ नारच संघयन, ३ जिस के किल्ली वज्र की हो हाड और वेष्टन सामान्य हो सो नारच संघयन, ४ जिस के हड्डी में किल्ली पार नहीं गई हो आधी पेठी हो सो अर्धनारच संघयन, ५ जिस के हाड सन्धि में किल्ली न हो फक्त ऊपर वेष्टन मजबूत हो केले की तरह सो कीलिका संघयन और ६ जिस के हाड अलग २ हों चमडे से बन्धे हो सो स्फाटिक (छेवटा) संघेन। संघयन हाड का नाम है रिषभ बन्धन का नाम है और नारच सन्धि का नाम है.

× १ सब शरीर सुन्दराकार हो सो सम चतुरस्र संस्थान. २ वट वृक्ष जैसा ऊपर से अच्छा नीचे से खराब शरीर हो सो निग्रोध परिमंडल संस्थान, ३ खुरशानी इमली जैसा ऊपर से अच्छा नीचे से खराब हो सो सादिक संस्थान. ४ ठेंगना ५२ अंगुल का शरीर हो सो बावना संस्थान ५ कुबड निकला हो सो कुबडा संस्थान और ६ सब शरीर खराब बेडौल होवे सो हुंडक संस्थान, यह ६ संस्थान होते हैं।

इस सर्पनी काल के १२ चक्रवर्ती.

नामचक्रवर्तीका	नाम नगर	पिताकानाम	माताकानाम	स्त्रीका नाम	आयु प्रमान	देहमान	गति	किस तीर्थंकर के वक्त
१ भरत	अयुध्या	ऋषभदेव	सुमंगला	सुभद्रा	८४ लक्ष पूर्व	५०० धनुष्य	मोक्ष	ऋषभदेव जी के
२ सागर	"	सुमति	जयवती	भद्रा	७२ लक्ष पूर्व	४५० धनुष्य	"	अजितनाथ जी के
३ माघव	श्रावस्ति	विजय	भद्रा	सुनन्दा	५ लक्ष वर्ष	४२ धनुष्य	"	धर्मनाथजी के बाद
४ सनंत कुमार	हस्तनापुर	समुद्र	शिव	रत्ना	३ लक्ष वर्ष	४१ धनुष्य	"	धर्मनाथ जी के बाद
५ शान्तिनाथ	"	विश्वसेन	अचिरा	विजिया	१ लक्ष वर्ष	४० धनुष्य	"	शांतीनाथ जी खुद
६ कुंथुनाथ	"	सुरराय	श्री देवी	कन्ह श्री	९५००० वर्ष	३५ धनुष्य	"	कुंथुनाथ जी खुद
७ अरहनाथ	"	सुदंशण	देवी	सूर श्री	८४००० वर्ष	३० धनुष्य	"	अरहनाथ जी खुद
८ संभूम	"	परमिन्त	जाली	पद्म श्री	६०००० वर्ष	२८ धनुष्य	नर्क	अरहनाथजी के बाद
९ महा पद्म	बानारसी	कीर्तीवर्म	तारा	सुन्दरी	३०००० वर्ष	२० धनुष्य	मोक्ष	मुनि सुव्रतजी के वक्त
१० हरिषेण	कम्पिलपुर	महाहरी	मेरा	देवी	१०००० वर्ष	१५ धनुष्य	"	नेमीनाथ जी के वक्त
११ जयसेण	राजग्रही	पद्म	वपरा	लक्ष्मी	३००० वर्ष	१२ धनुष्य	"	नेमीनाथजी के बाद
१२ ब्रह्मदत्त	कम्पिलपुर	ब्रह्म	चूलणी	कुरुमती	७०० वर्ष	७ धनुष्य	नर्क	अरिष्टनेमाजीके बाद

वासुदेव पूर्व भव में निर्मल तप संयम का पालन कर नियाना करते हैं और वहां से आयुष्य पूर्ण कर बीच में एक भव स्वर्ग या नर्क का करके उत्तम कुल में ७ उत्तम स्वप्न माता को आने के साथ २ अवतरते हैं. शुभ वक्त में जन्म धारन कर युवावस्था को प्राप्त हो राजपद पर उपस्थित होते हैं. वासुदेव पद की प्राप्ति के वक्त ७ रत्न उत्पन्न होते हैं. यथा—१ सुदर्शन चक्र, २ अमोघ खड्ग, ३ कौमुदी गदा, ४ पुष्पमाला, ५ धनुष्य अमोघवान (शक्ति) ६ कोस्थल मणी और ७ महारथ। २००००००० अष्टापद का बल इनके शरीर में होता है पहिले 'प्रति वासुदेव' उत्पन्न होता है वह दक्षिणार्थ भर्त के तीनों खण्ड

का राज करता है. यह उसे मार कर उसके राज के अधिकारी बनतेहैं. अर्थात् तीन खंड में एक छत्र राज करतेहैं.

बलदेव (राम) वासुदेव के पहिले और वासुदेव के जैसे ही अपनी माता को ४ उत्तम स्वप्न दे अवतरते हैं. दोनों के पिता एक होते हैं माता अलग २ होती हैं. फिर दोनों भाइयों के परस्पर अत्यन्त प्रेम होने से दोनों ही मिलके तीन खंड में राज करते हैं. १०००००० अष्टापद का इनके शरीर में पराक्रम होता है. वासुदेव की आयु पूर्ण हुये बाद यह संयम धारन कर आयु का अन्त कर स्वर्ग तथा मोक्ष जाते हैं.

इस सर्पनी काल के बलदेव, वासुदेव, प्राति वासुदेवों का यंत्र.

बलदेव के नाम	अचल	विजय	भद्र	सुप्रभ	सुदर्शन	अनन्द	नन्दन	पद्म रथ	बलभद्र
वासुदेव के नाम	त्रिपष्ट	द्विपष्ट	सयंभू	पुरुषोत्तम	पुरुष सिंह	पुरुष पोंडरि	दत्त	लक्ष्मन	कृष्ण
दोनों के नगर	पोतानपुर	द्वारावती	द्वारावती	द्वारावती	अश्वपुर	चक्रपुर	बनारसी	राजगृही	मथुरा
दोनों के पिता	प्रजापति	ब्रह्म	रुद्र	सोम	शिव	सहश्र	अग्नेष	दशरथ	वसुदेव
बलदेवकी माता.	भद्रा	सुभद्रा	सुप्रभा	सुदर्शना	विजया	विजयंति	जयंति	अप्राजिता	रोहिणी
वासुदेव की माता	मृगावती	पद्मावती	पृथ्वी	सीता	अम्मा	लक्ष्मा	सुखवती	सुमित्रा	देवकी
दोनोंका देहमान	८० धनुष्य	७० धनुष्य	६० धनुष्य	५० धनुष्य	४५ धनुष्य	२६ धनु०	२६ धनु०	१६ धनु०	१० धनुष्य
बलदेवका आयु	८५ लक्ष वर्ष	७५ लक्ष वर्ष	६५ लक्ष वर्ष	५५ लक्ष वर्ष	१७ लक्ष वर्ष	८५हजारवर्ष	६५ हजार	१५ हजार	१२हजारवर्ष
वासुदेव का आयु	८४ लक्ष वर्ष	७२ लक्ष वर्ष	६० लक्ष वर्ष	३० लक्ष वर्ष	१० लक्ष वर्ष	६५हजारवर्ष	५६ हजार	१२ हजार	१ हजार वर्ष
बलदेव की गति	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	ब्रह्मदेवलोक
वासुदेव की गति	७ वीं नर्क	६ नर्क	६ नर्क	६ नर्क	६ नर्क	६ नर्क	५ नर्क	४ नर्क	३ नर्क
प्रतिवासुदेवकेनाम	सुग्रीव	तारक	नेरक	मधु कोट	नसुंभ	बल	प्रहलाद	रावन	जरासिन्ध
प्रति वासुदेवआयु	८५ लक्ष वर्ष	७५ लक्ष वर्ष	६५ लक्ष वर्ष	५५ लक्ष वर्ष	१७ लक्ष वर्ष	८५ हजार	६५ हजार	१५ हजार	१२ सो वर्ष
किस के समय में	श्रेयांसजी	वासपूज्यजी	विमलनाथ	अनन्तनाथ	धर्मनाथ जी	अरह०बाद	अरह०बाद	मुनि सुव्रत	रिष्ट नेमीजी

दिगम्बर सम्प्रदाय के "सुदृष्ट तरङ्गनी" नाम के ग्रन्थ में ११ रुद्र ९ नारद २४ कामदेव जो वर्तमान काल में हुये हैं उनके नाम इस प्रकार दिये हैं:—

११ रुद्र—१ भीम २ जयती सत्य ३ रुद्राय ४ विश्वानल ५ ५ सुप्रतिष्ट ६ अचल ७ पौंडरिक ८ अजितधर ९ अजितनाभी १० पीठा और ११ सत्य की।

९ नारद—भीम २ महाभीम ३ रुद्र ४ महारुद्र ५ काल ६ महा काल ७ चतुर्मुख ८ नर्क वदन और उर्द्ध मुख।

२४ कामदेव—बाहुबल, २ अमृत तेज ३ श्रीधर ४ दशानभद्र ५ प्रश्नचन्द्र ६ चन्द्र वर्ण ७ अग्नि युक्ति ८ सनत कुमार ९ श्रवच्छराज १० कन्कप्रभ ११ मेघ वर्ण १२ शान्तिनाथ १३ कुंथुनाथ १४ अर्हनाथ १५ विजयराज १६ श्रचन्द्र १७ नलराज १८ हनुमान १९ बलाराज २० वसुदेव २१ प्रद्युम्न २२ नागकुमार ३२ श्री कुमार और २४ जम्बू स्वामी।

चौथे आरे के ३ वर्ष ८॥ महीने बाकी रहे तब चौवीसवें तीर्थंकर मोक्ष पधारते हैं।

५ उक्त प्रकार चौथे आरे के पूर्ण होते ही २१००० वर्ष का 'दुखम' नाम का पांचवां आरा प्रविष्ट होता है. तब पूर्वापेक्ष वर्णादि की उत्तम पर्यायों में अनन्त गुण हीनता हो जाती है. और क्रम से घटते २ उत्कृष्टे १२५ वर्ष का आयु सात हाथ का देहमान तथा १६ पृष्ट करंड दिन में दो वक्त आहार की इच्छा रह जाती है।

पञ्चम आरे में १० बातों का अभाव हो जाता है, यथा—१ केवल-ज्ञान, २ मनःपर्यव ज्ञान, ३ परम अवधि ज्ञान, ४—५—६ परिहार वि-

नोट—१ चौथे आरे के जन्मे हुए को पंचम आरे में केवलज्ञान उत्पन्न होता है किन्तु पञ्चम आरे के जन्मे को नहीं होता है. २ सम्पूर्ण लोक और लोक जैसे असंख्यात खंड अलोक में हो तो देखने की जिस में शक्ति हो उसे परम अवधि कहते हैं. यह पञ्चम आरे में नहीं होता है किंचित् मात्र किसी को हो जाता है किन्तु बोल सका नहीं है।

शुद्ध—सूक्ष्म सम्परा—यथाख्यात यह ३ चारित्र, ७ पुलाकलब्धि, ८ आहारक -शरीर, ९ क्षायिक सम्यक्त्व और १० जिन कल्पी साधु। और इन ३० बोलों में फेर फार हो जाता है. यथा—१ शहर ग्राम जैसे होजाते, हैं। २ ग्राम स्मशान जैसे होंवे, सुकुलोत्पन्न दास दासी होंवे, ४ यम जैसे करूर दण्ड दाता राजा होंवे, कुलीन स्त्री दुराचारिणी होंवे ६ पिता की आज्ञा भंग करने वाला पुत्र होवे, ७ गुरू की निन्दा करने वाला शिष्य होंवे, कुशील (बुरे) मनुष्य सुखी होंवे, ९ सुशील (अच्छे) मनुष्य दुःखी होंवे, १० सर्प विच्छु दंश मत्कुणादि क्षुद्र जीवों की उत्पात्ति अधिक होवे, ११ दुष्काल बहुत पडे, १२ ब्राह्मण लोभी बनें १३ हिंसाधर्म प्रवर्तक वहुत होंवे, १४ एक मत के अनेक मतान्तर होंवे, १५ मिथ्यात्व की वृद्धी होवे, १६ देव दर्शन दुर्लभ होवें, १७ वैताढ्य गिरी के विद्या धरों की विद्या का प्रभाव मन्द होवे, १८ दुग्धादि सरस वस्तु की चिक्कनाई कमी होवे. १९ पशू अल्पायुषी होवे, २० पाखण्डियों की अधिक पूजा होवे. २१ साधुओं के चातुर्मास में रहने योग्य क्षेत्र थोडे होवें २२ साधु की १२ प्रतिमा श्रावक की ११ प्रतिमा के पालक नहीं रहे, २३ गुरू शिष्य को पढ़ावे नहीं, २४ शिष्य अविनीत (क्लेशी) होवें २५ अधर्मी कदाग्रही धूर्त दगावाज क्लेशी ऐसे दुष्ट मनुष्य ज्यादा होवें, २६ धर्मात्मा सुशील सरल स्वभाव वाले मनुष्य थोडे होंवे, २७ उत्सूत्र प्ररूपक लोगों को भ्रम में फँसाने वाले नाम मात्रके—धर्मीजन होवें. २८ आचार्य अलग २ सम्प्रदाय स्थाप कर आप स्थापी पर उत्थापक वनें, २९ म्लेच्छ राजा अधिक होंवे और ३० लोगों की धर्म प्रीती कम होती जावे। इस प्रकार होते २ पञ्चम आरे के अन्तिम दिन देवेन्द्र का आसन कम्पित (अङ्गस्फुरण) होता है तब इन्द्र आकाशवाणी करते हैं कि—भो लोगो! कल छट्ठा आरा लगेगा इस लिये सावधान हो धर्म कृत्य करना हो सो करलो. जो उत्तम जन होंगे वे ममत्व त्याग अनशन व्रत धारण कर समाधिस्थ वनेंगे. फिर सं-

वर्तक महा वायु चलती है जिससे बैताढ्य पर्वत, ऋषकूट, लवणोदधी की खाडी गङ्गा और सिन्धु नदी इन पांच के सिवा सब पर्वत, किल्ले, मैहल घर फूट टूट कर जमींदोज हो जायेंगे। प्रथम प्रहर में जैन धर्म दूसरे प्रहर में अन्य धर्म, तीसरे प्रहर में राजनीति और चौथे प्रहर में वादर अग्नि का विच्छेद हो जायगा.

६ उक्त प्रकार से पञ्चम आरे की पूर्णाहुति होते ही २१००० वर्ष के दुःखमा दुःखमी नामक छट्ठे आरे का आरंभ होगा. तब भर्तक्षेत्राधिष्ठित देव पञ्चम आरे के विनाश पाते हुए मनुष्यों में से बीज रूप कुछ मनुष्यों को उठा कर बैताढ्यगिरी के दक्षिण और उत्तर में जो गङ्गा और सिन्धु नदी है उनके आठों किनारों (टट) में से एक२ टट में नव २ विल हैं. यों सब ७२ विल हैं और एक एक बिल में तीन २ मंजिल हैं उन में उन मनुष्यों को रख देंगे। छट्ठे आरे में पूर्वापेक्षा वर्णादी पुद्गलों की पर्यायों की उत्तमता में अनन्त गुणा हानी हो जायगी क्रम से घटते २ आयुष्य २० वर्ष का, देहमान १ हाथ का ८ पृष्ट करंड रहजाते हैं और अप्रमान आहार की इच्छा अर्थात् कितना भी खावें तो भी तृप्त नहीं होते. उस वक्त रात्रि को शीत और दिन को ताप अति प्रवल होने से मनुष्य विल के वाहर नहीं निकल सकते हैं किन्तु सूर्योदय होते वक्त और सूर्य के अस्त होते वक्त एक मुहूर्त मात्र को वाहिर आते हैं उस समय गङ्गा और सिन्धु नदी का पानी सांप के समान वांका वहता है, वह गाडी के दोनों (चक्र) पइये के मध्य विभाग जितना चौडा और आधा चक्र डूबे जितना ऊंडा होजाता है, उस में कच्छ मच्छ वहुत होते हैं उन्हें वे मनुष्य पकड़ २ कर नदी की रेती में गाढ कर विल में भाग जाते हैं। वे मच्छ कच्छ शीत ताप के योग से पक जाते हैं. तब उन्हें दूसरी वक्त निकाल लेते हैं और उन पर सब मनुष्य टूट पड़ते हैं और लूट कर खा जाते हैं। मृतक मनुष्य की खोपरी में पानी ला कर पीते हैं. मच्छा-दिकों की हड्डियों को जानवर भक्षन करके रहते हैं. उस काल के मनुष्य

हीन, दीन, दुर्बल, दुर्गन्धि, रोगिष्ट, अपवित्र, नग्न, आचार विचार रहित, माता, भग्नि, पुत्री, आदि के साथ गमन करने वाले होते हैं. छै वर्ष की स्त्री पुत्र पुत्री प्रसवती हैं कुत्ती और सूवरी के समान महाक्लेशी वहुत परिवारी होते हैं. धर्म पुण्य रहित दुःख ही दुःख में आयु पूर्ण कर नर्क तिर्यच में चले जाते हैं.

यह दश क्रोड़ा क्रोड सागरोपम प्रमान अवसर्पिणी काल का वर्णन समाप्त हुआ ॥

उत्सर्पिणी काल का वर्णन।

१ अब उत्सर्पिणी काल का वर्णन करते हैं:—उत्सर्पिनी काल का पहिला 'दुःखमा दुःखमी' नामक आरा २१००० वर्ष का श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को लगता है उसका सब कथन अवसर्पिनी काल के छट्ठे आरे के जैसा ही जानना बिशेष में प्रति दिन क्रमसे आयु देहमानादि की वृद्धी होती जाती है।

२ फिर उत्सर्पिनी काल का दूसरा 'दुःखमा' नामक आरा २१००० वर्ष का श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को लगता है तब पांच प्रकार की वर्षाद सर्व भर्त क्षेत्र (जितने लम्बे चौडे) में वर्षती* हैं. यथा—१ गगन घटा से आच्छादित हो गर्जना और विद्युत के साथ सात अहोरात्री निरन्त्र 'पुष्कर' नामक वर्षाद वर्षता है. जिससे धरती की उष्णता दूर हो जाती है. २ फिर निरन्त्र सात अहो रात्रि पर्यन्त दुग्ध जैसा 'क्षीर' नामक मेघ वर्षता है जिससे सारी दुर्गन्ध दूर हो जाती है फिर सात दिन खुले‡ रह कर ३ घी जैसा 'घृत'

* पांच सप्ते वर्षाद के और दो सप्ते खुल्ले रहने के यों सात सप्तों के ७×७=४९ दिन श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से भाद्रव शुक्ल पंचमी तक होते हैं। व्यवहार में उस ही दिन संवत्सरारंभ होने से ४९–५० वें दिन 'संवतसरी' महापर्व किया जाता है, यह पर्व भी अनादि अनन्त है।

‡ बीच में दो सप्तों का खुल्ला काल बताया सो ग्रन्थ से जानना।

नामक मेघ सात दिन रात्री निरन्त्र वर्षता है. जिससे पृथ्वी में स्निग्धता (चिकनाई) आजाती है. ४ फिर सात दिन निरन्त्र अमृत समान 'अमृत' नामक मेघ के वर्षने से २४ प्रकार के धान्य वगैरा सब प्रकार की बनस्पति के अंकूर जमीन से प्रगट हो जाते हैं, फिर सात दिन खुले रह कर ५वां ईख के रस के समान 'रस' नामक मेघ* सात अहो रात्री निरन्त्र वर्षता हैं जिस से उस वनस्पति में मिष्ट, कटुक, तीखा, खट्टा, अम्बल रसकी उत्पत्ती होजाती है. उस वक्त वे विलवासी मनुष्य लीला लेहर देख आश्चर्य चकित बन बाहिर आते हैं, पल्लव के हलने से डरकर फिर बिलों में चले जाते हैं. अन्दर दुर्गन्ध से घबरा फिर बाहिर आते हैं यों निडर बन वृक्षों के पास आते हैं फलादि का आहार करते हैं. उन के स्वादिष्ट लगने से मांस आहार का परित्याग कर जाति प्रबन्ध बान्धते हैं कि "अब जो मांस आहार करे उसकी छाह में भी खडा नहीं रहना" यों जाति विभाग हो जाते हैं और सब रीति रिवाज पंचम आरे (आज कल) जैसा हो जाता है।

३ फिर 'दुखमासुखम' नामक तीसरा आरा ४२००० वर्ष कम एक क्रोडा क्रोड सागर का लगता है, उसकी सब रचना अवसर्पिनी काल के चौथे आरे जैसी जाननी. इसके ३ वर्ष ८॥ महीने गये बाद प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है. यों प्रथम प्रकरण में कहे हुये तीर्थंकर के अन्तर प्रमाने क्रमसे इस आरे में २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रति वासुदेव प्रमुख होते हैं.

४ फिर 'सुखम दुःखम' नामक चौथा आरा दो क्रोडा क्रोड सागरोपम का लगता है. इसके ८४ लक्ष पूर्व ३ वर्ष ८॥ महीने बाद चौबीसवें तीर्थ-कर मोक्ष चले जाते हैं. बारहवें चक्रवर्ती भी आयुष्य पूर्ण कर जाते हैं.

* दिगम्बर संप्रदाय के ग्रन्थों में सर्पनीकाल के पलटते समय सात २ दिन की वृष्टी के नाम इस प्रकार लिखे हैं:—

१ पवन २ शीत ३ क्षारजल ४ जहर ५ वज्राग्नि ६ बालुरज ७ धूम्र वृष्टी।

क्रोड पूर्व गये बाद कल्पवृक्ष की उत्पत्ती होने लगती है. उनसे मनुष्य और पशुयों की इच्छा पूर्ण होने लगती है तब सब काम धन्धा छोड देते हैं युगल उत्पन्न होने लगते हैं. बादर अग्नि और धर्म का विच्छेद होजाता है. यों तीसरे भाग में सब अकर्म भुमीक बन जाते हैं.

५ फिर 'सुखमा' नामक पांचवा आरा तीन क्रोडा क्रोड सागरोपम का प्रारम्भ हो जाता है. इसका सब बृतान्त अवसर्पिनी काल के दूसरे आरे समान जानना.

६ फिर 'सुखमा सुखम' नामका छट्ठा आरा ४ क्रोडा क्रोड सागरोपम का लगता है. इसका सब वर्णन अवसर्पिनी काल के प्रथम आरे के जैसा जानना.

☞ यों दश क्रोडा क्रोड सागरोपम का अवसर्पिनी काल पूर्ण हुऐ बाद पुनः उत्सर्पिनी काल का आगमन होता है. ऐसे बीस क्रोडा क्रोड सागरोपम का काल चक्र भर्त एरावत क्षेत्र में अनादि काल से फिरता रहता है और अनन्त काल तक फिरता ही रहेगा.

वैंताडय पर्वत से उत्तर में चुल्लहिमवन्त पर्वत से दक्षिण में, गंगा नदी से पूर्व में और सिन्धु नदी से पश्चिम में, इन चारों के मध्य में १२ योजन ऊंचा गोला कार 'ऋषभकुंट' नामका पर्वत है जिस पर चक्रवर्ती महाराज खण्ड साधने जाते हैं तब अपना नाम लिखते हैं।

जम्बुद्वीप के उत्तर दिशा के विजय नामक द्वार के अन्दर भरत क्षेत्र जैसा ही ऐरावत क्षेत्र है, विशेष में इस की नदीयों का नाम रक्ता और रक्तवती है।

मेरु पर्वत से उत्तर में भर्त क्षेत्र की हद्द पर १०० योजन ऊंचा २५ योजन जमीन में, २४९२५ योजन लम्बा, १०५२$\frac{१२}{१९}$ (१२ कला) चौडा पीले सोने का 'चुल्लहेमवन्त' पर्वत है, इस के ऊपर ११ कूंट (डूंगरी) पांच २ सो योजन के ऊंचे हैं, और मध्य में १००० योजन

लम्बा ५०० योजन चौडा, १० योजन गहरा 'पद्मद्रह (कुण्ड) है. जिसमें रत्न मय कमल हैं जिस पर 'श्री देवी' सपरिवार रहती है, और जिसमें से ३ नदी निकलीं हैं— १ गंगा और २ सिन्धु तो भरत क्षेत्र में हो चौदे २ हजार नदी के परिवार से पश्चिम के लवण समुद्र में मिलीं है और ३ 'रोहित' नदी उत्तर की ओर 'हेमवय' क्षेत्र में हो २८००० नदी के परिवार से पाश्चिम के 'लवण' समुद्र में मिली है.

मेरुपर्वत से उतर में ऐरावत क्षेत्र के हद्द पर चुल्ल हेमवन्त पर्वत जैसा ही 'शिखरी' पर्वत है, विशेष में इस पर पद्मद्रह जैसे ही 'पुण्डरिक' द्रह है, जिसमें रत्न मय कमलों पर लक्ष्मी देवी' सपरिवार रहती है, और जिसमें से ३ नदी निकली हैं—१ रक्ता और २ रक्तवती उत्तर की ओर ऐरावत क्षेत्र में हो चौदे २ हजार नदी के परिवार से उत्तर के लवण समुद्र में मिली है और ३ 'सुवर्णा कुल' नदी दक्षिण की ओर एरण्यवास क्षेत्र में हो २८००० नदियों के परिवार से पूर्व के लवण समुद्र में मिली है।

मेरु से दक्षिण में चुल्लहिमवन्त पर्वत के पास पूर्व पश्चिम ३७,६७४$\frac{१६}{१९}$ योजन उत्तर के किनारे लम्बा, उत्तर दक्षिण २१५५$\frac{५}{१९}$ योजन चौडा, 'हेमवय क्षेत्र' है, इसमें रहने वाले युगल मनुष्य का शरीर सोने जैसा है, यहां सदैव तीसरे आरे के प्रथम के भाग जैसी रचना है, इस क्षेत्र के मध्य रोहिता रोहितंसा नदी के बीच में १००० योजन ऊंचा और १००० योजन चौडा 'शव्द पाति' वृत (गोल) वेताढय पर्वत है.

मेरु पर्वत से उत्तर में शिखरी पर्वत के पास हेमवय क्षेत्र जैसा ही ऐरण्यवय क्षेत्र है इसमें रहने वाले युगल मनुष्य का शरीर चांदी जैसा है और मध्य में शव्द पातिक बेताढय जैसा ही 'विकट पातिक' वृत वैताढय पर्वत है।

मेरु से दक्षिण में हेमवन्त क्षेत्र के पास उत्तर में २०० योजन ऊंचा ५० योजन जमीन में पूर्व पश्चिम ५४९२९$\frac{१६}{१९}$ योजन लम्बा, उत्तर दक्षिण ४२१०$\frac{१०}{१९}$ योजन चौडा 'महा हेमवन्त' पर्वत सोने का है, जिस पर ८ कुंट पांच २ सौ योजन ऊंचे हैं और जिसके मध्य में २००० योजन लम्बी १००० योजन चौडी १० योजन गहरी 'महापद्म' द्रह है, इसमें रत्नमय कमलों पर 'ह्री' देवी सपरिवार रहती है. और जिसमें से २ नदी निकली है–१'रोहित' दाक्षिण की ओर हेमवन्त क्षेत्र में ही २८००० नदीयों के परिवार से पूर्व के लवण समुद्र में मिली है और २ 'हरिकन्ता' नदी उत्तर की ओरं हरीवास क्षेत्र में ही ५६००० नदीयों के परिवार से पश्चिम के लवण समुद्र में मिली है।

मेरु पर्वत से उत्तर में एरण्यवन्त क्षेत्र के पास महा हेमवन्त पर्वत जैसा ही 'रूपी पर्वत' रूपे का है. विशेष में इसके मध्य महा पद्म द्रह जैसी 'महा पुंडरिक' द्रह है. इसमें रत्न मय कमल पर 'बुद्धि' देवी सपरिवार से रहती है. इसमें से २ नदी निकली हैं–१ रूपकला नदी उत्तर की ओरं एरण्यवय क्षेत्र में हो २८००० नदीयों के परिवार से पश्चिम के लवण समुद्र में मिली है और २ 'नरकन्ता' नदी दक्षिण की ओर रम्यक वास क्षेत्र में ही ५६००० नदी के परिवार से पूर्व के लवण समुद्र में जा कर मिली है.

मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में महाहेमवन्त पर्वत के पास उत्तर में पूर्व पश्चिम ७३९०१$\frac{१७}{१९}$ योजन, उत्तर दक्षिण में ८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन हरीवास क्षेत्र हैं. इसमें युगल मनुष्य का शरीर पन्ने के जैसा हरा है. यहां दूसरे आरे जैसी रचना सदैव रहती है. इसके मध्य में 'विकटपाती' वृत वैताढ्य है।

मेरू से उत्तर में रूपी पर्वत पास दक्षिण में–हरीवास क्षेत्र जैसा ही

'रम्यक' वास क्षेत्र है विशेष में यहां के युगल मनुष्य का शरीर बडा रमणीक है. इसके मध्य में 'गन्धपाती' वृत वैत'ढ्य पर्वत है।

मेरू पर्वत से दक्षिण में हरीवास क्षेत्र के निकट उत्तर में जमीन से ४०० योजन ऊंचा १०० योजन जमीन में पूर्व पश्चिम ९४१५६ $\frac{२}{१९}$ लम्बा, उत्तर दाक्षिण में १६८४२ योजन चौडा मानक जैसा रक्त वर्ण मय 'निषध' पर्वत है. इसके ऊपर ९ कूट हैं. और मध्य में ४००० योजन लम्बा, २००० योजन चौडा, १० योजन गहरा 'तिगिच्छ' द्रह है इस के मध्य रत्नमय कमलों पर 'धृती' देवी सपरिवार रहती है, और इसमें से दो नदी निकली हैं १ 'हरीसलीला' नदी दक्षिण की ओर हेमवय क्षेत्र में हो ५६००० नदी के परिवार से पूर्व के लवण समुद्र में मिली है और २ 'सीतोदा' नदी उत्तर की ओर देव कुरूक्षेत्र के चित्त विचित्त पर्वत के मध्य में हो निषध, देवकुरू, सूर, सुलस और विद्युत्प्रभ इन पांचों द्रह* के मध्य में से निकल भद्रशाल वन में मेरू पर्वत को २ योजन दूर छोड विद्युत्प्रभ गजदन्त पर्वत के नीचे से पश्चिम की और फिर पश्चिम महाविदेह क्षेत्र के छै विभाग करती हुई एक एक विजय में से अठाईस २ हजार नदियों को लेती हुई सब ५३२००० नदीयों के परिवार से परिवर्ती पश्चिम के लवण समुद्र में मिली है.

उक्त निषध पर्वत के पास, उत्तर में ३०२०९ योजन लम्बे, निषध पर्वत के पास ४०० योजन ऊंचे ५०० योजन चौडा आगे क्रम से ऊंचाई में वृद्धी पाते और चौडे पन में घटते २ मेरू पर्वत के पास ५०० योजन ऊंचे, अङ्गुल के असंख्यात विभाग चौडे, हस्ति दन्त के जैसे बांके आकार के दो 'गजदन्ते' पर्वत हैं, यथा–१ पूर्व में मानक जैसा रक्त वर्ण वाला विद्युतप्रभ, और २ दक्षिण में हीरे के जैसा श्वेत वर्ण वाला

* इन एक २ द्रह के पास दश २ पूर्व में दश २ पश्चिम में यों बीस २ पर्वत हैं, पांच द्रह के १०० पर्वत दक्षिण में और १०० ही उत्तर में हैं।

'सोमनस' इन दोनों पर अलग २ सात २ कूट हैं.

मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में रम्यकवास क्षेत्र के पास दक्षिण में निषध पर्वत के जितना ही पन्ने के जैसा हरे वर्ण वाला 'नीलवन्त' पर्वत है इस के ऊपर नव कूट के मध्य तिगिच्छ द्रह के जैसा 'केसरी द्रह' है. इस में रत्नमय कमलों पर 'कीर्ती देवी' सब परिवार सहित निवास करती है,* इस में से दो नदी निकली हैं १ 'नारीकन्ता' नदी उत्तर की और रम्यकवास क्षेत्र के मध्य में हो ५६००० नदी के परिवार से पश्चिम के लवण समुद्र में जा कर मिली है और २ 'सीता नदी' दक्षिण की और उत्तर कुरूक्षेत्र व झमक समक पर्वत के मध्य भाग में हो तैसे ही नलि-वन्त, उत्तरकुरू, चन्द्र, ऐरावत और माल्यवन्त इन पांचो द्रह के मध्य में हो भद्रशाल वन में से मेरू पर्वत को दो योजन दूर रखती हुई माल्य-वन्त गजदन्त के नीचे हो पूर्व की ओर फिरकर पूर्व महा विदेह क्षेत्र के द्वि विभाग करती हुई पूर्वोक्त प्रकार से ५३२००० नदीयों के परिवार से पूर्व के लवण समुद्र में मिली है.

उक्त नीलवन्त पर्वत के पास भी दक्षिण में उक्त प्रकार के गज-दन्त जैसे वक्र 'गजदन्ते' पर्वत हैं यथा—१ पूर्व में पन्ने के जैसा हरित वर्ण का 'माल्यवन्त' और २ पश्चिम में सोने के जैसा पीत वर्ण वाला 'गन्धमादन' है.

मेरू पर्वत से दक्षिण में, निषध पर्वत के पास उत्तर, विद्युतप्रभ और सोमानस गजदन्त पर्वत के मध्य में ११८४२ योजन $\frac{२}{१९}$ चौडा, ५३००० योजन लम्बा अर्ध चन्द्राकार देवकुरू क्षेत्र है, इस में सदैव पहिले आरे जैसी रचना रहती है. देवकुरू क्षेत्र में ८॥ योजन का ऊंचा

* द्रह के मध्य कमल पर रहने वाली भवनपती जाति की देवी यों १ पल्योपम का आयुष्य, और ४००० सामानीक देव १६००० आत्म रक्षक देव ८००० अभ्यन्तर परिषद के देव, १०००० मध्य परिषद के, १२००० बाहिर परिषद के ७ अणीका नायक, ४ महतरीक देवी, १२०००००० अभियोगी देव इन सब के रहने के अलग २ रत्नमय कमल हैं और १०८

रत्नमय 'जम्बू वृक्ष' है इस पर जम्बूद्वीप का मालिक महा ऋद्धि का धारक 'अणाढी देव' रहता है.

मेरू पर्वत से उत्तर में नीलवन्त पर्वत के पास दक्षिण में दोनों गजदन्ता पर्वत के बीच में 'देवकुरुक्षेत्र' के जैसा ही 'उत्तरकुरु' क्षेत्र है. यहा जम्बू वृक्ष के जैसा ही 'शामली' वृक्ष है.

महा विदेह क्षेत्र का वर्णन ।

मेरु पर्वत से पूर्व और पश्चिम में भद्रशाल वन मेरु पर्वत को मिलाकर १००००० * योजन लम्बा, उत्तर और दक्षिण में निषध और नीलवन्त पर्वत के मध्य में ३३६३४ योजन चौडा महाविदेह क्षेत्र है. इस में चौथे आरे जैसी रचना सदैव रहती है.

महाविदेह के मध्य में मेरू पर्वत के आजाने से महाविदेह क्षेत्र के दो भाग होगये हैं १ पूर्व महाविदेह और २ पश्चिम महाविदेह पूर्व महाविदेह के मध्य सीता और पश्चिम महाविदेह के मध्य में सीतोदा नदी के आने से और एक एक के दो दो भाग होने से महाविदेह क्षेत्र के भी ४ भाग

भूपण धरने के कमल हैं, यों १२०५०१२० कमल हैं, जिन पर रत्नमय भुवन हे जिनमें देव रहते हैं।

* मेरू से दक्षिण उत्तर के १००००० योजन का हिसाब ।

क्षेत्र	योजन	क्षेत्र	योजन
मेरु पर्वत	१००००	महा हेमवन्त पर्वत	४२१० १०/१९
दक्षिण भद्रशालवन	५००	रुपी पर्वत	४२१० १०/१९
उत्तर का भद्रशालवन	५००	हेमवय क्षेत्र	२१०५ ५/१९
देव कुरु क्षेत्र	११८४२ २/१९	एरणवय क्षेत्र	२१०५ ५/१९
उत्तर कुरु क्षेत्र	११८४२ २/१९	क्षुद्र हेमवन्त पर्वत	१०५२ १२/१९
निषध पर्वत	१६८४२	शिखरी पर्वत	१०५२ १२/१९
नीलवन्त पर्वत	१६८४२	भर्त क्षेत्र	५२६ ६/१९
हरीवास क्षेत्र	८४२१ १/१९	एरावत क्षेत्र	५२६ ६/१९
रम्यकवास क्षेत्र	८४२१ १/१९	सब जोड़	१००००० योजन

हो गये और एक एक भाग में आठ २ विजय होने से ८×४=३२ विजय महाविदेह क्षेत्र में हैं.

मेरु पर्वत से पूर्व में और पश्चिम में बाईस २ हजार योजन का भद्रशाल वन है, जिसके पास नीलवन्त पर्वत से दक्षिण में, माल्यवन्त गजदन्ता पर्वत से पूर्व में सीता नदी से उत्तर में ८२७१ $\frac{१}{१६}$ योजन उत्तर दक्षिण में लम्बी और २२१२ $\frac{७}{८}$ योजन पूर्व पश्चिम में चौडी पहली 'कच्छ विजय' है, इस के मध्य, पूर्व पश्चिम में विजय जितना (२२१२ $\frac{७}{८}$ योजन) लम्बा, २५ योजन ऊंचा ५० योजन चौडा भरत क्षेत्र के बेताढ्य पर्वत जैसा ही 'बेताढ्य पर्वत' है. विशेष में इसकी उत्तर दक्षिण की दोनों श्रेणीयों पर विद्याधरों के ५५ नगर हैं। इस बेताढ्य पर्वत के उत्तर में नीलवन्त पर्वत के नितम्ब (पास) पूर्व दिशा में सिन्धुकुण्ड मध्य में ८ योजन ऊंचा 'ऋषभ कूट' और पश्चिम में सिन्धु कुण्ड है. दोनों कुण्डों में से सिन्धु और गङ्गा नदी निकल कर बेताढ्य पर्वत की दोनों गुफायों के नीचे होकर चौदह २ हजार नदियों के परिवार से सीता नदी में मिली है। जिस से कच्छ विजय के ६ खण्ड हो गये हैं. वैताढ्य पर्वत से दक्षिण में गङ्गा और सिन्धु नदी के बीच में 'क्षेमकरा' नगरी राजधानी है, इस में भरत क्षेत्र के चक्रवर्ती जैसे ही, 'कच्छ' नाम के चक्रवर्ती हो, ६ खण्ड में राज करते हैं. इस कच्छ विजय के पास पूर्व पश्चिम में १६५९२ $\frac{२}{१६}$ योजन लम्बा, नीलवन्त पर्वत के पास ४०० योजन ऊंचा और आगे क्रमशः वृद्धि पाता सीता नदी के पास ५०० योजन ऊंचा 'चित्रकूट' वखरा (हद्द कर्ता) पर्वत है. इस पर ४ कूट है. जिसके पास कच्छ विजय के जैसी ही दूसरी 'सुकच्छ विजय' है. इस में 'क्षेमपुरा' राजधानी है. जिस के पास नीलवन्त पर्वत के नजदीक 'ग्राहावती' कुण्ड से निकली हुई आदि अन्त ८ योजन चौडी १० योजन गहरी नहर जैसी 'ग्रहावती नदी' सीता नदी में मिली है. जिस के पास पूर्व में कच्छ विजय

जैसी तीसरी 'महा कच्छ विजय' है. जिसके पास चित्रकूट वक्षकार पर्वत जैसा 'ब्रह्म कूट' बक्षकार पर्वत है, इसके पास चौथी 'कच्छावर्त विजय' है। इस में 'अरिष्टवती' राजधानी है. कच्छावर्त विजय के पास ग्रहावती नदी जैसी 'द्रहवती' नदी है. जिसके पास पांचवी 'आवर्त विजय' है. इस में 'पङ्कावती' राजधानी है. जिस के पास 'नलीन कूट' बक्षकार पर्वत है. जिसके पास छट्ठी 'मङ्गलावती विजय' है. जिस में 'मजूसा' राजधानी है. जिसके पास 'बेगवती' नदी है. जिसके पास सातवीं 'पुष्कर विजय' है. जिस में 'ऋषभपुरी' राजधानी है. जिसके पास एक 'शैलकूट' वक्षकार पर्वत है. जिसके पास आठवी 'पुष्कलावती' विजय है. जिसके पास पूर्व में विजय जितने (१६५९$\frac{३}{१६}$ योजन) पूर्व पश्चिम में लम्बा, दक्षिण में सीता नदी के पास २९२२ योजन चौडा, उत्तर में क्रम से घटता २ नीलवन्त पर्वत के पास $\frac{१}{१६}$ जितना चौडा 'सीता मुख' वन है. जिस के पास पूर्व में जम्बू द्वीप का विजय द्वार है.

जम्बूद्वीप के विजय द्वार के अन्दर सीता नदी से दक्षिण उक्त सीता-मुख वन जैसा ही और सीतामुख वन है. विशेष में यह निषध पर्वत के पास $\frac{१}{१६}$ जितना चौडा है. इस के पास मेरू पर्वत की ओर (पश्चिम में) नवमी 'वत्सा विजय' है जिस में 'सुसिमा' राजधानी है. जिसके पास 'चित्रकूट' वक्षकार पर्वत है, जिस के पास दसवीं 'सुवत्सा विजय' जिस में 'कुंडला' राजधानी, जिसके पास 'तप्ततीरा' नदी, जिसके पास ग्यारहवीं 'महा वत्स' विजय, जिसमें 'अपरावती' राजधानी, जिस के पास 'वैश्रमण' वक्षकार पर्वत, जिस के पास बारहवीं 'वत्सवर्त विजय' जिसमें 'प्रभंकरा' राजधानी. जिस के पास 'मतान्तरी' नदी, जिसके पास तेरहवीं 'रम्य' विजय, जिसमें 'पद्मावती' राजधानी, जिसके पास 'उन्मत्तान्तरा' नदी, जिसके पास पन्द्रहवीं 'रमणी' विजय, जिसमें 'शुभा' राजधानी, जिसके पास 'मताजल' कूट बक्षकार पर्वत, जिसके पास

सोलहवीं 'मंगलावती' विजय, जिसमें 'रत्न संचया' राजधानी, इस के पास २२००० योजन का 'भद्रशाल' वन आगया है। यह मेरु पर्वत से पूर्व दिशा के महाविदेह क्षेत्र की १६ विजय का कथन हुआ।

मेरु पर्वत से पश्चिम दिशा में निषध पर्वत से उत्तर में सीतोदा नदी से दक्षिण में विद्युत पर्वत गजदन्ता पर्वत के पास सत्रहवीं 'पद्म' विजय जिसमें 'अश्वपुरी' राजधानी, जिस के पास अङ्कावती वक्षकार पर्वत, जिसके पास अठारहवी 'सुपद्म' विजय, 'सिंहपुरा' राजधानी, जिस के पास 'क्षीरोदा' नदी, जिस के पास उन्नीसवीं 'महा पद्म' विजय, महापुरा राजधानी, जिस के पास 'पद्मावती' वक्षकार पर्वत, जिसके पास वीसवीं 'पद्मावती' विजय, 'विजयपुरा' राजधानी, जिस के पास 'सीत श्रोतान्तरा' नदी, जिस के पास इक्कीसवीं 'शंख' विजय, 'अपराजिता' राजधानी, जिसके पास 'असी विष' वक्षकार पर्वत, जिसके पास बाईसवीं 'नलीन' विजय 'अपरा राजधानी' जिसके पास 'अन्तर वाहिनी' नदी, जिसके पास तेईसवीं 'कुमुद' विजय, 'अशोका' राजधानी, जिसके पास 'सुखवाह वक्षकार पर्वत, जिस के पास चौवीसवीं 'नलीनावती' * विजय जिस में 'वितशोका' राजधानी, जिसके पास सीतामुख वन जैसा ही 'सीतोदामुख' वन जिस के पास जम्बूद्वीप का पश्चिम का जयन्त द्वार है।

जयन्त द्वार के अन्दर सीतोदा नदी से उत्तर में भी वैसा ही 'सीतोदामुख' वन है, जिसके पास पूर्व में (मेरू की ओर) पचीसवीं 'वप्रा' विजय, विजया राजधानी, जिसके पास 'चेत्य कूट' वक्षकार पर्वत, जिसके पास छव्वीसवीं 'सुवप्रा' विजय 'वेजयन्ती' राजधानी, जिसके पास 'उन्मीमालिनी' नदी, जिसके पास सत्ताइसवीं 'महावप्रा' विजय, 'जयन्ती' राजधानी, जिस के पास 'सूरकूट' वक्षकार पर्वत, जिसके पास अट्ठाईसवीं 'वप्रावती' विजय, 'अप्राजिता' राजधानी, जिसके पास उन्नतीसवीं 'सुवल्गु' विजय, 'चक्रपुरा' राजधानी

नोट—* २४ नलीनावती विजय क्रम से उतरती हुई मध्य में १००० योजन की गहरी (नीची) हैं।

जिसके पास 'नागकूट' वक्षकार पर्वत, जिसके पास तीसवीं 'सुवल्गु विजय' 'खड्गी' राजधानी, जिसके पास ' फेन मालिनी ' नदी, जिसके पास इकतीसवीं 'गन्धिला' विजय, ' अवध्या ' राजधानी, जिसके पास 'देवकूट' वक्षकार पर्वत, जिस के पास बत्तीसवीं 'गन्धिलावती' विजय, जिस के पास मेरू पर्वत का भद्रशाल वन, गन्धमादन गजदन्ता पर्वत आगया है.

☞ उक्त कच्छ विजय के समान सब विजय जानना, 'चित्रकूट' समान सब वक्षकार पर्वत जानना, 'ग्राहवती' के समान सब नदी जानना यह १००००० योजन पूर्ण हुये.*

जम्बुद्वीप के चारों ओर घिरी हुई ८ योजन ऊंची, नीचे १२ योजन मध्य में ८ योजन, ऊपर ४ योजन चौडी ३१६२२७ योजन ३ कोस १२८ धनुष्य १३॥ अङ्गुल कुछ अधिक घेराव में जगती (कोटा) है. इस के चारों दिशायों में ८ योजन ऊंचे और ४ योजन चौडे ४ द्वार हैं १—पूर्व में विजय २ दक्षिण में वेजयन्त ३ पश्चिम में जयन्त, और उत्तर में अपराजित ।

—*+*—

॥ इति जम्बुद्वीप का वर्णन समाप्तम् ॥

---

* जम्बु द्वीप के पूर्व पश्चिम के १००००० योजन ।
एक २ विजय २२१२ ७/८ योजन की तो १६ विजय के ३५४०६ योजन हुए ।
एक २ वक्षकार पर्वत ५०० योजन तो ८ वक्षकार के ४००० योजन हुए ।
एक २ अन्तर नदी १२५ योजन तो ६ नदी के ७५० योजन हुए ।
एक २ सीता मुख वन २९२२ योजन तो २ वन के ५८४४ योजन हुए ।
एक २ भद्रशाल वन २२००० योजन २ वन के ४४००० योजन हुए ।
मध्य में मेरुपर्वत १०००० योजन का चौड़ा ।

यों सब मिल कर १००००० योजन हुए ।

लवण समुद्र का वर्णन।

जम्बुद्वीप की जगती के बाहिर बलिया (चूडी) के आकार चारों ओर घिरा हुआ २०००00 योजन का चौडा लवण समुद्र है. तीर पर तो बालाग्र जितना गहरा है और आगे क्रम से गहराई में बढते २९५ योजन जावें वहां मध्य में १००० योजन के चौडान में १००० योजन ऊंडा है और आगे कम होता २ धातकी खण्ड द्वीप समीप बालाग्र जितना गहरा है।

पुर्वोक्त जम्बुद्वीप में भर्त क्षेत्र की हद्द पर चूल हेमवन्त पर्वत के पुर्व के अन्त से दो और पश्चिम के अन्त से दो यों चार दाढायों हस्ति के दन्त जैसी बांकी एक दक्षिण की ओर दूसरी उत्तर की ओर मुडती हुई लवण समुद्र तक गई है। एक एक दाढ पर सात २ अन्तर (अधर) द्वीप हैं जम्बुद्वीप से ३०० योजन दूर चारों दाढों पर ३०० योजन के लम्बे चौडे (गोल) १ रूचक, २ अभाषिक ३ वैषाणिक और ४ लंगुली इस नाम के चार द्वीप हैं. इन के आगे चारों ओर चार २ सौ योजन के लम्बे चोडे—१ हय कर्ण २ गय कर्ण, ३ गोकर्ण और ४ संकुली कर्ण. यह ४ द्वीप हैं. इनके आगे पांच २ सो योजन के लम्बे चौडे—१ अदर्शमुख २ मेढमुख ३ अयोमुख और ४ गोमुख यह ४ द्वीप हैं उनके चारों तरफ छः २ सो योजन के लम्बे चौडे—१ हय मुख, २ गय मुख, ३ हरीमुख और ४ व्याघ्रमुख यह ४ द्वीप हैं. इन के आगे चारों और सात २ सो योजन के लम्बे चौडे—१ अश्व-कर्ण, २ सिंहकर्ण ३ अकर्ण और ४ गोकर्ण ये चार द्वीप हैं उन से आगे आठ २ सो योजन के लम्बे चौडे—१ उल्कामुख २ मेघमुख ३ विद्युनमुख और ४ अमुख यह ४ द्वीप हैं उन से नो २ सो योजन के लम्बे चौडे—१ धन दन्त, लष्ट दन्त, ३ गुढ दन्त, और ४ शुद्ध दन्त यह ४ द्वीप हैं! दाढों के बांकी होने से यह २८ ही द्वीप जगती से तो तीन २ सो योजन ही दूर हैं + चुल्ल हेमवन्त के जैसे ही एरावत क्षेत्र की हद्द पर रहे शिखरी

+ अन्तर द्वीप का जैसा नाम है वैसी ही शरीराकृती वाले मनुष्य उसमें रहते हैं। ऐसा दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में लिखा है।

पर्वत की दाढों पर भी २८ द्वीप हैं। यों दोनों तरफ के ५६ द्वीपों में एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग आयुष्य वाले ७७५ धनुष्य के देहमान वाले युगल मनुष्य रहते हैं। इस स्थान में तीसरे आरे की जैसी सब रचना है। यहां के मनुष्य भी मर कर देव गति में जाते हैं।

जम्बुद्वीप के चारों ही द्वारों से पंचाणवें २(९५) हजार योजन चारों और लवण समुद्र में १००००० योजन लम्बे, ५०००० योजन मध्य में चौडे १००० योजन तले में और मुख में चौडे १०० योजन जाडी ठीकरी वाले वज्रमय ४ पाताल कलश हैं—१ पूर्व में 'बड वाय', २ दक्षिण में 'युग', ३ पश्चिम में 'केतु' और ४ उत्तर में ईश्वर। इन चारों के ३३३३३ योजन से कुछ अधिक के तीन काण्ड (विभाग) हैं, प्रथम काण्ड में वायु, दूसरे में वायु और पानी, तीसरे काण्ड में पानी भरा है, इन चारों ही कलश के परस्पर मध्य में १००० योजन के लम्बे ५०० योजन के मध्य में चौडे १०० योजन तले में और मुख में चौडे १० योजन की जाडी ठीकरी वाले छोटे कलसे के ९–९ लड लगी है। पहिली लड में २१५, दूसरी में २१६, तीसरे में २१७, चौथी में २१८, पांचवी में २१९, छट्ठी में २२०, सातवीं में २२१ आठवीं में २२२ और नववीं में २२३ कलसे हैं, इन छोटे कलसों के भी ३,३३३ योजन से कुछ अधिक के तीन काण्ड हैं उनमें भी १में वायु २में वायु पानी ३में पानी भरा है। छोटे बडे सब कलस ७८८८ होते हैं। इन के नीचे के काण्ड का वायु जब गुंजायमान होता है तब ऊपर के काण्ड से पानी उछल कर दो कोस ऊपर जाता है। अष्टमी और पक्षी के दिन पानी ज्यादा उछलता है जिससे समुद्र में भरती आती है। प्रत्येक बडे कलस पर १७४००० नागकुमार जाति के देव सोने के कुडछे से पानी को दबाते हैं. इसलिये वेलधर देव उन्हे कहते हैं. इनके दबाने से भी पानी नहीं रुकता है. जिससे १६००० योजन ऊंचा और १०००० योजन का चौडा समुद्र के मध्य में दगमाल (पानी ढग) है।

जम्बुद्वीप और धात की खण्ड में रहे तीर्थंकर साधु साध्वी श्रावक श्राविका सम्यक दृष्टी आदि उत्तम पुरुषों के तप संयम धर्म पुण्य के अतीशय से समुद्र का पानी कभी भी झडक डालता नहीं है।

जम्बुद्वीप के चारों द्वार से चारों दिशा और चारों विदिशायों में बयालीस २ हजार योजन पर १७२१ योजन ऊंचे, नीचे १०२२ योजन ऊपर ४२४ योजन चौडे ८ पर्वत हैं।* जिस पर बेलन्धर देव के आवास हैं जिसमें वे सपरिवार रहते हैं, इसी स्थान १२५०० योजन का गोतम द्वीप है जिसमें लवण समुद्राधिस 'सुस्थित देव' सपरिवार रहता है इस गौतम द्वीप के चारों ओर ८८॥ योजन से कुछ अधिक ऊंचे चन्द्र सूर्य के द्वीप हैं, वहा जोतिषी देव क्रीडा करते हैं।

लवण समुद्र के चारों ओर बलियाकार घिरा हुआ ४००००० योजन का चौडा धात की खण्ड नामक द्वीप है। इसके मध्य में ५०० योजन ऊंचे धात की खण्ड जितने लम्बे पूर्व और पश्चिम के द्वार के निकले दो इक्षुकार पर्वत हैं, जिस से धातकी खंड द्वीप के दो विभाग हुए है. यथा—१ पूर्व धातकी खण्ड द्वीप. और २ पश्चिम धातकी खण्ड द्वीप, ८४ चौरासी २ हज़ार योजन के ऊंचे और ९४००० योजन भूमि पर चौडे, ९२५० योज़न नन्दन वन में चौडे, ३८०० योजन सोमान वन में चौडे और १००० योजन शिखर पर चौडे दो मेरू पर्वत है. पूर्व के धातकी खण्ड के मध्य में 'विजय मेरू' और पश्चिम के धातकी खण्ड के मध्य में 'अचल मेरू' सम भूमी पर भद्रशाल वन. ५०० योजन ऊपर नन्दन वन ५५५०० योजन ऊपर 'सोमानस' वन और २८००० योजन ऊपर 'पण्डग वन यहां धातकी खण्ड में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है.

+ पूर्व में गोथुभ. दक्षिण में दिगवास, पश्चिम में शंख, और उत्तर में दिकसीम इन चार द्वीप में रहने वाले देव को वेलंधर कहते हैं और अग्निकोन में कर्कोटक, नैऋत्य कोन में विद्युत्प्रभ, वायु कोन में कैलाश और ईशानकोन में अरुणप्रभ इन पर्वत पर रहने वालों को अणुवेलंधर देव कहते हैं.

इन दोनों मेरूओं के पास अलग २ जम्बूद्वीप में कहे जैसे और जितने ही लम्बे चौडे उतने क्षेत्र, पर्वत, द्रह, नदी, महाविदेह आदि हैं. धातकी खण्ड में जम्बूद्वीप से द्विगुने सब शाश्वते पदार्थ हैं. धातकी खण्ड द्वीप के चारों तरफ जम्बूद्वीप के जैसी जगती और चार द्वार हैं.

धातकी खण्ड द्वीप के चारों ओर बलियाकार धिरता हुआ ८००००० योजन का चौडा इस तीर से उस तीर तक एकसा १००० योजन का गहरा 'कालोदधि' समुद्र है. इस के पानी का स्वाद साधारण पानी जैसा ही है. इस में दो गौतमद्वीप और १०८ चन्द्रमा सूर्य के द्वीप हैं.

कालोदधि समुद्र के चारों और वलियाकार घिरा हुआ १६००००० योजन का चौडा 'पुष्कर द्वीप' है. यह मध्य में १७२१ योजन ऊंचा और मूल में १०२२ योजन और शिखर में ४२४ योजन का चौडा है चारों ही ओर वलियाकार फिरता हुआ 'मानुष्योत्तर' नासक पर्वत है. इस पर्वत के अन्दर ही मनुष्यों की वस्ती है. धातकी खण्ड द्वीप के जैसे ही इस द्वीप के मध्य में भी दो इक्षुकार पर्वत हैं. जिससे इस के भी दो विभाग हो गये हैं—१ पूर्व पुष्करार्ध द्वीप और २ पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप. धातकी खण्ड द्वीप के जैसे और जितने ही ऊंचे चौडे दो मेरू पर्वत इस में भी हैं.—१ पूर्व पुष्करार्ध में 'मन्दिर मेरू' और पश्चिम पुष्करार्ध में 'विद्युत्माली मेरू'. धातकी खण्ड द्वीप जैसे ही और जितने ही लम्बे चौडे सब शाश्वते पदार्थ इस में भी जानना।

उक्त प्रकार १ लक्ष योजन का जम्बुद्वीप. दोनों तरफ का ४ लक्ष योजन का लवण समुद्र. दोनों तरफ ८ लक्ष योजन धातकी खण्ड द्वीप, दोनों तरफ १६ लक्ष योजन 'कालोदधि' समुद्र, और दोनों ओर १६ लक्ष योजन पुष्करार्ध यों सब—१+४+८+१६+१६=४५ लक्ष योजन के अढाई द्वीप में ७९२२८१६२,५१४२६४३,३७५९३५४,३१५०३३६ इतने

उत्कृष्टे मनुष्य होते हैं * इस लिये इसे मनुष्य लोक कहते हैं. अढाई द्वीप के बाहिर-१ मनुष्योतपत्ती, २ वादर अग्नि, ३ द्रहकुंण्ड, ४ नदी, ५ गर्जारव, ६ विद्युत, ७ बद्दल. ८ बर्षादि ९ खड्डे और १० दुष्काल यह १० वस्तु नहीं हैं मानुषोत्तर पर्वत के बाहिर के पुष्करार्ध द्वीप में देवता तीर्यांचादिकों का निवास स्थान है.

पुष्कर द्वीप के बाहिर चारों ओर वालियाकार घिरा हुआ ३२००००० योजन का चौडा पुष्कर समुद्र है, इसी प्रकार आगे के द्वीप प्रत्येक समुद्र को घेरे हुए और चौडान में एक एक से दुगुने जानना. ७ वां वारुणी द्वीप, ८ × वारुणी समुद्र, ९ क्षीर द्वीप, १० क्षीर समुद्र ११ घृतद्वीप १२ घृत समुद्र, १३ इक्षु द्वीप, १४ इक्षु समुद्र, १५ नन्दीसर द्वीप, १६ नन्दीसर समुद्र १७ अरुण द्वीप, १८ अरुण समुद्र १९ रुण द्वीप, २० रुण समुद्र, २१ पवन द्वीप, २२ पवन समुद्र, २३ कुंडल द्वीप २४ कुंडल समुद्र २५ शंख द्वीप, २६ शंख समुद्र, २७ रुचक द्वीप, २८ रुचक समुद्र, २९ भुजंग द्वीप, ३० भुजंग समुद्र, ३१ कुस द्वीप, ३२ कुस समुद्र, ३३ कुच-द्वीप, ३४ कुच समुद्र इस प्रकार एक एक को फिरते हुए असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं. अन्त में आधा रज्जु चौडा स्वयम्भू रमण समुद्र है. उस से १२ योजन चारों तरफ अलोक है और ज्योतिषी चक्र से ११११ योजन पर अलोक आ गया है.

* अढाई द्वीप के अन्दर २९ अङ्क मनुष्यों की संख्या के कहे किन्तु क्षेत्र फल से इतने मनुष्यों का समावेश होना असक्य है, इसलिये स्त्री की योनि में ९००००० जो सन्नी मनुष्य उत्पन्न होते हैं वे भी इनमें सामिल हैं, कितने कहते हैं कि अजितनाथ जी के वक्त उत्कृष्ट मनुष्य संख्या हुई तब २९ नव के जितने मनुष्य थे और छठे आरे आदि समयों में मनुष्य कम होते हैं तब २९ पदे जितने जानना किन्तु २९ अङ्क की संख्या से कम मनुष्य कभी नहीं होते हैं। अढाई द्वीप में जितना मनुष्य का आयुष्य है उतना ही हस्ति और सिंह का आयुष्य, मनुष्य के चौथे भाग घोड़े का आयुष्य, आठवें भाग बकरे मेंढे जम्बुक का आयुष्य, पांचवें भाग गाय भैंस ऊंट गधे का आयुष्य दशवें भाग कुत्ते का आयुष्य जानना।

× लवण समुद्र में निमक जैसा, कालो दधी मामूली पानी जैसा, वारुणी समुद्र में मदिरा जैसा, क्षीर समुद्र में दूध जैसा, घृत समुद्र घी जैसा और असंख्यात समुद्रों में इक्षुरस जैसा

जोतिष चक्रम्।

जम्बुद्वीप के सुदर्शन मेरुपर्वत के नजदीक सम भूमि ७९० योजन ऊपर तारा मण्डल है आध कोस के लम्बे चौडे और पाव कोस के ऊंचे पांचों वर्ण में तारों के विमान हैं। जघन्य पाव पल्योपम का उत्कृष्ट पाव पल्योपम से कुछ अधिक तारा देव का आयुष्य है. और जघन्य पल्योपम के आठवें भाग उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक तारों की देवीयों का आयुष्य है. तारों के विमान को २००० देव उठाते हैं. तारा मण्डल से १० योजन ऊपर एक योजन के ६१ भाग में से ४८ भाग का लम्बा चौडा और २४ भाग का ऊंचा अंक रत्नमय सूर्य का विमान है. सूर्य विमान वासी देवों का जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट १ पल्योपम १ हजार वर्ष का आयुष्य है इनकी देवीयों का जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधा पल्योपम ५०० वर्ष का आयुष्य है. सूर्य के विमान को १६०० देव उठाते हैं। सूर्य के विमान से ८० योजन * ऊपर एक योजन के ६१ भाग में से ५६ भाग लम्बा चौडा × और २८ भाग का ऊंचा स्फटिक रत्नमय चन्द्रमा का विमान है. § चन्द्र विमान वासी देवोंका जघन्य पाव

पानी का स्वाद है। नन्दीश्वर द्वीप में देवता तीनों चतुर्मासों के, तीर्थंकरों के पञ्च कल्याण के आदि शुभ दिनों में अठाई महोत्सव (८ दिन) करते हैं। रुचक द्वीप तक जंघा चरण मुनि जाते हैं। रुचक द्वीप के मध्य चारों ओर घिरा हुआ रुचक पर्वत है जिस पर ४० दिशा कुमारिका देवी रहती है, ८ नंदन वन में और ८ गजदन्ता पर्वत पर यों ५६ सब होती हैं। ७ अढाइ उद्धार सागरोपम अर्थात् २५ कोड़ कोड़ उद्धार पल्योपमके जितने समय होतेहैं उतने असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, तथा जगत् में सुप्रशस्त [अच्छि] वस्तुओं के जितने नाम हैं उन एक २ नाम के असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, जम्बु द्वीप नाम के द्वीप भी असंख्यात हैं

* चन्द्र सूर्यादि जोतिषी के विमानों के योजन कोस सब शाश्वते जानना ४००० अशाश्वते कोस का एक शाश्वता योजन होता है।

× सूर्य के विमानों से १ योजन नीचे केतु का विमान है और चन्द्रमा के २ योजन नीचे राहु का विमान है ऐसा दिगम्बर मत के चर्चाशतक ग्रन्थ में लिखा है।

§ दिगम्बर आम्नाय के मिथ्या खण्डन सूत्र में लिखा है कि—चन्द्रमा का

पल्योपम उत्कृष्ट १ पल्योपम १ लक्ष वर्ष का आयुष्य है, इनकी देवीयों का जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधे पल्योपम ५०००० वर्ष का आयुष्य है. चन्द्र विमान को भी १६००० देव उठाते हैं. चन्द्र विमान से ४ योजन ऊपर 'नक्षत्र माल है' इनके विमान भी पांचों वर्ण मय एक २ कोस के लम्बे चौडे और आध कोस के ऊंचे हैं। नक्षत्र विमान वासी देवों का जघन्य पाव पल्योपम का उत्कृष्ट आधे पल्योपम का आयुष्य है, और इन की देवीयों का जघन्य पाव पल्योपम का उत्कृष्ठ पाव पल्योपम से कुछ अधिक आयुष्य है. नक्षत्र के विमान को ४००० देवता उठाते हैं. नक्षत्र माल से ऊपर ४ योजन 'ग्रह माल' है ग्रह के विमान भी पांचों वर्ण के हैं. ग्रह के विमान दो कोस के लम्बे चौडे एक कोस के ऊंचे हैं। ग्रह विमान वासी देव का जघन्य पाव पल्य का उत्कृष्ट १ पल्योपम का आयुष्य है. इनकी देवीयों का जघन्य पाव पल्योपम का उत्कृष्ट आधे पल्योपम का आयुष्य है। ग्रह के विमान को ८००० देव उठाते हैं *। ग्रह माल के ऊपर ४ योजन हरे रत्न मय बुद्ध ग्रह का तारा है, इससे ३ योजन ऊपर स्फटिक रत्न में शुक्र ग्रह का तारा है. इससे ३ योजन ऊपर पीले रत्न में बृहस्पति ग्रह का तारा है. इससे ३ योजन ऊपर रक्त रत्न मय मंगल ग्रह का तारा है. इससे ३ योजन ऊपर जम्बुनन्द रत्नमय शनी ग्रह का तारा है. इन चारों का आयुष्य और विमान उठाने वाले देव ग्रहमाल जितने जानना उक्त प्रकार सब जोतिष चक्र सम भूमि से ९०० योजन

विमान सामान पने १८०० कोस चौडा है, सूर्य का १६०० कोस चौडा है। और ग्रह नक्षत्र तारों का विमान जघन्य १२५ कोस उत्कृष्ट ५०० कोस चौडा है। तैसे ही १६००००० कोस सूर्य का विमान और १७६०००० कोस चन्द्रमा का विमान सम-भूतल से ऊंचा है।

* ज्योतिषी के विमान उठाने वाले जितने २ देव कहे हैं, उनके ४ विभाग करना. जिसमें १ पूर्व दिशा में सिंह के रूपसे. २ दक्षिण में हस्ति के रूपसे. ३ पश्चिम में बैल के रूप और ४ विभाग उत्तर दिशा में घोडे के रूपसे विमान उठाकर फिरते हैं.

में याने तिरछे लोक में हैं. जम्बुद्वीप के मेरु पर्वत से ११२१ योजन के अन्तर में जोतिषी के विमान हैं.

जम्बुद्वीप में २ चन्द्र २ सूर्य, लवण समुद्र में ४ चन्द्र ४ सूर्य, धात की खण्ड द्वीप में १२ चन्द्र १२ सूर्य, पुष्कराधं द्वीप में ७२ चन्द्र ७२ सूर्य. यों अढाई द्वीप के अन्दर १३२ चन्द्र १३२ सूर्य पंच मेरुपर्वत के चारों ओर सदैव फिरते रहते हैं। और अढाई द्वीप के बाहिर असंख्यात चन्द्र असंख्यात § सूर्य सदैव स्थिर रहते हैं, अढाई द्वीपके बाहिर चन्द्र सूर्यादि के जोतिषी के विमान की लम्बाई चौडाई ऊंचाई अढाई द्वीप के अन्दर के ज्योतिषी के विमान से आधे प्रमान में. अढाई द्वीप के अन्दर के ज्योतिषी के विमान आधे कवीट फलके आकार नीचे से गोल ऊपर से सम-बराबर है और अढाई द्वीप के बाहिर के जोतिषी के विमान ईंट के आकार में लम्बे ज्यादा चौडे कम हैं. तथा यहां के जोतिषी के विमान से वहां के ज्योतिषी के विमान का तेज भी मंद हैं अर्थात् उदय होते सूर्य के जैसा है. अढाई द्वीप के अन्दर के ज्योतिषी फिरते रहने से दिन रात्रि का पलटा होता है और बाहिर के ज्योतिषी स्थिर रहने से जहां रात्रि है वहां रात्रि और दिन है वहां दिन सदैव रहता है.

§ असंख्यात द्वीप समुद्र के जोतिषीओं का प्रमान—धात की खण्ड द्वीपमें १२ चन्द्र और १२ सूर्य कहे इसे ३ गुने करना तब १२×३=३६ हुअे इनमें जम्बुद्वीप के २. लवण समुद्र ४ यह मिलाने से ४२ हुये अतएव कालो दधी में ४२ चन्द्र और ४२ सूर्य कालोदधी के ४२ को ३ गुना करने से ४२×३=१२६ हुये। जिसमें जम्बु द्वीप के २, लवण समुद्र के ४ और धात की खण्ड के १२ यों १८ मिलावे तब १४४ हुये अतएव पुष्कर द्वीप में १४४ चन्द्र १४४ सूर्य हुये। जिसमें से मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर ७२ और बाहिर यों १४४ जानना। इस ही प्रकार आगे भी गृहीत द्वीप समुद्र के ३ गुने कर पीछे के द्वीप समुद्र के मिलाने से हर एक द्वीप समुद्र के चन्द्र सूर्य का प्रमान जानने में आ जाता है। प्रत्येक चन्द्र और सूर्य का प्रमान उक्त प्रमाने प्रकार जानना। अढाई द्वीप के बाहिर सूर्य और चन्द्र के ५००० योजन का अन्तर है और चन्द्र चन्द्र के तथा सूर्य सूर्य के १००००० योजन का अन्तर सब स्थान में है।

सब ज्योतिषीओं के इन्द्र जम्बुद्वीप के चन्द्र सूर्य * हैं, प्रत्येक चन्द्र सूर्य के साथ ‡ ८८ गृह, ‡ २८ नक्षत्र, ६६९७५०००००००००००० (छांसठ हजार नौसौ पिचहत्तर क्रोडा क्रोड तारे हैं, प्रत्येक ज्योतिषी के मालिक के ४ अग्र महेषी इन्द्राणी, प्रत्येक के चार २ हजार का परिवार ४००० सामानिक देव, १६००० आत्म रक्षक देव, अभ्यन्तर परिषद के ८००० देव, मध्य परिषद के १०००० देव और बाहिर परिषद के १२००० देव हैं. ७ प्रकार की आणिका (सेना) और भी बहुत परिवार हैं पूर्वोपार्जित पुण्य फल भोग रहे हैं. उक्त प्रकार ९०० योजन नीचे और ९००

---

* जम्बू द्वीप में अश्विन और चैत्री पूर्णिमा के दिन जो चन्द्र सूर्य भर्त क्षेत्र में प्रकाशते हैं वे ही इन्द्र हैं, ऐसा दिगम्बर ग्रन्थ में है।

‡ ८८ ग्रह के नाम—१अंगारक, २ विकालक, ३ लोहीताक्ष, ४ शनिश्चर, ५ आधूनिक, ६ प्रधूनीक, ७ कण, ८ कणक, ९ कण कणक, १० कण वितानी, ११ कणसतानी, १२ सोम, १३ सहित, १४ अश्वसन, १५ कार्योत्वत, १६ कबुंक, १७ अजकर्क, १८ दुंदुभक, १९ शंख, २० शख नाभ, २१ शंख वर्ण, २२ कंश, २३ कंशनाभ, २४ कंशवर्ण, २५ नीला, २६ नील चास भास, २७ रूप, २८ रूपायभास, २९ भस्म, ३० भस्मरास, ३१ तिल, ३२ तिल पुफवर्ण, ३३ दक, ३४ दक वर्ण, ३५ काय, ३६ वध्य, ३७ इन्द्रागी, ३८ धूम केतु, ३९ हरी, ४० पिंगलक, ४१ बुद्ध, ४२ शुक्र, ४३ वृस्पति, ४४ राक, ४५ अगस्ति, ४६ माणक, ४७ काम स्पर्श, ४८ धुरक, ४९ प्रमुख, ५० विकट, ५१, विसन्ध कल्प, ५२ प्रकल्य, ५३ जयल, ५४ अरुण, ५५ अनिल, ५६ काल, ५७ महाकाल, ५८ स्वस्तिक, ५९ सोवस्तिक, ६० वृद्धमानक, ६१ पालम्बोक, ६२ नित्योदक, ६३ स्वयं प्रभ, ६४ आभास, ६५ प्रभास, ६६ श्रेयसकर, ६७ क्षेम कर, ६८ आभ कर, ६९ प्रभ कर, ७० अरज, ७१ विरज, ७२ अशोक, ७३ तसोक, ७४ विमल, ७५ वितम्त, ७६ विवस्त्र, ७७ विशाल, ७८ शाल, ७९ सुव्रत, ८० अनीवृत, ८१ एक जटी, ८२, द्वीजटी, ८३ करी, ८४ करिक, ८५ राजा, ८६ अर्गल, ८७, पुष्प केतु, और ८८ भाव केतु।

‡ २८ नक्षत्र—१ अभीच, २ श्रवण, ३ धनिष्टा, ४ शतभिषा, ५ पूर्व भाद्रपद, ६ उत्तर भाद्रपद, ७ रेवती, ८ अश्वनी, ९ भरणी, १० कृतिका, ११ रोहिणी, १२ मृगश्र, १३ अर्द्रा, १४ पुनर्वसु, १५ पुष्य, १६ अश्लेषा, १७ मघा, १८ पूर्वाफाल्गुनी, १९ उत्तरा फाल्गुनी, २० हस्त, २१ चित्रा, २२ स्वांत, २३ विशाखा, २४ ज्येष्टा, २५ अनुराधा, २६ मूळ, २७ पूर्वाषाढा, २८ उत्तराषाढा।

योजन ऊपर यों १८०० योजन में तिरछे लोक का वर्णन सम्पूर्ण हुआ, मेरू पर्वत ने तीनों लोक स्पर्श्ये हैं।

उर्द्ध (ऊंचे) लोक का वर्णन।

शनिश्चर के विमान की ध्वजापताका से १॥ रज्जू ऊपर १६॥ रज्जू घनाकार विस्तार में घनो दधी (जमे पानी) के आधार पर लगडाकार जम्बूद्वीप के मेरूपर्वत से दक्षिण दिशा में 'पाहिला सुधर्मा' देव लोक है, और उत्तर में दूसरा 'ईशान देव' लोक है. इन दोनों देव लोकों में तेरह २ प्रतर हैं. * जिनमें पांच २ सो योजन के ऊंचे और सत्ताईस २ सो योजन की अगनाइ (नीव) वाले. पहिले देव लोक में ३२००००० और दूसरे देव लोक में २८००००० विमान हैं. पहिले देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र हैं जिनकी ८ अग्रमहेषी इन्द्राणी हैं और दूसरे के ईशान इन्द्र हैं जिनके ६ अग्रमहेषी इन्द्राणी हैं. प्रत्येक के सोले २ हजार का परिवार है. पहिले देव लोक के देवता का जघन्य १ पल्योपम का उत्कृष्ट २ सागरोपम का आयुष्य है. जिनकी परिग्रहित देवी का जघन्य १ पल्योपम उत्कृष्ट ७ पल्योपम का आयुष्य है. दूसरे देव लोक निवासी देवों का जघन्य १ पल्योपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट २ सागरोपम से कुछ अधिक आयुष्य है. इनकी परिग्रहित देवी का जघन्य १ पल्योपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट ९ पल्योपम का आयुष्य है, यहां से आगे देवी उत्पन्न नहीं होती हैं।

उक्त दोनों देव लोकों के हदों के ऊपर १६॥ रज्जू घनाकार विस्तार में घनवाय (जमी हवा) के आधार पर दक्षिण में तीसरा सनत्कुमार, और उत्तर में चौथा महेन्द्र देव लोक है. इन दोनों देवलोकों की बारह २ प्रतरों में छः २ सो योजन के ऊंचे और छव्वीस २ सो योजन की अगनाइ वाले तीसरे में १२००००० और चौथे में ८००००० विमान हैं. तीसरे

* जैसे मकान में मंजल होते हैं तैसे देवलोक में प्रतर हैं और जैसे मंजल में कमरे होते हैं तैसे देवलोक में विमान हैं।

देव लोक के देवों का जघन्य २ सागरोपम उत्कृष्ट ७ सागरोपम का आयुष्य है और चौथे देवलोक के देवों का जघन्य २ सागरोपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट सात सागरोपम से कुछ अधिक का आयुष्य है.

उक्त दोनों देवलोकों के आधा रज्जु ऊपर १८॥। रज्जु के घनाकार विस्तार में मेरू पर्वत पर बराबर मध्य में घन वाय (जमी हवा) के आधार से पांचवां ब्रह्म देव लोक है. इस की छः प्रतरों में ७०० योजन ऊंचे और २५०० योजन अंगनाई वाले ४००.००० विमान हैं. वहां के देव का जघन्य सात सागरोपम उत्कृष्ट १० सागरोपम का आयुष्य है.

पांचवें देवलोक की तीसरी अरिष्ट नामक प्रतर के पास दक्षिण दिशा में त्रसनाल के अन्दर पृथ्वी परिणाम रूप कृष्ण वर्ण का कुकड पिंजर के संस्थान रूप चार दिशा और चार विदिशा में यों आठ परस्पर मिली हुई 'कृष्णराजी'* हैं. उन आठ में आठ और एक आठों के मध्य में यों ९ विमान हैं जिन में ९ 'लोकान्तिक' देव रहते हैं—१ ईशान कौन के अर्ची विमान में सारस्वत देव, २ पूर्व के 'अर्चीमाला' विमान में आदित्य देव इन दोनों के ७०० देवों का परिवार है. ३ अग्निकौन के 'वैरोचन' विमान में 'वन्हीदेव' ४ दक्षिण के 'प्रभंकर' विमान में 'वरुण देव' इन दोनों के १४००० देवों का परिवार है. ५ नैऋत्य कौन में 'चन्द्राभ' विमान में गर्दतोय देव, ६ पश्चिम के सूर्याभ विमान में 'तुषित देव.' इन दोनों के ७००० देवोंका परिवार है. ७ वायुकोन के 'शुक्राभ' विमान में 'अवाबाध' देव. ८ उत्तर के 'सुप्रतिष्ठ' विमान में अग्निदेव. और ९ मध्य के 'रिष्टाभ' विमान में 'अरिष्ट' देव. इन तीनों के ९००० देवों का परिवार है. यह नव

* असंख्यात वे 'अरुणवर समुद्र में' से १७२१ योजन चौड़ी भीत के समान अन्धकार मय 'तमस्काय' निकल ऊपर चार देव लोकों को उल्लंघन कर पांचवें देवलोक की तीसरी प्रतर के पास नीचद्वीपके समान ऊपर पिन्जर समान असंख्यात योजन में प्रसरी हुई कृष्ण राजी है।

ही देवता एकान्त सम्यक् द्रष्टी तीर्थंकरों को दीक्षा का अवसर चेताने वाले थोडे ही भव में मोक्ष प्राप्त करने वाले, लोक (त्रसनाल) के किनारे पर रहने से 'लोकान्तिक' कहलाते हैं.

उक्त पांचवें देवलोक के हद्द के आधे रज्जु ऊपर १८॥ रज्जु घनाकार विस्तार में मेरु पर्वत के बराबर मध्य में घनवाय और घनोदधी के आधार से छट्ठा 'लान्तक देव लोक' है जिस की ५ प्रतरों में ७०० योजन के ऊंचे और २५०० योजन की अंगनाई वाले ५०००० विमान हैं यहांके देवोका जघन्य १० सागरोपम उत्कृष्ट १४सागरोपम का आयुष्यहै.

उक्त छट्ठे देवलोक के हद्द के ऊपर पाव रज्जु और ७। रज्जु घनाकार विस्तार में मेरु पर्वत के बराबर मध्य में घनवाय और घनोदधी के आधार से सातवां महाशुक देवलोक है इसकी चार प्रतरों में ८०० योजन के ऊंचे और २४०० योजन की अंगनाई वाले ४०००० विमान हैं यहां के देवों का जघन्य १४ सागरोपम उत्कृष्ट १७ सागरोपम का आयुष्य है.

उक्त सातवें देवलोक की हद्द से पाव रज्जू ऊपर ७। रज्जू घनाकार विस्तार में मेरूपर्वत के बराबर मध्य में घनवाय और घनो दधी के आधार से आठवा महा शुक देवलोक है. इसकी ४ प्रतरों में ८०० योजन के ऊंचे २४०० योजन की अंगनाई वाले ६००० विमान हैं. यहां के देव का जघन्य १७ सागरोपम उत्कृष्ट १८ सागरोपम का आयुष्य है।

उक्त आठवें देवलोक से पाव रज्जु ऊपर १२॥ रज्जु घनाकार विस्तार में मेरु से दक्षिण में नवमा आणत देवलोक और उत्तर मे दशवां 'प्रणत' देवलोक लगडाकार हैं दोनो में चार २ प्रतरों ९०० योजन ऊंचे २२०० योजन की अंगनाई वाले दोनों में ४०० विमान हैं. नवमें देवलोक के देवों का जघन्य १८ सागरोपम उत्कृष्ट १९ सागरोपम का और दशवें देव लोक के देवों का जघन्य १९ उत्कृष्ट २० सागरोपम का आयुष्य है.

उक्त नवमें दशवें देवलोक की हद्द से आधा रज्जु ऊपर और १०॥

रज्जु घनाकार विस्तार में मेरु से दक्षिण दिशा में ग्यारहवा 'अरुण' देव लोक और उत्तर में बारहवां 'अचुत' देवलोक है. इन दोनों की चार २ प्रतरों में १००० योजन के ऊंचे और २२०० योजन की अंगनाई वाले दोनों देवलोकों में ३०० विमानहैं. ग्यारहवे देवलोक के देवों का जघन्य २० सागरोपम उत्कृष्ट २१ सागरोपम का आयुष्य है. और बारहवें देवलोक के देवों का जघन्य २१ सागरोपम उत्कृष्ट २२ सागरोपम का आयुष्यहै.

देवलोकों के नाम	इंद्रके नाम	सामानिक देव	आत्म रक्षक देव	अभ्यन्तर परिषद के देव	मध्यम परिषद के देव	बाह्यपरिषदके देव	चिन्ह	देहमान
१ सुधर्मा	शक्रेन्द्र	८४०००	३३६०००	१२०००	१४०००	१६०००	मृग	७ हाथ
२ ईशान	ईशानेन्द्र	८००००	३२००००	१००००	१२०००	१४०००	महिष	७ ,,
३ सनत्कुमार	सनत्कुमारेंद्र	७५०००	३००००००	८०००	१००००	१२०००	बराह	६ ,,
४ महेन्द्र	महेन्द्रइन्द्र	७००००	२८००००	६०००	८०००	१००००	सिंह	६ ,,
५ ब्रह्म	ब्रह्मेन्द्र	६००००	२४००००	४०००	६०००	८०००	बकरा	५ ,,
६ लांतक	लांत केन्द्र	५००००	२०००००	२०००	४०००	६०००	दादुर	५ ,,
७ महाशुक्र	महाशुक्रेंद्र	४००००	१६००००	१०००	२०००	३०००	अश्व	४ ,,
८ सहस्रार	सहश्रारेन्द्र	३००००	१२००००	५००	१०००	२०००	गज	४ ,,
९ आनत १० प्रणत	दोनोंके एक पाणेन्द्र	२००००	८००००	२५०	५००	१०००	सर्प.गेंडा	३ ,,
११ अरुण १२ अचुत	दोनोंके एक अच्युतेन्द्र	१००००	४००००	१२५	२५०	५००	वृषभ शाहामृग	३ ,,

इन १ इन्द्रों के ७ अणिका (सेना) हैं यथा– १ गन्धर्व, २ नाटक ३ हस्ति, ४ घोडे, ५ रथ, ६ पैदल और ७ वृषभ।

पहिले सुधर्मा देवलोक में परिग्रही (वेश्या जैसी) देवीयों के ६०००००
विमान हैं, जिनमें रहने वाली देवियों का जघन्य एक पल्योपम का
उत्कृष्ट ५० पल्योपम का आयुष्य है, जिन में से एक पल्योपम के आयु-
ष्य वाली ही देवी पहिले देवलोक के देवों के परीभोग में आती है. एक
पल्योपम से एक समय अधिक १० पल्योपम के आयुष्य वाली देवी तीसरे
देवलोक के देवों के, १० पल्योपम से एक समय अधिक २० पल्योपम
तक के आयुष्य वाली पांचवें देवलोक के देवों के, २० पल्योपम से एक
समय अधिक ३० पल्योपम तक के आयुष्य वाली सातवें देवलोक के देवों
के, ३० से एक समयाधिक ४० पल्योपम के आयुष्य वाली नवमें देवलोक
के देवों के, ४० से समयाधिक ५० पल्योपम के आयुष्य वाली ग्यारहवें
देवलोक के देवों के परीभोग में आती हैं. और दूसरे देवलोक में अपरि-
ग्रही देवीयों के ४००००० विमान हैं, जिन में रहने वाली देवियों का जघन्य
एक पल्योपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट ५५ पल्योपम का आयुष्य है. जिन में
से एक पल्योपमाधिक आयुष्य वाली देवी ही दूसरे देवलोक के देवों के
परीभोग में आती है। पल्योपमाधिक से समयाधिक १५ पल्योपम के आयुष्य
वाली देवी चौथे देवलोक के देवों के, १५ पल्योपम से समयाधिक २५
पल्योपम के आयुष्य वाली छट्ठे देवलोक के देवों के, २५ से समयाधिक
३५ पल्योपम के आयु वाली आठवें देवलोक के देवों के, ३५ से सम-
याधिक ४५ पल्योपम के आयु वाली दशवें देवलोक के देवों के और
४५ पल्योपम से एक समयाधिक ५५ पल्योपम के आयुष्य वाली देवी
बारहवें देवलोक के देवों के परिभोग में आती है। पहिले दूसरे देवलोक
में देव मनुष्य जैसे काम भोग भोगते हैं. तीसरे चौथे देवलोक के देव देवी
के स्पर्श मात्र से तृप्त हो जाते हैं. पांचवें छट्ठे देवलोक के देव देवी के
विषय जनक शब्द सुन कर ही तृप्त हो जाते हैं. सातवें आठवें देवलोक
के देव देवी के अङ्गोपाङ्ग के निरीक्षण से ही तृप्त हो जाते हैं. यहां नव

के देव पहिले देवलोक की अपरिग्रही देवी को स्वस्थान लेजा सकते हैं. और नवमें दशवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक के देव स्वस्थान रहे भोग की इच्छा करते हैं. तब प्रथम दूसरे देवलोक में रही हुई देवी उन के भोग में आवे जैसी देवी का मन उनकी तरफ आकर्षित होता है वे देव अवधीज्ञान से इन के विकारिक मन का अवलोकन कर ही तृप्त * हो जाते हैं. बारहवें देवलोक के ऊपर के देवों को भोग की इच्छा मात्र भी नहीं होती है.

☞ जैसे यहां राजेश्वर के—उमराव होते हैं तैसे ६४ ही इन्द्रों के सामानिक देव होते हैं, पुरोहित के समान प्रत्येक इन्द्र के ३३ त्रयात्रिंशक देव होते हैं, अंग रक्षक (विश्वासीक सुभटों के समान) इन्द्रों के आत्म रक्षक देव होते हैं. सलाहकार (जुरी) मंत्री के समान अभ्यन्तर परिषद के देव होते हैं. वे इन्द्र बुलाते हैं तब ही आते हैं. कामदारों के समान श्रेष्ठ काम करने वाले मध्यम परिषद के देव होते हैं. वे बुलाने से भी और विना बुलाये भी आते हैं. किंकर समान सब कार्य करने वाले बाह्य—बाहिर की परिषद के देव विना बुलाये आते हैं और अपने २ कार्य में तत्पर रहते हैं. द्वारपाल के समान चार लोकपाल देव होते हैं. सैना के समान सातों आनिका के देव होते हैं. वे अपने २ पद प्रमाने अश्व गजादिक का रूप बना कर यथा उचित रीति इन्द्र के काम में आते हैं. गन्धर्वों की अनिका के देव मधुर गान तान करते हैं. नाटक आनिका के देव मनोरम्य ३२ प्रकार आदि नृत्य करते हैं. अभियोगिक देव इन्द्र के आदेश से कार्य करने में तत्पर रहते हैं. और प्रकीर्ण देव विमानों के रहने वाले होते हैं. सब इन्द्रों का उत्कृष्ट आयुष्य होता है. इस प्रकार देवता पूर्वोपार्जित पुण्य भोगते सुख से कालातिक्रमण करते हैं.

* जैसे नागर वेल के पान हजारों कोस दूर जाने पर भी वहां उसकी वेल को कुछ नुकसान पहुंचने से वहां पान खराब हो जाते हैं। तैसे ही बारहवें देवलोक के देव दूर रहते हुये भी दूसरे देवलोक की देवी के साथ मानसिक भोग विचार मात्र (By Thought Power) से कर सकते हैं।

जिस प्रकार मनुष्य जाति में चाण्डालादि नीच जाति के मनुष्य होते हैं तैसे ही सर्व देवों के दुर्गन्धनीय, कुरूप, अशुभ, वैक्रय कर्ता मिथ्यात्व-द्रष्टी, अज्ञानी तीन प्रकार के किलविषी देव होते हैं—१ भुवनपति देव से पहिले दूसरे देवलोक तक तीन पल्योपम के आयुष्य वाले देव हैं जिन्हें 'तीन पल्या' कहते हैं. २ चौथे देवलोक तक तीन सागरोपम के आयुष्य वाले देव हैं जिन्हें 'तीन सागरया' कहते हैं और ३ छट्ठे देवलोक तक जो ऐसे देव १३ सागरोपम के आयुष्य वाले हैं उन्हें 'तेरह सागर्या' कहते हैं. देव गुरु धर्म की निन्दा करने वाला, तप संयम की चोरी करने वाला मरकर किल्विषी देव होता है.

संख्यात योजन के देवस्थान में संख्याती और असंख्यात योजन के देवस्थान में असंख्याती देवों के उत्पन्न होने की उत्पात शैय्या हैं, उन पर देवदुष (वस्त्र) ढका हुआ रहता है. जिसमें धर्मात्मा और पुण्यात्मा जीव उत्पन्न होता है तब वह शैय्या आगके अंगारे पर डाली गेंहू की रोटी जैसी फूलती है तब पास रहने वाले देवोंके उस विमान में घंटा नाद करने से उसके मातहद सब विमानों में घंटा नाद होता है जिससे देव देवियां उत्पात शैय्या के पास एकत्र हो जय २ ध्वनी गुंजाते हैं अन्तर मुहूर्त में वह देव आहारादि पांचों पर्याय से पर्याप्त हो तरुण वय वाले के जैसे शरीर को धारन कर देवदुष वस्त्र से शरीर आच्छादन कर बैठा होता है. तब निकट रहे देव प्रश्न करते हैं—आप ने क्या करणी कि जिससे हमारे नाथ हुए ? तब वह देव योनी के स्वभाव से प्राप्त हुये अवधी ज्ञान से अपने पूर्व जन्मावलोकन कर यहां के स्वजन मित्रों को सूचित करने को तैयार होता है तब वे देव कहते हैं कि—वहां जा कर आप यहां की क्या बात कहोगे. जरा मुहूर्त मात्र नाटक तो देख लीजिये । तब नृत्यकार अनीका के देव दांही भुजा से १०८ कुमर और बाई भुजा से १०८ कुमारिका निकाल ३२ प्रकार का नृत्य करते हैं और गन्धर्व की अनिका के देव ४९ जाति के

वादिन्त्र के साथ ६ राग ३० रागिनीयों का मधुर स्वर से अलापन करते हैं. उस में यहां के २००० वर्ष पूर्ण हो जाते हैं. वह देव वहां के सुखमें लुब्ध हो पूर्वोपार्जित पुण्य फल के भोग भोगते हैं.

ग्यारहवें बारहवें देवलोक के हद से १ रज्जु ऊपर ८ रज्जु घनाकार जगह में गागर बेवडे के आकार ऊपराऊपरी आकाश के आधार 'नवग्रीयवेक देवलोक है. इन की तीन त्रिक में ९ प्रतर हैं—पहिली त्रिक में १ भद्र, २ सुभद्र, ३ सुजाय. इन तीनों में १११ विमान हैं. दूसरी त्रिक में ४ सुमानस ५ सुदर्शन, ६ प्रियदर्शन. इन तीनों में १०७ विमान हैं. तीसरी त्रिक में ७ अमोह ८ सुप्रतिभद्र और यशोधर इन तीनों में १०० विमान हैं. यह सब विमान १००० योजन के ऊंचे और २२०० योजन की अंगनाई वाले हैं. यहा के देवों का दो हाथ का देहमान है और आयुष्य पहिली में जघन्य २२ सागरोपम उत्कृष्ट २३ सागरोपम दूसरी में जघन्य २३ उत्कृष्ट २४ सागरोपम तीसरी में जघन्य २४ उत्कृष्ट २५ सागरोपम, चौथी में जघन्य २५ उत्कृष्ट २६ सागरोपम, पांचवीं में जघन्य २६ उत्कृष्ट २७ सागरोपम, छट्ठी में जघन्य २७ उत्कृष्ट २८ सागरोपम, सातवीं में जघन्य २८ उत्कृष्ट २९ सागरोपम, आठवीं में जघन्य २९ उत्कृष्ट ३० सागरोपम और नवमी में जघन्य ३० उत्कृष्ट ३१ सागरोपम का आयुष्य है।

नवग्रीयवेक के हद से १ रज्जु ऊपर ६॥ रज्जु घनाकार विस्तार में चारों दिशा में चार ११०० योजन के ऊंचे और २१०० योजन की अंगनाई असंख्यात योजन के लंबे चौडे वाले और मध्य में १०००० योजन का लंबा चौडा गोल यों पांच विमान हैं यथा—१ पूर्व में विजय, २ दक्षिण में वैजयन्त, ३ पश्चिम में जयन्त, ४ उत्तर में अपराजित और ५ मध्य में सर्वार्थसिद्ध. पांचों विमान वासी देवों का एक हाथ का देहमान है. और चार विमानों के देवों का जघन्य ३१ सागरोपम का उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का आयुष्य है और सर्वार्थसिद्ध विमान वासी देव का जघन्योत्कृष्ट ३३ सागरोपम

का आयुष्य है सब विमानों में श्रेष्ठ यह पांचों विमान होने से इन्हें अनुत्तर विमान कहते हैं. सर्वार्थ सिद्ध के मध्य छत्त में एक चन्द्रवा २५६ मोतीयों का है जिस के मध्य का एक मोती ६४ मन का है, उस के चारों तरफ ४ मोती बत्तीस २ मन के हैं, जिन के पास ८ मोती सोलह २ मन के हैं, जिन के पास १६ मोती आठ २ मन के हैं, जिन के पास ३२ मोती चार २ मन के हैं, और जिन के पास ६४ मोती दो दो मन के हैं और जिन के पास १२८ मोती एक एक मन के हैं. यह मोती हवा से परस्पर टकराते हैं तब उन में से ६ राग ३० रागिनियों निकलती हैं जैसे मध्याह्न का सूर्य सब के मस्तक पर दीखता है तैसे वह चन्द्रवा भी सर्वार्थसिद्ध निवासी सब देवताओं के सिर पर दीखता है. इन पांचों विमानों में शुद्ध संयम के पालने वाले चौदह पूर्व के पाठी साधु ही उत्पन्न होते हैं वे वहां सदैव ज्ञान ध्यान में निमग्न रहते हैं. जब उन को किसी प्रकार का संशय उत्पन्न होता है तब वे शैय्या के नीचे उतर कर यहां पर जो हों उन तीर्थंकर भगवान को नमस्कार कर प्रश्न पूंछते हैं भगवान प्रश्नोत्तर का मनोमय पुद्गलों में परिणमाते हैं वे उस अवधीज्ञान से ग्रहण कर समाधान को प्राप्त होते हैं. पांचो अनुत्तर विमान निवासी एकान्त सम्यक् द्रष्टी हैं चार अनुत्तर विमान वाले संख्यात भव कर के और सर्वार्थसिद्ध वाले एक ही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं. यह सर्वाधिक सुख भुक्ता हैं.

नवग्रीयवेक और पांच अनुत्तर विमान में सामानीक आत्म रक्षक वगैरा छोटे बडे का भेद नहीं. सब देवता एक समान से हैं इसलिये 'अहमेन्द्र कहलाते हैं' यहां फक्त साधुही आयु पूर्ण कर उत्पन्न होते हैं. जो सदैव ज्ञान ध्यान में निमग्न रहते हैं ।

उक्त १२ देवलोक ९ नवग्रीयवेक ५ अनुत्तर विमान यों २६ ही स्वर्गों के सब ६२ प्रतर और ८४९७०२३ विमान रत्नमय अनेक स्थंभ परिमण्डित अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित अनेक खूंटीयों और लीलायुत

पुतलियों से शोभित सूर्य के समान झगझगायमान सुगन्ध से मघ मघायमान हो रहे हैं. प्रत्येक विमानों के चारों तरफ बगीचे हैं, जिनमें रत्नों की बावडी रत्नमय निर्मल जल और कमलों से मनोहर हैं. रत्नोंके सुन्दर वृक्ष, वल्ली, गुच्छ, गुल्म, तृण वायु से प्रचलित होते हैं. परस्पर टकराने से ६ राग ३० रागियों से गुंजाते हैं. वहां सोने रूपे की रेत बिछी है तरह २ के आसन पडे हैं. अति सुन्दर सदैव नव योवन से ललित दिव्य तेज क्रान्ती के धारक समुचतुरस्र संस्थान से स्थित शरीर के धारक अत्युत्तम मणिरत्नों के वस्त्र भूषणों से अलंकृत बने हुये देव देवी इच्छित क्रीडा करते हुये, इच्छित भोग भोगते हुये. पूर्वोपार्जित पुण्य फल अनुभवते विचर रहेहैं.

जिस देव का जितने सागरोपम का आयुष्य है वे देव उतनेही पक्ष में श्वासोश्वास लेते हैं और उतने ही हजार वर्षों में उन्हें आहार की इच्छा होती है जैसे सर्वार्थ सिद्ध विमान वासी देवों का ३३ सागरोपम का आयुष्य है तो वे ३३ पक्ष (१६॥ महीनों) में श्वासोश्वास लेते हैं और ३३३३ हजार वर्ष में आहार गृहण करते हैं. देवताओं का कमल आहार नहीं किन्तु रोम आहार है अर्थात जब आहार की इच्छा होती है तब रत्नों के शुभ पुद्गलों को रोम २ से खेंच कर तृप्त हो जाते हैं ।

उक्त सर्वार्थ सिद्ध महाविमान से २१ योजन ऊपर ११ रज्जू * घना-

* घनाकार ३४३ रज्जु का हिसाब ।

निगोद से सातवीं नर्क तक घनाकार रज्जू	४९	तीसरा चोथा देव लोक ,, ,,	१९॥
सातवीं नर्क से छट्ठी नर्क तक ,, ,,	४०	पांचवां छट्टा देवलोक घनाकार रज्जु	३७॥
छट्ठी नर्क से पांचवीं ,, ,, ,,	३४	सातवां आठवां देवलोक ,, ,,	१४॥
पांचवीं नर्क से चौथी ,, ,, ,,	२८	नववां दशवां ,, ,, ,,	१२॥
चौथी ,, तीसरी ,, ,, ,,	२२	इग्यारहवां बारहवां ,, ,,	१०॥
तीसरी ,, दूसरी ,, ,, ,,	१६	नवग्री वेक ,, ,, ,,	८॥
दूसरी ,, पहिली ,, ,, ,,	१०	पांच अनुत्तर विमान ,, ,,	६॥
पहिली ,, तिरलोक तक ,, ,,	१०	सिद्ध क्षेत्र ,, ,,	११
पहला दूसरा देवलोक ,, ,,	१९॥	सर्व लोक के घनाकार रज्जु	३४३

कार जितनी जगह में बाकी सब लोक रहा है। सर्वार्थसिद्ध से १२ योजन ऊपर ४५००००० योजन की लम्बी चौडी गोल ८ योजन की मध्य में जाडी और चारों तरफ से क्रमसे घटती २ किनारे पर मक्खी के पंख से भी अधिक पतली १४२३०२४९ योजन की परधी (घिराव) वाली अर्जुन (श्वेत) सुवर्ण मय छत्र तथा तेल पुरीत दीपक के संस्थान संसस्थित सिद्ध सिला' है, जिसके १२ नाम हैं, यथा– 'इसी तीवा' (छोटी) २ 'इसी पभारे तिवा' (बहुत छोटी) ३ 'तणु तिवा' (पतली) ४ 'तणु पभारे तिवा' (बहुत पतली) ५ 'सिद्धी तिवा' (सिद्ध स्थान) ६ 'सिद्धालय तिवा' (सिद्धी का घर) ७ 'मुत्ति तिवा' (मुक्त स्थान) ८ 'मुत्तालया तिवा' (मोक्षघर) ९ 'लोयग्गो तिवा' (लोकाग्रमें रही) १० 'लोयगा दुसिया तिवा' (जिसका प्राप्त होना कठिन) ११ 'लोयगा बुझमान तिवा' (शान्ती दाता) और १२ सव्व पाण भूय जीवे सत्ते सुहा वहा तिव' (सब प्राणी भूत जीव सत्व को सुखदाता) सिद्ध सिला के १ योजन ऊपर जिसके ऊपर के कोस के छट्ठे भाग में सीधे मनुष्य लोक के ऊपर ४५००००० योजन लम्बे चौडे और ३३३ धनुष्य ३२ अंगुल जितने ऊंचे स्थान में अनन्त सिद्ध भगवन्त रहे हैं.

इति लोका लोक का संक्षिप्त वर्णन समाप्त हुआ ।

"सिद्ध भगवान का वर्णन ।"

उक्त सिद्ध क्षेत्र में १५ प्रकार के सिद्ध हुए हैं, यथा–१ तीर्थंकर की पदवी भोग कर सिद्ध हुए सो 'तीर्थंकर सिद्धा' २ सामान्य केवलज्ञानी सिद्ध हुए सो 'अतीर्थंकर सिद्ध'. ३ साधु साध्वी श्रावक श्राविका सिद्ध हुए सो 'तीर्थ सिद्ध'. ४ तीर्थों का विच्छेद * हुए बाद सिद्ध हुए सो 'अतीर्थ सिद्ध' ५ जाति स्मरणादि ज्ञान से पूर्व भवान्तर के ज्ञाता बन गुरू विना स्वतः दीक्षा धारण कर सिद्ध हुए सो 'स्वयं बुद्ध सिद्ध' ६ वृक्ष,

* नवमें सुविधिनाथ जी से सतरवें कुंथुनाथ जी तक उनके मोक्ष गये बाद तीर्थ का विच्छेद हुआ। उस वक्त सिद्ध हुवे उन सिद्ध होने वाला का एक समय आश्रित है।

वृषभ, मशान, बद्दल, वियोग, रोगादि को देख अनित्यादि भावना से प्रेरित हो स्वयमेव दीक्षा ले सिद्ध हुए सो 'प्रत्येक बुद्ध सिद्ध' ७ आचार्यादि के प्रतिबोध से दीक्षा ले सिद्ध हुए सो 'बुद्ध बोधित सिद्ध' ८ वेद विकार का क्षय कर फक्त लिंग (चिन्ह) स्त्री के अवयव रूप शरीर से सिद्ध हुए सो 'स्त्री लिंग सिद्ध' ९ ऐसे ही पुरुष लिंग से सिद्ध हुए सो 'पुरुष लिंग सिद्ध' १० ऐसे ही नपुंसक लिंग से सिद्ध हुए सो 'नपुंसक लिंग सिद्ध' ११ रजो हरण मुख वस्त्रिका आदि साधु का लिंग धारण कर सिद्ध हुए सो 'स्वलिंग सिद्ध' १२ किसी अन्य लिंगी को दुष्कर तपाश्चरणादि से विभंग ज्ञान की प्राप्ति होवे जिस से जैनानुसाशन का अवलोकन कर अनुरागी बनने से अज्ञान से फिर अवधज्ञानी बन विशुद्ध परिणाम वृद्धि पाते परम अवधी ज्ञानी वन केवलज्ञान प्राप्त करले और आयुष्य स्वल्प होने से लिंग विना बदले ही सिद्ध हुए सो 'अन्य लिंग-सिद्ध' १३ गृहस्थ लिंग में धर्माचरण करते विशुद्ध परिणामों की वृद्धी होने से केवल ज्ञान प्राप्त करले और स्वल्प आयु रहने मे लिंग विना वदले ही सिद्ध होवे सो 'गृह लिंग सिद्ध' १४ एक समय में एक सिद्ध होवे सो एक सिद्ध और १५ एक समय में दो आदिक १०८ पर्यन्त सिद्ध होवे सो अनेक सिद्ध.

और १४ प्रकार से सिद्ध होते हैं:—१ तीर्थ की प्रवृत्ति में एक समय में १०८ सिद्ध होवे. २ तीर्थ का विच्छेद हुए एक समय में १० सिद्ध होवे ३ एक समय में तीर्थकर २० सिद्ध होवें. ४ सामान्य केवली १०८ सिद्ध होवे. ५ स्वयं बुद्ध १०८ सिद्ध होवे. ६ प्रत्येक बुद्ध ६ सिद्ध होवें. ७ बुद्ध बोधित १०८ सिद्ध होवें ८ स्वलिंग सी १०८ सिद्ध होवें. ९ अन्य लिंग १० सिद्ध होवें. १० गृह लिंग ४ सिद्ध होवें. ११ स्त्री लिंग २० सिद्ध होवें १२ पुरुषलिंग १०८ सिद्ध होवे. १३ नपुंसक लिंग एक समय में १० सिद्ध होवें. और १४ सब एकत्र मिल २० समय में १०८ सिद्ध होवें.

पूर्व भव आश्रित—पहिली दूसरी तीसरी नर्क के निकले एक समय में १० सिद्ध होवें. चौथी नर्क के निकले ४ सिद्ध होवे. पृथ्वी पानी के निकले ४ सिद्ध होवे. वनस्पति के निकले ६ सिद्ध होवे, पंचेन्द्रिय गर्भेज तिर्यंच तिर्यंचनी के तथा मनुष्य मर के मनुष्य हुए १० सिद्ध होवे. मनुष्यनी के आये २० सिद्ध होवे. भुवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी देवता के आये १० सिद्ध होवे. भुवनपति वाणव्यन्तर की देवी के आये ५ सिद्ध होवे ज्योतिषी देवों के आये २० सिद्ध होवे. विमानिक देव के आये १०८ सिद्ध होवे और विमानिक देवी के आये २० सिद्ध होवें.

क्षेत्र आश्रित—ऊंच लोक में ४ सिद्ध होवें. नीचे लोक में २० सिद्ध होवें. तिरछे लोक में १०८ सिद्ध होवें. समुद्र× में २, नदी प्रमुख सरोवर में ३, प्रत्येक विजय में अलग अलग २० (तो भी १०८ से ज्यादा एक समय में सिद्ध नहीं होवें) मेरू पर्वत पर भद्रशाल वन, नन्दनवन, सोमानस वन में ४, पडंगवन में २, अकर्म भूमी के क्षेत्र में १०, कर्मभूमि के क्षेत्र में १०८, पहिले दूसरे पांचवे छट्ठे आरे में, १० तीसरे चौथे आरे में एक समय में १०८ सिद्ध होवे.

अवगहना आश्रित—जघन्य दो हाथ की अवगाहना वाले एक समय में ४ सिद्ध होवे. मध्यम अवगाहना वाले १०८ और उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य वाले एक समय में २ सिद्ध होवे.

सिद्ध होने की रीति—मध्य लोक अढाई द्वीप के अन्दर रहे १५ कर्म भूमी के क्षेत्रों में उत्पन्न हुए अष्ट ही कर्मों का जिन्हों ने क्षय किया है वे औदारिक तेजस कार्मन शरीर का सर्वथा त्याग कर—१ जैसे एरंड का फल फटने से अन्दर से बीज उछलता है तैसे शरीर विमुक्त बनने से, जैसे पानी के अन्दर पत्थर से बंधा तुम्बा बन्धन छूटने से जलाग्र में आ

× समुद्र नदी अकर्म भूमि के क्षेत्र पर्वतादि स्थान में कोई हरण कर डाले वे वहां केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जा सकते हैं।

ठहरता है तैसे कर्म वन्धन टूटने से प्राणी लोकाग्र की तरफ ऊर्द्धगति प्रातिपन्न वन जितने आत्मा के प्रदेश हैं उतने ही आकाश प्रदेशों की अवलम्बन कर विग्रह (वांकी) गति रहित एक समय मात्र में सिद्ध सिला पर-लोकाग्र में जा कर ठहरते हैं.

संसारावस्था में क्षीर नीर के समान कर्म प्रदेश (शरीर प्रदेश) और आत्म प्रदेश मिल रहे हैं, सिद्धावस्था प्राप्त होती है तब कर्म प्रदेश तो भिन्न हो जाते हैं और केवल आत्म प्रदेश ही रहते हैं वे घन रूप बन जाते हैं. तब यहां के शरीर से तीसरे भाग कम वहां सिद्धस्थान में आत्म प्रदेश का अबगाहना रह जाती है. जैसे—यहां से ५०० धनुष्य की अवगाहना वाले सिद्ध हुए उन की वहां उत्कृष्ट ३३३ धनुष्य ३२ अंगुल की अवगाहना है. जो सात हाथ के शरीर वाले सिद्ध हुए उन की वहां ४ हाथ १६ अंगुल की अवगाहना है और जो २ हाथ के वावन संस्थान वाले सिद्ध हुए उन की वहां १ हाथ ८ अंगुल की अवगाहना ही है.

सिद्ध के ८ गुन—१ पांच प्रकार के ज्ञानावर्णीय कर्म का क्षय होने से अनन्त केवल ज्ञान गुन प्रकट हुआ जिस से सब जानते हैं. २ नव प्रकार के दर्शनावर्णिय कर्म के क्षय होने से अनन्त केवल दर्शन गुन प्रकट हुआ जिससे सब देखने लगे. ३ दो प्रकार के वेदनीय कर्म के क्षय होने से निरावाध (व्याधि वेदना रहित) हुए. ४ दो प्रकार के मोहनीय कर्म के क्षय होने से अगुरू लघु (गुरुत्व लघुत्व रहित) हुए. ५ चार प्रकार के आयुष्य कर्म क्षय होने से अजरामर (वृद्धत्व मृत्यु रहित) हुए. ६ दो प्रकार नाम कर्म क्षय होने से अमूर्ती (निराकार) हुए. ७ दो प्रकार गोत्र कर्म क्षय होने से अखोड (अप लक्षण रहित) हुए. और ८ पांच प्रकार अन्तराय कर्म क्षय होने से अनन्त शक्तिवन्त (कमी रहित) हुए.

अन्य प्रकार के ८ गुन—१ अनेक वस्तु स्वभाव के लिये हो सो 'आस्तित्त्व' २ अनेक वस्तु स्वभाव सहित सो 'वस्तुत्त्व'. ३ अपनी मर्यादा

लिये होवे सो 'प्रमेयत्त्व' ५ न भारी और न हलकी हो सो 'अगुरु लघुत्त्व' ६ अपने गुन पर्याय लिये होवे सो 'द्रव्यत्त्व'. ७ अपनी सत्ता में रहे सो प्रदेश. और ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श इन २० पुद्गलों के गुण राहित और ज्ञान दर्शन चैतन्य के गुन सहित होवे सो अमूर्ति यह ८ गुन सिद्ध में हैं.

आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध पांचवें अध्याय के छट्ठे उद्देशे में सिद्ध स्वरूप का कथन निम्नोक्त प्रकार किया है—

गाथा—सव्वे सरा नियट्टंति ति, तक्क जत्थ न विज्जाति।
मती तथण गाहिता, ओए अप्पाति ठाणस्स खेयन्ने॥

सूत्र—से-ण दिहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, ण परिमंडले, ण आइतंसे, ण किण्हे, ण नीले, ण लोहिए, ण हालिद्दे, ण सुकले, ण सुहिगन्धे, ण दुहिगन्धे, ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे, ण कक्खडे, ण मउए, ण गुरुए, ण लघुए, ण सीए, ण उण्हे ण निद्धे, ण लुक्खे, ण काउ, ण रूहे, ण संग, ण इत्थी, ण पुरिसे, ण अन्नहा, परिण्णे, सण्णे उवमण विज्जाति। अरूविसत्ता, अपयस्स पयणत्थि सेणसद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे, इच्चे तावंति. त्तिबेमि॥

अर्थार्थ—सिद्ध की अवस्था वर्णन करने को कोई भी शब्द समर्थ नहीं है. उस तरफ किसी भी प्रकार की कल्पना नहीं की जा सकती है, मति, (बुद्धि) भी उधर नहीं पहुंच सकती है. केवल सम्पूर्ण ज्ञानमय ही आत्मा वहां है। मुक्ति स्थान में रहे जीव—दीर्घ (लम्बे) नहीं है, ह्रस्व (छोटे) नहीं है, न वे वृतुलाकार (गोल) हैं, न त्रिकोणाकार है, न चतुष्कोणाकार है, न वे मण्डलाकार (चूडी) जैसे हैं, तैसे ही न वे कृष्ण हरित, पीत, रक्त, श्वेत इन पांचों वर्णमय हैं, न वे सुगन्ध, दुर्गन्ध मय हैं, न वे तिक्त, कटु, कषायित, क्षार, मधुर इन पांच रस मय हैं. न वे गुरू (भारी) लघु (हलके) शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकने) रूक्ष कठिन सुकुमाल इन ८ स्पर्शमय हैं. न वे स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीन वेदमय हैं.

इस लिये मुक्ति स्थित जीव के लिये किसी भी प्रकार की उपमा ही नहीं है. चूं कि वे अरूपी और अवस्था विशेष रहित हैं. इस लिये उन का वर्णन करने की किसी भी शब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्श में शक्ति ही नहीं है. इस प्रकार अनूप अकथ्य निरामय सत् चित् आनन्द रूप सिद्ध स्वरूप है। भक्ताम्बर स्तौत्रकार कहते हैं कि—

श्लोक—त्वामव्ययं विभु मचिन्त्यमसंख्यमाद्य, ब्रह्माण मीश्वर मनन्त मनङ्ग केतुम्।
योगीश्वर विदित योग मनेकमेकं, ज्ञानस्वरूप ममलं प्रवदन्ति सन्तः॥२४॥

अस्यार्थ—अहो प्रभो! आप स्थिरैक स्वभावी होने से अव्य हो, परमैश्वर्य युक्त होने से विभू हो, जिस की कल्पना न हो सके ऐसे अचिन्त्य हो, गुणों कर असंख्य हो, आदि रहित होने से अनाद्य हो, सब से बडे होने से ब्रह्म हो, सर्वैश्वर्य युक्त होने से ईश्वर हो, अन्त रहित होने से अनन्त हो, केतु ग्रह के समान कामदेव के नाश कर्ता होने से अनंग केतु हो, ज्ञान दर्शन, चारित्र, रूप, योग पथ के ज्ञाता होने से विदित योग हो, ज्ञान पर्याय कर अनेक वस्तु में व्याप्त होने से अनेक हो, सब का एक ही आत्म रूप होने से एक हो, अष्टादशादि दोष रूप मल रहित होने से अमल हो, इस प्रकार सन्त पुरुष आप का स्वरूप अन्य को कह कर समझाते हैं.

गाथा—चंदे सु निम्मल यरा, आइच्चे सु अहियं पयासयरा।
सागर वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धी मम दिसंतु॥

अहो चन्द्र के समान निर्मल सूर्य के समान सर्व प्रकाशिक, समुद्र के समान गम्भीर, सिद्ध भगवन्त! मुझे सिद्ध स्वरूप का दर्श दो।

ऐसे अनेकानेक शुद्ध गुणात्ममय सिद्ध भगवन्त को मेरा त्रिकाल त्रिकरण योग की शुद्धि से नमस्कार हो!

परम पूज्य श्री कहान जी ऋषि जी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी
श्री अमोलक ऋषिजी महाराज रचित जैन तत्त्व प्रकाश का
सिद्धस्तव नामक द्वितीय प्रकरण समाप्तम्॥

संजयाणं च भावओ *

भावार्थ—'यति' शब्द की 'यम' धातु है. जिसका अर्थ—'काबू में रखना' (*To Restrain*) ऐसा होता है, यति शब्द के 'सं' प्रत्यय लगाने से 'संयति' शब्द बनता है, जिसका अर्थ 'स्वयं आत्मान् जयति ति संयति' अर्थात् स्ववश कर अपनी आत्मा को जीते-पापाचर्ण से रोके, वह संयति क्योंकि—नर्कादि चतुर्गति में पराधीनता से अनन्त वक्त स्व-आत्मा वश में की है—१ नर्क के प्रत्येक भव में जघन्य १०००० वर्ष उत्कृष्ट ३३ सागरोपम पर्यन्त अनन्त-क्षुधा-तृषा-शीत-ताप-रोग-सोगमार-ताडादि दुःख सहते हैं २ तिर्यंच (पशुत्व) पने में पराधीनता से वनवास में तथा निर्दयी जनों के वश में पडे नर्क समान दुःख अनन्त सहते हैं मनुष्य पने दारिद्रावस्था में, रोगावस्था में, कारागृहवास में पराधीनपने नर्क सादृश्य दुःखानुभवते हैं, और ४ देवता के भव में भी अभियोगादि देवपने उत्पन्न हो नृत गानादि करते हैं. देव हो पशु का रूप धारण कर पशु के काम करते हैं, वज्र प्रहारादि कष्ट सहते हैं, किन्तु वे 'संयति' नहीं कहे जाते हैं, "लद्धे विपीठ कुव्वइ, से हु चाइत्ति वुच्चइ" इस दसवैकालिक के वचन प्रमाने जो प्राप्त काम भोग के पदार्थों को पीठ देते हैं—त्यागते हैं वेही 'संयति' कहे जाते हैं. ऐसे संयती ३ प्रकार के कहे हैं यथा—१ आचार्य जी, २ उपाध्याय जी और ३ साधुजी. आगे पृथक् ३ प्रकरणों द्वारा इन तीनों के गुणों का कथन किया जायगा ।

* शास्त्र प्ररूपक श्री तीर्थंकर भगवान उपदेश में सामान्य [illegible] आचार्यादि को प्रत्यक्ष में नमन नहीं करते होंगे तो सूत्र में 'भावओ' [illegible] भाव से नमन करते कहे हैं, तथा शास्त्र गुन्थन कर्ता गणधर से भी इस ही प्रकार अर्थ की योजना करते हैं ।

प्रकरण तीसरा—आचार्य.

" आचार " आचरने—आदरने योग्य वस्तु को कहते हैं, आदरने योग्य वस्तु वही होती है कि जिससे सुख की प्राप्ती हो, सुख प्राप्ति के कर्त्ता—पांच पदार्थ हैं—यथा १ ज्ञान २ दर्शन ३ चारित्र ४ तप और ५ वीर्य, इन पांचों आचार का जो सम्यक् प्रकार आचरण करते हैं वे आचार्य कहलाते हैं. आचार्य जी ३६ गुन के धारक होते हैं।

आचार्य के ३६ गुण।

गाथा—पंचिंदिय संवरणो, तह नवविह बंभचेर गुत्तिधरो।
चउविह कसाय मुक्को, इह अठारस्स गुणेहिं संजुत्तो॥
पंच महव्वय जुत्तो, पंच विहायार पालण समत्थो॥
पंच समीय ती गुत्तो, इह छत्तीस गुणेहिं गुरू मज्झं॥

अर्थ—५ महाव्रत, ५ * आचार, ५ समिति, ३ गुप्ती-सहित, ५ इन्द्रिय × वश करे, ९ वाड विशुद्ध ब्रह्मचर्य पाले और ४ कषाय को त्यागे, इन ३६ गुणों कर युक्त हों वे आचार्य होते हैं।

पंच महाव्रत।

१ "सव्वं पाणाइ वायाओ वेरमणं" अर्थात् प्राणीयों का बध (हिंसा) से सर्वथा निर्वृते प्राण के धारन करने वाले को प्राणी कहते हैं वे प्राण १० प्रकार के हैं, यथा—१ श्रोतेन्द्रिय (कान) वलप्रण, ‡ २ चक्षुरेन्द्रिय (आंख) वल प्राण, ३ घ्रणेन्द्रिय (नाक) वल प्राण, ४ रसेन्द्रिय (जिव्हा) वल प्राण

---

* पंचाचार का सविस्तार इस ही प्रकरण में आगे किया है। × इन्द्रिय जो अन्दर रह कर शब्दादि विषय को ग्रहण कर्ता प्रदेश है उसे कहते हैं। इसलिये ५ वां स्पर्शेन्द्रिय वल प्राण सो शीत उष्णादि वेदने वाला और ८ वां काया वल प्राण सो सत्यल में दीखता शरीर जानना। ‡ जिसके वल-आधार से जीव कार्य में प्रवृती कर सके उसे वल प्राण कहते हैं।

५ स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) बल प्राण, ६ मन (विचार) बल प्राण, ७ वचन (उच्चार) बल प्राण, ८ काया (शरीर) बल प्राण ९ श्वाशोच्छास बलप्राण और १० आयुष्य बलप्राण. इन १० प्राणों में से केवल स्पर्शेन्द्रिय (शरीर) धारन करने वाले मृतिका, पानी, अग्नि वायु और वनस्पति. इनमें ४ प्राण पाते हैं—१ स्पर्शेन्द्रिय, २ काया, ३ श्वासोच्छास और आयुष्य। काया और मुख वाले शंख सीपादि द्वी इन्द्रिय जीवों में ६ प्राण पाते हैं. चार पूर्वोक्त और ५ रसेन्द्रिय अर्थात् वचन बलप्राण। काया मुख और नाक वाले तेइन्द्रिय युका मत्कुणादि जीवों में ७ प्राण पाते हैं ६ पूर्वोक्त और ७वां घ्रणेन्द्रिय बलप्राण। काया मुख नाक और आंख वाले चौरेन्द्रिय जीवों में ८ प्राण पाते हैं. ७ पूर्वोक्त और ८वां चक्षुरेन्द्रिय बलप्राण। काया मुख नाक आंख और कान वाले असज्ञी * पचेन्द्रिय जीवों में ९ प्राण पाते हैं ८ पूर्वोक्त और ९वां श्रोतेन्द्रिय बलप्राण। काया मुख नाक आंख कान और मन वाले सज्ञी [] पंचेन्द्रि जीवों में १० प्राण पाते हैं. ९पूर्वोक्त और १०वां मन बल प्राण. इन सब प्राणी जीवों की हिंसा त्रिविध २ § त्यागे।

पहिले महाव्रत की ५ भावना— १ जमीन को बिना देखे बिना प्रमार्जन किये चले नहीं सो 'इरिया समही भावणा' २ जो धर्म करे उन्हें अच्छा जाने और जो पाप करे उन पर दया लावे कि विचारे पाप का बदला किस मुश्किल से भरेंगे. इस प्रकार शत्रु मित्र पर तथा धर्मी अधर्मी पर सम भाव रक्खे सो 'मण परि जाणइ भावणा' ३ हिंसक सदोष असत्य अयोग्य वचन नहीं बोले सो 'वत्ति परि जाणइ भावणा'. ४ भण्डोपकरण वस्त्र पात्रादि परमित और यत्नों से ग्रहण करे और रक्खे सो 'आयण

* जो माता पिता के संयोग बिना समूर्छिम उत्पन्न होते हैं उनके मन (समज-ज्ञान) नहीं सो असज्ञी। [] जिनके मन हो सो सज्ञी।

§ १ करे नहीं मन से, २ करावे नहीं मन से, ३ करता जाने नहीं मन से. यह ३ मन से कहे वैसे ही ३ वचन से और ३ काया से करना यों ९ हुवे। इसको त्रिविध त्रिविध भी कहते हैं और ९ कोटी भी कहते हैं।

भंड-निक्खेवणा समिए भावणा'. और ५ वस्त्र पात्र भोजन पानादि किसी भी वस्तु को दृष्टि से बिना देखे तथा रजोहरणादि से बिना प्रमार्जन किये किसी भी काम में नहीं ले, सदैव देख कर काम में ले सो 'आलोय पाण भाइ भावणा' *।

पहिले महाव्रत के ३६ भाङ्ग—४ प्राण से १० प्राण तक के धारन करने वाले सब जीवों को प्राणी कहते हैं किन्तु यहां प्राणों से ही जिनकी पहिचान हो ऐसे बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौरेन्द्रिय जीवों को प्राणी गिने हैं. भूत भविष्य वर्त्तमान काल में जो एकसा ही रहे ऐसे जीवों को भूत कहते हैं, किन्तु यहां भूत के समान वृद्धी पाने वाली तथा त्रिकाल में एक ही स्थान में रहने वाली वनस्पति को भूत गिना है. ३ जो कभी मरे नहीं छिदे-भिदे-गले-नहीं सदैव जीवित रहे ऐसे सब जीवों को जीव कहते हैं. किन्तु यहां व्यवहार में सब पांच इन्द्रिय धारक को जीव मानते हैं. धर्मशाला पिंजरापोल हॉस्पिटल वगैरा से स्वरक्षण करते हैं. इस लिये 'पंचेन्द्रिय' को ही 'जीव' गिना है. और ४ सब जगत में सत्व-आधार रूप जीव होने से सब जीवों में 'सत्व' है किन्तु यहा पृथवी आधार भूत, पानी जीवन भूत, अग्नि पाचनादि में उपयोगी और वायु श्वाशोच्छास में तथा भूत वादी चारवाकादि ∮ इनको तत्व कहने 'सत्व' गिने हैं, यों १ प्राण, २ भूत, ३ जीव और ४ सत्व. इन चारों की हिंसा ९ कोटी से नहीं करे. यों ९×४=३६ भङ्ग होते हैं. कितनेक—१ ‡ सूक्ष्म §२ बादर ३ त्रस और ४ स्था-

* कितनेक आहार वस्त्र पात्र स्थानक निर्दोष भोगवने की चौथी रासणा भावना, और ५ वीं निक्खेवणा भावना कहते हैं, किन्तु आचाराङ्ग सूत्र के २४ वें अध्याय में उक्त प्रकार ही कहा है।

∮ अस्ति मांस नखादि पृथ्वी से, २ मूत्र आदि पानी से, ३ जठराग्नि आदि अग्नि से, ४ संकोचन प्रसारनश्वाशोच्छास वायु से और क्रोध कामादी आकाश से यों पांच भूतों के मिलने से जीव निष्पन्न हुआ चारवाकादि कहते हैं।

‡ जो दृष्टी से नहीं दीखे, वज्र मय भींत में से भी निकल जावे और किसी के मारे मरे नहीं अपने आयु छुटे ही मरे सो सुक्ष्म यह ३४३ रज्जु लोक में ठसा ठस भरे हैं।

§ जो प्रत्यक्ष देखे जाते हैं दूसरे के मारने से मरे और लोक के देश विभाग में है सो बादर जीव। बेन्द्रियादि ४ त्रसजीव और पृथव्यादि ५ स्थावर जीव।

वर इन चारों की हिंसा को ९ कोटी से गुना करने से ३६ भांगे कहते हैं, और यह ३६ प्रकार से हिंसा–१ 'दियावा' दिन को. २ 'राउवा' रात्रि को, ३ 'राग ओवा' अकेला, ४ 'परिसाग ओवा' परिषद में, ५ 'सूतेवा' सोता हुआ, और ६ 'जागर माणे वा' जाग्रत दिशा में, नहीं करे। उक्त ३६ को इन ६ से गुना करे तब ३६×६=२१६ पहिले महाव्रत के तनावे होते हैं. कितनेक–१ पृथवी, २ पानी, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ वनस्पति, ६ बेन्द्रिय, ७ तेन्द्रिय, ८ चौरेन्द्रिय और ९ पंचेन्द्रिय. इन ९ को ९ कोटी से गुने करे ९×९=८१ भांगे और ८१ उक्त को दियावादि ६ बोलों से ६ गुना करे ८१×६=४८६ तनावे भी कहते हैं।

२ "सव्वं मुसाइ वायाओ वेरमणं" अर्थात्–क्रोध लोभ भय हांसादि के वश हो त्रिविध त्रिविध सर्वथा प्रकोर झूँठ बोले नहीं. दूसरे महाव्रत की ५ भावना–१ दूसरे की घात न हो, दुःख न हो, बुरा न लगे ऐसा निर्दोष मधुर सत्य तथ्य पथ्य वचन (With deliberation) पहिले विचार कर फिर बोले सो 'अणु वीइ भासी भावणा'. २ क्रोध के वश अवश्य झूठ बोला जाता है इस लिये क्रोधोदय में बोले नहीं क्षमा धारन करे सो 'कोहंपरि जाणइ' भावणा ३ लोभ के वश अवश्य झूठ बोला जाता है इसलिये लोभोदय में बोले नहीं, सन्तोष धारन करे, सो 'कोहं परि जाणइ भावणा' भय के वश अवश्य झूठ बोला जाता है इसलिये भयोदय में बोले नहीं, धैर्य धारन करे सो 'भयपरि जाणइ भावणा' और ५ हंसी के वश अवश्य झूठ बोला जाता है इसलिये हांसोदय में बोले नहीं मौन धारन करे सो 'हांसं परि जाणइ भावणा' ॥ क्रोध, २ लोभ, ३ भय और ४ हांस इन ४ को ९ कोटी से गुनने से ९×४=३६ भांगे और इन ३६ को दिया वादि ६ के साथ गुनने से ३६×६=२१६ तनावे दूसरे महाव्रत के होते हैं।

३'सव्वं अदिन्नं दाना ओ वेरमणं' ग्राम (छोटा) नगर (शहर) और जंगलमें १ 'अप्पंवा' अल्प थोडी वस्तु तथा थोडे मूल्य की वस्तु, २ 'बहुआ' बहुत वस्तु

वा बहुत मूल्य की ३ 'अणुवा' छोटी वस्तु, ४ 'थूलंवा' बडी वस्तु, ५ सचित्त मंतवा' मनुष्य पशु पक्षी धान्यादि सजीव वस्तु, और ६ अचित्त मतंवा' वस्त्र पात्र आहार स्थानादि निर्जीव वस्तु मालकादि के बिना दिये त्रिविध त्रिविध ग्रहण करे नहीं सर्वथा प्रकार से चोरी करे नहीं। तीसरे महाव्रत की ५ भावना १ निर्दोष स्थानक (मकान) मालक की या नोकरादि की आज्ञा से ग्रहण करे सो १ 'मिउग्गह जाती भावणा' २ गुरु आदि ज्येष्ठ (बडे) की आज्ञा बिना आहार वस्त्रादि भोगवे नहीं सो 'अणुण विह पाण भोयणे भोती' भावणा. ३ सदैव द्रव्य क्षेत्र काल की मर्यादा युक्त गृहस्थ की आज्ञा ग्रहण करे सो 'उग्गहं सिउग्गाहिंसति भावणा: ४ सचित्त-शिष्यादि, अचित्त तृणादि, मिश्र उपकरण युत शिष्यादि वारम्वार आज्ञा ले मर्यादा युत ग्रहण करे सो 'उग्गहं वा उग्ग हिंसा अभी खणं भावणा' और ५ एक स्थान (एकत्र हो) रहने वाले स्वधर्मीयों के वस्त्र पात्रादि उनकी आज्ञा से गृहण करे सो 'अणुवीइ मिचोग्गह जाती भावणा' तथा गुरू वृद्ध रोगी तपस्वी ज्ञानी और नवदीक्षित की वैय्यावच करे। उक्त १ अल्प, २ बहुत, ३ छोटी, ४ बडी, ५ सचित्त और ६ अचित्त इन ६ को ९ से गुनने से ९×६=५४ भंग तीसरे महाव्रत के होते हैं इन ५४ को दिया-वादि ६ गुना करने से ५४×६=३२४ तणावे होते हैं।

और भी अदत्त ४ प्रकार के कहे हैं—यथा—१ किसी वस्तु को या मकान को उसके मालिक की आज्ञा विना अंगीकार करे सो स्वामी अदत्त ? २ कोई भी जीव अपने को मारने की आज्ञा नहीं देता इसलिये जीव हिंसा करे सो जीव अदत्त ३ तीर्थंकर भगवान ने शास्त्र में साधु के लिंग का तथा आचारादि का कथन किया है उसे उल्लंघन कर विपरीत विपरीत भेष बनावे तथा आचार स्थापे सो 'तीर्थंकर अदत्त' और ४ गुरु आदिक जेष्टों की आज्ञा को भंग करे सो 'गुरु-अदत्त' इन चारों प्रकार की अदत्त का त्याग करे। *

---

* वनादि स्थान में अन्य आज्ञा देने वाले के अभाव से निर्भी वस्तु शक्रेन्द्र जी की आज्ञा लेकर भी ग्रहण कर सकते हैं।

४ 'सवं मेहुणाओ वेरमणं"? १ देवी २ मनुष्यनी और ३ तिर्यचनी के साथ साधु, देव मनुष्य और तिर्यच के साथ साध्वी, त्रिविध २ मैथुन सेवन नहीं करे। चौथे महाव्रत की पांच भावना—१ स्त्री के हाव भाव शृंगार की बारम्बार कथा नहीं करे सो 'णोणिगंथे अभिखणं २ इत्थीणं कह कह इत्तए भावणा २ स्त्री के गुप्त अंगोपाग बिकार दृष्टी से नहीं देखे सो 'णोणिग्गंथे इत्थीणं मणोहराइ इंदियाइ आलोएत्तए भिज्झाइत्तए भावणा'. ३ गृहस्थाश्रम में किये स्त्री के साथ काम भोगों का स्मरण करे नहीं सो 'णोणिग्गंथे इत्थीणं पुव्वकिलियाइ सुमरित्तए भावणा.' ४ मर्यादा (भूख) से अधिक कामोतेजक सरस आहार सदैव भोगवे नहीं सो रणातमत्त पाण भोयण भोइं भावणा.' और ५ जिस मकान में स्त्री (मनुष्यनी या देवांगना) पशुनी (गो घोडी आदि) पंडग (नपुंमक) रहते होवें वहां रहे नहीं सो 'णोणिग्गंथे इत्थीपसु पंडग संसताइ सयणासणाइ से वित्तए भावणा.' स्त्री पशुनी, नपुंसक इन तीन को ९ कोटी से गुनने से ९×३=२७ भांगे, और इन २७ को दियावादी ६ से गुनने से २७×६=१६२ तणावे चौथे महाव्रत के होते हैं. *

५ 'सव्वं परिग्गहाओ वेरमणं' १ अल्प, २ बहुत, ३ छोटा, ४ बडा, ५ सचित्त और ६ अचित्त परिग्रह का त्रिविध २ त्याग करे ×। पांचवें

* दशवैं कालिक सूत्र के छट्ठे अध्ययन १७ वीं गाथा में कहा है कि—

गाथा—मूल मेय महम्मस्स, महा दोस समुस्सयं।
तम्हा मेहुणसं सग्गां, निग्गंथा वज्जयंतिणं॥

अर्थ—मैथुन का सेवन महा अधर्म का मूल, ९ लक्ष सन्नी मनुष्य और असंख्यात असन्नी मनुष्य की घात रूप महा दोष का स्थान और इसके सेवन से पंच महाव्रत के भंग होने कारण जान निर्ग्रन्थ मैथुन की इच्छा मात्र उत्पन्न होवे ऐसे संसर्ग-परिचय का भी त्याग कर देते हैं।

× गाथा—जं पि वत्थ व पायं वा। कम्बलं पायपुञ्छणं।
तं पि संजम लज्जट्ठा। धारंति परिहरंतिय॥ २०॥
न सो परिग्गहो वुत्तो। नाय पुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गह वुत्तो। इइ वुत्तं महेसीणा॥ २१॥

महाव्रत की ५ भावना—१ शब्द, २ रूप, ३ गन्ध, ४ रस और ५ स्पर्श इन पांचों के मनोज्ञ सम्बन्ध प्राप्त होने से राग नहीं करे—खुशी नहीं होवे और अमनोज्ञ मिलने से द्वेष नहीं करे—नाराज नहीं होवे। उक्त अल्प बहु आदि छः ही को ९ कोटी से गुना करने से ९×६=५४ भांगे और इन ५४ को दियावादि ६ से गुना करने ५४×६=३२४ [] तनावे पंचवे महाव्रत के होते हैं।

पंचाचार।

१ 'ज्ञानाचार'—ज्ञान शब्द की धातु 'ज्ञ' है जिसका अर्थ होता है 'जानना' प्रत्येक इष्टितार्थ सिद्ध करने को प्रथमोपाय जानना होने से वह आचरणिय पदार्थ है. जिसके स्वयं आचरने वाले याने ज्ञान सम्पन्न आचार्य जी होते हैं. और ओरों को ज्ञानी बनाने का पर्यास करते हैं. तीर्थंकर प्रणित गणधरों रचित द्वादशांगादी शास्त्रों को निम्न ८ दोष रहित आप पढते हैं और ओरों को पढाते हैं।

गाथा—काले विणये बहुमाणे। उवहाणे तहय णिण्हवणे॥
वंजण अत्थ तदुभये। अठ विहो णाणमायारो॥

१ 'काले' * ३४ असज्झाई (अस्वाध्याय के कारण) दोषों को निवारन

अर्थ—श्री महावीर स्वामी ने कहा है कि संयम का पालण करने और लोगों से लज्जा की रक्षण करने जो वस्त्र पात्र कम्बल रजोहरणादि भंडोपकरण साधु रखते हैं वह परिग्रह रूप नहीं हैं किन्तु धर्मोपकरण कहे जाते हैं। और जो वस्त्रादि पर ममत्व भाव रखे तो वह परिग्रह कहा जाता है। उपाधी का तो कहना ही क्या किन्तु शरीर का ममत्व भी परिग्रह है।

[] जिस प्रकार तम्बू के तनावे की डोरी एक भी ढोली पड़ने से उसमें पानी टपकने लगता है उसी प्रकार उक्त महाव्रत का एक भी तनावा ढीला पड़ने से दोष लगाने से पाप रूप पानी का आगमन होने लगता है।

* ३४ असज्झाइ—१ 'उकापाय'—तारा टूटे तो एक मुहुर्त असज्झाइ, २ 'दिसादाह'—प्रात और सन्ध्या समय लाल रंग के वद्दरा रहे जहां तक असज्झाइ, ३ 'गज्जिया' गर्जे तो एक मुहूर्त असज्झाइ, ४ 'विज्जुय' बिजली चमके तो एक मुहूर्त, [आर्द्रानक्ष से ४ वांतो

कर यथोक्त काल में शास्त्र का पठन करे, २ 'विणए' जिन शासन का मूल विनय ही है, इसलिये ज्ञानी की आज्ञा में रहे, उनको आहार वस्त्र पात्र स्थान आदि की यथोचित साता उपजावे, वे ज्ञान का प्रकाश करें तब 'तहेत प्रमाणं' 'जी' इत्यादि ऊंच बचनों से आदर पूर्वक उनके वचनों को स्वीकार करे, ज्ञान के साहित्य पुस्तकादि को नीचे और अपवित्र स्थान में नहीं रक्खे, यों विनय पूर्वक ग्रहण किया हुआ ज्ञान सुप्राप्य और चिरस्थायी होता है, ३ 'बहुमान' गुरू आदि ज्ञान दाता का बहुत आदर करे और ३३ * अशातना वर्जन करे।

नक्षत्र पर्यन्त गर्जारव विद्युत की असज्झाइ नहीं गिनी जाती है] ५ 'निग्घाए'-कड़के तो ८ पहर की असज्झाइ. 'बालचन्द्र'-शुक्ल में १-२-३ इन तीन रात्री में चन्द्रमा रहे तहां तक असज्झाइ, ७ "जक्खाले' बद्दलों में मनुष्य पशु पिशाचादिके चिन्ह दीखे तहां तक असज्झाइ, ८ 'धुम्भीए' काले रंग की धूंवर पड़े तहां तक असज्झाइ, ९ 'महिये'-श्वेत रंग की धूंवर (मेगरवा) पड़े तहां तक असज्झाइ, १० 'रयघाए'-आकाश में धूल का गोटा चढा हुआ दीखे जहां तक असज्झाइ, ११ 'मांस' दृष्टी में आवे तहां तक असज्झाइ, १२ 'सोणित' रक्त दृष्टी में आवे तहां तक असज्झाइ, १३ 'अट्ठी' दृष्टी में आवे धहां तक असज्झाइ, १४ 'उच्चार' विष्टा दृष्टी में आवे वहां तक, १५ 'सुसाण'-स्मशान के चारों ओर १००-१०० हाथ, १६ 'रायमरण' राजा की मृत्यु बाद हडताल रहे वहां तक, १७ 'रायवुग्गह'-राजाओं का युद्ध होवे तहां तक, १८ 'चंदवरागे'-चन्द्र ग्रहण और १९ 'सूरवरागे' सूर्य ग्रहण दोनों सग्रास होवे तो १२ पहर कमी हो तो कम काल, २० 'उवस्सनो'-पंचेन्द्रिय का निर्जीव शरीर (कलेवर) के चारों ओर १००-१०० हाथ, २१ अश्विन शुक्ला पूर्णिमा, २२ कार्ति कृष्णा प्रतिपदा, २३ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, २४ मृगश्र कृष्णा प्रतिपदा, २५ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा, २६ वैशाख कृष्णा प्रतिपदा, २७ अषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा, २८ श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, २९ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा, ३० अश्विन कृष्णा प्रतिपदा, इन ८ दिन रात्रि में देवता का गमनागमन अधिक होता है और देवता की भाषा अर्धमागधी है अशुद्ध उच्चार होने से कदाचित विघ्न प्राप्त हो जाय इसलिये शास्त्र नहीं पढ़ना। ३१ प्रातःकाल, ३२ मध्यान्ह काल, ३३ सन्ध्या काल, और ३४ आधी रात्री इन चारों समय में भी देवता का गमनागमन होता है इसलिये शास्त्र नहीं पढ़ना। उक्त ३४ असज्झाइ में शास्त्र पठन करने से तीर्थंकर की आज्ञा भङ्ग का दोष लगता है तथा उन्मादादि मानसिक विकृती होने का संभव रहता है। इसलिये ३४ असज्झाइ वर्जन कर शास्त्र पठन करना।

* गुरु के गुण को आच्छादन करने वाली अशातना टाले १-२-३-गुरु आदि ज्येष्ठों

४ 'उवहाणे'—शास्त्र पठन के पहिले और पश्चात् अम्बिलादि तप रूप जो उपाधान किया जाता है उस विधी से शास्त्र का पठन करे, ५ 'णिण्हवणे'—अपने को विद्याभ्यास कराने वाले छोटे हों या अप्रसिद्ध होंवें तो उन का नाम छिपा कर बड़े को या प्रसिद्ध का नाम कहे नहीं. उन के गुण को छिपावे नहीं. ६ 'वंजणे'—शास्त्र के व्यंजन स्वर गाथा अक्षर पद अनुस्वार विसर्ग लिंगकालादि जान कर न्यूनाधिक विपरीत कहे नहीं, व्याकरण का ÷ ज्ञान होवे, ७ 'अत्थ'—शास्त्रार्थ को विपरीत करे

के-आगे पीछे बराबर बैठे नहीं, ४-५-६ गुरु आदि के आगे पीछे बराबर खड़ा रहे नहीं। ७-८-९ गुरुवादि के आगे पीछे बराबर चले नहीं, १० गुरु पहिले शुची करे नहीं, १२ गुरु पहिले इर्यावही प्रतिक्रमें नहीं १३ सूते शिष्य को गुरु बोलावे और जाग्रत हो तो तुर्त उठ कर उत्तर देवे, १४ बीता व्यतीकर सब गुरु को कहदे, १५ याचनाकर लाई वस्तु. पहिले गुरु को दिखावे, १६ पहिले गुरु को आमंत्रे (देवे) १७ गुरु को पूछ कर दूसरे को देवे, १८ अच्छी अच्छी वस्तु गुरु को देवे, १९ गुरू का वचन सुना अनसुना नहीं करे चुप नहीं रहे, २० आसन पर बैठा २ उत्तर नहीं देवे, २१ रे 'तूं' इत्यादि तुच्छ शब्दोंसे गुरुको नहीं बुलाये, २२ आप जी वगैरा ऊंच शब्द से गुरु को बोलावे, २३ गुरु की शिक्षा हित कर्ता माने और ग्रहण करे, २४ गुरु की आज्ञा से-रोगी तपस्वी वृद्ध नवदीक्षित की भक्ति करे, २५ गुरुकी भूल चूक किसी के आगे कहे नहीं, २६ गुरु की आज्ञा विना किसी के प्रश्न का उत्तर आप देवे नहीं। २७ गुरु की महिमा सुन खुशी होवे, २८ यह मेरी परिषदा और यह गुरु जी की परिषदा यों भेद करे नहीं, २९ गुरु की व्याख्यान बहुत बेर चलावे तो आप अन्तराय नहीं देवे, ३० जिस परिषद् में गुरुजी ने व्याख्यान दिया उस ही परिषद में उस ही व्याख्यान को आप विस्तार से कहे नहीं, ३१ गुरु के वस्त्रादि उपकरण को उनकी आज्ञा विना आप काम में लेवे नहीं। ३२ गुरु के वस्त्रादि को पैर लगावे नहीं। और ३३ गुरु से द्रव्य से आसन नीचा रखे भाव से नम्रता से रहे। गुरु का सदा भला चिन्तवे।

÷ आचाराङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के तीसरे अध्ययन में साधु को १६ प्रकार के वचन का ज्ञाता होना कहा है. यथा १--एक वचन--घट, पट, मनुष्य इत्यादि २ द्विवचन--घटौ, पटौ, मनुष्यौ. ३ बहु वचन--बहुत घटः पटः मनुष्यः ४ स्त्री वचन नदी, नगरी, ५. पुरुष वचन--देव, नर. ६ नपुंसक वचन--कमल मुख ७ अध्यात्म वचन--मन में हो सो मुख से बोला जावे. ८ उत्कर्ष वचन--गुणानुवाद. ९ अपकर्ष वचन अवर्ण वाद. १० उत्कर्ष अपकर्ष वचन--पहिले गुणानुवाद फिर अवर्णवाद जैसे शक्कर मिष्ट है किन्तु सरदी करता है. ११ अपकर्ष उत्कर्ष वचन--पहिले अवर्णवाद फिर गुणा

नहीं, छिपावे नहीं या मन कल्पित अर्थ करे नहीं, और ८ 'तदुभये'—मूल पाठ और अर्थ को विपरीत करे नहीं. सब शुद्ध यथा उचित पढे पढावे सुने सुनावे.

२ दर्शनाचार—पदार्थों के भाव हृदय में दरशें उसे दर्शन कहते हैं, यह दर्शन दो प्रकार का, यथा—१ सत्य पदार्थ का सत्य स्वरूप और असत्य का असत्य स्वरूप जो जैसा पदार्थ हो उस का वैसा ही भाव हृदय में दरशे सो 'सम्यग्दर्शन' और २ जैसे पीलिये के रोगी को श्वेत रंग का पदार्थ भी पीला दीखता है तैसे सत्य का असत्य, असत्य का सत्य दरशे सो 'मिथ्या दर्शन'. आचार्यजी के मिथ्या दर्शन का तो सर्वथा क्षय हुआ है और सम्यग्दर्शन के निम्न ८ दोष से आप दूर रहते हैं और दूसरों से छुडाते हैं।

गाथा—निसंकीयं निकंखीयं। निवितिगिच्छा अमुढ दिट्ठीयं॥
उवुवुह थिर करणे। वच्छलप्प भावणा अट्ठ॥

अर्थ—१ निसंकीयं'=अपनी अल्प बुद्धि से शास्त्र की कोई बात समझ में नहीं आवे तो उस में शङ्का नहीं करे, क्यों कि अनन्त ज्ञानी प्रणित समुद्र जैसे गहन वचन अपनी लोटे जैसी तुच्छ बुद्धी में किस प्रकार समावेंगे. जैसे अपन रत्न की कीमत से अभिज्ञ हो कर जौहरी के वचनों पर प्रतीत रख कर उस की कथित कीमत प्रमाण करते हैं. तैसे ही जिन वचन पर भी प्रतीत—भरोसा रखना कि वीतराग भगवान कभी भी न्यूनाधिक प्रकाश नहीं करते हैं, उन के अनन्त केवल ज्ञान में जैसे भाव भापे हैं तैसे ही उन्हों ने प्रकाशे हैं. ऐसा विश्वास रक्खे. २ निकंखीयं

नुवाद जैसे नीम कटुक है किन्तु आरोग्य है. १२ भूतकाल वचन—किया, दिया लिया १३ वर्तमान काल वचन—करता है, धरता है, लेता है, देता है. १४ भविष्य काल वचन-करूंगा, धरूंगा, लूंगा, दूंगा १५ प्रत्यक्ष वचन—यह है. और १६ परोक्षकाल वचन:—वह है. इन में से जहां जैसा बोलना हो वहा वैसा बोले।

अन्य मतावलम्बीयों के गान तान भोग विलासी आडम्बर देख कर उस मत को स्वीकारने की अभिलाषी नहीं करे तथा ऐसा भी नहीं कहे कि ऐसा अपने मत में होता तो अच्छा होता क्यों कि मिथ्या ढोंग से आत्म कल्यान नहीं होने का, उद्धार तो बाह्याभ्यन्तर त्याग और आत्म-दमन से ही होगा. ३ 'निवितिगिच्छा'—मुझे तप संयमादि धर्माचरण करते इतना दीर्घ-काल व्यतीत हो गया किन्तु अभी तक इस का कुछ फल द्रष्टी गत नहीं हुआ तो आगे क्या होने वाला है. न मालूम इस कष्ट का फल मुझे कुछ होगा कि नहीं ? इस प्रकार करणी के फल में संदेह कदापि नहीं लाना जैसे सुष्ट खेत में डाला हुआ बीज वृष्टी के योग से कालान्तर में फलित होता है तैसे ही आत्म रूप क्षेत्र में किया (करणी) रूप डाला हुआ बीज शुभ परिणाम रूप जल वृष्टी से कालान्तर में—यथा योग्य काल में परिपक्क हो अवश्य ही फलित होगा. किसी ने कहा है कि "निष्फल होवे स्त्री, वृक्ष भी निष्फल होय । करणी के फल जानना, कभी न निष्फल होय ॥" करणी वन्ध्या कदापि नहीं होती है. अवश्य फल प्राप्त होगा ही ऐसा निश्चल श्रद्धा रखना. ४ "अमुढ दिट्ठी"—जैसे मूर्ख जन खल गुड सुवर्ण पितल एकसा जानते हैं, तैसे ही सब मतान्तरों को एकसा नहीं मानना. जिनेन्द्र प्रणित दयामय* परम धर्म की तुलना कदापि कोई भी मत नहीं कर सकता है, सर्वोत्कृष्ट मत यही है । अहो भाग्य मेरे हैं कि मुझे इस की प्राप्ति हुई ऐसी द्रढ श्रद्धा रखना. ५ 'उववुह'—रजोहरण मुहपत्ती आदि उपकरण के धारक, श्रद्धा क्रिया और व्यवहार जिन का शुद्ध हो ऐसे अपने स्वधर्मी साधुओं को आहार वस्त्र पात्रादि जो अपने पास हो वह उन को देकर तथा ग्रहस्थ के यहां से याचना कर ला देकर गुणानुवाद व नमस्कारादि

---

* श्लोक—श्रुयता धर्म सर्वस्व, श्रुत्वा चैव धारयेत ।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत ॥

अर्थ—धर्म के सर्वस्व-सार भूत रहस्य को तुम श्रवण करो और धारन करो कि जो अपने को प्रतिकूल (बुरा) मालुम पड़ता हो वह दूसरे के साथ भी तुम मत करो ?

यथा उचित सेवा भक्ति कर सहाय देना ६ 'स्थिर करण' किसी धर्मात्मा का मन उपसर्ग प्राप्त होने से या अन्य मतावलम्बियों के संसर्ग से सत्य धर्म से विचलित हो गया हो तो उसे स्वयं उपदेश देकर या दूसरे विद्वानों की सत्संग करा कर, यथा उचित सहाय दे साता दे कर पुनः उस के परिणामों को धर्म में स्थिर कर दृढ श्रद्धावन्त करे. ७ 'वच्छल'—जैसे गो वत्स पर प्रीति रखती है तैसे अपने स्वधर्मीयों पर प्रीति रख कर रोगी गृहस्थ को औषधोपचार से, वृद्धों को, ज्ञानी को, बालक को, तपस्वी को आहार वस्त्र स्थानक का यथा उचित इच्छित वस्तु का सहारा दे, हस्त पाद पृष्टादि मर्दन कर वात्सल्यता करे. साता उत्पन्न कर धर्म में प्रेम की वृद्धी करें. और ८ 'प्रभावणा'—यद्यपि जैन धर्म तो अपने गुणों से स्वयं ही प्रभाविक है तथापि दुष्कर क्रिया वृताचरण अभिग्रह कवित्व शक्ति अवधान सद्बोधादि कर धर्म को विशेष प्रदीप्त करे इन दर्शन के दुर्गुणों का त्याग और सद्गुणों को स्वीकार आचार्यजी स्वयं करते हैं और अन्य से कराते हैं।

३ "चारित्राचार"—क्रोधादि चारों कषाय से या नर्कादि चारों गति से आत्मोद्धार कर मोक्ष गति को प्राप्त करावे सो 'चारित्राचार' इसके ८ दोषों को छोडकर गुनों को स्वीकार करे।

गाथा—पणिहाण जोग जुत्तो। पंच समि इहिं तिहिं गुत्तीहिं॥
एस चरित्तायारो। अट्ठविह होई नायव्वो॥

१ 'इर्या समिती'—यत्ना पूर्वक चले, इसके ४ प्रकार १ 'आलंबन' इर्या समिती वाले साधु को ज्ञान दर्शन चारित्र का ही अवलम्बन है। २ 'काल'—रात्रि को मर्गातिक्रमण करने से सूक्ष्म त्रस स्थावर जीवों की या रात्री में सदैव वर्षते हुए सूक्ष्म पानी की रक्षा नहीं हो सकती है इस लिये साधु सूर्य अस्त होने से पहिले मकान वृक्षादि वक्त पर जैसा आश्रय मिले वहां रह जावे। लघुशंकादि करने के लिये गमनागमन करने का

प्रसंग प्राप्त होतो वस्त्र से शरीर आच्छादन कर रजोहरण से भूमी का प्रमार्जन करता हुआ दिन को देखे हुए स्थान में कारन से निवृती पा तत्काल स्वस्थान में आजावे । २ 'मग्ग'—उन्मार्ग (उवट रास्ते) में तृण कचरा उदाई (दीमक) आदि के घर कीडे नगर और अस्पर्श्य भूमी में सचित्तता होने से तथा कंकर कंटकादि से शरीर को बाधा पहुंचे इसलिये उन्मार्ग में गमनागमन नहीं करे । ४ 'जयणा' यत्ना चार प्रकार की, द्रव्य से नीची दृष्टि रख चले, २ क्षेत्र से देह प्रमाने (१ धनुष्य) आगे देखता चले, (३) काल से—दिन को देखकर रात्रि को प्रमार्जन कर चले और (४) भाव—से रस्ते चलते अन्य कामों के करने से मन दूसरी ओर चला जाता है इससे यत्ना में हानि होती है इसलिये १० काम नहीं करे—(१) शब्द—वार्तोलाप राग रागिनी नहीं करे नहीं सुने (२) रूप—गृह श्रृंगार तमाशादि देखे नहीं, (३) गन्ध—किसी वस्तु को सूंघे नहीं, (४) रस—किसी वस्तु का भक्षण नहीं करे, (६) स्पर्श्य—कोमल कठिन स्थान में शीत उष्णादि प्रयोग में परिणाम स्थिर रखे, (६) वांचना—पठन करे नहीं, (७) पूंछना प्रश्नादि पूंछे नहीं (८) परिवर्तना—फेरना नहीं करे, (९) अनुप्रेक्षा—स्मरन करे नहीं, और (१०) धर्म कथा—उपदेश करे नहीं । २ भाषा समिति—यत्ना पूर्वक बोले, इसके ४ प्रकार १ द्रव्य से कर्कश कठोर, छेदक, भेदक हिंसक, पीडाकारी, सावद्य, मिश्र, क्रोध के, मान के, माया के लोभ के राग के द्वेष के नुहकथा (अप्रतीती सुनी देखी) और विकथा (स्त्री की, भोजन की, राजा की, देश की निरर्थक वार्ते) यह १६ प्रकार की भाषा बोले नहीं, २ क्षेत्र से-मार्गातिक्रमण करते (रास्ते चलते) वार्तोलाप करे नहीं. ३ काल से—पहर रात्रि गये बाद बुलन्द आवाज से बोले नहीं, क्यों कि किसी की निद्रा भङ्ग होने से उसे दुःख क्लेश हो या आरम्भ या कुकर्म में लगे, तथा विस्मरी आदि हिंसक जीव जीववान में प्रवृति करें. ४ भाव से देश काल उचित सत्य तथ्य पथ्य शुद्ध वचन बोले. ३ एषणा समिति

शैय्या (स्थानक) आहार बस्त्र पात्र निर्दोष ग्रहण करे, इस के ४ भेद १ द्रव्य से ४२ तथा ९६ दोष * रहित शैय्यादि भोगे क्षेत्र से—खान-

* ९६ दोष—१ 'आहाकम्म'—समुचय साधु के लिये बना कर दे वह आधा कर्मी, २ 'उद्देसियं'—एक साधु का उद्देश कर बना देवे वह उद्देशिक, ३ 'पुइकम्मं—गृहस्थ और साधु के निमित अलग २ बनाया किन्तु साधु के निमित बने आहार में से एक दाना मात्र भी गृहस्थ के निमित बने आहार में पड़ जाय तो वह भी साधु के काम में नहीं आवे। ४ 'मिसिज्जाए'—गृहस्थ और साधु के लिये भेला बनावें यह मिश्र। ५ 'ठवणा'—यह तो साधु को ही दूंगा, यों स्थापन कर रखे। 'पाहुडिया' कल साधु जी गौचरी आवेंगे तो कल ही मेहमानों को जिमाऊंगा। ऐसा कह दे वह प्राहुणा दोष। ७ 'पाउर'—दीपक मणी आदि से अन्धेरे में प्रकाश कर देवे। ८ 'कीयगड'—मोल ला कर देवे वह क्रत गई, ९ 'पामीचे'—उधार लेकर देवे, १० 'परियट्टे'—दूसरे के पास से अदल बदल देवे, ११ 'अभिहडे'—स्थानक में या रास्तेमें सन्मुख लाकर देवे, १२ 'भिन्न'—मीठी लाख चपड़ी आदि से घड़े सोसी आदि का मुंह बन्द किया हो उसे साधु के लिये खोल कर देवे, १३ 'मालोहड'—ऊपर से नीचे लाकर देवे, उसमें शुद्धा शुद्ध की मालुम नहीं पड़े, १४ 'अच्छीज्जे'—निर्बल के पास से सबल छीन कर देवे जिससे उसे अन्तराय लगे, १५ 'अणिसिट्ठे' मालक या भागीदार की आज्ञा बिना देवे। जिससे अप्रतीत क्लेश वृद्धी होवे, १६ 'अज्जोयरे'—साधु का आगम सुन रसोई बनाते आटा में आटा दाल में दाल इत्यादि अधिक मिला देवे, यह १६ दोष उद्गमन के सरागी भद्रिक भावी दान देने के उत्साही बने गृहस्थ लगा देते हैं, किन्तु साधु कर्म बन्धक हेतु जान कहे कि—अहो आयुष्यमन्त ? मुझे यह नहीं कल्पता है। ग्रहण नहीं करे। १७ 'धाइ' गहस्थके बालकोंको खिला रमा करलेवो वह धात्री कर्म इससे ब्रह्मचर्यमें शंकादि दोषउत्पन्न होवे १८ 'दूइ'—ग्रामन्तरमें या गृहान्तरके समाचार इधरउधर कहकर लेवे सो दुति कर्न, १९ 'निमंत्ते'—भूत भविष्य के हाल सुना कर स्वप्न सामुद्रिक व्यंजन (तिलमसादि का) फल बता कर लें वह निमन्तदोष, २० 'अजीव'—जाति सम्बन्ध मिला कर लेवे, २१ 'वणीमग'—भिक्षुक की जैसी दीनता करलेवे, २२ 'तिगिच्छ'—औषधोपचारादि बता कर लेवे, २३ 'कोह' क्रोध-झगड़े कर लेवें, २४ 'माणे' अभिमान कर लेवे, २५ 'माया'—दगल बाजी करके लेवे, २७ 'पुव्वपच्छा संतवं'—दान देने के पहिले या दान दिये बाद दातार के गुणानुवाद करे, २८ 'विद्या'—विद्याके प्रभावसे रूप बदल कर लेवे, २९ 'मंत' व्यन्तर सांप-बिच्छू आदि के मंत्र झाड़ा वशीकरण उच्चाटन स्थंभनादि मंत्र करके लेवे, ३० 'चुन्ने'—पात्रकादि चूर्ण करके तथा चूर्णादि करने की भोगवने की विधी बता कर लेवे. ३१ 'जोगे' तन्त्र विद्या इन्द्रजालादि का तमाशा बता कर लेवे, ३२ 'मूलकम्म' गर्भ पात स्थंभन गर्भ धारण प्रयोग बता कर लेवे, यह १७ से ३२ तक के १६ दोष उत्पात के रस के लोलुपी साधु लगाते हैं। [यह दोष नशीत सूत्र में कहे हैं] ३३ 'संकीये' आधा कर्मि आदि दोष की शका होने पर भी लेवे, ३४ ३४ 'मक्खिये' सचित्त पानी आदि से हाथ की रेख या बर्तन किंचिन्मात्र भी भरा हो उनसे लेवे. ३५ 'निक्खित्ते'—सचित पृथवी पानी अग्नि वनस्पति चींटी के नगरे आदि पर रखी वस्तु लेवे ३६ 'पेहीये'—उक्त सचित्त वस्तु के नीचे अचित्त वस्तु रखी हो वह लेवे, ३७ 'साहरीये'—उक्त सचित्त वस्तु के मध्य में रखी अचित्त वस्तु लेवे. ३८ 'दायगो'—अत्यन्त वृद्ध छोटा बच्चा, नपुंसक, बीमार, धुजती के दर्द वाला, उन्मत्त पागल स्त्री स्तनपान कराती माता,

पानादिक के पदार्थ दो कोस से आगे लेजाकर भोगे नहीं और ३ काल से–खान पानादि के पदार्थ प्रथम पहर में लाये हुये चौथे पहर में भोगे नहीं. और ४ भाव से–संयोजनादि पांच दोषों को नहीं लगाता हुआ आहार आदि भोगे। आहार वस्त्र पात्र मकान पर ममत्व धारण करे नहीं वक्त पर निर्दोष जैसा प्राप्त हो उससे ही सन्तोष मानें और सूत्रोक्त क्रिया

सात महीने को प्राप्त हुई गर्भवती स्त्री इत्यादि अयोगदातार के हाथ से लेवे ३९ 'मिश्र'–चने के होले, गेहूं उम्बो, जवारी पूंख बाजरी के हुरडे इत्यादि वस्तु लेवे, ४० 'अप्रणित'–तत्काल धोवन पानी, तत्काल की वांटी चटनी, (एक मुहूर्त पहले) पूरे जीव चवे नहीं वह लेवे, ४१ 'लित'–कितनेक स्थान गोवर में मिट्टी मिला कर लीपते हैं इसलिये सचित्त का संशय रहता है, पैर रपटन में पड़ जाय तथा अंगन विगड़ जाय पुनः आरंभ निष्पन्न होवे, इसलिये तुर्त के लिपे पर गमनागमन करे तो दोष, ४२ छंडुए'–न्हारकते २ ढालते २ लाकर देवें लेवें तो दोष यह १० एषणा के दोष गृहस्थ और साधु दोनों साथ लगावें,। ४३ 'संजोयण'–भिक्षा लेकर स्थानक में आये बाद दूध आया सक्कर लावो इस प्रकार स्वादके निमित के मिलावे, वह संयोजना दोष, ४४ 'प्रमाणे' प्रमाण से अधिक आहार लावे खावे सो प्रमाणाति क्रमण, ४५ 'इंगाल'–सुस्वादी आहार की प्रशंसा करे तब इंगाल (कोयले) जैसा संयम होवे, ४६ 'धुम्म'–बे स्वाद (खराब) आहारादि की निन्दा करे तब धमू जैसा संयम होवे। ४७ 'कारणे'–साधु १ क्षुधा वेदनी को उपशमाने, २ गुरु ज्ञानी रोगी तपस्वी वृद्ध बालक की वैय्यावच्च करने, ३ इर्या समिति का पालन करने आप की आरोग्यता के लिये, ४ संयम का निर्वाह करने, ५ प्राणियों की रक्षा करने प्रति लेखना क्रिया करने, और ६ धर्म ध्यान ध्याने स्वाध्यादि करने, इन ६ कारनों के लिये आहार करें। और १ रोगोत्पत्ती हुये, २ उपसर्ग उत्पन्न हुये, ३ ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहने, ४ जीव रक्षा करने; ५ तपस्या करने और ६ अनशन [संथारा] करने इन ६ कारन से आहार का त्याग कर छोड़ दें। बिना कारन आहार करे तो दोष। यह ५ मंडल के दोष आहार करते हुये लगावें। ४८ 'उवाड कमाड'–पूंजीये के द्वार खोला करले तो दोष; ४९ 'मंड पाहुडीये'–देव देवी को चढ़ाने किया आहार ले; ५० 'बलपाहुडीए' बल बाकुल उछालने के लिये किया आहार ले; ५१ 'अदिट्ठ' भीतान्तर पटान्तर में बिना देखाता लेवे; ५२ [यह दोष आवश्यक सूत्र में कहे] 'परिया'–पहिले सराब आहार आया उसे परिठा (न्हाख] कर अच्छा आहारादि लावे, ५३ 'दानट्ठा' ब्राह्मणादि को दान देने को बनाया हुआ लेवे; ५४ 'पुण्णट्ठा' मृत मनुष्य के बाद पुण्यार्थ बनाया लेवे; ५५ 'समणट्ठा' शाक्यादिश्रमण बाबा जोगी के लिये बनाया वह लेवे; ५६ 'वणीमगट्ठा' दानशाला [सदावर्त] का ले; ५७ 'नियाग' नित्य अर्थात् सदैव एक ही घर से लेवे; ५८ 'सेज्जान्तर' जिसकी आज्ञा लेकर मकान में उतरे उसके घर का लेवे; ५९ 'रायपिंड'–मांस; मदिरा, मक्खन; सहत, इत्यादि कामोतेजक विषय वृद्धक आहार औषधादि भोगवे, ६० 'किमिच्छ' कारण बिना मनोज्ञ सरस ताक २ मांग २ कर लावे खावे ६१ 'संघट्टे' [ही पानी अग्नि हरी आदि सचित्त का संघटा करे–धक्का लगा कर दे उसे लेवे; ६२ 'परएडी'–वेश्या भील चांडालादि निन्द्य–नीच कुल का आहारादि ले, ६४ 'मामगं' जिसने मना किया कि हमारे यहां मत आओ उसके घर का लेवे. ६५ 'पुव्वकम्मपच्छा कम्म'–गृहस्थ आहार दिये

कालेकाल समाचरे. ४ आदान भंड निक्षेपवणा समिति—यत्ना पूर्वक भण्ड उपकरणों को ग्रहण करे और स्थापित करे, ये भण्डोपकरण दो प्रकार के होते हैं, यथा—१ साधु के सदैव उपयोग में आवे जैसे रजोहरण मुख वस्त्रिकादिक इनको 'उग्गाहिक' कहते हैं और २ प्रयोजनसे काममें आवे पाटपाटलादि को 'उपग्रहिक' कहते हैं साधु को उपकरण रखने की आस्त्र

पहिले या पीछे सचित पानी से हस्त प्रक्षालन या आरंभ करने का दोष लगावे वहां से लेवे; ६६ 'अचित कुल' व्यभीचारिणी को—जांति बाहिर किया इत्यादि अप्रतीत कारी का लेवे; [यह १५ दोष दश वैकालिक सूत्र में कहे] ६८ 'सयाणपिण्ड'—समुदानी बहुत [१२] कुल की भिक्षा नहीं करे किन्तु स्वजाती की ही भिक्षा लेवे; ६६ 'परीवाडी' ज्ञाती आदि के भाजन में जीमने पंक्ति बैठी हो उसे उल्लंघन करके जाकर लेवे; [यह २ दोष उत्तराध्ययन सूत्र में कहे] ७२ 'पाहुण भत्ते'—मेहमानों के लिये बनाया आहार उनके भोगवे पहिले लेवे; ७१ 'मंस'—जलचर स्थलचर खेचरादि जीवों का मांस लेवे; ७२ 'संखडी' सर्व जाती का ग्रामादि को भोजन देने बनाया वहां जा कर लेवे, ७३ 'उल्लंघ—द्वार पर भिखारी खड़ा हो उसे उल्लंघन कर जा कर लेवे, ७४ 'सागारवयंगा' ६ गृहस्थ का काम करने का वचन देकर लेवे; [यह ५ दोष स्थानांग सूत्र में कहे हैं] ७३ 'कालाइकन्त'—सूर्योदय पहिले तथा सूर्य अस्त पीछे लेवे; ७७ 'आणाइ कन्त'—तीर्थंकी आज्ञाका उल्लंघन कर लेवे भोगवे जैसे प्रथम प्रहर का लिया चौथे पहर में भोगवे; ७७ 'मगाइ कन्त' मार्ग की मर्याद [दो कोस] उल्लंघकर भोगवे; ७८ 'आउप' जो आमंत्रण करे उस ही के घर जावे; ७६ 'कन्तार भत्त'—अटवी का उल्लंघन कर आयेके लिये बनाया वह लेवे; ८० 'दुभिक्खभत्त' दुष्काल पीड़ित लोगों के लिये बनाया वह लेवे; ८१ 'गीलाण भत्त'—रोगी तथा वृद्ध के लिये बनाया आहार उसके भोगने पहिले लेवे; ८२ 'वादलिया भत्त' अधिक वर्षाद में गरीबों को देने बनाया वह लेवे; ८३ 'रयदोस' बेचने को खुला रखा सचित रज से भरा हो वह लेवे; [यह ६ दोष आचारंग सूत्र में कहे ८४ 'रयतदास' जिसका वर्ण गन्ध रस स्पर्श बिगड़ कर पलट गया वह लेवे; ८५ 'सय० गही' गृहस्थ के घर में अपने हाथ से उठा कर ले लेवे। [गृहस्थ की आज्ञा से पानी लेने की मना नहीं है] ८६ 'दाहिच' घर बाहिर खड़े रख अन्दर से ला कर दे वह लेवे; ८७ 'मोरंच' दातार के गुणानुवाद गा कर लेवे; ८८ 'बालठा'—बालक के वास्ते बनाया वह उसके खाये पहिले लेवे; [यह ५ दोष प्रश्न व्याकरण में कहे हैं] ८६ 'गुव्विणिट्ठा'—गर्भवती के लिये बनाया वह उसके भोगवे पहिले लेवे; ६० 'किता' कोई देने वाला है क्या यों पुकार कर लेवे; ६१ 'सडविभत्तं'—अटवी पर्वतादि के नाके पर दानशाला हो वहां का लेवे; ६२ 'अतिथ्य भत्तं'—गृहस्थ भिक्षा कर लाया हो उसके पास से लेवे; ६३ 'पासत्थाभत्तं' आचार भ्रष्ट भेष मात्र से उपजीविका करता हो ऐसे साधु के पास लेवे; ६४ 'कगंदु भत्तं' अयोग्य दुर्गंछनीय बैठा वगैरा लेवे, ६५ 'जागारीर निस्सीया' गृहस्थ के सहाय से आहार पानी आदि प्राप्त करे; [यह ७ दोष नीशीथ सूत्र में कहे हैं] और ६६ परिवासिय' भिक्षकों को देने बहुत काल से रख कर रखा, भिक्षुक तो कहीं ले गये हो वह साधु को देवे वह लेवे तो दोष, (यह नीशीथ और वृहद् कल्प सूत्र में कहा है] इन ६६ दोषों रहित आहार वस्त्र पात्र शैय्या साधु को ग्रहण कर संयम तप का निर्वाह करना चाहिये।

में इस प्रकार आज्ञा है–१ काष्ट के २ तुम्बे के और मट्टी के यह ३ प्रकार के पात्र. जिससे किसी जीव की हिंसा नहीं हो, ऐसा ऊन के, अम्बाडी के, सन के रजोहरण भूमादि की प्रमार्जना करने को रखे आचारांग सूत्र में कहा है कि उबासी छींक और श्वासोश्वास से जीव हिंसा होती है इस लिये वस्त्र के आठ पड की मुहपत्ती डोरा लगा कर आठों निश (पहर) मुंह पर बान्धे रहे. ऊन, सूत, रेशम के फक्त श्वेत रंग के प्रमानों पेत वस्त्र को ३ चद्दर (ओढने को) एक चुल्ल पट्ट (पहिनने को) एक विछौना रक्खे (गुच्छ) रजोहरण जैसा ही छोटा एक गुच्छक वस्त्र पात्र और शरीर पर रहे जीवों का प्रमार्जन करने को रक्खे, मोरी आदि में लघुनीति करने से दुर्गन्धि उत्पन्न हो रोगोत्पत्ती होती है तथा चेपी दर्द होने का भी डर है इस लिये एक पात्र में लघुनीत कर एकान्त जगह में छितरा २ डाल देवे. भिक्षा लाने के पात्र रखने की झोली, पानी छानने का गलना, आहार करते शीत संभालने मांडलिया, पात्र साफ करनेको लूनिये वगैरा उपकरणो साधु सदैव पास रखते हैं और कार्य हुए तब छोटा पाटला, बडा पाट, गेहूं, चावलादि का परार गृहस्थ के यहा से जांच कर ले आते हैं और काम हुए लौटा देते हैं, उक्त उपकरणों को १ द्रव्य से यत्ना से ग्रहण करें और यत्ना से रक्खें वे फिजूल फोड तोड बापर के नाश नहीं करे. २ क्षेत्र से गृहस्थ के घर में रख कर ग्रामानुग्राम विहार करें नहीं. क्यों कि प्रतिबन्ध होता हैं और प्रतिलेखना का प्रमाद होता है ३ काल से--प्रातःकाल सन्ध्या काल दोनों वक्त सब वस्त्रोपकारण का प्रतिलेखना करे, प्रतिलेखना के २५ प्रकार-- वस्त्र के ३ विभाग कर प्रत्येक विभाग में ऊपर मध्य में और नीचे तीन स्थान द्रष्टी से देख, यों ३×३=९ अखोडे हुये इस ही प्रकार वस्त्र के दूसरी तरफ देखे सो ९ पखोडे यों १८ हुये उनमें जीव की शंका होवे तो आगे पीछे के छे विभाग की गोच्छक से प्रमार्जन करे यह ६ पूरीमा यों २४ हुए २५ वां शुद्ध उपयोग रखें. प्रतिलेखना करते बात करे नहीं, इधर

उधर देखे नहीं, विना प्रतिलेखे वस्त्रोंसे प्रतिलेखे वस्त्र मिलावे नहीं. प्रथम मुंहपत्ती, फिर गोछा चुल्लपट्ट चद्दर रजोहरणादि की क्रम से प्रतिलेखना करे और ४ भाव से-उपयोग सहित उपकरणो को वापरे, उत्तराध्यन सूत्र के २३वें अध्ययन में कहा है कि 'लोग लिंग पवुच्चति'--अर्थात् साधु के लिंग से लोगों को प्रतीत उत्पन्न होती है इस लिये वस्त्रादि धारण करने की जरूरत है न कि अभिमान या देह रक्षण के लिये, इस लिये उन पर ममत्व नहीं करे, ५ 'परिठावणिया समिति'-"उच्चार"--बडी नीत (विष्टा) 'पासवन'-लघुनीत (पेशाब) 'वन'-वमन, 'जल'-पसीना, 'सिंघेन'-श्लेष्म नख, बाल, मृतक शरीर इत्यादि निरुपयोगी वस्तु को द्रव्य से-यत्न कर ग्रहण करे, जहां से नीचे गिरे ऐसी ऊंची जगह न होवे, जहां एकत्र (ढेर) हो रहे ऐसी नीची जगह न होवे, जहां जीवादि द्रष्टी में न आवे ऐसी अप्रकाशिक जगह न होवे, चीटियों के दीमक के घर द्रोवादिहरी दाने बीज चींटी कुंथुआदि प्राणी जहां न होवे ऐसे स्थान में परिठावे (यत्न पूर्वक डाले). २ 'क्षेत्र से' जिस के मालिक की वह जगह हो उस की आज्ञा ग्रहण करे यदि मालिक न हो और जगह अप्रतीत क्लेश उत्पन्न करने वाली न हो तो वहां शक्रेन्द्रजी * की आज्ञा ग्रहण कर 'परिठावे'. ३ 'काल से' दिन को अच्छी तरह देख कर और दिन में देखी हुई निर्वद्य जगह में रात्री को परिठवे, ३ 'भाव से'—शुद्ध उपयोग युक्त--मैं आवश्यकीय काम के लिये जाता हूं इस लिये जाते वक्त 'अवसइ' शब्द कहे, परिठाती वक्त, 'मालिक की आज्ञा है इस लिये 'अणुजाणह मिमी उग्गहं' कहे. परिठावे बाद इस वस्तु से अब मुझे कुछ प्रयोजन नहीं इस लिये 'वोसिरे' शब्द ३ वक्त कहे स्वस्थान पीछा आवे तब कार्य्य से निवृत हो आया इस लिये 'निस्सही' शब्द ३ वक्त कहे. फिर इर्यावही पडिक्कमे.

* दक्षिणार्ध लोक के मालक शक्रेन्द्र जी श्रमण भगवन्त श्री महावीर स्वामीजी से कह गये हैं कि-साधु आदि चारों तीर्थंकों निर्वद्य काम में मेरे मालकी की जगह कामगें आवे तो मेरी आज्ञा है। ऐसा भगवतीसूत्र के १६ शतक के २ उद्देश में कथन है।

[यह ५ समिति हुई) ६ 'मनगुप्ति'-मन, वचन और काया यह तीनों ऐसे जबर शस्त्र हैं. किसी २ वक्त महा पातकी विचार उच्चार आचर कर निरर्थक कर्म बन्ध कर लेते हैं इस लिये इसे १ 'सारंभ' परिताप उपजाने का विचार, २ 'समारंभ'-परिताप की सामिग्री मिलाने का बिचार और ३ 'आरंभ'-कार्य से जीव पृथक् करने का विचार इन तीनों प्रकार के विचारों से मन का निग्रह कर धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान में लगावे. २ वचन गुप्ति'-उक्त तीनों प्रकार के उच्चार से वचन का निग्रह कर प्रयोजन उचित सत्य तथ्य पथ्य निर्दोष वचनोच्चार करें. ३ 'काया समिती' उक्त तीनों प्रकार के आचरनों से काया का निग्रह कर तप संयम ज्ञानादि के सद्कार्य में काया को लगावे : यह चारित्राचार के आठ गुन हैं इनके दोषों को दूर कर गुन का पालन आचार्य जी आप स्वयं करें और दूसरे के पास से करावें।

४ तपाचार—जिस प्रकार मृतिका मिश्रित सुवर्णादि धातु अग्नि ताप के प्रयोग से मृतिका रूप मैल को छोड आप रूप को प्राप्त होती है तैसे कर्म रूप मृतिका मिश्रित बना जीव रूप सुवर्ण तपश्चर्या रूप अग्नि प्रयोग से शुद्ध हो आप रूप को प्राप्त होता है। उत्तराध्यन जी तथा उववाईजी सूत्र में तप के भेद भेदान्तर निम्नोक्त प्रकार किये हैं।

गाथा—सो तवो दुविहो वुत्तो। बाहिर भ्यन्तरो तहा॥ बाहिर छविहो वुत्तो। एवं अभ्यन्तरो तवो॥ अणसण मुणोयरिया। भिक्खा यरियाय रस परिच्चओ॥ कायक्लेसो संलिण या या बाह्य तवो होइ॥ पायछितं विण ओ। वयावच्चं तहेव सज्झाओ॥ झाणं च विउसग्गो। एसो अभ्यंतरो तवो॥

अर्थ—तप के दो प्रकार किये हैं, यथा—१ अनशन, २ उनोदरी, ३ भिक्षाचरी, ४ रस परित्याग, ५ काया क्लेश, और ६ प्रति संलीनता. इन ६ प्रकार के तप को बाह्य याने प्रत्यक्ष तप कहा है. और १ प्रायश्चित, २ विनय, ३ वयावच्च, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान और ६ कायोत्सर्ग, इन ६

को अभ्यन्तर यानें परोक्ष तप कहा है, इन १२ ही का सविस्तार वर्णन कहा जाता है।

१ 'अनशन'–(१) असनं-अन्न, (२) पानं-पानी, (३) खादिम-पक्वान, मेवा (४) स्वादिम-मुखवास. इन चारों आहारों का त्याग करे सो अनशन तप. इसके दो भेद (१) जो काल की मर्यादा युक्त तप हो सो 'इतरिया' २ और जावज्जीव का तप हो सो 'अवकहीया' इसमें से इतरीया तप के ६ प्रकार (१) चौथ भक्त (१ उपवास) छठ भक्त (२ उपवास) ३ अष्ट भक्त (३ उपवास) यों क्रमसे चढते २ पक्षोपवास, मासोपवास, द्वीमासोपवास, यावत षट् (६) मासोपवास. छः महीने से अधिक तप नहीं, ऐसा तप करे सो 'श्रेणीतप'। २ यंत्र के १६ कोष्ट में अङ्क की स्थापना प्रमाने १ उपवास, फिर २ उपवास, फिर ३ उपवास, फिर ४ उपवास, फिर २ उपवास, फिर ३ उपवास. इस प्रकार तप करे सो 'प्रतर तप' २ ऐसे ही ८×८=६४ कोष्ट में अङ्क आवे जैसा तप करे सो 'घन' तप. ३ ऐसे ६४×६४=४०९६ कोष्ट में अङ्क आवे जैसा तप करे सो 'वर्ग' तप. ४ ऐसे ही ४०९६×४०९६=१६७७७२१६ कोष्टक में आवे जैसा तप करे सो 'वर्गावर्ग' तप और कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, एकावली, वृहत्सिंह क्रीडा, लघुसिंह क्रीडा, गुण रत्न संवत्सर, वज्र मध्य प्रतिमा, जव मध्य प्रतिमा, सर्वतो भद्र प्रतिमा, महा भद्र प्रतिमा, भद्र प्रतिमा आयंबिल वृद्धमान * इत्यादि तप करे सो प्रकीर्ण तप. यह इतरीया तप कहे और आयु अन्त नजदीक जान तथा मरणांतिक उपसर्ग प्राप्त हुए जावज्जीवक तप करे वह अवकाहीया तप अवका-

तप का यन्त्र

१	२	३	४
२	३	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

* एक अम्बिल कर एक उपवास करे, दो अम्बिलकर एक उपवास करे, तीन अम्बिल कर एक उपवास करे यों क्रमसे अम्बिल की वृद्धी करता मध्य में एक २ उपवास करता यावत् १०० अम्बिल कर १ उपवास करे सो अम्बिल वृद्धमान तप इसमें १४ वर्ष लगते हैं

सूचना—कनकावली आदिन्य के यंत्र दूसरे पृष्ठ में देखिये

हिया' तप के दो भेद– १ फक्त चारों आहार भोगने के यावज्जीव के त्याग करे सो 'भक्त प्रत्याख्यान'. और २ चारों आहार तथा शरीर को त्याग कर वृक्ष से कटी हुई शाखा समान हलन चलन रहित एक ही आसन से यावज्जीव पर्यंत रहे सो 'पादोपगमन'

२–'उनोदरी':–आहार तथा उपद्धी कमी करे सो उनोदरी तप, इस के दो प्रकार १ द्रव्य उनोदरी और २ भाव उनोदरी, इस में से द्रव्य उनोदरी के २ प्रकार–(१) वस्त्र पात्र कम रखे सो उपकरण उनोदरी, जिस से ममत्व घटे, ज्ञान ध्यान में वृद्धि होवे, विहार सुख से होवे. और (२) पुरुष का ३२ ग्रास (कवे) का आहार है, जिस में ८ ग्रास ले संतोष करे वह पौन उनोदरी, १६ ग्रास ले संतोष करे वह आधी उनोदरी. २४ ग्रास ले संतोष करे वह पाव उनोदरी. ३१ ग्रास ले संतोप करे वह किञ्चित् उनोदरी. कम आहार करने से प्रमाद कम होता है शरीर अरोग्य रहता है, बुद्धी वृद्धी आदि अनेक गुणों की प्राप्ति होती है. और २ भाव उनोदरी सो क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष चपलता की कमी करे.

३ भिक्षाचरी–सामुदानी (बहुत घरों से) थोडा २ भिक्षा लाकर उस से अपने शरीर को उपटम्भ दे सो 'भिक्षाचरी तप' जैसे गौ जंगल में जा ऊपर २ का थोडा २ घास खा अपना निर्वाह कर्ता है. तैसे साधु भी बहुत घर से थोडा २ आहार ले शरीर का निर्वाह करते हैं इस लिये इसे गोचरी भी कहते हैं. और भी 'दशवैकालिक' सूत्र के प्रथम अध्याय में कहा है.

गाथा–वयं च वित्ती लभामो नय कोइ उवंहमइ ।
अहा गडेसु रीयंते पुप्फेसु भमरो जहा ॥

अर्थ–जैसे गृहस्थ ने अपने आराम के लिये लगाये हुये पुष्पाराम (बगीचे) मे भ्रमर अचिन्त्य आ कर फूल को किंचिन्मात्र भी दुख नहीं देता है और अनेक फूलों पर से थोडा २ रस ग्रहण कर अपनी आत्मा

को तृप्त करता है, तैसे ही साधु जो ग्रहस्थों ने अपने और अपने कुटुम्बादि के लिये भोजनादि बनाये हुये उनमें से उन्हें दुःख नहो इस प्रकार थोडा २ आहार बहुत घरों से ग्रहण कर अपनी आत्मा को तृप्त करते हैं. भिक्षाचरी तप के ४ प्रकार=१ द्रव्य से, २ क्षेत्र से, ३ काल से और ४ भाव से. इस में से द्रव्य से भिक्षाचरी के २६ प्रकार के अभिग्रह होते हैं. यथा—१ वर्तन में से वस्तु निकाल कर देवे वह लेवे सो 'उखित्त चरये', २ वर्तन में वस्तु डालता हुआ दे वह लेवे सो 'निखित्त चरये'. ३ वस्तु निकाल कर पीछी डालता दे वह ले सो 'उखित्त निखित्त चरये' ४ वर्तन में डाल पीछी निकालता दे उसे ले वह 'निखित्त उखित्त चरये' ५ दूसरों को देता मध्य में दे वह ले सो 'वट्टीजमाण' चरये. ६ दूसरे से लेता मध्य में दे तो ले सो 'साहारिजमाण चरए'. ७ अन्य को देने ले जाता हुआ दे तो ले सो 'उवणिए चरए'. ८ अन्य को देनेको लाता हुआ दे तो ले सो 'अवणिए चरए' ९ किसी को देने जा कर पीछा आता हुआ दे तो ले सो 'उवणिए अवणिए चरए' १० अन्य का ले कर पीछा देने जाता हुआ दे तो ले सो 'अवणिये उवणिए चरए' ११ भरे हाथ से दे सो ले वह 'संसठ चरए' १२ बिना भरे (स्वच्छ) हाथ से दे वह ले सो असंसठ चरए' १३ जिस वस्तु से हाथ भरे वह वस्तु दे तो ले सो 'तज्जारा संसठ चरए १४ पहिचाने नहीं वहां से ले सो 'अन्नाराचरए', १५ बिना बोले (चुपचाप) दे वह ले सो 'मोणचरए' १६ देखाती वस्तु ले सो दिट्ठ लाभए १७ बिना देखानी वस्तु ले सो 'अदिट्ठ लाभए' १८ अमुक लेते हो यों पूछ के दे वह ले सो 'पुट्ठलाभए' १९ बिना पूछे दे वह ले सो 'अपुट्ठलाभए' २० निन्दा कर के दे वहां से ले सो 'भिक्खलाभए' २१ स्तुती कर के दे वहां से ले सो 'अभिक्खलाभए' २२ दुःख प्रद आहार ले सो 'अन्नागिलाए' २३ गृहस्थ भोजन करता हो उसमें से दे तो ले सो 'उवणिहीए' २४ सरस अच्छा आहार ले सो 'परिमित पिण्ड वाइए'. २५ चौकस कर २

ले सो 'सुद्धसणीए' और २६ कुरछी की तथा वस्तु की गिनती कर ले सो 'संखादत्तीए'. २ 'क्षेत्र से'—भिक्षाचरी के आठ प्रकार के अभिग्रह (१) चारों कौने के चार घरों से ले सो 'पेटीए' (२) दो कोने के दो घर से ले सो 'अधपेटीए' (३) गोमूत्र क जैसे बांक एक घर इधर की लाइन में एक उधर की सतर में से ले सो 'गोमुत्ते' (४) पतङ्ग के उडने समान फुटकर घरों से ले सो 'पतंगीए' (५) पाहिले नीचे के फिर ऊपर के घर से ले सो 'अभ्यतन्र संखावत्ते' (६) पाहिले ऊपर के फिर नीचे के घर से ले सो 'बाहीरा संखावत्ते' (७) जाते हुए ले आते न ले सो 'गमणे' और (८) जाकर पीछे आते ले सो 'आगमणे' ३ 'कालसे'- अनेक प्रकार के अभिग्रह जैसे प्रथम प्रहर का लाया तीसरे प्रहर में खावे. दूसरे प्रहर में लाया चौथे प्रहर में भोगवे. दूसर प्रहर का लाया तीसरे प्रहर में भोगवे. पहले पहर का लाया दूसरे पहर में भोगवे यों घडी आदि के अभिग्रह करे और ४ भाव से भिक्षाचरी के भी अनेक प्रकार जैसे सब वस्तु अलग २ लावे और एकत्र कर खावे. इच्छित वस्तु का त्याग करे आहार करते ममत्व न करे रुक्षवृती रखे इत्यादि.

४ 'रसपरी त्याग'- जिह्वा को स्वाद लगे बल वृद्धी हो ऐसी वस्तुओं का त्याग करे सो 'रसपरी त्याग तप' क्यों कि 'रसाणी रोगाणी' अर्थात अधिक रस लुब्ध होने से रोगिष्ट होता है. इस तप के १४ प्रकार--दुग्ध, दही, घृत, तेल, मिष्टान्न इन पांचो विगय को त्यागे सो 'निव्विगतिए' २ धार विगय तथा ऊपर से विगय लेना त्यागे वह 'पणिए रसपरीच्चए' ३ ओसवन में के दाने खावे सो 'आयमसित्थ भोए' ४ रस मसाले रहित आहार ले सो 'अरस आहारे' ५ जूना धान पका लेवे सो 'विरस आहारे' ६ वटले चने उडदादि के उबाले बाकले ले सो 'अंत आहारे' ७ ठण्डा बासी आहार ले सो 'पंत आहारे' ८ रूक्ष (रूखा) आहार ले सो 'लुक्ख आहारे' ९ निस्सार जली हुई खुरचनादि ले सो 'तुच्छ आहारे'

१० अरस, ११ वीरस, १२ अन्त, १३ प्रान्त, और १४ लुख आहार से संयम का निर्वाह करे. ५ 'कायक्लेश'—स्वाधीनपने धर्मार्थ काया को कष्ट दे सो 'काय क्लेश तप' इस के अनेक प्रकार कायोत्सर्ग कर खडा रहे सो 'ठाणाठितिय' कायोत्सर्ग विना खडा रहे सो ठाणाइय' दोनों घुटने के बीच सिर झुकाये कायुत्सर्ग करे सो 'उकडासणिये' और 'पडिमठाइये, अर्थात् साधु की १२ प्रतिमा धारन करे—१ एक महीने तक एक २ दात * आहार पानी की ले, २ दो महीने तक दो दो दात आहार पानी की ले, ३—७ यों क्रम से बढते २ सात महीने तक सात २ दात आहार पानी की ले, ८ वीं में ७ दिन चौविहार एकान्तर उपवास करे. दिन को सूर्य के ताप में रहे. रात्री को वस्त्र रहित रहे. चारों प्रहर रात्री में सीधा (चित्त) सोवे, या एक करवट से सोवे, या कायुत्सर्ग में बैठा रहे इन तीन आसन में से एक आसन करे, देव मनुष्य तिर्यंच के उपसर्ग उत्पन्न हो तो सहन करे किन्तु चलायमान न होवे, ९वीं भी आठवीं जैसी है, विशेष में—रात्रि में खडा रहे सो 'दण्डासन' पैर के तले की एडी और मस्तक का शिखास्थान जमीन को लगा सब शरीर कमान के जैसे अधर रक्खे सो 'लंगडासन' और दोनों घुटने के बीच सिर झुका कर रहे सो 'उकडासन' इन ३ में का एकासन कर रहे. १०वीं भी आठवीं जैसी विशेष में गौ का दूध निकालने बैठे वैसा रहे सो 'गोदुआसन' पाट (खुरसी) पर पैर जमीन को लगा बैठे और पाट निकले बाद रहे वैसा रहे सो वीरासन' सिर नीचे पैर ऊपर रक्खे सो 'अम्बखुजासन' इन चारों में का एक आसन कर रात्री पूर्ण करे. ११वीं छठ भक्त (बेला) करे, दूसरे दिन ग्राम के बहिर अहोरात्री (८ पहर) कायुत्सर्ग कर खडा रहे. और १२वीं अठम भक्त (तेला)

* साधु को आहार देते वक्त पात्र में एक धार में जितना अन्नादि पडे वह आहार की १ दात. और पानी की धार खण्डित नहीं होवे वहां तक पानी की एक दात गिनते हैं। इस प्रकार जितनी दात देने का अभिग्रह हो उससे ज्यादा नहीं लेवे, कम लेवे तो हरकत नहीं।

करे तीसरे दिन महाकाल (भयंकर) स्मशान में एकही वस्तु पर अचल दृष्टि स्थापन कर कायुत्सर्ग कर देवादि तीनों प्रकार का उपसर्ग प्राप्त हो और उससे चलित हो जावे तो उन्माद (विकलता) प्राप्त होवे, दीर्घ काल तक रहे ऐसा रोगोत्पन्न होवे, और जिन प्रणित धर्म (संयम) से भ्रष्ट होवे, और जो निश्चित रहे तो अवधि मनः पर्यव, केवल इन ३ ज्ञानों में से कोई भी ज्ञान प्राप्त होवे, और बालों का लोचन करना, ग्रामानुग्राम फिरना, शीत ताप जान कर सहन करे, खुजली कुचरे नहीं, इत्यादि कष्ट सहे सो काया क्लेश तप।

५ 'प्रतिसलीनता' आश्रव के कारनों से आत्म निग्रह करे सो प्रतिसलीनता तप इसके ४ भेद—१ राग द्वेष की उत्पत्ती हो ऐसे शब्द जैसे काने को काना, रूप से आंख को, गन्ध से नाक को, रस से जिव्हा को और स्पर्श से शरीर को रोक रक्खे सो इन्द्रिय प्रतिसंलीनता, २ क्रोध का क्षमा से, मान का विनय से, माया का शरलता से और लोभ का सन्तोष से निग्रह करे सो 'कषाय प्रति सलीनता' * असत्य और मिश्र मन का

* जो सच्चा विचार सो सत्यमन, झूठा विचार सो असत्यमन, सच्चा झूठा दोनों सामिल विचार सो मिश्रमन और जैसे गांव आया दीवाजले वगैरा विचार सो सच्चा भी नहीं और झूठाभी नहीं सो व्योहार मन ५ ऐसेही ४ वचन के जोगजानना विशेषमें चारों प्रकार के वचन ४२ प्रकारके कहेहैं। सत्य भाषा के १० प्रकार कोई पानी कोई नीलु कोई नीर वगैरा देश बदलने से वस्तु के नाम बदलते हैं किन्तु देश में जो नाम कहा जावे सो 'जनपदसच्च' २ साधु मुनि-श्रमण यों एक ही के अनेक नाम गुण पलटने से पलटे सो 'समन्त सच्च' ३ ३ पैसा रूपय्या मोहर टांक पावसेर वगैराजो लोगोंने नाम स्थापन कियासो 'स्थापनासच्च' ४ कुलवर्द्धन, लक्ष्मी वगैरा गुन नहीं होने से भी नाम स्थापना किये उस ही नाम से पुकारे सो 'नाम सच्च' साधु ब्राह्मणके गुन बिना भेष मात्रसे उन्हें साधु ब्राह्मण कहना 'रूपसच्च' ६ श्रीमन्त की अपेक्षा गरीब, दिन की अपेक्षा रात्रियों एक २ की अपेक्षा से नाम कहें सो 'प्रतीत सच्च' ७ जले तेल बत्ती और कहे दीवा जले जाता है मनुष्य और कहे ग्राम आया, यों लोग कहे सो कहे सो 'व्यवहार सच्च' ८ तुगा श्वेत तोता हरा कौआ काला इनमें पांचों ही रंग होने पर भी जो विशेष दृष्टीगत होवे सो कहे सो 'भावसच्च' ९ लिखने से लहिया, चित्रने से चित्र कार सोनकार लोहार धनिक वगैरा द्रव्य से नाम कहे सो 'योगसच्च' और १० नगर देव लोक समान, मुख कपूर समान वगैरा समान को विशेष, विशेष को सामान्य ओपमा देवे सो 'ओपमा सच्च' यह सब सत्य वचन जानना। असत्य

निग्रह कर सत्य और व्यवहार मन प्रवृतावे, असत्य और मिश्र वचन का त्याग कर सत्य और व्यवहार वचन प्रवृतावे। ओदारिक,* ओदारिक मिश्र

भाषा के १० प्रकार—१ क्रोध वश हो वचन कहे सो झूठा जैसा पिता पुत्रसे कहे तू मेरा नहीं सो 'क्रोध असच्च २ मान के वश हो झूठी प्रशंसा ही करे सो 'मान असच्च' ३ माया के वश दगा कपट के वचन कहेसो 'माया असच्च' ४ लालचके वश व्योपारादि से झूठा वचन कहे सो लोभ असच्च' ५ राग के वश स्त्री आदि से झूट बोले सो 'राग असच्च' ६ द्वेष के वश झूठ कलङ्क चढ़ावे आदि 'द्वेष असत्य' ७ भयके वश चौरादि झूठ बोले सो भय 'असत्य' ८ हंसी के वश मस्करी आदि में झूठ वोले सो 'हांस असच्च' ९ व्याख्यानादि में पांखडीका फूल बनावे आदि 'आख्यायिक असच्च' और १० संसय वश साहूकार को भी चोर कहे इत्यादि 'शंका असत्य' उक्त क्रोधादि १० दुर्गुणों के वश बोला हुआ वचन असत्य ही कहा जाता है। मिश्र भाषा कुछ सच्ची कुछ झूंठी, जिसके भी १० प्रकार—१ आज दश का जन्म हुआ कहे किन्तु ज्यादा कमी भी होवे सो 'उत्पन्न मिश्र २ आज दश मरे सो विगत मिश्र' ३ आज दश जन्मे और दश मरे सो 'उभय मिश्र' ४ कीड़ों का ढेर देख कहे सब जीव हैं किन्तु उसमें निर्जीव भी होंगे सो 'जीव मिश्र, ५ बहुत मरे देख कहे सब मर गये सो 'अजीवमिश्र' ६ उक्त दोनों बात साथ कहे सो 'जीवाजीव मिश्र' ७ प्रत्येक (एक शरीर में एक जीव वाली) वनस्पतिको अनन्त कायकहेसो 'अनन्त मिश्र' ८ अनन्त काय (एक शरीरमें अनन्त जीव वाली) को प्रत्येक कहे सो 'परितमिश्र, ९ सन्ध्या समय को रात्रि कहे सो काल मिश्र और १० तीन प्रहर को दोपहर कहे इत्यादि 'अद्धामिश्र'। सच्चा भी नहीं झूठ भी नहीं ऐसी व्यवहार भाषा के १२ प्रकार—१ हे देवदत्त ? इत्यादि नाम से सम्बोधन करे किन्तु जीव का नाम यह नहीं है, यह तो दिया हुआ नाम है वही बोला जाता है सो 'आमंत्रणी। २ तुम यह करो इत्यादि आज्ञा करे सो 'आज्ञापनी' अमुक मुझे दो इत्यादि याचना करे सो 'याचनी' ४ यह कैसे हुआ ? इत्यादि प्रश्न पूछे सो 'पृच्छनी' ५ पाप करेगा तो दुःख पावेगा ऐसा कहे सो प्रज्ञापनी' ६ यह काम मैं नहीं करूंगा ऐसा कहे सो 'प्रत्याख्यानी' ७ प्रश्नोत्तर दे, इच्छा हो सो करो, ऐसा कहे सो 'इच्छानुलोमा' ७ रचना भिन्न किये बिना (अर्थ समझे बिना) कहे तेरी इच्छा इत्यादि सो 'अनाभिगृहिता' ९ अर्थ को समझ कर या बर्ताव कर कहे अब क्या करूं सो 'अभिगृहीता' १० किसी ने कहा 'सैंधव लाव' तब विचारे कि—घोड़ा पुरुष वस्त्र और निमक को सैंधव कहते हैं, अब क्या ले आऊं ? सो संशय कारणी' ११ यह इसका पिता ही है, ऐसे स्पष्ट अर्थ वाली सो 'व्याकृत' और १२ बच्चे को डराने को कहे कि 'हाऊ पकड़ ले जायगा ? किन्तु 'हाऊ' क्या चीज है। ऐसे छिपे अर्थ वाली भाषा बोले सो 'अव्याकृत' यह १४ भाषा के ४२ प्रकार कहे, इसमें असत्य और मिश्र भाषा के २० प्रकार छोड़ कर सत्य और व्यवहार भाषा के २२ प्रकार की भाषा प्रयोजन निमित बोले।

* १ हड्डी मांसादि सत धातु का पूतला मनुष्य तिर्यंच का शरीर सो औदारिक शरीर २ औदारिक शरीर पूरा निष्पन्न न हो वहां तक दूसरे शरीर की मिश्रता रहे सो औदारिक मिश्र, ३ शुभाशुभ पुद्गलोंका पूतला देव नेरइयेका शरीरसो वैक्रय शरीर ४ जब पूरा निष्पन्न न हो वहां तक वैक्रय मिश्र, ५ चौदे पूर्व ज्ञान के पाठी मुनिराज को संशय उत्पन्न हो तब आहारिक समुद्घात कर एक हाथ का पूतला शरीर में से निकाल तीर्थंकर केवली के पास

वैक्रय, वैक्रय मिश्र, आहारिक, आहारिक मिश्र और कार्मन इन ७ कायों के योगों में से अशुभ को त्याग शुभ प्रवृतावे, सो योग प्रति संलीनता. और ४ वेलादि उत्पन्न हो ऐसी वाडी में, चारों ओर कांटे हो ऐसे बगीचे में, एक जाति के वृक्ष हों ऐसे उध्यान में, यक्षादि के देवस्थान में, पानी पिलाने की पो में, सरांय धर्मशाला में, लोहारादि के हाट में, वनिक की दुकान में, साहुकारादि की हवेली में, उपाश्रय—धर्मस्थान में, श्रावक की पौषधशाला में, धान्य के खाली कोठार में, बहुत मनुष्य एकत्र हों ऐसी सभा में, पर्वत की गुफा में, राजा की सभा में, छत्री में, स्मशान में, वृक्ष के नीचे इन १८ प्रकार के स्थानक में स्त्री पशु नपुंसक नहीं रहते हों वहां एक रात्रि आदि काल रहे. सो विचित सयनासन प्रतिसलेपनातपः यह ६ प्रकार के बाह्य तप का वर्णन हुआ।

७ 'प्रायःश्चित'— पाप की पर्याय का छेदन (नाश) करे सो प्रायःश्चित तपः। पाप (दोष) १० प्रकार से लगे— १ कंदर्प (काम) के वश, २ प्रमाद के वश, ३ अनजानपने, ४ क्षुधा के वश, ५ आपदा * (कष्ट) में पडे, ६ शंका के वश, ७ उन्मत (मद या भूतादि) के वश, ८ भय के वश, ९ द्वेष के वश, और १० परीक्षा करने को। इस प्रकार दोषों की अवीनीत (कुशिष्य) १० प्रकार से आलोयना (प्रकाश) करता है—१ कोप उत्पन्न कर, २ प्रायःश्चित का भेद पूंछ कर, ३ दूसरे ने देखा उतना ही कहे, ४ निन्दा के डरसे छोटे २ दोष कहे बडे २ छिपावे, ५ छोटे दोषों को निर्मोल तुच्छ समझ कर बडे २ कहे, छोटे २ नहीं कहे, ६ कुछ समझे

कांच के मत के माफक भेज कर तुरन्त उत्तर मंगा लें यह 'आहारिक शरीर' आहारिक शरीर उत्पन्न करते या समाते पूरा न हो वहां तक आहारिक मिश्र और ७ एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में जाते जीव के साथ कोलक समान में रहे सो 'कार्मन योग, इन ७ काया के योगों में से जितने योग जिसमें पावे उनको रोक सन्मार्ग में प्रवर्तावे।

* विपत ४ प्रकार की—१ द्रव्य से आहार प्रमुख नहीं मिलने से, २ क्षेत्र से अटवी में पड़ने से. ३ काल से दुष्कालादि में और ४ भाव से रोग शोकादि प्राप्त हुये।

कुछ नहीं समझे ऐसी गडबड से कहे, ७ प्रसंशा के लिये लोगों को सुना कर कहे, ८ बहुतों के सन्मुख कहे, ९ प्रायःश्चित की विधि के अनजान के सन्मुख कहे, और १० कम प्रायःश्चित की इच्छा से सदोषी के सन्मुख कहे, और जो विनीत (सुशिष्य) १० गुनों का धारक होता है वह शुद्ध आलोचन करता है—१ स्वयं शुद्ध-पाप का खटका वाला, २ उत्तम जाति वन्त, ३ उत्तम कुलवन्त, ४ विनयवन्त, ५ ज्ञानवन्त, ६ दर्शनवन्त, ७ चारित्रवन्त, ८ क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, ९ जितेन्द्रिय और १० पाप का पश्चाताप करने वाला। १० गुन के धारक प्रायःश्चित दे सकते हैं—१ शुद्धा-चारी, २ शुद्ध व्यवहारी, ३ प्रायःश्चित की विधी के जान, ४ शुद्ध श्रद्धा-वन्त, ५ लजा दूर कर पूछने वाले, ६ शुद्ध करने समर्थ, ७ दोष किसीको कहे नहीं ऐसे गम्भीर, ८ दोषी के मुख से दोष कबूल करा प्रायःश्चित देने वाले, ९ नजर में समझे ऐसे विचक्षण, और १० जिसे प्राय-श्चित दे उसकी शक्ति के जान। प्रायःश्चित १० प्रकार के—१ स्वतः के लिये या आचार्य उपाध्याय स्थविर तपस्वी गल्यानी (रोगी) वृद्ध बालक साधु के लिये आहार औषध वस्त्र पात्रादि किसी भी कार्य के लिये गुरुस्थान से बाहिर जाय पीछा गुरु समीप आय जिसके मध्य में जो जो व्यतिकरम हुआ हो वह सब गुरु आदि के सन्मुख कहने से अनजान में लगे दोष से शुद्ध होवे सो आलोयना प्रायःश्चित, २ विहार आहार प्रतिलखन बोलन चलने में अनजान से दोष लगा हो वह प्रतिक्रमण करने से शुद्ध होवे सो प्रतिक्रमण प्रायश्चित. ३ दूसेर प्रायश्चित्त में कहे काम में उपयोग साहित दोष लगा हो वह गुरू आदि के सन्मुख कह कर मिथ्या दुष्कृत देने से शुद्ध हो सो 'तदुभय' प्रायश्चित्त. ४ अशुद्ध अकल्पनीय तथा तीन प्रहर उपरांत रहा आहार आदि परिठा (न्हाख) देने से शुद्ध हो सो विवेग प्रायश्चित्त. ५ दुस्वप्नादि का पाप कायुत्सर्ग करने से दूर हो सो 'कायुत्सर्ग प्रायश्चित. ६ पृथिव्यादि सचित्त के संघटा (छूने) का पाप अचित्त

उपवासादि तप करने से दूर हो सो 'तप प्रायश्चित'. ७ अपवाद मार्ग सेवन करे कारण वशात् जान कर दोष लगावे उसे पांच दिनादि का छेद दे (पाले संयम में से दिन कमी करे) सो 'छेद प्रायश्चित्त'. ८ आकूटी (जान कर) हिंसा करे, झूठ बोले, चोरी करे, मैथुन सेवे धातु पास रखे, रात्री भोजन करे. उसे दूसरी वक्त दीक्षा दे सो 'मूल प्रायश्चित' ९ जो क्रूर भाव कर अपने शरीर पर तथा दूसरे के शरीर पर लष्टी, (लकडी) मुष्टी आदि का प्रहार करे, मारे, गर्भपात करे उसे सम्प्रदाय से अलग रख उस स्थान से उठा नहीं जावे ऐसा दुष्कर तप करा कर दीक्षा दे सो 'अपावठप प्रायश्चित्त'. और १० प्रवच (शास्त्र के वचन) उत्थापक. उत्सूत्र प्ररूपक, साध्वी का वृत भंग करने वाला, उस का जिन कल्पी आदि जैसा भेष प्रावर्त करा कर जघन्य ६ महीने मध्यम १२ महीने उत्कृष्ट १२ वर्ष सम्प्रदाय के बाहिर रख कर उक्त प्रकार दुष्कर तप करा कर ग्रामानुग्राम फिरा कर फिर दूसरी वक्त दीक्षा दे सो 'पारांचिय प्रायश्चित्त' पीछे के दो प्रायश्चित्त इस काल में नहीं देते हैं.

८ विनय—गुरू आदि जेष्ठों का वयोवृद्ध, गुनोवृद्ध, का सत्कार सन्मान करे सो 'विनय तप' इस के सात प्रकार,—१ ज्ञान विनय, २ दर्शन विनय, ३ चारित्र विनय, ४ मन विनय, ५ वचन विनय, ६ काया विनय और ७ लोग विवहार विनय. इस में १ ज्ञान विनय के ५ प्रकार १ उत्पात्तियादि निर्मल बुद्धि वाले * (२) निर्मल उपयोगी शास्त्रज्ञ श्रुतज्ञानी (३) मर्यादा प्रमाने द्रव्य क्षेत्र काल के ज्ञान और अवधिज्ञानी (४) अढाई द्वीप में रहे संज्ञी के मनोगत भाव के जान मनः पर्यव ज्ञानी. और (५) सर्व-द्रव्य क्षेत्र काल भाव भव के जान केवल ज्ञानी. इन पांचों की विनय करे. २ दर्शन विनय के दो प्रकार—१ शुद्ध श्रद्धावन्त आवे तब खडा हो

* तुर्त जवाबी:—नई बात करे सो उत्पातिया बुद्धि, २ विनय करने से बढे सो विनयी बुद्धी, ३ काम करते २ सुधरे सो कमिया बुद्धी और ४ वय प्रमाने बुद्धी हो सो प्रणामीया बुद्धी।

सत्कार दे, आसन की आमंत्रणा करे, ऊंचे स्थान पर बैठावे, वंदना-गुणानुवाद करे, नमस्कार करे, अपने पास उत्तम वस्तु हो वह उन के समर्पण करे, यथा शक्ति यथा उचित सेवा भक्ति करे सो 'सुश्रूषा विनय' और दूसरे अनासतना विनय के ४५ प्रकार—१ अमुक अरिहन्त के नाम स्मरण से दुःख उपद्रव धन स्त्री पुत्र का तथा शत्रु का नाश होता है इत्यादि शब्द कहे सो 'अरिहन्त अशातना' जैन धर्म में स्नान तिलकादि कुछ भी अवलम्बन नहीं है इस लिये जैन धर्म अच्छा नहीं है ऐसे शब्द कहे सो 'अरिहन्त प्रणीत धर्म की अशातना' ३ पंचाचार के पालक या दीक्षा शिक्षा के दाता आचार्यजी वय वृद्धी में कम होवे तो उन की विनय का पालन नहीं करे सो 'आचार्य की अशातना' ४ द्वादशांगादि शास्त्र के पाठी अनेक मत मतान्तर के शास्त्रज्ञ शुद्ध संयम युक्त के अवर्णवाद बोले सत्कार सन्मान नहीं करे सो 'उपाध्यायजी की अशातना' ५ ऐसे ही ६० वर्ष की वय वाले वय स्थविर, २० वर्ष की दीक्षा वाले दीक्षा स्थविर और स्थानांग समवायंग के गुह्य अर्थ के ज्ञाता सूत्र स्थविर की अशातना करे सो 'स्थविर अशातना' ६ एक गुरू के बहुत शिष्य से परस्पर अशातना करें सो कुल अशातना ७ सम्प्रदाय के साधु परस्पर अशातना करें सो 'गण अशातना' ८ साधु साध्वी श्रावक श्राविका की अशातना करे सो 'संघ-अशातना' ९ शास्त्रोक्त शुद्ध क्रिया के पालक की अशातना करे सो 'क्रियावन्त की अशातना' १० एक मण्डल पर आहार करने वाले साधु की अशातना करे सो संभोगी की अशातना'. ११-१५ मति, श्रुति, अवधि मनः पर्यव केवल ज्ञानी की अशातना. इन १५ की अशातना वर्जे, १५ की प्रेम पूर्वक भक्ति करे और १५ के गुणानुवाद करे यों १५×३=४५ भेद अनाशातना विनय के जानना, ३ चारित्र विनय—१ सम+आय+इक=सामायिक, सम भाव रूप लाभ में प्रवर्तक, मन वचन काय के योगों का त्रिविध सावद्य (हिंसक) कार्य से निरूधन करने वाले 'सामयिक चारित्र'

२ छेद=दोष+स्थापन=छेदोपस्थान. प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के जघन्य ७वें दिन, मध्यम ४ महिने में उत्कृष्ट ६ महिने में महाव्रतारोपन करे, तथा महा दोषी को पुनः महाव्रतारोपन करे सो 'छेदोपस्थापनीय चारित्री' ३ नव वर्ष की वय वाले ९ पुरुष दीक्षा ले ९ पूर्व पूर्ण और दशवें की तीसरी आयारवत्थु तक ज्ञान पठनकर २० वर्ष की दीक्षा हुये बाद तीर्थंकर के या पूर्व प्रहार विशुद्धी के मुख से परिहार विशुद्ध चारित्र ग्रहण कर उष्ण काल में १-२-३ उपवास, शीतल कालमें २-३-४ उपवास वर्षा काल में ३--४--५ उपवास इस प्रकार ४ पुरुष तप करें, ४ उनकी भक्ति करें, १ व्याख्यान सुनावे, ६ महिने हुये बाद तप करने वाले भक्ति करें, भक्ति करने वाले तप करें, १ व्याख्यान दे. फिर ६ महिने हुय बाद, व्याख्यान वाला तप करे और आठों उनकी भक्ति करें यों १८ महिने पालन करे तेजु, पद्म, शुक्ल यह तीन ही लेश्या परिणमे सो 'परिहार विशुद्ध चारित्री' ४ सूक्ष्म=किञ्चित+सम्पराय=कषाय=सूक्ष्म सम्पराय. दशवें गुण स्थानवर्ती जीव को अन्तर महूर्त मात्र संज्वल का यत्किञ्चित लोभ रहे सो 'सूक्ष्म सम्पराय चारित्र और ५ यथा=जैसा+ख्यात=कहा=यथाख्यात, मूल गुण महा व्रत उत्तर समिति आदि में किंचित भी दोष नहीं लगाते वीतराग के कथनानुसार वीतराग भाव से चारित्र पाले सो 'यथाख्यात चारित्र' इस चारित्र वाले को अन्तर महूर्त में केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है. इन पांचों चारित्र वालों की विनय करे सो चारित्र विनय. ४ अप्रसस्त (बुरे) कर्कश, कठोर छेदक भेदक परिताप कारी मन में विचार नहीं करता हुआ प्रसस्त (अच्छे) कोमल दयालु वैरागी बिचार करे सो मन विनय. ५ उक्त प्रकार ही अप्रसस्त वचनोच्चार नहीं करता हुआ प्रसस्त वचनोच्चार करे सो वचन विनय, ६ गमनागमन में खडा रहते, बैठते, शयन करते उल्लंघनप्रल्लंघन करते सर्व इन्द्रियों को अप्रसस्त कार्य से रोक कर प्रसस्त कार्य में लगावे सो काया विनय और ७ लोग व्यवहार विनय के ७ प्रकार—१ गुरु की

आज्ञा में चले, २ गुणाधिक स्वधर्मियों की आज्ञा में चले, ३ स्वधर्मी का कार्य करे, ४ उपकार कर्ता का उपकार मानें, अन्य की चिन्ता मिटाने का उपाय करे, ६ देश काल उचित्त प्रवृती करे, और ७ विचक्षणता निष्कपटता पूर्वक सब को अच्छा लगे ऐसे सब काम करे.

९ 'वैयावच' ꠰ १ आचार्य, * २ उपाध्याय, ३ शिष्य, ४ गलानी (रोगी) ५ तपस्वी, ६ स्थविर, ७ स्वधर्मी, ८ कुल (गुरू भ्रात) ९ गण (सम्प्रदाय के साधु) और १० संघ (४ तीर्थ) इन १० को आहार वस्त्र पात्र औषधोपचार चाहिये सो लादे, पाद पृष्टादी की चम्पी करे सो 'वैयावच तप'

९ 'सज्झाय'—गीतार्थ (बहु सूत्री) को प्रसन्न कर उनके पास सूत्राभ्यास कर पढे सो 'बांचना' २ पढे सूत्रार्थ में संशय हो तो किसी प्रकार की शर्म नहीं रखते सविनय जहां तक बुद्धि फैले तहां तक प्रत्युत्तर कर सन्देह की निवृती हो तहां तक पृछना करे सो 'पडिपुच्छना' ३ सन्देह रहित हुये ज्ञान को वारम्वार अवृती दे- फेरा करे, जिससे ज्ञान निश्चल बने स्मरण शक्ति ताजी बनी रहे सो परियट्ठना ४ अवृती देते पोपट विद्या की तरह शून्य चित्त न रक्खे किन्तु उसके अर्थ परमार्थ की और दीर्घ उपयोग रक्खे, सो 'अनुप्रेक्षा' इससे बुद्धी वृद्धी और महानिर्जरा होवे. ५ उक्त चार प्रकार से निश्चल निसन्देह किये ज्ञान का लाभ दूसरों को भी दे अर्थात् परिषध में उपदेश दे सो 'धम्म कथा' जिससे शासन की उन्नति धर्म वृद्धी आदि महा उपकार होवे. यह पांच प्रकार का स्वाध्याय तप ।

१० 'झाण'— ध्यान के ४ प्रकार १ आर्त ध्यान और २ रौद्र ध्यान अशुभ है. ३ धर्म ध्यान और ४ शुक्ल ध्यान शुभ हैं. आर्तध्यान

꠰ इस काल में अरिहन्त भगवन्त नहीं होने से वैयावच में अरिहन्त का नाम नहीं आया, किन्तु गुणानुवाद में है ।

* आचार्य ५ प्रकार के:—प्रव्राजित-दीक्षा देने वाले, २ [illegible]-हित शिक्षा देने वाले, ३ [illegible]-सूत्र पठन कराने वाले, ४ [illegible] गुणानुवाद कराने वाले, और ५ धर्माचार्य ।

वाले के ४ विचार १-२ मनोज्ञ शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श का संयोग और अमनोज्ञ के वियोग का विचार करे ३-४ ज्वरादि रोगों का नाश और प्राप्त काम भोगों के अचल रहने का विचार करे आर्तध्यानी के ४ लक्षण--१ अक्रन्दन रुदन करे, सोक चिन्ता करे, २ आंश्रुपात करे और ४ विलापात त्राहा २ करे। रौद्र ध्यानी के ४ विचार--१ हिंसा करने का, २ झूठ बोलने का ३ चोरी करने का और ४ भोगोपभोग के स्वरक्षण का। रौद्रध्यानी के ४ लक्षण--१ हिंसादि के कृत्य करे, २ धृष्टपने से वारम्वार हिंसादि करे, ३ अज्ञानता से हिंसा में धर्म की स्थापना करे, काम शास्त्र का अभ्यास करे और ४ मृत्यु पर्यन्त पाप का पश्चात्ताप नहीं करे. धर्म ध्यानी के ४ पाये--१ रे जीव! वीतराग ने तो आरंभ और परिग्रह को खराब कहा है और तू इस में लुब्ध हो रहा है तो तेरी क्या गति होगी? इस प्रकार वीतराग की आज्ञा का विचार करे सो 'आणाविचय' २--रे जीव! तू राग द्वेष बन्धन से बन्धा चतुर्गति में अनन्त परिताप सहा, अब तो चेत अपाय के कर्ता राग द्वेष से निवृर्त. ऐसा विचारे सो 'अवाय विचय' ३--रे जीव! तेरे शुभाशुभ कृत कर्मानुसार यह सुख रूप मीठा और दुःख रूप कडवा पाक तुझे प्राप्त हुआ है अब इसे भोगे विना छुटकारा नहीं. तो अब हर्ष शोक क्यों करता है. ऐसा विचारे सो 'विवाग विचय' और ४--रे जीव! वीतराग ने कहा है कि--नीचे का दीपक उलटा उस पर सुलटा और उस पर उलटा दीपक रखने से जैसा आकार होता है तैसा इस लोक का आकार है, नीचे के दीपक के स्थान ७ नरक, दोनों दीपक की सन्धी के स्थान में तिरछा मध्य लोक, वीच के दीपक तक ब्रह्म देव लोक, ऊपर के दीपक तक अनुत्तर विमान और ऊपर सिद्ध भगवान ऐसा विचारे सो संस्थान विचय धर्म ध्यान के ४ लक्षण १--वीतराग प्रणीत शास्त्रानुसार क्रिया अङ्गीकार करने की रुचि (इच्छा) हो सो आणारुइ. २ जीव, अजीव, पुण्य, पाप,

आश्रव, संवर, निर्जरा बन्ध और मोक्ष, इन का सत्य स्वरूप जानने की रुचि हो सो 'निसग्ग रुचि'. ३ गुरू आदि का सद्बोध श्रवण करने की रुचि हो सो 'उपदेश रुचि' और ४ द्वादशांगादि सूत्र सुनने की रुचि हो सो 'सुत्त रुइः' धर्म ध्यानी के ४ अवलम्बन १—वांचना, २ पृच्छना, ३ परियट्टना, और ४ अनुप्पेहा (इन का अर्थ स्वाध्याय तप में किया है) धर्म ध्यानी की ४ अनुप्रेक्षा (विचार)—१ रे जीव ! इस जगत् के मिले और विछडे ऐसे पुद्गलिक पदार्थों से तू प्रीति करता है परन्तु यह प्रीति ही तुझे दुःख रूप होगी, क्यों कि तेरे पुण्य खुटे कि तेरे देखते २ ही इन का प्रादुरभाव (पलटा) या नाश हो जायगा तो भी तुझे ही दुःख होगा और जो तेरा आयु पूर्ण हुआ तो तेरे वाप दादा जैसे गये तू भी इसे छोड कर मरती वक्त दुःखी होगा और मोहम्मद गजनवी बादशाह की तरह रोता हुआ चला जावेगा ? देख ! जिसे तू सुख रूप मान रहा है वह सुख दाता नहीं है केवल दुःख दाता ही हैं ऐसा जान. इस पर से ममत्व को त्याग कर सुखी वन ऐसा विचार करे सो 'अणिच्चाणुपेहा' २ रे चैतन्य तू स्वजनों को आधार भूत मानता है परन्तु वे जब तक तेरे पास धन है, तेरा शरीर ससक्त उन के काम में आवे जैसा है तब तक ही तेरी सहायता करेंगे. जब तू निर्धन या अशक्त बन जायगा तब वे ही तेरे प्यारे तेरा तिरस्कार कर शारीरिक मानसिक हर तरह के दुःखों से तुझे पीडित करेंगे,—तेरे शत्रु बन जायगे ! सच्चा सखा श्री जिनेश्वर देव का कहा धर्म ही भवो भव में सहायक होता है ऐसा जान, दूसरों की आशा छोड उन्हीं का शरण ग्रहण कर सुखी बन. ऐसा विचार करे सो 'असरणाणुपेहा'. ३ रे प्राणी ! तू अकेला है, अकेला ही आया है और अकेला ही चला जायगा जिसे तै ने प्राण से प्यारा कर हर तरह से पोष के सुखी रखा ऐसा यह तेरा शरीर ही तेरे साथ नहीं जायगा तो फिर धन कुटुम्बादिक का तो कहना ही क्या ? तू तो सत् चित आनन्द स्वरूप अविनाशी है और यह

तेरा सम्बन्ध सब विनाशी है. तो तेरे इस के बने ही किस प्रकार! तैने इन क्षण-भङ्गुर पदार्थों के संग से अनन्त बिटम्बना इस संसार में भुगती है तो भी इन से तेरा ममत्व नहीं छूटा. मकडी की समान आप ही जाल बिछाता है और उस में फंस आप ही दुखी होता है. रे मूर्खों के सिर दार! तुझे धिक्कार है अरे अब भी जरा मोह धुन्दी उठा कर आंखें खोल अपने पर की पहचान कर. पर पदार्थों की प्रीति का त्याग कर अपने पदार्थ ज्ञान दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय हैं उनसे प्रीत कर सुखी हो ऐसा विचार करे सो 'एकत्ताणुपेहा' और ४ रे आत्म! तू ने नर्क में क्षेत्र वेदना और यमों की मार तिर्यंच में छेदन भेदन ताडन तर्जन पराधीनता, मनुष्य में दारिद्रता रोगसोगादि, और देवता में अभिग्रिक देव हो हीन कार्य कीये तथा वज्रप्रहार सहा। यों चारों गति में अनन्त बिटम्बना सहन करते अनन्त काल व्यतीत होगया है। उन कष्टों से पुण्य की वृद्धी हुई जिसके बदले में उन दुःखों से मुक्त होने का यह मनुष्य जन्मादि अवसर प्राप्त हुआ है इसलिये अब तू त्रिविध २ आरम्भ परिग्रह का त्याग कर और अन्तरिक क्रोधादि की प्रकृतियों का दमन कर कि जिससे तू इन बिटम्बना से छूट मोक्ष रूप परमानन्द परमपद को प्राप्त हो परम सुखी बने। ऐसा विचार करे सो 'संसारानुपेहा' यह धर्म ध्यान के ४×४=१६ भेद होगये। अब चौथे शुक्ल ध्यान के ४ पाये— १ अनन्तद्रव्यात्म रूप लोक में का एक द्रव्य ग्रहण कर उसका उत्पात क्षय और ध्रौव्यता के अलग २ पर्याय को अर्थ से शब्द में और शब्द से अर्थ में विचार सो 'पुहतवे य केसवियारी' २ उत्पातादि द्रव्य में से एक ही द्रव्य को एक ही पर्याय का भेद भाव रहित एकत्रपने आकाशादि प्रदेशों का अवलम्बन कर रहे उसका विचार करे विचार को पलटावे नहीं किन्तु आगे ही वृद्धी पाता जावे सो 'एगत्तवीय के अवीयारी' एक समय मात्र ठहरने वाली सब से अती सूक्ष्म इर्या बही क्रिया मात्र जिनके रह जाती है ऐसे १३वें गुण-

स्थनावलम्बी केवल ज्ञानी का ध्यान सो 'सूक्ष्म क्रिया अपडवाई' और ४ सर्वतः क्रिया का क्षय कर पर्वत के समान स्थिर योगावस्था को प्राप्त हुये १४ वें गुणस्थानवर्ती अयोगी केवली का कि जो पंच लघु अक्षर उच्चार में जितना काल लगता है उतने में मोक्ष प्राप्त करने वाले का ध्यान सो 'समुच्छिन्न क्रिया अनि यट्टी'। शुक्ल ध्यानी के ४ लक्षण—जैसे तिल में तेल, दुग्ध में घृत, मृतिका में धातु मिली रहने पर भी यन्त्रादि के प्रयोग से अलग हो जाती है तैसे कर्म से आत्म ज्ञानादि त्रिरत्न की क्षायिक भाव से आराधना करने से अलग हो जाता है। इस प्रकार कर्म से अलिप्त रहे सो 'विवेगा'। २ पूर्वात् मातपितादि का और पश्चात स्वासु सुसरादि का वस्त्र संयोग और विषय कषायादि का अभ्यन्तर संयोग इन दोनों प्रकार के संयोग से राग द्वेष द्वारा अलग रहे सो 'विउसग्ग'। ३ स्त्री आदि के हाव भाव का अनुकूल और देव दानवादि कृत दुःख का प्रतिकूल इन दोनों प्रकार के उपसर्ग से चलित नहीं होवे। इन्द्र की अपत्सरा और विकाल दैत्य भी जिनको ध्यान से कदापि किञ्चित मात्र चलित नहीं कर सके सो 'अवट्ठे' और ४ मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द, रूप गन्ध रस स्पर्श में राग द्वेष को प्राप्त नहीं होवे सो 'असमोह'। शुक्ल ध्यानी के ४ अवलम्बन—१ किसी भी कहे सुने देखे पदार्थ का सार ग्रहण कर असार को छोडदे कदापि किञ्चित मात्र क्रोध को प्रणाति में नहीं परिणमावे सो 'क्षान्ति' २ किसी भी वस्तु पर ममत्व नहीं करे सो 'मुत्ती' ३ बाह्याभ्यन्तर सरल रहे सो 'अज्जव' और ४ सदैव द्रव्य भाव से कोमल नम्र रहे सो 'मद्दव'। शुक्ल ध्यानी की ४ अनुप्रेक्षा—१ हिंसादि पांचों आश्रव को दुःख का मूल जान त्याग करे सो सुखी ऐसा विचारे सो 'अवायाणुपेहा' २ जगत् के पुद्गलिक पदार्थ सब अशुभ हैं इसको त्याग सुखी होवे ऐसा विचारे सो 'असुभाणुपेहा' ३ यह जीव जगत् में अनादि से है अनन्त पुद्गल-परावर्तन किये हैं। भव भ्रमण से निवृत्त होना है

वही सुखी, ऐसा विचारे सो 'अनन्त विती याणुपेहा' और ४ सन्ध्या राग, इन्द्र धनुष्य, ओस बिन्दु शोभा देता हुआ क्षण में नष्ट हो जाता है, तैसे ही जगत में स्त्री पुरुष का जोडा, वस्त्राभूषण का चमत्कार, सम्पत्ती का संयोग देखते २ क्षीण में नष्ट हो जाता है, इनकी इच्छा का त्याग करे सो ही सुखी ऐसा विचार करे सो 'विपरिणामाणुपेहा' यह शुक्ल ध्यान के १६ प्रकार और चारों ध्यान के ८+८+१६+१६=४८ प्रकार हुये। इसमें प्रथम के १६ हेय (त्यागने योग) और ३२ उपादेय (आदरने योग) हैं यह ध्यान तप हुआ।

१२ 'विउसग्ग'—छोडने योग्य वस्तु को छोडे सो विउत्सर्ग तप। इस के २ प्रकार—१ द्रव्य विउत्सर्ग और २ भाव विउत्सर्ग. इस में द्रव्य विउत्सर्ग के ४ प्रकार १ शरीर की ममत्व का त्याग कर विभुषा व संभाल नहीं करे सो शरीर विउत्सर्ग. २ ज्ञानवन्त, क्षमावन्त, जितेन्द्रिय अवसर का जान, धीर, वीर द्रढ श्रद्धावन्त इन आठ गुणों का धारक साधु गुरू की अनुज्ञा से सम्प्रदाय का त्याग करे एकल विहारी होवे सो गणविउत्सर्ग ३ वस्त्र पात्र कम रखे सो 'उपधीविउत्सर्ग' और ४ नमुकारसी पोरसी आदि तप तथा द्रव्यादि खाने पीने की वस्तु का प्रमान करे सो 'भत्त पान' विउत्सर्ग और भाव विउत्सर्ग के ३ प्रकार १—क्रोधादिक चारों कषायों की कमी करे सो 'कषाय विउत्सर्ग' २ (१) निरन्तर षट् कायिक जीव के बध के भाव सो 'महारंभ' (२) महाइच्छा (अत्यन्त लोभ) सो महापरिग्रह (३) मदिरा मांस का सेवन और (४) पंचेन्द्रिय की घात इन चार कारणों से जीव नर्क गति में जाता है. (१) दगलबाजी, (२) विश्वासघात (३) झूठ बोलना और (४) तोल माप खोटे रखना. इन चार कारणों से जीव तिर्यंच (पशु) गति में जावे. (१) विनयवन्त, (२) भद्रिक परिणामी, (३) दयालु और (४) गुणानुराग. इन चार कारण से जीव मनुष्य गति में जावे. (१) शरीर शिष्यादि ममत्व रखने वाला 'सरागीसंयमी'

(२) श्रावक 'संयमासंयमी' (३) पराधीनता से प्राप्त होते दुःख सम भाव से सहे सो 'अकाम निर्ज्जरा' और (४) पंचाग्नि आदि तपश्चर्या करे सो 'बाल तपस्वी' इन चार कारण से जीव देवगति में जाय. इन चारों गति में गमन के १६ कारणों का त्याग कर—(१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र और ४ तप मुक्ति गमन के चार कारणों को पालन करे सो 'संसार विउत्सर्ग' और (१) ज्ञानावर्णीय (२) दर्शनावार्णीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयुष्य ६ नाम (७) गौत्र और आठवा अन्तराय इन ८ कर्म बन्धन के * कारणों का त्याग करे सो 'कर्म विउत्सर्ग' यह ६ प्रकार का बाह्य तप और तपाचार पूर्ण हुआ.

* आचार रत्नकार ग्रन्थ में आठ कर्म बन्धन के कारन इस प्रकार कहे हैं-(१) ज्ञाना वर्णिय कर्म ७ कारन से बन्धे-१ शास्त्र वेच आजीवी का करे, २ कुदेव की परसंशा करे, ३ सद्ज्ञान में संशय करे, ४ गान तान किया कुशास्त्र की परसंशा करे, ५ सिद्धान्त के मूल पाठ उत्थापे. ६ अन्य के दूषन प्रगट करे, और ७ मिथ्या शास्त्र का उपदेश करे, (२) दर्शना वर्णिय कर्म १० कारण से बन्धे ३ कुदेव, कुगुरु (हीनाचारी) कुधर्म कुशास्त्र की प्रशंसा करे। ५ धर्म निमित हिंसा करे, ६ मिथ्या बुद्धि रक्खे, अधिक चिन्ता करे, ८ सम्यक्त्व में दोष लगावे. ९ मिथ्या आचार आचरन करे, और १० जान कर अन्याई की रक्षा करे, (३) साता वेदनीय कर्म १४ कारन से बन्धे-१ दया, २ दान, ३ क्षमा, ४ सत्य, ५ शील, ६ इन्द्रिय दमन, ७ संयम, ८ ध्यान, ९ भक्ति, १० सत्पुरुष वंदन, ११ शास्त्रविचार, १२ सद्बोध, १३ अनुकम्पा और १४ सत्याचारका आचरन असाता वेदनीय कर्म १५ कारण से बन्धे १-जीवों का, घात करे. २ छेदन करे. ३ भेदन करे, ४ परितापदे, ५ चुगली करे, ६ दुःखी करे, ७ त्रासदे, ८ अमन्वन करावे, ९ द्रोह करे १० स्थापन डुबावे, ११ असत्य बोले, १२ वैर विरोध करे, १३ झगड़े करावे, १४ क्रोधमान उत्पन्न करे, १५ पर निन्दा करे और १६ स्वयं दुःख शोक करे. (४) मोहनीय कर्म ६ कारन से बन्धे-१ अर्हन्त की निन्दा करे, २ अर्हन्त प्रणित शास्त्र की निन्दा करे, ३ जैन धर्म की निन्दा करे, ४ सद्गुरु की निन्दा करे, ५ उत्सु प्ररूपे. और ६ कुपंथ चलावे। (५) देवायु १० कारन से बन्धे-१ अल्प कषाय, २ निर्मल सम्यक्त्व, ३ श्रावक व्रत शुद्ध पाले. ४ गई वस्तु का मृतक मनुष्यादि की चिन्ता नहीं करे, ५ धर्मात्मा की भक्ति करे, ६ दयादान की मूर्छा करे, ७ जैन धर्मानुरागी, ८ बाल तप करे, ९ अकामनिर्ज्जरा करे और १० साधु के शुद्ध मन वाले तिर्यंचायु २० कारन से बन्धे-१ शील भङ्ग करे, २ ठगाई करे, ३ मिथ्या कर्म समाचरे, ४ खोटा उपदेश देवे, ५ खोटे तोल माप

रखे, ६ दगाबाजी करे ७ झूंठ बोले, ८ झूंठी साक्षी भरे, ६ अच्छी में बुरी वस्तु मिलावे, १० वस्तु का रूपपरिवर्त कर बेंचे ११ पशु का रूप पलटा कर बेंचे, १२ खराब वस्तु पर गिलट चढ़ा कर वेंचे, १३क्लेश करे, १४ निन्दा करे, १५ चोरी करे, १६ अयोग काम करे, १७ कृष्ण नील कापूत लेश्या के परिणाम वाला और २० आर्त ध्यानी। मनुष्यायु १० कारन से वन्धे-१ देव गुरु की भक्ति करे, २ जीवों की दया करे, ३ शास्त्र का पठन पाठन करे, ४ न्याय से लक्ष्मी उपार्जन करे, ५ हुल्लास परिणाम से दान देवे, ६ निन्दा नहीं करे, ८ किसीको पीड़ित नहीं करे, ६ आरंभ घटावे और १० सदैव शरल स्वभावी रहे। नर्कायु २० कारन से वन्धे-१ अति लोभ करें, २ मच्छर बहुत करे, ३ क्रोध बहुत करे, ४ मिथ्या कर्म समाचरे, ५ पचेन्द्रिय का वध करे, ६ जबर असत्य बोले, ७ बड़ी चोरी करे, ८ व्यभिचार सेवन करे, ६ काम भोग में अतिरिक्त होवे, १० मर्म स्थान का भेद करे, ११ पचेन्द्रिय के विषय में लुब्ध होवे, १२ संघ की घात करे, १३ जिन वचन उत्थापे, १४ तीर्थंकर के मार्ग की प्रतिष्ठा कमी करे, १५ मदिरा पान करे, १६ मांस भक्षन करे, १७ रात्री भोजन करे, १८ कन्द मूलादि अभक्ष खावे, १६ रौद्रध्यान ध्यावे, २० कृष्णादि तीन लेश्या के परिणाम में मृत्यु पावे। (६) ऊच नाम ३ कारन से वन्धे-१ जैन धर्म में तल्ला लीन होवे, २ दया दान वन्त होवे, और ३ मुक्ति का अभिलाषी वाला होवे। नीच नाम ८ कारन से वन्धे-१ मिथ्या उपदेश करे, २ कुमार्ग ग्रहण करे, ३ दान स्वयं दे नहीं अन्य को देने दे नहीं, ४ कठोर असत्य वचन बोले, ५ महा आरंभ करे, ६ पर निन्दा करे, ७ सब जीवों का द्रोह करे, और ८ मत्सर परिणाम धारन करे। (७) ऊंच गोत्र १६ कारन से वन्धे-१ सम्यक्त्ववन्त, २ विनयवन्त, ३ शीलवन्त, ४ अदत्त अग्राही, ५ यथा शक्ति दान दे, ६ शरल स्वभावी, १० आचार्य उपाध्याय साधु बहु श्रुत जिनागम की भक्ति करे, ११ साधु की वैय्यावच करे, १२ उत्तम जनों का दास बन रहे, १३ अनेकान्त-जैन मार्ग का समाचरन करे, १४ दोनों वक्त प्रतिक्रमण करे, १५ अनर्थ पापसे बचे, १६ स्वधर्मियों की वत्सलता करे तो तीर्थंकर गोत्र कर्म वन्धे, १० नीच गोत्र ५ कारन से वन्धे-१ क्रोधादि अकषाय करे, २ अन्य के गुन छिपावे, ३ निन्दा करे, ४ चुगली करे, ५ झूंठी साक्षी भरे, और ६ जीव हिंसादि पापारंभ करे, (८) अन्तराय कर्म १८ कारन से वन्धे-१ दया करुणा रहित २ दीन जीवों को अन्तराय दे, ३ असमर्थ पर कोप करे, ४ अनेकान्तिक गुरु की वंदना का निषेध करे, ५ जिन मार्ग की उत्थापना करे, ६ सिद्धान्त का अर्थ उत्थापे, ७ जैन धर्म धारन करने वाले को निषेध करे, ८ ज्ञानीजन गुणीजन की हीलना-निन्दना अशातना करे, ६ सूत्रार्थ पढ़ने वालों को अन्तराय देवे, १० दान स्वयं दे नहीं दूसरे को देते निषेध करे, ११ धर्म कार्य में विघन करे, १२ धर्म कथा की हंसी-मश्करी करे, १३ विपरीत उपदेश करे, १४ असत्य बोले, १५ अदत्त ले, १६ दान-लाभ-भोग-उपभोग की अन्तराय दे १७ गुनी के गुन छिपावे, और १८ अन्य के दोष प्रगट करे, अन्तरायवन्ध करने वाला इच्छित वस्तु पावे नहीं पावे तो भोग सके नहीं दुःखी दरिद्री होवे। ऐसा जान अशुभ कर्म वन्धन के कारन अपने को अवश्य बचना चाहिये। कर्म वन्धन से आत्मा बचावे सो कर्म विउसगतप

पूर्वोक्त प्रकार ज्ञानाचार के ८ दर्शनाचार के ८, चारित्राचार के ८ [ये] २४ अतीचार का त्याग कर गुनों को स्वीकार करे और १२ प्रकार का [त]प करे ये ३६ गुन आचार्यजी के कहे. इस में आप मन वीर्य फोडे और [दू]सरे को फोडावे।

५ 'वीर्याचार'—श्री भगवती सूत्र में तथा विवहार सूत्र में ५ प्रकार के व्यवहार कहे हैं—सूत्र 'पंच विवहार पण्णत्ते, तंजहा—आगमो, सुय, आणा, धारणा, 'जीए' अस्यार्थ=१ तीर्थंकर, केवल ज्ञानी चौदा पूर्व से दश पूर्व तक के पाठक, इन की आज्ञा में चले सो 'अगम्य विवहार' २ इन के अभाव में आचारंगादि सूत्रानुसार प्रवृत्ति करे सो 'सूत्र विवहार ३ इन के अभाव में--जिस वक्त जो आचार्यजी हों उन की आज्ञा में तथा देशान्तर में रहे पत्र दि द्वारा गूढार्थ कर आज्ञा करे वैसे प्रवर्ते सो 'आज्ञा विवहार' ४ इस के अभाव में--आचार्यादि से गुरु आदि ने धारण की हो तथा पूर्व परम्परा से धारना चली आती हो जिस प्रमाने प्रवर्ते सो 'धारणा विवहार' और ५ इस के अभाव में द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव में फरक पड़ा देख संघयनादि की हीनता देख चतुर्विध संघ मिल कर जो निर्वद्य मर्यादा (कानून) का बन्धन कर जिस प्रमाने चले सो 'जीत विवहार'. इन पांच विवहार आचार्यजी आप सम्यक् प्रकार से ज्ञाता हो * इस प्रमाने प्रवृत्ति करें. क्षणान्तर रहित सदैव ज्ञान ध्यान तप संयम सदुपदेशादि धर्म वृद्धि के काम में उद्यमी रह कर बल वीर्य पुरषाकार पराक्रम फोडे और अन्य को समझावे कि—अहो भव्यों ! इस जीव ने भव भ्रमण में

* उक्त पंच प्रकारके व्यवहारानुसार वर्तमान कालके चतुर्विध संघ प्रवर्ता करेंगे तो सहज कुसम्प का नाश हो जायगा, सद्गुनो का प्रसार होजायगा, और चौथे धर्मके समान ही यह प्राचीन धर्मोत्तम परम पवित्र जैन धर्म जगत् व्यापी वर्तमान बने इसमें किंचित भी संशय नहीं है। ऐसा मै निश्चय आत्म से कहता हूं। पंच विवहार में जो 'इसके अभाव में' शब्द रखा है वह वस्तु का अभाव नहीं समझना किन्तु देश काल आद का अभाव समझना चाहिये ? क्योंकि आचार्य सूत्रादि तो पंचम आरे के अन्त तक कायम रहेंगे।

क्षुधा, तृषा, शीत, ताप, भार, ताड पराधीनता से अनेक वक्त कष्ट सहे जिस से कुछ गर्ज सरी नहीं, कुछ निर्जरा हुई नहीं किन्तु उलटा कर्म बन्ध कर आगे अधिकाधिक दुःख को प्राप्त हुआ. अहो भव्यों! निरन्तर भव भ्रमण में परवश पन का कष्ट सहा है उस के अनन्त वें भाग-मात्र भी अब स्ववश कर धर्मार्थ कष्ट सहें अर्थात् प्राप्त काम भोगों का त्याग कर संयमाचरण कर ग्रामानुग्राम विहार कर आर्यानार्य के तरफ से प्राप्त होते अनुकूल प्रातिकूल परिषहोपसर्ग को समभाव से सह कर, तैसे ही आन्तरिक कषाय विषय मद मात्सर्य अहन्ता ममता रूप शत्रुओं का दमन कर निरन्तर धर्मारम्भ में रमण करें तो यत्किञ्चित् (स्वल्प) काल में परम कल्यान कर सके, भव भ्रमण के फेरे से निवृत्त कर मोक्ष के परमानन्द परम सुख को प्राप्त होवे. चेतो! चेतो!! यह परमोत्म अवसर प्राप्त हुआ है, इसे व्यर्थ न गमावो. अलभ्य लाभ प्राप्त कर लो! इत्यादि बोध से समझा कर धर्म मार्ग में लगा कर यथा उचित सहाय दे कर दिला कर बल वीर्य फोडावे सो वीर्याचार.

पाच समिती और तीन गुप्ति का कथन चारित्राचार में कह दिया है।

पञ्च इन्द्रिय निग्रह।

१ श्रोतेन्द्रिय (कान) इसके ३ विषय १ मनुष्य पक्षी आदि जीव बोले सो जीव शब्द, २ भींतादि के पतन से शब्द हो सो अजीव शब्द, और ३ बजाने वाला जीव और वादिन्त्र अजीव दोनों मिल शब्दोत्पन्न हो सो मिश्र शब्द. श्रोतेन्द्रिय के १२ विकार—जैसे पुण्यात्मा प्राणी बोले तो अच्छा लगे, पापात्मा बोले तो बुरा लगे, यह जीव शब्द के दो प्रकार रूपा पडने का शब्द अच्छा लगे भींत पडने का शब्द खराब लगे, यह अजीव शब्द के दो प्रकार, उत्सव का वादिन्त्र अच्छा लगे, मृत्यु का वादिन्त्र खराब, यह मिश्र शब्द के दो प्रकार यों युक्त तीन शब्द को

शुभाशुभ से दुगुने करे तब ३×२=६ हुये. उक्त ६ प्रकार के शब्द कभी खराब भी अच्छे लगते हैं जैसे ससुराल में गालियां और कभी अच्छे भी बुरे लगते हैं. जैसे लग्नोत्सव में कोई कहे 'राम नाम सत्य है!' यों उक्त ६ को राग द्वेष के दुगने करते ६×२=१२ श्रोतेन्द्रिय के विकार होते हैं. श्रोतेन्द्रिय के विषयाशक्ति से मृग प्राण मुक्त होता है और सर्प कारा-ग्रह में फंसता है. तो मनुष्यों की क्या गति होगी! ऐसा जान राग द्वेष उत्पन्न हो ऐसे शब्द सुनना नहीं और जो कभी सुनने में आजाय तो उन पर राग द्वेष कर कर्म बन्ध नहीं करना। क्योंकि श्रोतेन्द्रिय से कर्म बन्ध करने वाला आगे को बधिर. कान के रोगों वाला या कान रहित चौरि-न्द्रियादि गति को प्राप्त होता है और जो श्रोतेन्द्रिय को वश में रखता है. वह कान की आरोग्यता को प्राप्त हो, अच्छे शब्द सुनने वाला हो. क्रम से मोक्ष प्राप्त करता है।

२ 'चक्षुरेन्द्रिय' (आंख) इसके १ कृष्णवर्ण, २ हरितवर्ण, ३ रक्तवर्ण, ४ पित्तवर्ण और ५ श्वेतवर्ण. यह ५ विषय. इन पांच को उक्त प्रकार की युक्ति लगा कर पांचों वर्ण वाली वस्तु—१ कितनीक सचित्त (सजीव) है २ कितनीक अचित्त निर्जीव है. ३ कितनीक मिश्र है. यों ५×३=१५ भेद हुए. ये १५ कभी शुभ और कभी अशुभ होजाते हैं. यों १५×२=३० भेद हुए. इन ३० पर कभी राग (प्रेम) कभी द्वेष उत्पन्न होता है. यों ३०×२=६० विकार चक्षु इन्द्रिय के होते हैं. चक्षुरेन्द्रिय के विषयाशक्त हो पतङ्ग दीपक पर झंपापात कर मृत्यु पाता है. तो मनुष्य का क्या हाल! ऐसा जान राग द्वेष उत्पन्न हो ऐसे रूप का अवलोकन करना नहीं जो कभी देखने में आ जाय तो उन पर राग द्वेष कर कर्म बन्ध करना नहीं क्यों कि चक्षुरेन्द्रिय से कर्म बन्ध कर जीव आगे को अन्धे काने [illegible] के रोगी होते हैं तथा चक्षु रहित तेन्द्रिय [illegible] ऐसा जान पंचों [illegible] करो भाई॥ नहीं [illegible] है [illegible] न्द्रिय आरोग्य [illegible] है।

क्षुधा, तृषा, शीत, ताप, भार, ताड पराधीनता से अनेक वक्त कष्ट सहे जिस से कुछ गर्ज सरी नहीं, कुछ निर्जरा हुई नहीं किन्तु उलटा कर्म बन्ध कर आगे अधिकाधिक दुःख को प्राप्त हुआ. अहो भव्यों ! निरन्तर भव भ्रमण में परवश पन का कष्ट सहा है उस के अनन्त वें भाग-मात्र भी अब स्ववश कर धर्मार्थ कष्ट सहें अर्थात् प्राप्त काम भोगों का त्याग कर संयमाचरण कर ग्रामानुग्राम विहार कर आर्यानार्य के तरफ से प्राप्त होते अनुकूल प्रातिकूल परिषहोपसर्ग को समभाव से सह कर, तैसे ही आन्तरिक कषाय विषय मद मात्सर्य अहन्ता ममता रूप शत्रुओं का दमन कर निरन्तर धर्मारम्भ में रमण करें तो यत्किञ्चित् (स्वल्प) काल में परम कल्यान कर सके, भव भ्रमण के फेरे से निवृत कर मोक्ष के परमानन्द परम सुख को प्राप्त होवे. चेतो ! चेतो ! ! यह परमोत्म अवसर प्राप्त हुआ है, इसे व्यर्थ न गमावो. अलभ्य लाभ प्राप्त कर लो ! इत्यादि बोध से समझा कर धर्म मार्ग में लगा कर यथा उचित सहाय दे कर दिला कर बल वीर्य फोडावे सो वीर्याचार.

पाच समिती और तीन गुप्ति का कथन चारित्राचार में कह दिया है ।

पञ्च इन्द्रिय निग्रह ।

१ श्रोतेन्द्रिय (कान) इसके ३ विषय १ मनुष्य पक्षी आदि जीव बोले सो जीव शब्द, २ भींतादि के पतन से शब्द हो सो अजीव शब्द, और ३ बजाने वाला जीव और वादिन्त्र अजीव दोनों मिल शब्दोत्पन्न हो सो मिश्र शब्द. श्रोतेन्द्रिय के १२ विकार—जैसे पुण्यात्मा प्राणी बोले तो अच्छा लगे, पापात्मा बोले तो बुरा लगे, यह जीव शब्द के दो प्रकार रूपा पडने का शब्द अच्छा लगे भींत पडने का शब्द खराब लगे, यह अजीव शब्द के दो प्रकार, उत्सव का वादिन्त्र अच्छा लगे, मृत्यु का वादिन्त्र खराब, यह मिश्र शब्द के दो प्रकार यों युक्त तीन शब्द को

शुभाशुभ से दुगुने करे तब ३×२=६ हुये. उक्त ६ प्रकार के शब्द कभी खराब भी अच्छे लगते हैं जैसे ससुराल में गालियां और कभी अच्छे भी बुरे लगते हैं. जैसे लग्नोत्सव में कोई कहे 'राम नाम सत्य है!' यों उक्त ६ को राग द्वेष के दुगने करते ६×२=१२ श्रोतेन्द्रिय के विकार होते हैं. श्रोतेन्द्रिय के विषयाशक्ति से मृग प्राण मुक्त होता है और सर्प कारा-ग्रह में फसता है. तो मनुष्यों की क्या गति होगी! ऐसा जान राग द्वेष उत्पन्न हो ऐसे शब्द सुनना नहीं और जो कभी सुनने में आजाय तो उन पर राग द्वेष कर कर्म बन्ध नहीं करना। क्योंकि श्रोतेन्द्रिय से कर्म बन्ध करने वाला आगे को बधिर. कान के रोगों वाला या कान रहित चौरि-न्द्रियादि गति को प्राप्त होता है और जो श्रोतेन्द्रिय को वश में रखता है. वह कान की आरोग्यता को प्राप्त हो, अच्छे शब्द सुनने वाला हो. क्रम से मोक्ष प्राप्त करता है।

२ 'चक्षुरेन्द्रिय' (आंख) इसके १ कृष्णवर्ण, २ हरितवर्ण, ३ रक्तवर्ण, ४ पित्तवर्ण और ५ श्वेतवर्ण. यह ५ विषय. इन पांच को उक्त प्रकार की युक्ति लगा कर पांचों वर्ण वाली वस्तु—१ कितनीक सचित्त (सजीव) है २ कितनीक अचित्त निर्जीव है. ३ कितनीक मिश्र है. यों ५×३=१५ भेद हुए. ये १५ कभी शुभ और कभी अशुभ होजाते हैं. यों १५×२=३० भेद हुए. इन ३० पर कभी राग (प्रेम) कभी द्वेष उत्पन्न होता है. यों ३०×२=६० विकार चक्षु इन्द्रिय के होते हैं. चक्षुरेन्द्रिय के विषयाशक्त हो पतङ्ग दीपक पर झंपापात कर मृत्यु पाता है. तो मनुष्य का क्या हाल! ऐसा जान राग द्वेष उत्पन्न हो ऐसे रूप का अवलोकन करना नहीं जो कभी देखने में आ जाय तो उन पर राग द्वेष कर कर्म बन्ध करना नहीं क्यों कि चक्षुरेन्द्रिय से कर्म बन्ध कर जीव आगे को अन्धे काने [illegible] के रोगी होते हैं तथा चक्षु रहित तेन्द्रिय [illegible] गति [illegible] पाते हैं [illegible] ऐसा जी [illegible] नहीं बान्धते हैं व दिव्य आरोग्य चक्षु

अवलोकन करने वाले हो क्रमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

३ घ्राणेन्द्रिय (नाक) इसके १ सुभिगन्ध और २ दुर्भिगन्ध दो विषय हैं और दो सचित्त, दो अचित्त, दो मिश्र यों २×३=६ और ६ पर राग द्वेष कर ६×२=१२ विकार घ्राणेन्द्रिय के होते हैं. घ्राणेन्द्रिय के विषयाशक्त हो भ्रमर पुष्प में फंस मृत्यु को प्राप्त होता है तो मनुष्य का क्या हाल? ऐसा जान राग द्वेष उत्पन्न हो ऐसा गन्ध सुंघना नहीं और कभी बस आजाय तो उस पर राग द्वेष कर कर्म बन्ध करना नहीं, क्योंकि घ्राणेन्द्रिय से कर्म बन्ध करने वाले आगे नाक के अनेक रोगों को प्राप्त होते हैं. नकटे होते हैं या नाक रहित द्विन्द्रिय आदि गति में जाते हैं. और जो वश में करते हैं वे नाक की आरोग्यता को प्राप्त होते हैं सुभिगन्ध के भोगी बनते हैं. क्रमसे मुक्ति प्राप्त करते हैं।

४ रसेन्द्रिय (जिव्हा) इसके पांच विषय—१ कटु, २ मिष्ट, ३ तीखा, ४ क्षारा, ५ कषायला. इन पांचों रस मय सचित्त, अचित्त, मिश्र तीनों प्रकार के पदार्थ होते हैं. यों ५×३=१५ हुए यह १५ शुभ भी होते हैं और अशुभ भी होते हैं. यों १५×२=३० हुए इन ३० पर कभी राग और कभी द्वेष होता है. यों ३०×२=६० विकार रसेन्द्रिय के होते हैं. रसेन्द्रिय के विषयाशक्त हो मच्छी अकाल मृत्यु को प्राप्त होती है. तो मनुष्य की क्या गति, ऐसा जान राग द्वेष उत्पन्न हो ऐसा रस भोगना नहीं. और भोगने में आते रस पर राग द्वेष नहीं करते सम्भाव रख ऐसा समझे "उतरा घांटी हुआ माटी" स्वाद क्षणएक का है परन्तु कर्म बन्ध कर्ता होता है और जिसके फल से आगे जीव मुक्क बोबडा आदि रसना के अनेक रोगों से पीडित होता है तथा रसना रहित एकन्द्रियादि गति को प्राप्त [illegible] है और वश में करता है वह स्पष्ट आरोग्य रसोपभोग की इच्छा [illegible] करने [illegible] हो [illegible] मे मोक्ष प्राप्त करता है. कहते हैं कि— घ्राणेन्द्रि [illegible] यह [illegible] शब्द [illegible] क झुकी तो चार धारी" इसका यही

अर्थ होता है कि जो एक रसेन्द्रिय तृप्त (धापी हुई) होगी तो सुनने को, देखने को, सुगन्ध को, भोगोपभोग के लिये चारों इन्द्रियां तृषातुर (भूखी) रहेगी और रसना भूखी रही अर्थात् पेट खाली होगा तो चारों इन्द्रियों के विषय पर तिरस्कार प्राप्त होगा. इस लिये इन्द्रियों को काबू में करने का परमोत्तम सच्चा और सीधा उपाय यही है कि खाने का निमय रक्खे ।

५ स्पर्शेन्द्रिय (शरीर) इसके ८ विषय—१ गुरू, २ लघु, ३ शीत ४ उष्ण, ५ रूक्ष, ६ चिक्कन, ७ कौमल और ८ कठिन. यह आठ ही स्पर्शमय पदार्थ सचित अचित मिश्र तीनों ही प्रकार के होते हैं इसलिये ८×३=२४ हुए. यह २४ कभी शुभ (अच्छे) और कभी अशुभ (बुरे) होते हैं इस लिये २४×२=४८ हुए. इन ४८ पर कभी राग और कभी द्वेष उत्पन्न होता है. यों ४८×२=९६ विकार स्पर्शेन्द्रिय के होते हैं. स्पर्शेन्द्रिय के वश में पडे हस्ती खड्डे में पड मृत्यु को प्राप्त होता है. इसलिये राग द्वेष उत्पन्न हो ऐसा स्पर्श नहीं भोगना. प्राप्त हुए स्पर्श पदार्थों पर राग द्वेष नहीं करना, क्योंकि राग द्वेष से कर्म बन्ध होता है और जिससे आगे गड गुम्बड कुष्टादि अनेक रोगों अपङ्गतादि दुःख प्राप्त होता है और वश में करने से आरोग्य ससक्त शरीर व भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त होती हैं क्रमसे मोक्ष प्राप्त करता है ।

श्लोक—कुरङ्ग मतङ्ग पतङ्ग भृङ्ग, मीन हता पंच भी एव पंच ।
एकः प्रमादीश्च कथं न हन्त्य, सेवते पंच भी रेव पंच ॥

नासीकेत पुरान अध्याय ६ श्लो. ३६

अर्थ-सवेया—दीपक देख पतङ्ग जला और स्वर शब्द सुन मृग दुःख पाई ।
सुगन्ध लेइ मरा भ्रमरा और रसके काज मच्छी बिललाइ ॥
काम के काज खुता गज राज यह पर पंच हुए दुःख दाइ ।
पडे पांचों वश क्या गति तस, ऐसा जान पंचों ही वश करो भाई ॥

ब्रह्मचर्य की ९ वाड ।

जैसे कृषी लोग क्षेत्र के स्वरक्षणार्थ कांटों की बाड चारों ओर लगाते हैं, तैसे ही ब्रह्मचर्य रक्षणार्थ ब्रह्मचारी ९ बाड (नियम) बनाते हैं।

गाथा—आलो उत्थी जणाइन्नो, थी कहा मणोरमा ॥ संथवो चेव नारी णं । तासिं दिय दरिसणं ॥११॥ कुइयं रुइयं गीयं । हासि यं भूत्ता सिणा णिय ॥ पणीयं भत्त पाणं च । अइ साय पाण भोयणं ॥१२॥ गत भूसण मिठंच । काम भोग य दुज्जयं ॥ नर सत्त गवे सिस्स । विसं तालउ डं जहा ॥ १३॥

१—'आलो उत्थी जणाइ न्नो'—जैसे जिस मकान में बिल्ली रहती हो वहां मूसा (चूहा) रहा तो उसका नाश होता है, तैसे ही जिस मकान में देवता मनुष्य तिर्यंच की स्त्री या नपुंसक रहते हों वहां ब्रह्मचारी रहे तो उनके ब्रह्मचर्य का नाश होवे. दशवैं कालिक सूत्र में कहा है—

गाथा—हत्थं पायं पडि छिन्नं, कन्नं नास विकप्पियं ॥ आवि घासं सयं नारी । बंभयारी वीवजए ॥

अर्थ—सो बर्ष की युक्त वृद्ध वय को प्राप्त हुई * जिसके कान नाक छेदन किये हों ऐसी स्त्री भी जिस मकान में रहती हो तो उस मकान में ब्रह्मचारी रहे नहीं ।

२—'थी कहा मणोरमा' जैसे निम्बु इमली आदि खट्टे पदार्थ का नाम लेनेसे मुंह में पानी छूटता है, तैसे स्त्री के सौन्दर्य शृंगार लावण्यता हावभाव चातुर्य का वर्णन (कथा) करने से विकार उत्पन्न होता है । ३ 'संथवो चेव नारीणं'—जैसे गेहू के आटे में भूरा कोला रखने से उसका बन्ध नहीं होता है और चांवलों के पास कच्चे नारियल रहने से उसमें कीडे पड जाते हैं, तैसे स्त्री पुरुष एकासन बैठने से ब्रह्मचर्य नष्ट होता है ४ 'तासिं दिय

* श्लोक—अग्नि कुण्ड समानारी, घृत कुम्भ समोनर ॥ जानु जंघा पर स्त्रीणाम् । कस्य निश्चिलित मनः ॥

अर्थ—अग्नि की भट्टी के समान स्त्री है और घृत के घट के समान पुरुष है, जो स्त्री

दरिसणं' जैसे 'भक्खरस्त्र च्छूणं' सूर्य के सन्मुख बहुत देर तक देखने से आंखों का नुकशान होता है। तैसे स्त्री के आङ्गोपाङ्ग विकार दृष्टी से निरक्षण करने से ब्रह्मचर्य नष्ट होता है. ५ 'कुइयं रुइयं गीयं हसीयं'—जैसे घन गर्जाव के श्रवन मे मयुर को हर्ष होता है तैसे टट्टी भींति पडदे आदि के अन्तर में रहे दम्पती के क्रीडा के समय होते हुए कुचेष्ट के रुदन के गीत गान के हास्य विनोद के शब्द सुनने से बिकारोद्भव होता है. ६ 'भुत्ता सिणाणिय' जैसे किसी बुड्ढी के घर की तक्र (छाछ) पीकर गये मुसाफिर छः महीने में पीछे आये तब बुढिया बोली—तुम्हारे गये बाद तक्र में सर्प निकला था. मैं तुम्हें जिन्दा देख खुशी हुई' इतना सुनते ही वे मृत्यु शरण हुए। तैसे ही संसारावस्था में स्त्री के साथ किये हुये भोजन भोगादि का स्मरण करने से ब्रह्मचर्य नष्ट होता है. ७ 'पणीयं भत्त पाणं च' जैसे सन्निपात के रोगी को दुग्ध शक्कर का पान रोग वृद्धक होता है. तैसे सदैव सरस कामोतेजक भोजन भी विकार वृद्धक होता है. ८ 'आइ सायं पाण भोयणं'— जैसे सेर भर पके ऐसी हांडी में सवा सेर खीचडी पकाने से हांडी फूट जाती है, तैसे ही मर्यादा (भूख) से अधिक अहार करने से अजीर्णादि रोगोत्पन्न होते हैं. और विकार की वृद्धी हो ब्रह्मचर्य नष्ट होता है. और ९ 'गत भूसण मिट्ठंच' जैसे दरिद्री के पास चिन्तामणी नहीं रहता है, तैसे स्नान मंजन शृंगारादि कर रूप को आकर्षणीय रूप बनाने वाले का ब्रह्मचर्य नष्ट होता है. अन्य मत में भी कहा है—

श्लोक—सुखं शैय्या सूक्ष्म वस्त्रं, ताम्बूल स्नान मंजनं ॥ दन्त-कष्ट सुगन्धं च,
ब्रह्मचर्यस्य दूषणं ॥

अर्थ—कोमल शैय्या में शयन, महीन वस्त्र धारन, तम्बोल भक्षन,

के साथ रहता है उसका मन किस प्रकार निश्चल रहता है अर्थात् कदापि निश्चल नहीं रहता है. इसलिये जिस स्थान से स्त्री उठ गई हो उस स्थान पर मुहूर्त पर्यन्त बैठना नहीं चाहिये, क्योंकि उसकी गरमी के पुद्गलों शरीर स्पर्श होने से विकार उद्भव होने का संभव है।

स्नान, शृंगार, कष्ट से दन्त घर्षन, सुगन्ध लेपन, यह ब्रह्मचर्य पालन कर ने वाले को दूषित करते हैं. और भी—

गाथा—विभूसा वत्तियं भिक्खू । कम्म बंधइ चिक्कणं ॥ संसार सायरे घोरे ।
जेणं पड इदुरुत्तरे ॥ दश० ॥

अर्थ—जो साधु स्नान शृंगारादि से शरीर की विभुषा करता है वह चिक्कन (कठिन) कर्मों का बन्धन कर घोर संसार सागर में ऐसा डूबता है कि पीछा निकलना ही मुशकिल ! इत्यादि शास्त्र प्रमान से और स्नान कर के शरीर की सुन्दरता का अवलोकन करने दर्पन तेल कंगा शरीर का स्वरूप बनाने भोजन वस्त्रादि शृंगार यों क्रमसे बृद्धी पाते आखिर ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता हैं. इस प्रकार व्यवहार से ब्रह्मचारी को कदापि स्नान नहीं करना चाहिये. जो यहां शुद्धा शुद्धी का प्रश्न उपस्थित करते हैं उनको जानना चाहिये कि मल मूत्र और कई मुर्दे गढे ऐसे स्थानों में रहा पानी तथा ऐसे स्थान की मट्टी का बना घाट किस प्रकार शुद्ध हो सकता है. संख्यात त्रस और असंख्यात तथा अनन्त स्थावर जीवों का पिण्ड पानी की घात कर जीवों के शरीर से शरीर का घर्षन कर किस प्रकार शुद्ध हो सकेंगे ? यह रुद्र शुक्र से उत्पन्न हुआ हड्डी मांस रक्तादि का पिण्ड चर्म कर आच्छादित मल मूत्रादि अशुची से भरा हुआ "सदापाय काय" सदैव अपवित्र रहने वाले शरीर को पानी के प्रक्षालन से किस प्रकार शुद्ध कर सकते हो ? तुम्हार मत प्रमाने शुद्ध होता ही होतो 'अपाने सत्तधा धोतं' सा बक्त पानी के कुल्ले से मुंह प्रक्षाल कर कोई एक भी कुल्ली किसी पर भी डालदे तो वो घृणा क्यों करता है. और भी देखिये काशी खण्ड पुराण—

श्लोक—मृदो भार सह श्रेण । जल कुम्भ शतानिच ॥
न शुद्धन्ति दुराचरे । स्नानं तीर्थ शतैरपि ॥

अर्थ—कोई दुराचारी मनुष्य हजारों भार मिट्टी शरीर को मल २ कर सैकडों घडे पानी से प्रक्षाल (स्नान) करे तो भी शुद्ध नहीं होता है. इतने

पर भी स्नान से शुद्धि मानते हो तो जाति भेद क्यों रख बैठे हो भंगी भील चमारादि को भी स्नान करा ब्राह्मण क्यों नहीं बना लेते हो. अहो सुज्ञो! बिना स्नान किये ही ब्रह्मचारी 'सील स्नानं सदा सुची' सील रूपी स्नान कर सदैव पवित्र है. जैसे मकान में कोई बच्चा विष्टा कर देता है तब उतनी ही जगह साफ की जाती है तैसे ही ब्रह्मचारी भी मलादि कर मलीन जितना शरीर हुआ है उतना धोकर साफ करते हैं अस्वध्याय से निवृतते हैं. किन्तु सर्व शरीर धोने ने की कुछ जरूरत नहीं है।

उक्त ९ वाड में से किसी एक वाड का भङ्ग करने वाले ब्रह्मचारी १ 'संकावा' ब्रह्मचार्य का पालन करूं कि नहीं करूं. इस प्रकार स्वयं को तथा ब्रह्मचर्य का पालन करता है या नहीं करता है ऐसी दूसरे को शंका उत्पन्न होगी। २ 'कंखावा' भोगोपभोग भोगने की कांक्षा होगी। ३ 'चितिगिच्छावा' इतने दिन ब्रह्मचर्य पालने से कुछ फल तो प्राप्त हुआ ही नहीं आगे क्या होगा यों चिकित्सा होगी। ४ 'भेयंवालभिज्जा' जिससे किसी वक्त ब्रह्मचर्य नष्ट कर देगा. 'उमायंवायाउणिज्जा' उन्माद (भरित) पैदा होगा. यों विशेष अभिलाषा से 'दीह कालीयं वा रोगायं का हविज्जा' दीर्घ काल पर्यन्त रहे ऐसा सुजाक प्रमेह शुक्रादि रोग को प्राप्त होगा। और "केवली पण्णताओ धम्माओ भंसेज्जा" केवली प्रणित ब्रह्मचर्य धर्म (संयम) से भृष्ट होकर अनन्त काल संसार परिभ्रमण करेंगे. ऐसा जान आचार्य भगवन्त नव वाड विशुद्ध ब्रह्मचर्य के पालक होते हैं।

४ कषाय से मुक्त।

जिससे कष+आय=संसार का कस आकर कर्मों का रस जमे वे कषाय ४ क्रोध मान, माया और लोभ. इसमें से १ क्रोध का निवास स्थान कपाल में है. यह प्रकृती को क्रूर (निर्दयी) बना देता है. इसके आवेश में आकर माता, पिता, भाई, भगिनि, पुत्र, पुत्री, स्त्री, स्वामी, सेवक इत्यादि की घात करने में विलम्ब नहीं करता है कि वह कभी आप घात भी कर

डालता है. इसलिये इसे शास्त्र में चाण्डाल कहा है. यह प्रकट हो क्षमा सील, सन्तोष, तप, संयमादि गुणों को जला कर चैतन पर मिथ्या रूप काला रंग चढा देता है आप जलता हुआ अनेकों को जलाता है इसलिये इसे 'ज्वाला' भी कहा है. क्रोधी मत वाले (नशा बाज) के समान वे शुद्ध हो प्राण प्यारी वस्तु को तोड फोड डालता है. और फिर पश्चाताप करता है. अच्छा बुरा कुछ नहीं देखने से क्रोधी अन्धेके समान होता है.* अथाग उपकारी का उपकार क्षण मात्र में भूल जाने से क्रोधी कृतघ्नी होता है. 'कोहं पीइ पणासइ' क्रोधी के साथ प्रीति का निर्वाह नहीं होता है. जमी हुइ बात को जरामें बिगाड देता है. क्रोध से कुरूप सत्व हीन अप यशी अनन्त मरन करने वाला जीव हो जाता है इसलिये यह महा विष (जहर) के समान है. इत्यादि अनन्त दुर्गुणों का धारक क्रोध को जान कर आचार्यजी कदापि सन्तप्त नहीं होते हैं. सदैव शान्त-शीतली भूत रहते हैं।

२ 'मान' इसका निवास स्थान गर्दन है. यह प्रकृति को करडी बनाने से 'माण विणय नासेण' विनय गुन नष्ट हो जाता है. विनय विन ज्ञान नहीं, ज्ञान विन जीवाजीव की पहिचान नहीं, जीवाजीव जाने विना दया नहीं, दया विन धर्म नहीं, धर्म विन कर्मों का नाश नहीं और कर्मों के नाश विना मुक्ति नहीं. इस लिये मोक्ष गमन का अटकाने वाला अभिमान ही है. बडे २ ज्ञानी, ध्यानी, तपी, संयमी मान के मरोडे पाप को छिपा रखते हैं. जिससे विराधिक हो जाते हैं. गति बिगाड देते हैं. मान से महान्ध बना जीव धन कुटुम्ब और अपने शरीर को तृणवत गिनता है, इनका नाश करते विलम्ब नहीं करता है, मानी का सदैव अवगुन

* When passion enters at the fore gate, Wisdom goes out at the postern Fielding's Proverbe अर्थात् जब आगे के द्वारसे क्रोध प्रवेश कर्ता है तब पीछे के द्वारसे अकल भगजाती है। Anger begins with folly and ends with repenternce (Mander's Proverbs) अर्थात् क्रोध के आदि में मूर्खता है और अन्तमें पश्चाताप है। [illegible]

ग्राही छिद्रता की आदि दुर्ध्यान रहता है. मान के स्थान क्रोध जरूर पाया जाता है. यह मान ८ प्रकार से उत्पन्न होता है यथा "जाति लाभ कुलै-श्वर्य बल रूप तप श्रुति" १—मेरे नाना मामा ऐसे उत्तम हैं मेरी माता सुशीलादि गुणों सहित है इत्यादि माता के पक्ष का अभिमान करना सो 'जात्याभिमानः २ मेरे दादा भ्राता ऐसे श्रेष्ठ हैं, मैं ब्रह्म क्षत्री शेठ पाटिलादि उत्तम कुलोत्पन्न हूं ऐसे पिता के पक्ष का अभिमान करे सो 'कुलाभिमान' ३ मैंने ऐसे पराक्रम के काम किये किस की मगदूर जो मेरे सामने आवे इत्यादि बलका अभिमान करे सो 'बलाभिमान' ४ मैं ऐसा कमाने वाला हूं या मुझे गोचरी में इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है ऐसा करे सो 'लाभाभिमान' ५ मेरे समान सुरूप तेजस्वी कौन है! ऐसा करे सो 'रूपाभिमान' ६ मैं बडा तपस्वी हूं उपवासादि तो मेरे गिनती में ही नहीं ऐसा करे सो 'तपाभिमान' ७ मैं सब शास्त्रों का ज्ञाता हूं इतने ग्रन्थ बनाये वादी तो मेरे सामने टिक ही नहीं सक्ता है ऐसा करे सो 'श्रुताभिमान' और ८ मेरा इतना परिवार है, मैं सम्प्रदाय का मालिक (पूज्य) हूं, सब मेरी आज्ञा धारक हैं, ऐसा अभिमान करे सो. 'ऐश्वर्यभिमान' जिस २ प्रकार का अभिमान करता है आगमिक काल में उसकी ही हीनता पाता है: कितने अफसोस की बात है कि जो उत्तम वस्तुओं विशेष उत्तमता प्राप्त करने से प्राप्त हुई है उनसे ही नीचता प्राप्त कर लेना. ऐसा जान आचार्य महाराज सदैव महाविनीत नम्रात्मा रहते हैं।

३ 'माया' इसका स्थान पेट में है, यह प्रकृती को वक्र बनाती है. शास्त्र में स्थान २ पर 'मायामिथ्या' शब्द कहा है अर्थात् माया के स्थान मिथ्यात्व अवश्य पाता है. जो पुरुष माया करता है वह मरके स्त्री होता है. स्त्री माया करे तो नपुंसक होवे, नपुंसक माया करे तो तिर्यंच होता है और तिर्यंच मायासे एकेन्द्रियपना प्राप्त करता है यों मायासे नीच २ गति होती है. माया सहित किया हुआ तप संयम का फल भी यथा

उचित प्राप्त नहीं होता है. समवायांग शास्त्र में कहा है—१ त्रस जीव को पानी में डुबा कर, श्वाशोश्वास रुंधन कर, ३ धूम्र के प्रयोग कर, ४ मस्तक में घाव कर, ५ मस्तक में चर्म बन्धन कर मारने वाला, ६ मूर्ख का उपहास्य करने वाला, ७-८ अनाचार सेवन कर छिपावे तथा दूसरे पर डाले ९ सभा में मिश्र भाषा बोले, १० बलात्कार से भोगी के भोग का निरुंधन करे, ११ ब्रह्मचारी नहीं तो भी ब्रह्मचारी कहलावे, १२ बाल ब्रह्मचारी नहीं तो भी बाल ब्रह्मचारी कहलावे, १३-१४ सबने मिलकर बडा बनाया वह सबको दुःख दे तथा सब उस बडे को दुःख दें, १५ स्त्री पुरुष परस्पर विश्वासघात करे, १६-१७ एक देश के या अनेक देश के राजा की घात वांछे, १८ साधु को संयम से भृष्ट करे, १९-२१ तीर्थंकर की, तीर्थंकर प्रणित धर्म की आचार्य उपाध्याय की निन्दा करे, २२ आचार्य उपाध्याय की भक्ति नहीं करे, २३ बहु सूत्री (पण्डित) न हो तो पण्डित कहलावे, २४ तपस्वी न हो तो तपस्वी कहलावे, २५ ज्ञानी, वृद्ध, रोगी, तपस्वी, नवदीक्षित की सेवा नहीं करे. २६ चारों तीर्थ में फूट डाले, २७ ज्योतिष मंत्रादि पाप के सूत्र रचे, २८ अप्राप्त देव मनुष्य के सुखों की इच्छा करे, २९ धर्म करके देवता हुए उनकी निन्दा करे और ३० देवता नहीं आवे तो भी कहे कि देवता आते हैं. इन ३० बोलों के सेवन करने वाले के महामोहनीय कर्म का बन्ध होता है जिससे ७० क्रोडा क्रोड सागरोपम तक बोध बीज सम्यक्त्व की प्राप्ती नहीं होती है और भी दशवैकालिक सूत्र के ५ वें अध्याय में कहा है—

गाथा—तव तेणे वय तेणे, रूवतेण य जे नरा ॥ आयार भाव तेणेय ।
हुव्वइ देव किव्विसं ॥

अर्थ—कोई दुर्बल शरीर देख पूछे—आप तपस्वी हो ! तपस्वी न होने पर भी कहे साधु तो सदैव तपस्वी ही होते हैं, वह तप का चोर, श्वेत बालादि देख पूछे आप स्थविर हो ! स्थविर न होने पर भी कहे साधु स्थविर ही होते हैं, वह वय का चोर, रूपवन्त तेजस्वी देख कोई पूछे अमुक राजे-

श्वर ने दीक्षा ली सो आपही हैं। राजा न होने पर भी कहे साधु तो ऋद्धि छोड दीक्षा लेते हैं, वह रूप का चोर, अन्दर अनाचीर्ण सेवन कर मलीन वस्त्रादि कर शुद्धाचारी नाम धरावे वह आचार का चोर, चोर हो कर ऊपर साहूकारी बतावे, ठग होकर भक्ति भाव बतावे वह भाव का चोर, यह ५ही प्रकार के चोर मरकर चण्डाल समान नीच जाति वाले मिथ्या दृष्टी अस्वच्छदूर निन्दनीय किल्बिषी देवता में जाकर उत्पन्न होतेहैं, आगे नर्क तीर्यंचादि नीच २ जातियों में अनन्त काल परिभ्रमण करते हैं, किन्तु उनको बोध बीज—सम्यक्त्व की प्राप्ति बहुत दुर्लभ हो जाती है; ऐसा बुरा दगाबाजी का फल है, ऐसा जान आचार्य भगवन्त वाह्याभ्यन्तर निर्मल सदैव सरल स्वभावी रहते हैं।

४ 'लोभ' इसका निवास स्थान रोम २ में है. 'लोभे सव्व विणासणो:' यह सब सद्गुणों का नाश करने वाला है, इसकी काल में फंसे प्राणी क्षुधा, तृषा, शीत, ताप मार ताडादि अनेक प्रकार के दुःख के भोक्ता होते हैं, गुलामी करते हैं, गरीबों को फंसाते हैं, कुटुम्ब को दगा देते हैं, जाति विरुद्ध धर्म विरुद्ध कृत्य करते हैं, पंचेन्द्रिय प्राणियों की घात करनेमें भी नहीं चूकते हैं, ऐसे २ अनेक अकृत्य करके धनोपार्जन करते २ मृत्यु को प्राप्त होजाते हैं तो भी तृप्ति नहीं हो पाती है. 'जहा लाहो तहा लोहो' ज्यों २ लाभ में वृद्धी होती है त्यों २ लोभ में भी वृद्धी होती जाती है, महा मुशीवत से उपार्जन किये द्रव्य को छोड उसके लिये किये पाप की गठरी छोड अधोगति में चले जाते हैं. ऐसा दुष्ट लोभ को जान आचार्य जी सदैव सन्तोष में मग्न रहते हैं।

उक्त चारों कषायों के ५२०० भांगे होते हैं—जिसका अंत न आवे ऐसा 'अन्तानुबन्धी' चौक—१ क्रोध पत्थर के फाट—तराड समान जो कभी मिले नहीं, २ मान पत्थर के स्थम्भ समान जो कभी नमे नहीं, ३ माया बांस की जड समान—गांठ गठीली, ४ लोभ—क्रमची रंग समान जो जल जाय

किन्तु रंग नहीं जाय, इसकी स्थिति जावज्जीव की, इसको सम्यक्त्व की प्राप्ती नहीं होती है और इस कषाय में मरने वाला जीव नर्क गति में जाता है. २ जिससे प्रत्याख्यान का निर्जरा रूप लाभ नहो ऐसा 'अप्रत्याख्यानावर्णीय' चौक १ क्रोध जमीन की तराड जैसा जो वर्षाद से मिल जाय, २ मान—काष्ट के स्थम्भ जैसा--बहुत परिश्रम से नम जाय, ३ माया--मेष के शृंग जैसा, आंटे प्रत्यक्ष दीखे, ४ लोभ—खंजर (ओंगन) के रंग जैसा क्षार से निकले, इसकी स्थिति १२ महीने की इसको श्रावक व्रत की प्राप्ति नहीं होवे, और इस कषाय में मृत्यु पावे तो तिर्यंचगति में जावे. ३ 'प्रत्याख्यानावर्णीय' चौक—१ क्रोध धूल की लकीर जैसा जो हवा से मिल जाय. २ मान बेंत के स्थम्भ जैसा जो थोडे कष्ट से नम जाय. ३ 'माया'—चलते बैल के पेशाब जैसा बांका जो प्रत्यक्ष दीखे, ४ लोभ-कीचड के रंग जैसा जो सूखने से झडजाय. इसकी चार महीने की स्थिति. इसको साधुपना—निर्जरा कर्ता नहीं हो. इस कषाय में मरे तो मनुष्य गति में जावे, ५ यत्किंचित रहे सो 'संज्वलन' का चोक-१ क्रोध—समुद्र के भरती के अन्त में जो पानी की लकीर पडती है वह दूसरे वक्त पानी आने से मिट जाती है जैसा. २ मान तृण के स्थम्भ जैसा जो हवा से झुक जाय, ३ 'माया' बांस की छूती जेसी तुर्त सीधी होजाय. ४ लोभ पतंग के रंग जैसा जो धूप लगते ही उडजाय. इसकी स्थिति १५ दिन की * इसको केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं, इस कषाय में आयु पूर्ण करने वाला देवगति में जावे. यह ४ कषाय के ४×४=१६ भेद हुए। १ यह कितनेक जानते हैं कि कषाय करना अच्छा नहीं और करते हैं, २ कितनेक अज्ञान से अनजान में कषाय करते, ३ कितनेक कुछ जानपने में कुछ अनजानपने से कषाय करते, ४ कितनेक कषाय करने का मतलब तो नहीं समझे किन्तु दूसरे के देखा देखी करते, ५ कितनेक स्वयम् के लिये

* संज्वल के क्रोध की स्थिति २ महीने की, मान की १ महीने की, माया की १५ दिन की और लोभ की अन्तर्मुहूर्त की इस प्रकारका कथन वृद्ध अर्थी पन्नवना सूत्र में है।

करें, ६ कितनेक दूसरे के लिये करें, ७ कितनेक अपने और दूसरे के दोनों के लिये शामिल कषाय करें, ८ कितनेक बिना कारन--स्वभाव पड गया जिससे करें, ६ कितनेक उपयोग सहित करें, १० कितनेक उपयोग रहित करें, ११ कितनेक कुछ उपयोग सहित और कुछ उपयोग रहित करें, और १२ कितनेक योग संज्ञा से योंही करें. इन १२ बोलों को ४ कषाय से गुनने से १२×४=४८ हुये और इनको पूर्वोक्त १६ में मिलाने से ४८+१६=६४ हुये इनको २४ दंडक * और २५ वां समुच्चय जीव यों २५ से गुनने से ६४×२५=१६०० भांगे हुये । इन कषाय के पुद्गलों को जीव-'चुने' एकत्र करे, २ अब चुने--जमावे, ३ बन्धे--बन्धन करे. (यह ३ प्रकार से बन्धे) और ४ बन्धे पुद्गलों को आत्म प्रदेश कर्म प्रदेश कर 'वेदे' ५ ज्यों ज्यों वेदता जावे त्यों त्यों 'उदीरणा' होता जावे. और ६ कितनेक भव्य जीवों पश्चाताप से तथा तपसे 'निर्जर' क्षय करदें, यह ६ ही भूत भविष्य और वर्तमान काल आश्रित होने से ३ से गुने तब ६×३=१८ हुये, यह १८ स्वयं के आश्रित और १८ पर के आश्रित दुगुने करने से १८×२=३६ हुये, इन ३६ को २४ दंडक और २५ वें समुच्चय जीव से २५ गुने करे तब ३६×२५=९०० हुये. इनको ४ कषाय से चौगुने करे तब ९००×४=३६०० हुये. इन में पूर्वोक्त १६०० मिलाने से ३६००+१६००=५२०० भंगे ४ कषायों के हुये. इतना जबर परिवार चारों कषायों का है. इसलिये यह बडे जबरदस्त शत्रु हैं.

गाथा—कोहं पियं पणासइ, माण विणय नासेणं ॥ माया मित्ताणी नासेइ । लोहे सहु विणासणो ।

अर्थ—दशवै कालिक सूत्र के ८ वें अध्यन में कहा है कि—क्रोध से

* २४ दंडक—७ नर्क का १ दंडक, १० जाति के भुवनपति देवों के १० दंडक, पांच स्थावरों के ५ दंडक ३ विकलेन्द्रिय के ३ दंडक यह १६ हुये । २० वां तिर्यंच पचेन्द्रिय का, २१ वां मनुष्य का, २२ वांणव्यन्तर देवों का, २३ वां जोतिषी देवों का और २४ वां वैमानिक देवों का इनका सविस्तार वर्णन दूसरे प्रकरण में हो गया है ।

प्रीति का, मान से विनय का, माया से मित्रता का और लोभ से सबगुणों का नाश होता है इसलिये. इनका निम्नोक्त प्रतिकार (इलाज) करना चाहिये.

गाथा—उव समेण हणे कोहं। माण मद्दव जीणे। म या उज्जु भावेणं।
लोभं संतोषओ जीणे ॥

अर्थ—उपशम (क्षमा) से क्रोध का, मार्दव (विनय) से अभिमान का, आर्जव (शरलता) से माया का और संतोष से लोभ का जय करना चाहिये.

☞ यह ५ महाव्रत, ५ आचार, ५ इन्द्रिय निग्रह, ५ सुमति, ३ गुप्ति ९ बाड ब्रह्मचर्य की और ४ कषाय का निग्रह सब ५+५+५+५+३+९+४=३६ गुन आचार्य जी के हुये।

३६ गुन के धारक आचार्य हो सकते हैं।

१ जिनका जाति (मात्र पक्ष) निर्मल हो सो 'जाति सम्पन्न' २ कुल (पित्रपक्ष) निर्मल हो सो 'कुल सम्पन्न' ३ काल प्रमाने उत्तम संघयन (पराक्रम) हो सो 'बल सम्पन्न' ४ समचतुरंसादि उत्तम संस्थान (आकार) शरीर का हो सो 'रूप सम्पन्न' ५ कोमल-नम्र स्वभावी हो सो 'विनय सम्पन्न' ६ मति श्रुतादि निर्मल ज्ञान वन्त व अनेक मतान्तर के ज्ञाता हो सो 'ज्ञान सम्पन्न' ७ शुद्ध श्रद्धावन्त दृढ सम्यक्त्वी सो 'दर्शन सम्पन्न' ८ निर्मल चारित्री शुद्धाचारी सो 'चारित्र सम्पन्न' ९ अपवाद (निन्दा) की शर्म धारने वाले सो 'लज्जावन्त' १० द्रव्य से उपाधी (भण्डोपगरण) कर और भाव से क्रोधादि कषाय कर हलके हों सो 'लाघव' (लघुत्व) सम्पन्न [यह १० गुन अवश्य होते हैं] ११ परिसहोपसर्ग उत्पन्न हुये धैर्यता धारन करें सो 'उयंसी' (ओजस्वी) १२ प्रतापशाली हो सो 'तेयंसी' (तेजस्वी) १३ किसी के छल में न आवे ऐसे चतुरता से बोलने वाला सो 'वचंसी' (वचस्वी) (यह ४ गुन स्वभाविक होते हैं) १५ क्षमा से क्रोध को पराजय करने से 'जीय कोहे' १६ विनय से मानका पराजय करने से 'जियमाणे' १७ शरलता से माया का पराजय करने से 'जीयमाये' १८ सन्तोष से लोभ का पराजय

करने से 'जीयलोहे' १९ निर्विषयता से इन्द्रिय का पराजय करने से 'जीय इन्दिय' २० पाप की निन्दा करे किन्तु पापी की निन्दा नहीं करता होने से तथा निन्दकों की दरकार नहीं रखने वाले होने से तथा स्वल्प निद्रा लेने वाले होने से 'जीय निंद्रा' २१ क्षुधा तृषादि २२ परिषह के पराजयी होने से 'जीय परिषह' २२ दीर्घायुष्य की आशा और मृत्यु का भय नहीं करने वाले होने से 'जीवीय आस मरण भय मुक्का' [इन ८ के जय कर्ता होते हैं] २३ महाव्रतादि व्रतों में प्रधान (श्रेष्ट) होने से 'वय प्रधान' २४ क्षान्ति आदि गुन में प्रधान होने से 'गुण प्रधान' २५ कालोकाल करे सो क्रिया के ७० गुन में प्रधान होने से 'करण प्रधान' २६ निरन्त्र पालन करे सो चारित्र के ७० गुन कर प्रधान होने से 'चरण प्रधान' २७ अनाचीर्ण के निषेध करने में प्रधान अर्थात् अखलित आज्ञा के प्रवर्तक होने से 'निग्रह प्रधान' २८ इन्द्र या राजादि से भी क्षोभ को प्राप्त नहीं होते द्रव्य नय प्रमाणादि के सूक्ष्म ज्ञान का निश्चय करने में प्रधान होने से 'निश्चय प्रधान' २९ रोहनी प्रज्ञाप्ति प्रमुख विद्या के ज्ञाता होने से 'विद्या प्रधान' ३० विषयहार व्याधीनिवार व्यन्तरोपसर्ग नाशक आदि मन्त्र के ज्ञाता होने से 'मन्त्र प्रधान' * ३१ यजुरादि चारों वेद के ज्ञाता होने से 'वेद प्रधान' ३२ ब्रह्मचर्य में निश्चतात्मक होने से 'ब्रह्म प्रधान' ३२ नेयगमादि सातों नय के स्थापने में प्रधान होने से 'नय प्रधान' ३४ आभिग्रहादि नियम के धारक तथा प्रायःश्चित बिधी के ज्ञाता होने से 'नियम प्रधान' ३५ अटल बचनोच्चारक होने से 'सत्य प्रधान' और ३६ द्रव्य से

* आचार्य जी विद्या मन्त्र के ज्ञाता होते हैं किन्तु करते नहीं हैं।

श्लोक—भूया सो भूरिलोकस्य, चमत्कार करानराः ॥ रजयति स्वचित, ये भूत ले तेतु पंचषाः॥
कृर्ति मैंर्ड वरैश्चित शक्यतेप यितु पर॥ आत्मानु चास्त वैरेव, हंत कं परि तुष्य ती ॥

अर्थ—दूसरे लोगों को चमत्कार बताने वाले बहुत मिल सकेंगे किन्तु अपने मन को चमत्कार बनाकर खुशी करने वाले पांच सात ही मिलने मुश्किल है, कृत्रिम आडम्बर द्वारा दूसरोंको सन्तोषना सहज है किन्तु आत्म ज्ञान द्वारा आत्माको सन्तोषना बहुत मुश्किल है।

लोक में अपवाद होवे ऐसे मलीन वस्त्रादि धारन नहीं करे और भाव से पाप रूप मैल से मलीन नहीं होवे सो 'शौच प्रधान' [इन १४ गुनों में प्रधान होते हैं] इन ३६ गुन के सम्पन्न जो साधु होते हैं उनको आचार्य पद पर स्थापन किये जाते हैं।

आचार्य की ८ सम्पदा।

जिस प्रकार गृहस्थ धन कुटुम्बादि की सम्पदा कर शोभा पाता है तैसे आचार्य जी भी प्रत्येक सम्पदा के चार २ प्रकार यों ३२ और ४ विनय मिल ३६ गुन कर शोभा पाते हैं।

१ जो ज्ञानादि पंचाचार आदरने योग्य हैं उनका आचरन करे सो प्रथम 'आचार सम्पदा' इसके ४ प्रकार—१ महाव्रतादि चारित्रों के गुन में ध्रुव निश्चल स्थिर अडोल वृति सदैव रखे सो 'चरण गुण ध्रुव जोग जुत्ते' २ जाति आदि आठों मद का गलन कर सदैव निर्भिमानी रहे सो 'महव गुण सम्पन्न' ३ ग्राम में एक रात्री और नगर में पंच रात्री से अधिक नहीं रहता यों शीत उष्ण काल में और चतुर्मास के चार मास एक स्थान यों नव कल्पी विहार करते रहें * सो 'अनिय वृति' × और ४ कामनी के मन को हरन करने जैसे दिव्य रूप सम्पदा के धारक होकर भी निर्विकारी सौम्य मुद्रा वाले रहे सो अचंचल' गुन।

२ शास्त्र के अर्थ परमार्थ के ज्ञाता हों सो दूसरी 'सूत्र सम्पदा' इस के ४ प्रकार—१ जिस काल में जितने शास्त्र हों उन सबके ज्ञाता होने से सर्व विद्वानों में श्रेष्ठ हों सो 'युग प्रधान' २ शास्त्रिक ज्ञान का बारम्बार

---

* दीतवार से दीतवार पर्यन्त रहे सो एक रात्री और पांच दीत वार पर्यन्त रहे सो पांच रात्री एक महीने में पांच ही वार आते हैं, अर्थात् जहां एक दिन का आहार मिले वहां एक रात्री से अधिक नहीं रहे और बड़ा शहर होय तो पांच रात्री (एक महीने) से अधिक नहीं रहे × मानादि गुन की वृद्धी के लिये वृद्धावस्था रोगादि कारन से अधिक रहना पड़े यह बात अलग है।

परियट्टन कर निश्चल ज्ञानी बनने से 'आगमपरिचित्त' ३ कदापि किञ्चित दोष न लगावे सो 'उत्सर्ग मार्ग' और गाढा (काम न चले) ऐसे कारन पड़े पश्चाताप युक्त किञ्चित दोष लगा प्रायश्चित कर शुद्ध होजावे सो 'अपवाद' मार्ग. इन दोनों की विधी के ज्ञाता सो 'उत्सर्ग अपवाद कुसला' और ४ स्वसमय (जैन) के और पर समय (अन्यमत) के ज्ञाता सो ससमय पर समय रक्खे' गुण ।

३ सुन्दराकृति तेजस्वी शरीर के धारक हों सो तीसरी 'शरीर सम्पदा' इसके ४ प्रकार—१ अपने धनुष्य से एक धनुष्य लम्बा प्रमाणोपेत शरीर वाले सो 'पमाणुपेत' २ लंगडे लूले काने १९ या २१ अंगुली इत्यादि अपंग दोष रहित सो 'अकुटइ' ३ बधिर अन्धत्वचादि दोष रहित सो 'पुर्णेन्द्रि' और ४ तप विहारादि में थके नहीं ऐसे स्थिर दृढ बल कर संघयन के धारक सो 'दृढ संघयनी' गुन ।

४ वाक्य चातुर्य युक्त सो चौथी वचन सम्पदा इसके ४ प्रकार—१ कोई भी वचन खण्डन नहीं कर सके ऐसे सदैव उत्तम बचन के बोलने वाले, सब को ही वचन से बुलाने वाले, प्रवादी भी चमत्कार पावे ऐसे शुद्ध वचन के बोलने वाले सो 'प्रसरत्त बचनी' २ सुस्वर से कौमल मधुर गम्भियता युक्त बोले सो 'मधुरता' ३ राग द्वेष पक्षपात कलुषिता रहित बोले सो 'अनाश्रित' और ४ भणभणटादि दोष रहित स्पष्ट २ बालक भी समझ जाय ऐसे बोले से स्फुटता गुण ।

५ शास्त्र ग्रन्थ बांचने की कुशलतायुक्त सो पांचवी वाचना सम्पदा इसके ४ प्रकार— १ शिष्य की योग्यता के जान योग्य शिष्य को वह जितना ज्ञान ग्रहण कर सके उतना ही देवें, और जैसे सर्प को दुग्ध पान विष रूप प्रगमता है तैसे कुशिष्य को दिया ज्ञान मिथ्यातादि दुर्गन का बढ़ाने वाला होता है उसे ज्ञान नहीं देवे सो 'जोगो' २ विना समझा और

बिना हुवा ज्ञान सम्यक् प्रकार परिणमता नहीं है अधिक काल टिकता नहीं है ऐसा जान प्रथम दी हुई बांचना को उसकी बुद्धी प्रमाने उसे समझा कर रुचावे जचावे फिर आगे बांचना देवे सो 'प्रणित' ३ जो शिष्य अधिक बुद्धीवान हो सम्प्रदाय का निर्वाह करने धर्म दिपाने समर्थ हो उसे अन्य काम में कम लगा कर आहार वस्त्रादि की साता देकर मधुरता से उत्साह बढ़ा कर शीघ्रता सूत्रादि पूर्ण करावे सो 'निरयारयिता' और ४ ज्यों पानी में तैल बून्द प्रसरती है त्यों अन्य को ज्ञान प्रणमें इस प्रकार शब्द थोडे और अर्थ बहुत हों ऐसे सरल शब्दों में बांचना देवे सो 'निर्वाहणा' गुण।

६ स्वतः की बुद्धि प्रबल हो सो छट्ठी 'मति सम्पदा' इसके ४ प्रकार--१ सतावधानीवत् सुनी देखी सूंगी स्वादी स्पर्शी वस्तु के गुन को एकही काल में ग्रहण करे सो 'अवग्रह' २ उक्त पांचों का तत्काल निर्णय करे सो 'ईहा' ३ उक्त प्रकार निर्णय से तत्काल निश्चयात्मक बने सो 'अवाय' और ४ निर्णित वस्तु का दीर्घ काल तक विस्मर्ण नहो, वक्त पर तुर्त स्मरण हो आवे, अचूक हाजर जबाबी हो सो 'धारना' गुन।

७ परवादियों की जय करने की कुशलता सो सातवीं 'प्रयोग सम्पदा' इसके ४ प्रकार--१ इससे वाक्य चातुर्य में या प्रश्नोतर में, मैं जीत सकूंगा या नहीं ऐसा प्रतिवादी की शक्ति का और अपनी शक्ति का विचार कर वाद करे सो 'सक्तिज्ञन' २ यह किस मत का अवलम्बी है यों वादी के मत के ज्ञाता हो उसके मत के शास्त्र से ही उसे समझावे 'सो पुरुष ज्ञान' ३ इस क्षेत्र के लोगों अमर्यादित उद्धत तो नहीं हैं जो किसी प्रकार अप-मान करें, अभी मीठे २ बोलते हैं किन्तु फिर बदल जांय वादी से मिल जाय ऐसे कपटी तो नहीं हैं, मिथ्यात्वी के आडम्बर चलित होवे ऐसे अस्थिर तो नहीं है, इत्यादि क्षेत्र का विचार कर वाद करे सो 'क्षेत्र ज्ञान' और ४ कदाचित विवाद प्रसंग से राजादि का आगमन हो जाय तो यह राजादिक न्याई व अन्याई है, नम्र हैं या कठिन, सरल या कपटी, क्यों

कि आगे किसी प्रकार अपमान तो नहीं करे, इत्यादि विचार कर वाद करे सो 'वस्तु ज्ञान' ।

८ साधुओं के उपयोग में आवे ऐसी वस्तु का प्रथम से ही संग्रह कर रक्खे सो 'संग्रह सम्पदा' इसके ४ प्रकार १ बालक दुर्बल, गीतार्थ, तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित ऐसे साधुओं का निर्वाह हो ऐसे क्षेत्र (ग्राम) को ध्यान में रक्खे सो 'गण योग' वक्त पर आवके या बाहिर से आये साधु के काम में आवे ऐसे अनेक मकान पाट पाटले पराल इत्यादि का संग्रह रक्खे सो 'संसक्त' ३ जिस २ काल में जो जो क्रिया करने की हो उस २ काल में उस २ क्रिया के उपयोगी साधनों का संग्रह रक्खे सो 'क्रिया विधी' और ४ व्याख्यानदाता, वादी विजयी भिक्षा कौशल्य, वैय्यावची इत्यादि शिष्यों का संग्रह रक्खे सो 'शिष्योपसंग्रह' गुण ।

चार विनय ।

१ साधु के आचरने (आदरने) योग्य गुण का आचरन करे सो आचार विनय. इसके ४ प्रकार—१ स्वयं संयम पाले, दूसरे को पलावे, संयम से अस्थिर हुये को स्थिर करे सो 'संयम समाचारी' २ पाक्षिकादि पर्व का तप आप करे दूसरे के पाससे करावे. भिक्षा को आप जावे दूसरे को भेजे सो 'तप समाचारी' ३ तपस्वी ज्ञानी नवदीक्षित इनका प्रतिलेखनादि काम आप करे दूसरे के पास से करावे सो 'गण समाचारी' और ४ अवसर उचित आप अकेला विहार करे दूसरे को योग देख अकेला विहार करावे सो 'एकाकी विहार समाचारी' ।

२ सूत्रादि का अभ्यास करे सो 'श्रुत विनय' इसके ४ प्रकार १ आप पढे दूसरे को पढावे, २ अर्थ यथा तथ्य धरावे, ३ जैसा ज्ञान योग्य जो शिष्य होवे उसे वैसाही ज्ञान देवे और ४ प्रारम्भ किया सूत्र पूर्ण करा दूसरा पढावे ।

३ अन्तःकरण में धर्म की स्थापना करे सो विक्षेप विनय' इसके ४ प्रकार १ मिथ्यात्वी को सम्यक्त्वी बनावे २ सम्यक्त्वी को चारित्री बनावे, ३ सम्यक्त्व चरित्र से भृष्ट होते को स्थिर करे और ४ सम्यक्त्व चारित्र धर्म की वृद्धी होवे वैसा वृताव करे।

४ कषायादि दोषों का परिघात (नाश) करे सो 'दोष परिघात विनय' इस के ४ प्रकार—१ क्रोधी को क्रोध के दुर्गुण और क्षमा के सद्गुण बता कर शान्त स्वभावी बनावे सो 'कोह परिघाए' २—विषय उन्मत्त बना हो उसे विषय के दुर्गुण और शील के सद्गुण बता कर निर्विकारी बनावे सो 'विषय परिघाए' ३—रस लोलुपी हो उसे लुब्धता के दुर्गुण और तप के सद्गुण बता कर तपस्वी बनावे सो 'अन्न परिघाए' और ४—दुर्गुण से दुःख और सद्गुण से सुख की प्राप्ति बता कर निर्दोषी बनावे सो 'आत्म दोष परिघाए'।

☞ यह ८ सम्पदा के ३२ और ४ विनय यों सब आचार्यजी के ३६ गुन का कथन हुआ यों ज्ञान प्रधान, दर्शन प्रधान, चारित्र प्रधान, तप प्रधान, सूर वीर धीर साहासिक, शम दम उपसम वन्त चारों तीर्थ के वालेश्वर जिनेश्वर की गादी के अधिकारी जैन शाशन के निर्वाहक व प्रवर्तक ऐसे ऐसे अनेकानेक गुणगण के धारक आचार्य भगवन्त को मेरा त्रिविध २ की शुद्धता से वारम्बार नमस्कार होवो.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज विरचित 'जैन तत्त्व प्रकाश' ग्रन्थ का।
आचार्य स्तव नामक तीसरा प्रकरण समाप्तम् ॥

प्रकरण चौथा उपाध्याय।

श्री उपाध्यायजी गुरू आदि गीतार्थ के समीप रह कर विनय विच-क्षणता पूर्वक उन को प्रश्न कर के उन की आज्ञानुसार उपाधानादि तप विधी पूर्वक कर चोयणा प्रतिचोयणा कर अर्थ परमार्थ के रहस्य युक्त सन्धि सम्बन्ध कर शास्त्रादि का अभ्यास कर स्वयं गीतार्थ बने और ज्ञान प्राप्ति के अभिलाषी साधु साध्वी श्रावक श्राविका उन के पास आ उपस्थित होते हों उन को उनकी योग्यता गुणावगुण की परीक्षा पूर्वक यथा उचित ज्ञानाभ्यास करावें वे उपाध्यायजी। श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के ११वें अध्ययन के कथनानुसार शिक्षा प्राप्त करने योग्य अयोग्य सुविनीत अविनीत के गुन को जाने।

जो शिष्य १ अहंकारी, २ क्रोधी, ३ प्रमादी, ४ रोगी और ५ आलस तथा मिथ्यावादी इन ५ दुर्गनों के धारक होते हैं वे हित शिक्षा ग्रहन नहीं कर सकते हैं, और १ अल्प हंसने वाले, २ सदैव दमीतात्मा, ३ निर्भिमानी, ४ परमार्थ गवेषी, ५ देश से और सबसे चारित्र की विराधना नहीं करने वाले, ६ रसना का लोलुपी नहीं, ७ क्षमावन्त और ८ सत्यवादी यह ८ गुन के धारक हित शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

अविनीत के लक्षण १ बारम्बार क्रोध करे या दीर्घ कषायी होवे, २ निर्थक कथा करे, ३ सुमित्र से द्वेष करे, ४ अपने मित्र की भी रहस्य (गुप्त) बात प्रगट करे, ५ बुद्धी का अभिमान करे, ६ अपना किया अपराध दूसरे पर डाले, ७ मित्र पर कुपित होवे, ८ असम्बन्ध भाषा बोले, ९ द्रोह करे, १० अहंकारी, ११ अजीतेन्द्रिय, १२ सब का सम विभाग नहीं करने वाला, १३ अप्रतीत कारी और १४ अज्ञानी. इन १४ दुर्गुनों के धारक को यथा तथ्य ज्ञान नहीं परिगमता है.

विनीत के लक्षण १ गति-चलने में, स्थान-बैठने में, भाषा-बोलने में और भाव-मन तरङ्गों इनकी चपलता रहित-स्थिर स्वभावी. २ निष्कपटी शरल स्वभावी, ३ ठट्ठा- मस्करी आदि कुतुहल रहित, ४ किसी का भी अपमान और तिरस्कार नहीं करे. ५ अधिक काल तक क्रोध नहीं रक्खे, ६ मित्र से हिल मिल रहे, ७ विशेषज्ञ होकर भी अभीमान नहीं करे, ८ स्वयंकृत अपराध को स्वीकार करे किन्तु दूसरे पर डाल नहीं, ९ स्वधर्मीयों पर कुपित होवे नहीं, १० अप्रियकारी-दुशमन के भी गुणानुवाद बोले, ११ किसी की भी रहस्य बात प्रगट नहीं करे, १२ मिथ्या आडम्बर नहीं करे, १३ तत्त्व का ज्ञाता होवे, १४ उत्तम जाति वन्त होवे और १५ लज्जावन्त तथा जितेन्द्रिय होवे, इन गुनों के धारक को ज्ञानादि गुन सुप्राप्त होते हैं।

उपाध्यायजी के २५ गुन ।

गाथा—बार संग विउ बुद्धा । करण चरण जुओ ॥ पभावणा जोग निग्गो । मुवज्झाय गुणं वन्दे ॥

अर्थ—१२ अंग के पाठक, १३-१४ करण सित्तरी चरण सित्तरी के गुण युक्त, १५-२२ आठ प्रकार के प्रभाव कर जैन धर्म को प्रदिप्त करे, २३-२५ तीनों योग स्ववश में करे ।

१२ द्वादशाङ्ग ।

१ 'आचाराङ्ग'-इसके दो श्रुत स्कन्ध, प्रथम श्रुतस्कन्ध के ९ अध्ययन प्रथम शास्त्र परिज्ञा अध्ययन के सात उद्देश में क्रमसे-दिशा का, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति, त्रस, वायु का कथन है, दूसरे लोक विजय अध्ययन के छः उद्देशों में क्रमसे—विषय त्याग, मद त्याग, स्वजन ममत्व त्याग, द्रव्य ममत्व त्याग, हित शिक्षण, का कथन है. तीसरा शीतोपणीय अध्ययन के चार उद्देशों में क्रमसे—सुप्त जाग्रत, तत्त्वज्ञ अतत्त्वज्ञ, प्रमाद त्याग, एक जाने सो सब जाने. का कथन है; पांचवें सम्यक्त्व अध्ययन के चार उद्देशों में क्रमसे—धर्म का मूल दया,

सज्ञान अज्ञान, सुख प्राप्ति का उपाय, सुमाधु के लक्षण का कथन है. पंचम आचंति (लोक सार) अध्ययन के छे उद्देशों में क्रमसे—विषयाशक्त साधु नहीं सावद्यानुष्टान त्यागी साधु, कनककान्ता त्यागी साधु, अव्यक्त साध अकेला न रहे, ज्ञानी अज्ञानी में विशेष, प्रमादी अप्रमादी में विशेष का कथन है. छठा धूताख्यअध्ययन के पांच उद्देशों में क्रमसे,कामाशक्त के दुःख रक्त विरक्त के दुःख सुख, ज्ञानी साधु की दशा. सुष्ट भृष्ट के लक्षण, उत्तम साधु के लक्षण का कथन है. [सातवें महा प्रज्ञा अध्ययन का विच्छेद होगया !] आठवें विमोक्ष अध्ययन के आठ उद्देशों में क्रमसे— मतान्तरों और साधु, अकल्पनी परित्याग, शंक निवारन, वस्त्र त्याग, भक्त प्रत्याख्यान, इंगित मरन, पादोपगमन मरन, तीनों पंडित मरन की विधी, नवमें उपाधान श्रुत अध्ययन के चार उद्देशों में क्रमसे-महावीर स्वामी सवस्त्री महावीर के स्थान, महावीर के परिषह, महावीर का आचार और तप । दूसरे श्रुतस्कन्ध के सोले अध्ययनों में क्रमसे—पिण्डेसणा अध्ययन में आहार ग्रहन करने की विधी, शैय्याख्याध्यन में स्थानक ग्रहन करने की विधी, इर्याख्याध्यन में इर्या समिति, भाषा जात अध्ययन में भाषा समिति, वस्त्रेषणा अध्ययन में वस्त्र ग्रहन करने की विधी, पात्रेषणा अध्ययन में पात्र ग्रहन करने की विधी. अवग्रहप्रतिमाख्य अध्ययन में, आज्ञा ग्रहन करने विधी में खडे रहने की विधी निषिधिका अध्ययन में बैठने की विधि, उच्चार प्रश्रवण अध्ययन में लघुनीत वडी नीति पठने की विधि, शब्द अध्ययन में शब्द सुनने की, रूपाख्या अध्ययन में रूप की, प्रक्रिया अध्ययन में गृहस्थ पास काम कराने की, अन्योन्यक्रियाख्या अध्ययन में परस्पर क्रिया का, भावना ख्याध्ययन में महावीर स्वामी का चारित्र तथा महाव्रत की भावना, और विमुक्त अध्ययन में साधु की ओपमा. इस सूत्र के पहिले १८००० पद थे * अब मूल के सिर्फ २५०० श्लोक है.

* नोट—३२ अक्षर का १ श्लोक, ऐसे १५०८८६८८४० श्लोक का १ पद गिना जाता था ऐसे कथन दिगम्बरआम्नाय के भगवती आराधना शास्त्र में है ।

१ 'सूयगडांग'—इस के भी दो श्रुतस्कन्ध हैं— प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन—पहिले स्वसमय पर समय अध्ययन में भूतवादी, सर्वगतवादी तज्जीव शरीर वादी, अक्रियावादी, आत्म वादी, अफल वादी, नियतवादी अज्ञानवादी, क्रिया वादी, ईश्वरवादी, देववादी, अण्डे से लोक हुआ वगैरा मत मतान्तरों का स्वरूप व साधु का आचार दूसरा वेताली अध्ययन में ऋषभदेवजी कृत ९८ पुत्रों को उपदेश, विषय त्याग धर्म का महात्म, तीसरे उपसर्ग परिज्ञाख्या अध्ययन में कृष्णजी शिशुपाल के दृष्टान्त से वीरत्व कायरत्व का कथन स्वजन के परिषह. चौथे स्त्री परिज्ञा अध्ययन में स्त्री चारित्र, स्त्री के संग से दुःख, पांचवे नर्क विभक्ती अध्ययन में नर्क के दुःख, छटे वीरस्तव अध्ययन में महावीर स्वामी की प्रशंसा. सातवें कुशील परिभाषा अध्ययन में परमत का कुशील स्वमत का सुशील, हिंसा खण्डन, आठवें वीर्याख्य अध्ययन में बल वीर्य, पंडित वीर्य, नवमें धर्म अध्ययन में दयाधर्म साधु का आचार, दशवां समाधी अध्ययन में धर्म का स्थान समाधी भाव. इग्यारहवे मोक्ष मार्ग अ० साधु का आचार. मिश्र प्रश्नोत्तर, बारहवें समवसरण अ० क्रियावादी आदि चारों वादियों को ममत्व खण्डन. तेरहवें अथातथ्य अ० स्वछन्दाचारी अविनीत के लक्षण सुधाचार धर्मोपदेशक के लक्षण. चौदहवें ग्रन्थाख्या अ० एकल विहारी के दोष हित शिक्षा, पन्द्रहवें आदानायाख्या अ० श्रद्धा दया वीरत्व दृढता मोक्ष साधन और सोलहवें गाथा अध्ययन में साधु के नाम, के गुण और दूसरे श्रुतस्कन्ध के ७ अध्ययन पहिले पौंडरिक अ० पौंडरिक कमल के दृष्टांत से चारों वादी का स्वरूप पंचमें का उद्धार, दूसरे क्रियास्थान अ० १३ क्रिया का कथन तीसरे आहार प्रज्ञा अ० जीवों के आहार ग्रहण उत्पत्ती का कथन. चौथे प्रत्याख्यान अ० दुप्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान. अविरत से दुःख पाचवें अनाचार श्रुताख्या अ० अनाचार के दोष, शून्य वादी का खण्डन. छट्ठे आर्द्र कुमार के अ० अर्द्रकुमार कृते मतान्तरों का

चर्चा, और सातवें उदकपेढाल पुत्र के अध्ययन में उदकपेढाल गौतम स्वामी की चर्चा इस के पहिले ३६००० पद अब २१०० श्लोक हैं.

३ 'ठाणाङ्ग'—इस का एक ही श्रुतस्कन्ध और १० ठाणे (अध्याय) हैं पहिले ठाणे में एक एक बोल दूसरे ठाणे में दो दो बोल, तीसरे ठाणे में तीन २ बोल यावत् दशवें ठाणे में दश २ बोल. इस संसार में कौन २ से हैं, जिसका कथन है. द्वीभंगी, त्रिभंगी, चौभंगी, सप्त भंगी और भी सूक्ष्म बादर अनेक प्रकार की बातों का ज्ञान साधु श्रावक के आचार वगैरा का कथन इसमें बड़ा ही चमत्कारिक विद्वानों को रसोत्पादक वर्णन है. इसके प्रथम ४२००० पद थे अब ३७७० श्लोक मूल के हैं।

४ 'समवायाङ्ग' इसका भी एक ही श्रुतस्कन्ध है अध्ययन नहीं है. इसमें एक दो यावत् सो हजार लक्ष क्रोडों बोल तक संसार में किस प्रकार पाते हैं जिसका संक्षिप्त कथन है. और द्वादशांगी की संक्षिप्त हुंडी जोतिष चक्र, दंडक, शरीर, अवधीज्ञान, वेदना, आहार, आयुर्बन्ध, विराधिक, संघयन, संस्थान, तीनों काल के कुलकर वर्तमान चौबीसी का लेखा, चक्रवर्ती बलदेव, वासुदेव, प्रती वासुदेव के माता पिता पूर्व भव, तीर्थंकर के पूर्व भव के नाम, ऐरावत क्षेत्र की चौबीसी वगैरा का कथन है. यह भी शास्त्र बड़ा गहन ज्ञान का खजाना है. इसके पहिले १६४००० पद थे अब मूल के १६६७ श्लोक हैं।

५ विवाह प्रज्ञप्ति (भगवती)' इसका एक ही श्रुतस्कन्ध और ४१ शतक, १००० उद्देशे और ३६००० प्रश्नोत्र तो फक्त गौतम स्वामी जी के हैं. १ प्रथम शतक पहले उद्देसे में नवकार, ब्राह्मी लिपी, नमोत्थुणं, गौतम स्वामी के गुन ९ प्रश्नोत्तर, आहार के ६३ भांगे, भुवनपती, स्थावर विक्लेन्द्रिय, आत्मारम्भी, संवुड, असंवुड, अव्रती और व्यन्तर देवों के सुख का कथन है. दूसरे उद्देशे में नर्क का लेश्या का संचिट्ठन काल, १२ प्रकार के जीव देव लोक जावे, असज्ञी आयुष, तीसरे उद्देशे में कांक्षामोहनीय

कर्म, आराधक के लक्षन, चौथे उद्देशे-- में कर्म प्रकृती, अप क्रमन, कर्म भोगे बिन मोक्ष नहीं, पुद्गल जीव, छद्मस्त केवली. पांचवें उद्देशे में नर्क भुवनपति, पृथवी जोतिषी, वैमानिक, कषाय के भंग, दंडक, छट्ठे उद्देशे में सूर्य दृष्टी विषय, लोकालोक क्रिया, रोहा अनगार के प्रश्नोत्तर, लोक स्थिति आधार, जीव पुद्गल सम्बन्ध, सूक्ष्म वर्षाद. सातवां उद्देशे में नेरीयों की उत्पत्ती, विग्रहगती, देव के दुर्गच्छा, गर्भोत्पत्ती, माता पिता के अंग, गर्भ का जीव नर्क स्वर्ग में जावे. आठवां उद्देशे में एकान्त—बाल—पण्डित का आयु, मृग बधक क्रिया, अग्नि प्रजालते क्रिया, जय पराजय, सवीर्य अवीर्य. नववां उद्देश में गुरु लघु के प्रश्नोत्तर, अच्छा साधु, एक समय आयु. प्राशुक आहार, अस्थिर पदार्थ. दशवां उद्देश अन्य तीर्थक, एक समय दो क्रिया. २ शतक—प्रथम उद्देशे में. श्वासोश्वास, मंडाइ (प्रासुक) भोजी, खन्धक सन्यासी, सान्त अनन्त जीव सिद्ध, बाल पंडित मरन, भिक्षु प्रतिमा, गुन रत्न तप. दूसरा उद्देश समुद्घात, तीसरा उद्देशे ८ पृथवी, चौथा उद्देशे इंद्रियां, पाचवां उद्देश गर्भस्थिती, मनुष्य का बीज, एक जीव के पिता पुत्र, मैथुन में हिंसा, तुंगिया नगरी के श्रावक, द्रह का गर्भ पानी, छठा उद्देश ओहारनी भाषा, सातवां उद्देशे देवाधिकार, आठवां उद्देश असुरेन्द्र सभा, नववां उद्देश अढाई द्वीप, दशवां उ॰ आकारितकाय, उत्थानादि गुन. ३ शतक पहिला उद्देश इन्द्रों की ऋद्धि, तिष्य गुप्त अनगार, कुरुदत अनगार, तामली तापस, सुधर्मेन्द्र इशानेन्द्र का झगड़ा सनत्कुमारेन्द्र का पूर्व भव. दूसरा उद्देश असुरकुमार, वैमानिक देव की चोरी, असुर कुमार का सोधर्म देवलोक गमन, पूर्ण तापस, वज्र की गति. तीसरा उ॰ मण्डि पुत्र प्रश्नोत्तर, अन्त क्रिया, समुद्र की भरती. चौथा उद्देश साधु देव के ज्ञान के भांगे, वायु का वैक्रय, वद्दल के रूप, पर भव की लेश्या, पाचवां उद्देश साधु का वैक्रय, छट्ठे उद्देश विभंग ज्ञान. सातवां उद्देश चार लोकपाल, आठवां उद्देश दश तरह के देव, नववां उद्देश इन्द्रों की परिषद ४ शतक ईशानेन्द्र के चार लोकपाल, इनकी राजधानी, नेरीये, परस्पर लेश्या,

५वां शतक पहिला उ० चारों दिशा में सूर्योदय, दिन रात्रि प्रमान, ऋतुपरिणमन, अढाई द्वीप में सूर्योदय. दूसरा उ० वायुकाय, धान्य धातु आदि, लवण समुद्र प्रमान, तीसरा उ० आयुष्य कथन, चौथा उ० छद्मस्त केवली हंसने से निद्रा से कर्मबन्धन हरिण गमेषि गर्भ हरण, एवंता कुमार, महा शुक्र के देवों, देव असंयती देवता की अर्ध मागधी भाषा, चार प्रमान, अनुत्तर विमान के देव प्रश्न करें, केवली नो इन्द्रिय, पूर्वधारी की शक्ति पांचवा उ० छद्मस्त सिद्ध नहीं होवे भरत क्षेत्र के कुलकर. छठा उ० अल्पायु दीर्घायु शुभाशुभायु कैसे होवे, चोरी का माल वस्तु लेने बेचने की क्रिया, अग्नि प्रज्वालने से बुझाने वाले को कम पाप, धनुष्यबान की क्रिया नेरीय ४—५ सो योजन उछलें, सदोष स्थानक, आचार्यादि के सन्मान से मोक्ष कलंक का पाप. सातवां उ० प्रमाणु पुद्गल, पाचहेतु, आठवां उ० नारद पुत्र निर्ग्रन्थ की चर्चा, जीव की अवस्थितता सोवचय सवचय. नववां उ० राजगृही उद्योत, अन्धकार, मनुष्य लोक में ही काल असंख्य लोक, अनन्त अहोरात्री दशवां उ० चन्द्र का निवास स्थान।
६ शतक प्रथम उ० महावेदना महा निर्जरा, करण वेदना निर्जरा दूसरा उ० आहाराधिकार, तीसरा उ० वस्त्र कर्म का दृष्टांत, कर्म के १६ द्वार. चौथा उ० जीव काल सप्रदेशी अप्रदेशी. २४ दंडक प्रत्याख्यान पांचवा उ० तमस्काय, कृष्णराजी, लोकान्तिक देव, छट्ठे उ० नर्कदेव के आवास मरणांति समुद्घात. सातवां उ० धान्य की योनी, काल प्रमान. पहिले आरे का वर्णन आठवां उ० नर्क, छै प्रकार आयुबन्ध, लवण समुद्र का पानी, द्वीप समुद्रों के नाम, नवमां उ० एक कर्म साथ अन्य कर्म बन्धे देव का वैक्रय शुद्धाशुद्ध लेश्या. दशवां उ० सुख दुःख के पुद्गल जीव चैतन्य एक, जीव प्राण अलग, भव्याभव्यं, सुख दुःख आहार क्षेत्र, केवली नो इन्द्री. ७ शतक प्रथम उ० आहारिक अनाहारिक लोक संस्थान श्रावक के सामायिक, पृथ्वी खोदते त्रस घातीक नहीं, साधु को शुद्ध आहार

दाता सहायक हो मोक्ष प्राप्त करे, अकर्मी गति गमन, साधु को पाप, इंगाल धूम्र–क्षेत्र, काल, मार्ग, शस्त्रातित, एषणी, वेषणी, समुदानी आहार के अर्थ, दूसरा उ० सु दु प्रत्याख्यान. जीवशाश्वत अशाश्वत, तीसरा उ० वनस्पतिकाय अनंतकाय, लेश्यानुसार कर्म, वेदना निर्जरा, नेरीयेके साता असाता चौथा उ० संसारी जीव, पांचवां उ० खेचर की तीन योनि, छट्ठा उ० यहां आयु बन्धे वहां भोगवे, यहां अल्प वेदना वहां, महा वेदना, अभोगी अनाभोगी, १८ पाप से कर्कश कर्म दया से साता, दुःख देने से दुःख छट्ठे आरे का वर्णन. सातवां उ० संव्रत साधु की क्रिया, काम भोग अवधी परम अवधी, असज्ञी अकाम वेदना, आठवां उ० हस्ति कुंथुवे का एकसा जीव, १० सज्ञा, नर्क नवमां उ० साधु का वैक्रय, कोणिक चेडा का संग्राम, शक्रेन्द्र कोणिक के मित्र, संग्राम में मरे देव कैसे होवें, दशवां उ० अन्य तीर्थक, पाप पुण्य अग्नि प्रजाने से बुझाने वाला अल्प कर्मी, अचित पुद्गल प्रकाश–तेजो लेश्या ८ शतक प्रथम उ० प्रयोग से मिस्से विशेष पुद्गल, दूसरा उ० दाढ सांप विच्छु मनुष्य का विष, १० वात छद्मस्त नहीं जाने, ज्ञान अज्ञान. तीसरा उ० वृक्षों के प्रकार, शरीर के टुकडे में प्रदेश, पृथ्वी का चरमाचरम चौथा उ० पांच क्रिया पांचवां उ० सामायिक में चोरी, गत काल का प्रतिक्रमणादि गोशाले के श्रावक छट्ठा उ० साधु के शुद्ध आहार देते एकान्त निर्जरा, अशुद्ध देते अल्प पाप बहुनिर्जरा, असंयती को देते पाप, जिसके लिये आहार लाया उस ही साधु को दे, आलोचना अर्थी मरे तो भी आराधिक, दीपक, शरीर क्रिया, सातवां उ० स्थविर अन्यतीर्थी ५ गति प्रवाह. आठवां उ० गुरु गति के समूह, ५ व्यवहार, इर्यावही सम्प्रदायिक भांगे २२ परिषह किस कर्म से सूर्य का ताप, अढाई द्वीप अन्दर बाहिर ज्योतिषी. नवमा उ० बन्धका बहुत विस्तार. दशवां उनके ज्ञान क्रिया की चौभंगी, तीन आराधना, पुद्गल परिणाम, कर्म, जीव पुद्गल पुद्गली. ९ शतक–पहिला उ० जम्बुद्वीप का

वर्णन दूसरा अढाइ द्वीप के ज्योतिषी की संख्या, चौथे से तीस उ० २८ अन्तर्द्वीपे, इकतीसवा उ० असोचा सोचा केवली, बत्तीसवां उ० गंगीया अनगार के भांगे, तेतीसवां उ० ऋषभदत्त, देवानन्दा, जमाली का अधिकार, चौतीसवां उ० पुरुष घोडे की घात, ऋषि मारने वला अनन्तजीव मार. एक को मारती अनेक से वैर करे. स्थावर के श्वासोछ्वास, १० शतक पहिला उ० दिशा का कथन, पांच शरीर, दूसरा उ० संवृती साधु योनी वेदना, आलोचना आराधना, तीसरा उ० आत्म ऋद्धि, अल्प महा ऋद्धि देव, अश्व का शब्द भाषा चौथा उ० त्रायत्रिंशक देव, पांचवां उ० अग्रमहेषी, छट्ठा उ० सोधर्मी सभा २८ उत्तर के अन्तर द्वीप. ११ शतक आठ उद्देशे, उत्पल, सालु, पलास, कुम्भी, पद्म पत्ते, कर्णिका, नलीनी नवमां उ० शिवराज ऋषि, दसवा० लोकालोक प्रमान, इग्यारहवां सुदर्शन सेठ, महाबल कुमार, बारहवां उ० आलंभिका नगरी के श्रावक, पुद्गल परिविर्जक, १२ शतक—पहिला उ० शंखजी पोखलीजी श्रावक, ३ जागरना, परस्पर क्लेश कर्म बन्धक, दूसरा उ० जयंतीबाई के प्रश्न, तीसरा उ० नर्क के नाम गोत्र, चौथा उ० प्रमाणु पुद्गल पुद्गल परावर्तन पांचवां उ० ४ कषाय के नाम, रूपी अरूपी का थोक, छट्ठा उ० ग्रहण राहु चन्द्र सूर्य के भोग सातवां उ० सब लोक जीव ने स्पर्शा सब जीव साथ सब सम्बन्ध किये, आठवां उ० देवता नागमेंमाणि में उत्पन्न हो पुजावे. हिंसक पशु कुगति में जावे, नवमा उ० पांच देव का थोक, दशवां उ० आठ आत्मा का परस्पर सम्बन्ध, आत्मा के प्रश्नोत्तर १३ शतक पहिला उ० नर्कावासे में जीव उत्पत्ती, लेश्यास्थान, दूसरा उ० देवस्थान, तीसरा उ० परिचारणा, चौथा उ० नर्क का, तीन लोक, दश दिशा, लोक, आस्तिकाय, लोक का संकोच विस्तार, पांचवां उ० ३ प्रकार आहार, छट्ठा उ० भांगे. चमरचंचा राजधानी, उदायन राजा, सातवां उ० भाषा, ५ मृत्यु, आठवां उ० कर्मप्रकृति, नवमा उ० गगन गामी साधु.

दशवां उ० छद्मस्त समदूघात १४ शतक पहिला उ० साधु का मरन, परभवगति, अन्तर परम्परा, दूसरा उ० यक्ष उन्माद से मोह उन्माद जबर काल से इन्द्र से वर्षा, देवकृत तमुकाय तीसरा उ० साधु के बीच से देव नहीं जा सके, २४ दंडक में सत्कार, देव के बीच देव जावे. नर्क में पुद्गल परिणाम. चौथा उ० पुद्गल सुख दुःख का जोडा, प्रमाणु का चर्माचर्म, पांचवां उ० २४ दंडक अग्नि मध्यजवेक्षया. १० सुख २४ दंडक में देव के पुद्गल गृहण. छट्ठा उ० आहार परिणाम, इन्द्रों के भोग सातवां उ० महावीर गौतम का प्रेम, द्रव्यादि की तुलना, भक्त प्रत्याख्यानी के आहार, लवसत्तम देव आठवां उ० रत्नप्रभा से वैमानिका अंतर शाल वृक्ष अमंड सन्यासी के ७०० शिष्य, देव सुख शक्ति, जंभकदेव का कृत्य नवमा उ० साधु कर्म लेश्य', सुख दुःख पुद्गल, देव हजारों रूप बना कर हजारों भाषा बोले सूर्य क्या है ? अधिक दीक्षित, अधिक तेजोलेशी दशवां उ० केवली सिद्ध को जाने, केवली को सब देखे १५ वें शतक के एक ही उद्देश्य में गोशाला निमित्त पढ तेजो लेश्या प्राप्त कर जिन नाम धरा भगवन्त से मिल सात पदलादि मिथ्यावाद किये दो साधु को जलाये, भगवन्त को जलाते आपही जल मरा, मरने सम्यक्त्व प्राप्त की, रेवती गाथा पत्नी ने कोलापाक वेहराया भगवान सातापाई, आगे भाव में सुमंगल साधु ने गौशाले को जलाया . अनन्त संसार भ्रमन कर दृढ़ प्रतिज्ञ केवली ही मोक्ष गया वगैरा कथन है. १६ शतक- पहिला उद्देश अग्नि वायु के सम्बन्ध, भट्टी संडासी के क्रिया, जीव अधीकरणी, दूसरा उ० शारीरिक मानसिक दुःख शक्रेन्द्र भगवन्त को आज्ञा दी, खुले मुंह बोलने में पाप, जीव कृत कर्म, तीसरा उ० स्वयं कृत कर्म वेदे, साधु के औषधोपचार में क्रिया नहीं, चौथा उ० तप का फल, तप से कर्म क्षय का दृष्टान्त, पांचवा उ० शक्रेन्द्र से ऊपर के देव अधिक तेजवान, देव ऋद्धी कैसे मिले, छट्ठा उ० स्वाधिकार, तीर्थंकर के १४, महावीर स्वामी १०, मोक्ष प्राप्ति के १५,

स्वप्नों का कथन. सातवां उ० उपयोग, आठवां उ० लोकदिश में जीव प्रदेश, एक ही समय में प्रमाणु लोकान्त तक में जावे. वर्षाद में हस्त प्रसोर पाप. नववां उ० बलेन्द्र की सभा. दशवां उ० अवधीज्ञान, ग्यारहवां उ० द्वीप कुमार का, बारहवां उ० उरछा कुमार का। १७ शतक का, पहला उ० उदायन भूतानन्द हाथी. क्रिया का कथन. दूसरा उ० धर्मी अधर्मी, पण्डित बाल, व्रती अव्रती. तीसरा उ० हल न चलन का, ५० काम मोक्ष के फल. चौथा उ० प्रणातिपातादिक्रिया, दुःख आत्म कृत. पाचवां उ० इशानेन्द्र की सभा. छटे से बारहवें तक स्थावर का कथन. तेरहवें से सत्रहवें उ० भुवनपति का कथन. १८ शतक- प्रथम उद्देश में चर्माचर्म. दूसरे में कार्तिक शेठ का. तीसरा उ० पृथव्यादि मनुष्य होवे. चर्म निर्जरा के पुदगल लोक स्पर्शें, द्रव्य बन्ध भाव बन्ध, पाप क्रिया करेगा जिसमें फर्क नेरीया का आहार परिणाम, चौथा उ० १८ पाप १८ धर्म, छः काय छः द्रव्य. कृत युगमादि, पाचवां उ० दो देव दो नेरीये अच्छे बुरे कैसे? वर्तमान आयु वेदे आगे बन्धे, छठा उ० भूमर तोते का वर्ण, प्रमाणु स्कन्ध, सातवां उ० केवली देवाधिष्ट भी सत्य बोले, उपाधी परिग्रह ३ प्रकार, सुप्रणीधान दुप्रणीधान. मंडुक श्रावक ने अन्यमती हराये, देवता रूप बना परस्पर झगड़े, देव रूचक द्वीप तक चक्र खा सके, आठवां उ० साधु से मुर्गी अण्ड की क्रिया, गौतम स्वामी अन्य तीर्थी की चर्चा. छद्मस्त प्रमाणु देखे, नववां उ० भव्य द्रव्य नेरीये. दशवां उ० भावितात्मा साधु सास्त्र से छे दिन नहीं होवे, वायु प्रमाणु स्पर्शे, महावीर स्वामी सोमल ब्राह्मण के प्रश्नोत्तर १९ शतक- पहिले दूसरे में लेशाधिकार, तीसरे में पृथव्यादि के १२ द्वार, सूक्ष्म बादर की अल्पा बहुत्त्वत, पांचों स्थावरों में सूक्ष्म बादर, दृष्टान्त पृथवी के शरीर की सूक्ष्मता, संघटे से दुःख, चौथा उ० आश्रव क्रिया निर्जरा वेदना के १६ भंग, पांचवें में चरम परम २४ दंडक, छट्ठे में द्वीप समुद्र का परिमाण, सांतवें में नर्क देव के वास, आठवें में निवृती के ८२ बोल,

नववें में करण के ५५ बोल, २० शतक- पहिला उ० त्रस तिर्यंच का आहार, दूसरे में लोकालोक में आकाश, तीसरे में, १८ पाप, चौथे में पांचों इन्द्रि का उपचय, पांचवें में पुद्गलों का मरण के भांग. छठे में ५ स्थावर स्वर्ग में, सातवें में ३ बन्ध कर्मों पर. आठवें में कर्म भूमी अकर्म भूमी मनुष्य, भरत ऐरावत महाविदेह में धर्म का विशेष, चौवीस तीर्थंकर का अंतर काल, भरत में १००० वर्ष पूर्व का ज्ञान, २१ हजार वर्ष जैन धर्म, तीर्थंकर सो तीर्थंकर तीर्थ सो तीर्थ, धर्माराधक मोक्ष पावे, नववां उ० विद्या चारण जंघा चारण गति विषय. दशवां उ० सोपकर्म निरूप कूम आयुष्यं, आत्म पर ऋद्धी, आत्म पर प्रयोग, कत्ति अकति संचय, छः बारे चौरासी परमार्जित, २१ शतक के सात वर्ग, प्रत्येक वर्ग के दश २ उद्देशे जिन में धान्य तृण का कथन. २२ शतक के छः वर्ग प्रत्येक वर्ग के दश २ उद्देशे तालादि वृक्ष बल्लियों का कथन. २३ वें शतक के छः वर्ग, प्रत्येक वर्ग के दश २ अध्ययन में आलु आदि साधारण वनस्पति का कथन. २४ वें शतक के २४ दंडक का कथन है. २५वें शतक के पहिले उद्देशे में १४ प्रकार के जीव का, दूसरे में जीव अजीव द्रव्य का उपभोग, तीसरे में पांच संस्थान, आकाश श्रेणी, द्वादशांग का, चौथे में कृत युगमादि से सेयनिरेय द्रव्यादि की अल्प बहुत, पांचवें में काल प्रमान, दो प्रकार की निगोद, छट्ठे में ६ प्रकार के निग्रन्थ का थोक. सातवें में ५ संयती का थोक. आठवें में नर्कोत्पत्ती, गति गमन. नववें में नर्क प्रतिवाद. २६ शतक के ११ उद्देश में- क्रमसे- पाप कर्म बन्ध के १० द्वार, अन्तरोत्पन्न के ११ द्वार, अन्तर परम्परा-गाढ-आहार-पर्याप्तापर्याप्त-चर्माचर्म-का कथन है. २७ वें शतक के ११ उद्देश पाप कर्म आश्रिय २६वें शतक जैसे ही हैं. २८ वें शतक के ११ उद्देश पाप समाचरन आश्रिय. २९वें शतक के ११ उद्देश पाप वेदने आश्रिय. ३०वें शतक के ११ उद्देश क्रिया वादी आदि चारों के समोसरण के ३१वें शतक के २८ उद्देश खुडाकृत ३२ वें शतक के २८

उद्देश में खुडाकृत्युगम नेरी की उत्पत्ती. ३३वें शतक के प्रति शतक १२ हैं प्रत्येक शतक के इग्यारे २ उद्देशे में एकन्द्रिय का कथन ३४वें शतक के प्रातिशतक १२ प्रत्येक के ग्यारे उद्देश में एकेन्द्रिय का श्रेणी स्वरूप है ३५ वें शतक के प्रातिशतक १२ प्रत्येक के ग्यारा २ उद्देश में महाकृत युगम का कथन है, ३६वें शतक के प्रातिशतक १२, प्रत्येक के ग्यारा २ उद्देश में एकोन्द्रिय के कृतम युगम का कथन है, ऐसे ही ३७वें शतक में तेन्द्री का ३८वें शतक में चौन्द्रिय का ३९वें शतक में असज्ञी पचेन्द्रिय का ४० वें शतक में सज्ञी पंचेन्द्रिय का ४१ वें शतक के १९६ उद्देशों में राशी कृत्युगम नारकी आदि चौबीसों ही दंडक का कथन है. इस वक्त सब से बड़ा और विचित्र अधिकारों से भरपूर यही सूत्र है इस के पहिले तो २२८८००० पद थे अब सिर्फ १५७५२ श्लोक मूल सूत्र के रहे हैं।

६ 'ज्ञाता धर्म कथाङ्ग'—इस के २ श्रुतस्कन्ध हैं, प्रथम श्रुतस्कन्ध में १ मेघकुमार का, २ धन्नासार्थवाही का, ३ मयुरी के अण्डका का, ४ दो काछवों का, ५ थावरचा पुत्र का ६ तुम्बी का, ७ रोहिणी का, ८ मल्ली-नाथजी का ९ जिनरक्ष जिन पाल का, १० चन्द्रमा का, ११ दावद्रव वृक्ष का, १२ सुबुद्धि प्रधान का, १३ नन्दनमणीयार का, १४ तेतली प्रधान का १५ नन्दीफल का, १६ द्रौपदी का, १७ अकीर्ण देश के घोड़े का, १८ सुसमा लड़की का और १९ पुंडरिक कुंडरिक का, यों १९ अध्ययन में १९ दृष्टान्त द्वारा साधु को सत् संयम का काम समझाया है और दूसरे श्रुतस्कन्ध के पहिले वर्ग के अध्ययन में चमरेन्द्र की ६ अग्रमहेषी का कथन, दूसरे वर्ग के ६ अध्ययन में बलेन्द्र की ६ अग्रमहेषीयों का कथन तीसरे वर्ग के ५५ अध्ययन में नवनी काया देव के ९ इन्द्र की पांच २ अग्रमहेषियों का कथन है चौथे वर्ग के ५५ अध्ययन में उत्तर के नवनी काय देव के ९ इन्द्रों की पांच २ अग्रमहेषीयों क कथन हैं पांचवें वर्ग के ६४ अध्ययन में दक्षिण के १६ वाणव्यन्तर इन्द्रों की चार

चार अग्रमहेषी का कथन है, छट्ठे वर्ग के चौसठ अध्ययन में उत्तर के १६ वाणव्यन्तर के इन्द्र की चार चार अग्रमहेषी का कथन है, सातवें वर्ग के आठ अध्ययन में सौधर्मेन्द्रजी की ८ अग्रमहेषी का कथन है और ८ वें वर्ग के ८ अध्ययन में ईशानेन्द्रजी की ८ अग्रमहैषीयों का कथन है. श्री पार्श्वनाथजी भगवान की २२६ अर्जिकाओं संयम से स्थिल हों देवीयों हुई जिनका कथन है. पाहिले इस सूत्र के ५५५६००० पद में ३५०००००० धर्म कथाएं थीं अब तो सिर्फ ५५०० श्लोक बिद्यमान हैं.

७ 'उपाशक दशाङ्ग'—जिसका एक ही श्रुतस्कन्ध और १० अध्ययनहैं जिन में १० श्रावक श्री महावीर स्वामीजी के शिष्य, २० वर्ष श्रावक व्रत पालन किये, जिस में १४॥ वर्ष घर में रह कर और ५॥ वर्ष गृह कार्य छोड पौषधशाला में रह कर श्रावक की ११ प्रतिमा का आराधन किया. उपसर्ग प्राप्त हुए किन्तु चलायमान नहीं हुए सब एक महीने के संथारे से आयुष्य पूर्ण कर पहिले देवलोक यंत्र कथित विमान में देवता हुए. सब ४ पल्योपम का आयुष्य पाये सब एक भवान्तरी महा विदेह में अवतर कर मोक्ष जांयगे. इस सूत्र के पहिले तो ११७०००० पद थे अब सिर्फ ८१२ श्लोक मूल के रह गये हैं.

१० श्रावकों के नाम	नगरों के नाम	स्त्रीयों के नाम	गो संख्या	द्रव्य संख्या	उपसर्ग	विमान
१ आनन्द जी	वाणियाग्राम	शिवानन्दा	४००००	१२००००००००	अवधिज्ञान	अरुण
२ कामदेवजी	चम्पा नगर	भद्रा	६००००	१८००००००००	पिशाचादि३	अरुणनाभ
३ चूलनी पिता	बानारसी	शामा	८००००	२४००००००००	भद्रामाताका	अरुणप्रभ
४ सूरदेव जी	बानारसी	धन्ना	६००००	१८०००२०००	१६ रोग का	अरुणकांत
५ चूलशतकजी	आलम्भिका	बहुला	६००००	१८००००००००	पर स्त्री का	अरुण श्रिष्ट
६ कुंडकोलिय	कम्पिलपुर	पुंसा	६००००	१८००००००००	धर्मचर्चाका	अरुणज
७सद्दालपुत्र	पोलासपुर	अग्निमित्रा	१००००	३०००००००	स्त्री घातका	अरुण भूत
८महाशतकजी	राजगृही	रेवती आदि	८००००	२४००००००	रेवतीस्त्रीका	अरुणवंतसक
९ नन्दनीपिता	श्रावस्ति	अश्विनी	४००००	१२००००००००	उपसर्गनहीं	अरुण गर्व
१०तेतलीपिता	श्रावस्ति	फाल्गुनी	४००००	१२००००००००	उपसर्गनहीं	अरुणकिल

८ 'अन्तगड दशाङ्ग'—इस के ८ वर्ग—प्रथम वर्ग के १० अध्ययन १ गौतमकुमार, ※ २ समुद्रकुमार, ३ सागरकुमार, ४ गभीरकुमार, ५ थिमितकुमार ६ अचलकुमार, ७ कापिलकुमार, ८ अक्षोभकुमार, ९ प्रसेन कुमार, और १० विष्णुकुमार यह १० अध्ययन हैं. दूसरे वर्ग के ८ अध्ययन. १ अक्षोभजी, २ सागरजी, ३ समुद्रविजयजी, ४ हिमवन्तजी ५ अचलजी. ६ धरणजी ७ पूर्णजी और ८ अभिचन्द्रजी यह आठों भी अन्धक विष्णु के पुत्र जानना. तीसरे वर्ग के १३ अध्ययन १—अनियसेनकुमार, २ अनन्तसेनकुमार, ३ अजितसेनकुमार ४ अनिहतारेपुकुमार, ५ देवसेनकुमार, ६ शत्रुसेनकुमार, ७ सारनकुमार ८ * गजसुकुमार ९ सुमुखकुमार, १० दुमुखकुमार, ११ कुवेर, १२ दारूक, १३ अनादिट्ठीकुमार का. चौथे वर्ग के १० अध्ययन—१ जालीकुमार, २ मयाली कुमार, ३ उजवालीकुमार, ४ पुरिससेनकुमार, ५ वारीसेनकुमार, ६ पर्जन कुमार, साम्बकुमार, ८ अनिरुद्धकुमार, ९ सत्यनेमीकुमार, और १० दृढ नेमीकुमार का. पचवे वर्ग के १० अध्ययन—१ पद्मावती ‡ रानी, २ गोरीरानी, ३ गंधारी रानी, ४ लक्ष्मना रानी, ५ सुसिमारानी, ६ जम्बूवती रानी ७ सत्यभामारानी ८ रुकमनी रानी (यह ८ कृष्णजी की पट्टरानियां) ९ मूल श्री और १० मूलदत्तारानी। छट्ठे वर्ग के १६ अध्ययन १-मकाई गाथापति, २ विकर्मगाथापती, ३ मोगरपानी यक्ष (अर्जुनमाली) † ४ काश्यगाथापति, ५ क्षेमगाथापति, धृतीधरगाथापती, ७ कैलासगाथापती, ८ हरिश्चन्द्रगाथापति ९ वीरक्तगाथापति, १० सुदर्शनगाथापति, ११ पूर्णभद्रगाथापति, १२ सुमनभद्रगाथापति, १३ सुप्रतिष्टगाथापति, १४ मोहृतीगाथापति, अतिमुक्तकुमार§ और १६ अलखराजा का। सप्तमवर्ग के १३ अध्ययन. १ नन्दा रानी का, २ नन्दवती रानी, ३ नन्दुत्तरा रानी, ४ न-

※ इनमें द्वारका नगरी का वर्णन है. * विस्तार से रसीला वर्णन है, ‡ इसमें द्वारका दाहा का कृष्ण जी तीर्थंकर होने का वर्णन है, † यह ११४१ मनुष्य का घातक ६ महीने में बेडा पार कर गया इसका वर्णन है, § आठ वर्ष की वय में दीक्षाजी चमत्कारीक वर्णन है,

न्दसेना रानी, ५ मरूता रानी, ६ सुमरूता रानी, ७ महामरूता रानी, ८ मरू देवीरानी, ९ भद्रारानी, १० सुभद्रारानी, ११ सुजातरानी, १२ सुमतिरानी और १३ भूतदीवारानी (यह तेरह ही श्रेणिक राजा की रानी जानना) अष्टम वर्ग के ꣸१० अध्ययन १ कालीरानी, २ सुकालीरानी, ३ महाकाली रानी, ४ कृष्णरानी, ५ सुकृष्णरानी, महाकृष्णारानी, ७ वीरकृष्णारानी, ८ सामकृष्णारानी, ९ प्रियसेनकृष्णारानी, और १० महासेन कृष्णारानी, (यह भी श्रेणिक राजा की रानी) इन रानियों ने कनकावली, रत्नावली मुक्तावली आदि बडे २ तप किये हैं. यह सब ९० ही केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गये हैं पहिले इस सूत्र के २३२८००० पद थे अब तो फक्त ९०० श्लोक मूल के रहे हैं।

९ 'अनुत्तरोववाई दशाङ्ग'—इसके ३ वर्ग हैं. प्रथम वर्ग के १० अध्ययन—१ जालीकुमार * का, २ मयालीकुमार का, ३ उजवाली कुमार का, ४ पुरिससेन, ५ वारीसेन, ६ दीर्घदन्त, ७ लष्टदन्त, ८ विहल्ल, ९ विहांस और १० वां अभयकुमार का. दूसरे वर्ग के १३ अध्ययन १ दीर्घ सेन कुमार का २ महासेनकुमार का. ३ लष्टदन्त, ४ गुढदन्त, ५ शुद्ध दन्त, ६ हल्ल, ७ द्रुम, ८ द्रुमसेन, ९ महासेन, १० सिंह, ११ सिंहसेन, १२ महासिंहसेन और १३ पुण्यसेनकुमार का (दोनों वर्ग के २३ ही श्रेणिक राजा के पुत्र जानना) तीसरे वर्ग के १० अध्ययन—१ धन्ना अनगार × का, २ सुनक्षत्र अनगार का, ३ ऋषिदास का, ४ पेल्हक पुत्र का ५ रामपुत्र का, ६ चन्द्रकुमार का ७ पोष्टिक पुत्र का, ८ पोढालकुमार का, ९ पोटिलकुमार का, और १० विहल्ल कुमार का, (यह दशों ही साधु जानना) यह ३३ ही अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए हैं एक

꣸ इस वर्ग में विचित्र प्रकार के तप का वर्णन है। * अन्तगड़ में जाली कुमार कहे थे यादव कुल के जानना और यह श्रेणिक राजा के पुत्र जानना।

× अभी इन सूत्र में धन्ना अनगार का कथन तो सविस्तार है बाकी सब संक्षेप में है।

भव कर मोक्ष हो जायंगे. इस सूत्र के पहिले ९४०४००० पद थे अब फक्त २९२ श्लोक हैं।

१० 'प्रश्न व्याकरण'—इस के दो श्रुतस्कन्ध हैं—प्रथम श्रुतस्कन्ध में आश्रव द्वार के ५ अध्ययनों में-हिंसा, झूंठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह निष्पन्न होने के कारण उन के कृत और उन के फल का कथन है. २ दूसरे संबर द्वार के ५ अध्ययन में दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और निर्ममत्व इन पाचों के अनेक नाम, निष्पन्न होने के कारण व फल का कथन है इस के पहिले ९३११६००० पद थे, अब १२५० श्लोक रहे हैं.

११ * 'विपाकजी'—इसके भी दो श्रुतस्कन्ध हैं—प्रथम दुखविपाक के १० अध्ययन १ मृगा लोढा का, २ उज्झित कुमार का, ३ अभगसेन चोर का, ४ शकट कुमार का, ५ वृहस्पति दत्त का, ६ नन्दीसेन कुमार का, ७ उम्बरदत्त कुमार का, ८ सोर्यदत्त मच्छी का, देवदत्ता रानी का और १० अंजू रानी का यह १० जीव पापा चरण कर जिसके फल में घोर दुख पाये अनेक भव भ्रमण कर मोक्ष गये और दूसरे विपाक के १० अध्ययन- १ सुबाहु कुमार का, २ भद्रनन्दी कुमार का, ३ सुजात कुमार का, ४ सुबासव कुमार का, ५ जिनदास कुमार का, ६ धनपति कुमार का, ७ महाबल कुमार का, ८ भद्रनन्दी कुमार का, ९ महाचन्द्र कुमार का और १०वां वर कुमार का. यह १० ही महात्मा तपोधन साधु को उत्तम दान देकर महासुख के भोक्ता हुये आगे तप संयम का आराधन कर ७ भव देवता के और ८ भव मनुष्य के करके सुख से मोक्ष प्राप्त होंगे. इसके पहिले ११० अध्यन और १२४००००० पद थे अब १२१६ श्लोक हैं।

१२ 'दृष्टीवादांङ्ग'—इसकी ५ वत्थु १ परीकर्म, २ सूत्र, ३ पूर्वगत, ४ अनुयोग और ५ चूलिका. इसमें १ परिक्रम के ७ प्रकार- १ सिद्धश्रेणि, २ मनुष्य श्रेणिक (इन दो के ११-११ प्रकार हैं) ३ पुट्ठानिका, ४ अव

* दुखविपाक तो सविस्तारसे है, सुखविपाक का प्रथम अध्ययन सिवा सब संक्षिप्त में हैं।

ग हना श्रेणिक, ५ उप सम्पदा श्रेणिका, ६ वियजहित श्रेणिका और ७ चुताचुत श्रेणिक (इनके ११-११ प्रकार हैं) २ सूत्र के ८८ प्रकार- १ ऋजु सूत्र, २ परिणताप हीन, ३ बहुभंगी, ४ विद्याचार ५ अनन्तर, ६ परस्पर, ७ सामान्य सूत्र, ८ संयुक्त, ९ समिन्न, १० यथा तथ्य, ११ सावस्ति, १२ घंठा, १३ नन्दावर्त, १४ बहुत, १५ पुष्ट पुष्प, १६ वैयावृत, १७ ऐवं भूत, १८ दुयावर्त, १९ वर्तमान पद, २० समभीरूढ, २१ सर्वतोभद्रप-नास और २२ द्विमती ग्राही यह १ संग्रह, २ व्यवहार, ऋजु सूत्र और ४ शब्द इन ४ नय से चौगुना करे तब ८८ होते हैं. ३ पूर्व गत के १४ प्रकार— १ 'उत्पाद पूर्व' इसमें षट द्रव्य की पर्याय का उत्पन्न होने का कथन. इसकी १० * वस्तु और ११०००००० पद, २ 'अग्रणीय पूर्व' इसमें द्रव्य गुण पर्याय के अग्रपरिणाम का कथन. इसकी ४ वस्तु और २२०००००० पद, ३ 'वीर्य प्रवाद पूर्व' इसमें जीव के बल वीर्य का तथा सकाम अकाम वीर्य का कथन इसकी ८ वस्तु और ४४०००००० पद. ४ 'अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व' इसमें शाश्वती अशाश्वती वस्तु का कथन. इसकी १६ वस्तु और ८८०००००० पद, ५ 'ज्ञानप्रवाद पूर्व' इसमें ५ ज्ञान का सविस्तार कथन. इसकी १२ वस्तु और १७६०००००० पद, ६ 'सत्य प्रवाद पूर्व' इसमें १० प्रकार के सत्य का कथन, इसकी १२ वस्तु और २५२०००००० पद, ७ 'आत्म प्रवाद पूर्व' इसमें ८ आत्मा का कथन इसकी १६ वस्तु. ३०४०००००० पद, ८ 'कर्म प्रवाद पूर्व' इसमें ८ कर्म प्रकृतीयों का कथन. इसकी १६ वस्तु ६०८०००००० पद, ९ 'प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व' इसमें १० प्रत्याख्यान के ९००००००० प्रकार का कथन इस की ३० वस्तु और १२१६०००००० पद, १० 'विद्या प्रवाद पूर्व' इसमें रोहणी प्रज्ञाप्ति आदी विद्या, अनेक मन्त्रादि का साधन विधी कथन, इसकी १४ वस्तु २५२०००००० पद, ११ 'कल्याण प्रवाद पूर्व' इसमें आत्म कल्यान

* पूर्वो की वस्तु पद और ममाण ग्रन्थान्तर से मिलता नहीं है. तत्त्व केवली गम्य।

कर्ता तप संयमादि का कथन. इसकी १० वस्तु ४८६४००००, पद. १२ 'प्राण प्रवाद पूर्व' इसमें ४ प्राण से १० प्राण तक धारक प्राणीयों का कथन. इसकी १० वस्तु ६७२७००००० पद, १३ 'क्रिया विशाल पूर्व' इसमें साधु श्रावक के आचार का तथा २५ क्रियादि का कथन. इसकी १० वस्तु और एक क्रोड़ा क्रोड़ी ऊपर एक क्रोड़ पद. और १४ 'लोक बिन्दुसार पूर्व' इस में सब अक्षरों का सन्नीपात (उत्पत्ती संयोग) का कथन. इसकी १० वस्तु और दो क्रोड़ा क्रोड़, तीन क्रोड़, दश लक्ष, पद। ग्रन्थों में कथन है कि पहिला पूर्व एक हस्ति डूबे इतनी स्याही से दूसरा दो हस्ति डूबे इतनी स्याही से यों दुगुने करते २ चौदहवां पूर्व ८१९२ हस्ति डूबे इतनी स्याही से लिखा जाय. चौदही पूर्व का ज्ञान लिखने में १६३८३ हस्ति डूबे जितनी स्याही लगे. यह केवल अनुमान बताया है किसी ने लिखे नहीं हैं. ४ अनुयोग दो प्रकार के—जिसमें तीर्थंकर के जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त किस कारन से की. बीच के भव चवन जन्मोत्सव राज्याभिषेक, दीक्षा, तप, केवल ज्ञान, तीर्थ प्रवृती गणधर साधु साध्वी श्रावक श्राविका केवली मनः पर्वज्ञानी, अवधीज्ञानी, वैक्रयलब्धी वंत, चर्चा वादी, अनुत्तर विमानगामी मोक्ष गामी आदि का कथन मूल प्रथमानुयोग, और गंडिकानुयोग में से तीर्थंकर गंडिका में तीर्थंकर का. यों. कुल कर गंडिका. दसार गंडिका. बलदेव वासुदेव आदि का गंडिका में उनके भवान्तर ऋद्धी सुख गति आदि का कथन है. इसमें ६ बातों में से. प्रथम के ५००० पद और शेष ५ के अलग अलग २०६८९०२०० पद होते हैं. ५ चूलिका जिस में अणुलोम प्रति लोम विलोम एकान्त इस प्रकार सिद्धगति में और अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले का कथन. प्रथम के चार पूर्वों की चूल का है शेष की नहीं है. इसके १०५८४६००० पद हैं।

☞ ऐसे विशाल ज्ञान का सागर बारहवां दृष्टीवादांग का पंचम आरे के जीवों के हत भाग्य से विच्छेद होगया? यह जैन धर्म में ज्ञान की बड़ी

भारी हानी हुई है ? जिस वक्त यह विद्यमान था उस वक्त उपाध्याय जी महाराज इसके भी ज्ञाता होते थे. अब एकादशांग के ज्ञाता होते हैं ।

जैसे शरीर के उपांग हस्त पादादि होते हैं तैसे उक्त एकादशांग के १२ उपांग हैं ।

१२ उपांग ।

१ 'आचाराङ्ग' का उपाङ्ग 'उववाई'—इसमें चम्पा नगरी, पूर्ण भद्र यक्ष पूर्ण भद्र चैत्य, कौणिक राजा, धारनी रानी, प्रवर्तिक वाहुक (बधाइयां) महावीर स्वामी, साधु, द्वादश तप, देवादि की परिषद, मनुष्य की परिषद, राजा के जिन वंदन आगम, अभिगम सचवन, भगवान के व्याख्यान का साराश, यह समवसरणाधिकार में कथन है. और नर्क तिर्यंचादि गति गमन तथा देवता के १०००० वर्षके आयुष्य से क्रमसे मुक्ति प्राप्त करने वालेकी करणी, समुद्घात सिद्ध के सुख सिद्ध की अवगाहनादि और सिद्ध भगवान का सविस्तार कथन किया है. यह शास्त्र ज्ञान के इच्छक को प्रथम जानने योग्य है. इसके मूल ११६७ श्लोक हैं ।

२ 'सुयगडांग' का उपांग 'राज प्रश्नीय'—इसमें सुर्याभदेव की सभा गमन विमान, जिन वन्दन, नाटक ३२ प्रकार का, देव विमान, देव बगीचे, सौधर्मी सभा, सिद्धायतन, पंच सभा, देवोतपत्ती, अभिष, अलंकार, पुस्तक, जिन प्रतिमा, पूतली द्वारादि पूजन, श्वेताम्बि का नग * प्रदेशी राजा, सूरी-

* प्रदेशी राजा का संक्षिप्त वृतान्त–श्वेताम्बिका नगरी के प्रदेशी राजा का चित्त प्रधान नजराना ले श्रावस्ति नगरी के जीत शत्रु राजा के पास गया, वहां पार्श्वनाथ जी के सन्तानिये (प्रति शिष्य) केशी श्रमण (साधु) का उपदेश सुन श्रावक बना । केशी श्रमण को विज्ञप्ति कर श्वेताम्बिका लाया, घोड़े फिराने के मिससे नास्तिक मति प्रदेशी राजा को ले गया । ५०० साधु का समूह देख पूछा यह कौनहै ? प्रधान ने कहा यह जीव शरीर पृथक् मानने वाले विद्वान् साधुहैं, राजा साधुपास आकर बोला–आप जीव शरीर अलग २ मानते हो ? साधु–राजा तू मेरा चोर है, राजा (चौंक कर) मैंने कभी चोरी नहीं की, साधु तेरा हांसल चोरे उसे तू क्या कहता है, यों सुनते ही राजा समजा कि मैंने साधु को नमस्कार किये बिना प्रश्न पूछा जिससे मैं चोर हुआ, राजा–वंदन कर मैं यहां बैठूं ? साधु–तेरा ही काम है । (यों विचित्र प्रश्नोत्तर सुन राजा को विश्वास हुआ यह मुझे निःशंकित करेंगे

कान्ता रानी, चित्तसारथी, श्रावस्तिगमन, केशी श्रमण दर्शन, विज्ञप्ति, राजा साधु समागम, प्रश्नोत्तर, धर्म स्वीकार, राज के ४ भाग, रानी से मृत्यु, दृढ़ प्रतिज्ञ ७२ कला, वैराग्य केवल प्राप्त कर मोक्ष गमन. इस के मूल के २०७८ श्लोक हैं.

(सन्मुख दोनों बैठे) राजा-आप जीव काया पृथक मानते हो? साधु-हां, मृत्यु हुये काया यहां रहती है और जीव अन्य शरीर में जन्म ले कृत कर्म फल भोगता है, राजा-मेरे पर प्रेम रखने वाला मेरा दादा बड़ा जबर पापी था वह नर्क में गया होगा। वह यहां आ मुझे कहे बेटा पाप करेगा तो नर्क में पड़ मेरे जैसे दुःख भोगेगा, ऐसा हो तो मैं मानू कि जीव शरीर पृथक है, साधु-तेरी सूरिकान्ता रानी के साथ किसी को जार कर्म करता देखे तो तूं क्या करे? राजा-ठोर मार डालूं। साधु-यदि वह कहे मुझे क्षण भर छोड़ो मेरे घर वालोंसे कह आऊं तुम ऐसा पाप मत करना, तू छोड़े क्या? राजा-अपराधी का विश्वास करें ऐसा मूर्ख कौन होगा? साधु-तू एक पाप करने वाले को भी नहीं छोड़ता है तो तेरा दादा १८ पापाचर्ण कर नर्क में गया उसका कैसे छूटका होवे? राजा-अच्छा, मेरी दादी धर्मात्मा थी वह स्वर्ग गई होगी, वह भी आवे तो मैं आपका कथन मानू? साधु-कोई भंगी तुझे पाखाने में बुलावे तो तू जावे? राजा-अपवित्र जगह में कैसे जा सकूं? साधु-५०० योजन जिसकी ऊपर दुर्गन्ध जाती है ऐसे इस लोक में देवता भी कैसे आ सके? राजा-एक अपराधी को लोह कोठी में भर चारों ओर सीसा झार दिया कालान्तर में खोल देखा तो कोठी के छिद्र पड़ा नहीं और वह मरा पाया, जीव किधर से निकल गया? साधु-किसी गुफा को चारों ओर बन्द कर अन्दर कोई ढाल बजाने से बाहिर आवाज आती है क्या? राजा-हां, आती है? साधु-तैसे जीव भी निकल जाता है किन्तु दृष्टी नहीं आता है। राजा-तैसे ही एक चोर को कोठी में बन्द कर बहुत दिनों बाद देखा तो उसमें बहुत कीड़े पड़ गये, वे कैसे भरा गये? साधु-जैसे घन लोह गोले को अग्नि में तपाने से उसके अन्दर भरी जाती है तैसे, राजा-सबके जीव एक से हैं कि कमी ज्यादा? साधु-एक से, राजा-तो फिर युवान के हाथ से बान जाता है तैसा वृद्ध के हाथ से क्यों नहीं आता? साधु-जैसा नये धनुष्य से दूर बाण जाता है तैसा पुराने से नहीं जाता तैसे राजाः— जितना वजन युवान उठा सकता है उतना वृद्ध क्यों नहीं उठाता? साधु-जितना नवा छींका वजन उठता उतना पुराना नहीं उठाता, तैसे, राजा-जिन्दे चोर को तोल कर श्वास रोक मारा और फिर तोला किन्तु वजन कमी नहीं हुआ? साधु-चमड़े की मशक को खाली और हवा भर तोलने से वजन बराबर रहता है, तैसे, राजा एक चोर के टुकड़े २ कर देखा किन्तु जीव कहीं दृष्टी नहीं आया? जसे किसी सब कठीयारे ने अरणी के लकड़े के टुकड़े २ कर अग्नि ढूंढता देख दूसरे हंसे और लकड़ को परस्पर घर्षन कर अग्नि दिखाई, तैसा तुभी मूर्ख है, राजा मुझे तो हस्तल में रख कर जीव बतादो तो मैं मानूं साधु यह पता किससे हिलता है? राजाः-हवा से, साधुः-हवा

३ 'ठाणाङ्ग का उपाङ्ग'—'जीवाभिगम' इसकी ९ प्रतिपत्ति. नवकार मन्त्र, अरूपी रूपी जीव के भेद, सिद्ध के १५ प्रकार, संसारी की ९ प्रतिपत्ती तीन त्रस तीन स्थावरों पर २३ द्वार. २ प्रतिपत्ति तीनों वेद की स्थिति अन्तर अल्प बहुत व विषय प्रकार. ३ प्रतिपत्ति—नर्क के ३ उद्देशों में नर्क का तिर्यंच के दो उद्देश्यों में तिर्यंच की, साधु के अवधी—लेश्या अन्तर्द्वीप-कर्म भूमि-मनुष्य. भुवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी. असंख्यात द्वीप समुद्रों, जम्बुद्वीप का विस्तार से, विजयदेव का विस्तार से, लवण समुद्र पाताल कलश, पानी की शिखा, नागदेव, वेलंधरदेव धातकी खण्डद्वीप कालोदधि समुद्र पुष्कर द्वीप मानुष्योत्तर पर्वत, ज्योतिषी इन्द्र चवन पुष्कर समुद्र वरुण क्षीर-घृत, इक्षु, नन्दीश्वर-अरुण द्वीप समुद्र यावत्स्वयंभूरमन द्वीप समुद्र प्रमान, समुद्र के मच्छ, इन्द्रियों विषय, सम भूमि ज्योतिषी का अन्तर ज्योतिषी की गति ऋद्धि वैमानिक देव के दो उद्देशक ४ प्रतिपत्ति एकेन्द्रिय के पांच प्रकार. ५ प्रतिपत्ति-छकाय ६ प्रतिपत्ति ७ प्रकार के जीव ७ प्रतिपत्ति ८ प्रकार जीव. ८ प्रतिपत्ति, ९ प्रकार जीव, ९ प्रतिपत्ति ९ प्रकार जीव. समच्चय जीवाभिगम इस के मूल श्लोक ४७०० हैं.

कितनी बड़ी है और उसका रंग कैसा है? राजा—वह दिखाती नहीं है साधु तब हवा को कैसे जानी? राजा पत्ते के हिलने से, साधु—तैसे ही शरीर के हिलने जीव जान। राजा-सब जीव एक से हैं तो हाथी बड़ा कुंथुवा छोटा क्यों? साधु जैसे दीपक कोठरी में कोठरी जितना और कटोरे के नीचे कटोरे जितना स्थल प्रमाने प्रकाश करता है तैसे जीव भी शरीर प्रमाने रहता है राजा—आप का कथन सच्चा है किन्तु मेरे बाप दादा से चला आता यह मेरा मत मैं छोड़ नहीं सकता। साधु—तो तू लोहवणीये जैसा पश्चाताप करेगा राजा—कैसे? साधु चार वनिक द्रव्यो उपार्जन करते लोहे की खान आने सब ने लोह भरा लिया। आगे तांबे की खान आई तब औरों ने तो लोहा डाल कर तांबा बांधा किन्तु एक बोला मैंने [illegible] भरा लिया। और रुपे सुवर्ण रत्न की खानों आई और हलका माल छोड़ अच्छा लेते गये। एक ने तो लोहा ही रक्खा और घर आकर सुखी हुवे वह लोह वनिक उन्हें देख पश्चाताप करने लगा यों सुन राजा ने जैन धर्म स्वीकार किया। राज के ४ भाग कर १ भाग दान को रक्खा बेले २ पारना करने लगा तेरवे बेले के पारने में रानी ने जहर देकर मार दिया। राजा समाधी मरन कर स्वर्ग गया विदेह क्षेत्र में संयम ले मोक्ष जायगा।

४ 'समवायाङ्ग का उपाङ्ग पन्नवणा'—इसके ३६ पद हैं १—पूज्ञा पद में अजीव के ५६३ भेद. सिद्ध के १५ प्रकार पांच स्थान, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, अकालिये की उत्पत्ति, कुलकोरी, मनुष्य के प्रकार अनार्य देश के नाम आर्य २५॥ देशों के नाम आर्य-जाति-कर्म-भाषा-लिपी-ज्ञान-दर्शन चारित्र के प्रकार देव के १९८ भेद २ 'संस्थान पद में'—२४ ही दंडक के जीवों के निवास स्थान का विस्तार से वर्णन, सिद्ध शिला व सिद्ध भगवान का कथन. ३ बहुव्यक्तव्य पद'—दिशानुत्पाति, गति-जाति-काया जोग-वेद कषाय-लेश्या- दृष्टी-ज्ञान--दर्शन--संयति--उपयोग--आहारक--भाषक--परित पर्याप्त-सूक्ष्म-सन्नी-भव्य-अस्तिककाय-चर्म-क्षेत्र-बन्ध-पुद्गल इन २६ द्वारों पर १४ जीव भेद. १४ गुणस्थान, १५ योग, ११ उपयोग, ६ लेश्या ये ६२ बोल उतारे हैं. जीव के २५६ ढग व ९८ बोल की अल्पा बहुत है. ४ 'स्थिति पद'—चौबीस ही दंडक के पर्याप्ता अपर्याप्त का-नर्क के पाथडे की, भुवनपति स्थावर--विकलेन्द्रिय तीर्थंकर--चक्रवर्ती-बलदेव-वासु-देव-अकर्मभूमी-ज्योतिषी देवलोक सब की अलग २ स्थिति (आयुष्य) बताया है. ५ 'पर्याय पद'—२४ ही दडक की आयुष्य अवगाहना की रूपी अरूपी अजीव प्रमाणु अनन्त प्रदेशी स्कन्ध आदि की पर्याय का कथन है. ६ 'विरह पद'—२४ दंडक का चवन-उद्वर्तन-प्रति समय आश्रिय विरह (अन्तर) पढने का गतागति व परभव आयुबन्ध का कथन है. ७ 'श्वासोच्छ्वास पद'—२४ दंडक के श्वासोच्छवास का प्रमान ८ 'संज्ञा' १० संज्ञा के नाम किस कर्म होवे. २४ दंडक में पावे. अल्पा बहुत्व. ९ 'योनी पद'—१२ प्रकार की योनि २४ दंडक पर अल्पा बहुत. १० 'चरिम पद'—सातों नर्क का लोकालोक का, प्रमाण से अनन्त प्रदेशी तक का स्थिति भाव भाषादि के चरमाचरिम कथन है. ११ 'भाषा पद' अवधारणी-सत्य-असत्य-मिश्र-व्यवहार भाषा के ४२ प्रकार. भाषा की आदि, भाषक, अभाषक, भाषा के द्रव्य ग्रहण पाच पुद्गल, परिणाम

२६ प्रकार खुलासे वगैरा है. १२ 'शरीर पद'—पांच शरीर के नामार्थ, २४ दंडक के शरीर, बन्धेलक, मुक्तलक, मनुष्य संख्या के २९ अंक. १३ 'परिणाम पद'—जीव परिणाम के ४१ भेद २४ दंडक पर, अजीव परिणाम के ३६ भेद, परिणाम के ५० बोल २४ दंडक पर. १४ 'कषाय पद' ५२०० भङ्ग कषाय के, १५ 'इन्द्रिय पद'—प्रथम उद्देश्य में पांचों इन्द्रिय के २५ द्वार २४ दंडक पर, इन्द्रिय स्पर्श्य-विषय आरीसा के प्रश्न, आकाश प्रदेश, अवगाहना ४० द्वीप समुद्र के नाम अलोक आकाश, दूसरे उद्देश में पाचों इंद्रिया के १२ द्वार २४ दंडक पर. एक जीव, बहुत जीव, पृथक, परस्पर भावेन्द्रिय आदि है. १६ 'प्रयोग पद'—१५ योग २४ दंडक पर ५ शरीर के भङ्ग ५ प्रकार गति १७ 'लेश्या पद' प्रथमोद्देश लेश्या के ९ द्वार २४ दंडक पर दूसरा उद्देश्य २४ दंडक की लेश्या अल्पा बहुत्व व ऋद्धी. तीसरा उद्देश गति में उत्पन्न होने की लेश्या अवधीज्ञान की लेश्या लेश्या में ज्ञानि. चौथा उद्देश. ६ लेश्या पर १४ द्वार. पंचम उद्देश ६ लेश्या के परस्पर परिणाम, छठा उद्देश मनुष्य में लेश्या परिणाम का विशेषत्व १८ 'कायास्थिति पद'—कायास्थिति के २२ द्वारों का विस्तार युक्त वर्णन. १९ 'दृष्टिपद'—३ दृष्टि २४ दंडक पर. २० 'अन्तक्रिया पद' ९ द्वार २४ दंडक. अन्त क्रियक की संख्या सिद्धस्व रूप दर्शक ८ द्वारों पर १६ द्वार. जीव की परस्पर उत्पत्ति धर्म व मोक्ष की प्राप्ति २३ पद्वी कौन २ जीव प्राप्त करे. कौन २ जीव कैसे २ देव होवे. असज्ञी के प्रकार २१ 'शरीर पद'—५ शरीर के ८ द्वार, २४ दंडक की अवगाहना-संस्थान-नक के पाथडे देवलोक प्रतर की अलग २ अवगाहना. आहारक तेजस-कार्मन शरीर, मरणान्तिक समुद्घात किस प्रकार होवे. शरीर का परस्पर सम्बन्ध. द्रव्य प्रदेश की अल्पा बहुत २२ 'क्रिया पद'—कायिकादि ५ क्रिया, सक्रिय, अक्रिय क्रिया से कर्म, परस्पर क्रिया, काल क्षेत्र जीव आश्रिय क्रिया. आरंभियादि ५ क्रिया २४ दंडक पर. परस्पर क्रिया से

निवृत्ति ४ भङ्ग. २३ कर्म-बंध पद'--कर्म बंध के ५ द्वार कर्म बंध विधि दूसरा उद्देश आठों कर्म की उत्तर प्रकृति की स्थिति एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय तक कर्म प्रकृति की स्थिति. कर्म प्रकृति बंधाधिकारी, २४ 'कर्मस्थिति पद'--एक प्रकृति में अन्य प्रकृति का बंध हो सो, बंध के भङ्गे. २५ 'कर्म वेदना पद'--एक कर्म बंधते कितने वेदे सो २६ 'कर्म प्रकृति पद' एक कर्म वेदते कितने कर्म बंधे भङ्ग। २७ क्रिया पद'=एक कर्म वेदते कितने कर्म वेदे. २८ 'आहार पद'—आहार के ११ द्वार २४ दंडक पर. २९ 'उपयोग पद'—१२ उपयोग २४ दंडक पर. ३० पश्यता पद--देखने वाले ९ उपयोग ३१ 'सञ्ज्ञी पद'—२४ दंडक में संज्ञी असञ्ज्ञी ३२. 'संजया पद'—संयति आदि २४ दंडक पर ३३ 'अवधि पद'—अवधि ज्ञान के १० द्वार, ३४ 'परिचारणा पद'—देव देवी का भोग. ३५ 'वेदना पद' विविध वेदना का कथन. और ३६ 'समुद्घात पद'—सातों समुद्घात का बहुत विस्तार से कथन है. इस पन्नवणा सूत्र से सैंकड़ों थोकड़े निकलते हैं. गहन ज्ञान का सागर यह शास्त्र है इस के मूल के ७७८७ श्लोक हैं.

५ 'विवहा प्रज्ञप्ति का उपाङ्ग'—'जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति' इस में जम्बुद्वीप की जगती, भरत क्षेत्र, वैताढ्य पर्वत, ऋषभकूट, छः आरे, ऋषभदेवजी का चरित्र निर्वाण महोत्सव, उत्सर्पिनी वर्नाता नगरी चक्रवर्ती, चक्र रत्नोत्पत्ती दिगविजय—षट्खंडसाधन तीनों तीर्थ वैताढ्यकी तिमिश्र गुफा उमग्र जला निम्रजला नदी, आपात चिलात म्लेच्छ, गंगा सिन्धु देवी नव निधी वनीता प्रवेश, राजरोहण महोत्सव चक्रवर्ती की ऋद्धि आरीसा भवन में भरतजी को केवल ज्ञान, चुल्ल हिमवंत पर्वत हेमवय क्षेत्र महा हिमवंत पर्वत हरिवर्ष क्षेत्र, निषध पर्वत, महाविदेह क्षेत्र, गजदंता पर्वत, उत्तर कुरुक्षेत्र यमकदेव की राजधानी, जम्बुवृक्ष, कच्छादि ३२ विजय, सीतामुख वन मेरू पर्वत, नीलवंत पर्वत, रम्यकवास क्षेत्र, रूपी पर्वत, एरण्यवय क्षेत्र शिखरी पर्वत, ऐरावत क्षेत्र, तीर्थंकरों का जन्माभिषेक दिग् कुमारिकखण्डा

जोतन का थोक १० द्वार चन्द्र सूर्य संख्या, सूर्य मंडल अन्तर लम्बे, चौंडे मेरु से अन्तर—हानि वृद्धि, उदय अस्त रीति, संवत्सर नाम, महीने के नाम, पक्ष तिथी रात्री के नाम मुहूर्त—कर्ण के नाम, चर स्थिर करन, नक्षत्र, नक्षत्रदेव, तारा संख्या, नक्षत्र गोत्र, नक्षत्र संस्थान, चंद्र साथ संयोग, कुल उप कुल नक्षत्र, रात्री पूर्णकर्ता नक्षत्र, पोरुषी प्रमान, अधो ऊर्ध्व तारा, विमान वाहक देव, ऋद्धि, परस्पर अंतर, अग्रमहेषी, ८८ ग्रह जम्बुद्वीप के उत्तम पुरुषों, जम्बुद्वीप की लम्बाई चौड़ाई, जम्बुद्वीप की स्थिति इत्यादि कथन है इस के मूल श्लोक ४१४६ हैं. *

६ 'ज्ञाता धर्म कथाङ्ग' के दो उपाङ्ग 'चन्द्र प्रज्ञप्ति' और 'सूर्य प्रज्ञप्ति' दोनों के २०—२० प्राभृत हैं। १ प्राभृत के पहिले प्रतिभृत में मण्डल प्रमान, दूसरे में मण्डल संस्थान, तीसरे में मण्डल क्षेत्र, चौथे में ज्योतिषी अन्तर, पांचवें में द्वीपादि का गति अन्तर, छट्ठे में रात्रि दिन का क्षेत्र स्पर्श्य, सातवें में मण्डल संस्थान, आठवें में मण्डल प्रमान। २ प्राभृत के पहिले प्रतिप्राभृत में तिरछी गति प्रमान, दूसरे में मण्डल संक्रमण, तीसरे में मुहूर्त गति प्रमान, ३ प्राभृत में क्षेत्र प्रमान, ४ प्राभृत में ताप क्षेत्र, ५ प्राभृत में लेश्या प्रति घात, ६ प्राभृत में प्रकाश, ७ प्राभृत में संक्षिप्त प्रकाश, ८ प्राभृत में उदय अस्त, ९ प्राभृत में पुरुष छांय, १०वें प्राभृत के पहिले प्रति प्राभृत में नक्षत्र योग, दूसरे प्रति प्राभृत में नक्षत्र की मुहूर्त गति. तीसरे में नक्षत्र की दिशा. चौथे में युगादि के नक्षत्र, पांचवें में कुल उपकुल कुलोपकुल नक्षत्र, छट्ठे में पूर्णिमा अमावस्या के नक्षत्र योग, पर्व तीथी नक्षत्र निकालने की विधी, सातवें में नक्षत्र का सन्निपात, आठवें में नक्षत्र संस्थान, नववें में नक्षत्र के तारे की संख्या, दशवें में अहोरात्री पूर्ण करने के नक्षत्र. इग्यारवें में चन्द्र नक्षत्र मार्ग बारहवें में नक्षत्राधिष्ठित देव, तेरहवें में ३० मुहूर्त के नाम, चौदहवें में तिथी के नाम, पन्द्रहवें में

* जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति के पहिले ३०५००० पद थे, चन्द्र प्रज्ञप्ति के ५५०००० पद थे, सूर्य के ३५०००० पद थे।

तिथी निकालने की विधी, सोलहवें में नक्षत्रों के गोत्र. सत्रहवें में नक्षत्र में भोजन, अठारहवें में चन्द्र सूर्य की गति, उन्नीसवें में १२ महीनों के नाम, बीसवें में पंच सम्वत्सर का वर्णन, इक्कीसवें में चारों दिशा के नक्षत्र, प्रति प्रभृत में नक्षत्रों का योग. ११ प्राभृत में सम्वत्सर का आदि अन्त. १२ प्राभृत में सम्वत्सर का परिमाण. १३ प्राभृत में चन्द्र की वृद्धि हानि. १४ प्राभृत में शुक्ल पक्ष कृष्ण पक्ष. १५ प्राभृत में जोतिष की शीघ्र मंद गति. १६ प्राभृत में उद्योत के लक्षण. १७ प्राभृत में चन्द्र सूर्य का चवन. १८ प्राभृत में जोतिषी की ऊंचता. १९ प्राभृत में चंद्र सूर्य की संख्या और २० प्राभृत में चंद्र सूर्य का अनुभव. जोतिषी के भोगों की उत्तमता का दृष्टान्त. ८८ ग्रह के नाम. इन दोनों उपाङ्गों का समास एकसा ही है नाम भिन्न हैं. यह ज्ञानी गम्य है. दोनों के पृथक् २ मूल के २२०० श्लोक हैं।

८ 'उपासक दशाङ्ग' का उपाङ्ग 'निरियावलिका' इसके १० अध्ययन १ काला कुमार, २ सुकाला कुमार, ३ महाकाला कुमार, ४ कृष्ण कुमार, ५ सुकृष्ण कुमार, ६ महाकृष्ण कुमार, ७ वीर कृष्ण कुमार, ८ राम कृष्ण कुमार, ९ प्रियसेन कुमार और १० महासेन कृष्ण कुमार. यह १० ही श्रेणिक राजा के पुत्र। कोणिक राजा अपने पिता श्रेणिक राजा को मार कर उक्त कालादि १० भाइयों को राज के ११ भाग कर दिये. फिर छोटे भाई वेहल कुमार के पास से बंकचूर हार और सींचानक गन्ध हस्ति लेना चाहा. वेहल कुमार अपने नाना चेडा राजा के शरन गया. दोनों भाईयों का संग्राम हुआ. चेडा राजा अपने धर्ममित्र ९ मल्ल देश के और ९ लच्छ देश के यों १८ राजाओं के साथ सतावन २ हजार हाथी घोड़ा रथ और ५७ कोटी पैदल ले आया, और कोणिक राजा १० भाईयों के साथ में तेतीस २ हजार हाथी घोड़े रथ और ३३ कोटी पैदल ले आया. चेडा राजा ने १० भाइयों को मारडाला. कोणिक राजा ने चमरेन्द्र और शक्रेन्द्र के सहाय से रथमूशल

और महासिला कंटक सग्राम किया जिसमें १८००००० मनुष्य मारे गये * इत्यादि कथन है।

९ 'अंतगड़ दशाङ्ग' का उपाङ्ग 'कप्पवंडसिया'—इसके १० अध्ययन १ पद्मकुमार, २ महापद्मकुमार, ३ भद्रकुमार, ४ सुभद्रकुमार, ५ पद्मभद्र कुमार, ६ पद्मसेन कुमार, ७ पद्मगुल्म कुमार, ८ नलनीगुल्म कुमार, ९ आनंद कुमार और १० नंद कुमार. यह दशों ही निरिया वलिका में कहे कालादि कुमार के पुत्र हैं. राज ऋद्धी त्याग कर महावीर स्वामी जी के पास दीक्षा ले देव लोक में उत्पन्न हुये हैं।

१० 'अनुत्तरोववाई दशाङ्ग'—का उपाङ्ग—पुप्फीया' इस के दस अध्ययन १ चन्द्रदेव का, २ सूर्यदेव का, ३ शुक्रदेव का, ४ बहुपुत्तिया देवी का, ५ पूर्णभद्रदेव का, ६ माणिभद्रदेव का, ७ दत्त का, ८ शिव का ९ वल का और १० अनादृष्टि कुमर का यह किस २ करनी से हुए जिस का कथन है. इस में सोमल ब्राह्मण और पार्श्वनाथजी भगवान का सम्वाद बुद्धि दर्शक है।

११ 'प्रश्न व्याकरणाङ्ग का उपाङ्ग' पुप्फचूला—इस के १० अध्ययन १ श्रीदेवी का, २ ह्रीदेवी का, ३ धृतिदेवी का, ४ कीर्तिदेवी का, ५ बुद्धी देवी का, ६ लक्ष्मीदेवी का, ७ इलादेवी का, ८ सूरादेवी का, ९ रसदेवी का और १० गन्धदेवी का. पार्श्वनाथजी भगवान की साध्वीयों संयम की विराधाना कर देवियों हुई जिस का कथन है.

१२ 'विपाक सूत्र' का उपाङ्ग 'वह्नि दशा' इस के १० अध्ययन १ निषधकुमार का, २ अनियकुमार का, ३ वहकुमर का, ४ वेहकुमर का, ५ प्रगतीकुमर का, ६ मुक्तिकुमर का, ७ दशरथकुमर का, ८ दृढ़रथकुमर का, ९ महाधनुष्यकुमर का, १० सप्तधनुष्यकुमर का, ११ दशधनुष्यकुमर का, ओर १२ शतधनुष्यकुमर का यह १० ही वलभद्रजी के पुत्र संयम

* सेंचानक हाथी अग्नि की खाई में गिर मरा, चेडा राजा को भुवनपति देव ले गये कुमार दीक्षा ले आत्मार्थ साधा ऐसा ग्रन्थकार का कथन है।

लेकर अनुत्तर विमान में देवता हुए. जिनके पूर्व भवादि का कथन है, निरियावलिकादि पांचों का एक यूथ है. श्लोक ११०९ हैं.

४ छेद सूत्र।

'व्यवहार सूत्र'—इसके १० उद्देश हैं पहिले में, निष्कपट सकपट आलोचक, प्रायश्चित्त उतारते, प्रायश्चित्त लगावे जिस का प्रायश्चित्त परिहारिक तप बीच में छोड़ने का, एकल विहारी का, शिथिल को पीछा गच्छ में लेने का कारण बताया है. परमत आश्रिय, गृहस्थ हो, पुनः साधु होने का, और आलोचना किसके पास करने का कथन है। २ उद्देश में, दो या बहुत साधु एक से समाचारी वाले सदोषी हों, सदोषी रोगी की भी वैयावच करना, अनवास्थित पुनः संयमारोपन, आल चढाने वाले गच्छ छोड़ पीछा गच्छ में आवे. एक पक्षी साधु साधु के परस्पर संभोग का कथन है. ३ उद्देश में, गच्छाधिपति कौन होवे, उन का आचार, थोड़े कालके को भी आचार्य बनावे, युवावस्था वाला साधु कैसे रहे, गच्छ में रहा या छोड़ कर अनाचीर्ण सेवे और मृषावादी को पद्वी नहीं देने का है. ४ उद्देश में, आचार्य का परिवार, आचार्य का विहार, आचार्य की मृत्यु हुए क्या करना. युवाचार्य स्थापन, भोगावली उपशमन, बड़ी दीक्षा, ज्ञातादि अर्थ अन्य गच्छ में जाने का, स्थविर आज्ञा विन विचरने का, गुरू कैसे रहे दोनों बरावरी के हो नहीं रहना, ५ उद्देश में, साध्वी का आचार, स्थविर सूत्र भूल तो भी पद्वी योग. साधु साध्वी के १२ संभोग, प्रायश्चित्त देने योग्य आचार्य और साधु साध्वी परस्पर वैयावच कैसे करे ? ६ उद्देश में साधु को सांसारिक सम्बन्धियों के घर जाने को विधी आचार्य उपाध्याय आदि के अतिशय, विना पाठित व पाठित साधु, खुले ढके स्थानक आश्रिय मैथुन इच्छा का प्रायश्चित्त, अन्य गच्छ से साधु साध्वी का कैसा करे. ७ उद्देश से संभोगी साधु साध्वी का आचार, परोक्ष विसंभोगी कैसे करे. साधु साध्वी को दीक्षा कैसे देवे. साधु साध्वी के आचार की भिन्नता,

...दीअसज्झाई टालना, साधु साध्वी को पद्वी देने का काल अचिन्त्य ...तु मृत्यु पावे तो कैसे करे ? साधु रहे उस मकान को साड़े दे या बेच डाले तो कैसा करे. राजा का पलटा होवे तो आज्ञा लेना. ८ उद्देश में ...वासे के लिये शैया पाट याचने की विधि, स्थाविर की उपाधि, पडिहारे स्थानक पाट लेने की विधि भूला उपकरन ग्रहन करने की विधि, साधु का अन्य साधु के लिये उपकरण याचने की विधि ९ उद्देश में शैय्यातर के मेहमान से आहार लेने की विधि, साधु की प्रतिज्ञा की विधि, १० उद्देश में, जव मध्य, वज्र मध्य प्रतिमा पंच व्यवहार, सविस्तार, विविध ...भङ्गी, बालक को दीक्षा देने की विधि. कितने वर्ष की दीक्षा वाले सूत्र पढे दश प्रकार वैयावच से महानिर्जरा, प्रायश्चित का खुलासा । आगे ...ने वाले साधु साध्वी को यह सूत्र अवश्य पठन करना चाहिये । इस के श्लोक ६०० हैं.

२ 'वृहदकल्प'-इस के ६ उद्देश हैं १ उद्देशमें केले लेने की विधि, स्थानक १६ प्रकार का कल्पे, मकान में रहने की विधि, सातरीया रखने की विधि ...आश्रय कंठ १ काम नहीं करना परस्पर क्लेश उपशमना, चातुर्मास ...ने काल में कैसे रहना गोचरी गये आहार के सिवा वस्तु लेने की विधि रात्री को स्थानक पाट लेने की विधि. रात्री को वस्त्र पात्र लेने की, विहार करने की मना. आर्य देश की हद. २ उद्देश में धान्य वाले मकान में रहने की विधि, मदिरा पानी मिष्टान्न वाले मकान में रहने की विधि, साधु साध्वी के रहने योग्य स्थानक, दीवान्तर के आहार की मने. वस्त्र ग्रहण करन की विधि. ३ उद्देश—साधु को साध्वी के उपाश्रय में जाने का निषेध चर्म लेने की विधि, वस्त्र लपेट लगाने की विधि, गोचरी गये वस्त्र लेने की विधी, दीक्षा लेते उपकरण लेने की विधि, चौमास में वस्त्र लेने की मना छोटे बड़े की मर्याद, ग्रहस्थ के घर में १४ काम की मना. पाट लेने की विधि, दूसरे साधु आने से मकान की आज्ञा, व्यन्तर वाले व

विना धनी के मकान में रहने की विधी, सेना पड़ी हो वहां रहने की मना, सवा योजन आहार आदि कल्पने की विधि. ४ उद्देश में—लघु प्रायश्चित्त के अधिकारी दीक्षा के अयोग्य, सूत्र ज्ञान देने योगायोग, ज्ञाने के योगायोग, साधु साध्वी का संघटन, प्रथम पहर का आहार, कोस ऊपर का आहार, सदोष आहार का क्या करे, आहार लेने की चौभंगी, अन्य गच्छ में जाने की विधि. अन्य गच्छ के साधु से ज्ञान ग्रहण करने की विधि, मृत्युक साधु को पठाने की विधि, क्लेश क्षमाये विना आहार नहीं करना, परिहार विशुद्ध चारित्र की विधि, नदी उतरने की विधि तृण के घर में रहने की विधि, ५ उद्देश—वैक्रय स्त्री पुरुष के संघटे का दोष, साधु साध्वी के परस्पर क्लेश शमन, सूर्योदय अस्त में आहार लेने के चौभंगी, रात्री को डकार आवे तो दोष, साध्वी का साधु से विशेष मात्र ग्रहण करने का कारन, प्रथम पहर का अन्तिम पहर में नहीं खावे, सुगन्धी शरीर को नहीं लगावे. परिहार विशुद्धि की वैयावच, सरस आहार खाकर तुर्त तप करे ६ उद्देश में—६ प्रकार का वचन नहीं बोले. ६ प्र प्रायश्चित्त ले, साधु साध्वी परस्पर संघटन करने के कारन. ६ प्रकार पलीमन्यु ६ संयम के कल्प. इस के श्लोक ४७३ हैं.

३ 'निशीथ सूत्र'—इस के २० उद्देश १ गुरू मासिक प्रायश्चित, दूसरे से पांचवें तक लघुमासिक प्रायश्चित, छट्ठे से इग्यारहवें तक गुरु चौमासिक प्रायश्चित्त बारहवें से उन्नीसवें तक लघु चौमासिक प्रायश्चित. किस २ काम करने से ये प्रायश्चित आते हैं जिस की १५९० कलमों (कानून) हैं. और २० उद्देश में प्रायश्चित्त देने की विधि. यह सूत्र पढ़े विना अगुआ हो विहार करना नहीं. इस के मूल ८१५ श्लोक हैं.

४ 'दशाश्रुतस्कन्ध' इसकी १० दशा हैं— १ दशा में २० असमाधी दोष, २ दशा में २१ सबले दोष, ३ दशा में ३३ अशातना, ४ दशा में आचार्य की ८ सम्पदा, ५ दशा में चित्त समाधी के १० स्थान, ६ दशा

में श्रावक की १० प्रतिमा, ७ दशा में साधु की १२ प्रतिमा, ८ दशा में महावीर स्वामी के ५ कल्यान का और १० दशा में ९ नियाने विस्तार से कहे हैं। इसके मूल १८३० श्लोक हैं। *

इन चारों शास्त्रों में साधु का आचार और छेदित संयम शुद्ध करने का प्रायश्चित है।

४ मूल सूत्र।

१ 'दशवैकालिक'— इसके १० अध्ययन— १ द्रुम पुष्पिक अध्ययनमें—धर्म की महिमा व धर्म समाचरने वाले का कृतव्य, २ श्रमण पूर्वक अध्ययन में मनःस्थिर करने का कृतव्य, ३ क्षुल्लकाचार्य अध्ययन में ५२ अनाचीर्ण, ४ षड जीवनी काय अध्ययन में छकाय जीवका, पंचमहाव्रत षटकाय की दया ज्ञान से क्रमसे मोक्ष प्राप्ती. ५ पिण्डेषणाध्ययन के दोनों उद्देश में आहार ग्रहन करने की भोगवने की साधु के लिये विधी. ६ धर्मार्थ के अध्ययन में—१८ स्थान अनाचरणिय. ७ भाषा शुद्धी अध्ययन में बोलने की विधी. ८ आचार प्रणधी अध्ययन में—विविध बोध. ९ विनय समाधी अध्ययन के प्रथमोद्देश में—द्रष्टान्त द्वारा विनय अविनय का फल, द्वीतियोद्देश में—विनय रूप कल्पवृक्ष विनयसुख अविनय दुख, तृतियोद्देश में—विनय करने की विधी, विनीत के लक्षण, चतुर्थउद्देश में—चार समाधी. और १० सभिक्षुक अध्ययन में साधु का कर्तव्य इसके मूल श्लोक ७०० हैं. इसका प्रचार जैनियों में बहुत है।

२ 'उत्तराध्ययन' इसके ३६ अध्ययन— १ विनयश्रुत अध्ययन में विनयगीत के लक्षण, विनय से फल, विनय की विधी, २ परिषह अध्ययन में २२ परिषह सहने की रीती उपदेश युक्त, ३ चतुरंग अध्ययनमें मनुष्य जन्मादि चार मोक्ष प्राप्ति की सामग्री की दुर्लभती, ४ असंस्कृत अध्ययन में वैराग्योपदेश ५ अकाम सकाम मरण अध्ययन में मृत्यु को बिगाड़ने से दुःख सुधारने से सुख व विधी, ६ क्षुल्लक निग्रन्थ अध्ययन में विद्यावन्त अविद्यावन्त का

* कितनेक पंच कल्प और जित कल्प मिल ६ छेद सूत्र मानते हैं किन्तु इनके नाम किसी भी सूत्र में नहीं है।

कथन, ७ रालय अध्ययन में बकरे के दृष्टान्त से रस गृद्धता का दुःख, ८ काविलिय अध्ययन में कपिल केवली कृत चोरों को उपदेश, ९ नमी प्रवर्ज्या अध्ययन में नमीराज ऋषि के और शक्रेन्द्र के प्रश्नोत्तर १० द्रुम पत्र अध्ययन में आयुष्य की अस्थिरता, दश बोल प्राप्ति की दुर्लभता, सद्बोध ११ बहु श्रुत अध्ययन में सुष्ट दुष्ट विनीत अवनीत के लक्षण. बहु सूत्री (पण्डित) की १६ उपमा. १२ हरिएसबल अध्ययन में चण्डाल ज्ञाती उत्पादक हरी सबल मुनि के तपका महत्व. ब्राह्मणों से सम्बाद, १३ चित्त सभूती अध्ययन में चित्त मुनि ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के ६ भव का सम्बन्ध व चित्त मुनि कृत उपदेश, १४ इक्षुकार अध्ययन में भृगु पुरोहित से दोनों पुत्रों का नास्तिक मत विषय सम्बाद कमलावती रानी का इक्षुकार राजा को उपदेश ६ जीवों की दीक्षा, १५ सभिक्षु अध्ययन में साधु का कर्तव्य १६ ब्रह्मचर्य समाधि अध्ययन में ब्रह्मचर्य की ९ बाड़ दशवां कोट, १७ पाप श्रमण अध्ययन में दुष्ट साधु के कर्तव्य, १८ संयती अध्ययन सिकारी संयती राजा को गर्द भाली मुनिको बोध, संयति ऋषि क्षत्रिय राज ऋषि का सम्बाद, चक्रवर्ती बलदेवादि राजा के गुन. १९ मृगापुत्रीय अध्ययन मृगा पुत्र के मात पिता से सम्बाद संयम की दुष्कृत्यता दुर्गती के दुःख, २० महानिग्रन्थ अध्ययन अनाथी निग्रन्थ श्रेणिक राजा का सम्बाद, अनाथी निग्रन्थ का जीवन, आत्मवाद स्थापना व साधु कुसाधु का आचार. २१ समुद्र पालिक अध्ययन पालित श्रावक के पुत्र समुद्रपालजी का वैराग्य व आचार २२ रथ नेमी अ० रिष्टनेमीनाथ जी ने जीव रक्षा के लिये राजुल जैसी स्त्री छोड़दी. राजुल ने रथनेमी साधु को स्थिर किया. २३ केशी गौतम अ० पार्श्वनाथ जी के सन्तानीये केशी कुमार श्रमण और महावीर स्वामी के गणधर गौतम स्वामी का सम्वाद. २४ अष्टप्रवचन माता अ० ५ समिती ३ गुप्ति. २५ यज्ञकिय अ० जय घोष ऋषि ने विजय घोष ब्राह्मण को ब्रह्मकृत्य समझाय. यज्ञ की हिंसा से बचाया. २६ समाचरी अ० साधु की १०

समाचारी प्रतिक्रमण की विधी. २७ खलुंकिय अ० गर्गाचार्य के दुष्ट शिष्यों का कर्तव्य. २८ मोक्षमार्ग अ० द्रव्य गुण पर्याय का व ज्ञान दर्शन चारित्र तप का कथन. २९ सम्यक्त्व पराक्रम अ० ७३ धर्म कृत्य का फल, ३० तपमार्ग अ० द्वादश प्रकार का तप, ३१ चरण विधी अ० चारित्र के गुन ३३ बोल. ३२ प्रमाद स्थान अ० पांचों इन्द्रिय जीतने का कृत्य उपदेश ३३ कर्म प्रकृति अ० कर्मों की उत्तर प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश का कथन है. ३४ लेश्या अ० ६ लेश्या का ११ द्वारों द्वारा वर्णन है, ३५ अनगार अ० साधु के गुन और ३६वें जीवाजीव विभक्ति अध्याय में ५६० अजीव के ५६३ जीव के भेद स्थिती स्थान का सिद्ध का १२ वर्ष के श्लेषन. इत्यादि कथन है. इसके मूल २१०० श्लोक है इस वक्त बहुत स्थान व्याख्यान इसी का होता है।

३ 'नन्दी'— इसमें प्रथम स्थविरावली में महावीर स्वामी के पश्चात हुवे २७ पाटों के गुन, श्रोताओं के दृष्टान्त. प्रत्यक्ष परोक्ष-ज्ञान, अवधि-मन पर्यव--केवल--ज्ञान, मति--श्रुति ज्ञान, उत्पाती आदि चारों बुद्धी पर सैंकड़ों कथा, श्रुत निश्रित मति ज्ञान के २८ भेद. शास्त्रों के नाम. द्वादशांग की हुण्डी, ज्ञान ग्रहण करने की विधी, इसके ७०० श्लोक हैं।

४ 'अनुयोगद्वार' श्रुत ज्ञान की महिमा, द्रव्य भाव आवश्यक. श्रुत पर स्कन्ध पर चार निक्षेप, आवश्यक, उपकर्म, आनु पूर्वी, समावतार, अनुगम, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुपूर्वी, १० नाम विस्तार से, ६ भाव, ७ स्वर ८ विभक्ति, ९ रत्न प्रमाण, ३ अंगुल, पल्योपम-सागरोपम-का प्रमान, ५ शरीर गर्भज मनुष्य की संख्या ४ प्रमान ७ नय, संख्यात--असंख्यात-अनंत का कथन, ५ उपक्रम, साधु की ८४ उपमा, सामायिक के प्रश्नोत्तर. और नय का संक्षिप्त. इस के श्लोक १८९९ इस शास्त्र में बहुत गहन ज्ञान का कथक है।

और 'आवश्यक सूत्र' इसके ६ अध्ययन में छः ही आवश्यक (प्रति क्रमण) हैं इसके १०० श्लोक हैं ।

☞ यह दृष्टीवाद विन ११ अङ्ग, १२ उपाङ्ग, ४ छेद, ४ मूल और १ आवश्यक. यों ३२ शास्त्र इस वक्त सम्पूर्ण उपलब्ध होते हैं. इन सब का समावेश द्वादशांग में होता है. इस वक्त शास्त्र अन्य भी हैं किन्तु पूर्ण विश्वासनीय नहीं हैं । *

* नन्दी सूत्र में—१ दशवैकालिक, २ कल्पा कल्पिक, ३ छोटा कल्प सूत्र, ५ उववाइ, ६ राज प्रश्नीय, ७ जीवाभिगम, ८ पन्नवणा, ९ महापन्नवणा, १० प्रमादा प्रमादी, ११ नन्दी, १२ अनुयोगद्वार १३ देवेन्द्र स्तुति, १४ तंडल वियालिया, १५ चन्द्र विद्या १६ सूर्य प्रज्ञप्ति, १७ पोरसी मंडल, १८ मंडल प्रवेश, १९ विद्या चारण विनिश्चिती, २० गणि विद्या, २१ ध्यान विभक्ति, २२ आत्म विभक्ति, २३ मृत्यु विभक्ति, २४ वीतराग सूत्र, २५ सलेहणा सूत्र, २६ विहार कल्प, २७ चरण विधी, २८ आयु प्रत्याख्यान, २९ महा प्रत्याख्यान यह २९ शास्त्र ३४ अस्वध्याय को छोड़ हरेक वक्त पठन किये जाने से उत्कालिक कहलाते हैं और—१ उत्तराध्ययन, २ दशाश्रु-तस्कन्ध, ३ वृहद् कल्प, ४ व्यवहार, ५ नीशीथ, ६ महानी शीथ, ७ ऋषिभाषित, ८ जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, ९ चन्द्र प्रज्ञप्ति, १० दीप सागर प्रज्ञप्ति, ११ लघु विमान विभक्ति, १२ महा विमान विभक्ति, १३ अङ्ग चूलिका, १४ वङ्ग चूलिका १५ विविध चूलि का, १६ अरुणोपपाति, १७ वरु-णोपपाति, १८ गुरुलोपपाति, १९ धरणोपपाति, २० वैश्रमणो पपाति, २१ वेलन्धरोपपाति, २२ देवेन्द्रोपपाति, २३ उपस्थान सूत्र, २४ समुपस्थान सूत्र, २५ नाग परियावलि का, २६ निरियावलिका, २७ कप्पिया, २८ कप्पवडिंसिया, २९ पुष्फिया, ३० पुप्फ चूलि का और ३१ वन्हिदशा यह रात्री और दिन के प्रथम और अन्तिम (चौथे) पहर में, ३४ अस्वधाय छोड़ कर पढ़े जाने से कालिक सूत्र कहलाते हैं, यह ६० हुये और १२ अंग ऊपर कहे सो यों ७२ शास्त्र के नाम कहे हैं, और व्यवहार सूत्र में—१ सेय निप गानं, २ आसि विष भावना, ३ दृष्टी विष भावना, ४ महासुमिण भावना, और चारन भावना, यह ५ सूत्र के नाम कहे हैं, सब ७७ हुये, और स्थानाग सूत्र के १० वें स्थाने में—कर्म विपाक दशा (विपाक) २ उपाशक दशा, ३ अन्तगड दशा, ४ अनुत्तरोपपाइ दशा, ५ प्रश्न व्याकरण दशा, ६ आयारदशा [दशाश्रुतस्कन्ध] ७ बंदप दशा, ८ दोगंधिक दशा दीर्घदशा, और १० संखेपिक दशा, इन दश में ६ नाम तो उक्त ७२ में आ गये हैं बाकी ४ ज्यादा मिलान से ८१ हुये इन ८१ के नाम शास्त्र में पाते हैं इन में से १ लघु विमान विभक्ति, २ महाविमान विभक्ति, ३ अंग चूलिका, ४ वंग चूलिका, ५ विविध चूलिका, ६ अरुणोववाइ ७ वरुणोववाइ, ८ गरुडोववाइ, ९ धरणोववाइ, १० वैसमणोव वाइ, ११ वेलंधरोव वाइ, १२ देविन्दोववाइ, १३ उठाण सूत्र

क ण सित्तरी ।

जो जिस वक्त जैसा अवसर (मौका) हो वैसी क्रिया करने के ७० बोल.

गाथा—पिण्ड विसोही समिइ, भावणा पडिमा इंदिय निरोहो ॥
पडिलेहणा गुत्तीओ, अभीग्गह चैव करणंतु ॥

अर्थ ४ पिण्ड विशुद्धी, १२ भावना, १२ प्रतिमा, ५ इन्द्रिय निग्रह २५ प्रति लेखना, ३ गुप्ति, ४ अभिग्रह यह ४+१२+१२+५+२५+३+४= ७० गुन हैं. इनमें से १ आहार, २ वस्त्र, ३ पत्र स्थनक. यह ४ निर्दोष भोगना इसका कथन. एषणा समिति में होगया साधु की १२ प्रतिमा का कथन तो काया क्लेश तप में होगया. ५ इन्द्रिय निग्रह करने का कथन

---

१४ नोगपरिया वलिका, १५ कप्पिया कप्पिया, १६ असी विप भावण, १७ द्वि द्वीविष भावण, १८ समुठाण सुय, १९ चरन भावता २० महासुमिन भावना, २१ तैयगी निसगा, (ये २१ कालिक और) २२ कन्या कल्प, २३ चल कल्प, २४ मह कल्प सूत्र, २५ महापत्रयगा, २६ पभमायपस्यामं, २७ पोरसी मंडल, २८ मंडल प्रवेश, २९ विद्या चरणावेनिश्यित, ३० ज्ञान विभक्ती, ३१ मरन विमक्ति, ३२ आयविसोही, ३३ सलेहणासूत्र ३४ वियरायसूत्र, ३५ विहार कल्प, और ३६ चरणविधी इन ३५ सूत्रों का इस इस वक्त विच्छेद हो गया ऐसा लेख पाक्षिक सूत्र की वृती में है परन्तु इन के नाम जैसे ही अभी कितनेक शास्त्र देखने में आते हैं ये प्राचीन नहीं किन्तु अर्वा चीन हैं ऐसा उनके लेख से ही मालुम होता है जैसे चन्द्र विजय यइन्ना में गाथा है उज्जैणीय नयरीए, आवंती नामेण यिस्सू ओ आसी। पाउ वग पवन्नो सुसाण माज्झियरा ॥१ में तो इस गाथ में कहे आर्य तीसु कुमाल पंचमें आरे में हुये है और भी महानीशीय हरिभद्रजी, सिद्धसेनजी, वृद्धवादाजी, पद्मसेनजी, देवगुप्तजी, यशोभरजी, रवीगुप्तजी, और स्कन्धला चार्य इन आठ का बनाय है ऐसा कहते हैं यह सम कालिन नहीं हुये हैं किन्तु इनने उसमें अध्ययनों की वृद्धी की ऐसा उसके लेख से ही भाष होता है। जैसे एक स्थान लिखा दो मुहपती रखने वाला साधुमर जल मानसा हो यह में पिलाया एक स्थान लिखा मैथुन की प्रबल इच्छा हो तो उसे अमुक उपाय से करें एक स्थानलिखा कमल प्रभा आचार्य प्रथम शुद्ध प्ररूपन्य कर तीर्थंकर गौत्र के दलिक एकत्र किये और फिरमंदिर बनाने का उपदेश करने से, अनन्त संसारी हो गये अन्यस्थान लिख मन्दिर पर झाड़ उगा हो तो साधु यत्नों से उसे काट डालें ऐसे विरोध वचनो ...न कदापि नहीं होते हैं कितनेक शंकराचार्य ने और मुसलमान बादशाहों ने भी शास्त्र ...। बडा नुकसान कियाहै ज्ञानकी बड़ी ही हानि हुईहै ज्ञानक जीर्णोद्धारकी बहुत जरूर है।

प्रति संलिनता तप में होगया. २५ प्रति लेखना का कथन चौथी समिति में होगया और ३ गुप्ति का कथन चारित्राचार में होगया. बाकी जो रहे पिंड विशु भावना और अभिग्रह का कथन यहां कहते हैं।

१२ भावना।

बनीता नगरी के राजा ऋषभदेव जी की सुमंगला रानी से उत्पन्न हुए भरत नामके चक्रवर्ती महाराजा अन्यदा षोडश शृंगार से शरीर को विभूषित मनोरम्य बना अपने रूप को निरीक्षण करने अदर्श (कांच) के महल में गये देखते २ कनिष्टा अंगुली की मुद्रा गिर जाने से वह शून्य दीखने लगी, तब अपना खाश रूप अवलोकन करने को कौतुकी बन क्रमसे प्रत्येक भूषण वस्त्र उतारते २ नग्न बन गये और शरीर को देख मन से कहने लगे- रे मूर्ख प्राणी! देख तेरे शरीर की हालत तो यह है. यह सब शोभा पर पुद्गलों की है. और पुद्गल से तू प्रथक (भिन्न) है पुद्गल विनाशक है तू अविनाशी. यह प्रयत्क्ष में दीखते हुए, गाम, नगर, किल्ले, खाई, बाग बगीचे, तलाव, बावड़ी कूप होद महल हवेली घर दुकानें धन धान्य वस्त्र भूषणादि सब स्थावर सम्पत्ती और माता पिता भाई बहिन स्त्री पुत्र दास दासी हाथी घोड़े आदि जंगम सम्पत्ती को तू शाश्वती निश्चल जानता होगा, किन्तु यह सब अनित्य. क्षण भंगुर है, प्रत्यक्षही देख! लीप छाब पोत रंग घर को सुंदर बनाता है और स्नान मंजन वस्त्र भूषण से शरीर को सुन्दर बनाता है किन्तु यह सदैव एक से रहते नहीं हैं। क्षण २ में हीन होते क्षय हो जाते हैं. ऐसे से तेरी प्रीति का निर्वाह किस प्रकार हो सकेगा ? जो तू इनमें विशेष लुब्धक बनेगा तो तेरे सामुख उनका नाश होते ही तुझे दुख होगा रोना पड़ेगा और उनके रहते तेरी मृत्यु आय तो भी हाय! मैं सब छोड़ चला! यों तुझे ही दुःख होगा. हर प्रकार इससे तुझे दुःख है ऐसा जान इसका द्रव्य से और भाव से त्यागकर सुखी हो. यों अनित्य भावना भाते २ ही केवल ज्ञान प्राप्त किया. शाशनाधिष्टत देवने साधु का भेष

समर्पन किया. उसे धार कर राज सभा में आ प्रतिबोध कर १०००० मुकट बन्ध राजाओं को दीक्षा दी. जनपद देश में एक लक्ष पूर्व विचर, सब ८४ लक्ष पूर्व आयुष्य पूर्ण कर मोक्ष गये।

२ 'असरण भावना'—एकदा श्रेणिक राजा मण्डी कुक्षी बगीचे में महादिव्य साधु को देख प्रश्न किया कि भोग योग तरुणावस्था में आप साधु क्यों बने ? साधु मुझे अप्राप्त सुख देने वाला और प्राप्त सुख का स्वरक्षण करने वाला मेरा नाथ कोई नहीं होने से मैं साधु बना। राजाः-मैं आपका नाथ होता हूं. चलो मेरे राज में मेरी कन्या और सुख सम्पत्ती आपके अर्पन करूंगा आप मित्र ज्ञांती आदि परिवरे इच्छित सुख भोगो. साधु—राजा ! तू स्वयं ही अनाथ है. फिर किसका नाथ बनता है. राजा—जिसके पास तेंतीस २ हजार अश्व, हस्ति रथ हों, तेंतीस कोटि पायक हों ५०० रानीयों और १७१००००० ग्राम में अखण्डित आज्ञा का प्रवर्तक हो उसे अनाथ कहने से मृषा (झूंठ) तो न लगे ? साधु—तू नाथ अनाथ के मतलब में समझता ही नहीं है. राजा—तब आप कहिये, साधु—राजा ! दत्तचित्त हो सुन, मैं कौसम्बी नगरी के प्रभूत धन शेठ का पुत्र था. अन्यदा इन्द्र के वज्र प्रहार से भी अति दुख प्रद मेरे मस्तक शूल रोगोत्पन्न होते ही सब शरीर पीड़ित बन गया. जिसे निवारनार्थ अनेक मंत्र मूल चिकित्सा शास्त्र कौशल्य राज वैद्यों ने मिल औषध उपचार पथ्य और संरक्षण चारों प्रकार किये किन्तु रोग हरन कर सके नहीं। मेरे दुःख से दुखित हुये मेरे माता पिता, छोटे, बड़े, भाई, बहिन, स्नान भोजन का त्यागकर आंसू से हृदय सींचन करते मेरे में ही अनुरक्त मेरी भार्या इत्यादि सब थे किन्तु कोई भी मुझे अप्राप्त सुख दे सका नहीं प्राप्त का रक्षन कर सका नहीं. तब मुझे विचार हुआ कि जिनको मैं दुःख हरता शरण रूप मानता था वे सब न स्वजन मेरे हाजर हैं किन्तु दीवाल पर की चित्रित सेना शत्रु से बचा नहीं सकती है तैसे ही यह भी सब निर्थक है. तब यह मेरे क्या

काम के और मैं भी इनके क्या काम का। जगत में सब स्वार्थ के साथी हैं. फिर इनके लिये मुझे जन्म व्यर्थ गमाना उचित्त नहीं है, जो यह रोग नष्टहो गया तो निरारम्भी क्षान्त दान्त श्रमण (साधु) के धर्म को अंगीकार करूं. ऐसी 'अशरण' भावना आते ही. रोग नष्ट होगया और कुटुम्ब की आज्ञा से दीक्षा धारन कर मैं इधर निकल आया हूं. श्रेणिक राजा अनाथ के सच्चे अर्थ का ज्ञाता बन, जैन धर्म स्वीकार कर भोगामंत्रण की क्षमा याच कर स्वस्थान गया ।

२ 'संसार भावना' मिथिला नगरी के कुम्भ राजा की प्रभावती रानी उत्पन्न हुई मल्ली कुमरी ने अवधिज्ञान से भूत भविष्य का वृतान्त जान एक मोहन घर में छै कोठरियों के मध्य एक चबूतरे पर अपने जैसी हरे सुवर्ण की पोली पूतली बनाई और आप भोजन करे उसमें से एक ग्रास उस में सदैव प्रक्षेप करे शिखास्थान पर रखे ढकन को बन्द कर देती. मल्ली-कुमरी के दिव्य रूप की प्रशंसा श्रवन से उत्सुक बन छै देश के राजाओं ने याचना की एक तो कन्या किसे २ दी जाय यों विचार कुम्भराजा के याचना स्वीकार नहीं करते ही प्रबल सेना ले छे ही राजा चढ आये. मल्ली कुमरी ने अलग २ छे ही राजाओं को बुला कर मोहनघर की छै ही कोठरीयोंमें बन्द किये, जाली में से पूतली के रूपावलोकन से छे ही राजायों के मोहित होते ही. मल्ली कुमरी ने पूतली के सिर का ढक्कन उठा कर अलग किया कि तुर्त ही महा दुर्गन्ध के भवकने से छै ही राजा अति घब-राये. तब ढक्कन लगा कर मल्ली कुमरी बोली—अहो नरेन्द्रों ! जिसे देख मोह मुग्ध बने उससे ही अब क्यों घबराते हो. जब सुवर्ण पुतली की यह दशा है तो चमड़े की पुतली की क्या दशा ? किस भान में भूले हो जरा पूर्व भव को भी देखो ! तीसरे भव में मैं महाबल राजा था और तुम छे ही मेरे मंत्री थे दीक्षा ले आगे को तुम्हारे से बड़ा होने को मैं ने कपट से तप किया जिस से मैं स्त्री बनी। तुम मुझे व्याहने आये। धिक्कार

है ऐसे संसार को कि एक तिल मात्र भी जगह ऐसी नहीं है कि जिस स्थान में अपन ने जन्म मरण नहीं किया. तैसे ही माता, पिता, भाई, भग्नि, स्त्री, पुत्र, काका, मामा, इत्यादि जितने नाते हैं उतने सब कर आये हैं कोई भी नाता किसी भी जीव से बाकी नहीं रहा. अब भी चेतो! ऐसा सुन छे ही राजाओं को संसार भावना भावते जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ. मल्ली कुमरी तो दीक्षा ले तर्थिंकर पद को प्राप्त हुई फिर छै ही राजाओं ने भी दीक्षा ली.

४ 'एकान्त भावना'—सुग्रीव नगर के बलभद्र राजा की मृगावती से हुये मृगापुत्र कुमार सुन्दर स्त्रीयों से परिवृत हो रत्न जड़ित मेहल के गवाक्ष (गोख) में बैठे हुए साधु को देख जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ. पूर्व भव में संयम आराधन किया जान माता पिता के पास संयम लेने की आज्ञा मांगी तब माता ने संयम की दुष्कर क्रिया बताई तब कुमर ने कहा—इस जीव ने चतुर्गति परिभ्रमण में जो दुःख भोगा है वैसा कुछ संयम में नहीं है, इस जगत् में कोई किसी का नहीं है धन, धरती में पशुओं स्थान में धान्य कोठा [illegible] गठरी में और स्वस्थान रह जायगा, स्त्री द्वार तक, माता [illegible] तक स्वजन मित्र स्मशान तक और यह शरीर चिता तक जायगा. [illegible] शुभाशुभ कर्म के साथ जीव अकेला ही चला जायगा. इस प्रकार एकान्त भाव से समझा आज्ञा ले संयम धारन कर मृग के समान एकल विहारी हो शुद्ध संयम की आराधना कर मोक्ष प्राप्त की।

५ 'पर पक्ष भावना'—मिथिला नगरी के नमीराजा के एकदा दहा-ज्वर उत्पन्न हुआ उस की शान्ति के लिये १००८ रानीयां बावन चन्दन घर्षन करती थी उनके हाथ के कंकणों का शोर राजा को अनिष्ट लगने से विचक्षण स्त्रियों ने सौभाग्यार्थ एक एक कंकन हाथ में रख सब उतार दिये. आवाज बन्द होने का कारन नमीराज जान कर विचारने लगे कि

जहां तक सब एकत्र थे तहां तक ही गड़बड़ थी. सब को छोड़ अकेला होने से ही सब गड़बड़ मिट जाती है, जीवन सुखी हो जाता है. जो यह मेरा रोग चला जाय तो मैं भी सब संग का परित्याग कर के सुखी बनूं. ऐसी पर पंख भावना भाते ही रोग अदृष्ट हुआ, निद्रा आई स्वप्न में सप्तम देवलोक देखा जाग्रत हुये विचार करते जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ पूर्व जन्म में संयम आराधन और सप्तम देवलोक से अपना आगमन जान अपने पुत्र को राज्यारोहण कर दीक्षा ले बन में गये. सुखदाता राजा के वियोग से प्रजा अक्रन्दन करने लगी नमीराज को अचिन्त्य भोग त्याग देख परीक्षार्थ इन्द्र ब्राह्मन का रूप बना आया और बोला—राजऋषि ! इतने लोग रुदन क्यों कर रहे हैं ? ऋषि—इस नगर के बाहिर पत्र फूल फल के भार से लदा हुआ बहुत पक्षीयों से सेवित सुन्दर वृक्ष था. वायु प्रयोग से अन्यदा वह वृक्ष टूट पड़ा आश्रय रहित बने पक्षी अपने २ सुख का स्मरण करते हुये अहो इन्द्र ! यह पक्षी अक्रन्दन कर रहे हैं. इस प्रकार ११ प्रश्नोत्तरों से मुनि को दृढ़ वैरागी जान इन्द्र स्वर्ग गया. और नमीराज ऋषि संयमआराधन कर मोक्ष गये।

६ 'अशुची भावना'—अयोध्यानगरी के सन्तकुमार चक्रवर्ती के दिव्य रूप की प्रशंसा सौधर्मेन्द्र के मुंह से श्रवन कर एक देवता वृद्ध ब्राह्मन का रूप बना चक्रवर्ती पास आ पुराने जूते का पोट अपने सिर पर से नीचे डाल कहने लगा—बचपन में आपके रूप की महिमा सुन देखने निकला था. चलते २ इतने जूते फटगये और यह अवस्था होगई किन्तु जैसा सुना था उससे भी अधिक आज आपका रूप देख कृतार्थ हुआ, चक्रवर्ती बोले—अभी तो मैं स्नान कर रहा हुं तेलादि से शरीर वेष्टित है किन्तु मैं सोले शृंगार सज सब ऋद्धियों से परिव्रत बन सभा में उपस्थित होऊं तब देखना. यों अभीमान के छाक से शरीर बिगड़ गया. चक्रवर्ती सभा में सिंहासन पर बैठ ब्राह्मन से बोले अब देख ! ब्राह्मन शिर हिला

कर बोला—वैसा अब नहीं रहा. न मनो तो थूक कर देख लीजिये। चक्रवर्ती अपने शरीर को पक्व काचरे के जैसा फटा कृमी पुरित देख आश्चर्य चकित बना विचारने लगे—जिस शरीर को मैंने स्नान मंजन पौष्टिक भोजन वस्त्र भूषन के शृंगार स्त्री आदि से पोषन किया प्राण प्यारा कर रक्खा उसकी ही यह हालत! किन्तु "जाति स्वभाव न मुचते यह" कहनानुसार यह बना! इस शरीर की उत्तपत्ती * माता के रुद्र और पिता के शुक्र

* ग्रन्थों में शरीर का कथन इस प्रकार किया है-इस शरीर में-१ मांस, २ रक्त, ३ मेद, इन के बीच में ३ झिल्ली है-४ छत फीये के बीच १ झिल्ली, ५ आन्तों के बीच १ झिल्ली, ६ उदर में जठारा की धारक १ झिल्ली, और ७ वीर्य की धारक १ झिल्ली यों ७ झिल्ली है। १ हृदय में कफस्थान, २ हृदयतल आमस्थान, नाभी ऊपर बायी बाजु जठराग्निस्थान (अग्र पर तिल है) ४ नाभी नीचे वायुस्थान, ५ वायुस्थान नीचे पेडुये मल (विष्टा) स्थान, ६ पेडू पास कुछ नीचे मुत्रस्थान (वस्ती) ७ हृदय से कुछ ऊपर जीवका और रक्त स्थान, यह ७ पुरुष के और स्त्री के-१ गर्भस्थान, २-३दुग्धस्तन। ये ३ अधिक सब १० हुवे १ रस, २ रक्त, ३ मांस, ४ मेद, ५ अस्थि, ६ मींजी, और ७ शुक्र, यह ७ 'धातु है। जो आहार करता है वह पित्त के तेज से पक कर ४ दिन में रस, फिर ४ दिन में उसका रक्त, फिर ४ दिन में मांस यों चार २ दिन के अन्तर से प्रत्येक धातु रुप परिणमता है, एक महिने में शुक्र बनता है, जिव्हा का, नेत्र का, और कंठ का मैल यह ३ रस की उपधातु। कान का मैल मांस की उपधातु, नाखून हड्डी की उपधातु, आंख की गीड मींजी की उपधातु, मुंह पर चिकनाई शुक्र की उपधातु। यह ७ उपधातु मांस धातु को वसा तथा ओज भी कहते हैं यह घृत जैसे चिकना सब शरीर में रम कर शीतलता और पुष्टी करता है। १ भोमीनी नाम की ऊपर की त्वचा (चमड़ा) चिकना शरीर की विभूती शोभा करता है। २ रक्त रंग की त्वचा में तिल आदि उत्पन्न होता है। ३ श्वेत त्वचा में चर्मदल रोग उत्पन्न होता है। ४ ताम्बे के रंगवाली त्वचा में कुष्ट रोग उत्पन्न होता है। ५ छेदनी त्वचा से १८ प्रकार कुष्ट उत्पन्न होते हैं। ६रोहिनी त्वचा से गुम्बड़ गंडमालादि रोग होते हैं। और ७ स्थुल त्वचा में विद्रधी रहता है। यह ७ त्वचा एक २ के अन्दर रही हैं। १ वात, २ पित, ३ कफ इन्हें कोई त्रिदोष व कोई त्रीमेजसी कहतेहै-१वायु शरीरमें सर्वस्थान वस्तुओं का विभाग करता है। यह सूक्ष्म शीतल हलका और चंचल होता है। नशो रुप नल कर खाई वस्तु को स्वस्थान पहुंचाता है १ मल स्थान, २ कोठा (पेट) ३ अग्नि स्थान, ४ हृदय और ५ कंठ इन पांच स्थान में रहता है-१ गुदा में,-अपान वायु, २ नाभी में सामान्य वायु, ३ हृदय में प्रानवायु ४ कंठ में-उदानवायु, और ५ सब शरीर में रमता व्यान वा कहते हैं।

से भिष्टा के भण्डार में उत्पन्न हो रक्त के नाले में बहता बाहिर पड़ा, शरीराश्रवसे झरता माता दुग्धनतर, विष्टादि खातसे उत्पन्न हुये अन्न फलादि भोगने वृद्धिपाया तैसेही कान में मली आखमें गीड़ नाक और मुख में श्लेषम, पेट में विष्टा मूत्र सब शरीर में हड्डी मांस रक्त नशा जालादि हैं. क्रोड़ों रोगों के भाजन हैं जहां तक पुण्यकी प्रबल्यता होतीहै तहां तक सब रोग छिपे रहते हैं. पुन्य खुटे फूटे हण्डे में से अशुची बाहिर पड़ती है तैसे रोगोद्भव होजाता है. बिगड़ते किञ्चित भी देर नहीं लगती है. सो सब मुझे आज प्रत्यक्ष हो गया। इस दगल बाज शरीर का विश्वास करना पोषन करना मुझे योग्य नहीं किन्तु अब मोक्ष साधन के लिये यह प्राप्त हुआ है तो वही काम शीघ्रतासे करना मुझे उचित है, यों अशुची भावना भाते हुये परम वैरागी बन सर्वोरिक परिग्रह का त्यागकर संयम ले मासोपवास पारना करने लगे. ७०० वर्ष द्दु पुनः इन्द्र ने सभा में परसंशा की कि—सनतकुमार ऋषी रोग प[illegible] में अचल है, यह सुन एक देव वैद्य का रूप बना पुकारता हुआ [illegible] राजऋषिके पीछे २ फिरने लगा. जब उनसे पूंछा नहीं तब देव [illegible]?

घायु प्रकृती वाले के केस छोटे, शरीर कृश—दुर्बल, मन चंचल होता है, यह रजो गुनी होता है और उड़ने के स्वप्न अधिक आते हैं. २ पित गरम पतला पीला कटु तीखा, दग्ध होने खट्टा होजाता है। यह १ आलयमें तिल जितना अग्नि रूप रहताहै इसके ५ प्रकार (१) मंदाग्नि से कफ, (२) तीक्ष्णाग्नि से पित, (३) विषमग्नि से वात, (४) समाग्नि श्रेष्ट और (५) विषमाग्निनेष्ट, २ त्वचा में रह कान्ती वड़ाता, ३ नेत्र में रह वस्तु देखाता है, ४ प्रकृती में रहे खाद्य वस्तु पाचन कर रस लोही बनाता है, और ५ हृदय में रह कर बुद्धी उत्पन्न करता है इसके ५ नाम—१ पाचक, २ भ्रंजक, ३ रंजक, ४ आलोचक ५ साधक, पित प्रकृती वाले के युवावस्था में श्वेत बाल आ जाते हैं। पसीना बहुत होता है, क्रोधी और विद्वान् होता है, यह रजो गुनी होता है और स्वप्न में तेज अधिक देखता है, ३ कफ—चिकना भारी श्वेत शीतल मीठा होता है। दग्ध हुए खारा हो जाता है, यह १ आमाशय, २ मस्तक, ३ कंठ, ४ हृदय और ५ सन्धी इन ५ स्थान में रह कर स्थिरता कोमलता करता है. इसके ५ नाम—१ क्लेदन, २ स्नेहहन, ३ रसन, ४ अवलम्बन, और ५ श्लेष्म कफकी प्रकृति वाले के बल बलवान शरीर चिकना, गम्भीर मन्द बुद्धी होता है, यह तमो गुनी होता है और स्वप्न में पानी बहुत देखता है, और भी इस शरीर में मांस हड्डी मेद को बन्धने वाली नशों

औषध ले रोग गमाईये. ऋषिने—अपने मुखसे थूक ले बदन को लगाते ही रोग अदृश्य होगया, यह देख देव भी आश्चर्य चकित बना. तब ऋषि जी बोले—देव ! कर्म रोग गमाने की औषधी है क्या ? देव बोला सब गुण के सागर आप ही हैं. नमस्कार कर देव स्वस्थान को गये राज ऋषि जी कर्मों को क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये।

७ 'आश्रव भावना'—चम्पानगरी के पालित श्रावक वैपारार्थ विहुड नगर में गये वहां किसी वनिक पुत्री से पानी ग्रहन कर पीछे आते समुद्र के कि-

को स्नायु कहते हैं, सबसे बड़ी १६ नशें हैं उन्हें करंड कहते हैं, यह संकोचन प्रसारन की शक्ति देती है, मासरंघ्रा का कथन—२ कान के, २ आंख के, २ नाक के, १ इन्द्रिका, १ गुदा, १ मुख यों ९ छिद्र पुरुष के और १ गर्भासय, २ स्तन यों १२ छिद्र स्त्री के छोटे छिद्र अनेक हैं, नाभी के बायी बाजू जो आसय पर तिल है सो पानी को ग्रहण करने वाली नश का मूल है इससे तृषा शान्त होती है और कूर्ला में दो गोले हैं वे जठारा के भेद को तेज करते हैं। शरीर में ७२ कोठै में से ६ कोठे बड़े हैं—शीत काल में ३ कोठे आहार के २ पानी के १ श्वासोछ्वास का उष्ण काल में २ आहार के ३ पानी के १ श्वासोच्छ्वासका, वर्षाद् ऋतुमें २॥ पानीके २॥ अन्नश्वासोस्वासफास का रहताहै, १६० नाभी पर रसको धरने वालीहै, १६० नाभी नीचे १६० तिरछी हाथादि को लपेटे है, १६० नाड़ी नाभी नीचे गुदाको घेरे हुई हैं, २५ श्लेपम की, २५ पित की, १० शुक्रधारक यों सब ७०० नाड़ी है। दो हाथ दो पांव यह चार शाखा शरीर को है, प्रत्येक शाखा में ३०—३० हड्डीयां हैं, सब १२० हुई, ५ दक्षिण कमर में ५ बायी कमर में, ४ योनी में, ४ गुदा में, १ त्रिकन में, ७२ दोनों करवट में, ३० पृष्ट में, ८ हृदय में, २ आंख में, ९ ग्रीवा में, ४ गर्दन में, २ दड्डी में, ३२ दान्त, १ नाक में, १ तालु में, यों सब ३०० हड्डीयां शरीर में हैं, २५१००००० रोम (बाल) गर्दन के नीचे, और ९९००० गर्दन उपरके सब ३५००००००० रोम शरीर पर हैं। शरीर में सन्धी ६० है, २५ पल प्रमाने कलेजा, २ पल प्रमाने आंख, ३०टांक प्रमानेशुक्र,अठा रक्त आढ़ा चरबी, १ पाथामस्तक की भेजी, १ आढ़ा मूत्र, १ पाथा विष्टा, १ कलव पित, १ कलव-श्लेपम, इस प्रमान है, जो ज्यादा हो जाये तो रोगोत्पन्न होवे और कमी हो जावे तो मृत्यु प्राप्त होवे तोल का प्रमान—८ सरसवका १ जव, ४ जवकी १ रत्ती ६ रत्तीका १ मासा ४ मासाका १ टांक ८टांकका १ पइसा, २ पइसेकी १ पल, ४ पल का १ पाव, ४ पाव का १ सेर, ४ सेर को १ अढक, ४ अढक की १ द्रोण। अन्य प्रकार दोनों हथेली मिलावे सो १ पसली, २ पसलीकी १ सेती, १ सेती का १ कलव, ४ कलवका, १ पाथा, ४ पाथा का, १ आढक, ४ आढक का १ द्रोण, ६० अटक का जघन कुंड ८० अटक का मध्यम कुंड १०० अटका उत्कृष्ट कुंड, १०८ अटक का एक पाहो यह प्रमान अनु योग द्वार सूत्र से लिखे हैं।

नारे पर पुत्र प्रसूत हुआ इसलिये उसका नाम 'समुद्रपाल' दिया, घर आये पुत्र योग्य वय में कला प्राप्त कर युवावस्था में रूपनी स्त्री के साथ पानी ग्रहन कर महेल में सुखोपभोग भोगते किसी चोर को सजा कर बधस्थान में ले जाता देख विचार हुआ "मेरे जैसा यह भी मनुष्य है किन्तु अहो! अशुभ कर्मोदय कैसा प्रबल हुआ है कि अब इसे कोई भी मृत्यु मुख से बचा सकता नहीं, जीव ने अज्ञान से अव्रती रहे कर्म के आगम रूप आश्रव का निरूंधन नहीं किया यही दुख मूल इसे होता है. यद्यपि अनन्त वक्त पाप का त्याग किया तथापि आश्रव के निरूंधन किये बिन व्रत प्रत्याख्यान किये बिन कुछ गर्ज सरी नहीं. जैसे तालाब में आते नाले का पानी रोके बिना पानी के उलीचने से तालाब खाली नहीं होता है. इसलिये अब तृष्णा सागर में गोते देने वाला, दुर्गती में विटम्बना करने वाला आश्रव का निरूंधन करना मुझे परमावश्यक है ऐसी आश्रव भावना भाते. वैराग्य को प्राप्त हो दीक्षा धारन कर दुष्कर करनी से कर्म क्षय कर मोक्ष गये।

८ 'संवर भावना'—पूर्व भव में संयम से ब्राह्मन की जाति का मद और मलीन वस्त्रादि की दुर्गछा करने से देवलोक से चव चाण्डाल के कुल में उत्पन्न हुये. काला हरा कुरूप बलवन्त शरीर देख 'हरी बल' नाम हुआ. कुरूप से होते अपमान से घबराकर पहाड़ से झम्पा पात करते मुनिराज ने देखा और कहा- अरे! नर जन्म चिन्तामणि क्यों गमाता है. सकाम मृत्यु कर जिससे आत्मा का भी कल्य न हो. यों सुन संयम ले मास २ तप करते बनारसी के देवल में आकर ध्यानस्त बने. वहां राज कन्या ने रूप साधु का देख थूकी जिससे उसका मुंह वक्र होगया. राजा ने ऋषि के श्राप से डर वह कन्या उनको देदी साधु ध्यान पार बोले-हे नृप! ब्रह्मचारी साधु स्त्री की इच्छा मात्र नहीं करते हैं. यों कह चले गये राजा घबराया अब इस कन्या का क्या करना? पुरोहित जी बोले- ऋषि पत्नी

ब्रह्म पत्नी हो सक्ती है भोले राजा ने उसे पुरोहित जी को ही दे दी. लग्नार्थ यज्ञारम्भ किया वहां अचानक वेही साधु भिक्षार्थ आगये उनको पठन करते बालक को मारने उठे, राज कन्या देख बोली- रे मुरखो क्या मौत आई है ! इतने में बालक अचेत हो गिर पड़े. यज्ञ मंडप के ब्राह्मन घबराये और साधु को नमन कर क्षमायाची. साधु बोले मैं तो मन कर भी किसी का बुरा नहीं चाहता हूं किन्तु यह कृत्य मेरे भक्त तिन्दुक देव ने किया होगा. वहां साधु जी ने पारना किया. देव ने सबको अच्छे किये. साधु कहने लगे—भो विप्रो ! यह आत्मा अनादि से संवर विना संसार में रूला है अब मन बच काया के योग निरूंध कर संवर धारन करो. यह पाप यज्ञ दुर्गती दाता है. इसे त्याग ब्रह्मचर्य रूप तीर्थ के शान्ती रूप कुण्ड में स्नान कर जीव रूप कुण्ड में कर्म रूप इन्धन को तप रूप अग्नि में जला, अहिंसा रूप आहुती से यह संवर यज्ञ करो, यही तारन तरन होगा. ब्राह्मणोंने हिंसा धर्म को त्याग कर. दया धर्म स्वीकार किया मुनिराज भी करणी कर कर्मों का क्षय कर मोक्ष गये।

९ 'निर्जरा भावना'—राजग्रही नगरीका निवासी अर्जुन माली बन्धुमती स्त्री के साथ बगीचे में से फूल लेकर मोगर पानी यक्ष की पूजन करने जाते तब रास्तेमें छै लम्पटी पुरुष उसकी स्त्री का रूप देख मोहित हुये और मन्दिर के द्वार की आडमें छिपगये. जब माली ने यक्ष को नमस्कार किया तब छेही उस पर टूट पड़े बन्धन बन्ध गुड़ा दिया और स्त्रीसे कुकर्म करने लगे. यक्ष माली के शरीरमें आकर बन्धन को तोड़ उन सातों को मार डाला और सदैव ७ मनुष्योंकी घात करते ५ महिने १३ दिन में ११४१ मनुष्य मारे, यह सुन लोग घबराये तब पुण्योदय से श्री महावीर स्वामी जी वहां आवे बगीचे में रहे दृढ़ सम्यक्त्वी श्रावक सुदर्शन मृत्युसे निडर वन दर्शनार्थ जाते थे रास्ते में वही अर्जुन मिलगया. तब सागारी अनशन कर सुदर्शनजी ध्यानस्थ बने. यक्ष सुदर्शन जीके धर्म तेजको नहीं सहन करसका तब भाग गया. अर्जुनको

जमीन पर पड़ा देख ध्यान पार अर्जुन को साथ ले महावीर स्वामीके दर्शन किये. अर्जुन उपदेश सुन साधु बन बेले २ पारना करने लगे, भीक्षार्थ राज गृही में गये तब पूर्व वैर के प्रेरे लोग मार ताड करने लगे उसे अर्जुन समभाव सहते विचारने लगे कि संयम ले संवर कर आते पाप तो रोक दिये किन्तु पुराकृत कर्म की निर्जरा हुये बिना छुटकारा नहीं होने का, तेरे कृत कर्म तुझे ही तोडने पड़ेंगे, बिना परिषह सहे कर्म नहीं टूटते हैं. जैसा अनशनादि ६ का प्रकार बाह्य तप करता है तैसा प्रायश्चितादि ६ अभ्यन्तर तप भी करके कर्मों की निर्जरा करना चाहिये. यह लोग तेरे निबड कर्म निकन्द कर महा उपकार कर रहे हैं, इन्हे न तो निवारना योग्य है और न इन पर किंचित द्वेष करना योग्य है. यों इसलोक परलोक और कीर्ती इच्छा रहित एक मोक्षार्थहो उस कष्ट को समभाव से चुप चाप सहने लगे. जब वे मारते बन्ध हो जावें तब आप कहें मैंने तुम्हारे कुटुंब के प्राण नाश किये तुम मुझे जीता छोड़ते हो यही तुमारा बड़ा उपकारहै. इस प्रकार निर्जरा भावना भाते महा क्षमा युत तपाश्चर्ण से ६ महीने में सब कर्मों का क्षय करके मोक्ष गये।

१० 'लोक संस्थान भावना'—बानारसी के तपोवन में दुष्कर तपस्वी शिवराज ऋषि को विभंग ज्ञान उत्पन्न होने से सात द्वीप सात समुद्र देखे और लोगों से कहने लगा— बस इसके आगे कुछ नहीं है. लोग बोले— भगवन्न महावीर असंख्यात द्वीप समुद्र कहते हैं शिवराज ऋषि ने विचार किया मेरी देखी प्रत्यक्ष बात मिथ्या कैसे हो. भगवन्त के पास आते ही विभंग ज्ञान मिट अवधिज्ञान हुआ और सम्पूर्ण लोक दीखने लगा. लोक एक दीपके उलटा उस पर दूसरा सुलटा और उस पर तीसरा उलटा दीप रखने से जैसा आकार होता है तैसा है. नीचे नर्क ७ मध्य में असंख्यात द्वीप समुद्र ऊपर जोतिषी २६ स्वर्ग और मोक्ष. यों लोक संस्थान भावना भाता हुआ वैराग्य को प्राप्त हो, भगवन्त के पास दीक्षा धारन कर संयम पाल कर्म क्षय कर मोक्ष गये। *

* वैष्णवादि, सातद्वीप सात समुद्र इस कारन से मानते होंगे।

११ 'बोध बीज भावना'—जब भरतेश्वरजी दिग्विजय कर आये और चक्ररत्न स्वस्थान नहीं गया तब पुरोहित जी बोले—आपके ९९ भाईयों जब आज्ञा में होंगे तब यह स्वस्थान होगा, भरतजी ने दूत को भेज भाईयों से कहलाया तुम सुख से राज करो फक्त इतनी ही कहदो की हम तुम्हारी आज्ञा में हैं, ९८ भाइयोंने उत्तर दिया हमें ऋषभदेवजी राज दे गये उनसे पूंछें वे कहेंगे जैसा करेंगे, ९८ ही ऋषभदेवजी के पास आ कर बोले--भरतऋद्धी गर्व से वर्जित बन हमें सताता है हम क्या करें? ऋषभदेवजी बोले "संबुज्झे किं न बुज्झह, संबोही खलु पेच दुल्हा" अहो राज पुत्रों! समझो! २ जिस राज पर दूसरे का काबू पहुंच उससे तो जो मोक्ष का राज है वह बहुत ही अच्छा है, वहां भरत का तो क्या, किन्तु काल का भी काबू नहीं चलता है, ऐसा राजतो अनन्त वक्त मिल गया किन्तु कुछ गर्ज सरी नहीं, इस जगत् में बोध बीज सम्यक्त्व की होना बहुत दुर्लभ है, बिना बोध बीज सम्यक्त्व के जीव करनी कर नवग्रीवेग तक जा आया किन्तु कल्याण हुआ नहीं, यह अत्युत्तम सम्यक्त्व प्राप्ति का अवसर अनन्तानन्त पुण्योदय से प्राप्त हुआ है, सो अब इसे खोना नहीं चाहिये! जैसे धागे में लगी सुई कचरे में खोती नहीं है तैसेही सम्यक्त्वी जीव भी संसार में रुलता नहीं है, उत्कृष्ट आधे पुद्गल प्रावर्तन के अन्दर मोक्ष प्राप्त कर लेता है, इसलिये अब समझो! जरा प्रकृतियों को मोड़ो सम्यक्त्व युक्त चारित्र अंगीकार कर, मोक्ष का अक्षय राज प्राप्त करो, 'यों बोध बीज' का उपदेश श्रवन कर ९८ ही चारित्र ले मोक्ष गये।

१२ 'धर्म भावना' चम्पानगर में मास क्षमन के पारने धर्म रुची जी भिक्षा करते नाग श्री ब्राह्मनी के यहां गये, उस दिन उसने भूल कर कटुक तुम्बे का शाग बनाया था वह मुनि को तृण समान जान नहीं रे अहो हुये सब दे दिया, उसे लाकर गुरुजी को दिखाया, देखकर गुरु जी

बोले- तप से निर्बल हुये कोष्टक में यह महा विष पाचन न होगा, इसे निर्वद्य स्थान पठा आयो, ईटोंके पचाने की जगह जाकर परीक्षार्थ एक बूंद जमीन पर डालते ही सैंकड़ों चींटियों उसे सूंघ २ कर मर गई, यह देख मुनिको विचार हुआ, अहो अनर्थ ! जो सब डाल देता तो बड़ा जुल्म हो जाता ? गुरुजी की आज्ञा निर्वद्य स्थान परिठाने की है, तो मेरे कोठे (पेट) सिवा अन्य निर्वद्य स्थान है ही कहा ? यह शरीर धर्मार्थ ही प्राप्त हुआ है, 'धर्मम् विशेषो खलु मनुष्याणं, धर्मेनहीना पशु भी समान" धर्म का मूल दया है, सम्यक्त्व का लक्षण 'अनुकम्पा' है, धर्म रक्षणार्थ शरीर का नाश भी हो तो फिकर नहीं, 'घृत खीचड़ी में जाता है' धर्मार्थ शरीर का नाश होगा तब ही मोक्ष मिलेगा ! इस क्षीण भंगूर शरीर के नाश से असंख्य जीवों का रक्षण हो तो बड़ा उपकारका कारन है. यह लाभ आज मुझे गमाना उचित्त नहीं यों धर्म भावना भावते, उसे क्षीर शक्कर समान जान गटका (पी) गये. महा वेदना प्रकट हुई उसे समभाव सह कर मर कर सर्वार्थ सिद्ध महा बिमान में देव हुए ।

उक्त १२ भावना प्रत्येक जीवापेक्षा कही ये, एक २ भावना से जीव स्वर्ग और मोक्ष के सुख के भोक्ता बने हैं तो जो विशेष भावना भावे उन का आत्म कल्यान हो इसमें संशय ही नहीं ।

४ अभिग्रह ।

चम्पानगरी को चण्ड प्रद्योतन राजा लूटने लगा तब एक सारथी दधिवाहन राजा की धारनी रानी और चन्दन बाला पुत्री को ले भगा, रास्ते में उसके मुंह से विभत्स शब्द श्रवनकर रानी अपनी जिव्हा दन्त बीच दबा मर गई चन्दनबालाको ले सारथी घर आया तो उसको स्त्रीने घरमें नहीं आने दिया तब कौसम्बी नगरी के बजार में बेचने लेगया, एक वैश्या खरीदती देख चंदनबालाने उसके आचार की पृच्छा की वैश्या नेकहा सदैव शोभाव शृंगार भोजन और नये २ पुरुषों का भोग हमारे कुल सिवा कहां मिलता है! चन्दनबालाने

भय भीत बन नवकार मन्त्र का स्मरण किया तब बन्दर का रूप देव बना आकर चन्दना को खैंच कर ले जाने वाली वेश्या के नाक, कान, तोड़ कर भगादी. तब श्रावक धर्मशाल धन्ना शेठ आ चन्दना को लेगया. शेठ की स्त्री मूलाबाई सती से ईर्षा कर शेठ ग्राम गये तब चन्दना के सिर के बाल कतर कर, कपड़े छीन कछोटा बान्ध, हाथ में हथकड़ी पांव में बेड़ी डाल. भोंयरे (तलघर) में डाल पिता के घर चली. तीन दिन बाद शेठ आये, भोंयरे में से चन्दना को निकाली उस वक्त अन्य खाने का कुछ नहीं होने से क्षुधा पीड़ित चन्दना को म्हेसी के लिये पकाये उड़द के बाकले एक सूप में डाल खाने को दे आप बेड़ी तुड़ाने लुहार को बुलाने गये। उस वक्त—१ द्रव से उडिद के बाकले, २ सूप में, क्षेत्र से, ३ द्वार मध्य बैठी, ४ एक पांव अन्दर, ५ एक पांव बाहिर हो, काल से ६ दिन के तीसरे पहेर में. भाव से, ७ राजा की कन्या, ८ बन्धन में पड़ी ९ हाथ में हथकड़ी, १० पांव में बेडी, ११ सिर मुण्डा, १२ काच्छ पहनी और १३ आंखों से आश्रु बहाती भीक्षा देतो ग्रहण करना. ऐसा कठिन १३ बोल का अभिग्रह धारन कर फिरते २ पांच महीने २५ दिन जिन्हें हो गये ऐसे भगवन्त महावीर स्वामी वहां निकल आये. तेले के पारने पर-मोत्कृष्ट पत्र को जोग बना देख चन्दना हर्षाश्रुके नैनों से टपकाती भगवन्त को उडद बाकुले प्रतिलाभे (दिये) कि तत्काल आकाश में देवोंछागये! देव दुन्दुभी बजाते सुगन्धी अचित्त जल सोनैये वस्त्र भूषन की वृष्टी करते, अहोदानम् महादानम्! के नाद से गगन गर्जाने लगे. धन को लेने मूला पिसा घर से दौड आई. तब देव बोले यह धन 'चन्दना का है दीक्षा उत्सव में काम आवेगा' वहां का सन्तानिक राजा भी दौड कर आये और अपनी साली की पुत्री चन्दना को देख विस्मित हुये चन्दना की बेडीयां टूट पडी, मस्तक के बाल आगये और उत्तम वस्त्र भूषणों से सज बन गई. भगवन्त को केवल ज्ञान प्रात हुये बाद चंदनाने दीक्षाले,

३६००० आर्जिका की गुरुनी हो करनी कर मोक्ष गई। जिस प्रकार भगवंत महावीर स्वामी ने १ द्रव्य से अमुक वस्तु लेना, २ क्षेत्र से अमुक स्थान लेना, ३ काल से अमुक वक्त लेना और भाव से अमुक प्रकार से लेना, अभिग्रह धारन किये ऐसे ही यथा शक्ति अन्य भी धारें।

चरन सित्तरी।

जो निरंत्र क्रिया का पालन किया जावे सो चरन जिसके ७० बोल:—

गाथा—वय समण धम्मं, संजम वैयावच्चं च बंभ गुत्तीओ।
नाणाइ तीयं तव, को हो निग्गहाइं चरण मेयें॥ *

अर्थ—५ महाव्रत, १० श्रमन धर्म, १७ प्रकार संयम, १० वैयावच्च, ९ बाड ब्रह्मचर्य, ३ ज्ञानादि त्रि रत्न, १२ प्रकार का तप, ४ क्रोधादि चार कषाय का निग्रह यह ५+१०+१७+१०+९+३+१२+४=७० गुन चरण सित्तरी के. जिसमें से- ५ महाव्रत का कथन तो आचार्यजी के गुनों की आदि में हुआ, १० प्रकार का वैयावच्च का कथन. वैयावच्च तप में हुआ. ९ बाड का कथन आचार्यजी के गुनों में हुआ. १२ प्रकारके तपका कथन तपाचार में हुआ और ४ कषाय निग्रह का कथन भी आचार्यजी के गुन में होगया. अब १० श्रवण धर्म १७ संयम और त्रि रत्न का कथन करते हैं।

१० श्रमण (साधु) धर्म।

गाथा—खंत्ती मुत्तीय अज्जव, मद्दव लाघव सच्चे॥
संजम तव चेइय, बंभचेर वासीयं॥

अर्थ— १ क्षमा, २ निर्लोभता, ३ सरलता, ४ निर्भिमान, ५ लघुत्त्व (हलका) पना, ६ सत्य, ७ संयम, ८ तप, ९ ज्ञान और १० ब्रह्मचर्य. इन १० साधु धर्म का विवेचन किया जाता है।

---

* श्लोक—धृत क्षमा दमोऽस्तेय, शौचमिन्द्रियनिग्रह॥ धैर्य विद्या सत्म क्रोधो, दशकं धर्म लक्षणं, मनु० अ० ६ श्लोक २३ वां

अर्थ—१ धृत, २ क्षमा, ३ दम, ३ अचौर्य, ४ शोचना, ५ इन्द्रिय निग्रह, ६ धैर्य, ७ विद्या, ८ सत्य, ९ अक्रोध, १० नम्रता, यह धर्म के १० लक्षण मनु जी ने भी कहे हैं।

१ क्रोध शत्रु का निग्रह करना जिसका नाम क्षमा है. 'क्षमास्थाप्ते धर्म' धर्म के रहने का यही स्थान होने से इसे प्रथम पद प्राप्त हुआ है, क्षमा शील- किसी के कटुक बचन श्रवन कर विचार करते हैं कि- 'मैंने इसका कुछ अपराध किया है या नहीं' यदि अपराध किया है तो इसका बदला मुझे देना उचितही है. बिना बदला दिये छुटकारा ही नहीं. आगे इसे व्याज सहित चुकाना पडता, इसलिये बहुत ही अच्छा हुआ कि यह यहां ही चुकाता कर रहा है. यदि अपराध नहीं किया और यह गाली प्रदान करता है तो अपने अपराधी को कहता है. मैं निपराधी हूं इसलिये यह गाली मुझे लगती ही नहीं है. बेचारा अज्ञानी बोलता २ आपही थक जायगा, तब चुप हो जायगा * और भी जो यह मुझे चोर जार दुराचारी ठग कपटी चाण्डाल कुत्तादि कहता है सो भी सच ही है क्योंकि अभी नहीं तो पाहिले, इस भव में नहीं तो पूर्व भव में यह सब कृत्य मैंने किये हैं, इस योनी में मैं जन्मा हूं, सच्चे पर क्रोध करना अज्ञानता है, और यह वाक्य तो बड़े शिक्षा प्रद हैं कि- रे मूर्ख ! ऐसे अन्त जन्म कर ऐसे २ कर्मा चरन कर अनन्त संसार में दुख भुक्ते तो भी अक्कल ठिकाने नहीं आई ! अब तो ज्ञानी बना है जरा समझ और इन कर्मों को छोड़ ! कोई कहे रे कर्म हीन ! अकर्मी ! तेरा खोज जावो ! यह सुन क्षमा सील विचारे कि--यह तो मुझे मोक्ष प्राप्त करने का आशीर्वाद देता है क्योंकि--कर्महीन तथा अकर्मी ही मोक्ष पाते हैं और खोज भी उनका ही क्षय होता है. यदि कोई 'साला' कहे तो विचारे कि यह ब्रह्मचारी बनाता है क्यों कि उत्तम जन तो सब स्त्रीयों से भगिनि भाव ही रखते हैं. यों हरएक बात सीधी

---

* दोहा—देने गाली एक है, पलटे गाली अनेक ॥ जो गाली देवे नहीं, तो रहती एक की एक ॥

अर्थात्—किसी ने गाली दी और उसे सुन चुप रह गये तो उतने में ही झगड़ा समाप्त हो जाता है। यदि पीछी गाली दी तो फिर इतना विस्तार बढ़ जाता है कि उसे समेटना मुश्किल हो जाता है, ऐसा जान मौनस्थ रहना ही बड़ा फल प्रद है।

लेने से × सुख रूप बन जाती है. औषधि की कटुता की ओर न देख कर गुण को देखना चाहिये! और भी जैसे हलवाई की दूकान पर मिठाई और चमार की दूकान पर जूते मिलते हैं तैसे ही उत्तम से अच्छे बचन और अधम से खराब बचन प्राप्त होते हैं. जैसा जिस के पास होगा वैसा देगा * बेचारा अधिक कहां से लावे! यदि गाली तुझे खराब लगती है तो उसे तू क्यों ग्रहण कर पवित्र हृदय को क्यों खराब बनाता है, कोई भी सुज्ञ सुवर्ण के बर्तन में विष्टा नहीं भरता है. यह गाली दाता अपने सुकृत्य खजाने का नाश कर मेरे कर्मों की निर्जरा करता है इस लिये यह तो बड़ा उपकारी है ऐसी कर्म निर्जरा का अवसर बारम्बार प्राप्त होना मुश्किल है, तुझे सहज ही प्राप्त हो गया है. इसे मन गमा जो समभाव से सहेगा तो बड़ा लाभ होगा. हुकममुनि कृत 'अध्यात्म प्रकरण' ग्रन्थ में लिखा है कि समभाव से एक ही गाली सहने वाले + को ६६ क्रोड़ उपवास का फल होता है!! यदि तू पीछी गाली दे उस की बराबरी करेगा तो फिर ज्ञानी अज्ञानी एक से ही हुए. तुझे परिश्रम से ज्ञान प्राप्ति करे का क्या लाभ हुआ. और भी कोई क्रोधातुर हो शब्द कहे उसके क्रोध की ओर ध्यान नहीं देते शब्द की ओर ध्यान देना यदि उस के कहे दुर्गुण अपने में पा जावें तो हर्ष पूर्वक विचार कि—अन्दर के रोग की परीक्षा के लिये डाक्टर वैद्य को फीस देना पड़ता हैं. वे नाड़ी आदि अष्ट परीक्षा द्वारा परीक्षा कर अन्दर का रोग बताते

× दोहा-सीधी सहाही मोक्ष दे। उलटी दुर्गति देख, अक्षर तीन को ओलखो दो लघु गुरु एक.

अर्थात्—'समता' इस शब्द में प्रथम के दो अक्षर लघु और तीसरा गुरु हैं, यह सीधा लेने से मुक्ति दाता होता है और जो उलटा पढे तो 'तामस' बन जाता है. जो दुर्गती दाता है। यों प्रत्येक बात सीधी लेने से अच्छी बन जाती है और उलटी लेने से बुरी बन जाती है।

* दोहा-जैसी जापे वस्तु है, वैसी दे बतलाय॥ उसका बुरा नहीं मानना. वह लेने कहां से जाय॥

+ दोहा-गाली सहे से गुन बढे. गाली दिये से दोष। उसको मिलती नारकी, इसको मिलती मोक्ष॥

हैं तो उन का बड़ा उपकार मानते हैं और उस को निकालने को इलाज कराते हैं. तो इस निन्दक ने तो मेरी नाड़ी आदि परीक्षा किये विना ही अन्दर चोरी जारी आदि जालम रोग बताने का उपकार विना फीस लिये ही किया. इस के बदले इस का अपकार करना यह कितनी जबर नीचता गिनी जाय ? और जो वे दुर्गुन अपने में न पावे तो विचारे की जैसे हीरे को कांच कहने से कांच नहीं होता है तैसे इस के बुरा कहने से मैं बुरा नहीं होता हूं ! यदि कोई प्रहार करे—मारे तो क्षमाशील विचार करे कि—इस के और मेरे भवान्तर का कोई बदला होगा सो यह ले रहा है. उत्तराध्यन सूत्र में कहा है कि 'कडान कम्मा न मोक्खत्थी' किये कर्म का विना भोगे छुटकारा नहीं. यहां नहीं चुकाऊंगा तो भवान्तर में तो व्याज सहित देना पड़ेगा. इस लिये सम भाव से अभी ही चुकाना अच्छा है जैसे गरीब करजदार १०० रुपये देने में असमर्थ हो और साहूकार को ७५ दे नम्रता से क्षमा मांगे तो वह दे देता है. ऐसे ही शत्रु के पास जो नम्रता से अपराध की माफी मांगे तो मिल सकती है. पानी से महा ज्वाला शान्त हो जाती है तो नम्रता से शत्रु शत्रुत्व त्याग शीतल हो इस में संदेह ही कौन सा ? यदि शत्रु का कसूर हो तो शान्त हुये बाद उसे समझाने से वह कबूल कर अपना सुधार भी कर सकता है और भी विचारे कि यह मारता है सो मुझे नहीं मारता है क्यों कि मैं (आत्मा) तो 'नैवं छिदंति शस्त्राणी' शस्त्र से छिदता नहीं, अग्नि से जलता नहीं, पानी से गलता नहीं, हवा में उडता नहीं. अजरामर है. और शरीर तो पुद्गल पिण्ड है. एक वक्त तो नाश होवेगा ही. फिर इस के लिये क्षमा धर्म का नाश करना उचित नहीं है. और भी जैसे शिष्य की परीक्षा ली जाती है तैसे ही मैं ने धर्माचरन किया है उस की परीक्षा लेने यह आया है तो अब असफल नहीं होना चाहिये. यदि यह परीक्षक नहीं मिलता तो क्या भरोसा होता कि मैं ने भगवान की प्रथम आज्ञा शान्ति धर्म को

बराबर पल सका हूं या नहीं. इस लिये अटल रह पूरी परीक्षा दे मुक्ति का सर्टीफिकट प्राप्त करना चाहिये। = रे प्राणी! नर्क में यमों की और तिर्यंचावस्था में चाबुक आदि का प्रहार सहा तैसा तो यह नहीं है. तो फिर क्यों घबराता है? जो सम भाव से इसे सहेगा तो नर्क तिर्यञ्च के दुःखों से छूट जायगा तथा जैसे रात्री बिना दिन का ज्ञान नहीं होता है तैसे ही यह क्रोधी नहीं होता तो क्या मालूम होती कि तू क्षमवन्त है? इस लिये यह क्रोधी तो तेरी प्रख्याती करता है. जो दृष्टि मात्र से ही अन्य को भस्म करने को समर्थ थे ऐसे श्री महावीर भगवान ने ग्वालियों की रस्सी की मार सही, तेजूलेश्या से भस्म करने वाले गोशाले को शीतल लेश्या से शीतल किया. दंश कर्ता चण्ड कोषी सर्प को धर्माचरन करा अष्टम स्वर्ग दिया और इन्द्र जालिक कहने वाले गौतम को गणधर बना लिये! उस महा पिता का अनुकरन अपने को भी करना. अनुपकारियों पर भी उपकार करना चाहिये. निर्बल तो बेचारा वैर ले ही नहीं सकता है किन्तु

= "Bless them that curse you"—Matt. VAA

अर्थात्—जो तुझे श्राप दे उस को तू आशीर्वाद दे।

गाथा—अक्कोसे जा परे भिक्खू, न तेसिं परी संजले ॥
सरी सा होइ बालाणं। तम्हा भिक्खू न संजले ॥

अर्थ—अज्ञानी की बराबरी अज्ञानी करता है ऐसा जान कोई अक्रोश करे तो साधु पुरुष पीछा उस पर अक्रोश नहीं करते हैं।

दोहा—बुरा २ सब को कहे, बुरा न दीसे कोय।
जो घट सोधूं आपना, तो मुज सम बुरा न कोय ॥
बुरा २ सब तुझ कहे, तू भला कर मान।
बूरा मीठा होता है, सब बनते पकवान ॥

Forgive and ye shall be forgiven—Luke VI—37

अर्थात्—क्षमा कर तुझे क्षमा दी जायगी—बाइबिल।

Who so ever shall smite thee on thy right check turn to him—the other also

अर्थात्—यदी कोई तेरे गाल पर थप्पड़ मारे तो तू बायां गाल को भी उसकी ओर कर दे—बाइबिल

For giveness is the noblest revenge" Matt. V—39

अर्थात्—क्षमा है सो सब से अच्छे प्रकार का वैर है।

जो समर्थ हो क्षमाचरन करें उन की ही बलिहारी है, वे ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं. जैसे सरोवर पृथ्वी चंदन और पुष्प दुःख देने वाले को भी सुख ही देते हैं तैसा क्षमा शील को होना चाहिये. दूसरे के सुख में ही अपना सुख मानना चाहिये. क्षमावन्त किसी का बुरा नहीं चाहता है तो उस का भी बुरा कोई नहीं चाहता है. जैसा करे वैसा पावे यह अनादि सिद्ध है. क्षमा—दोनों लोक में सुखदाता है ज्ञानादि गुन को धारन करने वाली, अनेक गुनों को प्रगटाने वाली, संसार से तारने वाली नौका है. चिन्तामनी कल्प वृक्ष काम कुम्भ कामधेनु इत्यादि देव योनि के पदार्थों से भी अधिक सुखदाता है मन को पवित्र रखने वाली, तन की माता तुल्य रक्षा करने वाली क्षमा ही है. ऐसा जान अखण्डित क्षमा का आचरन कर उपाध्यायजी परमसुख प्राप्त करते हैं.

२ लोभ शत्रु का निग्रह कर्ता सन्तोष गुन है. 'सन्तोषं परमं सुखं' परमोत्कृष्ठ सुखदाता यही गुन है. सन्तोष शील विचारते हैं कि—जितनी २ वस्तु प्राप्त होने का अनुबन्ध होता है उतनी ही प्राप्त होती है न्यूनाधिक कोई भी नहीं कर सकता है. किन्तु तृष्णा से कर्मबन्ध तो अवश्य होता है. कहावत है कि 'कुटुम्ब जितना विटम्ब, सम्पति जितनी विपती'. सो सच्च ही है. जितना अधिक परिग्रह होता है उतनी अधिक संभालने की चिन्ता होती है. काम में तो फक्त ४ हाथ जगह आधा सेर अनाज और २५ हाथ कपड़ा ही आता है। कितनी भी ऋद्धि प्राप्त हुई तो भी क्या तृष्णा शान्त होती है. चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त कर के भी संतोष नहीं पाये और सातवें खण्ड का साधन करने वाले संभूम चक्री समुद्र में डुब सातवीं पाताल (नर्क) का साधन कर लिया. × ५ तो

× महमूद गुजनी बादशाह ने हिन्दुस्तान पर १८ वक्त चढ़ाई कर बहुत द्रव्य लूट ले गया फक्त नगरकोट के सोमनाथ महादेवके मन्दिर में से २० मन जवाहरात २०० मन सुवर्ण २००० मन चांदी और बिना गिनती नगद धन ले गया था। उसकी मृत्यु निकट आई तब सब धन का ढेर लगवा कर उस पर बैठ गया और बालक की तरह रोकर कहने लगा कि हाय!

मट्टी के झोंपड़े से और तुच्छ संतती संपत्ति से क्या तृष्णा मिटती है. इस लिये सुखार्थी को संतोषावलम्बन करना उचित है. तृष्णा की आग को बुझाने प्राप्त ऋद्धि कुटुम्ब का त्याग कर साधु हो कर भी जो तृष्णा के वश पड़े हैं वे दासों के दास बन कौड़ी २ के मोहताज हो रहे हैं. जो साधु उपकरणों का अधिक संग्रह करते हैं वे विहार में भार भूत रहते हैं, प्रतिलेखनादि में अधिक काल जाता है. जिस से ज्ञान ध्यान में व्याघात होती है. जो गृहस्थ के घर रखते हैं तो प्रतिबन्ध होता है तथा आरंभ वृद्धि का प्रसंग प्राप्त होता है. और लालची का आदर मान भी कम होता है. और जो सन्तोषी हैं शरीर रक्षण की भी दरकार नहीं करते इच्छित वस्तु प्राप्त होती का भी परित्याग कर तपस्वी रहते हैं उन को किसी भी वस्तु का कभी संकोच प्राप्त नहीं होता है उन के संकेत मात्र से लाखों का द्रव्य सुकृत में व्यय होता है. मुत्ती धर्म धारक साधु का कर्त्तव्य है कि—अपने पास जो अच्छी उपाधी वस्त्र पात्रादि हों उस पर ममत्व भाव नहीं रखे उत्तम साधु का जोग बने उन से कहे—कृपासिन्धु ! मेरे पर कृपा कर इसे गृहण कर मुझे तारो. जो वे ग्रहण करें तो समझे आज मैं कृतार्थ हुआ. यह वस्तु मेरी नेश्राय की लेखे लगी. यों हर्षित होवे. इस प्रकार मुत्ती धर्म की आराधना उपाध्यायजी कर सुखी होते हैं.

३—कपट शत्रु का निग्रह करने वाला शरलता गुन है. "अज्जु धम्म गइ तच्चं' शरल ही धर्म ग्रहण कर सकता है ऐसा जान कर बाह्याभ्यन्तर ऊपर अन्दर एक सा रहना, यथा शक्ति शुद्ध क्रिया करना और जो क्रिया में कसर रहे तो उसे छिपाना नहीं, उलटा समझा कर दुर्गुन को सद्गुन रूप परिणमाना नहीं, कोई पूंछे तो साफ कहदे कि—मेरी

इस धन के लिये मैने बड़ा दुःख सहा। कई मनुष्यों और सेना का भोग भी दिया अब मैं इसे सब को छोड़ कर चला जाऊंगा। एक कोड़ी मात्र भी इस में से मेरे साथ नहीं आयगा। यों रो २ कर वह मर गया ! तृष्णा इस प्रकार दुःखदाता होती है !!

आत्मा में यह कसर है. मैं यथा तथ्य पालन नहीं कर सकता हूं, जिस दिन वीतरागी आज्ञा का यथा तथ्य आराधने—पालने वाला बनूंगा वह दिन मेरा परम कल्यानकारी होगा. और शुद्धता में वृद्धि करता भी रहे. क्यों कि केवल साधु का लिंग ही कल्यान करता नहीं होता है. × यह गृहस्थ है और यह साधु है लिंग तो फक्त इस प्रकार तफावत बता कर साधु को प्रतीती कराने वाला अन्य की होता है जो साधु के भेष में रह कर गृहस्थ जैसे कर्म करता है वह किलविषी जाती के नीच देवता में उत्पन्न होता है, आगे वकरा मुर्गादि हो कर अपूर्ण आयुष्य में मारा जाता है, अनन्त संसार परिभ्रमण करता है. ऐसा डर रख कर साधु होने से पहिले साधु के सिर क्या २ जवाबदारी है, साधु का क्या कर्त्तव्य है इस का पूरा विचार कर फिर साधु होना और साधु हुए बाद शुद्धाचार के पालन से स्वतः की आत्मा का अन्य अनेकों की आत्मा का उद्धार कर जैन शासन को खूब प्रदीप्त करना चाहिये ! शरलता पूर्वक की हुई स्वल्प क्रिया भी भव भ्रमन को मिटाने वाली होती है।

× "An actor is no king though he struts in royal appendage."
बादशाही लेबास में घूमने वाला नाटक कार वास्तव में बादशहा नहीं होता है—
कविता—जो लौं भग तजी नाहीं तो लौं भगतजी नाहीं,
काय को गुसाई जो शाही से न न्यारी है।
काय को ब्राह्मण, जालत बिराये मन काय को है पीर पर पीर न बिचारी है
कैसो वह जोगी जन जाको न वियोगी मन,
आश नहीं मारी जाने आसन ही मारी है।
युक्ति उपाइ एती उमर गमाइ कछु करी न कमाई काम भयो न भलाई को॥
इहां तो सदाइ धाम धूम ही मचाई,
पर वहां तो नहीं है कछु राज पोपां बाई को ॥ १ ॥
गाथा—विणओ जिण सासन मूलो, विणओ निव्वाण सहग्गो ।
विणओ विय मुक्कस, कओ धम्मो कओ तवो ॥ १ ॥
अर्थ—श्री जिन शासन का मूल और मोक्ष पथ में सदाय विनय ही है। जहां विनय नहीं उसका तप संयम कुछ गिनती में नहीं।
सूत्र—विणओणाणं, णाणाओ दंसणं, दंशणाओ चरणं चरणहुंतो मोक्खो ।
अर्थ—विनय से ज्ञान, ज्ञान से सम्यक्त्व, सम्यक्त्व से चारित्र और चारित्र से मोक्ष यों विनय से क्रम से उत्तमोत्तम गुण प्राप्त होते हैं।

४—अभिमान शत्रु का नाश करने वाला मार्द्दव गुन है. जिन शासन का मूल विनय ही है, विनय से ज्ञानादि गुन क्रमशे प्राप्त होते हैं. + इस लिये कभी भी किसी बात का किंचित मात्र भी अभिमान नहीं करना चाहिये. जो कभी अभिमान प्राप्त हो तो निम्नोक्त विचार करना चाहिये १ जाति का मद प्राप्त हो तो विचारे कि अनन्त संसार परिभ्रमण में मैं ने अनन्त वक्त चाण्डालादि का भव धारण कर विष्टा के टोकरे ढोये हैं सब को दुर्गंधनीय हुआ है. कुल मद प्राप्त हो तो विचारे कि—अनन्त वक्त बुकश (वर्ण शंकर) कुल में जन्म ले अनाचार सेवन कर नीच कृत्य कर निन्दनीय बना है ३ बल का मद हो तो विचारे कि तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महा पुरुषों के बल के आगे तेरा बल कौन सी गिनती में है. ४ लाभ का मद प्राप्त हो तो विचारे कि—लब्धि पात्र मुनिवरों के लाभ के आगे तेरी लाभ तृण मात्र है. ५ रूप का मद प्राप्त हो तो विचारे कि एक हजार आठ परमोत्तम लक्षन के धारक तीर्थंकरों के रूप के सम्मुख इन्द्रों का तेज भी सूर्य के आगे दीपक जैसा लगता है तो तेरा रूप किस हिसाब में है तथा इस गन्धी देही के रूप का नाश होते क्या देर लगती है, ६ तप का मद आवे तब विचारे कि—१ छे महीने की, १ पांच दिन कम छे महीने की, आभिग्रह फलासो, ९ चार २ महीने के, २ तीन २ महीने के, ६ दो २ महीने के, २ ढाई २ महीने के ७२ पन्दरे २ दिन के, १५ दिन की भद्रप्रतिमा, १६ दिन की महाभद्र प्रतिमा, १६ दिन की शिव भद्र प्रतिमा, १२ वक्त बारवीं भिक्षु की प्रतिमा, और २२९ देले यों १२॥ वर्ष ओर १५ दिन में तप किये सिर्फ ११ महीने और १९ दिन आहार किया, सब तप चौविहार जानना, ऐसे महावीर स्वामी जी के

+ Humility is thn foundation of every virtue'
अर्थात्—हर एक सद्गुन का पाया नम्रता है।
Mens merit rise in proportion on their modesty.'
अर्थात्—ज्यों २ मनुष्य नम्र होता जाता है त्यों २ उसकी लायकी बढ़ती जाती है।

तप के आगे तेरी तपस्या कितनी होती है १ श्रुति बुद्धि का मद हो तो विचारे कि—गणधर महाराज—उप्पन्नेवा (उत्पन्न होने वाले सब पदार्थ) विगनेवा(नाश पाने वाले सब पदार्थ) और धुववा (शाश्वत रहने वाले पदार्थ, इन को शब्द मात्र से १६३८३ हस्ति डूबे जितनी श्याही से लिखा जाय इतना चौदे पूर्व का ज्ञान मुहूर्त मात्र में प्राप्त कर लेते थे तू ऐसा अरे! इसके क्रोड़ा क्रोड़ हिस्सा भी कर सकता है क्या? ८ ऐश्वर्य मद प्राप्त हो तब बिचारे कि—तीर्थकरों के परिवार के आगे तेरा परिवार कितनाक है इत्यादि विचार से प्राप्त होते आठ ही मद का मर्दन (गालन) कर· विचारे की जो उत्तमत्ता प्राप्त होती है उसे अभिमान कर नीच कृतव्य में व्यय नहीं करते कुछ ऊंच कार्य कर लेना चाहिये? नम्रता विनय वैया वच्च तप संयम उत्तम कार्य में व्यय कर विशेष उत्तम बनना चाहिये,

५ ममत्व शत्रु का निर्दलन करने वाला लघुत्व है. छोटी नदी के तैरने वाले भी लंगोट सिवाय कुछ नहीं रखते हैं तो संसार, जैसे दुस्तर समुद्र तैरने वाले को तो अधिक हलका होना चाहिये! जैसे तैरने वाले तुम्बी पर सन के और मिट्टी के ८ लेप लगाने से पानी में डालने से डूबती है और ज्यों २ गल कर वे बन्धन अलग होते जाते हैं त्यों २ वह ऊपर आता हुई जल के अन्त में ठहरती है तैसे ही यह संसार पार रहने वाला तुम्बी समान जीव संसार में डूब रही है, ज्यों ज्यों ममत्व कमी करेगा त्यों त्यों ऊपर आता सर्वतः बाह्याभ्यन्तर ममत्व समूल नाश होने से संसार के अन्त मोक्षस्थान को प्राप्त होगा. इस संसार में केवल ममत्व का ही बड़ा दुख है. प्रत्यक्ष देखिये कोई मनुष्य नदी आदि जला· शय में डुबकी मारता है तब उस पर बेसुमार पानी फिर जाता है किन्तु उसे जरा भी वजन नहीं लगता है और बाहिर निकल उस ही जल में से एक घड़ा भर लिया तो उस का वजन लगने लगता है इस का कारन यही जाना जाता है कि—जलाशय के पानी पर किसी का ममत्व

नहीं होने से वह भार भूत न हुआ और घड़े के पानी पर (यह मेरा है छूना नहीं इत्यादि) ममत्व के होने से वह भार भूत हो गया. संसार में अनेकों सदैव मरते हैं, अनेकों की सदैव महा हानि (नुकसान) होती है उस का अपने को दुःख नहीं होता है और स्वजन को जरा दुःख होने से या अपना एक पाई का नुकसान होने से चैन नहीं पडता यह ममत्व का ही कारन है§ रे जीव जिस पर तूं ममत्व करता है मेरे २ करता है वे तेरे हैं क्या? जरा आन्तरिक चक्षु द्वारा अवलोकन कर. जो वे तेरे होते तो तेरे हुकम में चलते. तुझे दुःख नहीं देते. किन्तु ऐसा तो कहीं देखने में ही नहीं आता है विपरीत भास होता है. दूसरों को तो जाने दे तेरे शरीर को तूने प्रान से प्यारा बना रक्खा है स्नान भोजन वस्त्र भोगोपभोग से सदैव पोषता है. कर्म बन्ध का कुछ भी ख्याल नहीं करता है किन्तु यह भी तेरा नहीं होता है रोग जरा आदि अनेक तरह की विटम्बना कर आखिर तुझे छिटका देता है तो फिर अन्य जनों का तो कहना ही क्या? और भी देख! तू कहता है यह शरीर मेरा है, बाप मा कहते हैं मेरा पुत्र है, भ्रात भगिनि कहते मेरा भाई है. स्त्री कहे मेरा भरतार, पुत्र पुत्री कहे मेरा पिता, काका कहे मेरा भतीजा मामा कहे मेरा भानजा यों अनेक मेरा २ बताते हैं अब कह ये तेरा है या तेरे स्वजनों का है. जिसका हो वे इसे रखलें. हुकम में चलावें तब जाना जाय कि फलाने का है किन्तु 'ना घर तेरा ना घर मेरा चिड़िया रैन बसेरा है' ऐसा जान सबसे ममत्व भाव का त्याग कर के सुखी बनना चाहिये. विचारना कि जड़ प्रसंग मैंने संसार में अनन्त विटम्बना भोगी हैं. किन्तु जड़ के और मेरे कुछ भी सम्बन्ध नहीं यह अलग मैं अलग * मैं शाश्वत

§ दोहा—आपा जहां है आपदा। चिन्ता जहां है सोग ॥
ज्ञान बिना यह नहीं मिटे। आतम छोटे रोग ॥ १ ॥

* गाथा—एगोऽहं नत्थि मे कोइ। नाहमन्नस्स कस्सइ ॥ एवं दीन मणस्स अदीन मन संचरे ॥

अर्थात्—मैं अकेला हूं मेरा कोई भी नहीं है और न मैं किसी का हूं. ऐसी दीन वृत्ती से सदैव अदीन (धीर) हो विचरे।

अकेला ही हूं यह विनाशिक संघात मेरे को प्राप्त होते ही रहते हैं इन से छूटने से ही मैं निज स्वरूप को प्राप्त होऊंगा. इससे छूटने का अब ही अवसर प्राप्त हुआ है ऐसा विचार ममत्व घटावे। द्रव्य से तो वस्त्र पात्रादि उपाधी घटावे और भाव से कषाय कमी करे. यों घटाते २ किसी वक्त सर्वतः ममत्व रहित बन परमानन्द परम सुखों का प्राप्त कर्ता बने।

६ असत्य शत्रु का निर्मूल कर्ता सत्य धर्म ही है. 'सत्यात् नास्ति परो धर्मः'' के बराबर दूसरा धर्म ही नहीं है. ऐसा परमोत्कृष्ट धर्म सत्य ही है. इसीसे यह सब को प्रिय लगता है. प्रत्यक्ष देखिये किसी को सच्चा कहोगे तो खुशी हो जायगा. और झूठा कहने से बुरा मानेगा, ऐसा उत्तम होने से इसका प्रबन्ध बहुत मजबूत किया है, देखिये—

दोहा—वचन रत्न मुख कोठरी, होठ कपट जड़ाय।
पहरायत बत्तीस हैं, रखें परवश पड़जाय ॥

तथा खाते २ बचा हो उसे, झूठा कहते हैं. उसे भला मनुष्य स्वीकार नहीं करता है तो जो साक्षात् झूठा ही है उसको स्वीकार किस प्रकार किया जाय ? अर्थात् उत्तम जनों को किंचित् भी विचार उचार और आचार में झूठ नहीं रखना चाहिये. तैसे ही काणे को काणा, चोर को चोर इत्यादि वचन देखने में तो सच्चे दीखते हैं किन्तु दूसरे को दुःखप्रद होने से झूठे ही गिने जाते हैं. इस लिये निरर्थक बातों में समय का व्यय नहीं करते हुये कारन से सत्य तथ्य पथ्य प्रिय अवसर उचित निर्दोष वचन बोलने चाहिये * सत्य ही धर्म का मूल है मनुष्य जन्म का भूषन है,

* श्लोक—सत्य ब्रूयात प्रिय ब्रूयात। ब्रूयात सत्यत् प्रियम् ॥ प्रियंच नानृतं ब्रूया द्वेषः धर्म सनाननम् ॥ १३४ ॥ भद्रं भद्र मिति ब्रूयाद। भद्र मित्यव घा ददेत् ॥ शुष्क वैर बियादं च, न कुर्यात्केन चित्सहः ॥ १३५

अर्थ—मनुजी अपनी स्मृती के चतुर्थ अध्याय में कहते हैं कि—सत्य बोलो, प्रिय कर बोलो, सत्य भी प्रिय कर बोलो, किन्तु सत्य हो कर अप्रिय हो तो मत बोलो, किसी को प्रसन्न (खुशी) करने को भी झूठ मत बोलो किन्तु सदैव हितकारी बोलो, किसी के साथ बिवाद मत करो, वैर विरोध भी मत करो है भद्र! वचन का भद्र पता यही है।

सत्यवन्त इस भव में निर्दोष निडर सहासिक रहते हुये उज्वल कीर्ति का प्रसार करते हैं और आगे को स्वर्ग मोक्ष के सुख प्राप्त करते हैं.

७ स्वच्छन्दाचार को रोक कर स्ववश से अपनी आत्मा को अपने काबु में रखना वह संयम। याद रखिये! मोक्ष का इजारेदार संयम ही है. संयम की प्राप्ति बिना मोक्ष की प्राप्ति कदापि नहीं होती है संयम से इस लोक में लाभालाभ सुख दुःख संयोग वियोग का हर्ष शोक प्राप्त नहीं होता है. तुच्छ प्राणी भी संयम को ग्रहण कर सुरेन्द्र नरेन्द्रादिकों का पुज्य बन जाता है और संयम आगे को स्वर्ग मोक्ष का दाता होता है। जिनेंद्र प्रणित संयम के अपार लाभ की तुलना शाक्यादि का संयम कदापि नहीं कर सक्ता है। नमीराज ऋषि ने इन्द्र से कहा है कि—

गाथा—मासे २ उजोबाले, कुसंग्गेण तु भुंजई।
न से सुयक्खाय धम्म सा कला आघइ सोलेसिं॥

अर्थ—हिंसा धर्मी क्रोड पूर्व वर्षों तक महीने महीने के उपवास तप के पारने में कुशाग्र पर आवे उतना अन्न और अंजुली में आवे इतना पानी लेकर करे और सम्यक्त्वी एक नौकारसी (घड़ी) का तप करे तो भी वह हिंसक तप सूत्राख्यात धर्म के सोलवीं कला (भाग) में नहीं आवे! ऐसा महा लाभदाता संयम का प्राप्त होना बहुत कठिन है क्यों कि ३६ तरह के मनुष्य संयम के अयोग्य कहे हैं यथा—१—२ आठ वर्ष से कम और सत्तर वर्ष से ऊपर वय वाला ३ स्त्री को देखते ही कामातुर होवे, ४ पुरुष वेद का उदय अधिक होवे, ५ बहुत शरीर जाडा होवे सो देह जड, हटा ग्रही कदाग्रही हो सो स्वभाव जड, पूरा बोल न सके सो वचन जड, यह तीनों प्रकार के जड ६ कुष्ट भगेन्द्र जलोदर इत्यादि राजरोग वाला ७ राजा का अपराधी. ८ देवयोग शीतादि योग से विकल बना, ९ चोर, १० अन्धा, ११ दासी पुत्र, (गोला) १२ महा क्रोधी, १३ मूर्ख (भोला) १४ नकटा काणा लंगडा इत्यादि हीनांगी, तथा भील भंगी चमारादि

नीच जाति, १५ कर्जदार १६ मतलवी (मतलब पूरा हुए संयम छोड रहे) १७ पूर्व पश्चात डर वाला, १८ स्वजन की आज्ञा विना यह १८ तरह के पुरुष और १८ तो इसी प्रकार से तथा १९ गर्भवती, २० वालक को दुग्ध पान कराने वाली यह, २० तरह की स्त्रियां. यह ३८ हुये १० नपुंसक कहिये ? संयम की प्राप्ति कितनी दुर्लभ है यह अलभ्य लाभ जिसे प्राप्त हुआ हो उस की कितनी पुण्याई समझना चाहिये. ऐसे चिन्तामणि तुल्य संयम को प्राप्त कर जो कङ्कर समान फेंक देते हैं वे बड़े अधम दुर्भागी हैं और जो सम्यक् प्रकार त्रिकरण विशुद्ध संयम की आराधना पालना स्पर्शना करते हैं वे महा भाग्यशाली उत्तमोत्तम जानना चाहिये ! वे ही मोक्ष की प्राप्ती करते हैं।

८ जैसे मृत्तिका मिश्रित सुवर्णादि धातु को अंगारे में रखने से वह धातु आप रूप को प्राप्त हो जाती है तैसे ही अनादि कर्म सम्बधी प्राणी को कर्म रूप मृतिका जला कर आप रूप में लावे—सिद्ध स्वरूपी बनावे वह तप धर्म है. काम क्रोधादि षड्रिपुओं के दमन करने को तप ही सब से बड़ा और निःसंदेह उपाय है. क्रोड़ों मन साबुन लगा कर पानी में धोने से भी उज्वल नहीं बन सके ऐसे काले कोयले को द्रव्य ताप से जला कर श्वेतझक रक्षा बना देता है तो फिर भाव तप आत्मा को पवित्र बनावे इस में संशय नहीं। पुद्गलानन्दी—रस लम्पटीयों से तप नहीं होता है वे कहते हैं कि "आत्मा सो परमात्मा" है इसे क्षुधा तृषादि से आहत कर क्यों आत्म द्रोही बनना. तब धर्मावलम्वी कहते हैं कि तब बड़े २ तपस्वियों ने किये जो ६०—६० हजार वर्ष पर्यन्त लोह कीटादि भक्षण कर रहे शरीर को काष्ट भूत बना दिया बड़े २ ऋषियों

---

* ६ प्रकार के नपुंसक—१ राजा ने अन्तेपुर के रक्षणार्थ लिंग छेदन कर नाजर बनाया, २ गुफस्थान रागते अंग शांवश पड़ा, ३ मंत्र से ४ औषध से ५ ऋषि के श्राप से और ६ देव योग से इन ६ कारण से नपुंसक बने जिनको दीक्षा देने में हरकत नहीं अन्य नपुंसक को नहीं देना

ने ओलियों ने तप किया उन सब को आत्म द्रोही कहना क्या? अरे भोले भाइयों! शरीर को पोषने से केवल सप्त धातुओं की वृद्धी होती है आत्मा का पोषन तो धर्म से ही होता है (२) कितनेक कहते हैं तुम दया धर्मी चींटी को भी नहीं सताते हो फिर तप से अपनी देह को क्यों कष्ट देते हो! उनसे कहा जाता है कि जैसे रोग निवारनार्थ कटुक औषधी लेते पथ्य पालन करते कष्ट मालुम पडता है परन्तु वह कष्ट नहीं है तैसे ही कर्म रोग के निवारनार्थ तपौषध और संयम पथ्य कठिन दुःख प्रद मालुम पडता है परन्तु 'क्षीणमित दुःख बहु काल सुखः' इस क्षण मात्र के दुख से कर्म क्षय हुये बाद मोक्ष के अक्षय सुख प्राप्त कर्ता तप सुख रूप है. किसी भी प्रकार का सुख बिना दुख नहीं प्राप्त होता है कहा भी है 'दुःखान्ति सुख' (३) कितनेक कहते हैं पाप तो शरीर कर्ता है फिर जीव को क्यों सताते हो? समाधानः—तुम तक मिश्रित घृत को शुद्ध बनाने के बीच में बिचारे वर्तन को क्यों जलाते हो? हे भाई! जैसे वर्तन के बिना तपाये घृत शुद्ध नहीं होता है. इस लिये मुमुक्षुओं को तप करना परमावश्यक है. सब जगत् के खाद्य पदार्थों खा आये पेय पदार्थों पी आये किंबहु सयंभूरमण समुद्र के पानी से अनन्त गुनाधिक माता का दुग्ध पान कर आये अनन्त मेरू पर्वत जितनी मिश्री भक्षन की तो भी तृप्त नहीं हो पाये तो अब इन तुच्छ पदार्थों के भोग से क्या तृप्ती होने वाली है. ऐसा जान पुद्गलों की ममत्व त्याग तपश्चर्या करते हैं वे इसलोक में अनेक लब्धीयों प्राप्त करते हैं, देवेन्द्रादि के पूज्य होते हैं, आगे सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं. तप कर्म बन को जलाने को दावानल है. कामादि शत्रु विदंश ने को वासुदेव है. तृष्णा रूप बेल के छेदन को हत्थीयार है निबड कर्म बन्धन को तोड क्षण में मोक्षदाता तपही है।

९ वस्तु के यथार्थ—सत्य स्वरूप के दर्शक को ज्ञान कहते हैं. "पढ मं नाणं तओ दया" प्रथम ज्ञान से जीवाजीव का स्वरूप जानना

तवही दया पालने समर्थ बनेगा. मोक्ष गमन के ४ साधन—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में प्रथम पद ज्ञान को ही मिला है. भर्तृहरी ने भी कहा है "विद्या विहीना पशुः" ज्ञान बिना नर पशु तुल्य है. भगवती सूत्र में भी कहा है "ज्ञानी सब से आराधिक" उतराध्यन सूत्र में कहा है 'णाण विण न हुंती दंशण गुण' ज्ञान बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है. यजुर्वेद में भी कहा है 'विद्यायाऽमृत मश्नुतः' विद्या ही परम सुखद ता है. इत्यादि हरेक शास्त्र में ज्ञान की विद्या की बहुत ही प्रसंशा की है. और प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि जिस की छांह में कोई खड़ा नहीं रहता ऐसे नीच जात्योंत्पन्न व्यवहारिक विद्या में प्रवीन बने हैं उन्हें साहब २ कह कर लोग बड़े आदर से ऊंचासन समर्पन करते हैं वे नीच धन्धे से बच कर सुखोपजीवी बने हैं तो फिर धर्म विद्या—आत्म ज्ञान का तो फल कहना ही क्या? इस लिये सुखार्थी प्राणीयों को विद्या ज्ञान संपादन करना उचित है। लोगों! तुम केवल द्रव्योपार्जन में ही सुख मान बैठे हो किन्तु तुम्हें विचारना चाहिये कि—जैसे द्रव्य को अंगारा जलाता है पानी गलाता है, चोर हरन कर जाते हैं, भाईयों भाग लेते हैं राजा महसूल ले जाता है. कहीं ले जाते भारभूत होता है तैसी विद्या नहीं है जानना चाहिये कि विद्या की लक्ष्मी दासी है.' व्यवहारिक विद्या से संसार में सुख से जीवन व्यतीत करना प्रतिष्ठा पात्र होता है विद्वान ही धर्म ज्ञान को प्राप्त कर सकता है. धर्मज्ञ जीव पापाचरन से निन्द कर्मों से आत्मा को बचा कर दोनों लोक में सुखी होते हैं जैसे लक्ष रूपे वाली थैली को कोई शेठ कह नमता नहीं है क्यों कि इसे उस का अनुभव नहीं, तैसेही केवल बहुत शास्त्रों के पाठक व कंठस्थ करने वाले मिथ्या विवाद में फसने वाले अनुभव बिना के कहलाते ज्ञानी सच्चे ज्ञानी नहीं होते हैं। ज्ञानी के १० लक्षण कहे हैं.

श्लोक—अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियेपम् । क्षमा दया सर्व जन प्रियेताम् ॥

निर्लोभ दाता भय शोक मुक्ता। ज्ञानी नरम्य दश लक्षणानी ॥

अर्थ—१ क्रोध राहित, २ वैरागी, ३ जितेन्द्रिय, ४ क्षमावन्त, ५ दया वन्त, ६ सब को प्रियकारी, ७ निर्लोभी, ८ डर राहित, ९ चिन्ता—शोक राहित, और १० दाता.

ऐसा परमोत्तम ज्ञान को जान और मदूप्राप्ति का अवसर साधु वृत्ति को प्राप्त हो जो व्यर्थ झगड़े में संसारियों के जंजाल में बादाबाद में अपने मिथ्यावाद स्थापने में पर के सत्यवाद उत्थापने में पड़ गये हैं. वे व्यर्थ जन्म गंवाते हैं. और जो ज्ञान ध्यान में निमग्न रहते हैं वे इस भव में सर्व मान्य निरामय सुख के भोक्ता हो आगे को स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करते हैं.

१० काम शत्रु के निर्दलन करने वाले को ब्रह्मचर्य कहते हैं- प्रश्न व्याकरण सूत्र में—'तं बंभ भगवं' ब्रह्मचर्यवन्त को भगवन्त ने आपसमान कहा है. महाभारत शान्ति पर्व के २४३ वें अध्याय में 'ब्रह्मचर्येण वै लोकान् जनयन्ति परमर्षयः' महा ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही लोक का विजय किया है. और भी 'ब्रह्मचर्य मायुष्य कारणम्'—ब्रह्मचर्य ही आयुष्य का हित कर्ता होता है. और गौतम ऋषि कहते हैं—

श्लोक—आयुस्तेजो बलं वीर्यं, प्रज्ञाश्रीश्च महाशयः।
पुण्यं च मत्प्रियत्वं च, हन्यतेऽब्रह्मचर्यया ॥

अर्थ—जो ब्रह्मचर्य को पालन नहीं करते हैं उन का बल-वीर्य-बुद्धि आयुष्य-तेज-शोभा-सौर्य-सौन्दर्य-धन-यश-पुण्य और प्रीति का नाश होता है. इस प्रकार अनेक स्थान ब्रह्मचर्य की प्रसंशा और अब्रह्मचर्य से हानि बताई है. ऐसा जान अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। कदाचित मन चलित हो तो (१) चर्म रहित शरीरके स्वरूपके सामने विचार को पहुंचाना कि ऐसे घृणोत्पादक अशुची के भण्डार शरीर में तेरे जैसे पवित्रात्मा को मोहित होना अयोग्य है. (२) जिस स्थान में नव महीने

महा कष्ट सह महा मुसीबत से छुटकारा पाया फिर वहां जाने की इच्छा करते रे मूढ ! तुझे शरम पैदा नहीं होती है. (३) जैसा तेरी माता और भगिनी का इंगित आकार है तैसा ही सब स्त्रियों का है मोह मुग्धता को छोड़ सब स्त्रियों को माता समान ही मानना चाहिये. (४) जन्मान्तर में सब जीवों के साथ सब प्रकार का सम्बन्ध कर आया है उसको भी जरा विचार करना चाहिये. (५) विष्टा को देख थू थू करता है, रक्त के दाग को धोये बिना चैन नहीं पड़ता है. झूंठी वस्तु को देख ओकरी करता है. फिर विष्टा के भंडार रक्त के मथन और अधरामृत (थूक) के गिलने में घृणा क्यों नहीं आती है. (६) उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन में कहा है.

गाथा—जहा सुणी पुइकणी निकसी जइ सव्वसो
एवं दुशील परीणीय मुहरी निकसीजइ ॥

अर्थ—जैसे क्षुधातुर स्वान सूखे हड्डी के टुकड़े को चिगलते उस की तीक्ष्ण नोंक से तालु का विदारण हो उसमें होते हुए रक्तास्रव के स्वाद में लुब्ध बन अधिकाधिक चिगलता है. आखिर तालु की हड्डी में वह हड्डी से छिद्र पड़ दर्द होता है तब उसे छोड़ मुंह चाटता हर्षित होता है. उस तालु के छिद्र में रोगोत्पत्ती हो कीड़े पड़ भेजे को सड़ा देते हैं तब वह सड़े कान वाला कीड़ों से मक्खियों से दुर्गन्ध से लोगों की फिटकार से महा दुखी बन सिर पटक २ मर जाता है. तैसे ही कामासक्त मनुष्य स्त्री के संयोग में मुग्ध बन अपने वीर्य के नाश से सुख मानते सुजाक, प्रमेह आदि अनेक बीमारियों से सड़ २ कर रो रो कर मृत्यु के ग्रास हो नर्क में पोलाद की तप्त पुतली से आलिंगन करते महा दुःख भोगते हैं. (७) जैसे आराम होते वक्त गुम्वड़े में मीठी २ खुजली चलती है यदि कुचर डाले तो विकार की वृद्धि हो महा दुखी होता है और जरा आत्मा वश करले तो थोड़े में दर्द खोकर सुख पाता है, तैसे

ही मनुष्य जन्म में कर्म रूप रोग के आराम होने की वक्त प्राप्त होने से विषयाभिलाषा अधिक होती है. यहां जो जरा आत्मा वश कर ले—विषय सेवन नहीं करे तो * जन्म जरा मृत्यु के महा दुखों से छुटकारा पा अनन्त मोक्ष के सुख का भोक्ता बन जावे. इत्यादि विचार से विषयाभिलाषा § निकन्दन कर निर्मल ब्रह्मचर्य का पालन करे.

श्लोक—ब्रह्मचर्य यस्य गुणं, शृणुत्वं वसुधाधिप ॥ आजन्म मरणाद्यस्तु। ब्रह्मचारी भवे दिह ॥१॥ नत्तस्य किञ्चिद प्राप्य मिति विधी नराधिपे ॥ बह्व्य:कोटयस्त्वृषीणांच, ब्रह्मलोक वसन्त्युत ॥ सत्वे रतानां सततं, दान्ता नामूर्ध्व रेतसस्म् ॥ ब्रह्मचर्य द्रहेद्राजन् सर्व पाप नुपसितम् ॥ ३ ॥

अर्थ—भीषमजी कहते हैं कि-अहो युधिष्टर ? मैं ब्रह्मचर्य के गुण कहता हूं सो तू श्रवण कर जो जीवन पर्यंत अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन कर्ता है उसके किसी भी शुभ गुन की न्युनता नहीं रहती है, महा ऋषियों और परमात्मा भी उसके गुनगान करते हैं, ब्रह्मचारी यहां अनेक सुख का भोक्ता हो सिद्धगती को जाता है, ब्रह्मचारी निरन्त्र सत्यवादी, जितेन्द्रिय, शान्तात्मा रोग रहित, शुभाव सहित, पराक्रमी, शास्त्रज्ञ, प्रभु का भक्त, उत्तम अध्यापक हो सर्व पाप का क्षय कर सिद्धगती को प्राप्त होता है। *

१७ प्रकार का संयम।

१ पृथवी काय संयम— एक जवार के दाने जितने पृथवी काय के खण्ड में असंख्य जीव हैं, यहां उनमें से प्रत्येक जीव निकल कर यदि

---

* श्लोक—दर्शनात् हरन्ति चितं, स्पर्शे हरन्ति बलं ॥ संभागात हरन्ति वीर्यं, नारी प्रत्यक्ष राक्षसी ॥

§ सब से अधिक नर्क में भय संज्ञा है, तिर्यंच में आहार संज्ञा है, देवता में परिग्रह संज्ञा है और मनुष्य में मैथुन संज्ञा है।

* उक्त १० धर्म का विशेष खुलासा "धर्मतत्वसंग्रह" ग्रन्थ में किया है। जिसकी तृतीयावृत्ति अभी ही छपके बाहिर पड़ी है।

कबूतर जितना शरीर बनावें तो एक लक्ष योजन के जम्बुद्वीप (४० क्रोड़ कोस) में समावेश नहीं होवे. इतने जीवों का पिण्ड जान कर साधु कदापि इनका संघटन भी नहीं करे तो मकान बन्धाने का, जमीन खुदाने आदि जिससे पृथ्वी की घात हो ऐसा उपदेश कैसे करे? अपितु नहीं करे.

२ 'अपकाय संयम'—पानी की एक बूंद में असंख्यात जीव हैं, यदि प्रत्येक जीव निकल कर भ्रमर जितना शरीर बनावे तो जम्बुद्वीप में उनका समावेश नहीं होवे. ऐसा जान साधु किञ्चित पानी की बूंद पडती हो तो भिक्षार्थ भी नहीं जावे तो स्नानादि अर्थ पानी की हिंसा का उपदेश कैसे कर सकें. अपितु नहीं कर सकते हैं.

३ 'तेजसकाय संयम'—अग्नि की एक चिनगारी में असंख्यात जीव हैं, यदि प्रत्येक जीव निकल कर राई के बराबर शरीर बनावे तो जम्बुद्वीप में समावेश नहीं होवे. ऐसा जान साधु अग्नि संघटन का आहार भी ग्रहन नहीं करते हैं तो धूप दीप पाचनादि का उपदेश कैसे कर सके अपितु नहीं कर सके.

४ 'वायुकाय संयम'—हवा के एक झपेटे में असंख्य जीव हैं यदि प्रत्येक जीव निकल कर वड के बीज जितना शरीर बनावें तो जम्बुद्वीप में समावेश नहीं होवे, ऐसा जान साधु सदैव मुख पर मुखवस्त्रिका बांधे रखते हैं तो वाजिन्त्रादि बजाने का उपदेश कैसे कर सकें? अपितु नहीं कर सकते.

५ 'वनस्पति काय संयम'—धान्य बीज के प्रत्येक दाने में एक एक जीव है, हरित काय भाजी फलादि में असंख्यात जीव हैं और जमीकन्दादि में अनन्त जीव हैं. ऐसा जान साधु छूते भी नहीं हैं तो फल फुल पत्रादि छेदन भेदन का उपदेश कैसे दे सके? अपितु नहीं दे सकते हैं.

नोट—कितनेक इन पंच स्थावर काय में जीव का तादृश्य देखाव न होने से श्रद्धा नहीं करते हैं उन को जानना चाहिये कि जैसे शरीर के अं

रही हड्डी सजीव होती है तैसे पृथ्वी के अन्दर रहे पत्थर मट्टी आदि भी सजीव होते हैं बाहिर निकाले बाद शस्त्र प्रयोग से निरजीव होजाते हैं. रेल के अंजन में पानी बदलना पड़ता है वह गरमी से निरजीव हो सत्ता रहित होजाता है यही कारन है. अग्नि तो प्रत्यक्ष ही भक्ष मिलने से जिन्दी रहती है नहीं तो मर जाती है. वायु में प्रत्यक्ष ही गमन शक्ति है और मनुष्य के समान ही हरितकाय पानी के सम्बन्ध से उत्पन्न होती है। बालअवस्था में कोमल, तारुण्यता में बहारदार वृद्धावस्था में हीन दीन दुर्बल बन जाती है. सारोग्यता आरोग्यता आदि अनेक जीव के चिन्ह प्रत्यक्ष देखने में आते हैं. कलकत्ते के डाक्टर बोस ने यह सिद्ध कर बताया है। आचाराङ्ग सूत्र में कहा है जैसे जन्म से अन्धे बधिर मुक्के अपङ्ग नर को कोई तीक्ष्ण शस्त्र से मस्तक से पैर पर्यन्त छेदन भेदन करने से दुःख होता है किन्तु वह दर्शा सकता नहीं है, तैसे ही स्थावरों को संघटन (छूने) मात्र से दुःख होता है किन्तु कर्माधीन हो परवश पड़े दर्शा सकते नहीं हैं.

६-९ बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरिन्द्रय और पचेन्द्रिय, (इन का खुलासा तीसरे प्रकरन में हो गया है) यह ४ प्रकार के त्रस प्राणियों की घात से बचने को साधु सदैव प्रमार्जना प्रतिलेखनादि करते हैं, तो धुम्रादि प्रयोग से अग्नि आदि के संयोग से जीवों की घाति होती हो ऐसा उपदेश कैसे दे सकें. अर्थात कदापि नहीं दे सकते हैं.।

नोट— कितनेक अज्ञानी जीव १ शरीर का रक्षण कर आयुष्य का निर्वाह करने, २ उत्सवादि कर यशःप्राप्त करने, ३ पूजा के लिये मान के भरे हुए, ४ जन्म मृत्यु से छुटने—धर्मार्थ और ५ दुःख से छूटने आप स्वयं हिंसा करते हैं, अन्य के पास कराते हैं हिंसा के कृत्य की अनुमोदना—प्रशंसा करते हैं यह महामूर्खता है. हिंसा करते तो सुख के लिये हैं किन्तु आगे दुःख फल प्रद होगा ऐसा आचाराङ्ग शास्त्र के प्रथम ही अध्ययन में कहा है.

१० 'अजीव काय संयम—वस्त्र पात्र पुस्तक रजोहरणादि निर्जीव वस्तु को भी यत्ना पूर्वक काम में लेवे. मुद्दत पूरी हुये विना उसका भी नाश नहीं करे. क्यों कि बिना आरंभ कोई भी वस्तु बनती नहीं है, तैसे ही दत्तार को मुफ्त में प्राप्त नहीं होती है उसने प्राण प्यारी वस्तु साधू को दी है सो केवल धर्म वृद्धि की इच्छा से जो दूसरी नई वस्तु के लालच से या बिना कारण से वस्तु का नाश मुद्दत के पहिले करता है वह दोषाधिकारी होता है ।

११ पेहा संयम—किसी भी वस्तु को प्रथम बिना अच्छी तरह देखे तपासे उपयोग में नहीं लेना चाहिये. जैसे रात्री को चारों ही आहार कदापि न पास रखना और न भोगवना. जिससे विपले प्रानी आदि से बचाव हो साथही अपनी रक्षा होती है और अन्य जीवों की भी रक्षा होती है.

१२ उपेहा संयम—उपदेश द्वारा-मिथ्यात्थीयों को समदृष्टी बनाने, मार्गानुसारी को श्रावक व साधु बनावे. धर्म से संयम से स्थिल हो उसको सहाय दे स्थिर करे, श्रद्धा से भृष्ट का विशेष परिचय नहीं करे. क्यों कि 'सद्धापरम दुल्लाह' श्रद्धा प्राप्त होना बहुत मुशकिल है ।

१३ 'प्रमार्जना संयम' अप्रकाशित स्थान में तथा रात्री को रजोहरन से जमीन का प्रमार्जन कर गमनागमन कारण से करे, वस्त्र पात्र शरीर पर कोई जीव की शंका होतो गुच्छीक से दूर करे ।

१४ 'परिठावणिया संयम' मल मूत्र नख केश अशुद्ध आहार मृत्युक शरीर आदि अयोग वस्तु को इस प्रकार परिठावे (डाले) कि जिससे हरित् काय दाने चींटी आदि त्रस जीवों की घात न हो ।

१५—१७ मन संयम, वचन संयम और काया संयम, इन तीनों योगों को अनुचित खराब विचार उच्चार आचार से बचाकर उचित-अच्छे विचार उच्चार आचार में प्रवृतावे ।

अन्य १७ प्रकार का संयम— ५ आश्रव त्यागे, ५ इन्द्रिय वश करे, ४ कषाय को छोडे, ३ योग वश करे ।

त्रिरत्न—१ ज्ञान से वस्तु स्वरूप को यथार्थ जाने, २ दर्शन से जानी हुई वस्तु का सम्यग् प्रकार श्रद्धान करे और ३ चारित्र से- अयोग वस्तु का त्याग कर योग्य वस्तु को स्वीकार करे, इन तीनों रत्नों का आराधन पालन और स्पर्श्यन करना सोही मोक्ष मार्ग है ।

८ प्रभावना ।

१ 'प्रवचन प्रभावना'—सब प्रकार के जैनागम का जैन ग्रन्थों का तथा षट्मत के अनेक शास्त्रों का पठन मनन निर्धीध्यासन कर उनका तात्पर्य अर्थ परमार्थ को संक्षिप्त शब्द में ग्रहण कर कंठस्थ कर वारम्वार अनु-प्रेक्षायुक्त परियट्टन कर रखे कि जो यथा उचित्त वक्त में स्मरण हो आवे जिससे जो मतावलम्बी हो उसके मत प्रमान प्रत्युत्तर दे उसे शान्त कर धर्म प्रदिप्त करे ।

२ 'धर्म कथा प्रभावना'—"चउ विहा कहा पण्णत्ता, तंजहा-अक्खेवणी विक्खेवणी, संवेगणी, निव्वेगणी" अर्थात् स्थानांगजी तथा दशाश्रुतस्कन्ध शास्त्र में ४ प्रकार की कथा कही है—(१) श्रोता के हृदय में हुबहु रस परिणम कर ठस जावे वह अपेक्षनी कथा, इसके ४ प्रकार १ पंचाचार का साधु श्रावक के आचार का उपदेश करे. २ व्यवहार में प्रवर्तन करने की विधी, उपदेशक बनने की विधी, और प्रायःश्चितादि से आत्म शुद्ध करने की विधी प्रकाशे. ३ विक्षणता से श्रोता के मन में उत्पन्न हुये प्रश्न को जान उसके विना पूछेही, तथा कोई प्रश्न पूछे तो उसका इस प्रकार संक्षिप्त शब्दों में समाधान करे कि- जिससे वह कथन ठस जाय. ४ स्याद्वाद शैली से परस्पर विरुद्धता रहित सातों नयों के पक्ष का समर्थन करते श्रोता की रुचिअनुसार किसी मतान्तर के अपवाद युक्त शब्दोच्चार नहीं करते हुये अपने माननीय पंथ के गुनों के प्रकाश द्वारा अन्य के अनाचीर्ण को दर्शाता हुआ सद्गुण का हृदय में असर डाल दे ऐसी कथा कहे. (२) सन्मार्ग छोड उन्मार्ग जाते को पीछा सन्मार्ग में स्थापन करे वह विक्षेपनी कथा. इसके ४ भेद-

१ अपने मत का प्रकाश करता बीच २ में अन्य मत के चुटकले भी कहता जाय जिससे श्रोता को विश्वास होजाय कि- अपनी जैसी ही इनमें भी बातें हैं. २ परिषद में अन्य मतावलम्बी अधिक हों तब उनके मत का कथन प्रकाशता बीच २ में अपने मत की बातों को कहता जाय जिससे वे समझे कि जैन मत ऐसा चमत्कारिक है. ३ सम्यक्त्व का स्वरूप प्रकाशता बीच २ में मिथ्यात्व का भी स्वरूप दर्शाता जाय जिससे श्रोता मिथ्यात्व से आत्मा को बचा सके, ४ मिथ्यात्व का स्वरूप प्रकाशता बीच २ में सम्यक्त्व का भी कथन करता जाय जिससे श्रोता सम्यक्त्व ग्रहण करने की इच्छा करे. (३) श्रोता के अन्तःकरण में वैराग्य स्फूरे उसे सम्वेगनी कथा कहते हैं।

इसके ४ प्रकार—१ इस लोक में प्राप्त सम्पत्ती का अनित्यपना और मनुष्य जन्म शास्त्र श्रवन श्रद्धा व भक्ति का दुर्लभपना बतावे जिस से श्रोता की सांसारिक पदार्थोंसे प्रीती कमी हो धर्म करनेकि रूची जगे, २ परलोक में नर्कादि के दुःखों का और स्वर्ग मोक्ष के सुखों का कथन सुनावे जिससे श्रोता नर्कादि के दुःख से बचने स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करने को उत्सुक बने, ३ स्वजन मित्रादि संसारिक सम्बन्धियों का स्वार्थी (मतलबी) पना, धर्मात्माओं का परमार्थिक पना बतावे श्रोतायों का चित्त कुटुम्बियों से हट कर सत्संगती पर लगे. ४ पर पुद्गलों की परणती में परिणम कर संसार अनन्त विटम्बना भोगी और ज्ञानादि त्रिरत्न की आराधना करने वाले सब दुःखों से मुक्त हुये एसा समझावे जिससे श्रोता पुद्गल परिच त्याग ज्ञानादि की आराधना में उत्सुक बने. (४) जिसे श्रवन कर संसार से चित्तवृती निवृती धारन करे उसे निर्वेगनी कथा कहते हैं, इस के ४ प्रकार १ चोरी जारी आदि कितनेही कर्म ऐसे हैं कि जिससे यहां ही राज कारागृह वास, गर्मी सुजाकादि रोग से अकाल मृत्यु होती है. इत्यादि कथन को ऐसा बतावे जिससे कुकर्मों से अरुची प्राप्त होवे. २ तप संयम

ब्रह्मचर्य दान क्षमादि कितनेक ऐसे कर्म हैं कि जिससे यहां ही इच्छित वस्तु का प्राप्त करने वाला और जगत् पूज्य बन जाता है. इत्यादि सुनावे जिससे सद्गुण स्वीकारने को उत्सुक बने, ३ कदाचित् पुण्य योगसे यहां कृत अशुभ कर्मों का फल यहां प्राप्त नहीं हुआ तो नर्कतिर्यंचादि में जरूर ही भुक्तने पड़ेगा, ऐसा परलोक का डर बताकर श्रोता को पाप से बचावे, और ४ कदाचित् पूर्व पापोदय से धर्म करनी का फल यहां नहीं हुआ तो आगे स्वर्गादि में तो जरूर ही होगा, करणी वंध्या कदापि नहीं होती है ऐसा ठसा कर परलोक की सुख प्राप्ति के लिये उत्सुक बनावे यों ४ कथाओं के १६ प्रकार से धर्म कथा कह कर धर्म का प्रभाव बढावे ।

३ 'निरापवाद प्रभावना' जिस स्थान कोई पाखण्ड लोगों को धर्म भ्रष्टा बनाता हो या सच्चे साधुओं की हीलना निन्दा कर महिमा घटाता हो वहां आप जाकर शुद्धाचार द्वारा, महाजनों की सहायता द्वारा विद्वता पूर्वक चर्चावाद द्वारा सत्य पक्ष कुपक्ष का स्वरूप समझा कर सत्य पक्ष स्थापे मिथ्या कन्द का निकन्दन कर धर्म प्रदीप्त करे ।

४ 'त्रिकालज्ञ प्रभावना' जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि शास्त्रों में कथित खगोल भूगोल के ज्ञान का ज्ञाता बने. भूकम्प जोतिषयादि के लक्षन कर भूत भविष्य के वृतान्त का जान होवे, लाभालाभ सुख दुःख जीवन मृत्यु के प्रसंग में अपनी आत्मा को तथा धर्मात्माओं की आत्मा का सावधान करे, विघन से बचावे धर्म का रक्षन करे किन्तु ज्योतिष निमित प्रकाशे नहीं ।

५ 'तप प्रभावना' अन्य मतावलम्बियों के शास्त्र में तप की महिमा तो बहुत है किन्तु अब कहते हैं कि कलयुग में 'अन्नमय प्राण' हैं इसलिये तप नहीं हो सकता है, कदाचित करते भी हैं तो नदैवकी अपेक्षा अधिक सरस आहार मिष्टानादि भोग केवल नाम रूप एकादशी आदि करते हैं वह भी उनको बहुत कठिन मालुम होता है तो फिर निराहार तप मास क्षमनादि

श्रवन कर उनको आश्चर्य उत्पन्न हो इसमें सन्देह ही क्या ? इसलिये यथा शक्ति दुष्कर तपाश्चरण कर जैन धर्म प्रदीप्त करे ।

६ 'व्रत प्रभावना' विषयाशक्त जीवों को इच्छा का निरुंधन करना बडाही कठिन मालूम होता है. जो भोगोपभोग के इच्छित पदार्थों को प्राप्त कर भोगवने समर्थ हो इच्छा निरुंधन करे दुष्कर वृताचरण करे जिससे उनको विस्मय हो इसमें सन्देह ही क्या ? इसलिये तारुण्यपन में ब्रह्मचर्य का पालन इन्द्रिय के विषय से नीवृती, दुष्कर अभिग्रहा चरण, विगय त्याग, अल्प उपद्धा दुष्कर क्रिया ध्यान मौनादि वृताचरन कर लोगों के चित्त को चमत्कार उपजा धर्म प्रदीप्त करे ।

७ 'विद्या प्रभावना'—रोहीनी, प्रज्ञाप्ति, विक्रोवनी, गगनगामनी, पर शरीर प्रवेशना रूप अदृश्य कारी, अंजन सिद्धि, रस सिद्धि, अनेक विद्या का ज्ञाताबने किन्तु प्रयुंजे नहीं जैन के अपवादी प्रसंग में धर्म प्रदीप्त करने प्रयुंजना पड़े तो प्रायःश्चित ले शुद्ध होवे "चमत्कार वहां नमस्कार" ।

८ 'कवी प्रभावना' छन्द शास्त्र को पांचवा वेद कहते हैं. वार्ताओ और सादे उपदेश से कवीत्व द्वारा किया उपदेश विशेष असर कर्ता होता है. कवीत्व में कई चमत्कार भी होते हैं. इसलिय ५२ प्रकार छन्द ६ राग ३० रागनीयां अनेक रसीली देशियों श्लाघनीय पुरुषों का जीवन- स्तयन अनुभव रसपुर गुढार्थ दर्शक अन्योक्ति वाली, आत्मा ज्ञान प्रकाश विविध प्रकार के छन्द स्तवन स्वाध्याय ढाल आदि बना कर लोगों को आश्चर्य चकित कर धर्म प्रदीप्त करे.

उक्त आठों प्रभावनायों में से अपने को जितने प्राप्त हुये हों उनको प्रगट कर जैन की प्रभावना करे अर्थात् लोगों का मन जैन धर्म की तर्फ आकर्षन कर धर्म प्रेमी बनावे. जो अपने प्रभाव से सिद्ध हो और उससे महिमा प्रतिष्ठा हो तो उसका गर्व नहीं करे क्यों कि अभिमान करने से गुनों

में मन्दता आजाती है जैसे दृष्टी दोष (नजर) लगने से अच्छी वस्तु नष्ट होजाती है 'मानि दैत्यभयं' इसलिये अनेक गुनों का सागर हो सब करने समर्थ होकर भी सदैव निर्भिमानी—नम्र बना रहे.

☞ १२ अंगके पाठी, १ करण सित्तरी, १ चरण सितरी, ८ प्रभावना, ३ जोग निगूह-यह उपाध्याय जी के—१२+१+१+८+३=२५ गुन का कथन हुआ.

उपाध्याय जी की १६ ओपमा ।

१ जैसे--शंख में भरा हुआ दुग्ध खराब भी नहीं होता है और विशेष शोभा देता है तथा वासुदेव के पञ्चायन शंख की ध्वनी श्रवन से शत्रु की सैना भग जाती है, तैसे उपाध्यायजी से प्राप्त किया ज्ञान नष्ट नहीं होता है और अधिक शोभा देता है तथा उस उपदेश ध्वनी श्रवन से पाखंडी पलायन होजाते हैं.

२ जैसे—सब प्रकार के भूषनों से सज बना दोनों ओर वादिन्त्रों के निर्घोष द्वारा कम्बोज देशोत्पन्न 'अश्व' शोभा देता है. तैसे उपाध्याय जी साधु के शुद्ध वेष में सज बने स्वाध्याय की मधुर ध्वनी रूप वादिन्त्र के निर्घोष से शोभा देते हैं ।

३ जैसे—भाट चारण बन्दी जनों की विरूदावली से वृद्धी पाया हुआ उत्साही सूर क्षत्री—सुभट शत्रू का पराजय करता है तैसे उपाध्याय जी चर्तुविध संघ की विरूदावली वृद्धि गत उत्साही बने मिथ्यात्व का पराजय करते शोभा देते हैं.

४ जैसे—साठ वर्ष की युवावस्था को प्राप्त हुआ अनेक हस्तिनीयों के वृन्द से परिवृत्त हस्ति शोभता है तैसे उपध्याय जी बहुसूत्र रूप युवावस्था को प्राप्त बने. अनेक ज्ञाती ध्यानियों के परिवार से परिवृत्त बने वितण्ड वादियों को हटाते हुअे शोभते हैं.

५ दोनों तीक्षण श्रृंग युक्त गौ के वृन्द से परिवृत्त बना 'धोरी बैल

शोभता है तैसे उपाध्याय जी, निश्चय व्यवहार रूप तीक्षण श्रृंग कर मुनिवृन्द से परिवृत शोभते हैं.

६ जैसे—तीक्षण दाढों से बनचरों को शोभित करता बन में 'केशरी सिंह' शोभा देता है तैसे उपाध्यायजी सात नय रूप तीक्षण दाढों से परवादीयों का पराजय करते शोभते हैं।

७ जैसे—त्रिखण्डाधिपती सातों रत्न से वासुदेव शोभते हैं. तैसे ज्ञानादि त्रिरत्न के नायक सात नय रूप रत्न धारी कर्म वैरियों का पराजय करते उपाध्याय शोभा देते हैं.

८ जैसे—षट खण्डाधिपति चतुर्दश रत्नों के धारक चक्रवर्ती महाराज शोभते हैं तैसे षट द्रव्य के ज्ञाता चौदापूर्व रूप रत्नों के धारक उपाध्याय जी शोभते हैं-

९ जैसे--हजार आंखों का धारक * असंख्य देवाधिपति शक्रेन्द्र वज्रायुध कर शोभता है तैसे सहश्रों तर्क वीतर्क वाले अनेकान्त स्याद्वाद मार्ग रूप वज्रधारक असंख्य भव गणाधिपती उपाध्यायजी शोभते हैं।

१० जैसे--सहश्र कीर्ण कर परिवृत जाज्वल्यमान प्रभा से अन्धकार का नाश कर्ता सूर्य गगन मंडल में शोभता है तैसे निर्मल ज्ञान रूप कीर्ण कर मिथ्यान्धकार के नाशक उपाध्याय शोभते हैं.

११—जैसे ग्रह नक्षत्र तारा मंडल से घेरा हुआ शरद पूर्णिमा की रात्री को मनोहर बनाता चन्द्रमा पूर्ण कला कर शोभता है तैसे साधू रूप ग्रह साध्वी रूप नक्षत्र श्रावक श्राविका रूप तारामण्डल से घिरे हुए भूमंडल को मनोहर करते ज्ञान की पूर्णकला से उपाध्याय जी शोभते हैं.

१२ जैसे—मूशकादि के उपद्रव रहित सघन द्वारों से जडा हुआ अनेक प्रकार के धान्य से भरा हुआ कोठार शोभता है. तैसे निश्चय व्यवहार रूप

* कार्तिक शेठ ५०० गुमास्ते के साथ दीक्षा ले करणी कर आयुष्य पूर्ण कर प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्र हुवे और ५०० गुमास्ते सामानिक देव हुये, ये देव सदैव इन्द्र साथ के रहने उनकी आंखों मिला कर सहश्र नेत्री इन्द्र कहलाते थे।

दृढ कमाडों कर अङ्गोपाङ्ग २४ धान्य से भरे उपाध्याय जी शोभते हैं।

१३ जैसे—उत्तर कुरुक्षेत्र में जम्बुद्वीपाधिपत्ती अढीणा देवता का निवास स्थान जम्बुनन्दन सुवर्ण मय पत्र पुष्प फल से भरा हुआ 'जम्बुसुदर्शन' वृक्ष शोभता है तैसे आर्य क्षेत्र में रहे ज्ञान के निवास स्थान अनेक गुण गण रूप पत्र पुष्प फल से उपाध्यायजी शोभते हैं।

१४ जैसे--पूर्व महाविदेह के मध्य में ५३२००० नदीयों के परिवार से परिवृत समुद्र में मिलती सीता नदी शोभती है तैसे उपाध्यायजी हजारों श्रोताओं से परिव्रत्त आगम समुद्र में मिलते शोभते हैं,

१६ अक्षय व स्वादिष्ट पानी से भरा सबसे बड़ा सयंभूरमण शोभता है तैसे अखूट और सबको रोचक ज्ञान दान के दाता ज्ञानियों में श्रेष्ट उपाध्याय जी शोभते हैं.

इत्यादि शुभोपमालंकृत चपलता—कतुहल—माया कपट-रहित, किसी का भी तिरस्कार नहीं करने वाले, सबके मित्र अन्य पर दोषारोप नहीं करने वाले, शत्रु का भी अवर्णवाद नहीं बोलने वाले, दमतेन्द्रिय क्लेश कदाग्रह रहित लजावन्त, गुरू महाराज के भक्त 'अजीणा जीण संकासा' तीर्थंकर नहीं किन्तु तीर्थङ्कर समान धर्म देशना के दाता उपाध्याय भगवन्त होते हैं।

काव्यम्—समुद्द गंभीर समा दुरा सया। अचक्कि क्रिया केणइ दुप्प हं सया॥
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो। खवित्तु कम्मं गइ मुत्तमं गयं।३१। उत्त.११अ.

अर्थ--समुद्र के समान ज्ञान कर पूर्ण भरे, परवादी से कदापि पराभव नहीं पाने वाले, परीषहोपसर्ग को समभावसे सहने वाले, छः काय के रक्षक, तरण तारण, श्रुत ज्ञान से कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त हुये हैं. होते हैं और होवेंगे. उनको मेरा त्रिकरण शुद्ध वारम्वार नमस्कार होवे।

परम पूज्य श्री कहान जी ऋषि जी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषि जी महाराज विरचित 'जैन तत्त्व प्रकाश' ग्रन्थ का चौथा उपाध्याय स्तव नामक प्रकरण समाप्तम्।

प्रकरण पांचवां साधु।

जैसे इष्टितीर्थ सिद्धि करने की ओर लक्षविन्दु को लगा कर प्राप्त होते अनेक उपसर्गों से अचलित रह कर मंत्र वादी मंत्र साधन करते हैं. वैसे ही मुक्ति प्राप्ति की ओर लक्ष लगा परिसहोपसर्ग को समभाव से सहते हुये जो आत्मा का साधन करें वे साधु कहलाते हैं।

सुयगडांग सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ वें अध्याय में साधु के ४ नाम कहे हैं

सूत्र—अहाह भगवं एवं-से दंत दविए वो सट्ठ काए त्ति वच्चे-माहणेत्ति वा,

समणेत्ति वा, भिक्खुत्ति वा णिग्गंथेत्ति वा, त नो बूही महामुणी ॥१॥

अर्थ—श्रमण भगवन्त श्री महावीर स्वामी कहते हैं कि--जो इंद्रियों को दमन करने वाले, मोक्षार्थी, ममत्व त्यागी हों उनको- १ माहण, २ श्रमण, ३ भिक्षु, व ४ निग्रन्थ कहना. इनमें से:—

सूत्र—इति विरए-सव्व पाव कम्मे हिं-पिज्ज, दोष, कलह, अब्भक्खाण, पेसुन परपरिवाय, अरति, रति, मायामोस, मिच्छादंसण सल्ल विरए. समिए सहिय, सया जए, णो कुज्जे, णो माणी माहणेत्ति वच्चे।

अर्थ—जो किसी के साथ मित्राचार करे नहीं, विरोध करे नहीं, झगड़ों करे नहीं, कलंक चढ़ावे नहीं, चुगली करे नहीं, निन्दा करे नहीं, नाराज होवे नहीं, खुशी होवे नहीं, दगल बाजी करे नहीं, मनमें कुछ और ऊपर कुछ बतावे नहीं, मिथ्या मन का शल्य जिनके हृदय में होवे नहीं, पांच समिती समता, सदैव निरन्तर छही जीव कार्य के रक्षक, कोपित होवे नहीं, अभिमान करे नहीं, इन गुणों उपेत (सहित) हों उनको माहण महात्मा कहना.

सूत्र--एत्थवि समणे--अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणं च, अतिवायं च, मुसावायं च, अहिद्धं च, कोहं च, माणं च, लोहं च, पिज्जं च, दोसं च,

इच्चेव जओ जओ आदाणं अप्पणो पद्देसे हेउ तओ तओ आदाणतो पुव्वं पडि विरते. पणाइ वाधाए, दंत दवीए, बोसट्ठ कारा समणोति बच्चे.

अर्थ--उक्त माहण के सब गुण तो श्रमणमें पाते ही हैं किन्तु विशेष में जो होने चाहिये, सो कहतेहैं--जो क्षेत्र के गृहस्थ के प्रतिबन्ध (ममत्व) रहित विहार के करने वाले-फिरने वाले, तप संयमादि करनी के फल का नियाना (वांछा) नहीं करने वाले, कषाय रहित शान्त स्वभावी, हिंसा-झूट-चोरी-मैथुन और परिग्रह को अनर्थ के हेतु भूत ज्ञान परिज्ञा कर जाने और प्रत्याख्यान परिज्ञा कर छोडे, क्रोध मान-माया लोभ-राग-द्वेष को संसार वृद्धी के कर्ता जान छोडे, इत्यादि और भी जो २ कर्म बन्ध के कारन हैं वे आत्मा के नुकसान के कर्ता हैं ऐसा ज्ञान सबका त्याग कियाहो. दमितेन्द्रिय और मोक्षार्थी हों उनको श्रवण (साधु) कहना ।

सूत्र—एत्थवि भिक्खू-अणुन्नरा, विणीए, नामए, दंते, दविए, वोसट्ठ काए, संविधुणीय, विरूवरुवे परिसहोयसग्गे, अज्झप्प जोग सुद्धादाणे, ठि अप्पा संखाए, परदत्त भोइ, भिक्खूत्ति वच्चे ।

अर्थ—उक्त श्रमण गुण से अधिक जो गुण भिक्षु में पाते हैं सो कहते हैं-जो अभिमान रहित, विनयवन्त, इन्द्रिय को काबू में रखने वाला, ममत्व भाव रहित, मोक्षाभिलाषी बना विविध प्रकार के २२ परिषह देव दानव मानव के किये उपसर्ग को समभाव से सहने वाला, पुद्गलों के परिचय रहित अध्यात्म योगी, कलमल रहित शुद्ध परिणामी, सामायिकादि चारित्र में स्थित आत्मा, पाप से आत्मा को बचाने में बडा कौशल्य, संयम धर्म में सदैव रुचीवाला, संसार की असारता का सम्य प्रकार ज्ञाता, अन्य के लिये किया अन्य के दिये हुये ही भोजन का भोगवने वाला जो होता है उनको भिक्षु कहना ।

सूत्र—एत्थ वि णिग्गंथे-एगे, एग विऊ, बुद्धे, संछिन्न सोए, सुसंजते, सुस.मिते, सुसमाइए, आयप वायपत्ते, विऊ, दुहउवि सोय पन्ति छिन्न, णो पुयण

सक्कार लाभट्ठी, धम्मट्ठी, धम्म विऊ, णियाग पडिवन्ने, समियंचरे, दंत दविए, वोसट्ठकाए निग्गंथेत्ति वच्चे।

अर्थ—भिक्षुक से जो गुण निर्ग्रन्थ में विशेश होते हैं सो कहते हैं—यह मेरा अच्छा, यह तेरा बुरा इस पर राग द्वेष रहित, अपना आत्मा को सबसे भिन्न अकेला मानने वाला, तत्वज्ञ, मिथ्यात्व-अव्रत-प्रमाद-कषाय-योग रूप आश्रव का निरूंधन कर्ता, गुप्तेन्द्रिय, पांच समिती पालक, चित्त की स्थिरता वाला आत्मतत्त्व स्वरूप का ज्ञाता, ज्ञानवन्त, द्रव्य से और भाव से आगमन के द्वार को बन्द कर्ता, किसी की तरफ मान सन्मान पूजा सत्कार की इच्छा नहीं करने वाला, एकान्त धर्म का ही अर्थी, धर्म के मर्म को पहचाना हुआ, अनुयायीयों को मोक्षदाता, विशुद्धाचारी, इन्द्रियों के विषय रहित, शरीरादि की ममत्व रहित, एकान्त मोक्ष के मार्ग का प्रवर्तक जो हों उनको निर्ग्रन्थ कहना।

साधु के २७ गुण।

गाथा—पंच महव्वय जुत्तो। पंचिंदिय समरणो॥
चउविह कसाय मुक्को। तओ समाधारणीया॥
तिनञ्ज सम्पन्न तिओ। खंती सम्वेगरओ॥
वेयणा मच्चु भय गयं। साहु गुण सत्तवीसं॥

अर्थ—५ महाव्रत (२५ भावना युक्त) निर्दोष पालन करे, ५ इन्द्रियों को विषयों से रोके, ४ क्रोधादि ४ कषायों का जय करे, (इन १४ गुनों का साविस्तार वर्णन तीसरे प्रकरण में हो गया है) और १५ पाप मार्ग में प्रवर्तते मन का निरूंधन कर शान्तवर्ती रखने वाले सो 'मन समाधारनीया १६ कार्य उत्पन्न हुये निर्दोष सत्य और किसी को भी दुःखप्रद न हो ऐसे शान्त वचनोच्चारक सो 'वचन समाधारनीया' १७ काया की चपलता रहित कार्य के लिये धैर्य से काया को प्रवर्तावे सो 'काया समाधारनीया १८ अन्तःकरण के भावों को धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान में रमावे सो 'भाव सत्य'

१९ यथोक्त क्रिया करे—याने पश्चात पहर रात्रि रहे तब जाग्रत हो तारा तो नहीं टूटा विद्युतादि किसी प्रकार की असज्झाई तो नहीं ऐसा देखने को आकाश की और दिशा की प्रतिलेखना करे, निर्मल दिशा हो तो मुखाग्र शास्त्र का स्वाध्याय करे, जब रक्त बादल होने लगे अस्वाध्याय काल प्राप्त हो तब रात्रि के पाप की निवृत्ति के लिये 'राइसी' प्रतिक्रमण करे, सूर्योदय होने से मुखवस्त्रिकादि सब भंडोपगरन की प्रतिलेखना करे फिर ईर्यावहि का कायुत्सर्ग कर, गुरू आदि जेष्ठ साधु से पृच्छा करे कि मैं स्वाध्याय करूं या किसी की वैयाव्रत औषधादि लाने का कार्य हो तो वह करूं ? जो गुरू आदि कहे सो करे. श्रोता का योग हो तो व्याख्यान दे दूसरे प्रहर में शास्त्रार्थ बोल थोकड़े आदि का चिन्तवन करे, और जो भिक्षा का + काल जानने में आवे तो यत्न पूर्वक अज्ञात कुल में से निर्दोष आहार लाकर शरीर को भाडा दे फिर तीसरा प्रहर प्राप्त होते मुख वस्त्रिकादि भंडोपकरण की प्रतिलेखना करे, फिर शास्त्र स्वाध्याय करे, लाल बद्दल होने लगे तब दिन के पाप की निवृत्ति के लिये 'देवसिय' प्रतिक्रमण करे, अस्वाध्याय काल निवृत्त शास्त्र स्वाध्याय करे, दूसरे

× पहिले आरे में तीन दिन में दूसरे आरे में दो दिन में, तीसरे आरे में एकदिनान्तर चौथे आरेमें दिन में एक वक्त, पंचवे आरे में दो वक्त और छठे आरेमें यों माया आहार की इच्छा होती है, इस कारन से चौथे आरे में साधु तीसरे पहर में (१२ वजे बाद) भिक्षार्थ जाते थे तथा चौथे आरे में जिनके घर मे ३२ स्त्री और २८ पुरुष यों ६० मनुष्य होते उनका घर गिना जाता था. ६० मनुष्य का भोजन बनावे भी दो पहर दिन सहज आने का संभव है इसलिये चौथे आरे में साधु दो प्रहर बाद एक ही वक्त भिक्षार्थ जाते थे, यह नियम सदैव के लिये नहीं है, सदैव के लिये तो 'काले काल समायरे' अर्थात् ग्राम में धूम्र निकलता बन्ध पड़ा देख पनघट पर पनीहारियों कम आती देख, आहार याचक भिक्षुकोंको परि भ्रमण करते देख, इत्यादि चिन्ह समजे कि अब यहां भिक्षा प्राप्त काल हो गया है तब साधु भिक्षार्थ जावे जो भिक्षा काल में भिक्षार्थ न जाते जल्दी या देर से जावेगा तो फिरना बहुत पड़ेगा. इच्छित आहार व्यंजन नहीं मिलेगा, शरीर को दुःख होगा वे वक्त साधु क्यों फिरता है यों लोग निन्दा करेंगे और स्वाध्याय ध्यानादी में अन्तराय पड़ेगी। ऐसा जान जिस ग्राम में जब वक्त हो तब गौचरी जावे।

प्रहर में ध्यान करे, * तीसरे प्रहर में निद्रामुक्त होवे, इस प्रकार अहो-रात्रि की क्रिया उत्तराध्यन सूत्र के २६ वें अध्यायानुसार करे सो 'करण-सच्चे' २० मन वचन काया के योगों को शरल रक्खे, योगाभ्यास आत्म साधन में लगा रहे सो 'जोग सच्चे' २१ मति श्रुतादि जितने ज्ञान हों, तथा अङ्गोपाङ्ग छेद मूलादि शास्त्र जिस वक्त जितने उपलब्ध होते हों उन्हे उमंग सहित बांचना पूंच्छना पर्यटनादि कर निश्चल वना रखे सो 'ज्ञान सम्पन्न' २२ दर्शन मोहनी का क्षयोपशम व क्षयकर शुद्ध सम्यक्त्व धारी वन कर शंकादि दोष रहित देवादि से अचल रहे निर्मल सम्यक्त्व पले सो 'दर्शन सम्पन्न' २३ सामायिकादि जितने चारित्र प्राप्त हुए हों उतने निरअतिचार पाले सो 'चारित्र सम्पन्न' २४ क्षमावन्त, २५ सदैव वैरागयवन्त, २६ क्षुधा तृषा शीत ताप रोगादि प्राप्त हुए घवरावे नहीं, कर्म निर्जरा का कारन सहज ही प्राप्त हुआ जान सम भाव से सहे. सो 'वेदनीय सम अहीया सनीया' और २७ आयुष्य को पूर्णता नजदीक आये तथा मरणान्तिक कष्ट प्राप्त हुये घवरावे नहीं किन्तु समाधि मरन करे सो 'मरणान्ति सम अहियासनिया ।

"२२ परिषह"

१ 'क्षुधा परिषह'—सदैव उदयभाव में आता हुआ और जिस का जय होना दुष्कर ऐसा क्षुधा वेदनी कर्म है. उसकी शान्ति के लिये भिक्षाटन करते कदाचित निर्दोष आहार का जोग नही वने तो पचनादि क्रिया करना तो दूर रहा किन्तु सचित्त सदोष आहार भोगवने की इच्छा मात्र नहीं करे. आहार किये बाद तृषा लगती है इस लिये तृषा परिषह धोवन उष्णादि अचित्त जल की [illegible] करते कदाचित प्राप्त न हो तो सजीव पानी पीने की इच्छा मात्र नहीं करे, ३ क्षुधा तृषा से कृषित

* प्रतिक्रमण करने के लिये किसी भी प्रकार की असज्झाइ नहीं मानी जाती है [illegible] दोनों वक्त भी दो प्रहर से अधिक निद्रा नहीं लेना चाहिये ।

शरीर को ठण्ड अधिक लगती है इसलिये 'शीत परिषह'—शीतल पवनादिसे प्रेरित हुआ साधु दशों ही दिशा में रहे छः काय जीवों की घातक अग्नि से शरीर तपाने की इच्छा करना तो दूर रहा किन्तु मर्यादा उपरान्त या सदोष वस्त्र धारन करने की भी इच्छा नहीं करे. ४ शीतकाल के बाद उष्ण काल आता है इस लिये 'उष्ण परिषह'—धूपादि की गरमी से व्याकुल बना साधु स्नान करने की तथा पंखादि से हवा करने की अभिलाषा नहीं करे. ५ उष्णकाल बाद वर्षाकाल आता है जिसमें क्षुद्र प्रानी की उत्पत्ति अधिक होती है इस लिये 'दंश मच्छर परिषह' डांस मच्छर मत्कुणादि के दंश से घबरा कर उन को अन्तराय नहीं करें किन्तु सम भाव से सहे. ६ डांस मच्छर के रक्षणार्थ वस्त्र की जरूरत होती है इस लिये 'अचेल परिषह' पास के वस्त्र जीर्ण होगये, चोरादि हरन कर गये हों और याचना करते वस्त्र प्राप्त न हों तो सदोष वस्त्र ग्रहन नहीं करे तथा वस्त्र के लिये दीनता भी नहीं करे, ७ वस्त्र नहीं मिलने से अरति (चिन्ता) उत्पन्न होवे इसलिये "अरति" परिषह, नर्कतिर्यंच, दरिद्री मनुष्यादि के हाल स्मरण से या दशावलोकन से, कदाचित आहार पानी वस्त्र न मिले तो भी सन्तोष धारन करना चाहिये किन्तु चिन्ता नहीं करना. ८ चिन्ता, ग्रहस्थ होने से स्त्री का स्मरण हो आवे इसलिये 'स्त्री परिषह'- स्त्री को संसार के दुःखों में डालने वाली कर्दम समान व दुःख का मूल जान स्त्री के हाव भाव से मोहित नहीं होना, कोई दुष्टा ललचावे तो ठगाना नहीं * ९ स्त्री आदि के फन्दे से बचने के लिये

---

* समाए पेहाए परिव्वयंतो । सियामणो निस्सरई बहिद्धा ॥ नसामहं नोवि अहंपि । इच्चेवताओ विणइज्ज रागं ॥४॥ आयावया ही चय सोगमल्लं, कामे कमाइ कमियंखु दुक्खं ॥ छिंदाही दोसं विणइज्जरागं ॥ एवं सुही होही सो सम्पराय ॥ ५ ॥

अर्थ—स्त्री आदि अवलोकन कर कदाचित् संयमघर से मन बाहिर जावे तो विचार करे कि—यह स्त्री आदि मेरे नहीं है और मैं इनका नहीं हूं नाहक इच्छा कर क्यों कर्म बन्धन में रखता हूं, यदि ऐसे विचार से भी मन नहीं पलटे तो शीतकाल में ठण्ड की उष्णकाल

उग्र विहारी होना इसलिये 'चरिया परिषह' वृद्धावस्था रोगादि के कारन से तथा उनकी सेवा में और ज्ञानादि गुनकी वृद्धी के कारन सिवाय आठ महीने में आठ और चौमासा का एक यों १२ महीने में ९ विहार तो हुये होने ही चाहिये रास्ते में कथन शीत तापादि तरह २ के कष्ट होते हैं उनसे घबराकर एक स्थान में रहनां नहीं चाहिये. १० चलते २ बैठना पडे इसलिये 'निसीया परिषह' विश्रान्तका स्थान ऊंचा नीचा सम विषम शीत ताप कंकर कंटक वाला होतो वहां राग द्वेष नहीं करना, वृक्षादि के नीचे बैठे उसके छेदनादि का विचार नहीं करना. ११ रात्रि आदि विश्रास के लिये मकान की जरूरत पडे इसलिये 'शैय्या परिषह' एक रात्री से लगा चातुर्मास पर्यन्त रहने के लिये मकान मनोज्ञ अमनोज्ञ मिलने से राग द्वेष नहीं करे. शीत ताप से बचनेको या शोभा निमित टूटा फूटा सम विसम करनेको आरंभ की इच्छा मात्र करे नहीं. १२ एक स्थान रहने से कदाचित गृहस्थादि कोपित हो कुवचन कहे इसलिये 'अक्रोश परिषह' साधु के गुनों का द्वेषी बना हुआ द्वेष से छेड़ा कर या क्रिया से कटुपना धारन कर कोई गाली दे चोर जार ठगादि कहे झूंठे कलंक चढावे इत्यादि अक्रोसित वचन सुन साधु समता धारन करे किन्तु उस अज्ञानी की बराबरी नहीं करे. अर्थात उसे कठिन वचन नहीं कहे. १३ उसको जबाब नहीं देने से वह विशेष कोपित हो कदाचि मार देवे इसलिये 'वध परिषह' अंगुली से तर्जना करे लातादि से प्रहार करे शरीर का छेदन भेदन करे तो उसे निर्जरा का कारन जान

में बुद्र की पर्यालोच से नष्टकर मनुष्य की आराधना से, दस्व दूर रख ऐसे खान में रह कर ध्यान धरे, कुल सेवोदा पना छकुमालपना छोड़े, काम भोग की चाहाई 'छिन्दा छिंद दुक्ख' दुःख स्वरूप और ज्ञानोपशम पर्यन्त दुःखदाता जान राग भावसे निवृति पावे तो ही संयमें सुखी होवे ।

* गाथा—दुरसढ़ा जत्तो कामो । नारा सस्काए कामए ॥ ददु परसर पावं । माया सात्विक दुक्ख ॥

अर्थ—अपनी वडः महिमा पूजा के इच्छुक साधु माया सत्य-गणा कपट आदि अनेक पाप को उत्पन्न करने वाले होते हैं ।

नर्कादि का दुःख स्मरन कर सम भाव से सहे. १४ मार से पीड़ित शरीर की औषधी कर सुधारना पड़े इसकी याचना करना पड़े इसलिये 'याचना परिषह' मैं बड़े घर का हूं, मैं स्वयं दान पुण्य करने वाला हूं, मैं किस प्रकार मांगु, इस प्रकार अभीलाख नहीं करे. किन्तु 'याचीया जीवे अनगारा' साधु का काम तो याचना करने सेही चलता है ऐसे विचार से निःसङ्कित पने निर्दोष वस्तु याचे. १५ याचना करते नहीं मिले इसलिये 'अलाभ परिषह'—'इच्छाहि दुग्धकी मिले तक' इस प्रकार विपरीत वस्तु मिलने से तथा प्रत्यक्ष ग्रहस्थ के घर में वस्तु दीख रही है और वह देने को मना कर देतो खेदित कोपित नहीं होवे. 'कभी घी घने, कभी मुट्ठी चने कभी वे भी मने' जैसा वक्त गुजरे उसमें सन्तोष माने, सहजही तप हुआ जाण सन्तोष करे. १६ विपरीत वस्तु की प्राप्ती से रोगोत्पत्ती हो जावे इसलिये 'रोग परिषह' वात पित्त कफादि के प्रयोगसे ज्वरादि रोगोद्भव होनेसे घबरावे नहीं सचित्र औषधोपचार करने की इच्छामात्र करे नहीं किन्तु नर्कतिर्यंच की वेदना का स्मरन कर कर्म निर्जरा का कारन जान सम भाव रखे. १७ रोगादि से दुर्बल बने शरीर को तृण (पराल) के बिछौने की जरूरत हो इसलिये 'तृण स्पर्श परिषह' गद्दी तकिये आदि सुकुमाल शैय्या के त्यागी साधु गेहूं शाल कोद्रवादि के पराल (घांस) की शैय्या में सयन करने से वा तृणादि शरीर खुंचे तो गद्दी आदि का स्मरण न करे. खेदित नहीं पने. १८ तृण शैय्या भूमी शैय्या पर रहने से शरीर मैलादि युक्त होवे इसलिये 'जल मैल परिषह' मैल से मलीन बना स्वेद झरते शरीर को देख घृणा नहीं करे स्नान करने की अभिलाषा नहीं करे. १९ मैल से मलीन वस्त्र परखादि देख कोई सत्कार नहीं करे इसलिये 'सत्कार पुरस्कार परिषह' जगत् पूज्य साधु को यदि कोई अभ्युत्थानादि (खडा होना आदि) नहीं करे वंदना नमस्कार नहीं करे तो साधु खेदित नहीं पने क्योंकि लाभ वंदना करने वाले को होताहै न कि कराने वाले को यों विचार समभाव रखे. २० सत्कार सन्मान ज्ञानी (पण्डित) का होता है इसलिये 'प्रज्ञा परिषह' ज्ञानी गुनी जान वन

से ज्ञानादि गुन प्राप्त करने के इच्छक लोग आकर कोई वांचना मांगे, कोई प्रश्न पृच्छा करे, कोई परियटन कर सुनाना चहावे तब घबरा कर ऐसा विचार न करे "खर घुघु मूर्ख नरा, सदा सुखी पृथीराज" अर्थात् जो मूर्ख—बिना पढे हैं वे ही सुखी हैं. २१ ज्ञान का प्रतिपक्षी अज्ञान है इसलिये 'अज्ञान परिषह' ज्ञानी का महात्म देख, अपने को प्रश्नोत्तर नहीं आया देख या किसी के मूर्खा—भोळादि शब्द सुन ऐसा विचार नहीं करे कि मैं इस प्रकार कष्ट उठा रहा हूं अम्बिलादि तप कर रहा हूं तो भी मुझे ज्ञान नहीं आता है. मेरा जन्म व्यर्थ है. किन्तु यों सोचे की यदि मैं अन्य को नहीं तार सकुं तो मेरी आत्मा को तो तार सकूंगा भगवन ने सो आठ प्रवचन (सुमति गुप्ति) के ज्ञाता जघन्य ज्ञानी को भी आराधक कहा है. और २२ अज्ञान से दर्शन सम्यक्त्व में शंकादि दोषोत्पत्ती होती इस लिये 'दंसण परिसह'—इतने वर्ष से यम तपादि का कष्ट उठाते हुए न तो कोई लब्धि प्राप्त हुई. न कोई देवादि के दर्शन हुये इसलिये करणी का फल है या नहीं. नर्क स्वर्ग है या नहीं. इस प्रकार विकल्प—विचार कदापि न करना 'माली सींचे सो घड़े, "किन्तु ऋतु आये फल होय." करणी का फल अवश्य प्राप्त होगा नर्क स्वर्गादि जो जो केवल ज्ञानी ने जिस २ प्रकार कथन किया उस२ प्रकार सब हैं. ऐसे आस्तिक रहना. इस प्रकार २२ ही परिषह को जो समभाव से सहते हैं. वेही साधु होते हैं.

५२ अनाचीर्ण ।

आहार वस्त्र पात्र स्थानक साधू के निमित्त बनाया हो उसे ग्रहन नहीं करे, २ कोई वस्तू साधू के लिये खरीद कर दे उसे लेवे नहीं, ३ घरादिक से स्थानकादि में सन्मुख लाकर साधू को दे सो लेवे नहीं. ४ सदैव एक घर से आहार ग्रहन करे नहीं. ५ अन्न पानी मेवा पकान मुखवास सुंघने की तम्बाखु आदि कुछ भी रात्रि को भोगे नहीं. ६ स्नान मंजन करे नहीं, ७ अतर पुष्पादि सुंघे नहीं. ८ फूल के हार

गजरे आदि पहिने नहीं, ९ पंखे से वस्त्रपट्टी आदि से हवा करे नहीं, १० उक्त चारों आहार तम्बाखू आदि रात्रि को पास रखे नहीं, ११ ताम्बे पीतल आदि के धातु पात्र में भोजन करे नहीं. १२ मांस मदिरादि तथा नशे के पदार्थ इत्यादि कामोत्तजक राजपिण्ड आहार करे नहीं, १३ सत्तूकार—दानशाला का आहार लेवे नहीं, १४ तेलादि का मर्दन विना कारन शरीर के करे नहीं १५ अश्वगजादि चरते रथ संकटादि फिरते जहाजादि तिरते वाहन *(सवारी) पर बैठे नहीं १६ गृहस्थ की सुख साता पूंछे नहीं, १७ कांच तेल पानी प्रमुख में अपना प्रतिबिम्ब (मुखादि) देखे नहीं,१८ चौपड़ पत्ते गंजफे इत्यादि खेले नहीं, १९ अष्टांग निमित्त प्रकाशे नहीं, २० छत्री छत्र धारन करे नहीं, २१ वैद्यकी औषधोपचार नहीं करे, २२ मोजे जूते खड़ावें आदि पहने नहीं, २३ अग्नि का संघटा नहीं करे, २४ जिसकी आज्ञा ग्रहण कर मकान में उतरे हों उस शैयान्तर के घरका अहार आदि भोगवे नहीं: २५ पलंग चारपाई (खाट) कुरसी इत्यादि सूत सन से बुने आसन पर बैठे नहीं, + २६ रोगी तपस्वी और वृद्ध साधू सिवाय गृहस्थ के घर बैठे नहीं, २७ लोद्रादि की पीठी उवटने मेंहदी आदि शरीर में लगावे नहीं, २८ न तो आप गृहस्थ की चाकरी (वैयावच्च) करे और न गृहस्थ के पास से करावें २९ गृहस्थ से जाति सम्बन्ध मिला कर आहार पानी आदि ग्रहण करे नहीं, ३० पृथ्वी पानी बनस्पति शस्त्र प्रणित हो अचित्त हुए विना भोगे नहीं, ३१ दुःख परिषह से घबरा कर गृहस्थ के शरण (आश्रय) की इच्छा भी नहीं करे ३२—४० मूला—अदरख,× ईख के टुकड़े, सजीव फल, संचल नमक खारी

* विशेष कारण उत्पन्न हुये दो कोस के अन्दर नावा में बैठ सकते हैं + सुनी हुई सन की डोरी में छिप कर रहे मत्कुणादि जीवों की प्रतिलेखना नहीं होने से वे दब कर मर जाते हैं,

× ईख (सांठे) के टुकड़े जिसमें गांठ नहीं हो वह कारन से ले सकते हैं

नजक, सेंधा निमक, आगर का निमक समुद्र का निमक * सचित्त भोगे नहीं. ४१ वस्त्रादि को सेलारस दशाङ्ग पचांग आदि धूप (धूनी) नहीं दे, ४२ मस्तक दाढी मूंछ के सिवाय अन्य स्थान के बालों का लोच नहीं करे. ४३ गुप्त स्थान (पुरुष चिन्हादि) को संभाले नहीं. ४४ रेच—दस्त लगने (जुलाब) की औषधि विना कारण ग्रहण करे नहीं. ४५ काजल सुरमादि विना कारण आंखों में डाले नहीं. ४६ दांतन राख मिस्सी आदि से दांत घर्षन करे नहीं, ४७ कसरत कुस्ती आदि व्यायाम नहीं करे, ४८ सुरणादि सचित्त कन्द का भक्षन नहीं करे. ४९ सजीव बीज कच्चा धान्यादि का भक्षन नहीं करे ५० औषधि से या अंगुली डाल कर वमन नहीं करे. ५१ शृंगारादि सज शरीर की विभूषा नहीं करे और ५२ दांतों के रंग नहीं चढावे इन ५२ अनाचीर्ण को त्यागे उसको ही साधु कहना.

"२० असमाधी दोष"

१ बहुत शीघ्रता से गमन करे तो, २ दृष्ट (देखे) विना या रजोहरणादि से प्रमार्जन किये विना चले तो, ३ प्रमार्जन करे अन्य स्थान और गमन करे अन्य स्थान तो, ४ शयन करने के पाट बैठने के छोटे पाट अधिक भोगे तो, ५ गुरू आदि जेष्ठ जनों के सन्मुख बोले (अमर्यादित उत्तर दे) तो, ६ वयस्थविर दीक्षास्थविर इत्यादि जेष्टादि की मृत्यु इच्छे तो, ७ सत्व प्राण—बेन्द्रि आदि, भूत वनस्पति, जीव पचेन्द्रि और स्तव-मट्टी पानी अग्नि वायु की मृत्यु चाहे तो, ८ क्षण २ में (जरा २ में) क्रोध करे तो, ९ किसी के पीछे अवर्णवाद बोले-निन्दा करे तो, १० अमुक करूंगा जाऊंगा आऊंगा इत्यादि निश्चय की भाषा वारम्बार बोले तो, ११ नया झगड़ा खड़ा करे तो, १२ क्षमत क्षमापना कर मिटे

* उक्त निमक अग्नि आदि प्रयोग से अचित्त बना हो तो साधु के काम में आ सकता है, सचित्त निमक डालकर चूर्णादि बनाया हो और उसमें पानी रसादिका प्रयोग नहीं हुआ हो तो वह वर्षादि हुए बाद साधु के काम में आ सकता है।

झगड़े को पीछा छेड़े तो, १३ चौंतीस असज्झाइ में सज्झाय करे तो, १४ सचित रज—रास्ते की धूल से भरे हुये पैरों को रजोहरणादि से प्रमार्जन किये बिना आसन पर बैठे तो, १५ पहर रात्रि गये बाद दिवसोदय हो वहां तक बुलन्द आवाज से बोले तो, १६ आत्मघात हो जाय ऐसा क्लेश करे तो, १७ जीव दुखे ऐसा कटुक बचन बोले तो, १८ आप चिन्ता फिकर करे दूसरे को करावे तो, १९ नौकरसी आदि तप नहीं करता हुआ प्रातःकाल से सन्ध्या काल तक ला ला कर खावे तो, और २० एषना (चौकस) किये बिना आहार पानी आदि वस्तु ले तो, इन २० काम से असमाधि दोष लगता है, जैसे बीमारी से शरीर निर्बल बन जाता है तैसे इन २० दोषों के सेवन से संयम निर्बल होता है.

"२१ सबल (बड़े) दोष"

१ हस्त कर्म करे तो, २ मैथुन सेवे तो, ३ असनादि चारों आहार रात्रि को भोगवे तो, ४ साधु के लिये बनाया ऐसा आधा कर्मी आहार भोगवे तो, ५ राजपिंड आहार (मदिरा मांस आदि) भोगवे तो, ६ साधु के लिये मोल लेकर दे सो 'क्रीत गड' दोष उधारा लेकर दे सो 'पामीच' दोष, निर्बल से छीन कर दे सो 'अछिज्ज' दोष, मालक की आज्ञा बिना दे सो 'अनिसिट्ठ' दोष. सन्मुख ला दे सो 'अभीहड' दोष इन पांच दोषों वाला आहार आदि भोगवे तो, ७ नियम प्रत्याख्यान का वारम्वार भङ्ग करे तो, ८ दीक्षा लिये बाद छै महीने पहिले बिना कारण दूसरी सम्प्रदाय में जाय तो. ९ बडी नदीयों में एक महीने में तीन वक्त उतरे तो. १० कपट एक महीने में तीन वक्त करे तो, ११ जिस मकान में रहे उसकी आज्ञा देने वाले शैयान्तर का आहार आदि भोगवे तो. १२—१४ हिंसा झूट, चोरी, आकूटी (जानकर) करे तो, १५ सचित्त पृथ्वी काय (मट्टी) पर बैठे तो. १६ निमकादि की सजीव धूल से भरे पाट पाटला में ले तो. १७ जिसमें कीड़े पड़े हों ऐसे सड़े पाट पाटला ले तो. १८ कन्द, जड़ी, स्कन्ध-

थुड, शाखा-डाली, प्रति शाखा-छोटी डाली, त्वचा-छाल, प्रवाल-कुंपल, पत्ते, फूल, फल और बीज. यह १० प्रकार की वनस्पति कच्ची भोगवे तो, १९ बड़ी नदीयों एक वर्ष में १० वक्त उतरे तो. २० कपट एक वर्ष में १० वक्त करे तो और मट्टी पाणी हरी आदि किसी भी सजीव वस्तु से भरे हुए वर्तन से आहार पानी आदि ग्रहण करे तो. यह २१ काम करने से सबल दोष लगता है. जैसे निर्बल मनुष्य पर पहाड़ टूट पड़ने से उस की मृत्यु होती है तैसे इन २१ काम करने से संयम की घात होजाती है। *

३२ योग संग्रह।

१ शिष्य स्वयंकृत दोष गुरु से कहदे, २ गुरु शिष्य के दोष को किसी के आगे कहे नहीं. ३ धर्म को कष्ट पड़े भी छोड़े नहीं, ४ इस लोक में महिम पूजा और परलोक में देवेन्द्रादि की ऋद्धी प्राप्त होने की इच्छा से तपश्चर्या करे नहीं, ५ ज्ञान के लाभ की शिक्षा को असेवना और आचार के लाभ की शिक्षा को ग्रहना शिक्षा कहते हैं दोनों प्रकार की शिक्षा कोई दे तो हित कर्त्ता जान अंगीकार करे, ६ शृंगारादिक से शरीर की शोभा करे नहीं, ७ गृहस्थ को मालूम नहीं पड़े इस प्रकार गुप्त तप करे तथा किसी वस्तु का लालच नहीं करे, ८ जिन २ कुलों में से भिक्षा ग्रहन करने की भगवान ने आज्ञा दी है उन २ सब कुलों में भिक्षार्थ जावे किन्तु एक ही जाति का प्रति बन्धी नहीं होवे. ९ उत्सहा युक्त परिषह सहे किन्तु क्रोध नहीं करे. १० निष्कपट वृती सदैव रखे, ११ आत्म दमन सदैव करता रहे. १२ समकित शुद्ध—निर्मल रखे, १३ चित्त को स्थिर रखे, १४ ज्ञानादि पंचाचार की यथा शक्त वृद्धी करता रहे. १५ विनय नम्रता वाली प्रवृती सदैव रखे, १६ तप जप क्रिया अनुष्टान में वल वीर्य फोडता रहे. १७ वैराग्य वृती सदैव रखे. १८ ज्ञानादि आत्मा के गुनों को निधान (खजाना) की तरह बन्दोवस्त से रखे. १९ आचार में पासत्था

* २० असमाधि दोष और २१ सबल दोषों का कथन श्री दशा श्रुत स्कन्ध शास्त्र में, समवायांग आदि सूत्रों में है।

(स्थिल-ढीला) परिणाम नहीं करे. २० उपदेश और प्रवृती द्वारा संवर-धर्म की पुष्टी करता रहे. २१ अपनी आत्मा के दुर्गुनों को निकालने का पयत्न सदैव करता रहे. २२ शब्द और रूप यह दो काम, गंध रस और स्पर्श्य यह ३ भोग इनका संयोग प्राप्त हुये उनमें लुब्ध बने नहीं. २३ नियम अभिग्रह त्याग इत्यादि की यथा शक्ति वृद्धी करता रहे. २४ वस्त्र पात्र शास्त्र शिष्य इत्यादि उपाधी का अभिमान करे नहीं. २५ जाति आदि का-मद, इन्द्रियों की विषय, क्रोधादि कषाय, निद्रा तथा निन्दा और विकथा इन पांचों प्रमाद को छोडे. २६ थोड़ा बोले और जिस काल में जो क्रिया करने की है वह करता रहे. २७ आर्त और रौद्र ध्यान छोड़, धर्म और शुक्ल ध्यान ध्यावे. २८ मनादि त्रियोगों की सदैव शुभ कार्य में प्रवृती करे. २९ मरणांतिक दुख व वेदना प्राप्त हुये परिणाम स्थिर रखे. ३० कर्म बन्धक सर्व काम का परित्याग करे. ३१ आयु का अन्त नजदीक आया जान कर स्मृती में रहे सब पापों को गुरू के आगे कह दे, कुकर्म किये जिसकी निन्दा करे. इस प्रकार आलोचना निन्दना कर निशल्य बने और ३२ फिर जावज्जीव पर्यन्त चारों आहार का और शरीर की ममत्व का त्याग कर संथारा करे समाधी से देहोत्सर्ग करे. इन ३२ ही हित शिक्षा यों को योगी अपने २ हृदय कोश में संग्रह कर रखे. समानुसार यथा शक्ति इनमें प्रवृती भी करता रहे।

☞ शास्त्र में उक्त गुनों सिवाय और भी साधुओं के गुनों का कथन किया है, किन्तु ग्रन्थ गौरव के भय से यहां इतने ही लिखे हैं. शास्त्र कथित सब गुन को जो पालन करते हैं वे 'यथाख्यात' चारित्र पालने वाले कहे जाते हैं. यह चारित्र इस काल में नहीं है. इस वक्त तो सामायिक और छेदोपस्थानीय यह दोनों चारित्र पाते हैं इस लिये सम्पूर्ण गुन का प्रस्तान अवलोकन कर इस काल में कोई साधु ही नहीं है ऐसा विचार कदापि नहीं करना, पंचम आरे के अन्त तक चारों ही संघ कायम और

दायम बना रहेगा. श्रद्धा को शुद्ध और निश्चल रखने के लिये भगवती सूत्र कथित निम्नोक्त ५ प्रकार के निग्रन्थ के गुन की ओर दृष्टि रखना चाहिये.

५ प्रकार नियंठे (निग्रन्थ)

जिन्होंने द्रव्य से ममत्व की ग्रन्थी का और भाव से कर्मों की ग्रन्थी का छेदन किया सो निग्रन्थ कहे जाते हैं. किन्तु चारित्र मोहनीय के उदय से उनमें भेद हो जाने से ५ प्रकार के होते हैं।

१ जैसे खेत में से शाल गो धूमादि के बृक्षों को काट कर पूले बान्ध कर ढेर लगाया उसमें धान्य तो थोड़ा है और कचरा बहुत है. तैसे ही जिस साधु में गुन थोड़े और दुर्गुन अधिक होवें वे 'पुलाक निग्रन्थ' इस के २ प्रकार १ जो तेजोलेश्या की लब्धि (आत्म शक्ति) के धारक साधु संघ की घात धर्म का लोप आदि जबर अपराध करने वाले पर कोपित हो उसे सपरिवार जला डाले सो लब्धि पुलाक, * और २ ज्ञान दर्शन चारित्र की विराधना करे सो 'असेवना पुलाक' (ऐसे साधु इस काल में नहीं हैं)।

२ जैसे उक्त प्रकार के पूलों में से घास निकाल कर ऊंबीयों का ढेर किया उसमें से यदि बहुत कचरा कम होगया तथापि धान्य से कचरा अधिक हैं तैसे गुणों व गुण के धारक हों वे ' बुक निग्रन्थ ' इनके दो प्रकार -१ मर्यादा सो अधिक वस्त्र पात्र रखें, क्षारादि कर उसे धोवें सो "उपकर वुकस" और २ हस्त पादादि प्रक्षालें शरीर की वस्त्रादि से विभूषा करें सो 'शरीर वुकस' किन्तु यह कर्म क्षय करने को उद्यमी रहते हैं ।

३ जैसे उक्त प्रकार की ऊंबीयों में का मट्टी कचरा निकालने को बैलों के पैरों से रुंदा कर दाने अलग कर उसकी रासी करे उसमें सरासरी दाने कचरा समान होता है तैसे गुणों व गुण की समानता के धारक जो

* तेजो लेश्य की प्रभाव से १६॥ देश तथा चक्रवर्ती की सेना को भी भस्म कर डालते हैं।

होवें वे 'कुशील निग्रन्थ'—इसके दो प्रकार—१ जो निर्दोष संयम का पालन करें, यथा शक्ति तप जपादि भी करें. ज्ञान दर्शन चारित्र के अतिचारों का सेवन करते हैं. और प्रायश्चितसे शुद्ध होते हैं. इस प्रकार गड बड रखें सो 'प्रति सेवना कुशील और २ कटुक बचन श्रवन कर क्रोधित बन जावे, ज्ञान तपादि की महिमा सुन अभिमानी बन जावे. क्रिया में और वादीयों के पराजय में माया भी सेवन कर लेवें, शिष्य सूत्रादि का लोभ भी कर लेवें, और पीछा पश्चाताप करें कषाय का उपशम करें, इस प्रकार संज्वल का कषाय का उदय पावें सो कषाय कुशील ×

४ जैसे उस धान्य की राशी को हवा में उफानने से सब कचरा मट्टी आदि दूर हो जावे किंचित कङ्करादि रहजावे उसमें दाने बहुत और यत्किञ्चित अवगुन पावे सो 'निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थ' इनके दो प्रकार—१ मूल गुन उत्तर गुन में किञ्चित दोष नहीं लगावे, क्रोधादि कषाय का क्षय तो किया है किन्तु किञ्चित लोभोदय रह गया है. इसे रक्षा से ढकी हुई अग्नि की तरह उपशमावे सो उपशम कषायी और २ पानी से शीतल कीये अङ्गार के जैसे क्षय करे सो क्षीण कषायी।

५ जैसे उस धान्य के कङ्करादि सब निकाल कर पानी से धोकर साफ कर इस प्रकार सर्वथा प्रकार से जो शुद्ध हों सो 'स्नातक निग्रन्थ चारों घन घातिक कर्मों का नाश कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त हुए इनके दो प्रकार मन वचन काया के योग युक्त शुक्ल ध्यान के तृतीय भेदालम्बी सो "सयोगी केवली" और दो योग रहित शुक्ल ध्यान चतुर्थ भेदावलम्बी पांच लघु अक्षर के (अ-इ-उ-ऋ-लृ) के उच्चार में जितना समय लगता है उतने में मोक्ष प्राप्त करने वाले सो 'अजोगी केवली,

☞ उक्त ५ प्रकार के निग्रन्थों में से इस पंचम आरे में दूसरे तीसरे निग्रन्थ हो पाते हैं इस कथन को सम्यक् प्रकार ध्यान में लेकर

× प्रथम जैन तत्व प्रकाश में ६ निग्रन्थ छपे हैं सो प्रकरण संग्रह ग्रन्थ से लिखे हैं किन्तु भगवती सूत्र में ५ ही हैं।

साधू की हीनाधिक क्रिया को अवलोककर पक्षपात में नहीं पड़ना, रागद्वेष की वृद्धी नहीं करना. जिस प्रकार एक रुपये का भी हीरा होता है और लक्ष रुपये की कीमत का भी हीरा होता है, उसे हीरा ही कहते हैं किन्तू कांच नहीं कहते हैं उसही प्रकार की साधु भी कोई ज्ञान गुन में कोई क्रिया में, कोई तप में कोई वैयावच्च में इत्यादि में न्यूनाधिक होते हैं वे सब ही साधु ही कहे जाते हैं, किन्तु जिन में किञ्चित ही संयम के गुन नहीं हों कांच समान तो वे ही कहे जाते हैं. ऐसे निम्नोक्त पांच प्रकार के साधु ही अवंदनीय हैं.

"५ प्रकार अवंदनीय साधु"

१ पासत्था, २ उसन्ना ३ कुशीलिया, ४ संसत्ता, और ५ अपछन्दा, इस में पासत्था के २ प्रकार—१ ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन तीन मूल गुनों से भृष्ट होवे फक्त बहुरूपिये या नाटककार के जैसा भेष मात्र का धारक हो सो सर्व व्रत पासत्था, और २ लोच नहीं करे १६ दोष सहित आहार भोगवे सो देश व्रत पासत्था २ 'उसन्ना' के २ प्रकार—१ साधु निमित्त बनाये स्थानकपाट आदि भोगवे सो 'सर्व उसन्ना' और २ दोनों समय प्रतिक्रमण-प्रतिलेखन-नहीं करे, भिक्षाचरी नहीं करे, स्वस्थान छोड घरों घर फिरता फिरे, अयोग्यस्थान या गृहस्थ के घर बिना कारन बैठे सो 'देश उसन्ना' ३ 'कुशीलिया' के ३ प्रकार १— ज्ञान के ८ दर्शन के ८ और चारित्र के ८ यों २४ अतिचार जान कर लगावे. तथा ७ प्रकार के कर्म करे—(१) औपधोपचार करे, सौभाग्यार्थ स्त्री को स्नानादि करावे सो 'कौतुक कर्म' (२) व्यन्तर के ज्वरादि के मंत्र यंत्र करे, डोर आदि बान्धे सो 'भूतकर्म' (३) शकुनावली रमलादि प्रयोग से लाभा लाभ कहे प्रश्नोत्तर देवे सो 'प्रश्न कर्म' (४) ज्योतिषादि प्रयोग से भूत भविष्य वर्तमान का कथन कहे सो 'निमित कर्म' (५) जाति, कुल, शिल्प (कला) कर्म, व्यापार और सूत्र यह ७ गुन अपने दूसरों को बता कर

उपजीविका करे सो 'आजीविका कर्म' माया कपट करे, ढोंग करे, मन्त्र शरापादि का डर बता लोगों को डरावे सो 'कल्क कुरुक कर्म ५ स्त्री पुरुष के हस्त पादादि शरीर के लक्षण तिल मसादि व्यंजन के फल बतावे सो 'लक्षण कर्म. यह ७ कर्म करे सो कुशीलया. ४ जैसे गौ महषादिके बारे में अच्छी बुरी वस्तू भेली कर देते हैं तैसे जिसकी आत्मा में गुन अवगुन की गड बड हो अर्थात् देखा देख भेष. धारन कर लिया परन्तु कुछ खबर नहीं. पासत्थादि से हिल मिल रहे सो 'ससक्त.' इसके २ प्रकार -१ क्लेश युक्त परिणामी सो संक्लिष्ट और २ क्लेश रहित परिणामी सो 'असंक्लिष्ट' और ५ जो गुरू की—तीर्थंकर की—शास्त्रकी—आज्ञा का भङ्ग कर स्वेच्छा अनुसार प्रवृती करे, ऋद्धी का रस का साता का गर्व करे. उत्सूत्र की प्ररूपना करे सो 'अपछंप्त'.*

उक्त पांच प्रकार के साधु को वंदना नमस्कार सत्कार सन्मान करना उचित नहीं है. क्योंकि अपने सत्य सनातन धर्म में 'गुन की ही पूजा है निगुनों को माने वह पन्थही दूजा है." इसलिये—

दो० इर्या भाषा एषणा पहचानो आचार। गुनवन्त साधु देख के, वंदो वारंवार॥

साधु की ८४ ओपमा ।

गाथा—उरग गिरी जलण सागर नहतल। तरुगणे समोय जो होइ॥
भमर मिय धरणी जलरुह। रवी पवण समोय सो समणो॥

अर्थ—१ सर्प, २ पर्वत, ३ अग्नि, ४ समुद्र, ५ आकाश, ६ वृक्ष ७

---

* इस वक्त इतनो फाट फूट होन का—सवत्सरी जैसे महापर्वमें भङ्ग पड़ने का—अपने धर्म को लज्जास्पद काम बनने का—कारण मुझे तो मुख्य यही मालुम पड़ता है कि—जराक ज्ञान का क्रिया का वाह्याडम्बरकि का मिथ्याडम्बर अवलोकन कर जो गुरु आदि की आज्ञा का भङ्ग कर स्वछन्दे—स्वछन्दाचारी बने हैं उनको मानना पूजना यही देखाता है, यदि ऐसे निन्हवो को जो सत्कार सन्मान नहीं देवे और जो पं सलु फर्मा हां वो तत्काल स्वस्थान आ आवे. कदाचित् वे नहीं सुधरें तो उनकी आत्मा से हुवे किन्तु धर्म में फूट फजीतां और निन्दनीय कार्य होने का प्रसंग तो न आवे ? पाठको इसको तो लक्ष्यान में लेंगे।

भ्रमर, ८ मृग, ९ पृथ्वी, १० कमल ११ सूर्य, और, १२ वायु इन बारह वस्तु के जैसे साधू होते हैं. प्रत्येक वस्तु के सात २ गुन दर्शा कर सब १२×७=८४ ओपमा साधू की निम्नोक्त प्रकार से हैं.

(१) सर्प समान साधु होवें—१ सर्प के समान अन्य के लिये बनाये मकान में रहे. २ अगंधन कुलोत्पन्न सर्प समान वमन किये विष (भोग) को ग्रहन करें नहीं. ३ सर्प समान (मोक्ष पथ) में सीधा गमन करे, ४ सर्प बिल में सीधा प्रवेश करे त्यों आहार का ग्रास मुंह में इधर उधर नहीं फिराता सीधा कंठ में उतारे. ५ सर्प के समान संसार त्याग रूप उतरी हुई कंचुकी को पुनः धारन करे नहीं. ६ सर्प के समान दोष रुप कङ्कर कांटेसे डरे और ७ जैसे सर्प से लोग डरते हैं. तैसे लब्धी पात्र साधुसे देवादि भीडरते हैं.

(२) पर्वत के समान साधु होवें—१ पर्वत के समान साधु अक्षीण मानसी लब्धी आदि रुप अनेक प्रकार की औषधी—जड़ी बूटी के धारक होते हैं. २ पर्वत के समान परिषह रूप वायु से कम्पायमान नहीं होवें. ३ पर्वत समान पशु पक्षी गरीब श्रीमान सब जीवों का आधार भूत होवे. ४ पर्वत के समान ज्ञानादि नदी को प्रगट करे, ५ मेरू पर्वत के समान सब जीवों में ऊंच गुणों के धारक होवे ६ पर्वत के समान ज्ञानादि गुन रूप रत्नों का खजाना होवे. और ७ पर्वत के समान साधु शिष्य श्रावकादि में खला कूटादि कर शोभनीय होवे.

(३) अग्नि के समान साधु होवे—१ अग्नि के समान ज्ञानादि गुन रूप ईंधन कर तृप्त नहीं होवे. २ अग्नि के समान तप तेज रूप लब्धि कर प्रदीप्त रहे. ३ अग्नि समान कर्म रूप कचरे को जलाये, ४ अग्नि के समान मिथ्यात्व रूप अन्धकार का नाश करे ५ भव्य जीवों रूप सुवर्ण को उपदेश रूप ताप से निर्मल करे. ६ अग्नि समान जीव रूप धातु को कर्म रूप मिट्टी से पृथक् करे, और ७ अग्नि के समान साधु शिष्य श्रावक रूप कच्चे वर्तन को पक्के करे.

(४) समुद्र समान होवे—१ समुद्र के समान गम्भीर होवे, २ समुद्र के समान ज्ञानादि गुन रूप रत्नों का आगार होवे ३ समुद्र समान तीर्थंकरों की बंधी मर्याद का उलंघन नहीं करे, ४ समुद्र के समान उत्पातियादि बुद्धि रूप नदीयों का अपने में समावेश करे. ५ समुद्र समान पाखंडियों रूप मच्छ कच्छादिकों के खलबलाट से क्षोभित नहीं होवे. ६ समुद्र समान कभी झलके नहीं और ७ समुद्र समान साधु का हृदय सदैव निर्मल रहे.

(५) आकाश के समान साधु होवे—१ आकाश के समान साधु का मन सदैव निर्मल रहे. २ आकाश के समान गृहस्थादि के आश्रय रहित रहे. ३ आकाश के समान ज्ञानादि नव गुणों का भाजन होवे, ४ आकाश के समान-अपमान निन्दा रूप शीत ताप कर कुमलावे नहीं. ५ आकाश के समान बन्दना प्रशंसा रूप वृष्टि से प्रफुल्लित होवे नहीं ६ आकाश समान दोष रूप शस्त्र से चारित्रादि गुन का छेदन नहीं करे और ७ आकाश के समान साधु पंचाचारादि अनन्त गुनों के धारक होवे.

(६) वृक्ष के समान साधु होवे—१ वृक्ष समान साधु स्वयं शीत तापादि परिषह सह कर आश्रित को ही छाया का आश्रय भूत होवे, २ वृक्ष समान सेवा भक्ति पोषन करने वाले को ज्ञानादि गुन रूप फल के दाता होवे. ३ वृक्ष के समान चतुर्गति में भ्रमण करते जीव रूप पन्थी को आधार भूत होवे. ४ वृक्ष समान दुःख निन्दा रूप [illegible] छेदन करने वाले पर रुष्ट होवे नहीं. ५ वृक्ष समान साधु वंदन [illegible] संतुष्ट होवे नहीं. ६ वृक्ष समान साधु ज्ञानादि गुन दे कर [illegible] नहीं, और ७ वृक्ष समान साधु शीत तापादि प्राणान्त क. [illegible] छोडे नहीं.

(७) भ्रमर समान साधु [illegible] न साधु आहारादि ग्रहन करते दातार रूप पुष्प को दुः[illegible] समान गृहस्थ के घर रूप पुष्पों से अप्रतिबन्ध आहार आदि [illegible]. ३ भ्रमर समान साधु

बहुत घरों से थोडा २ आहार आदि ग्रहन करे. ४ भ्रमर समान साधु आहार आदि अधिक प्राप्त हुये संग्रह करे नहीं. ५ भ्रमर समान विना बुलाए अचिन्त भिक्षार्थ ग्रहस्थ के घर जावे. ६ भ्रमर समान निर्दोष आहार रूप केतकी पर तुष्ट रहे और ७ भ्रमर समान साधु गृहस्थार्थ वना आहारादि लेवे ।

मृग समान साधु होवे—१ मृग समान पाप रूप सिंह से डरे, २ मृग समान साधु सदोष सिंह के उलंघन किये आहार को भोगवे नहीं. ३ मृग समान प्रतिबन्ध रूप सिंह से डरता एक स्थान रहे नहीं. ४ मृग समान साधु रोग वृध अवस्थादि कारण से एक स्थान रहे. ५ मृग समान साधु रोग उत्पन्न हुअे औषध करे नहीं (उत्सर्ग मार्ग) ६ मृग समान रोगादि उत्पन्न हुए स्वजनादि का शरण वांछे नहीं, और ७ मृग समान साधु रोगादि कारन से निवृत हो अप्रतिबन्ध विहारी वने.

(९) पृथ्वी समान साधु होवे —१ पृथ्वी समान शीत ताप मलादि समभाव सहे, २ पृथ्वी समान सम्वेग वैरग्यादि रत्न धन धान्य से पूर्ण भरे हैं. ३ पृथ्वी समान ज्ञान धर्म रूप बीजोत्पत्ती के कारन भूत हैं. ४ पृथ्वी समान शरीर की संभारव ममत्व करे नहीं. ५ पृथ्वी समान परिषह देने वाले की किसी के पास पुकार करे नहीं. ६ पृथ्वी समान अन्य के संयोग से उत्पन्न हुए क्लेश रूप कर्दम का नाश करे और ७ पृथ्वी समान साधु सब—प्राण--भूत जीव सत्व को आधार भूत होवे.

१० कमल समान साधु होवे--१ कमल समान कामरूप कर्म भोग रूप पानी से लिप्त नहीं होवे, २ कमल समान उपदेश रूप शीतल सुगन्ध से भव्य पन्थी को शान्ती सुख दाता होवे, पौंडरिक कमल समान वेष रूप कर और यशः रूप सुगन्ध कर शोभित होवे ४ कमल समान साधु उत्तम पुरुष रूप सूर्योदय से विकसित होवे. ५ कमल समान सर्दैव विकसित (खुशी) रहे. ६ कमल समान तीर्थंकर की आज्ञा रूप सूर्य

के सन्मुख रहे. और ७ कमल समान साधुधर्म शुक्ल ध्यान से हृदय शुद्ध रखे ।

(११) सूर्य समान साधु होवे—१ सूर्य समान ज्ञानरूप किरणों से सम्यक्त्व धर्म का प्रकाश करे. २ सूर्य समान साधु भव्य जनों रूप कमल के बन को विकसित करे. ३ सूर्य के समान अनादि मिथ्यात्व रूप अन्धकार को क्षीण करे. ४ सूर्य के समान तप तेज से प्रदीप्त रहे. ५ सूर्य समान साधु अपने गुन रूप तेज से पाषंडी रूप ग्रह नक्षत्र तारा के तेज को छिपावे. ६ सूर्य समान साधु क्रोध रूप अग्नि के तेज का नाश करे और ७ सूर्य समान साधु त्रिरत्न के गुणों रूप सहस्र किरणों से चारों तीर्थ में शोभे.

(१२) वायु समान साधु होवे—१ वायु समान सब स्थान स्वेच्छा-चारी होवे २ वायु समान अप्रतिबन्ध विहारी होवे, ३ वायु समान द्रव्य उपाधि से भाव कषाय से हलका होवे. ४ वायु समान अनेक देशों में विहार करे. ५ वायु समान पुण्य पाप रूप सुभिगन्ध दुर्भिगन्ध का ज्ञान दूसरों को करे ६ वायु के समान साधु किसी के रोके रुके नहीं और ७ वायु समान साधु सम्वेग वैराग्य रूप शीतल लहरों से विषय कषाय रूप ताप का नाश कर शान्ति बरताने वाला होवे ।

और भी साधु की ३२ उपमा ।

१ कांसे के पात्र के समान साधु मोह माया रूप पानी से लिप्त होवे नहीं. २ शंख के समान साधु पर स्नेह रूप रंग लगे नहीं. ३ जीव की गती के समान साधु अप्रतिबन्ध विहारी होवे. ४ सुवर्ण के समान साधु को पाप रूप कीट नहीं लगे. ५ आरीसा (कांच) समान साधु ज्ञान से निजात्म स्वरूपावलोकन करे, ६ काछवे के समान साधु ज्ञान रूप ढाल के तले पांचों अंग (इन्द्रियों) को छिपावे * ७ पद्म कमल के समान काम

* किसी तालाब के निकट के वन में शृंगाल (सियाल) भक्षार्थ बहां निकले हुये

रूप कीचड़ भोग रूप पानी से लिप्त होवे नहीं. ८ आकाश के समान साधु किसी के आश्रय विना रहे. ९ हवा के समान साधु सदैव अप्रतिबंध विहारी होवे. १० चन्द्रमा के समान साधु निर्मल हृदयी शीतल स्वभावी होवे. ११ सूर्य के समान साधु मिथ्यात्व अंधकार का नाश करे. १२ समुद्र के समान साधु अनेक नदीयों के पानी रूप निन्दकों के शुभाशुभ वचन से छलके नहीं. १३ भारण्ड पक्षी के समान साधु द्रव्य मुख से आहारादि ग्रहण करता भाव मुख से दोषादि दुष्ट आते भंडोपकर रूप पांखों को समेट गमन कर जावे. * १४ मेरू पर्वत के समान साधु परिषहोपसर्ग रूप हवासे चलाय मान होवे नहीं. १५ शरद ऋतु के निर्मल पानी समान साधु का हृदय सदैव निर्मल होवे. १६ खड्गी (गेंडे-हस्ति) के समान साधु निश्चय नय रूप एक दन्त शूल से सर्व प्रकार के शत्रुओं का पराजय करे. १७ गन्ध हस्ति के समान साधु परिषह रूप भालों के प्रहार से अधिकाधिक शूर बन कर कर्म

कुर्म-काछवे पर झपटे तब दोनों काछवों ने ढाल के नीचे अङ्ग दबा लिये, शृगाल वृक्ष के आड छिपे बाद उन्हें गये जान एक ने एक पैर बाहिर निकाला कि तत्काल शृंगाल फलांग भर उसके पैर को पकड़ा कि वह भयभीत बन सब अंग छोड़नेसे उसका भक्ष हो गया और दूसरा काछवा सूर्योदय हुआ वहां तक स्थिर रहा शृंगाल गये बाद शीघ्र गति से तलाब में आकर सुखी हुआ। ऐसे ही जो साधु विषयादि के प्रसंग में अपनी एक भी इन्द्रिय को छुट्टी रखते वे स्त्री आदि के चक्र में फस संयम के घातिक बनते हैं और जो साधुआयु पूर्ण हो वहां तक ज्ञान रूपी ढाल के तले अपनी इन्द्रियों को काबू में रखते हैं अखण्ड संयम का पालन कर मोक्ष स्थान को पाते हैं ।

* अढाई द्वीप के बाहिर सदैव आकाश में रहने वाले पराक्रमी भारण्ड पक्षि के दो मुंह और तीन पैर होते हैं जब वह उदर पोषणार्थ जमीन पर आता है तब सब पांखों को फैला कर बैठता है एक मुंह से चारों ओर देखता है और एक मुंह से फलादि खाता है, किसी भी उपद्रव की जरा सी भी शंका पड़ते पांखों समेट उड़ जाता है, ऐसे ही साधु भिक्षार्थ गृहस्थ के घर को गये द्रव्य दृष्टी से आहार आदि का और ज्ञान दृष्टी से दोषों का अवलोकन करते किञ्चित दोष स्थान दृष्टी आते ही उपकरणों समेट चले इसलिये ही उत्तराध्यन सूत्र के चौथे अध्ययन में कहा है कि-"भौरंड पक्खी व चर अप्पमत्तो" भारण्ड पक्षी जैसा अप्रमादी रहे ।

शत्रु का पराजय करे, १८ मारवाड़ के धोरी बैल समान साधु प्राणान्त कष्ट प्राप्त हुऐ भी ग्रहन किये पंच महाव्रत रूप वजन को डाले नहीं. १९ केशरी सिंह के समान साधू पाखण्डियों से डराया डरे नहीं. २० पृथ्वी के समान साधु शीत उष्ण ताड़न तर्जनादि सहे तथा निन्दक पूजक पर सम भाव रखे. २१ घृत सींचा अग्नि के समान सीघे ज्ञानादि गुन से सिंचित हुआ प्रदीप्त रहे. २२ गोशीर्ष चन्दन के समान साधु परिषह उपसर्ग में जलाने वाले या काटने वाले का दुःख सम भाव से सह कर उपदेश सुगन्ध कर उसे तृप्त करे. २३ द्रह के पानी के समान साधु अखूट ज्ञान का धारक होवे. * २४ जमीन में गड़े खूंटे के समान साधु एकान्त मोक्ष मार्ग में ही साधु प्रवेश करे. २५ समुद्र के द्वीप के समान साधु संसार समुद्र में डूबते प्रानी को आधार भूत होवे, २६ पासने (उस्तरे) की धार समान साधु मध्य में आते विघन रूप बालों को छेदन करता शीघ्रता से धर्म पथ में आगे बढे. २७ गृहस्थ के शून्य घर के समान साधु शरीर की सार संभाल नहीं करे. २८ सर्प के समान साधु दोष रूप कांटे से डर कर बचा हुआ रहे. २९ पक्षियों के समान साधु रात्री को चारों आहार बासी अपने पास नहीं रखे. ३० मृग के समान साधु सदैव नये २ स्थानों में रहे और दोष रूप शंकास्थान का विश्वास नहीं करे. ३१ काष्ठ के समान साधु छेदने वाले पूजने वाले शत्रु मित्र पर शम भाव रखे और ३२ स्फटिक रत्न

* द्रहे ४ प्रकार के कहे हैं-१ चूल हिमवन्तादि वर्ष धर पर्वत के पद्मादि द्रह से पानी निकलता है किन्तु उसमें जाता नहीं है। तैसे तीर्थंकरादि कितनेक साधु अन्य को ज्ञान देते हैं किन्तु किसी के पास से ग्रहण नहीं करते हैं। २ समुद्र में नदी आदि का पानी आता है परन्तु उस में से निकलता नहीं है तैसे कितने शिष्य गुरु आदि से ज्ञान ग्रहण करते हैं किन्तु किसी को देते नहीं हैं। ३ गंगा प्रापातादि कुंड में द्रह से पानी आता भी है और नदियों में जाता भी है तैसे गणधरादि कितनेक साधु गुरु आदि से ज्ञान ग्रहण करते भी हैं और शिष्यादि को देते भी हैं और ४ अढ़ाई द्वीप के बाहिर के समुद्रों में पानी न कहीं से आता है और न किसी में जाता है तैसे प्रत्येक बुद्धादि साधु न किसी से ज्ञान ग्रहण करते हैं और न किसी को ज्ञान देते हैं।

के समान साधु बाह्याभ्यन्तर निर्मल कपट क्रिया रहित शुद्ध वृती का दर्शाने वाला निर्मल होवे.

☞ इन सिवाय और भी छिद्र रहित नौका के सम न कनक कामनी रूप छिद्र रहित आप तरे दूसरे को तारे, फलित वृक्ष समान निन्दा रूप पत्थर मारने वाले को भी ज्ञानादि गुन रूप फल दे, कल्प वृक्ष-चिन्तामणि काम कुम्भ-चित्रावेल इत्यादि पदार्थों के समान भव्य भक्तों के मनोर्थ पूर्ण करने वाले होवे इत्यादि अनेक शुभोपम लायक आत्मार्थी ऋक्षवृती क्रिया पात्र धर्म जात्र परम पण्डित धर्म मण्डित शूर-वीर-धीर, शम-दम-खम उपशमवंत अनेक तप के करने वाले, अनेक आसन के साधने वाले, संसार को पृष्ट दे मोक्ष के सन्मुख ऐसे २ अनेकानेक गुणों के धारक साधुजी महाराज को वारम्वार त्रिकरण विशुद्ध नमस्कार होवे.

उपसंहार।

"णमो अरिहंता णं, णमो सिद्धा णं [illegible] आयरिया [illegible] व ज्झाया णं, णमो लोऐ सव्व साहु णं"

अर्थ–१२ गुन धारक घन (नाशक) अरिहन्त भगवन्त को न कारक सिद्ध भगवन्त को नमस्क [illegible] चारय भगवन्त को नमस्कार, भगवन्त को नमस्कार और २७ को नमस्कार. इस प्रकार पांचों १०८ गुनतो बडे २ हैं इसलिये और यह पांचों ही सम्यक-[illegible] होने से माला के शिखर पर कथन इन पांचों प्रकरणों में

जिस प्रकार वेदान्तीयों शिव विष्णवादि शम्प्रदायों में 'गायत्री मंत्र' और इसलाम धर्म में 'कलमा' माननीय है, उससे भी अधिक जैन सम्प्रदाय में उक्त नवकार (नमस्कार) महा मन्त्र माननीय है क्योंकि 'गायत्री' और 'कलमा' तो मतान्तरों से अनेक होगये हैं किन्तु जैनों की सब सम्प्रदाय में 'नवकार महामंत्र' एक ही है, यह ही इसकी अनादि सिद्धता के साबूत होने की एक परमोत्कृष्ट खास न्याय सिद्ध बात है।

अन्तिम मंगला चर्णम्।

(शार्दुल विक्रिडित वृत्तम्)

अरिहन्ता भगवन्त जगत महिता, सिद्धाश्च सिद्ध स्थिता॥
आचार्या जैन साशन उन्नति करा, पुज्या उपाध्याय का॥
श्री सिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्न त्रयराधका॥
पंचै ते प्रमेष्टिनः प्रति दिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥

परम पूज्य न्यायां भो निधी स्याद्वाद दर्शक शुद्ध क्रिया उद्धारक श्री १०८ श्री कहान जी ऋषि जी महाराज की सम्प्रदाय के ज्ञानानिधी क्रियापात्र पूज्य श्री १०८ श्री खूबा ऋषि जी महाराज के शिष्यवर्य आर्य मुनि राज श्री १०८ श्री चैना ऋषि जी महाराज के शिष्य वर्य बाल ब्रह्मचारी पण्डित मुनिवर श्री अमोलक ऋषि जी महाराज विरचित " जैन तत्व प्रकाश " ग्रन्थ

का

॥ पूर्वार्ध प्रथम खण्ड समाप्तम् ॥

के समान साधु वाह्याभ्यन्तर निर्मल कपट क्रिया रहित शुद्ध वृती का दर्शाने वाला निर्मल होवे.

☞ इन सिवाय और भी छिद्र रहित नौका के समन कनक कामनी रूप छिद्र रहित आप तरे दूसरे को तारे, फलित वृक्ष समान निन्दा रूप पत्थर मारने वाले को भी ज्ञानादि गुन रूप फल दे, कल्प वृक्ष-चिन्तामणि काम कुम्भ-चित्रावेल इत्यादि पदार्थों के समान भव्य भक्तों के मनार्थ पूर्ण करने वाले होंवे इत्यादि अनेक शुभोपम लायक आत्मार्थी ऋक्षवृती क्रिया पात्र धर्म जात्र परम पण्डित धर्म माण्डित शूर-वीर-धीर, शम-दम-खम उपशमवंत अनेक तप के करने वाले, अनेक आसन के साधने वाले, संसार को पृष्ट दे मोक्ष के सन्मुख ऐसे २ अनेकानेक गुणों के धारक साधुजी महाराज को बारम्बार त्रिकरण विशुद्ध नमस्कार होवे.

उपसंहार।

"णमो अरिहंता णं, णमो सिद्धा णं, णमो आयरिया णं, णमो उवज्झाया णं, णमो लोए सव्व साहु णं"

अर्थ—१२ गुन धारक घन घातिक कर्म रूप शत्रु के विदारक (नाशक) अरिहन्त भगवन्त को नमस्कार. ८ गुन धारक सकलार्थ सिद्ध कारक सिद्ध भगवन्त को नमस्कार, ३६ गुन धारक धर्म प्रचारक आचारय भगवन्त को नमस्कार, २५ गुन धारक ज्ञान प्रचारक उपाध्याय भगवन्त को नमस्कार और २७ गुन धारक आत्मोद्धारक साधु भगवन्त को नमस्कार. इस प्रकार पांचों ही प्रमष्टि देव के १२+८+३६+२५+२७ १०८ गुनतो बडे २ हैं इसलिये माला (दाने) के मनके भी १०८ ही होते हैं और यह पांचों ही सम्यक-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूप रत्न त्रय के आराधक होने से माला के शिखर पर ३ मन दाने के रखे जाते हैं इसका सविस्तर कथन इन पांचों प्रकरणों में हुआ.

जिस प्रकार वेदान्तीयों शिव विष्णवादि सम्प्रदायों में 'गायत्री मन्त्र' और इसलाम धर्म में 'कलमा' माननीय है, उससे भी अधिक जैन सम्प्रदा में उक्त नवकार (नमस्कार) महा मन्त्र माननीय है क्योंकि 'गायत्री' औ 'कलमा' तो मतान्तरों से अनेक होगये हैं किन्तु जैनों की सब सम्प्रदा में 'नवकार महामंत्र' एक ही है, यह ही इसकी अनादि सिद्धता के सबू होने की एक परमोत्कृष्ट खास न्याय सिद्ध बात है।

अन्तिम मंगला चर्णम्।

(शार्दुल विक्रिडित वृत्तम्)

अरिहन्ता भगवन्त जगत् महिता, सिद्धाश्च सिद्ध स्थिता॥
आचार्या जैन साशन उन्नति करा, पुज्या उपाध्याय का॥
श्री सिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्न त्रयराधका॥
पंचै ते प्रमैष्टिनः प्राति दिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥

परम पूज्य न्यायांभो निधी स्याद्वाद दर्शक शुद्ध क्रिया उद्धारक श्री १०८ श्री कहान जी ऋषि जी महाराज की सम्प्रदाय के ज्ञानानिधी क्रियापात्र पूज्य श्री १०८ श्री खूबा ऋषि जी महाराज के शिष्यवर्य आर्य मुनि राज श्री १०८ श्री चैना ऋषि जी महाराज के शिष्य वर्य बाल ब्रह्मचारी पण्डित मुनिवर श्री अमोलक ऋषि जी महाराज विरचित "जैन तत्व प्रकाश" ग्रन्थ

का

॥ पूर्वार्ध प्रथम खण्ड समाप्तम्॥

ॐ नमः सिद्धं ।

द्वितीय खण्डम्

प्रवेशिका

अत्थ धम्मगइ तच्चं, अणुसुट्ठी सुणहमे ॥

अहो सभ्य गणों ! ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण रूप कही गाथा के पूर्वार्ध करके पंच प्रमेष्टी (अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु) के गुन का कथन प्रथम खण्ड में कहा, अब दूसरे खण्ड में पूर्वोक्त गाथा के ही उत्तरार्ध का जन्म जरा मृत्यु रूप तथा शारीरिक मानसिक दुःखों का समूल नाश कर अनन्त अक्षय अव्याबाध मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त करावे ऐसा यथा तथ्य सत्य मुमुक्ष जीवों के ग्रहण करने योग्य धर्म का कथन करूंगा उसे मन वचन काया के योगों को निश्चल (स्थिर) कर दत्त चित्त से श्रवण व पठन कीजिये ।

धर्म को मुख्यता से दो विभाग में विभाजित किया है यथा—१ सूत्र धर्म और २ चारित्र धर्म. इनकी प्राप्ति मिथ्यात्व की नास्ति और सम्यक्त्व की आस्ति से होती है, इसलिये इस खण्ड के पृथक २ छः प्रकरण में से प्रथम प्रकरण में धर्म की प्राप्ति कितनी दुर्लभ है जिसका कथन दश बोल कर दर्शाया है, दूसरे प्रकरण में सूत्र धर्म नय निक्षेप प्रमाण द्वारा नव तत्व का स्वरूप दर्शाया गया है. तीसरे प्रकरण में मिथ्यात्व के २५ प्रकार का विस्तार से कथन किया है. चौथे प्रकरण में विविध विषयों से सम्यक्त्व की पुष्टी की है. पांचवें प्रकरण में गृहस्थावास में रहकर श्रावक धर्माराधन करने की विविध प्रकार से विधी समझाई है और छट्ठे प्रकरण में अन्तिम आयु सुधार पंडित मृत्यु करने की विधी बताई है।

पुज्य पाद गुरुवर्य के प्रसाद से मुझे प्राप्त हुई प्रशादीका लाभ में अपने प्रिय भ्रातृगणों को देकर अपना ज्ञान दान धर्म बजाने को मैं प्रवृत होताहुं इसमें यदि छद्मस्तासे या श्रुत चूक से जो कोई दोप रह जावे उसको ज्ञानी मक्ष क्षमा चहाता हूं और निवेदन करता हूं कि हंस की तरह गुण ग्राहक बन कर जो पठन करोगे तो अकथ्य आत्मिक सुख का लाभ प्राप्त कर सकोगे।



प्रकरण पहिला धर्म प्राप्ती।

गाथा—लब्भन्ति विउला भोए। लब्भन्ति सुर संपया॥
लब्भन्ति पुत्त मित्तं च। एगो धम्मो दुलब्भइ॥

इस विश्वालय के निवासी सब जीवों एकान्त सुखभिलाषी हैं. यह अभिलाषा को पूर्ण करने को केवल धर्म ही सामर्थ्य है अन्य कोई भी नहीं है जो धर्म सिवाय अन्य सुखाभिलाषा पूर्ण करने को समर्थ होते तो इतने काल से यह जीव दुखी नहीं रहता क्योंकि यह जीव अनन्त काल से संसाराण्य में परिभ्रमण करता हुआ देवता मनुष्य सम्बन्धी रत्नों के घर वस्त्राभूषन देवियों मनुष्यनियों के उत्तम इच्छित भोग सम्पूर्ण पांचों इन्द्रियों के पोषने को सुख सामग्री को अनन्त वक्त भोग आया है तथा स्वजन सम्बन्धियों के संयोग से जो सुख प्राप्त होता हो तो उक्त प्रकार अनन्त संसार के भ्रमण में विश्वालय के सब जीवों के साथ माता, पिता, भ्रात, भगि, स्त्री, पति, पुत्र, पुत्री, काका, बाबा, भतीजा, मामा, भानेज, सासु, सुसर, साला वगैरा जितने प्रकार के नाते हैं वे सब बातें प्रत्येक जीव के साथ अनंतानंत वक्त कर आया है, शास्त्र में कहा है कि:—

गाथा——न सा जाइ न सा जोणी। न तं कुलं न तं ठाणं॥
न जाया न मूवा मत्थ। सव्वे जीवा वि अणंत सो॥

अर्थ—इस विश्वालय में ऐसी कोई जाति योनी कुल और स्थान नहीं है कि जहां यह जीव जन्मा और मरा नहीं हो. अर्थात सर्व स्थान के*भोगो प्रभोग भोग आया सब जीवों के साथ सम्बन्ध कर आया. कितने क वक्त उन स्वजन सुख का वियोग होने से अपने को रुदन

---

* जैसे बंबई देख कर आने वाला कहता है कि मैं सब बंबई देख आया किन्तु सब देखी नहीं जैसे यह व्यवहारिक वचन है तैसे यह भी है क्योंकि अविवहार रासी में से नहीं निकले जीव से यह सम्बन्ध मिलता नहीं है।

करना पड़ा था और कितनेक वक्त अपने वियोग से दुःखित हो उनको रुदन करना पड़ा है. इसलिये निश्चय करो कि कोई सम्बन्धी भी सुख दाता नहीं हैं. उत्तराध्यनजी के अध्याय ६ में कहा है कि:—

गाथा—माया पिया कुसा भाया। भंजा पुत्ताय उरसा॥
नालं ते तव ताणाये। लुप्पती सरस कम्मुणा॥

अर्थात्—हे प्राणी! माता पिता पुत्रबधु भ्राता भार्या पुत्र इत्यादि सम्बन्धी जो सब अपने २ पूराकृत कर्मानुसार फल भोगते हुए दुखित हो रहे हैं वे बेचारे अपने को ही सुखी करने को सामर्थ नहीं हैं तो तुझे सुखी किसप्रकार कर सकेंगे. अर्थात् वे तेरे को तारण (दुःख हरने) शरन (सुख करने) समर्थ नहीं हैं.

उक्त प्रकार ही धन कुटुम्बादि को सुखदाता संसारी जन समज रहे हैं वे अखन्डित सुख दाता नहीं हैं कदाचित् इनके सम्बन्ध से किंचित सुख मान लिया जाता है तो भी उनके नाश से पुनः अधिक दुःख हो जाता है इसलिये वह सुख नहीं समझना किन्तु दुःख वृद्धी ही का साधन है लालाजी रणजीत सिंह जी ने कहा है कि:—

दोहा—चड उत्तंग जहां से पतन। शिखर नहीं वह कूप॥
जिस सुख अन्दर दुःख बसे। वो सुख भी दुःख रूप॥

हे भव्यों! उक्त कथन से तुम्हारे समझ में स्पष्ट आगया होगा कि अपने को अखण्डित सुख का दाता धर्म सिवाय अन्य कोई भी नहीं है. किन्तु जिस प्रकार इस जगत् में किञ्चित व्यवहारिक सुखप्रद गिने जाने वाले सुवर्ण रत्नादि पदार्थ भी बहुत कम दृष्टीगत होते हैं और कष्ट से प्राप्त होते हैं तो अखण्डित अनंत परम सुख दाता धर्म की दुर्लभता का तो कहना ही क्या? (१) *अर्थात् धर्म प्राप्त होना बहुत ही मुश्किल है सो ही आगे बताते हैं.

* Religion what treasures untold Reside in that heavenly word more

धर्म की दुर्लभता।

श्री विवाह प्रज्ञप्ति (भगवतीजी) में तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अन्त में कहा है कि "अइवा अणंत खुत्तो"(२)+ अर्थात् ' अथवा अनन्ती वक्त सब जीव संसार में खुत्ते हैं—परिभ्रमण किया है." इस सूत्र पाठ में

---

precious that silver or gold or all this earth can afford.

अर्थ—धर्म ! इस स्वर्गीय शब्द में कितना जबर और अकथ्य खजाना है यह सोना चांदी और पृथ्वी पर रहे सर्व उतमोत्तम पदार्थों से भी अधिक मूल्यवान है !!

+ हेमाचार्य जी कृत स्याद्वाद मञ्जरी की टीका में लिखा है:—

गाथा—गोलय असंखिज्जा । असंखनिगोय गोलओ भणिओ ॥
इक्किक्क निगोयम्हि । अणंत जीवा मुणयव्वा ॥ १ ॥

अर्थ—निगोद के जीवों के रहने के गोले असंख्यात हैं, एके २ गोले में असंख्यात निगोद के शरीर हैं और एके २ शरीर में निगोद के अनन्त २ जीव हैं।

गाथा—सिज्झति जतिया खलु । इह सं ववहार रासी दो ।
एति अणाइ वणस्सइ । रासी दो तति आ तम्हि ॥ २ ॥

अर्थ—व्यवहार राशी में से जितने जीव मुक्त हो जाते हैं उतने ही जीव अनादी निगोद नामक वनस्पति राशी से निकल कर व्यवहार राशी में आ जाते हैं।

श्लोक—अत एवच विद्वत्सु, मुच्य मानेषु सततम् ।
ब्रह्माण्ड लोक जीवा नाम, नन्त त्वाद शून्यता ॥४॥

अर्थ—इसलिये संसार में से ज्ञानी जीवों की निरन्तर मुक्ति होते भी संसारी जीव राशि अनन्त रूप होने से कभी उसका अन्त नहीं आ सका।

श्लोक—अन्त्य न्यूना तिरिक्त त्वैर्युज्यते परिमाणवत् ।
वस्तू न्य परिमेय तु नुनं ते पाम्म सभमः ॥५॥

अर्थात्—जिस वस्तु का संख्यात रूप परिमाण होता है उसीका किसी समय अनंत आ सकता है तथा कभी समाप्त भी हो जाती है, परन्तु जो वस्तु अपरिमाण होती है उस का न तो कभी अन्त आता है न वो कभी घटती है और न वो कभी समाप्त होती है।।

भगवती जी की टीका में कहा है कि—जिस प्रकार भविष्य काल सब भूति काल में मिलता जाता है तो भी भविष्य काल का अन्त नहीं आता है तैसे ही समय २ सिद्ध होने ...री जीवों का भी अन्त नहीं आता है काल के समान जीव भी अनंत हैं।

धर्म की दुर्लभता।

श्री विवाह प्रज्ञप्ति (भगवतीजी) में तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अन्त में कहा है कि "अदुवा अणंत खुत्तो"(२)+ अर्थात् 'अथवा अनन्ती वक्त सब जीव संसार में खुत्ते हैं—परिभ्रमण किया है." इस सूत्र पाठ में

---

precious that silver or gold or all this earth can afford.

अर्थ—धर्म! इस स्वर्गीय शब्द में कितना जवर और अकथ्य खज़ाना है यह सोना चांदी और पृथ्वी पर रहे सर्व उतमोत्तम पदार्थों से भी अधिक मूल्यवान है !!

+ हेमाचार्य जी कृत स्याद्वाद मञ्जरी की टीका में लिखा है:—

गाथा—गोलय असंखिज्जा। असंखनिगोय गोलओ भणिओ ॥
इक्किक निगोयम्हि। अणंत जीवा मुणयव्वा ॥ १ ॥

अर्थ—निगोद के जीवों के रहने के गोले असंख्यात हैं, एके २ गोले में असंख्यात निगोद के शरीर हैं और एके २ शरीर में निगोद के अनन्त २ जीव हैं।

गाथा—सिज्झंति जतिया खतु। इह सं ववहार रासी दो।
एंति अणाइ वणस्सइ। रासी दो तति आ तम्मि ॥ २ ॥

अर्थ—व्यवहार राशी में से जितने जीव मुक्त हो जाते हैं उतने ही जीव अनादी निगोद नामक वनस्पति राशी से निकल कर व्यवहार राशी में आ जाते हैं।

श्लोक—अत एवच विद्वत्सु, मुच्य मानेषु सततम्।
ब्रह्माण्ड लोक जीवा नाम, नन्त त्वाद शुन्यता ॥४॥

अर्थ—इसलिये संसार में से ज्ञानी जीवों की निरन्तर मुक्ति होते भी संसारी जीव राशि अनन्त रूप होने से कभी उसका अन्त नहीं आ सका।

श्लोक—अन्त्य न्यूना तिरिक्त त्वैर्युज्यते परिमाणवत।
वस्तू न्य परिमेय तु नुनं ते षाम्म सभमः ॥५॥

अर्थात्—जिस वस्तु का संख्यात रूप परिमाण होता है उसीका किसी समय अनंत आ सकता है तथा कभी समाप्त भी हो जाती है, परन्तु जो वस्तु अपरिमाण होती है उस का न तो कभी अन्त आता है न वो कभी घटती है और न वो कभी समाप्त होती है।।

भगवती जी की टीका में कहा है कि-जिस प्रकार भविष्य काल सब भूति काल में मिलता जाता है तो भी भविष्य काल का अन्त नहीं आता है तैसे ही समय २ सिद्ध होते संसारी जीवों का भी अन्त नहीं आता है काल के समान जीव भी अनंत हैं।

और ७ वायु द्वारा पुद्गलों को पुरक (ग्रहण) कुम्भक (स्थिर) रेचक (त्याग) करे सो श्वासोछ्वास. इन सातों ही प्रकार के लोक पूरित सब पुद्गलों का स्पर्शन करे सो द्रव्य से बादर पुद्गल परावर्तन.

२ उक्त सातों ही प्रकार के पुद्गलों में से प्रथम इस जगत् में जितने ओदारिक शरीर के पुद्गल हैं उन को अनुक्रम से स्पर्शे फिर. सब जगत् में रहे वैक्रय पुद्गलों को अनुक्रम से स्पर्शे. फिर सब तेजस शरीर के, फिर, सब कार्मन शरीर के, फिर मन के, फिर बचन के और फिर श्वासोछ्वास के यों सातों ही प्रकार के पुद्गलों को अनुक्रम से एक २ के बाद एक २ स्पर्शे जो. ओदारिक के पुद्गलों को स्पर्शता मध्य में वैक्रय आदि छहों मे से किसी अन्य के पुद्गलों का स्पर्श कर ले तो वे गिनती में नहीं आवे और प्रथम के स्पर्शन किये ओदारिक के पुद्गल भी गिनती में नहीं आवे किन्तु मध्य में अन्य पुद्गलों का स्पर्श नहीं करता क्रम से सातों ही के सम्पूर्ण पुद्गलों का स्पर्श कर छोडे सो द्रव्य से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन.

३ जम्बुद्वीप के सुदर्शन मेरू पर्वत से अलोक तक सब दिशा विदिशा में मध्य में किञ्चित भी अन्तर रहित आकाश प्रदेश की असंख्यात श्रेणी (लाइन) बन्धी है उन सब प्रदेशों को जन्म मृत्यु कर स्पर्शे वालाग्र जितनी भी जगह खाली नहीं छोडे सो क्षेत्र से बादर पुद्गल परावर्तन.

४ उक्त प्रकार की सम्पूर्ण लोक में रही आकाश प्रदेश की श्रेणी में से प्रथम एक श्रेणी ग्रहण कर उस पर मध्य में किञ्चित भी अन्तर नहीं छोडता हुआ मेरू पर्वत के रूचक प्रदेश के पास से अलोक तक क्रम से जन्म मृत्यु कर स्पर्शे फिर दूसरी आकाश श्रेणी निरंतर जन्म मृत्यु कर स्पर्शे फिर तीसरी फिर चौथी यों क्रम से असंख्यात श्रेणी निरन्तर जन्म मृत्यु कर स्पर्शे. जो एक श्रेणी पर जन्म मृत्यु करता मध्य में उस ही प्रदेश पर अन्य स्थान तथा दूसरी अन्य किसी भी श्रेणी पर

जन्म मृत्यु करने लगे तो वह गिनती में नहीं और प्रथम किये वह भी गिनती में नहीं आवे. पीछे प्रथम की श्रेणि से क्रमसे असंख्यातवीं श्रेणी तक जन्म मृत्यु कर स्पर्शे सो क्षेत्र से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन।

*१ समय, २ आवलिका, ३ श्वाशोच्छास, ४ स्तोक, ५ लव, ६ मुहुर्त, ७ अहोरात्री, ८ पक्ष, ९ महीना, १० ऋतु, ११ अयन, १२ सम्वत्सर, १३ युग, १४ पूर्व, १५ पल्य, १६ सागर, १७ सर्पिनी, १८ उत्सर्पिनी, १९ काल चक्र * इन १९ प्रकार के काल को जन्म मृत्यु कर स्पर्शे सो काल से बादर पुद्गल परावर्तन।

६ उक्त १७ प्रकार के काल में से प्रथम सर्पिनी काल बैठे तब उसके प्रथम समय में जन्म के मृत्यु पावे, फिर दूसरी वक्त सर्पिनी काल लगे उसके दूसरे समय में जन्म कर मरे, यों एक आंवलिका काल पूरा न होवे वहां तक सर्पिनी काल के प्रत्येक समय जन्म मरन करे, फिर सर्पिनी के प्रथम आवली में जन्म मरन करे फिर दूसरी आवली में यों श्वाशोच्छास का काल पूरा न होवे वहां तक आवली काल में जन्म मरन करे, फिर सर्पिनी बैठे उसके प्रथम स्तोक में जन्म मृत्यु करे. फिर दूसरे स्तोक में यों मुहूर्त का काल पूर्ण होवे वहां तक जानना. इसही प्रकार उक्त १७ काल को क्रमसे जन्म मृत्यु कर स्पर्शे मध्य के अन्य काल में जन्म मृत्यु करे सो गिनती में नहीं इसे काल से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन कहना।

७ कृष्ण हरित रक्त पित श्वेत यह ५ वर्ण सुभिगन्ध और दुर्भिगन्ध यह दो गन्ध, कटु, मिष्ट, तिक्षा, क्षार और कषायित यह ५ रस. लघु, गुरु, शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, कोमल और कठिन यह ८ स्पर्श इन ५+२+५+८=२० वीस ही तरह के पुद्गलों का स्पर्शन करे सो भाव से बादर पुद्गल परावर्तन।

* इन १९ ही काल का खुलाशा वार कथन प्रथम खण्ड के दूसरे प्रकरण में किया है।

८ उक्त २० ही प्रकार के पुद्गलों में से प्रथम एक गुन कृष्ण पुद्गलों को फिर दो गुन कृष्ण वर्ण पुद्गलों को फिर तीन गुन कृष्ण वर्ण पुद्गलों को यों क्रमशे अनंत गुन कृष्ण वर्ण के पुद्गलों का स्पर्श्य कर फिर एक गुन हरित वर्ण के पुद्गलों का स्पर्श्य करे. क्रमशे प्रथम पांचों वर्ण के फिर दोनों गंध के फिर पाचों रस के और फिर आठों स्पर्श्य के यों २० ही बोल के पुद्गलों स्पर्श्य करे सो भाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन। *

उक्त प्रकार आठों ही पुद्गल परावर्तन मिलने से एक पुद्गल परावर्तन होता है. ऐसे अनंत पुद्गल परावर्त अपने जीवने इस संसार में किये हैं!

अहो भव्यों! उक्त पुद्गल परावर्तन के सूक्ष्म ज्ञान में दीर्घ दृष्टी पूर्वक विचारिये के अपने जीव को संसार में परिभ्रमण करते २ कितना दीर्घ काल व्यतीत होगया! कितने जन्म मृत्यु के अपरमित दुःख सह कर अपना आत्मा पीड़ित हुआ है!! इस प्रकार अनंत पुण्योदय हुए जिसके प्रताप से परिभ्रमण करते २ अनंत दुःख भुक्तते २ अनंत कर्म वर्गना की हानी होनेसे

* द्रव्य क्षेत्र काल भाव की सूक्ष्मता बादरता का दृष्टान्त-१ जैसे कोई महा पराक्रमी मनुष्य पान के ढग में जोर से सुई गढ़ावे वह सुई एक पान को भेद कर दूसरे पान में जावे इतने में असंख्यात समय व्यतीत हो जावें, १ अतएव सबसे सूक्ष्म (छोटा) काल एक अंगुल जितने क्षेत्र में आकाश प्रदेश की असंख्यात श्रेणी हैं उसमें से एक अंगुल लम्बी और एक आकाश प्रदेश जितनी चौड़ी एक श्रेणी ग्रहण कर उसमें से प्रत्येक समय एके २ आकाश प्रदेश निकलते २ असंख्यात काल चक्र व्यतीत हो जाय तो भी वे प्रदेश सब नहीं निकलें इसलिये काल से भी असंख्यात गुना सूक्ष्म (छोटा) क्षेत्र है, ३ उक्त एक ही आकाश प्रदेश पर अनन्त प्रमाणु द्रव्य हैं प्रत्येक समय में एके २ द्रव्य निकालते २ अनन्त काल चक्र के समय व्यतीत होजांय तो भी एक आकाश प्रदेश द्रव्य खूटे नहीं इसलिये क्षेत्र से द्रव्य अनन्त गुना सूक्ष्म, ४ एक आकाश प्रदेश पर के अनन्त द्रव्य में से एक द्रव्य ग्रहण करे उसकी अनन्त पर्यव हैं, जैसे एक प्रमाणु में १ वर्ण १ गन्ध १ रस और १ स्पर्श्य पाते हैं, उसमें के एक वर्ण के अनन्त भेद होते हैं यथा एक गुन कृष्ण यावत् अनन्त गुन कृष्ण ऐसे ही गन्ध रस स्पर्श्य के भी अनन्त भेद जानना ऐसे ही द्वीप्रदेशी स्कन्ध के पुद्गलों में वर्ण २ गंध २ रस और ४ स्पर्श्य यों १० बोल पाते हैं, इनके भी प्रत्येक के अनन्त २ भेद होते हैं यों सब द्रव्य के पर्यव अनन्तान्त हो जाते हैं उन में से एक २ पर्यव (पर्याय) का हरन करते २

अनन्त पुण्योदय हुए जिस के प्रताप से उक्त परिभ्रमण से उद्धार कर मुक्ति प्राप्ति के साधन रूप इस मनुष्य जन्म की प्राप्ति हुई है ।

मनुष्य भव ।

आगे और भी मनुष्य जन्म की दुर्लभता विषय कुछ कथन करते हैं—आत्मा प्रथम अवकाही निगोद—अव्यवहार राशी में अनन्तान्त काल पर्यन्त रहा वहां अनन्त भेद अनन्त पुण्य की वृद्धि हुई तब इत्वरनिगोद व्यवहार राशी में आया फिर अनन्त पुण्यवृद्धि हुई तब बादर पने को प्राप्त हो ऐकेन्द्रिय-पांच स्थावर पने को प्राप्त हुआ यथा—१ पृथ्वीकाय (मट्टी) की ७००००० जाति × और १२०००००००००० (बारह लक्ष करोड) कुल हैं. प्रत्येक पृथ्वीकाय के जीव का उत्कृष्टा आयुष्य २२००० वर्ष का होता है. २ अपकाय (पानी) की ७०००००० जाति

अनन्त काल चक्र बीत जाय तब एक परमाणु के पर्यव पूर्ण होवे ऐसे ही द्विप्रदेशी त्रिप्रदेशी यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्यव हैं इस लिये द्रव्य से भी अनन्त सूक्ष्म भाव है यह एक प्रदेश की व्याख्या कही ऐसे ही सर्व लोक के आकश प्रदेश के वर्णादि की पर्याय जानना । दृष्टान्त काल चने जैसा क्षेत्र जवार जैसा, द्रव्य बाजरे जैसा भाव सरसव के दाने जैसा ।

× जाति का हिसाब—पृथ्वी के मूल ३५० हैं, इनको ५ वर्ण से ५ गुना करें तब ३५०×५=१७५० हुये, इने २ गन्ध से २ गुना करे तब १७५०×२=३५०० हुये इने ५ रस से ५ गुना करे तब ३५०×५=१७५०० हुये इने ८ स्पर्श से ८ गुना करे तब १७५००×८=१४०००० हुये इने ५ संस्थान से ५ गुना करे तब १४००००×५=७००००० हुये इस प्रकार पृथ्वीकाय की सात लक्ष जाति होता है। ऐसे ही जिसकी जितनी लक्ष जाति हो उसका मूल आधा सैकड़ा ग्रहण कर ५ वर्ण २ गन्ध ५ रस आठ स्पर्श और ५ संस्थान इन २५ बोल से उक्त प्रकार गुना करने से कथित जाति का प्रमाण हो जाता है जिसका वर्ण गन्ध रस स्पर्श संस्थान एक सा हो उसे एक जाति का कहना भिन्न हो तो अन्य जाति का कहना । जाति माता का पक्ष जानना । सब जाति ८४००००० (चौरासी लक्ष) हैं । और भ्रमर की जाति तो एक किन्तु एक भ्रमर पुष्प का एक भ्रमर लकड़ का एक भ्रमर गोबर का । यों तीन कुल भ्रमर के गिने तैसे ही सब के भिन्न २ कुल जानना कुल पिता का पक्ष जानना । सब १८७५०००००००००० (एक करोड़ साढ़े सत्तावे लक्ष कोड़) कुल होते हैं यह संख्या पन्नवणा सूत्र में कही है । तत्व केवली गम्यं ।

और ७०००००००००००० (सात लक्ष क्रोड) कुल हैं. प्रत्येक अप काय के जीव का उत्कृष्टा आयुष्य ७००० वर्ष का है. ३ तेऊकाय (अग्नि) की ७००००० जाति और ७०००००००००००० (सात लक्ष क्रोड) कुल हैं. प्रत्येक अग्निकाय के जीव का उत्कृष्टा आयुष्य तीन अहोरात्री का होता है. ४ वायुकाय (हवा) की ७००००० जाति और ७०००००००००००० (सात लक्ष क्रोड) कुल हैं. उत्कृष्टा आयुष्य ३००० वर्ष का होता है. ५ वनस्पति काय (सब्जी) की २४००००० जाति और और २८०००००००००००० (अठाईस लक्ष क्रोड़) कुल हैं. उत्कृष्टा आयुष्य १०००० वर्ष का होता है. इन पांचों स्थावरों में से पहिले चार स्थावरों में असंख्यात काल और वनस्पति कायमें निगोद आश्रित अनंत काल व्यतीत होगया. अनंत पुण्य की वृद्धी हुई तब त्रसकाय की पर्याय को प्राप्त हुआ, काय और जिव्हा दो इन्द्रिय का धारक शंख सीप कोडा गीडोला प्रमुख बेन्द्रि बना. बेन्द्रिय की २००००० जाति और ७०००००००००००० (सात लक्ष क्रोड) कुल हैं और उत्कृष्टा १२ वर्ष का आयुष्य है यहां अनंत पुण्य की वृद्धी हुई तब काया जिव्हा नाशिका और आंख धारक माक्षिका मत्सर भ्रमर प्रमुख चौन्द्री बना. चौन्द्रिय की २००००० जाति और ९०००००००००००० (नव लक्ष क्रोड़) कुल हैं और उत्कृष्टा ६ महीने का आयुष्य है. इन तीनों विकलेन्द्रीय में संख्यात काल व्यतीत कर दिया. यहां अनन्त पुण्य की वृद्धी हुई तब काया जिव्हा नाशिका आंख और कान का धारक सञ्ज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय हुआ और यहां अनंत पुण्य की वृद्धी हुई तब मन का धारक सञ्ज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय हुआ. इन की ४००००० जाति और इनके ५ प्रकार हैं. यथा- १ पानी में रहने वाले मच्छ कच्छ प्रमुख जलचर, इनके १२५०००००००००० (साढे बारह लक्ष क्रोड़) कुल असञ्ज्ञी सञ्ज्ञी दोनों का क्रोड़ २ पूर्व का उत्कृष्ट आयुष्य. २ जमीन पर चलने वाले अश्व गज आदी स्थलचर,

इनके १०००००००००००००० (दश लक्ष क्रोड़) कुल और असज्ञी का ८४००० वर्ष का सज्ञी का ३ पल्योपम का उत्कृष्टा आयुष्य, ३ आकाश में उड़ने वाले चिड़ी, तोता, कौवा प्रमुख पक्षी खेचर, इनके १२०००००००००००० (बारह लक्ष क्रोड) कुल और असज्ञी का ७२००० वर्ष का सज्ञी का पल्योपम के असंख्यातवें भाग का उत्कृष्टा आयुष्य. ४ हृदय के बलसे चलने वाले सांप अजगरादि उरपर जीव, इनके १०००००००००००००० (दश लक्ष क्रोड) कुल और असज्ञी का ५३००० वर्ष का सज्ञी का क्रोड पूर्व का उत्कृष्टा आयुष्य है. और ५ भुजाओं के बल से चलने वाले नकुल घूस ऊंदीर प्रमुख भुजपर जीव, इनके ९००००००००००० (नव लक्ष क्रोड) कुल असज्ञी का ४२००० वर्ष का सज्ञी का क्रोड पूर्व का उत्कृष्टा आयुष्य. इनके सात भव संख्यात वर्ष आयुष्य वाले के, १ भव असंख्यात वर्ष के आयुष्य का यों ८ भव लगातार उत्कृष्टा होते हैं।‡ यहां से जो नर्क में गया तो नर्क की ४००००० जाति और २६००००००००००००० (छब्बीस लक्ष क्रोड) कुल, ३३ सागरोपम का उत्कृष्टा आयुष्य. नर्क का एक ही भव होता है. और देवता में गया तो देव की ४००००० जाति और २६००००००००००००० (छब्बीस लक्ष क्रोड़) कुल और ३३ सागरोपम का उत्कृष्टा आयुष्य. देवता का भी एक ही भव होता है।§

(पिछले २९६ पृष्ठ का नोट है)

* २८००००० जाति की वनस्पति में से एक शरीर में अनन्त जीव होवें ऐसी साधारण वनस्पति की १४००००० जाति हैं और एक शरीर में एक ही जीव हो ऐसी प्रत्येक वनस्पति की १०००००० जाति हैं। यों दो प्रकार की वनस्पति है।

‡ नर्क से लगा कर सभी तिर्यंच पचेन्द्रिय पर्यन्त परवश पने क्षुधा तृषा शीत ताप छेदन भेदन इत्यादि कष्ट सहन करनेसे अकाम निर्जरा होती है यही पुण्य गड्डीका कारन है।

§ नर्क का जीव मर कर नर्क में उत्पन्न नहीं होता है और स्वर्ग में भी उत्पन्न नहीं होता है. तैसे ही देव का जीव मर कर देवता में भी उत्पन्न नहीं होता है और नर्क में भी उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि—जैसे द्रव्योपार्जन करने का स्थान दुकान गिना जाता है और सुख भोगवन का स्थान घर गिना जाता है, जो मनुष्य और नुक्स का त्याग कर दुकान पर कमाई करेगा वह घर में जो कर आराम पावेगा और जो दुकान में मौज शौरव में फस

यों भव भ्रमण करते २ अनन्तान्त पुण्य की वृद्धी होने से कदाचित मनुष्य भव की प्राप्ति होवे तो मनुष्य की १४०००००० जाति और १२०००००००००००० (बारह लक्ष क्रोड) कुल हैं मनुष्य दो प्रकार के होते हैं, यथा—१ मनुष्य के शरीर से उत्पन्न होने वाले मल मूत्रादि १४ प्रकार की वस्तु में कालान्तर में समुर्छिम मनुष्य असंख्यात उत्पन्न होते ही वे अनन्तर मुहुर्त के अंदर तत्काल अपर्यापते ही मृत्यु पा जाते हैं. इस लिये यह मनुष्यों कुछ भी आत्महित नहीं कर सकते और २ गर्भज मनुष्य धर्माराधन कर आत्महित का साधन कर सकते हैं. इन का उत्कृष्टा आयुष्य ३ पल्य का होता है।

अहो भव्यो ! उक्त भव भ्रमण के कथन से समझने में आया होगा कि मनुष्य जन्म की प्राप्ति कितनी दुर्लभ है. इस प्रकार अनादि काल से संसार में परिभ्रमण करते २ अनन्तान्त काल व्यथतीत कर दिया, जिस में जन्म मृत्य आदि अनंत कष्ट भुक्ते जिससे अनंत पुण्य की वृद्धी हुई तब कही मनुष्य जन्म की प्राप्ती हुई है ! जिस प्रकार रत्नादि बहु मूल्य पदार्थ प्राप्त करने को जितना द्रव्य चाहिये उतना द्रव्य पास होता है, वही उसे प्राप्त कर सकता है तैसे ही मनुष्य जन्म की प्राप्ति के लिये जितनी पुण्य सामग्री चाहिये उतनी का योग होता है तब ही मनुष्य जन्म प्राप्त हो सकता है और जिस प्रकार रत्नादि उत्तम पदार्थ जगत् में स्वल्प होते हैं तैसे ही मनुष्य भी संसार में बहुत कम हैं तिर्यंच अनंत हैं, देवता असंख्याते हैं, नरकीये भी असंख्याते हैं किन्तु गर्भज मनुष्य तो संख्याते सिर्फ २९ अंक जितने ही हैं. पन्नवणा सूत्र में सब जीवों के ९८ प्रकार करके जिनकी अल्पाबहुत कही है कि जिसमें पहिला बोल "सब से थोडे

फस धन में आग लगावेगा वह घर में जा कर क्षुधादि दुःख भोगेगा। तैसे ही दुकान समान मध्य लोक है और नर्क स्वर्ग घर समान हैं, यहां धर्म करेगा वह स्वर्ग पावेगा नहीं तो नर्क पावेगा।

गर्भेज मनुष्य" का कहा है इत्यादि कथन से स्पष्ट विदित होगया कि इस संसार में प्राणी को मनुष्य जन्म की प्राप्ति अतिही दुर्लभ है।

आर्य क्षेत्र।

केवल मनुष्य जन्म की प्राप्ति से मुमुक्षुओं का इष्टितार्थ सिद्ध नहीं हो सकता है, किन्तु मनुष्य जन्म के साथ दूसरा साधन आर्य क्षेत्र भी मिलना चाहिये. आर्य क्षेत्र की प्राप्ति इस जगत् में इस आत्मा को होना कितना दुर्लभ है अब इस पर विचार करते हैं।

अनन्तान्त अलोक के मध्य में ३४३ रज्जु का घनकार लोक में है और उसमें १० रज्जु जितनी जगह में तिरछा लोक है। जिसमें रहे असंख्यात द्वीप समुद्रों एक रज्जु में हैं, जिसमें मनुष्य की वस्ती के केवल अढाई द्वीप ही हैं, जिसमें दो समुद्र पर्वतों नदीयों वगैरा छोड फक्त १५ कर्म भूमी के ३० अकर्म भूमि के और ५६ अंतर द्वीप यह १०१ मनुष्य के रहने के क्षेत्र हैं इनमें अकर्म भूमी और अंतर द्वीपके युगल मनुष्य तो देवता के जैसे पूर्वोपार्जित पुण्य फल के भुक्ता हैं किन्तु कुछ धर्माराधन नहीं कर सकते हैं धर्माराधन के केवल १५ क्षेत्र कर्म भूमी मनुष्य के ही हैं, जिसमें से पांच महाविदेह क्षेत्र में तो सदैव निरन्तर धर्म की प्रवर्ती रहती है और ५ भर्त ५ ऐरावत क्षेत्र में १०—१० क्रोडा क्रोड सागरोपम के सर्पिनी और उत्सर्पिनी के फक्त १ क्रोडा क्रोड सागरोपम कुछ अधिक धर्म की प्रवर्ती रहती है और १० क्षेत्र में से प्रत्येक क्षेत्र में ३२०००—३२००० देश हैं जिनमें ३१९७४॥ तो अनार्य देश हैं फक्त २५॥ देश ही आर्य हैं। *

---

* श्लोक—आ समुद्रा तु वै पूर्वाद समुद्रातु पश्चिमात पर्व ॥
तयो रेवान्तरे गिर्योरार्य्यं पर्त विदुर्बुधा ॥ २२ ॥

अर्थ—उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विंध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र यह आर्य भूमीकी हद्दी है।

साढे पच्चीस आर्य देशों के उनमें रहे मुख्य शहरों के नाम तथा ग्रामों की संख्या १—मगधदेशज गराजगृही नगरी, १६६००० ग्राम २ अंग देश चम्पा नगरी ५०००००० ग्राम, ३ वंग देश तामलिता नगरी ८०००० ग्राम, ४ कलिंग देश कञ्चनपुर नगर १८००० ग्राम, ५ काशी देश वानारसी नगरी १९५००० ग्राम, ६ कौशल देश साकेतपुर नगर ९०००० ग्राम, ७ कुरुदेश तेगपुर नगर ५५००० ग्राम, ८ कुशावर्त देश सौरीपुर नगर ६६००० ग्राम, ९ पंचाल देश कम्पिलपुर नगर ३८३००० ग्राम, १० जंगल देश आइछता नगर २८००० ग्राम, ११ सौराष्ट देश द्वारका नगरी ६८०३३३ ग्राम, १२ विदेह देश मिथिला नगरी ८००० ग्राम, १३ वच्छ देश कौसम्बी नगरी २८००० ग्राम १४ संडिल देश नंदीपुर नगर २१००० ग्राम, १५ मलय देश भद्दिलपुर नगर ७००० ग्राम, १६ वराड देश बहुलपुर नगर २८००० ग्राम, १७ वरण देश साकृतीमती नगरी ४२००० ग्राम १८ दशा देश मृतिकावती नगरी ४३००० ग्राम, १९ साखात देश विवुरसी नगरी ४३००० ग्राम २० सिन्धु देश वेवार पट्टन ६८५००० ग्राम, २१ सोविर देश वितभय पट्टन ८००० ग्राम, २२ सुरसेन देश पापापुर नगर ३६००० ग्राम, २३ अंग देश मांसपुर नगर १४२० ग्राम, २४ कुण्डलदेश श्रावस्ती नगरी ६३००० ग्राम, २५ लाट देश कोटीपर्व नगर २४२००० ग्राम और ॥ आधा केकै देश सेताम्बिका नगरी २५०० ग्राम, यह २५॥ आर्य देश हैं । *

श्लोक—सरस्वती दृषद्वत्यो र्देव नद्योर्य दन्तरम् ॥
तं देव निर्मितं देश, मार्या वर्त प्रचक्षतं ॥१७॥ मनुस्मृती अध्या० २

अर्थ—सरस्वती नदी से पश्चिम में अटक नदी से पूर्व में, हिमालय से दक्षिण में और [illegible] से उत्तर में जितने देश हैं वे आर्य व्रत हैं ।

* आधा देश आर्य होने का कारण ऐसा कहते हैं कि—अनार्य प्रदेशी राजा को समझाने गये श्री पार्श्वनाथ जी के सन्तानीय आचार्य श्री केशी श्रमण जितने देश में फिरे वह आर्य बन गया बाकी का आनार्य रह गया तथ्य केवलीगम्य ।

भव्यों ! जरादीर्घ दृष्टी से सोचीये कि सम्पूर्ण लोक के हिसाब में आर्य क्षेत्र कितना कम है ? इन क्षेत्रों में मनुष्य जन्म प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है ?

३ उत्तम कुल।

केवल आर्य क्षेत्र में मनुष्य जन्म प्राप्त होने से ही मुमुक्षुओं का इष्टितार्थ सिद्ध नहीं होता है किन्तु तीसरा साधन उत्तम कुल भी प्राप्त हुआ चाहिये. यह भी मिलना बहुत मुशकिल है. प्रत्यक्ष ही देखिये ? बहुत से कूलीन (उत्तम) जन पुत्र प्राप्ति के लिये आतुर बन रहेहैं किन्तु उनके पुत्र बहुत कम देखने में आते हैं क्यों कि संसार में पुण्यात्मा प्राणी बहुत कम हैं. और पापी जीव अधिक होने से नीच कुल वाले बहुत परिवारी देखे जाते हैं. और भी केवल जाति मात्र से ही ऊंच नीच नहीं कहे जातेहैं क्यों कि पैदास शरीर आकृत्ती अवयव व शरीर के अभ्यन्तर विभाग तो सबी मनुष्यों का एकसा ही होता है किन्तु शास्त्र में उच्चता नीचता कर्मानुसार कही है. ऊंच (अच्छा) कर्म (क्रिया) का कर्ता ऊंच गिना जाता है और नीच कर्म का करने वाला नीच गिना जाता है. * देखिये जयघोष' मुनि का कथन ।

गाथा—कम्मुणा बंभणो होइ । कम्मुणा होइ खत्तीया ॥
वइसो कम्मुणा होइ । सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥ उत्तरा० अ० २५

अर्थ—ब्रह्म जानंति ब्राह्मन. अर्थात् ब्राह्म (आत्मा) को जाने—आत्म ज्ञान प्राप्त करे सो ब्राह्मन, "क्षयत्रारतिक्षत्री" अनाथों का रक्षण करे सो क्षत्री. वाणिज्य (वेपार) करे सो वैस्य और क्षुद्र कर्म-खेती कर्म अथवा

---

* श्लोक—न विशेषेति वर्णानाम् सर्वं ब्रह्ममिदं जगत् ।
ब्राह्मण पूर्व श्रेष्ट ही कर्मभ्य वर्ण तांगता ॥ महा भारत शांती पर्व

अर्थ—प्रभुकी उत्पन्न की सृष्टी में वर्ण का विशेषत्व है ही नहीं प्रथम ही सब ब्राह्मण ही थे पश्चात् जैसे २ कर्म किये वैसे २ वर्ण को प्राप्त हो गये ।

नोकरी करे सो शूद्र. + और भी गून्थान्तर नीच जाति के लक्षण निम्नोक्त प्रकार हैं।

श्लोक—जपो नास्ति तपो नास्ति नास्ति श्चेन्द्रि निगूह ॥
दया दानम् दमं नास्ति येते चांडाल लक्षणम् ॥

अर्थात—जो अहो निश धन्धे ही में पचा रहे किन्तु परमेश्वर का स्मरण ध्यान नहीं करे सो नीच. जो खाद्य अखाद्य का बिचार नहीं रखता सदैव खा पी कर शरीर को पुष्ट बनाने में ही मग्न रहे किन्तु उपवासादि तप-व्रत नहीं करे सो भी नीच. जो विषयोत्पादक-कान से राग रागनी श्रवन करने में आखों से नाटक चेटक ख्याल तमासे निरक्षन करने में, नाक से अतर पुष्पादि की गंध में जिव्हा से रस स्वाद में और शरीर से पर स्त्री आदि के भोग में मग्न रहे किन्तु शास्त्र श्रवन साधु दर्शन नमन गुनीयों के गुन गान और शीलादि व्रतों का समाचारन नहीं करे पांचों इंद्रिय का निगृह नहीं करे सो नीच. जो मांस मदिरा का भोगवने वाला सदैव षटकाय जीवों का घातक, दुःखी अनाथों की अनुकम्पा दया रहित महालोभी-कंजूस स्वयं दान दे नहीं अन्य को निषेध करे और तप संयम, नियम व्रत प्रत्याख्यानादि कर आत्मा दमन नहीं करने वाला हो उसे चाण्डाल-नीच जाति वाला कहना और जो जप तप इंद्रिय निग्रह दया दान व्रतादि का आचरन करने वाला हो उसे ऊंच जाति वाला कहना।

+श्लोक--"धर्म चर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं २ वर्ण मापद्यते जाति परिवृत्तौ"।
अर्थात्—उत्तम वर्ण वाला भी अधमाचर्ण से नीचता को प्राप्त होता है और
धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्व २ वर्ण मापद्यते जाति परिवृतौ"।

अर्थात्--नीच वर्ण वाला भी धर्माचरण से उत्तमता को प्राप्त होता है। ऐसा आपस्तम्ब धर्म सूत्र २ प्रश्न ४ पटल में है।

श्लोक--विश्वामित्रो वशिष्टश्च मतंगो नारदश्च ॥
तपो विशेष संप्राप्ता उत्तमंत्वं न जातिन ॥

अर्थ—विश्वामित्र, वशिष्ट और नारद ऋषि नीच जाति में उत्पन्न होकर भी तपश्चरण करने से उत्तम हो गये हैं, ऐसा शुक्रनीति चौथा अध्याय चौथे प्रकरण में कहा है।

कहिये भव्यों ? उक्त प्रकार के उत्तम लक्षण के धारक गुन के पालक उत्तम कुली इस जगत् में कितने कम हैं ? इसलिये ऊंच कुल में जन्म धारन करना बहुत ही मुशकिल है।

दीर्घ आयुष्य।

जिस प्रकार समुक्षुओं के इष्टितार्थ सिद्धी के लिये मनुष्य जन्म आर्य क्षेत्र उत्तम कुल की आवश्यकता है उस ही प्रकार चौथा साधन दीर्घायुष्य की भी परमावश्यकता है. वह दीर्घायु प्राप्त होना भी बहुत दुर्लभ है. स्त्री पुरुष के एक वक्त के संयोग में असंख्यात असज्ञी (समूर्छिम) मनुष्य और ९००००० सज्ञी मनुष्यों की उत्पत्ती होती है. उनमें से किसी वक्त एक दो उत्कृष्टे चार तक जीव बच सकते हैं बाकी सब जीवों उक्त तीनों बातों को प्राप्त होकर एक दीर्घायु की प्राप्ती बिना व्यर्थ चले जाते हैं. (भव्यों अपने पुण्य कितने जबर हैं कि अपने साथ में उत्पन्न हुये नौ लक्ष भाइयों में से ८९९९९९ तो मृत्यु को प्राप्त होगये और अपन बचगये) वह बचे हुये मनुष्यों भी इष्टितार्थ सिद्धी के साधन को कर सकें इस अवस्था को प्राप्त होना भी बहुत मुशकिल है श्री सुयगडांग सूत्र में कहा है कि—

काव्य—गब्भ मज्जित वुयावुयाणं। नरापरा पंच सिहा कुमारा।
जोवणगा मज्झिमा थेरगाय। चयंति आउक्खय पलागं।

अर्थ—बहुत से मनुष्यों उत्पन्न होते ही वीर्य स्पर्शादि प्रयोग से तत्काल मृत्यु पा जाते हैं जो बचते हैं उनमें से कितनेक बुदबुदा रूप अवस्था में उस से बचें तो श्लेषम-गून्धी-पिण्डि अवय-रूप अवस्था में, कितनेक महिने दो महिने यावत नव दश महिने में, कितनेक जन्मती वक्त जो वांके आजाय तो माता के रक्षणार्थ उनका शरीर विदारन कर निकालते हैं. कितनेक अयोग स्थान उत्पन्न हो तो तत्काल धूड़ेपे डाल देने से श्वानादि के भक्ष बन जाते हैं. कितने बाहिर पड़ते ही शीतादि प्रयोग से मृत्यु को प्राप्त होते हैं. कितनेक कुमार अवस्था में कितनेक युवावस्था में कितनेक

मध्यम वय में और जो इन विघ्नों से बचे तो वृद्धावस्था में तो अवश्य ही मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं.

जिस प्रकार फिरती चक्की के दोनों पाटके बीच में पडे हुए दाने का भरोसा नहीं लगता है कि कितने चक्र फिरे बाद इसका चूरन होगा. इस ही प्रकार काल चक्र की चक्की के भूत काल रूप नीचे का स्थिर पट और भविष्य काल रूप ऊपर का फिरता पट जिसके मध्य में रहा प्राणीयों रूप दानों का कौन विश्वास कर सकता है इसका अहोरात्री रूप इतने चक्कर फिरे बाद अन्त होगा किन्तु यह तो निश्चय ही है कि एक वक्त नाश तो अवश्य ही होगा? जादू टोना मंत्र यन्त्र जड़ी बूंटी औषध उपचार इत्यादि ऐसा एक भी उपचार नहीं है कि जो मृत्यु मुख में पड़े प्राणी को छुड़ा सके? इन्द्र चन्द्र देव दानव मानव बेचारे वे भी मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं तो अन्य को तो किस प्रकार बचा सकें? अर्थात् मृत्यु से बचाने को कोई भी सामर्थ नहीं है. बाल युवा वृद्ध सुखी दुःखी स्त्री पुरुष राजा रंक मृत्यु के भाव तो सब एक से हैं अर्थात् जो उसके झपट में आता है वही स्वहा हो जाता है. होली दीपावली दशहरा आदि तेहवार महिना पक्ष तिथी वार नक्षत्र योग करण दिन रात्रि आदि किसी का भी विश्वास नहीं हैं कि अमुक वक्त नहीं मरेंगे अर्थात मृत्य लोक में रहे सोपक्रमी आयु वाले प्राणी के आयु वाले का अन्त अचिन्त्य हो जाता है. ×ऐसे स्थान गफलतमें रहना मुमुक्षुओंके लिये बड़ा ही हानि कारक है. और भी पुर्वापेक्षा इस वक्त आयुष्य भी बहुत थोड़ा रह गया

× स्वर्गलोक और नर्क लोक में जो जीव उत्पन्न होते हैं इनका जघन्य आयुष्य १0000 वर्ष से कम नहीं होता तथा पाथड़े प्रतरों का निर्मित आयु पूर्ण भोग कर ही मृत्यु पाते हैं नेरीये देवता जुगल मनुष्य तीर्थङ्कर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव चर्म शरीरी इनका नोप क्रम आयुष्य होता है अर्थात् जितना आयुर्बन्ध कर आते हैं उतना ही भोगते हैं अन्य सोप क्रम आयुष्य वाले का आयु मध्य में भी खण्डित हो जाता है। मानो इस हेतु से ही मध्यलोक को मृत्यु लोक कहते होंगे।

है. पहिले आरे में ३ पल्योपम का. दूसरे आरे में २ पल्योपम का तीसरे आरे में १ पल्योपम का चौथे आरे में क्रोड़ पूर्व का और इस पांचवें आरे में १०० वर्ष से कुछ अधिक है। क्रोड़ पूर्व वर्षायुवाले की आयु के वर्षों के जितने सैंकड़े थे उतने इस वक्त श्वाशोश्वास भी नहीं रहे! जो कभी १०० वर्ष पूर्ण करे तो ४०७४८४०००० श्वाशोश्वास होते हैं किन्तु १०० वर्ष पूर्ण करने वाले विरले होते हैं। किसी ने १०० वर्ष पूर्ण भी किये तो भी सब सुख से पूर्ण होना मुशकिल है। एक गून्थकार कहते हैं कि—

श्लोक—आयुर्वर्षे सतेन्द्राणाम् परमितं रात्रौ तदर्धंगतः।
तस्यार्धस्यर्ध मर्धमपरम् बालत्वं वृधत्वयो॥
शेषा व्याधि वियोग दुःख सहितं से वर्धाभिय नियतं।
जेवा वारी तरङ्ग वुद २ समै सौख्य कुतः प्राणीना॥

अर्थ—संसारी जनों! जरा बनिये के हिसाब से विचार करो कि १०० वर्ष में सुख का हिस्सा कितना है? एक वर्ष के दिन ३६० तो १०० वर्ष के ३६००० दिन हुये, इसमें से १८००० रात्री का काल तो निद्रा में गया। कहा है कि "निद्रा गुरु जी बिना मौत मूवा" अर्थात् निद्रा में सुख दुःख का भान नहीं रहने से वह अवस्था मृत्यु तुल्य ही गिनी जाती है. अब रहे १८००० जिसके ६०००—६००० के ३ हिस्से बालावस्था योवनावस्था और वृद्धावस्था जिसमें बाल वय तो अज्ञान वय गिनी जाती है. क्यों कि उसे सत्यासत्य का भान कम होता है. तैसे ही वृद्धावस्था भी शास्त्र में दुःख का कारन गिना है. यथा "जम्म दुक्खं जरा दुक्खं" और है भी महा दुःख *

* श्लोक—वलिभिर्मुखम् आक्रान्त पलितै रङ्कितं शिरं॥ गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णा एका तरुणायते॥ ॥ भर्तृहरी शतकम्।

अर्थ—मुंह का चमड़ा सिकुड़ गया. सिर के बाल श्वेत हो गये, और सब शरीर शिथल (ढीला) पड़ गया किन्तु एक तृष्णा ही तरुणी बनी है।

श्लोक—भोगान भुक्ता वय मेव भुक्ता, स्तपोन तप्तं वय मे तप्ता।
कालो न यातो वय मेव याता. स्तुष्णान जीर्णा वय मेव जीर्णा॥

अर्थ—वृद्ध ने भोगों को नहीं छोड़े परन्तु पुद्गलों भोगों ने छोड़ दिये, तप करके

ही का कारन क्योंकि इन्द्रियों के शक्ति हीन हो जाने से पूरा सुना और देखा नहीं जाता, दाँतों के गिरजाने से खाने की वस्तु चाब नहीं सकता. जठराग्नि के मन्द हो जाने से खाद्य पदार्थ सुख के बदले व्याधी वृद्धी करने वाले बन जाते हैं. अशक्ति हो जाने से निकम्मे: वृद्ध को देख स्वजन भी अपमान तिरस्कारादि से संतापित बनाते हैं. इत्यादि वृद्धावस्था में अनेक दुःख उपस्थित हो जाते हैं। अब रहे योवनावस्था के ६००० दिन सुखोपभोग के उसमें भी शारीरिक ज्वरादि रोगों के दुःख में, मानसिक स्वजन सम्बन्धियों के वियोग की द्रव्यादि के वियोग की चिन्ता में लेन देने खान पीन इज्जत आदि के दुःख से पीडित हो झूरने इत्यादि दुःखों से संतप्त नहीं बना हो ऐसा एक भी दिन प्राप्त होना मुशकिल है ऐसी दुःख मय जिन्दगी गुजारने वाले किस प्रकार से धर्माराधन कर सकते हैं. कहा है—

अर्थ—आदित्यस्य गतागतै रह रहा संक्षीयते जीवित ।
व्यापारैर्बहु कार्य भार गुरूभिः कालो न विज्ञायते ।
द्दष्ट्वा जन्म जरा विपति मरणं त्रासश्चनोत्प घते ।
पित्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरा सुन्मत्त भुतं जगत् । भर्तृहरी.

अर्थ—सूर्य के उदय अस्त होते दिन २ आयुष्य कमी होता जाता है किन्तु अनेक कार्य भार में फंसे हुए को मालुम ही नहीं पड़ता है. जन्म जरा मृत्यु की विप्ती से पीडित होते और कइयों को देखता हुआ भी यंह जीव त्रास नहीं पाता है. इन लक्षणों से यह निश्चय होता है कि मोह मयी प्रमादमयी मदिरा को पी कर जगत् मतवाला सा हो रहा है.

अहो सभ्यों ? उक्त कथन से सोचिये कि दीर्घायु प्राप्त होना भी बहुत ही मुशकिल है.

शरीर तो नहीं झुकाया परन्तु दुःख तापने शरीर को झुका दिया, काल तो छूटने नहीं जीना परन्तु काल ने वृक्ष को जीत लिया और तृष्णा जीर्ण (पुरानी) नहीं हुई परन्तु शरीर जीर्ण हो गया।

५ पूर्ण इन्द्रियां।

उक्त चारों साधनों कदाचित् मिल भी जांय और पांचवा साधन इन्द्रियों की पूर्णता जो प्राप्त नहीं होतो भी मुमुक्षुओं इष्टितार्थ नहीं साध सकते हैं. शास्त्र में कहा है "जाव इन्द्रिया नें हाणंति. ताव धम्मं समायरे" अर्थात् जहा तक श्रोतादि इन्द्रियां अपने बिषय को गृहन करने में अयोग्य नहीं बने वहां तक ही तू धर्म समाचारन करले? क्यों कि जो कानों से बधिर—बहिरा होगा वह धर्म कथा श्रवण ही नहीं कर सकेगा तो फिर धर्म के स्वरूप को समझे बिना अङ्गीकार किस प्रकार कर सकेगा, आँखों से देख ही नहीं सके वह शास्त्रादि पठन जीव रक्षण किस प्रकार कर सकेगा. जो नाक से गूंगा होगा, मुंह से बोबड़ा होगा, स्पर्शेन्द्रिय से शुन्य होगा वह भी धर्म पालन करने असमर्थ हो जाता है. इस लिये आत्मार्थ साधन में इन्द्रियों की पूर्णता अवश्य होनी चाहिये. बहुत प्राणी बहिरे अन्धे आदि इन्द्रिय हीन देखे जाते हैं, कितने ही आकार रूप पाचों इन्द्रियों को प्रास कर ज्ञानावर्णि कर्मोदय कर इन्द्रियों के विज्ञावरण से श्रवण कर देखकर स्पर्श कर भी उसके भाव भेद को समझ नहीं सकते हैं, सारांश विना समझे भी धर्मधारन करने समर्थ नहीं होते हैं, ऐसा मूढ़—मूर्ख विकलेन्द्रिय समान जीव भी जगत् में अनेक देखने में आते हैं. "विना बुद्धी व्यर्था विद्या" के कथनानुसार वे मूढ़ जन धर्मा-राधन करने असमर्थ हैं. इसलिये इन्द्रियों की सम्पूर्णता प्राप्त करना भी बहुत मुशकिल है।

६ आरोग्य व काया सुखोपजीवी।

जैसे इन्द्रियों के पूर्ण मिले विना मुमुक्ष इष्टितार्थ सिद्धी नहीं कर सकते हैं तैसे शरीर की आरोग्यता विना भी इष्टितार्थ सिद्ध नहीं होता है शास्त्र में कहा है कि "वाही जाव नव हुई, ताव धम्मं समाचरे" अर्थात् जहा तक

व्याधी (रोग) की वृद्धी नहीं हो तहां तक धर्म समाचरन करले क्योंकि यह औदारिक शरीर रोगों से भरा हुआ है. अर्थात् शरीर पर ३५००००००० रोम कहे जाते हैं और प्रत्येक रोम के साथ १॥। (पोने दो २) रोग बताते हैं सब ५६८६६५८४ रोगों से शरीर ग्रसित हैं. इन में के कान में मली आंख में गीड श्लेषम स्वेद बालों का बडाना वगैरा कितनेक रोगों तो सदैव लागू होने से इनकी गिनती ही नहीं की है. (यह रोग भी तीर्थकरों के नहीं होते हैं.) और बहुत से रोग पुण्य की प्रबल्यता से छिपे हुए हैं. इनमें से जलोदर भगेदर कुष्टादि १६ राज रोग कहे जाते हैं. इन में का जो एक भी रोग प्रगट हो जाय तो शरीर की बडी बुरी दशा हो जाती है । प्राण प्यारे स्वजन मित्रों का भी तिरस्कार पात्र बन जाता है. तैसे ही मस्तक का पेटके ज्वर वगैरा रोगों के उदय होने से शरीर परवश पडजाता है. जिससे उनके निवारणार्थ औषधोपचार में लगने से मन के उधर ही लगे रहने से धर्माराधन में विघन प्राप्त होता है. कहा है कि– "पहिला सुख निरोगी काया" जो शरीर आरोग्य हो तो सब काम अच्छा लगता है. परमात्मा ने भी मोक्ष प्राप्ति के साधन में संस्थान की आवश्यकता नहीं ग्रहण करते संघयनकी ही है अर्थात छै संस्थानों में से किसी भी संस्थान वाला मोक्ष प्राप्त कर सकता है. किन्तु छै संघयनों में से बज्र ऋषभ नाराय संघयन विना मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है संघयन हड्डीयों का ही होता है. इस प्रकार आरोग्य सदृढ पराक्रमी धर्मार्थ साधन करने योग्य शरीर की प्राप्ती होना बहुत ही मुशकिल है ।

उक्त छट्टे साधन काया आरोग्य के स्थान कोई सुखोपजीविका भी कहते हैं. जैसे आरोग्य शरीर विना धर्मार्थ साधन नहीं हो सकता है तैसे ही सुख से आजीविका (उदर पूर्णता) हुये विना भी धर्म साधन नहीं हो सकता है. मराठी में कहावत है कि–"पहिले पोटो बा मग विठोबा" और

मारवाड़ी में भी कहते हैं कि—" पेली पेट पूजा, फिर देव दूजा" दोनों का मतलब एक यही है कि जो पेट भरा होगा तो भगवान का स्मरण होगा. जगत् में देखते हैं तो सुखसे आजीविका चलाने वाले बहुत कम हैं. बेचारे अन्न वस्त्र मकान से मोहताज बने रात्रि दिन उनकी प्राप्ति में पूरे हो जाते हैं. तथा पापोदय से उनको सुबुद्धी आनी भी असक्य है. कहा है कि—

पापं प्रभावे भया दारिद्री, दारिद्र प्रभावे करंती पापं
पापं करंती पापं भुगंती, पापं प्रभावे नारंग गच्छंती।

पूर्वोपार्जित पुण्योदय से बहुत से सुखोपजीवी श्रीमान भी बने हैं किन्तु उन में से बहुत से धर्मोपार्जन करने से वंचित रहते हैं. निर्थक नाम में मोज सौख्य व व्यभिचार वृद्धी के साधन वेश्यानृत्य आदि कुकर्मो में द्रव्य व्यय करते जरा अटकते भी नहीं हैं यह बड़ी हतभाग्य दशा है. ऐसे सुयोग्य को प्राप्त होकर भी जो धर्म लाभ यथा उचित न ले सकते हैं तो फिर बिचारे गरीबों का तो कहना ही क्या ? इसलिये सुखोपजीवी भी होना बड़ी मुशकिल है।

७ सद्गुरू संग।

उक्त ६ बोलों का योग्य तो प्राणी को अनन्त वक्त मिल गया किन्तु सातमा साधन सद्गुरू के संग बिना मुमुक्षओं इष्टितार्थ सिद्ध नहीं कर सकते हैं. और सद्गुरू का जोग मिलना भी बहुत मुशकिल है. क्योंकि इस जगत् में दुराचारी पाखंडी ढोंगी ऐसे नामधारी गुरू बहुत हैं और उनको मानने वाले भी बहुत हैं. कहा है कि—

दोहा—पाखण्डी पुजा करे, पंडित नहीं पहिचान।
गौरस तो घर २ बिके, दारू बिके दुकान॥

प्रत्यक्ष देखीये! दुग्ध जैसे उत्तम पदार्थ को घरो घर बेचते फिरते हैं तो भी ग्रहण करने वाले थोडे मिलते हैं, और शुद्धी बुद्धी को नष्ट भ्रष्ट बनाने वाले मदिरा (दारू) जैसे अपवित्र पदार्थ को ग्रहण करने कटाल

की दुकान पर कितनी भीड़ जमती है ? इस प्रकार ही कनक कान्ता के त्यागी वैरागी सद्गुरु को मानने वाले बहुत थोडे हैं और परिग्रह धारी विषयोन्मत पाखण्डियों का सत्कार सन्मान देने वाले, उनकी आज्ञा प्रमाने चलने वाले. उन पर तन मन धन की निछावर करने वाले अरे? अपनी प्यारी पत्नी को भी उनकी प्रेमदा बनाने वाले भी इस जगत में बहुत हैं. कहिये ! इससे अधिक अज्ञानता और क्या होती है.

दोहा—गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेले दाव ।
दोनों डूबे बापडे, बैठ पत्थर की नाव ॥

सुज्ञो ? जरा विचार तो कीजिये कि जो अपना मतलब साधन में तत्पर हैं. जो आप ही डूब रहे हैं वे दूसरों का क्या सुधार कर सकेंगे.

कान्या मान्या कुर्र, तूं चेलो हुं गुर्र ।
रुप्पा नारेल धर, भावे डूब के तर ॥

याद राखिये ? जैसे लोभी हकीम रोग नहीं गमा सकता है, तैसे लोभी गुरु भी कर्म रूप काम क्रोधादि रूप अन्दर के रोगों को कदापि नहीं गमा सकेंगे. कहा है "अन्धे ऊदिर सडाधान, जैसे गुरु तैसे यजमान" गृहस्थ जैसे ही सतालस्बी छकाय जीवों का कुटारंभ करने वाले विषय लम्पटी, अरे ? संसारी यों तो कदाचित् पाप कृत्यों से डर भी जाते हैं किन्तु वे निष्ठुर बने मूठादि प्रयोग से मनुष्य पशू की हत्या करते. गर्भ पालन करते औषधोपचारार्थ अनन्त कार्य त्रस जीव का मर्दन करते इत्यादि जुल्म करते जरा भी अटकते नहीं हैं ऐसे दुष्ट स्वयं काली धार में डूबते हुए अपने यजमान-शिष्य को भी पाताल (नर्क) में ले बैठते हैं. एक कवी ने कहा है—

सवैया—छांडके संसार छार, छार को विहार करे,
माया को निवारी, फिर माया दिलधारी है ।
पीछे का धोया कीच, फेर कीच बीच फसे,

दोनों पन्थ खोय, बात बनी सो बिगरी हैं ॥
साधु कहलाय, नारी निरखत लोभाय,
कंचन की करे चहाय, प्रभुता प्रसागी है।
लीनी है फकीरी, फिर अमीरी की आस करे,
ताको धिक्कार सिर की पगड़ी उतारी है ॥

सुज्ञ पाठकों ? जो तुम्हें सत्य धर्म प्राप्त कर आत्मोद्धार करने की इच्छा होतो उक्त प्रकार के पाखण्डियों के फन्द में नहीं फंसते हुए जीवों के रक्षक, अखण्ड ब्रह्मचर्य के पालक, सब परिग्रह के त्यागी, कामादि शत्रुओं के जीतने वाले, निग्रन्थ गुरू के उपासक बनों कि जो तुमारे अनादि मिथ्यान्धकार का उच्छेद कर सम्यक्त्वादि गुणों मय बना मोक्ष-प्राप्ती की जो तुम्हारी उत्कन्ठना है उसे प्राप्त करने योग्य बनावे. सद्वक्ता सदुपदेशदाता को इन २५ गुनों का धारक होना चाहिये.

सद्वक्ता के २५ गुण।

१ दृढ़ श्रद्धा जो दृढ-निश्चल और शुद्धश्रद्धावन्त होंगे वही निशङ्कित सद्बोधद्वारा श्रोता को भी दृढ और शुद्ध श्रधावन्त बना सकेंगे. २ वाचन कला-जो हरेक शास्त्र को शुद्ध शरलता से सुनावेंगे वहीं श्रोता का चित्ताकर्षी होगा. ३ निश्चय व्यवहार ज्ञाता-व्यवहार निश्चय को साधन है और निश्चय इष्टितार्थ साधक है इस लिये जो अवसरोचित परिषद् के अभिप्राय के ज्ञाता बन उपदेश करेंगे वे श्रोता का मनोरंजन कर सकेंगे. ४ जिनाज्ञाभङ्ग का डर-छोटे से राजा की आज्ञा भङ्ग करने से भी शिक्षा पात्र हो जाता है तो जो त्रिलोकनाथ तीर्थङ्कर की आज्ञा भंग करे उसके क्या हाल होंगे ? ऐसा डर वाला होगा वही अपनी और श्रोता की आत्मा को अधोगती गमन से बचा सकेगा. ५ क्षमा-क्षमादि धर्म का उपदेश वही कर सकेगा जो इन गुनों का धारक होगा किन्तु जो क्रोधी होगा वह यथा तथ्य उपदेश नहीं कर सकेगा. कहावत है कि "अपने पर आवे

देखो तो बात को दूर ठेलो" तथा वक्त पर क्रोधी रंग में भग भी कर देगा. ६ निराभिमान—अभीमानी जन अपने कुहेतु को भी कुतर्कों से सिद्ध कर सत्य को असत्य और असत्य को सत्य रूप परिणमा देंगे और विनीत होंगे वही यथा तथ्य सदुपदेश कर सकेंगे. ७ निष्कपटी—कपटी मनुष्य का विश्वास जन समाज को न होने उनके बचन प्रमाणिक नहीं होते हैं. कपट जाहिर में आने से धर्म की बड़ी हानि होती है. इस लिये शरल स्वभावी उपदेशक का वचन ही अशर करसकता है. ८ निर्लोभ—निर्लोभी लापरवाही होते हैं वे राजा रंक सबको समान बोध देते हैं, और लोभी जन खुशामदिये होने से श्रोता के चित्त को दुखाती बात को फिरा देते हैं. × ९ श्रोता के अभिप्राय का ज्ञाता—श्रोता के मन में उत्पन्न होते प्रश्नों को उनकी मुख मुद्रा से पहचान कर बिना पूछे ही समाधान कर देगा, १० धैर्य वन्त—धैर्यता से समझाया हुआ कथन तथा मधुरता से दिया हुआ प्रश्न का उत्तर रोचक होता है. ११ अकदा गृही छद्मस्तता अल्पज्ञता या विस्मरणता के योग से कदाचित किसी प्रश्न का उत्तर

× श्लोक—गुकारस्तवन्धकारः स्वादुकारस्तन्निरोधका ।
अन्धकार विनाशित्वा द्गुरुत्य श्री धीयते ॥

अर्थ—अन्तः करण के अन्धकार का नाश करे वे ही गुरु ।

दृष्टान्त—किसी लालची पण्डित ने अनजान पने से म्लेच्छ राजा की सभा में कह दिया कि—

श्लोक—तिल शरषस्त मात्रं तू, जेन रमसती ॥
ते नरा नर्क गच्छन्ति, यवद् चन्द्र दिवा करा ॥ १ ॥

अर्थात्—जो कोई तिल शरसव जितना भी मांस भक्षन करेगा वह चन्द्र सूर्य रहेंगे वहां तक नर्क के कुण्ड में पडेगा यह सुन राजा बोला हम तो भर पेट खाते हैं। तब पण्डित जी ने कहा—आप बैकुंठ पधारेंगे क्योंकि इसमें तिल बराबर खाने वाले को नर्क कही है जिसका कारण यह है कि वह आत्म देव को त्रास देता है और आप तो भर पेट खा आत्म देव को सन्तुष्ट करने वाले हो इस लिये स्वर्गाधिकारी हो, तथा इस तरफ नर्क कुण्ड है परली तरफ स्वर्ग कुण्ड है पेट भर खाने वाला जोर से फलांग मारेगा वह स्वर्ग कुण्ड में जा पड़ेगा! लोभियां इस प्रकार अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं।

नहीं आवे या बोलता स्खलित हो जावे तो अपनी भूल को नहीं छिपाता हुआ स्पष्ट शब्दों में कहदे कि मुझे इस वक्त इसका उत्तर नहीं आता है. विशेषज्ञ का योग्य बनने पर निश्चय करने के मेरे भाव हैं. ऐसा वक्ता सत्यवादी गिना जाता है. १२ अनिंद्य—चोरी जारी विश्वासघात आदि लज्जा स्पद कर्म जिसने नहीं किये होते हैं वह किसी से कभी दबता—शरमाता नहीं है. १३ कुलवन्त—नीच कुलोत्पन्न की कदाचित् श्रोता मर्यादा नहीं रखते हैं. उत्तम कुलोत्पन्न प्रभाविक होते हैं. १४ पूर्णांगी—चक्षु घ्राण हस्त पादादि अंग हीन शोभता नहीं है। पूर्ण इन्द्रिय पूर्ण अंग वाला अच्छा दीखता है. १५ सुस्वरी—खुरदरे जाडे कठोर स्वर वाले के वचन अप्रिय होते हैं मधुरालापी श्रोताओं का मन मोहक बन जाता है. १६ बुद्धीवन्त-तीव्र स्मरण शक्ति वाले हाजर जबावी का व्याख्यान चमत्कारिक होता है. १७ मिष्ट वचन-वाणी की मधुरता वाला-खारी बातों को प्यारी, कठिन को कौमल बना देता है. १८ कान्तिवन्त-तेजस्वी का प्रभाव सभागणों पर अच्छा पडता है १९ समर्थ—शक्ति वन्त बहुत काल व्याख्यान देता श्रम नहीं पाता है २० विशेषज्ञ—अनेक मतान्तर के ग्रन्थावलोकन कर सब को समजाने प्रत्युत्तर देने समर्थ होता है वह कहीं हार नहीं पाता है. २१ अध्यात्म अर्थ ज्ञाता—आत्म ज्ञान परमार्थिकज्ञान का उपदेश ही मुमुक्षुओं को बहुमान होता है. २२ शब्द रहस्यज्ञ-सूत्र के शब्दों से बाह्य अर्थ कुछ और झलकता है और आन्तरिक रहस्य कुछ और होता है इस के अभिज्ञ वक्ता अर्थ का अनर्थ कर शास्त्र को शस्त्र रूप बना देते हैं इस लिये शब्द के रहस्य का समझने वाला ही यथार्थ वादी होता है. २३ अर्थ का संकुचित विस्तृत कर्ता—मनवांछित अर्थ संक्षेप में या विस्तार से कहने वाला पण्डित गिना जाता है. २४ तर्कज्ञ-प्रकाशित अर्थ को अनेक हेतु युक्ति दृष्टान्तादि कर समजाने से कथन रोचक बन जाता है. और २५ अन्य २ ग्रन्थादिकों में जो जो वक्ता के शुभ गुणों का कथन किया हो उन

कर युक्त उक्त गुन सिवाय और भी जिन २ गुनों की वक्ता में आवश्यकता हो उन कर अलंकृत हो. ×

गाथा—आय गुत्ते सया दंते, छिन्न सोए अणा सवे ॥
जे धम्मं सुद्ध मक्खाति, पडि पुन्न मणा लिसं ॥२४॥ सुयगडां. अ०११

अर्थ—१ जो पाप कार्य से गुप्त आत्मा वाला. २ आश्रव का निरूंधन करने वाला, ३ संसार के प्रवाह को तोड़ने वाला, और ममत्व रहित शुद्ध साधु होता है वही सर्वव्रती रूप निरूपम धर्म का प्रकाश कर सकता है.

उक्त वक्ता सद्गुणालंकृत सुसाधु के सद्गुरू के दर्शन से १० गुनों की प्राप्ति होती है, ऐसा विवाह प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र में कहा है,—

गाथा--सवणे णाणे विण्णाणे । पचक्खाणे य संजमे ॥
अहनारा तव चेव । वोदाणं अकिरिया सिद्धि ॥

अर्थ—१ सद्ज्ञान श्रवन करने का योग, २ सुनने से ज्ञानकी प्राप्ति, ३ ज्ञान से विशेषज्ञता, ४ विज्ञान से सुकृत्य दुकृत्य का ज्ञाता बन दुष्कृत्य का त्यागने वाला होवे, ५ दुष्कृत्य का त्याग वही संयम, ६ संयम से आश्रव रुंधन किया वही जिनाज्ञा का आराधन, ७ त्याग वस्तु से इच्छा का निरुंधन हुआ वही तप, ८ "तवे णं वोदाणं जणयइ" अर्थात् तप से कर्म निरंश होते हैं, कर्मों के निरंश होने से जीव चौदहवें गुणस्थानारूढ अक्रिय-स्थिर योगी बनता है और १० अक्रिय बना आत्मा सिद्धावस्था मोक्षात्म बन

× दिगाम्बर आमना के सुदृष्ट तरंगणी ग्रन्थ में वक्ता के ८ गुन निम्नोक्त प्रकार कहे हैं
गाथा—समयधर बहुणाणी, साद्धलोकोय भाव वेताय ।
सिद्ध किमय थियरामो. सिसहित इच्छोया एव गुरु पुज्जो ॥
अर्थ—१ समभावी तथा समतावन्त, २ दमतेन्द्रिय, ३ गुरु गम से शास्त्रार्थ धारक, ४ श्रोताओं से अधिक ज्ञानी, ५ सब जीवों का सुखेच्छु, ६ लौकिक साधन की कला का ज्ञाता, ७ क्षमावन्त और ८ वीतरागी तथा वीतराग मार्गानुयायी इन ८ गुनों का धारक ही वक्ता बनने की योग्यता वाला होता है ।

जाता है। इस प्रकार १० गुन की प्राप्ति सद्गुरु के संयोग से होती है।

किन्तु ऐसे सद्गुरु का योग बनना बहुत ही मुशकिल है।

८ शास्त्र श्रवन।

यद्यपि "बहु रत्न वसुन्धरा" के कथनानुसार इस सृष्टी में सद्गुरू भी बहुत हैं और पुण्योदय से उनका योग भी बन जाता है किन्तु आठवां साधन शास्त्र श्रवन विना सद्गुरू के योग्य के क्या उपयोगी हो सकता है ? अर्थात् विशेष कुछ नहीं। कितनेक भारो कर्मी जीव गुरू मुख से शास्त्र श्रवन का योग्य प्राप्त होने पर भी उसका लाभ नहीं ले सकते हैं। कोई कहे कि व्याख्यान सुनने चलिये ! तो जबाव देते हैं कि- हमारे को काम है. साधु जी तो निकम्मे होगये हैं ! क्या हम को बावाजी बनना है ? जो व्याख्यान सुनें। यह भोले लोग संसार के निर्थक धंधो को तो काम समझते हैं और धर्म के सच्चे काम को निर्थक समझते हैं. यह माया के मजूर बेचारे प्रमार्थिक कृतव्य को क्या जाने ? और इतने में ही कोई कहे कि आज नया नाटक आया है, तो तुर्त आप पूछेंगे कि- किसका नाटक है ? क्या टिकिट लगेगा ? हमें भी साथ ले चलना. माता पिता की आज्ञा भंग कर स्त्री पुत्र पुत्री को रुदन करते छोड भूख प्यास शीत ताप की परवार नहीं करता उस टाइम पर वहां हाजिर होता है। महा पापाचरन से कमाया पैसा ऐसे नीच काम में ही लगता है, नीच लोगों के धक्के खाता टिकिट खरीदे अन्दर जा, जो बैठने को जगह न मिले तो खडा ही रहता है, पैशाव की बाधा हो तो रोक रखता है निद्रा आय तो आंख मशल कर उडाता है. जाने बापौती डूब जायगी ! पेशाब रोकने से और वक्त पर निद्रा नहीं लेने से जो बीमारियां भुक्तनी पडे वह मुनाफे में ! यदि प्रेक्षक के मात, पिता, स्त्री का रूप बना उस नाटकशाला में नृत्य करें तो तत्काल क्रोध में आ जाता है और हमारी इज्जत खराब की ऐसी फरयाद करने को तैयार हो जाता है ! उसके कुटुम्ब तो इज्जतदार हैं और नाटक शाला के रामचन्द्र, सीता, कृष्ण, रुक्मणी, हरि-

श्चन्द्र, तारासती आदि महापुरुषों और महासतीयों बिना इज्जत के समझ लिये हैं जिनके रूप को सब लोगों के सन्मुख नचाकर कोड़ी २ पैसा २ दूसरे के पास से मंगाकर उनका फजीता कराने में मजा मानता है। उन महासतीयों के रूप, अङ्गोपाङ्ग को विषय दृष्टि से निरक्षण कर कुचेष्टा कर कर्म बंध करते हैं उसका तो उस अज्ञानी को भान ही कहां से होय! अरे भोले! जिनको तुम परमेश्वर पुरुषोत्तम महासती कहते हो, जिनके नाम की बदोलत से दुनियां में सुख सम्पत्ती के भुक्ता बने हो. उनके रूप को अपने सन्मुख नचाकर तमाशा देखते आप ऊंचासन पर बैठ उनको दान पुन्य देते कुछ शरम भी आती है? ऐसे २ महापातक के कामों में तो दोड २ कर जाते हैं और धर्म श्रवन करने से मुंह मोडते हैं ऐसे अधर्मों से धर्म दूर ही रहता है।

और भी कितनेक कहते हैं कि- हम से धर्म नहीं बने तो हम सुन कर क्या करें? उनको जानना चाहिये कि- जैसे किसी ने सुना कि अमुक स्थान व्यन्त्रोपसर्ग है वह उस स्थानको उसका वश पहुंचेगा वहां तक नहीं जायगा, कदाचित जानेका काम पडा तो वहां डरता हुआ जायगा और घंटे का काम आध घंटे में ही करके भाग आवेगा; ऐसे ही जो सुनेगा कि अमुक पाप का काम है वह काम उसका वश पहुंचेगा वहां तक तो नहीं करेगा, कदाचित करने का प्रसंग प्राप्त हुआ तो थोड में ही पूरा कर देगा और अवसर प्राप्त हुये पाप के त्याग भी कर सकेगा। अनजान में उपसर्ग के स्थान में फंस कर जैसे मरता है तैसेही अज्ञानी संसार में डुब जायगा और भी कितनेक कहते हैं हम समझते नहीं हैं तो सुनने से क्या फायदा? उन को समझना चाहिये कि—जैसे सर्प, विच्छु, के दंश वाले को झाडा देते हैं वह उसमें समझता नहीं है तो भी उसका विष दूर हो जाता है, एकान्त ज्वर वगैरा की कहानी सुनने मात्र से उस दुःख से मुक्त हो जाता है तो क्या परमेश्वर प्रणित आचार्यादि महा पुरुषों कथित शास्त्र के श्रवन से पाप कमी न होगा?

जरूर ही होगा । ऐसा निश्चय श्रद्धात्मक बन शास्त्र श्रवन अवश्य ही करना चाहिये । सुनते २ समझ भी पड़ने लगेगी, सुनने में तो अवश्य नफा ही है । दशवें कालिक सूत्र में कहा है कि—

गाथा—सोच्चा जाणइ कल्लाणं । सोच्चा जाणइ पावगं ॥
उभयं पि जाणइ सोच्चा । जं सेयं त समायरे ॥११॥ अ० । ४

अर्थात्—अमुक काम आत्मा के कल्यान होने का है और अमुक काम आत्मा को पाप का दुर्गति में पटकने का है यह दोनों बातें सुनने से ही जानी जाती हैं फिर आत्मा को जो श्रेष्ट कार्य (काम) मालूम होगा उसही का वह हितार्थी हो स्वीकार करेगा ही. और धर्म के मुख्य दो प्रकार कहे हैं, उनमें प्रथम श्रुत धर्म ही है जिसका अर्थ होता है सुनना इत्यादि से स्पष्ट विदित होता है कि मुमुक्षुओं का इष्टितार्थ साधक आठवां साधन शास्त्र श्रवन करना ही है सो सत्य है किन्तु इसकी भी प्राप्ति होना बहुत ही दुर्लभ है ।

श्रोता (सुनने वाले के) २१ गुन ।

१ 'धर्म की रुची वाला- जिस प्रकार ज्वर मुक्त होने से भोजन की रुची होती है तैसे ही कर्म से हलके हुये जीवों को धर्म की रुची होतीहै तब वे परीक्षा पूर्वक धर्म को ग्रहन करते हैं.जब सोना, चांदी, जवाहिर, वस्त्र आदि किसी भी वस्तु को बिना परीक्षा ग्रहण नहीं की जाती है । किम्बहु- दमड़ी की हाण्डी को भी ठोक बजाकर परीक्षा पूर्वक ग्रहन करते हैं तो फिर अमूल्य दोनों भवों में सुख का दाता सम्पूर्ण जीवन रूप दामके बदले जो धर्म ग्रहन किया जाताहै वह तो विशेष परीक्षापूर्वक ग्रहन करना उचितहै किन्तु आजकल इस बात की बिलकुल परवाह नहीं रखते हैं, लकीर के फकीर बन देखा देखी किये जाते हैं. कहा है कि:—

शेर—एक एक के पीछे चले. रास्ता न कोई बूझता ।
अन्धे फंसे सब घोर में, कहां तक पुकार सूझता ॥

तथा—दोहा—बडा ऊंट आगे हुआ . पीछे हुई कतार ॥
सब ही डूबे बापड़े । बडे ऊंट के लार ॥

उक्त कहवत के अनुसार ही इस वक्तका रिवाज देखा जाताहै बहुत से लोग कहते हैं कि हमारे वंश परम्परा से चले आते धर्म को छोडकर इस नये धर्म को हम किस प्रकार स्वीकार करें, उनसे पूंछा जाता है कि यदि तुम्हारे पूर्वज दरिद्री होवें और तुम श्रीमान बन गये तो क्या धन को फेंककर तुम भी वैसे ही बन आओगे ? तुमारे बाप दादे अन्धे लगडे हों तो क्या तुम भी आंखें फोड टंगडी तोड अन्धे लंगडे बनोगे ! यह जवाब उनको बुरा लगता है और उत्तर में ना कहते हैं, तो फिर क्या तुम्हारे वंशज धर्म में ही आडे आते हैं. अरे भाई ! धर्म की बाबत में किसी का पक्ष धारन करना उचित ही नहीं है. आत्म-हितेच्छु श्रोता तो जिस प्रकार सुवर्ण को कस छेद * और ताप रूप परीक्षा कर ग्रहण करते हैं तैसे ही जो कुदरती बुद्धि से और शास्त्र के न्याय से सहमत हों उस ही धर्म की रुची श्रोता की होनी चाहिये. २ दुःख से भय भीतः—जो नर्क तिर्यंचादि दुर्गति के डर से तथा जन्म जरा मृत्यु के डर से डरेगा वही धर्माचरण कर सकेगा, निडरों पर

---

* गाथा—पाण वहाइ आण पाव ठाणाण जोउ पडि सेहो ।
झाणऽज्झयणाइणं, जोय विही एस धम्म कसो ॥१॥
बज्झाणु ठाणेणं, जेणण वाहिज्जाए तयणियमा ।
संभवइ य परिसुद्धं, सो पुण धम्मम्हि छेउत्ति ॥२॥
जी वाइ भाववाओ, बधाइ परसहाणो इहं तावो ।
ए एहिं परिसुद्धो, धम्मो धम्म तणु मुवेइ ॥३॥

अर्थ—प्राण वधादि पाप स्थान का निषेध तथा ध्यान अध्ययनादि सत्कर्मों का आचरन वही धर्म का कष है ॥१॥ जिस बाह्य क्रिया से धर्म के विषय में बाधा न पहोंच सके अर्थात् मलिनता न आसके किन्तु निर्मलता बढ़ती रहे उसको धर्म विषय में छेद कहते हैं ॥२॥ जिससे पूर्व कृत बन्ध छूट जाय और नवीन बन्ध न होय ऐसा जीवादि पदार्थों का जिसमें कथन हो वह धर्म विषय में ताप समझना इस प्रकार धर्म की परीक्षा की जाती है ।

उपदेश का असर होता ही नहीं है. + सुख का इच्छक जो आत्मिक सुख को व स्वर्ग मोक्ष के सुख की इच्छा वाला होगा वही धर्म श्रवण से धर्माचरण कर शारीरिक दुःख की दरकार नहीं रखता धर्म परायण बनेगा. ४ बुद्धी वन्त—शास्त्र के गुह्य रहस्य का ज्ञाता बुद्धीवन्त ही होता है और वही परीक्षा पूर्वक धर्माचरन कर सकता है. ५ मनन कर्त्ता—जो श्रवणित शास्त्रार्थ का हृदय कोष में संग्रह कर मनन (विचार) पूर्वक निर्णयात्मक बनेगा वही आचरित धर्म में स्थिर रहेगा. जो शास्त्र सुन कर वहीं छोड़ जाने वाले हैं वे घर के कार्य से भी खोटे होते हैं और इधर भी लाभ नहीं ले सकते हैं. "दोनो खोइरे जोगीडा मुद्रा ने आदेश" ऐसे हो जाते हैं. ६ धारणा:—श्रवण किये शास्त्रार्थ को बहुत काल हृदय में धारन कर रखेगा वही विशेषज्ञ बन सकेगा. ७ हेय ज्ञेय उपादेय का ज्ञाता—सुनी हुई बातें सब एक सी ही नहीं होती हैं इसलिये विद्वान श्रोता उसको तीन विभागों में विविक्षित करते हैं. यथा—हेय (छोड़ने योग्य) वस्तु का त्याग करे, २ ज्ञेय जानने योग्य वस्तु को हृदय में स्थापन कर रखे और ३ उपादेय आदरणीय वस्तु का यथा शक्ति आचरन करे. ८ निश्चय व्यवहार ज्ञाता—निश्चय व्यवहार का जोड़ा दोनों पैरों के जैसा है. चलती

+ दृष्टान्त—किसी जमीकन्द के भक्षन कर्त्ता श्रावक से साधु जी ने कहा—भाई? बहुत पाप करोगे तो नर्क में जाना पड़ेगा? श्रावक बोला—महाराज जी? नर्क कितनी है साधु जी बोले-सात श्रावक बोला-महाराज जी मैं तो पन्द्रह तक फगार कस कर बैठा था, आपने तो आधी ही नहीं बताई?? कहिये ये पाठको? ऐसे निडर पर उपदेश किस प्रकार असर कर सकता है।

श्री कृपारामजी महाराज ने अच्छे और बुरे श्रोता के गुन निम्नोक्त प्रकार से कहे हैं। प्रथम श्रोता गुन यह, नेह भर नेणे निरखे॥ हंसत वदन हुंकार, सार पण्डित गुन परखे। श्रवन दे गुरु वयन, सुणत चित्त राखे सरखे। भाव भेद रस भीन्ह, रीझ मनि माहीं हरखे॥ वेदक विनय विचार, सार चतुराई आगला॥ कहे कृपा ऐसी सभा तव पण्डित वाचे कला।१। केई खेलावे बाल, धर्म मत माने झूठी। केई न धारे रहस्य, जब बीच पाछे ऊठी। कोई बैठे ऊंघाय, केइ जावे सभ बीच उठी। रहस्य पूरे केइ ढोल, केइ करे निन्दा अपूठी॥ केइ मलें हाथ केइ करी गोडे बीच घाले गला। कहे कृपा ऐसो सभा, तो पण्डित कैसे वाचे कला

वक्त जिस पैर का प्रयोजन पड़ता है उसी ही पैर को आगे रखा जाता है तैसे ही शास्त्र का कथन भी दोनों नय युक्त होता है. जैसे निश्चय में "काल किचा" अर्थात् सब जीव आयुष्य काल पूर्ण होते ही मरते हैं. और व्यवहार में ठाणांग सूत्र कथित सात कारनों से आयुष्य टूटता है, इत्यादि सब कथन को यथा उचित स्थापन करे. ९ विनय वन्त:—विनीत को ही यथोचित ज्ञान परिणमता है, सुनते २ जो जो संशय उत्पन्न हों वे साविनय उसका निर्णय करले. १० दृढ श्रधालु—अनेकान्त शास्त्र के सूक्ष्म भावों को सुन कर चित्त को डांमाडोल नहीं करता, जो वचन समझ में नहीं आवे तो अपनी बुद्धी की कसर जान श्रद्धालु ही दृढ रह सकेगा. ११ अवसर दक्ष जिस वक्त जैसा उपदेश चलाने का मौका हो उस वक्त सविनय प्रश्न पूंछ वैसे ही उपदेश चलाने की समीक्षा करे. १२ निर्विति गिच्छी:—व्याख्यान श्रवन करने से मुझे अवश्य ही फल प्राप्त होगा. ऐसा निश्चयात्मक होवे. १३ जिज्ञासु:—क्षुधित को भोजन की तृषित को पानी की, रोगी को औषधि की. लोभी को लाभ की पंथ भूले को साथ की जिज्ञासा—उत्कंठा हो वैसी ही श्रोता को ज्ञानादि गुन प्राप्ति की उत्कंठा होनी चाहिये. १४ रस ग्राही:—उक्त क्षुधातुरादि कोइ च्छित वस्तु प्राप्त होने ने जिस प्रेम पूर्वक वे उसको भोग कर प्राप्त करके खुशी होते हैं तैसे ही श्रोता को भी व्याख्यान श्रवन का योग्य प्राप्त हुये अत्युत्सकता से उसका लाभ लेना चाहिये. १५ इह लोक सम्बन्धीसुख:—जैसे कि धन पुत्र यशः कीर्ती की इच्छा रहित होवे ज्ञान के महा लाभ को इस लोक सम्बन्धी क्षिणिक सुख के लिये गमावे नहीं. १६ परलोक सम्बन्धी:-राज पद्वी स्वर्ग सुख की इच्छा नहीं करता केवल मोक्ष फल की ही इच्छा रखे. १७ वक्ता को आहार वस्त्र स्थान सेवा धन आदि यथा उचित सहायता दे उनके उत्साह में वृद्धी करे. १८ वक्ता का चित्त प्रसन्न रखे. १९ सुनी हुई वातों का अवसर उचित घोषणा प्राति घोषणा

(प्रश्नोत्तर) कर निश्चय करे. २० व्याख्यान में सुना कथन मित्रादि के आगे प्रकाश कर उनका चित्त भी व्याख्यान सुनने की ओर आकर्षित करे. और २१ सब शुभ ही शुभ गुनों का ग्राहक होवे. *

उक्त प्रकार के गुन के धारक श्रोता वर्ग की सभा में ही पण्डित पुरुषों के ज्ञान की खूबियां जाहिरात में आती हैं. क्योंकि पण्डित तो दुकानदार के समान सूक्ष्म बादर व्यवहारिक निश्चयिक चारित्रिक ग्रन्थित स्वसमय परसमय आदि अनेक प्रकार के ज्ञान के ज्ञाता होते हैं, हलदी के ग्राहक के सन्मुख केशर का डिब्बा खोले और खादी के ग्राहक के आगे रेशम का बुकचा खोले तो क्या काम आवे? पण्डित तो जैसी परिषद देखते हैं वैसा ही व्याख्यान फरमा देते हैं किन्तु शास्त्र के रहस्यों गहन ज्ञान की बातों को उक्त प्रकार के श्रोता ही प्राप्त कर सकते हैं, ऐसे श्रोताजन भी संसार में होने बहुत ही दुर्लभ हैं. ×

---

* श्लोक पठवः पठति लिखति पश्यति परिपृच्छति पण्डितानुपासयति ।
तस्य दिवाकर किरणैर्नलिनिदलमिव विकाश्यते बुद्धि ॥१॥

अर्थ—पढ़ने से लिखने से विचारने से पूछने से और पण्डितों की संगत से-जैसे सूर्य किरणों से कमल विकसित होती है तैसे बुद्धि भी विकसित होती है ऐसा सांवत्सर पद्धती ग्रन्थ में कहा है।

× सुदृष्ट तरङ्गणी ग्रन्थ में श्रोता के ८ गुन निम्नोक्त प्रकार कहे हैं—

गाथा—इच्छा सवण गहणं, धारण सुमरण बुद्धि उहापोह ।
निच्छय पव इमेअो, सोता गुण एव सुणामिय दे ॥ १ ॥

अर्थ—१ धर्म ज्ञान की इच्छा करने वाला, २ एकाग्रता से श्रवण करने वाला, ३ ग्रहण करने योग्य कथन को यथा शक्ति ग्रहण करने वाला, ४ ग्रहित कथन को नहीं भूलने वाला, ५ धारन किये ज्ञान को वारम्वार स्मरन करने वाला ६ संशय उत्पन्न हुये पूछ कर निर्णय करने वाला, ७ पूरा खुलासा न मिले वहां तक प्रति सोचन करने वाला तथा मतान्तरीयों से चरचा करने वाला, और ८ सत्यार्थित कथन का निश्चय करने वाला।

नन्दी जी शास्त्र में १४ प्रकार के श्रोता कहे हैं—१ हिमनेय श्रोता चलनी के समान सार २ पदार्थ को छोड़ तुच्छ पदार्थ के समान दुर्गुन को ग्रहन करते हैं २ बिल्ली के समान ज्यों बिल्ली दूध को जमीन पर डाल कर चाट २ कर पीती है त्यों कितने श्रोता प्रथम वक्ता

१ शुद्ध श्रधान।

"सद्धा परम दुल्लहा" श्री जिनेश्वर ने कहा है कि--आत्मा को श्रद्धा समकित की प्राप्ति होना बहुत ही दुर्लभ है? शास्त्र सुनने का जोग भी

का मन दुःखा कर फिर उपदेश श्रवन करते हैं ३ बुगले के समान कितनेक श्रोता ऊपर से तो उज्वल घने भक्ति भाव दर्शाते हैं और अन्तः करण में कपट रख जिनसे ज्ञानादि गुन प्राप्त किये उनके ही साथ दगा करते हैं ४ पाषान के समान कितनेक श्रोता सद्बोध रूप वर्षाद से भीज कर ऊपर से तो वैराग्य भाव रूप दमक देखाते हैं किन्तु अन्तः करण उन का विलकुल ही भीजता नहीं है कोरे रह जाते हैं अर्थात् अकृत्य करने से विलकुल ही डर नहीं लाते हैं ५ सर्प के समान कितनेक श्रोता ज्ञान रूप दूध पिलाने वाले गुरु से ही वेमुख बन उस ज्ञान को विषमय परिणमाते हैं अर्थात् उनके ही मत (धर्म) की फटनी करते हैं ६ भैंस के समान कितनेक श्रोता सभा रूप सरोवर वीकथा कदाग्रह रूप गोमय मूत्र से डोहला घना गड़बड़ मचा फिर उपदेश रूप जलपान करते हैं ७ फूटे घड़े के समान कितनेक श्रोता सभा रूप सरोवर में सद्बोध रुप पानी से पूर्ण भरा जाते हैं वाहर निकलते ही खाली हो जाते हैं सब भूल जाते हैं ८ डंश के समान कितनेक श्रोता कू वचन रूप दंश कर ज्ञानी का दिल दुःखा कर फिर ज्ञान ग्रहन करते है ९ जोंक के समान कितनेक श्रोता ज्ञानदाता सद्बोधक के सद्गुण रूप अच्छे खून को छोड़ कर दुर्गुन रूप खराब विगड़े रक्त को ग्रहन करते हैं यह ९ प्रकार के पापाचारी-बुरे श्रोता जानना) १० पृथ्वी के समान कितने श्रोता प्रथम तो ज्ञानदाता रुप कृषी को वचन शिक्षन रूप हल खखरादि के खोदाने ज्ञान रूप बीज को ग्रहन करते विशेष दुःख देते हैं फिर सद्भाभी रूप वृष्टी से पोषन हो ज्ञानी गुनी रुप फुलित फलित बन ज्ञान रुप धर्म धान्य के देने वाले प्रसार करने वाले बनते हैं ११ अगर के समान श्रोता को गुरु अधिक प्रेरना कर मर्दन करते हैं त्यों २ अधिक अधिक धर्म ... ज्ञान के प्रसार रुप सुगन्ध के देने वाले होते हैं यह दो मध्यम श्रोता) १२ बकरी के समान श्रोता सभा के रुप सरोवर में ज्ञान रुप पानी को विलकुल ही डोहला नहीं करते स्वच्छ निर्मल ज्ञानी के गुन रूप जलपान आप भी करते हैं और दूसरों को भी करने देते हैं १३ गौ के समान कितनेक श्रोता घास फूस के समान थोड़ा सा ज्ञान गुन ग्रहन कर ज्ञानदाता के महा भक्त बन जाते हैं और आहार वस्त्र पात्र स्थान शास्त्र औषधि इत्यादि इच्छित दान रुप दूध सर उन्हें साता उप जाते हैं और १४ हंस के समान कितनेक श्रोता वाह्य अभ्यान्तर उज्वल सरल स्वभावी बने मुक्ता फल (मोती) के समान शास्त्र वचन ग्रहन कर सब जीवों को सुखदाता होते हैं यह ३ प्रकार के उत्तम श्रोता के लक्षन कहे) इन १४ प्रकार के श्रोताओं का स्वरूप समझ कर जो उपरोक्त ९ प्रकार के दुष्ट श्रोता के स्वभाव को छोड़ कर निम्नोक्त मध्यम तथा उत्तम श्रोता के गुन का धारक बनेगा वह ज्ञानादि उत्तम गुनों का धारक होगा।

अनेक वक्त बन जाता है और सुनते भी हैं परन्तु--कितनेक हमारे बाप दादा सुनते आये हैं तो हमें भी सुनना चाहिये ऐसे कुल रूढ़ी सर, कितनेक-हम जैन कुल में जन्मे हैं तो व्याख्यान सुनना ही चाहिये, कितनेक-हम बडे नामांकित हैं आगे बैठने वाले हैं, हमें सब धर्मी समझते हैं, तो व्याख्यान जरूर सुनना चाहिये जिससे मेरा मान महात्म बना रहेगा कितनेक अपने ग्राम में साधु आये हैं जो ५-१० मनुष्य व्याख्यान सुनने नहीं जायंगे तो अपने ग्राम का अच्छा नहीं लगेगा साधु जी खुश होवेंगे तो कभी अपने को कुछ चुटकला बता देंगे इत्यादि मतलब पुरा करने कितनेक जो हम व्याख्यान में जावेंगे तो लोग हमें धर्मात्मा कहेंगे यों मान के मरोड़े कितनेक अपने फलाने व्याख्यान में जाते हैं तो अपने को भी जाना यों दोस्ती निभाने कितनेक वडे आदमी की शरम में आकर खुशामदी के लिये, कितनेक स्त्री पुरुषों का रूप श्रृंगार निरक्षन कर दुष्ट वासना पोषन इत्यादि अनेक हेतुओं से अन्तःकरण की श्रद्धा विना जो व्याख्यानादि सुनते हैं उनको ज्ञान गुन प्राप्त होना बहुत मुशकिल है. × कहा है कि—

दोहा—दीनी पन लागी नहीं, रीते चूले फूंक ॥
गुरू बिचारा क्या करे, चेले में है चूक ॥

और भी श्लोक—पत्रं नैव यदा करीलि विटपे दोषो वसंतस्या किं ।
नोलुको न विलोकयने यदि दिवा सूर्यस्य किं दुषणम् १
वर्षा नैव पताति चातक मुखे मेघस्य किं दुपणम् ।
यद्भाग्य विधिना ललाट लिखितं कर्मस्य किंदुषणम् ॥ भर्तृहरी

अर्थ—वसंत ऋतु प्राप्त होते भी जो वृक्ष के कुंपल न फूटे तो

×श्लोक-यस्य नास्ति स्वय प्रज्ञा । शास्त्र तस्य करोति किम् ॥
लोचनाभ्यां विहीनस्य । दर्पण किं करीस्यति ॥ १॥ चाणक्यनीति.

अर्थ-जिस प्रकार अन्धे को दर्पन निरूपयोगी होता है वैसे ही निर्बुद्धी को शास्त्र भी निरूपयोगी हो जाता है.

वसंत ऋतु का क्या दोष ? जो जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर भी उल्लु उसे न देख सके तो सूर्य का क्या दोष ? अति वृष्टि हो कर भी चातक के मुख में बिन्दु न पड़े तो वर्षा का क्या दोष ? ऐसे ही मूढ प्राणियों को जो सद्बोध असर न करे तो उपदेशक का क्या दोष ? अर्थात् कुछ भी नहीं. जैसे कोरडू मूंग को हजारों मन अग्नि पानी के संयोग से पकावे तो भी वह पकता नहीं है. तैसे ही अभव्य जीवों के कठिन हृदय को तीर्थंकरों का उपदेश भी असर नहीं करता है तो अन्य का कहना ही क्या ?

दोहा—चार कोस का मांडला, वे वाणी के घेर।
भारी कर्म जीवडे, वहां भी रह गये कोरे ॥ १ ॥

मराठी के एक जैन कवि ने कहा है कि:—

अभंग—असतां गौरस एक त्वचा आड़, सांडनी गोचीड रक्त सेवी।
काय कवल्या ती रुचे मुक्ता चारा सन्मती दाता दास म्हणे ॥

अर्थात् गौ स्थन के एक चमड़ी के अन्तर में रहे हुए दुग्धपान का त्याग कर जैसे बग रक्त पान करती है तैसे ही पापिष्ट जीव सद्बोध में रहे हुवे सद्गुणों का त्याग कर दुर्गुण ग्रहण कर लेते हैं, और मुक्ता फल आहार तो हंस को ही रुचता पचता है कौआ तो श्रेष्ट फलों को छोड़ विष्टा में ही मजा मानता है. तैसे ही अज्ञानी जन धर्म कथा को छोड़ कुकथाओं में ही मजा मानते हैं.

कितनेक कहते हैं कि क्या सुनने जायें वे तो अपना ही अपना गाते हैं, वे जैसा कहते हैं ऐसा चलने वाला अभी कौन है हम सब जानते हैं, ऐसे निन्दक को जानना चाहिये कि:—

श्लोक—पादे पादे निधानानि, योजने रस कुपिका।
भाग्यहीनं नैव पश्यती. बहु रत्न वसुंधरा ॥

अर्थात् पैर २ पर द्रव्य का निधान है, योजन २ पर रस कुपिका है

यों रत्नधरा बहु रत्नों से भरी है किन्तु अभागी की दृष्टी ही कहां से आवे ? अर्थात् नहीं देख सकता है तैसे ही इस सृष्टी में अभी छची ऋद्धी सम्पदा के त्यागी महा वैरागी पण्डित रत्न शुद्धाचारी महा तपस्वी महा वैयावच्ची अनेक गुनों के धारक साधु साध्वी और दयावान दानवान दृढधर्मी, अल्पारंभी, अल्पममत्वी, संसारावस्था में रहे हुए भी आत्मा का सुधार करने वाले बहुत से श्रावक श्राविका मौजूद हैं पंचम आरे के अन्त तक बने रहेंगे किन्तु अच्छे पदार्थ बहुत थोडे होते हैं वे उस श्रद्धा हीने के दृष्टी गोचर होवे ही कहां से ? इसलिये कहा है कि श्रद्धा का होना बहुत ही मुशकिल है।

१० धर्म स्पर्शना।

उक्त नव साधनों की प्राप्ति का सार्थक दशवें साधन धर्म की स्पर्शना करने से ही होता है. किन्तु अन्य साधन की तरह इसकी भी प्राप्ती होना बहुत ही दुर्लभ है सो प्रत्यक्ष देखा जाता है. धर्म की श्रद्धा न करने वाले सम्यक्त्वी जीवों चारों ही गति में पाते हैं किन्तु सम्पूर्ण पणे धर्म स्पर्शने की सत्ता तो केवल मनुष्य को ही प्राप्त होती है. मनुष्यों में भी बहुत से मनुष्यों उक्त ९ साधनों को प्राप्त होकर भी धर्म से वंचित रह जाते हैं. उनका कृतव्य है कि कपिल केवली के फरमान को अपना लक्ष विन्दु बनावें वह यह है:—

गाथा—अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्ख पउराए ॥
किं नाम होज तं कम्मयं, जेणाहं दोग्गइं न गच्छे ज्जा ॥

अर्थात्—इस विश्वालय में रहे सर्व पुद्गली पदार्थ पर्याय की अपेक्षा से अधृव—अस्थिर हैं, जो भाव वस्तु के इस वक्त दीखते हैं वे क्षिणान्तर में ही पलट जाते हैं. यों पर्याय का पलटा होते २ स्थिति पूर्ण होते ही द्रव्यादि की अपेक्षा अन्य रूप में परिणमने से अशाश्वत- विनाशिक कहे जाते हैं. ऐसे अध्रुव और अशाश्वत पदार्थों से आत्मा को अखिण्डत सुख

प्राप्ति की आशा भी सन्ध्या के रंग के समान किंचित झलक बताकर नष्ट भ्रष्ट हो जाता है तैसे ही जिस शरीर स्थान में आत्मा निवास कर रही है इसे ही सुखस्थान समझ रही है तो यह शरीर और इसके सम्बन्ध में सुख की आशा आकाश कुसुमवत् व्यर्थ है । इसलिये कहा है कि-

गाथा-नवी सुही देवता देवलोए । नवी सुही पुढवी पइराया ॥
नवी सुही सेठ सनावइए । एगंत सुही साहू वीयरागी ॥

अर्थात्-शाश्वत रत्नों के बिमान में निवास करने वाले हजारों देवांगना के रूप के साथ हजारों रूप बना विलास करने वाले सागरोपम के आयुष्य धारक देवताओं भी सुखी नहीं हैं. छै खंड पृथवी के राज के भोक्ता हजारों स्त्रीयों के साथ भोग भोगवने वाले हजारों देवताओं से सेवित राजा भी सुखी नहीं है. इत्यादि सम्पदा के धारक अनेक कुटुम्बाधिकारी सेठ भी सुखी नहीं हैं. और लक्षों हाथी, घोड़े, रथ, क्रोड़ो पैदल सैना के अधिपती भी सुखी नहीं हैं, अर्थात् इस संसार में कोई भी सुखी नहीं है, जो कोई सुखी हैं तो केवल वीतरागी साधुही सुखी हैं । तथा मुझे भी प्राप्त सम्पदा का भोग करते इतना काल व्यतीत हो गया किन्तु आज तक अक्षय सुख प्राप्त नहीं कर सकातो इससे अब क्या सुख प्रप्त होने वाला है ? इस लिये अब मुझे जानने की और आचरने की आवश्यकता है कि जिससे मैं दुरगति को प्राप्त न होऊं ? पुनः दुःखी न बनुं. ऐसा सुखेच्छु-मुमुक्षु ही संसार के महादुःखों से भयभीत बना हुआ मोक्ष दाता ज्ञान प्राप्ति तप संयम के किञ्चित दुःख की दरकार नहीं करता हुआ धर्म स्पर्शने को उद्यत बन सकता है और वही मोक्ष पथ साधन कर मोक्ष प्राप्ति कर सकता है. सुज्ञपाठको ? उक्त कथन से स्पष्ट समझ गये होंगे कि उक्त दस साधनों के पूर्ण मिले विना मुमुक्षुओं का इष्टितार्थ सिद्ध नहीं होता है. और दशही साधनों की क्रमशः प्राप्ति होना बहुत ही मुशकिल है. किन्तु अपने अनन्तानन्त

पुण्योदय से अब इन सब साधनों को प्राप्त करने का भाग्य शाली बने हैं तो अब अपना कृतव्य है कि इसका यथोचित लाभ शीघ्र ही प्राप्त करलेना.

श्लोक—उद्यमं सहसं धैर्या, बुद्धिशक्ति पराक्रम ॥
षडते यत्र वर्तते, तत्र देवः सहाय कृत ॥ चाणक्य.

अर्थ—१ उद्यम, २ साहस, ३ धैर्य ४ बुद्धी ५ शक्ति और ५ पराक्रम यह ६ गुन जिस स्थान पाते हैं वहां ही देव सहाय कर्ता है ॥

मनहर छन्द ।

मानवे जन्म लेय, आर्य क्षेत्रे एय, उत्तमकुले जन्मेम आर्यु पुरो पामीया ॥
इंद्रियं पूरी निरोगी-काय लक्ष्मी के भोगी, साधुंकी संगत जोगी मिली इस ठामीया ॥
सुन के सूतर धारो श्रद्धा थे भलीपर, यथ शक्ति करणी कर, न कीजे निकामीयां ॥
'अमोल' यह जोग बाई मिली पुण्योदय भाई लाभ लेनाजी उमाइ शिव सुख हामीयां

परम पुज्य श्री कहान जी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषि जी महाराज विरचित 'जैन तत्व प्रकाश' गृन्थ के द्वितीय खण्ड का प्रथम 'धर्म प्राप्ति' प्रकरण समाप्तम् ।



प्रकरण दूसरा—सूत्र धर्म।

पढमं णाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजए।
अण्णाणी किं का ही किं वा नाहि सेय पावगं ॥१०॥

अर्थात्—प्रथम ज्ञान और फिर दया, ज्ञानसे जीवा जीव का स्वरूप जानेगा तब ही उनका रक्षण कर सकेगा. जितने संयती हैं कि वे सब इस प्रकार संयम धर्म में संस्थित हैं, बिचारे अज्ञानियों क्या जान सक्ते हैं कि मेरी आत्मा के कल्याण (सुख) का उपाय अमुक है और पाप (दुःख) का उपाय अमुक है, जो जानेगा ही नहीं वह बेचारे दुःख के कारन से किस प्रकार बच सकेंगे और सुख का साधन किस प्रकार कर सकेगा. * इसलिये सुखार्थियों को ज्ञान प्राप्त करने की परमावश्यकता है. कहा है:—

काव्य—णाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अण्णाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य सं खएणं, एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥ उत्त० अ० ३

अर्थात्—ज्ञान अज्ञानरूप पुद्गल को विध्वंश करता है जिससे राग द्वेष और मोह का नाश हो मोक्ष के आमिश्र एकान्त अनन्त अक्षय सुख का भोक्ता आत्मा बनता है.

इसलिये एकान्त अखण्डित सुख के इच्छक मुमुक्षु जीवों को जहां तक सर्वज्ञता (केवल ज्ञान) प्राप्त न हो वहां तक उस पद को प्राप्त कराने वाला श्रुत ज्ञान का अभ्यास यथा शक्ति करना उसमें भी प्रति समय वृद्धि करने का उद्यमी बना रहना, जिससे सर्वज्ञता को प्राप्त कर इच्छितार्थ सिद्धी करे.

---

* श्लोक—मातेव रक्षति पितेव हिते नियुक्त। कान्तेव चाभिरमय [illegible] खेदं॥ लक्ष्मी तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्ति किं किन साधयति कल्प लतेव विद्या ॥१॥ भो० [illegible]

अर्थ—विद्या—माता के समान रक्षक, पिता के समान हितयोजक, स्त्री के समान मोद दाता आनन्ददाता, लक्ष्मी वृद्धा और कीर्ति की विस्तारक कल्पलता तुल्य सब इच्छितार्थ की पूरे वाली है।

अब यहां सिन्धू में से बिन्दु रूप जिस २ श्रुत ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है उस २ ज्ञान का स्वरूप संक्षेप में यथामति दर्शाता हूं. श्री उत्तराध्ययन जी सूत्र के २८ वें अध्याय में कहा है कि :—

गाथा—जीवा जीवा य बंधोय, पुण्णं पावसवो तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव ॥ १४ ॥
तहियाणं तु भावाणं, सब्भा वे उवएसणं।
भावेणं सद्दहं तस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ १५ ॥

अर्थात्—१ जीव, २ अजीव, ३ बन्ध*, ४ पुण्य, ५ पाप, ६ आश्रव ७ संवर ८ निर्जरा और ९ मोक्ष इन नव ही तत्वों के ज्ञान को जो ज्ञानावर्णिय कर्म के क्षयोपशम होने से जाति स्मरणादि ज्ञान को प्राप्त कर गुरु के उपदेश बिना जाने, तथा गुरु का उपदेश होने से जाने वही सम्यक्त्वी जानना. अर्थात् नवतत्व का ज्ञाता ही सम्यक्त्व का धारक होता है और सम्यक्त्व है सो ही मोक्ष का प्रथम सोपन (पंक्तिया) है, बिना सम्यक्त्व मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है इसलिये मुमुक्षुओं को प्रथम नवतत्व का ज्ञान प्राप्त करने परमावश्यकता है. इसलिये ही यहां उक्त नव तत्व का स्वरूप ७ नय, ४ निक्षेप, ४ प्रमाण द्रव्यादि के अन्तर रहा हुआ भाव भेद से मुमुक्षुओं को जानने की आवश्यकता जान इसी का यथामति शास्त्र व ग्रन्थों के आधार से प्रतिपादन करता हुआ नवतत्व का भेदानुभेद समझा कर फिर नवतत्व पर नय निक्षेप प्रमाण जमाऊंगा।

१ " जीव तत्त्व "

जीव यह अनादि अनन्त शाश्वता पदार्थ है. जीव को कभी किसी ने बनाया भी नहीं है और कभी कोई नाश भी नहीं कर सकता है

* इस गाथा में बन्ध तत्व तीसरा कहा है और चाहिये भी तीसरा क्यों कि [illegible] जीव अजीव के सम्बन्ध का ही है किन्तु इस वक्त यहां में बन्ध तत्व आठवां [illegible] इस लिये आगे व्याख्यान आठवां ही लिया गया है.

अर्थात् स्वयं सिद्ध है, सदैव काल जिन्दा रहन से जीव कहलाता है, जिस प्रकार अग्नि का गुन प्रकाश अग्नि से पृथक नहीं है तैसे जीव का गुन भी ज्ञान दर्शन जीव से पृथक् (अलग) नहीं है अर्थात् सब जीव केवल ज्ञान और केवल दर्शन के धारक हैं किन्तु जिस प्रकार अभ्र से आच्छादित सूर्य का प्रकाश दबा रहता है तैसे ही ज्ञानावर्णियादि कर्म पद्गुल से सकर्मिक जीव के ज्ञान दर्शन गुन ढके हुए हैं. अभ्राच्छादित सूर्य भी रात्री दिन का विभाग दर्शाता है तैसे ही ज्ञानादि गुन से ही चैतन्य का चैतन्यत्व और जड़ का जड़त्व पृथक प्रतिभाष होता है. अभ्र से प्रगटी हुई सूर्य किरणों के समान केवल ज्ञान की केवल दर्शन की किरणों से ही मति श्रुति अवधी मनः पर्यव ज्ञान और चक्षु अचक्षु अवधी दर्शन हैं. इनमें मति श्रुति ज्ञान और अचक्षु दर्शन तीन उपयोग बिना तो कोई भी जीव नहीं है. जिस प्रकार रंगीन कांच में से सूर्य की किरण का प्रकाश स्वच्छता रहित कांच का रङ्ग जैसा ही लाल, हरा पड़ता है तैसेही मिथ्यात्वोदय से ज्ञान का प्रकाश विपरीत पड़ता है उसे ही अज्ञान कहते हैं. ज्ञान दर्शन का धारक होने से चैतन्य कहलाता है. इससे ही सुख दुःख को वेदना है। और इससे ही क्रमसे सब कर्म बादलों को दूर कर भव्यत्मा सम्पूर्ण निजगुन को प्रगट कर केवलज्ञान केवल दर्शन मय परमात्म बन जाता है. इससे ही अनन्त शक्तिवन्त है. जिस प्रकार जड़ प्रमाणु के सम्बन्ध से स्कन्ध बनता है तैसे असंख्य प्रदेशात्मक जीव है. प्रमाणुओं का तो संयोग वियोग होता है किन्तु आत्म प्रदेश का संयोग वियोग कदापि नहीं होता है. आत्मा तो अनादि अनन्त असंख्यात प्रदेसमय ही रहता है।

श्री ठाणांग सूत्र के दूसरे ठाणे में दो प्रकार के जीव कहे हैं, यथा- " रूवी जीवा चेव, अरूवी जीवा चेव " अर्थात् १ जो कर्म रहित शुद्ध स्वच्छ सच्चिदानन्द सिद्ध परमात्मा हैं वे अरूवी जीव हैं और अरूवी

नि के कारन से ही उनका स्वरूप रूपी कर्म नहीं कर सकते हैं, जिससे उनकी अवस्था- स्वभाव का पलटा कदापि नहीं होता है. अनन्त काल तक एक ही अवस्था में संस्थित रहते हैं. और २ जैसे मट्टी और धातु अनादि सम्बन्ध धारक हैं तैसे संसारी जीव भी कर्म से अनादि सम्बन्धी हैं. लोह चमकवत् अन्य कर्म पुद्गलों को ग्रहण करते हैं जिनके न्यूनाधिकता से ही जीव गुरुत्व लघुत्व को प्राप्त होता है. हलका भारी बनता है. यही जीव की पर्याय कहलाती है. अर्थात्- कर्म सम्बन्धी जीव अनेक प्रकार के रूप धारन करते हैं. जितने रूप धारन करते हैं उतने ही जीव के भेद कहलाते हैं. ऐसे भेद तो अनन्त हैं किन्तु मुमुक्षु जीवों को सुलभता से बोध होने के लिये जिनका मर्यादित संख्या में समावेश कर दिया है।

१ सब जीवों का चैतन्यता लक्षण एक होने से एक ही प्रकार है. जीव के २ भेद सिद्ध और संसारी। जीवों के ३ भेद॰ त्रस, स्थावर और सिद्ध। जीव के ४ भेद- स्त्री, पुरुष, नपुंशक और अवेदी। जीव के ५ भेद- नेरइये, तिर्यंच, मनुष्य, देवता और सिद्ध. जीव के ६ भेद-- एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय, और अनेन्द्रिय, जीव के ७ भेद- पृथ्वी काय, अप काय, तेऊ काय, वायु काय, वनस्पति काय, त्रस काय, और अकाय, जीव के ८ भेद—नेरइये, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य, मनुष्यनी देवता, देवांगना और सिद्ध। जीव के ९ भेद—नेरइये, तिर्यंच, मनुष्य, देव इन ४ के अपर्याप्ता और पर्याप्ता॰ एवं ८ और सिद्ध। जीव के १० भेद—पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, पंचे-

॰ बेन्द्रि आदि हलने चलने वाले जीव सो त्रस, २ पृथ्व्यादि पांचो स्थिर रहने वाले जीव सो स्थावर.

॰ आहार पर्या, २ शरीर पर्या ३ इन्द्रिय पर्या, ४ श्वासो श्वास पर्या ५ भाषा पर्या और मन पर्या, इन ६ पर्यायों में से तीन पर्याय का तो सब जीवों बन्ध करते हैं बाकी की पर्यायों में से जितनी पर्या जिसमें पाती हैं उतनी पूरी नहीं बन्धे वहां तक अपर्याप्ता और पूरी बन्धे बाद पर्याप्ता.

न्द्रिय और सिद्ध। जीव के ११ भेद—पृथ्वी, एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय इन ५ के अपर्याप्ता पर्याप्ता और सिद्ध। जीव के १२ भेद—पृथवी, अप, तेउ, वायु, वनस्पति, इन ५ के सूक्ष्म और बादर * एवं १० त्रस और सिद्ध। जीव के १३ भेद—पृथ्वी, अप, तेउ, वायु, वनस्पति त्रस, इन ६ भेद के पर्याप्ता और अपर्याप्ता एवं १२ और सिद्ध। जीव के १४ भेद—नरइये, तिर्यंच, तिर्यचनी, मनुष्य, मनुष्यनी, भुवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक यह ४ देवता इनकी ४ देवांगना, एवं १३ और सिद्ध। जीवों के १५ भेद—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चउरेन्द्रिय, असज्ञीपचेन्द्रिय, सज्ञीपचेन्द्रिय ‡ इन ७ के अपर्याप्ता और पर्याप्ता एवं १४ और सिद्ध। इस प्रकार क्रमशः ५६३ संसारी जीवों के भेद होते हैं. वे ५६३ जीव के भेद निम्नोक्त प्रकार हैं।

नेरइये के १४ भेद—१ घम्मा, २ वंसा, ३ सीला, ४ अंजना, ५ रिष्टा, ६ मघा, और ७ माघवती, इस नाम की सातों नर्क में रहने वाले नेरइयों जीवों के पर्याप्ता और अपर्याप्ता एवं १४।

तिर्यंच के ४८ भेद।

१ इन्द्री स्थावर (पृथवी काय) के ४ भेद—१ सब लोक में कज्जल की कुप्पी के समान ठसाठस भरे हैं दृष्टीगत नहीं आवें सो सूक्ष्म पृथवी काय, २ लोक के देश विभाग में दृष्टीगत हों सो बादर पृथवी काया, इन दोनों के अपर्याप्ता और पर्याप्ता एवं ४। अब बादर पृथवी काय के विशेष

---

* पांचो ही स्थावर काय सम्पूर्ण लोक में भरी हैं किन्तु उनका शरीर अत्यन्त बारीक होने से चर्म चक्षु वाला देख सकता नहीं है सो सूक्ष्म और जो मट्टी पानी आदि दृष्टी गत हों सो बादर.

‡ जो माता पिता के संयोग से मनुष्य तिर्यंच उत्पन्न होवे सो और देवता की शैय्या में देवता उत्पन्न होवे तथा नर्क के बिलों (कुंभियों) में नेरीये उत्पन्न होवे सो सन्नी जीव, [illegible] समूर्छिम जीव मनुष्य तिर्यंचादि में उत्पन्न होवें सो असन्नी जीव, सन्नी के मन (विचार शक्ति) होती है असन्नी के मन नहीं होता है.

भेद कहते हैं—१ काली, २ हरी, ३ लाल, ४ पीली, ५ श्वेत, ६ पण्डु और ७ गोपीचन्दन। यह कोमल पृथवी के ७ प्रकार और १ खान की, २ मुरड-कंकर, ३ रेत वालु-रेत, ४ पाषान-पत्थर, ५ सिला, ६ निमक, ७ समुद्र की क्षारी, ८ लोहा, ९ तम्बा, १० तरुआ, ११ सीसा, १२ चांदी, १३ सोना, १४ वज्र हीरा, १५ हरिताल, १६ हिंगलु, १७ मेनसिल, १८ रत्न, १९ सुरमा, २० प्रवाल, २१ अवरख (भोडल) और २२ पारा. यह २२ कठिन पृथवी के प्रकार। इसमें रत्न के १८ प्रकार कहे हैं—१ गोमी रत्न, २ रुचक रत्न, ३ अंक रत्न, ४ स्फटिक रत्न, ५ लोहिताक्ष रत्न, ६ मरकत रत्न, ७ मसलग रत्न, ८ भुजमोचक रत्न, ९ इन्द्रनील रत्न, १० चन्द्रनील रत्न, ११ गेरूक रत्न, १२ हंसगर्भ रत्न १३ पोलक रत्न, १४ चन्द्रप्रभा रत्न, १५ वेरूली रत्न, १६ जलकान्त रत्न, १७ सूर्यकान्त रत्न और १८ सुगन्धी रत्न. इत्यादि अनेक प्रकार मट्टी के जानना।

२ बंभी स्थावर (अपकाय) के ४ भेद—सब लोक व्याप्त सूक्ष्म और लोक के देश विभाग में दृष्टी आवे सो बादर. इन दोनों के पर्याप्ता और अपर्याप्ता, एवं ४ भेद। अब बादर अपकाय के विशेष भेद कहते हैं.—१ वर्षाद का पानी, २ सदैव रात्रि को वर्षे सो ठार का पानी, बारीक २ बूंदें पड़े सो मेघरवे का पानी, ४ काली श्वेत धुंई (समनम) पड़े सो धूंवर का पानी, ५ ओले (गार) वर्षे सो गड़े का पानी, ६ ओस का पानी, ७ गन्धरवादि स्नान आदि के प्रसंग से स्वभाविक गरम पानी निकले सो उष्ण पानी, ८ ठण्डा पानी, ९ लवण समुंद्र का तथा अन्य कुवादि का खारा पानी, १० खट्टा पानी, ११ क्षीर समुद्रादि का दूध जैसा पानी, १२ वारुणी समुद्रादि का मदिरा जैसा पानी, १३ घृत समुद्रादि का घृत जैसा पानी, १४ कालोद समुद्रादि का मीठा पानी, और १५ असंख्यात समुद्रादि का ईख के रस जैसा पानी इत्यादि अनेक प्रकार का पानी जानना।

३ मघ्वी स्थावर (तेऊ काया) के ४ भेद—१ सब लोक व्यापी अग्नि सो सूक्ष्म. २ लोक के देश विभाग (अठाई द्वीप) में प्रत्यक्ष देखने में आवे सो बादर इन दोनों के पर्याप्ता और अपर्याप्ता. एवं ४, अब बादर अग्नि के विशेष नाम कहते हैं—१ चूले की उष्ण राख में चिनगारी हो सो भूभर की अग्नि, २ कुम्भकार के अलाव (निम्बाडे) की अग्नि, ३ टूटती ज्वाला, ४ अखण्ड ज्वाला, ५ चकमक की अग्नि, ६ विद्युत (बिजली) की ७ तारा के टूटने से देखावे सो अग्नि, ८ अरणी के काष्ट में से प्रगटे सो अग्नि, ९ बांस में प्रगटे सो अग्नि, १० अन्य लकड़ादि के घर्षन होते प्रगटे सो अग्नि, ११ सूर्य कान्त (अवा-ग्लास) कांच से सूर्य किरण से प्रगटे सो अग्नि, १२ वनादि में दावा नल लगे सो, १३ विनाश काल में आकाश से अग्नि की वृष्टी हो सो उल्का पात, और १४ समुद्र के पानी का शोष करने वाली वडवानल इत्यादि अनेक प्रकार की अग्नि जानना।

४ समति स्थावर (वायुकाय) के ४ भेद—१ सर्व लोक व्यापक वायु सो सूक्ष्म और २ लोक के देश में रही शरीरादि को लगी भाप हो सो बादर वायु इन दोनों के अपर्याप्ता और पर्याप्ता एवं ४। बादर वायु के विशेष नाम—१—८ पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊंची, नीची, तिरछी दिशा की तथा विदिशा—ईशानादि कौने की वायु, ९ चक्र पड़े सो भमल वायु, १० चारों कौनों में फिर सो मंडल वायु, ११ उर्द्ध चडे सो गुंडल वायु, १२ वादिन्त्र जैसी अवाज करे सो गुंज वायु, १३ वृक्षों को उखाड डाले सो झंज वायु, १४ धीरे २ चले सो शुद्ध वायु, १५ घन वायु और १६ तन वायु यह दोनों नर्क स्वर्ग के तले में हैं इत्यादि अनेक प्रकार की वायु जानना.

५ पयावच स्थावर (वनस्पति काय) के ६ भेद—१ सर्व लोक व्यापक वनस्पति सो सूक्ष्म। लोक के देश विभाग में रहे सो बादर। इसके

भेद—१ एक २ शरीर में एक २ जीव सो प्रत्येक वनस्पति और एक २ शरीर में अनन्ते २ जीव सो साधारन वनस्पति। इन तीनों के अपर्याप्ता और पर्याप्ता एवं ६। वनस्पति के विशेष नाम—प्रत्येक वनस्पति के १२ प्रकार १ वृक्ष, २ गुच्छा, ३ गम्मा, ४ लता, ५ वल्ली, ६ तृण, ७ वलया, ८ पव्वया, ९ कुहण, १० जल वृक्ष, ११ औषधी और १२ हरित काय. इसमें से वृक्ष दो प्रकार के हरडे, बेहडे, आमले, अरीठे, भिलामे, आसापाल आम्ब, जामन, बेर महुये, रायन (खिरनी) इत्यादि एक बीज (गुठली) वाले और २ जामफल सीताफल अनार (दाडम) बीलफल, कवीठ, कैर, लिम्बु, टिमरू, इत्यादि बहु बीज वाले. २ रिंगनी, जवासा, तुलसी, पुंवाडा इत्यादि छोटे झाड सो गुच्छा, ३ जाइ जुई केतकी, केवड़ा गुलाब इत्यादि फूलों के झाड़ सो गम्मा. ४ नागलता अशोकलता, पद्मलता इत्यादि जमीन पर फैल कर ऊंचे होवे सो लता. ५ तोरई, ककड़ी, करेला. टिंडे, तुम्बा, खरबूजे, तरबूजे, वल्लर इत्यादि वेलड़ी. ६ घास, द्रोब, दाभ इत्यादि तृण. ७ सुपारी, खारक, खजूर, दाल चीनी, तमाल, नारियल, इलायची लोंग, ताड़, केले इत्यादि तरह के जो वृक्ष ऊपर जाकर गोलाकार बने हों वे वलया। ८ ईख, एरंड, बेंत, बांस, इत्यादि जिसके मध्य में गांठें हों सो पव्वय, ९ छेल्ली के वेले कुत्ते के टोप इत्यादि तरह से जो जमीन फोड़ कर निकले सो कुहाण, १० कमल, सिंघाड़, शेवाल इत्यादि की तरह जो पानी में उत्पन्न हो सो जल वृक्ष ११ गोधूम (गहूं) २ जव, ३ जवार, ४ बाजरी, ५ शाल, ६ वरटी, ७ राल, ८ कांगनी, ९ कोदरा, १० वरी, ११ मणची, १२ मक्ई, १३ कुरी, १४ अलसी इनकी दाल न होने से यह १४ प्रकार के 'लहा' धान्य कहलाते हैं और १ तूवर, २ मोठ, ३ उड़िद, ४ मूंग, ५ चवल, ६ वटले ७ निवड़े, ८ कुलत्थी, ९ मसूर और १० चने इन १० प्रकार के धान्य की दाल होने से यह 'कठोल' कहे जाते हैं. इन सब २४ प्रकार के धान्यों को औषधी

कहते हैं और १२ पृत्त की भाजी मैथी की भाजी, बथुवे की भाजी, चंदलाई की भाजी, सुवा की भाजी, इत्यादि भाजी के वृक्ष सो हरित काय, यह प्रत्येक वनस्पति में उत्पन्न होती वक्त अनन्त जीव हरी रहे वहां तक असंख्यात जीव और पके हुए बाद जितने बीज हों उतने या संख्याते जीव रहते हैं. और २ मूली अद्रक आलू पिंडालु कांदे लसुन गाजर सकरकन्द सुरणकन्द बनकंद मूशली खुरसाणी अमरवेल थुअर हल्दी इत्यादि को साधारण वनस्पति कहते हैं, इसकी सुई की अग्र (अनी) ऊपर आवे इतने छोटे से टुकड़े में उन निगोदिये जीवों के रहने के जिस प्रकार बड़े शहर में घरों की श्रेणी (लाइन) होती हैं ऐसी असंख्यात श्रेणी हैं, प्रत्येक श्रेणी में घरों की मजलों प्रमाने असंख्यात प्रतरों हैं, जिस प्रकार प्रतरों में कमरे होते हैं तैसे असंख्यात गोले हैं जैसे कमरे में कोटडियों होती हैं तैसे प्रत्येक गोले में असंख्यात शरीर हैं. जैसे कोटडियों में मनुष्य रहते हैं तैसे प्रत्येक शरीर में अनन्त २ * जीव हैं. यों निगोद के पांच अण्डर कहे जाते हैं. इनमें रहे जीवों एक श्वासोश्वास जितने काल में १७॥ जन्म मृत्यु करते हैं, एक मुहुर्त मात्र में ६५५३६ वक्त जन्म के मरते हैं. × जमीन के अन्दर रहा कन्द कभी पकता नहीं है. जैसे सगर्भा स्त्री का उदर विदारन कर बच्चे को निकालते हैं तैसे ही

---

* प्रश्न—सुई के अग्र भाग जितनी थोडी जगह में इतने जीवों का समावेश किस प्रकार हो सकता है? उत्तर—जिस प्रकार क्रोड़ औषधी एकत्र कर उनका चूर्ण बनाया हो तथा अर्क निकाल कर तेल बनाया हो वह सुई के अग्र पर आवे उतने में क्रोड औषधी होती है तथा प्रत्यक्ष देखा है कि मुद्रिका में लगाये हुये बाजरे के दाने जितने कांच में साठ मनुष्यों के बड़े २ फोटो हैं कृत्रिम वस्तु में इस प्रकार समावेश हो जाता है तो फिर कुदरती का तो कहना ही क्या? ऐसा जान जिनेश्वर कथित वचनों में शंका कदापि नहीं लाना।

× एक मुहूर्त में—पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु के जीवों १२८२४ प्रत्येक वनस्पति के ३२००० साधारन वनस्पति के ६५५३६, बेन्द्रिय के ८०, तेन्द्रिय के ६०, चौरिन्द्रिय के ४०, असन्नी पंचेन्द्रिय के २४, और सन्नी पंचेन्द्रिय का १ उत्कृष्टा जन्म मृत्यु होता है।

पृथ्वी को विदारन कर कन्द निकाला जाता है, इसलिये इसे जैन और वैष्णव धर्म के शास्त्रों में अभक्ष अर्थात् खाने के अयोग्य कहा है। यह स्थावर तिर्यंच के २२ भेद हुये।

६ जंगम काय (त्रसजीव)—१ अण्डया-पक्षी आदि जो अण्डे से, २ 'पोयया'-हाथी आदि जो थैली (कथली) से, ३ जराउया-गौ मनुष्य जैसे, ४ रसया-रससे, कीड़े आदि, ५ संसेइमा-श्वेद (पसीने) से ज्यूं पटमलादि, ६ सम्मुच्छिमा-समुर्च्छिम मक्खी आदि, ७ उभिया-जमीन फोड कर निकले सो तीड पतङ्गादि, और ८ उववाइया—उपपातिक देव नेरइये. यों ८ प्रकार से त्रस जीवों की उत्पत्ती होती है। १ अभिक्कंतं—सन्मुख आवे, २ पडिक्कंतं—पीछे जावे, ३ संकुचिये—शरीर संकोचन करे, ४ पसारियं—शरीर प्रसारे, ५ रुयं—रुदन करे ६ भंतः— भयभीत बने, ७ तसियं—त्रासपावे, ८ पलाइयं—भाग जावे, ९ आगइ-गइ—गतागत-गमनागमन करे विन्नया इन ९ लक्षणों से त्रस जीव को पहचानना।

त्रस तिर्यंच के २६ भेद—शंख सीप कोड़े गिंडोले लट अलसीये, जलोक, लट पोरे कृमी इत्यादि काया और मुख दो इन्द्रियों के धारक जीवों के २ भेद—१ पर्याप्ता और अपर्याप्ता ज्यूं, लीख, कीडी, पटमल, कुंथुवे, धनेरे, इल्ली उदइ (दीमक); मकोड़े गधइये इत्यादि काया मुख और नासिका के धारक तेन्द्रिय जीव के दो भेद अपर्याप्ता और पर्याप्ता. डांस, मच्छर, मक्खी, तीड़, पतङ्ग, भ्रमर, वृश्चिक (बिच्छू) खेंकड़े, पुंदी, मकड़ी, चगा कंसारी इत्यादि काया मुख नाक और आंख वाले जीव के दो भेद अपर्याप्ता और पर्याप्ता यह ३ विक्लेन्द्रिय के ६ भेद हुये और पंचेन्द्रिय तिर्यंच के २० भेद—(१) पानी में रहने वाले जलचर के ४ भेद—१ सज्ञी और २ असज्ञी इन दोनों के अपर्याप्ता और पर्याप्ता एवं ४। जलचर के विशेष नाम-मच्छ, मच्छ, मगर, सुसुमार, काछवे मेंडक इत्यादि (२) पृथवी पर चलने वाले स्थलचर के ४ भेद--

सञ्ज्ञी असञ्ज्ञी इन दोनों के दो भेद अपर्याप्ता और पर्याप्ता एवं ४। स्थलचर के विशेष नाम--घोड़े, गद्धे, खच्चर इत्यादि गोल--एक ही खुर वाले एक खुरे. २ गौ, भैंस, बकरे, हिरन इत्यादि फटे खुर वाले दो खुरे. ३ हाथी, ऊंट, गेंडे इत्यादि सोनार के एरन जैसे गोल पांव वाले सो गण्डीपदे और ४ सिंह, चीते, कुत्ते, बिल्ली, बन्दर इत्यादि पञ्जे वाले सो सणपदे. (३) आकाश में उड़ने वाले खेचर के ४ भेद--सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी. इन दोनों के अपर्याप्ता और पर्याप्ता एवं ४। खेचर के विशेष नाम--१ तोता मैना, मयुर, चिडा, कमेडी, कबूतर, चील, बुगले, सिकरे (बाज) हौल, चण्डूल जल कुकडी इत्यादि रोम (बाल) की पांखों वाले सो रोमपक्षी. २ चाम चिडी बट बगुला इत्यादि चमडे की पांख वाले चर्म पक्षी. ३ डब्बे जैसे भीडी हुई गोल पांख वाले और ४ विचित्र प्रकार की लम्बी पांखों वाले यह दोनो पक्षी अढाई द्वीप के बाहिर होते हैं. (४) हृदय बल से जमीन पर चलने वाले उरपर के ४ भेद-सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी इन दोनोके अपर्याप्ता और पर्याप्ता एवं ४। उरपर के विशेष नाम—१ फन करने वाले और २ फन नहीं करने वाले अही (सांप) दोनों प्रकार और पांचों ही रंग के होते हैं. २ मनुष्यादि को निगल जाय सो अजगर. ३ विनास काल में चक्रवर्ती बलदेवादि की सैना की लीद में उत्पन्न हो सो + असालिया. और ४ उत्कृष्ट १०००० योजन के लम्बे शरीर वाला * महोरग और (५) भुजों (हाथों) के बल से जमीन पर चलने वाले भुजपर के ४ भेद— १ सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी इन दोनो के अपर्याप्ता और पर्याप्ता भुजपर के विशेष नाम—नकुल (नोला) ऊंदर घूस ककोड़ा विस्मरा गिलेरी गोयरा गौ इत्यादि ये ५×४=२० भेद तिर्यंच पंचेन्द्रिय के हुये. सब २२+६+२०=४८ भेद तिर्यंच के हुये.

+ इस असालिये का १२ योजन (४८ कोस) का शरीर होता है यह उत्पन्न हो मरता हुआ शरीर को पछाड़ता है तब जमीन फट कर उसके नजीक में रहे ग्राम नगर सेना सब दब कर मर जाते हैं.

* ऐसा महोरोग अढ़ाई द्वीप के बाहिर होता है.

मनुष्य के ३०३ भेद—असी (हथीयार से) मशी (लेखनादि व्योपार से) और कृषी (खेती) से उपजीविका करने वालों के १ भर्त, १ ऐरावत, १ महाविदेह ये ३ क्षेत्र जम्बुद्वीप में हैं. २ भर्त २ ऐरावत २ महाविदेह ये ६ क्षेत्र धातकी खण्ड में हैं. और २ भर्त, २ ऐरावत, २ महाविदेह यह ६ पुष्करार्ध द्वीप में हैं. एवं १५ कर्म भूमी मनुष्य के क्षेत्र। (२) उक्त तीनों प्रकार के कर्म किये बिना ही १० प्रकार के कल्प * वृक्षों से जिन की इच्छा पूरी हो उन के— १ देव कुरू, १ उत्तर कुरू, १ हरीवास, १ रम्यक वास, १ हेमवय, १ ऐरण्यवय, ये ६ क्षेत्र जम्बुद्वीप में, २ देवकुरू २ उत्तर कुरू हरीवास, २ रम्यकवास, २ हेमवय, २ ऐरण्यवय. ये १२ क्षेत्र धात की खण्डद्वीप में ओर २ देवकुरू, २ उत्तर कुरू, २ हरीवास, २ रम्यकवास, २ हेमवय, २ ऐरण्यवय यह १२ क्षेत्र पुष्करार्ध द्वीप में एवं ३० क्षेत्र अकर्म भूमी मनुष्य के (३) जम्बुद्वीप में भर्त क्षेत्र की हद्दी का करने वाला चूल हेमवन्त पर्वत और ऐरावत क्षेत्र की हद्दी का करने वाला शिखरी पर्वत. इन दोनों पर्वतों के दोनों कौने से बाहिर को मुडी दो दो दाढें निकली हैं. दोनों पर्वतों के ४ कोनों से ८ दाढें निकली हैं प्रत्येक दाढों पर ८-८ द्वीप हैं यों सब ७×८=५६ अन्तर द्वीप है उन पर भी युगल मनुष्य रहते हैं यों सब १५+३०+५६=१०१ क्षेत्र मनुष्य के हैं. इन क्षेत्रों में रहने वाले मनुष्यों के अपर्याप्ता और पर्याप्ता यों २०२ भेद हुए और उक्त १०१ क्षेत्रोत्पन्न मनुष्य के १ 'उच्चार सुवा'—विष्टा में, २ 'पासवण सुवा'-पेशाब में, ३ 'खेलसुवा'-खंकार में, ४ 'संघणासुवा'-श्लेष्म (नाक के मेल) में. ५ 'उलेसुवा'—वमन में, ६ 'पित्तेसुवा'- पित में. ७ 'पुयसुवा'-रस्सी-पीप में. ८ 'सोणीसुवा'-रक्त में. ९ 'सुक्कसुवा'-वीर्य में. १० 'सुक्कपुग्गलपडि सांडे सुवा'—वीर्य के सूके पुद्गल पुनः भीजे उस में. ११ विगय जीव कलेवरे सुवा-मृत्यु के शरीर में. १२ इत्थि पुरिष संयोगे सुवा

* उक्त मनुष्य के क्षेत्रों का कल्पवृक्ष वगैरा का सविस्तर वर्णन प्रथम खण्ड के दूसरे प्रकरण में किया गया है

स्त्री पुरुष के संयोग में. १३ नगर निधमने सुवा-नगर की गटोर में और १४ सव्वे असुई ठाणे सुवा-सब अशुची के स्थानों में. इन १४ स्थानों में उत्पन्न हुई वस्तु में से जो शरीर से पृथक हुए बाद अन्तर महुर्त में असंख्यात समुर्च्छिम सूक्ष्म मनुष्य उत्पन्न होते हैं. वे १०१ प्रकार के समुर्च्छिम. यों सब ३०३ भेद मनुष्यों के हुए।

देवता के १९८ भेद:—

भुवन पति देव की १० जाति परमा धामी देवकी १५ जाति वाणव्य-न्तर देव की १६ जाति जोतिषी देव की १० जाति किल्मिषी देव की ३ जाति, १२ देव लोक वासी देव, ९ लोकान्तिक देव की ९ जाति, ९ ग्रीय वेग वासीदेव, और ५ अनुत्तर विमान वासी देव. सब १०+१५+१६+१०+३+१२+९+९+५=९९ जाति के देवों के आपर्याप्त और पर्याप्त यों १९८ देवताओं के भेद हुए.*

इस प्रकार से कुल नर्क के १४, तिर्यंच के ४८, मनुष्य के ३०३, और देवता के १९८ सब ५६३ जीव के भेद हुऐ.

२ अजीव तत्व।

अजीव भी अनादि अनन्त शाश्वत है किसी ने इसे बनाया नहीं और न कोई विनाश कर सके ऐसे स्वयं सिद्ध पदार्थ हैं। सदैव काल निर्जीव (जड़) रहने से अजीव कहलाता है। पुद्गल का गुन वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श हैं. यह भी पुद्गल से पृथक नहीं रहते हैं. एक प्रमाणु में १ वर्ण १ गन्ध १ रस २ स्पर्श पाते हैं. द्वी प्रदेशी स्कन्ध में २ वर्ण २ गन्ध २ रस और ४ स्पर्श पाते हैं. यों पुद्गलों के सम्बन्ध होने से ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस ८ स्पर्श और ५ संस्थान वाले पुद्गलों बन जाते हैं।

यह जीव का प्रति पक्षी होने से अचैतन्य अकर्ता अभुक्ता जड रूप हैं. इनके जिसकी दो विभाग की कल्पना मात्र भी न होवे ऐसे सुक्ष्म को प्रमाणु

* सब देवताओं का विस्तार से वर्णन प्रथम खण्ड के दूसरे प्रकरण में हो गया है।

कहते हैं. दो प्रमाणु के मिलने से द्वि प्रदेशी स्कन्ध तीन प्रमाणु के मिलने से तीन प्रदेशी स्कन्ध यों संख्यात प्रमाणुओं के मिलने से संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध असंख्यात प्रदेश मिलने से असंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध और अनंत प्रमाणु के मिलापसे अनंत प्रदेशिक स्कन्ध कहलाता है यह स्कन्ध भेद पाकर कम भी होजाता है और संयोग पाकर अधिक भी हो जाता है यों पुद्गलों में भेद संघातन होता ही रहता है अभव्य जीवों की राशी से अनन्त गुने अधिक और सिद्ध राशी से अनन्त में भाग कम जो प्रमाणुओं का स्कन्ध होता है वही सकर्मक आत्मा के ग्रहण करने योग्य पुद्गल होता है यों अनन्त पुद्गल पिण्ड से कर्म वर्गना होती है अनन्त कर्म वर्गना से कर्म प्रकृती होती है इस प्रकार जितने पुद्गलों आत्म संयोगी हैं वे 'मिसापुद्गल' कहलाते हैं. आत्मा से लगकर जो पुद्गल अलग होगये हैं * वे 'पोगसा पुद्गल' कहलाते हैं और जिन पुद्गलों का आत्म सम्बन्ध न हुआ है वे 'विशपा पुद्गल' कहलाते हैं, यों तीनों प्रकार के पुद्गल, द्वी प्रदेशी आदि स्कन्ध और प्रमाणु सब सम्पूर्ण लोक में अनन्तानन्त हैं, जिससे पुद्गलों के भेद भी अनन्तानन्त होते हैं किन्तु भव्यात्मा यों को सुलभता से बोध कराने के लिये संक्षेप में १४ और विशेष में ५६० भेद किये हैं।

जघन्य १४ प्रकार के अजीव—१ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति, और आकास्ति इन तीन के तीन २ प्रकार—१ सम्पूर्ण लोक व्यापक धर्मास्ति अधर्मास्ति और लोका लोक व्यापक आकास्ति सो स्कन्ध, उसमें का कुछ विभाग सो देश और ३ एक प्रदेशावलम्बन कर रहे सो प्रदेश यह ३×३=९ भेद और १० वां काल. यह १० अजीव अरूपी और १ सम्पूर्ण व्यापक वर्ण गन्ध रस स्पर्श का पिण्ड सो स्कन्ध २ उसमें का विभाग सो देश, ३ प्रदेशावलम्बन कर रहे अर्थात् दो आदि प्रमाणु मिल

* अनन्त सिद्ध मुक्ति गये उनसे छूटे कर्म पुद्गल यहां लोक में ही रहे हैं।

रहे सो प्रदेश और ४ फुटकर बिखर रहे सो प्रमाणु यह १४ अजीवरूपी.

विशेष—५६० भेद (१) धर्मास्ति के ५ प्रकार १ द्रव्य से एक, २ क्षेत्र से लोक प्रमाने ३ काल से आद्यन्त रहित, ४ भाव से वर्ण गन्ध रस स्पर्श रहित अरूपी ५ गुन से चलन सहाय (२) अधर्मास्ति के भी ५ प्रकार १ द्रव्य से एक, २ क्षेत्र से लोक प्रमाने ३ काल से आद्यन्त रहित, ४ भाव से वर्णादि रहित अरूपी और ५ गुन से—स्थिर सहाय. (३) आकास्ति के ५ प्रकार—१ द्रव्य से एक द्रव्य, २ क्षेत्र से लोका लोक प्रमाने ३ काल से आद्यान्त रहित, ४ भाव से वर्णादि रहित अरूपी और ५ गुन से विकाश गुन. (४) काल द्रव्य-- १ द्रव्य से भूत काल भी अनन्त और भविष्य भी अनन्त, २ क्षेत्र से व्यवहारकाल अढ़ाई द्वीप में * और सूक्ष्मकाल सब लोक में. ३ काल से आद्यन्त रहित, ४ भाव से—वर्णादि रहित अरूपी और ५ गुन से पर्याय परिवर्तन यह ५×४=२० और धर्मास्ति अधर्मास्ति आकास्ति इन तीनों के स्कन्ध देश प्रदेश यह तीन प्रकार से ९ और १० काल यों ३० प्रकार अजीव अरूपी के और १ कृष्ण, २ हरित, ३ रक्त, ४ पीत और ५ श्वेत, इन पांचों वर्णों में २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान यह २० बोल पाते हैं. यों २० ×५=१०० बोल वर्णाश्रित हुये, सुर्भिगन्ध और २ दुर्भिगन्ध, इन दोनों में ५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान यों २३ बोल पाते हैं. यों २३×२=४६ बोल गन्ध आश्रित हुये, १ मिष्ट, २ कटुक, ३ तीक्षा, ४ क्षार, और ५ कषयित, इन ५ रसों में ५ वर्ण, २ गन्ध ८ स्पर्श और ५ संस्थानों में २० बोल पाते हैं, यों २०×५=१०० बोल रसाश्रित हुये, गुरु, लघु, इन दोनों स्पर्श में ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ६ स्पर्श (गुरु

---

* घड़ी पल प्रहर दिन रात्रि यावत् सागरोपमादि काल का परिणाम सूर्य के गमना गमन से ही होता है, यह सूर्य ज्योतिषियों का गमनागमन अढ़ाई द्वीप (मनुष्य लोक) के अन्दर ही है. यहां के काल से ही सर्व स्थान का काल प्रमान किया है, यह व्यवहार काल और सूक्ष्मकाल सिद्ध भगवन्त सिवाय सब को लगता है।

लघु नहीं) और ५ संस्थान यों २३—२३ बोल पाते हैं. दोनोंके ४६ हुये, शीत उष्ण इन दोनों स्पर्शों में उक्त ४६ बोल ही पाते हैं किन्तु ८ स्पर्श्य में से शीत उष्ण ग्रहण नहीं करना, स्निग्ध रूक्ष इनमें उक्त ४६ बोल पावे लेकिन स्निग्ध रूक्ष स्पर्श्य नहीं कोमल कठिन इन दोनों में भी उक्त ४६ बोल कोमल कठिन स्पर्श्य नहीं. यों सब २३×८=१८४ बोल स्पर्श्य आश्रित हुये। वृत लड्डू जैसे गोले सो वट्टे. त्र्य सिंघाडे जैसे त्रिकोनसा तंसे, ३ चतुरंस चौकी जैसा चतंरस, ४ परिवृत—चूड़ा जैसा परिमंडल, और लम्बी लकड़ी जैसा, आइत्तंस, इन संस्थानों में ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श्य यों २० बोल पावें, यों २०×५=१०० बोल संस्थान आश्रित हुये १०० वर्ण के, ४६ गन्ध के, १०० रस के १८४ स्पर्श्य के और १०० संस्थान के सब ५३० भेद अजीव रूपी के हुये ३० अजीव अरूपी के मिल सब ५६० अजीव के भेद हुये।

३ पुण्य तत्त्व।

उक्त जीव के अजीव पुद्गल रूप जो कर्मसे सम्बन्ध होता है वे पुद्गलों दो प्रकार से परिणमते हैं यथा—१ सुख रूप फल के देने वाले जो शुभ कर्म हैं उन्हें पुण्य कहते हैं और २ दुःख रूप फल के देने वाले जो अशुभ कर्म हैं उन्हें पाप कहते हैं। जिस प्रकार संसार में सुख साधन रूप स्थान वस्त्र भोजनादि निष्पन्न करने में प्रथम कुछ दुःख होता है और विशेष काल सुख देने वाले होते हैं तैसे ही पुण्य उपार्जन करने में प्रथम कष्ट होता है और फिर विशेष सुख होता है. कहावत भी है कि-"दुःखान्ति सुख" अर्थात् दुःख के अंत में ही सुख की प्राप्ती होती है। कष्ट साध्य कार्य करने में जीव का सुशोवन मालुम पड़ती है तैसे पुण्य उपार्जन करना भी मुशकिल होता है। पुद्गलों के ममत्व हटाये बिना, मनको दूर किये बिना, आत्मा को वशमें कर योगों को शुभ साधनों में लगाये बिना पुण्योपार्जन

नहीं होते हैं। जो किञ्चित दुख की दरकार नहीं रखता पुद्गलों से ममत्व उतार आत्मा को काबू में कर पुण्य साधन करता है वह उनके फल भोगवते सुख पाता है। पुण्य ९ प्रकार से उपार्जन होते हैं—१ अन्न का दान दे सो आण पुण्णे. २ पानी का दान दे सो पाण पुण्णे. ३ पात्र (वर्तन) दान करे सो जेण पुण्णे. ४ शैय्या—मकान का दान दे सो सेण पुण्णे. ५ वस्त्र दान करे सो वत्थ पुण्णे. ६ शुभ विचार करे—अन्य का भला चिन्तवे सो मन पुण्णे. ७ सब को सुख दाता का उपकार करता का गुनी के गुनगान रूप वचनोच्चार करे सो वचन पुण्णे. ८ अन्य की सेवा भक्ति-वैय्या वच कर साता उत्पन्न करे सो काया पुण्णे. और ९ वयो वृद्ध गुणी वृद्ध को नमस्कार करे तथा सब के साथ नम्र भाव से प्रवृती करे सो नमस्कार पुण्णे. इस प्रकार उपार्जन किये हुये पुण्य के फल ४२ प्रकार से भोगते हैं यथा—१ साता वेदनी, २ ऊंच्च गोत्र, ३ मनुष्य गति, ४ मनुष्यानुपुर्व्वी,* ५ देव-गति, ६ देवानुपुर्व्वी, ७ पंचेन्द्रिय की जाति, ८ औदारिक शरीर, ९ वैक्रय शरीर, १० आहारिक शरीर, ११ तेजस शरीर, १२ कार्मन शरीर, १३ औदा-रिक अङ्गोपाङ्ग × १४ वैक्रय अङ्गोपाङ्ग, १५ आहारिक अंङ्गोपाङ्ग १६ वज्र ऋषभ नारच संघयन, १७ समचतुरस्र संस्थान, १८ शुभ वर्ण, १९ शुभ गन्ध, २० शुभ रस, २१ शुभस्पर्श्य, २२ लोहे पिण्ड समान दृढ़ शरीर होकर भी हलका फूल जैसा हो तथा बहुत जाड़ा नहीं तैसे ही बहुत पतला भी नहीं हो सो अगुरू लघु नाम. २३ अन्य से पराभव नहीं पावे सो पराघात नाम, २४ पूरे श्वास ले सो उच्छ्वास नाम, २५ प्रतापी हो सो आताप नाम, २६ तेजस्वी हो सो उद्योत नाम, २७ शुभ चलने की गति, २८ अङ्गो पाङ्ग, बराबर योग्य स्थान हो सो निर्माण नाम, २९ त्रस नाम, ३० बादर

* एक भव से दूसरे वन्धित भव में खींच कर ले जाने वाली प्रकृती सो अनु पूर्वी कहलाती है।

× १ मस्तक, २ पृष्ट, ३ हृदय, ४ उदर, ५-६ दोनों हाथ ७-८ दोनों पैर, यह ८ अंग, अंगुली आदि उपांग और नखादि अंगोपांग कहलाते हैं।

नाम, ३१ पर्याप्त नाम, ३२ प्रत्येक नाम ३३ शरीर का बन्ध स्थिर हो सो स्थिर नाम, ३४ शुभ नाम, ३५ सौभाग्य नाम, ३६ सुस्वर नाम, ३७ जिनका वचन सर्व मान्य बने सो आदेय नाम, ३८ यशो कीर्ती नाम, ३९ देवायु, ४० मनुष्यायु, ४१ युगल तिर्यंचवत् तिर्यचायु और ४२ तीर्थंकर नाम.

☞ पुण्य को कितनेक ज्ञेय-जानने योग्य, कितनेक उपादेय-आदरने योग्य और कितनेक हेय-त्यागने योग्य कहते हैं किन्तु जानने योग्य तो सब ही हैं. और आदरने तथा त्यागने का एकान्त पक्ष करना योग्य नहीं है. जो एकान्त आदरणिय कहें तो पुण्य फल भुक्ते बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सके इस लिये मोक्ष का व्याघातक हुआ और जो एकान्त त्यागने योग्य कहें तो पुण्य की वृद्धी होने से ही, आत्मा उन्नति अवस्था को प्राप्त होती है तथा तीर्थंकर गोत्रोपार्जन जैसे उत्तम पदार्थ करने का निषेध हो जावे. पुण्य प्रकृति १३वें गुन स्थान तक लगी हुई है पुण्य की प्रशंसा शास्त्र में अनेक स्थान की है इसलिये आदरने के स्थान पर आदरणीय है और मोक्ष होते समय त्याग तो आपसे ही हो जायगा।

४ "पाप तत्त्व"

उक्त कथनानुसार जो कर्म का फल दुःख दाता होता है उसे पाप कहते हैं, पाप में जीव बहुत काल से संलग्न होने से आदत रूप ही बन गया है. याने पाप के कार्य सहज में ही बन जाते हैं किन्तु उन को भोगते समय बडी २ मुसीबतें उठानी पडती हैं. पाप की उपार्जना १८ प्रकार से होती है, यथा—१ प्राणातीपात-हिंसा करने से. २ मृषावाद-झूठ बोलने से, ३ अदत्तादान—चोरी करने से, ४ मैथुन—स्त्री पुरुष नपुंसक के संबंध से, ५ परिग्रह—धन संग्रह करने से, ६ क्रोध—संतप्त होने से, ७ मान-अहंकार करने से, ८ माया—कपट दगा करने से, ९ लोभ—तृष्णा से, १० राग—प्रेम करने से, द्वेष—अप्रेम रखने से, १२ कलह—झगड़ा करने से १३ अभ्याख्यान—कलङ्क चढ़ाने से, १४ पैशुन्य—चुगली करने से,

१५ परपरावाद—निन्दा करने से, १६ रति अरति—हर्ष शोक से, १७ माया मोसा—कपट रूप झूठ बोलने से, और १८ मिथ्या दर्शन शल्य—कुगुरू कुदेव कुधर्म कुशास्त्र को सच्चा श्रधान करने से.

इस प्रकार उपार्जन किये पाप के फल ८२ प्रकार से भोगते हैं—१ बुद्धी मन्द हो सो मतिज्ञाना वर्णिय, २ उपयोग मन्द हो सो श्रुतज्ञाना-वर्णिय, ३ अवधी ज्ञानावर्णिय, ४ मनः पर्यव ज्ञानावर्णिय, ५ केवलज्ञाना-वर्णिय (यह तीनों ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके) ६ सुख से आवे सुख से जागृत हो सो निद्रा, ७ दुःख से आवे दुःख से जागृत सो निद्रा निद्रा ८ बैठे २ निद्रा आवे सो प्रचला, ९ चलते २ निद्रा आवे सो प्रचला प्रचला, १० जिस निद्रा में वासुदेव से आधा बल प्राप्त होवे और जो मर जावे तो नर्क में चला जावे सो थिणद्धि निद्रा, ११ अन्धा हो सो चक्षु दर्शनावर्णिय, १२ आंख बिना चारों इन्द्रिय व मन की हीन सत्ता पाये सो अचक्षुदर्शनावर्णिय, १३ अवधि दर्शनावर्णिय, १४ केवल दर्शना वर्णिय (यह दोनों दर्शन प्राप्त नहीं कर सके) १५ असाता वेदनीय, १६ दान दे सके नहीं सो दानान्तराय, इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं कर सके सो लाभान्तराय, १८ खान पानादि नहीं भोग सके सो भोगान्तराय १९ वस्त्र भूषण स्त्री मकानादि नहीं भोग सके सो अपभोगान्तराय, २० देव गुरू धर्म की विपरीत (उलटी) श्रद्धान करे सो मिथ्यात्व मोह, २१ स्थावर पना, २२ सूक्ष्म पना, २३ अपर्याप्ता पना, २४ साधारण पना २५ शरीर का अस्थिर पना (ढीला बन्धन) सो अस्थिर नाम, २६ अशुभ नाम, २७ दुर्भाग्य नाम, २८ दुःस्वर नाम, २९ जिनका वचन अप्रमा-निक गिना जाय सो अनादेय नाम, ३० अयशोकीर्ति नाम ३१ अपने शरीर के अवयव से अपनी घात हो सो उपघात नाम ३२ अशुभ गति ३३ नर्क गति, ३४ नर्कायु, ३५ नर्कानुपूर्वी, ३६—३९ अनन्तानुबन्धी—क्रोध-मान-माया-लोभ, ४०—४३ अप्रत्याख्यानी-क्रोध-मान-माया-लोभ,

४४–४७ प्रत्याख्यानावर्णिय–क्रोध-मान-माया-लोभ ४८–५१ संज्वल का क्रोध-मान-माया-लोभ ५२ हास, ५३ रति, ५४ अरति, ५५ भय, ५६ शोक, (चिन्ता) ५७ जुगुपसा (ईर्षा) ५८ स्त्री वेद, ५९ पुरुष वेद, ६० नपुंसक वेद, ६१ तिर्यंच गति, ६२, तिर्यचानु पूर्वी, ६३ एकेन्द्रिय पणा, ६४ बेन्द्रिय पना, ६५ तेन्द्रिय पना, ६६ चौरिन्द्रय पना, ६७–७० अशुभ-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, ७१ अशुभ संस्थान, ७२ ऋषभनारच संघयन ७३ नारच संघयन, ७४ अधनारच संघयन, ७५ किलिक संघयन, ७६ छेवटा संघयन, ७७ निगोह परिमण्डल संस्थान, ७८ सादिक संस्थान, ७९ वाश्ना संस्थान, ८१ कुब्ज संस्थान और ८२ हुण्डक संस्थान, यह त्यागने योग्य हैं।

५ आश्रव तत्व।

जिस प्रकार नाव में छिद्र होने और उसमें पानी भर आने से वह डूब जाती है तैसेही संसार रूप तालाव में आत्मा रूप नाव आश्रव रूप छिद्र से पाप रूपी पानी के भर जाने से डूबती है। यह आश्रव जघन्य २० प्रकार से और उत्कृष्टा ४२ प्रकार से होता है।

१ मिथ्यात्व, २ अव्रत, ३ प्रमाद, ४ कषाय, ५ योग, ६ हिन्सा, ७ झूठ, ८ चोरी, ९ मैथुन, १० परिग्रह. ११ श्रोतेन्द्रिय, १२ चक्षु इन्द्रिय, १३ घ्राणेन्द्रिय, १४ रसेन्द्रिय, १५ स्पर्शेन्द्रिय (इन पांचों इन्द्रियों को विषयाभिमुख करे) १६ मन, १७ वचन, १८ काया, (इन तीनों योगों को खुला रखे) १९ वस्त्र वर्तनादि भण्डोपकरण अयत्ना से काम में ले और सुई कुशाग्र मात्र भी अयत्ना से प्रवृतादि इन २० प्रकार से आश्रव होता है।

आश्रव के विशेष रीति से ४२ प्रकार–१ पच्चीस प्रकार के * मिथ्यात्व का सेवन करे सो मिथ्यात्व आश्रव. २ पांच इन्द्रिय मन और ६ काया से अव्रत लगे सो अव्रत आश्रव. ३ मदादि पांच

* २५ के मिथ्यात्व का सविस्तार कथन आगे तीसरे प्रकरण में किया है।

प्रमाद के सेवन से लगे सो प्रमादाश्रव, ४ क्रोधादि २५ कषाय के सेवन से लगे सो कषाय आश्रव. ५ मनादि त्रियोगी प्रवृती होसो योगाश्रव, ६ हिंसाश्रव, ७ मृषाश्रव, ८ अदत्त आश्रव. ९ मैथुन आश्रव १० परिग्रह आश्रव ११ क्रोधाश्रव: १२ मानाश्रव, १३ माया आश्रव, १४ लोभाश्रव १५ मन आश्रव १६ वचन आश्रव १७ काया आश्रव और २५ क्रिया:–

कर्म का विभाग (हिस्सा) लगे सो क्रिया, इसके दो भेद–१जीव को लगे और अजीव से लगे, इसमें जो जीव को क्रिया लगे उसके दो प्रकार–१प्रथम तृतिया गुणस्थान वृति को लगे सो मिथ्यत्वी जीव की और द्वतीय चौथे से यावत तेरवे गुणस्थान वर्ती जीव को लगे सो सम्यक्ती जीव की क्रिया। ऐसे ही अजीव की क्रिया भी दो प्रकार से लगे–१ कषाय और योग दोनों से लगे सो सम्परायिक क्रिया और २ उपशम कषायी क्षीण कषायी-अकषायी को केवल योग की प्रवृत्ति से लगे सो इर्यापथिक × क्रिया इस में इर्यापथिक क्रिया का फक्त एक ही प्रकार है और सम्परायिक क्रिया के २४ प्रकार हैं:–(१) अयत्ना से गमनागमनादि कार्य में शरीर की प्रवर्ती करे, मेरा शरीर दुर्बल हो जायगा. इत्यादि विचार से नियम तपादि धर्म का आचरन पालन नहीं करे उसे काइया क्रिया लगती है. इस के दो प्रकार १–जिनके व्रत प्रत्याख्यान नहीं होते हैं उनके संसार में जितने आरंभ के–पाप के काम हो रहे हैं उनकी अव्रत आरही है यह अव्रती की काइया क्रिया और जो २ साधु श्रावक के व्रताचरन करके भी उपयोग युक्त भी अयत्ना से शरीर को प्रवृतावे वह व्रती की काइया क्रिया: (२) सुई, कैंची, चक्कू, छुरी, तरवार, भाला, बरछी, धनुष्य बाण, तमचा, बन्दूक, तोपें, कुदाली, पावड़ा, पहार, हल, बखर, बर्छी, मूशल, ऊखल, खलबत्ता, सरोता, चिमटा, इत्यादि शस्त्रों के प्रयोग करने से

× शुभ योग की प्रवृती से पुण्याश्रव और अशुभ योग की प्रवृती से पापाश्रव होता है

तथा कठिन कठोर दुःख प्रदघातक शस्त्र के समान वचनोच्चार करने से अहिगरणी-अधिकरणी क्रिया लगती है. इस के दो प्रकार—१ जैसे तलवार की मूठ, घट्टी को खूंटा, चकू का हाथ इत्यादि लगा कर अपूर्ण शस्त्र को पूर्ण करे, तीक्ष्ण धारादि करावे, काम में आवें जैसे बनावे तथा पुराने क्लेश को उदर कर क्लेश की वृद्धि करे संयोजन।धकरणी और नये २ शस्त्र बनावे संग्रह करे बेच उससे जितना पाप हो उतने का हिस्सा उस कराने वाले को लगे. तथा नया क्लेश उत्पन्न हो ऐसा बचन बोले सो निर्वर्तना।हिगरणी. (३) दुश्मनों का दुष्टों का पापी का कृपणादि का बुरा विचारे उनको दुखी देख खुश होवे. पुण्यवान गुणवान का यश सुन सुखी देख ईर्षा करे, इत्यादि किसी पर भी द्वेष भाव करे सो पाउसिया क्रिया इसके दो प्रकार—१ किसी जीव पर व सजीव वस्तु पर द्वेष करे सो जीव पाउसिया और २ कंकर कंटकादि अजीव वस्तु पर द्वेष करे सो अजीव पाउसिया. (४) लठी मुष्ठी आदि का प्रहार कर अवयवादि का छेदन कर कठिन बचनादि कह कर इत्यादि प्रयोग से परितप उत्पन्न करे सो परितापनिया क्रिया. इस के दो प्रकार—१ अपने हाथ से वचन से परिताप दे सो सहत्थ परितापनिया और २ दूसरे से परिताप दिलावे सो परहत्थ परितावनिया. (५) प्राणों का अतिपात करे—जीव काया अलग करे:—हिंसा करे सो प्राणातिपात की क्रिया. इस के दो प्रकार १—सिकारादि खेले अपने हाथ से जीव हिंसा करे सो सहत्थ प्राणातिपात की और २ शिकारी कुत्ते शिकरे पारधी कषाई आदि दूसरे के पास से हिंसा करावे तथा दूसरे को मारता हो उसे हिम्मत बन्धावे हां मार! क्या देखता है? इत्यादि सो परहत्थ प्राणातिपात की क्रिया. (६) पृथ्वियादि छही काय जीवों का पचन पाचनादि आरंभ करे तथा जगत में छही काय जीवों का आरंभ हो रहा है उस की अव्रत से लगे सो आरंभीया क्रिया. इस के दो प्रकार—१ सजीव के आरंभ की क्रिया आवे सो जीव

आरंभिया और २ मृतक शरीर की अग्नि संस्कारादि का तथा वस्त्रादि बनाने की क्रिया लगे सो अजीव आरंभिया. (७) परिग्रह का प्रत्याख्यान नहीं होने से तथा पुद्गलों पर ममत्व करने से परिग्रहीया क्रिया लगे. इसके दो प्रकार—१ द्विपद चतुष्पद दास दासी पशु पक्षी धान्यादि की ममत्व से क्रिया लगे सो जीव परिग्रहीया और २ वस्त्र पात्र—वर्तन भूषण मकानादि की ममत्व से लगे सो अजीव परिग्रहीया. (८) दगा कपट करने से लगे सो मायावतिया. इस के दो प्रकार १—स्वयं व्योपारादि में कपट करे तथा धर्म ठगाई करे अन्दर बांका और बाहर सीधापना बनावे सो आत्म भाव वक्रता और २ अन्य को ठग बाजी की शिक्षा दे, इन्द्र जालादि विद्या पढावे, तोल माप खोटे रक्खे, अच्छी बुरी वस्तु का मेल करे, खोटे लेखादि लिखे सो परभाव वक्रता. अन्न पानादि जो वस्तु एक वक्त भोग में आवे सो उपभोग की वस्तु और वस्त्राभूषण मकानादि वारम्वार भोग में आवे सो परिभोग की वस्तु. इन के भोगवने के प्रत्याख्यान नहीं होने से उपभोग परिभोग जितने पदार्थ जगत में हैं उन्हें भोगे या नहीं भोगे तो भी उन की क्रिया लगे × सो अप्रत्याख्यानिया क्रिया. इसके दो प्रकार १— फल फूल धान्य मनुष्य पशु आदि की क्रिया आवे सो जीव अप्रत्याख्यानिया और चांदी सुवर्ण रत्न वस्त्रादि की क्रिया आवे सो अजीव अप्रत्याख्यानिया. (१०) कुदेव कुगुरु कुधर्म कुशास्त्र का श्रद्धान करे सो मिथ्या दर्शन वतिया क्रिया, इसके दो प्रकार —१ जैसे कितनेक मिथ्यात्वी जीव को तंदुल मात्र तिलमात्र दीपक मात्र

× शंका—किसी वस्तु को बिना देखे सुने चिन्तवन हुये बिना ही उसकी क्रिया किस प्रकार लग जाती है। समाधान घर में कचरा भरने का तो किसी का भी मन नहीं होता है किन्तु द्वार खुल्ले रहने से कचरा आने का स्वभाव है वैसे बिना पूर्वाचरण किये क्रिया लगने का स्वभाव है। बिना प्रत्याख्यान की वस्तु सुनने देखने और प्राप्त होने से कदाचित् भोगवत लेगा और त्याग की वस्तु से इच्छा का निरूंधन होने से उसका पाप आना बन्ध हो जाता है।

मानते हैं सो ऊनातिरिक्त और २ जैसे कितनेक मिथ्यात्वी पंच भूतसे आत्मा बनाते हैं मृत्यु होते ही पंच भूत में भूत मिलजाते बताते हैं आत्मा की अस्तित्व भी कबूल नहीं करते हैं सो तदव्यातिरिक्त. (११) किसी वस्तु का अवलोकन करने से—देखने से लगे सो दिट्ठीया क्रिया इसके दो प्रकार —१ स्त्री पुरुष नपुंसक अश्व गज बाग बगीचे नाटकादि देखने से लगे सो जीव दिट्ठीया और २ वस्त्र भूषण मकानादि देखने से लगे सो अजीव दिट्ठीया. (१२) किसी भी वस्तू का स्पर्श्य करने—छीने से लगे सो पुट्ठिया क्रिया इसके दो प्रकार—१ स्त्री पुरुष के अङ्गोपाङ्ग के स्पर्श्यने से तथा मट्टी पानी अग्नि वनस्पति धान्यादि सजीव वस्तु के स्पर्श्यने से लगे सो जीव पुट्ठीया. जैसे किसी अति वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ रोग शोकादि दुःख से जर्जरित बने शरीर वाले को कोई बत्तीस वर्ष योधा युवान बल वान खूब जोर से मुष्टि प्रहार करने से उसे दुःख होता है तैसा ही धान्य बीजादि को स्पर्श्य करने से उन के जीव को दुःख होता है ओर हरित-काय के तथा अनन्तु काय के असंख्य अनन्त जीव तो स्पर्श्य मात्र से ही मृत्यु पा जाते हैं ? इस जिन कथन से अज्ञ जीवों विना प्रयोजन ही नमूना देखने के लिये तथा सहज ही चलते २ धान्य हरितकाय वृक्ष पत्र पुष्प फलादि को ग्रहन कर कर्म बंध कर लेते हैं ! सुज्ञ को आत्मा बचाना चाहिये और २ वस्त्र वर्तन भूषणादि अजीव वस्तु का स्पर्श्य करने से लगे सो अजीव पुट्ठीया क्रिया लगती है. (१३) किसी का बुरा चिन्त-वन करने ने पाडुच्चिया क्रिया लगती है. इस के दो प्रकार—१ माता पिता स्त्री पुत्र भ्रात भगिनि मित्र गुरु शिष्य शत्रु घातिक अधर्मी घोडा हाथी भैंस गौ सांप विच्छू कुत्ता बिल्ली डांस मच्छर मक्खी कीड़े इत्यादि सजीव पर द्वेष करे सो जीव पाडुच्चिया. और २ वस्त्र भूषन मकान मूत्र विष्टा अशुची अमन्योज्ञ वस्तु पर द्वेष करे सो अजीव पाडुच्चिया. (१४) बहुत वस्तुओं के एकत्र करनेसे समुदाय मिलाने से लगे सो सामन्तोवणिया क्रिया

इस के दो प्रकार—१ दास दासी हाथी घोड़े बैल बकरे कुत्ते बिल्ली तोते इत्यादि सजीव वस्तु का संग्रह करे, उन को देख २ हर्षावे, परसंशा करे व्योपार करने से लगे सो जीव सामन्तोवणिया. और २ किराना वस्त्र भूषण मकान इत्यादि का संग्रह करे, पर संस्था करे हर्षावे बेचें सो अजीव सामन्तोवणिया. तथा इस का यह भी अर्थ करते हैं कि—घृत तेल छाछ राब पानी इत्यादि परवाही (पतली) वस्तु के वर्तन खुले रक्खे ढंके नहीं तो यह क्रिया लगे. (१५) अपने हाथ से जो काम किया जावे तथा अपने हाथ की निष्पन्न वस्तु से जो आरंभिक काम बने सो सहत्थिया क्रिया. और इसका यह भी अर्थ करते हैं कि किसी का परस्पर युद्ध करावे सो सहत्थिया क्रिया. इस के दो प्रकार—१ किसी सजीव वस्तु से सजीव वस्तु की घात करे तथा मैंढे मुर्गे सर्प सांड (बैल) मनुष्य पशु को परस्पर लड़ावे किसी की चुगली कर परस्पर झगड़ा करावे सो तथा मनुष्य पशु पक्षी को कोठी वाड़े पिञ्जरादिक में बन्धन करे सो जीव सहत्थिया और २ किसी अजीव वस्तु से अजीव वस्तु का विनाश करे. लकड़ी से लकड़ी तोड़े इत्यादि तथा वस्त्र भूषणादि का बन्धन करे सो अजीव सहत्थिया. (१६) किसी भी वस्तु को ऊपर से डाल दे-फेंक दे अयत्ना से रखे सो नेसत्थिया क्रिया लगे. इस के दो प्रकार—१ युका खटमल वगैरा छोटे वड़े जीवों को डाल देवे सो जीव नेसत्थिया और २ वस्त्र भूषण शस्त्र सुई तृण मात्र अजीव को डाल देवे सो अजीव नेसत्थिया. (१७) स्वामी की आज्ञा बिना किसी भी वस्तु को ग्रहण करे तथा अन्य स्थान से वस्तु को मंगावे सो अणवणिया (आज्ञपिनी) क्रिया. इस के दो प्रकार—१ मनुष्य पशु पक्षी धान्यादि सजीव वस्तु को मंगावे सो जीव अणवणिया. और २ वस्त्र पात्र औषधादि अजीव वस्तु मंगावे सो अजीव अणवणिया. (१८) किसी वस्तु का छेदन भेदन—टुकड़े करने से क्रिया लगे सो विदारणिया क्रिया. इस के दो प्रकार १ भाजी पान फूल फल बीज धान्य पशु पक्षी मनुष्य इत्यादि सजीव

वस्तु का छेदन भेदन करे सो सजीव विदारणीया और २ वस्त्र धातु लकड़ी पत्थर ईंट मकानादि निर्जीव वस्तु का छेदन भेदन-टुकड़े करे सो अजीव विदारणिया. तथा १—स्त्री पुरुष नपुंसक मनुष्य पशु पक्षी के हाव भाव विलास श्रृंगार रस की विषयोत्पादक कथा कर के रोग शोक वियोग मृत्यु आदिक विरह उत्पादक कथा कर अन्य का हृदय विदारण करे मोह उप-जावे सो जीव विदारणिया और २ वस्त्र भूषणादि की कथा से हर्षो-त्पादक विष अशुची आदि का घृणा उत्पादक कथा कर हृदय विदारन करे से विदारणिया किरिया. (१९) उपयोग रहित काम करने से अनाभोग क्रिया लगे इस के दो प्रकार—१ वस्त्र पात्रादि उप करणों को अयत्ना से ग्रहण करे सो अणाउत अप्रमार्जनी. और २ विना प्रमार्जन किये वस्त्रादि उपकरण रखे सो अणाउत प्रमार्जना. जिनेन्द्र का फरमान है कि अयत्ना से गमनागमन करते यद्यपि हिंसा न होवे तो भी उसे हिंसक कहना और यत्ना पूर्वक करे तो यदि हो भी जाय तो उसे दयालु कहना (२०) अपेक्षा विना काम करे तथा दोनों लोक विरुद्ध काम करे हिंसा में धर्म प्ररुपे महिमा के अर्थ तप संयम व्रतादि करने से तथा जिस प्रकार वस्त्र मलीन करने को तो किसी की इच्छा नहीं है परन्तु पड़ा २ सहज ही मलीन होता है तैसे विना इच्छा से भी क्रिया लगे सो अणव कंख वतिया क्रिया इसके दो प्रकार—१ अपने शरीर को हलन चलनादि कार्य में प्रवृतावे तथा अपने हाथ से अपने शरीर पर मार पीट करे शिर उर कूटे सो आप शरीर अणव कंख वतिया और २ दूसरे को संकोच प्रसारन हलन चलनादि कार्य में लगाने से मलताड कराने से लगे सो पर शरीर अणव कंप वतिया. (२१) अन्य वस्तु का संयोग मिलाने बीच में सहायक--वकील--दलाल बने अनी पडग वतीया क्रिया लगे इसके दो प्रकार—१ मनुष्य गौ अश्वादि स्त्री पुरुष सजीव वस्तु का संयोग मिलावे (भडवाई करे) सो जीव अनायउगी और २ वस्त्र

भूपन वर्तन क्रियानादि अजीव वस्तु का सयोग मिलावे सो अजीव अनायउगी पाप की दलालो मे बचना चाहिये ! (२२) एक काम को बहुत मिलकर जैसे—कम्पनी का वैपारी, नाटक ख्याल तमाशे प्रेक्षन, तास गंजफे आदि जुआ का खेल फांसी सूली आदि प्रेक्षन, बेंचने आई वस्तू को बहुत जन मिल शरीक--पांती खरीदे, मेला-जातरा लग्नोत्सव मृत्युत्सव-जेमन में बहुत लोगों मिले. इत्यादि काम में प्रायः सबी के एक से परिणाम रहते हैं जिससे उनके एकसा कर्म बन्ध हो सो सामुदानिया क्रिया इसके ३ प्रकार—१ उक्त कामादि में का कोई भी काम कर मध्य में छोड़ दे फिर कुछ दिन बाद करे सो सान्तर सामदानी, २ निरंत्र लगातार करे सो सामुदानी और ३ कितनेक लोगों सन्तर कितनेक निरंत्र करे सो तदुभय सामुदानी. इस क्रिया से बन्धे कर्मों का फलोदय होते बहुत से जीवों अंगार लगने से जहाज-बोटादि डूबन से हैजा प्लेगादि बीमारी चलने से. इत्यादी प्रयोग से एकही साथ मृत्यू को तथा दुःख को प्राप्त होते हैं (२३) राग भाव-प्रमोदय से पेजवती क्रिया लगे. इसके दो प्रकार—१ माया कपट दगा करने से लगे सो माया वतिया, और २ लोभ लालच तृष्णा से लगे सो लोभवतिया और (२४) किसी पर द्वेष करने से लगे सो दोपवतिया क्रिया इसके दो प्रकार—१ क्रोध-गुस्सा करने से लगे सो क्रोध की और २ अभिमान गरूर करने से लगे सो मान की यह २४ तो मन आदि योग और क्रोधादि कषाय के सम्बन्धनी हो कर्म बन्ध कर्ता होने से सम्परागइक क्रियायें कही जाती हैं. और २५वीं इरियावही क्रिया-११-१२-१३ वें गुणस्थान वर्ती वीतरागी भगवन्त के नाम कर्मोदय से मनादि त्रियोग की शुभ प्रवृत्ती होने से सातावेदनीय कर्म के दलिक एकत्र होते हैं परन्तु वे अकषायी वीतरागी होने से वे दलिक से प्रकृती और प्रदेश बन्ध होता है किन्तु स्थिती और अनुभाव नहीं होता है क्योंकि कषाय सम्बन्ध बिना केवल योग कर्म बन्धक नहीं होते हैं। अ

लगे हुये साता वेदनीय कर्म पुद्गलों को द्वितीय समय में वेद कर तृतीय समय में निर्जर डालते हैं अर्थात अलग कर डालते हैं। इस क्रिया के दो प्रकार १- ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्त साधु की और २-तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवल ज्ञानी साधु को यह आश्रव के ४२ ही प्रकार त्यागने योग्य हैं।

६ संवर तत्त्व।

जिस प्रकार जलासय में पडी सछिद्र नौका (नावा) का निरुंधन करने से जलागम बंद हो जाता है तैसे ही संसार जलासय में रही आत्म रूप नौका के आश्रव छिद्र को रोक पाप रूप पानी का आगम बंद करने वाला संवरही है जिस प्रकार नावा के छिद्रों का निरुंधन होने से वह वही जाती हैं तैसे संवर से आत्मा संसार पार हो जाती है। संवर के सामान्य से २० प्रकार और विषेश ५७ प्रकार होते हैं।

संवर के २० प्रकार-१ सम्यक्त्व, २ व्रतप्रत्याख्यान, ३ प्रमाद त्याग, ४ कषाय, ५ योग निरुंधन, ६ दया, ७ सत्य, ८ अचौर्य, ९ ब्रह्मचर्य, १० निर्ममत्व, ११-१५ पांचों इंद्रिय का निग्रह, १६-१८ तीनों योगों का निग्रह, १९ भण्डोपकरणों की यत्ना और २० सुई कुसाग्र मात्र की यत्ना। विशेष से ५७ प्रकार-१ इर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, ४ आदान निक्षेपना समिति, ५ परिठावणिया समिति, ६ मन गुप्ती, ७ वचन गुप्ती, ८ काया गुप्ती, (इन ८ प्रवचन माता की पालना) ९ क्षुधा, १० तृषा, ११ शीत, १२ उष्ण, १३ दंसमंस, १४ अचल, १५ अरति, १६ स्त्री, १७ चरिया, निसिहिया, १९ शय्या, २० अक्रोश २१ वध, २२ याचना, २३ अलाभ, २४ रोग, २५ तृण स्पर्श, २६ जल्ल मैल, २७ सत्कार पुरष्कार, २८ प्रज्ञा, २९ अज्ञान, ३० दंशग (इन २२ परिषह का जय) ३१ क्षांती, मुक्ति, ३३ आर्जव, ३४ मार्दव, ३५ लाघव, ३६ सत्य, ३७ संयम, ३८ तप, ३९ चेइय, ४० ब्रह्मचर्य [इन १० धर्म का पालना]

४१ अनित्य, ४२ अशरण, ४३ संसार, ४५ एकत्व, ४६ अशुची, ४७ आश्रव, ४८ संवर, ४९ निर्जरा, ५० लोक, ५१ बोध बीज, ५२ धर्म, [इन १२ भावना की अनुप्रेक्षा] ५३ सामायिक, ५४ छेदोपस्थापनीय, ५५ परिहार विशुद्ध, ५६ सूक्ष्म सम्पराय और ५७ यथाख्यात [इन ५ चारित्र का आराधन] यह संवर तत्त्व आदरणीय है। ×

७ निर्ज्जरा तत्व।

उक्त प्रकार संवर से आत्म रूप नौका का जलागम तो रोक दिया किंतु प्रथम भराया हुआ पानी को उलीच निकालने से वह नौका हलकी बनेगी तब ही संसार जलाशय से पार हो मोक्ष किनारा-तीर प्राप्त कर सकेगी, इसलिये पूर्व संचित पाप रूप पानी को उलीच के निकालने का उपाय निर्जरा ही है। निर्जरा १२ प्रकार से होती है- १ अशनादि चारों आहार का स्वल्प काल जावज्जीव प्रत्याख्यान करे सो अनसन तप, २ आहार उपकरण कषाय को कम करे सो उनोदरी तप, ३ भिक्षोपजीवी बने तथा खान पान की वृति को संक्षेप करे सो गोचरी तथा वृति संक्षेप तप, ४ षट् रस का त्याग करे सो रस परित्याग तप, ५ ज्ञान युक्त धर्मार्थ काय को कष्ट पहुंचावे सो काया क्लेश तप, ६ इंद्रिय योगादि कर्म बंध के कारणों से आत्म निग्रह करे सो प्रति संलिनता तप. (यह ६ बाह्य-प्रगट तप और) ७ पाप छेदन प्रायःश्चित करे सो प्रायःश्चित तप ८ नम्रत धारण करे सो विनय तप. ९ वयो वृद्ध गुनो वृद्ध की सेवा भक्ति करे सो वय्यावच्च तप. १० शास्त्र पठन करे सो स्वाध्या तप. ११ शास्त्रार्थ का चिन्तवन करे सो विउत्सर्ग-कायुत्सर्ग तप(६ अभ्यन्तर-गुप्त तप) यह निर्जरा तत्व आदरणिय है.

× संवर और निर्जरा के भेदों का सविस्तार कथन प्रथम खण्ड के ३-४-५ प्रकरणों में किया है सो देखिये।

८ वन्ध तत्व ।

क्षीर-नीर, धातु-मृतिका, पुष्प-अतर, तिल-तेल, इत्यादि की तरह आत्मा और कर्मों का सम्बन्ध है सो बन्धतत्व ४ प्रकार से होता है—१ जैसे सूंठ मैंथी आदि द्रव्य संयोग से बना मोदक (लड्डू) की प्रकृती (स्वभाव) वात पितादि की घातक होती है तैसे ही आठों कर्मों जिस २ गुनके घातिक हों सो प्रकृति बन्ध. २ जैसे वह मोदक महीने दो महीने रह सकता है तैसे बान्धित कर्म जितने काल रहे सो वह स्थिति बन्ध, ३ जैसे वह मोदक कटुक तीक्षण रस वाला होता है जैसे कर्मों का रस दे वह अनुभाग बन्ध और ४ जैसा वह मोदक न्यूनाधिक परिणाम वाला-छोटा बड़ा हो सो प्रदेश बन्ध ।

अब यहां आठ कर्म का और उनकी प्रकृतियों का कथन करते हैं:—

१ प्रकृति बन्ध—'णाण पडिणायाए'-ज्ञान और ज्ञानी की निन्दा करे, २ 'णाण निन्हवणयाए'-ज्ञान और ज्ञानी का उपाकार छिपावे, ३ 'णाण आसयणाए'-ज्ञान और ज्ञानी की अशातना करे. ४ 'णाण अन्तराए'-ज्ञान पठन करते अन्तराय दे-व्याघात करे, ५ 'णाण पउसेणं'-ज्ञान और ज्ञानी पर द्वेष भाव धारन करे और ६ 'णाण विसंवायणा जोगेण'-ज्ञान को उलट परिणमावे. ज्ञानी से झूटे झगड़े करे. इन ६ कारणों से ज्ञानावर्णीय कर्म बन्ध होता है. जिसका फल १० प्रकार भोगवे—१ 'मति ज्ञानावर्णीय'-बुद्धी निर्मल नहीं पावे. २ 'श्रुति ज्ञानावर्णीय-उपोयोग-श्रुति निर्मल नहीं पावे. ३ 'अवधि ज्ञानावर्णीय'-अवधि ज्ञान नहीं पावे. ४ 'मन पर्यव ज्ञानावर्णीय' मन पर्यव ज्ञान नहीं पावे. ६ 'सोया वरणे'—बहिरा होवे, ७ 'नेता वरणे'— अन्धा होवे, ८ 'घणा वरणे' गुंगा होवे. ९ 'रसा वरणे'-मुक्क-बोबड़ा होवे और १० 'फासा वरणे'-शरीर की शून्यता रोगादि दुःख पावे।

२ जिस प्रकार ज्ञानावर्णीय कर्म बन्ध के ६ बोल कहे उसही प्रकार दर्शना वर्णीय कर्म बन्ध के ६ बोल दर्शन-सम्यक्त्व आश्रिय कहना. और

९ प्रकार से भोगवे—१ चक्षु दर्शना वर्णीय. अचक्षु दर्शना वर्णीय. ३ अवधि दर्शना वर्णीय. ४ केवल दर्शना वर्णीय- ५ निद्रा. ६ निद्रानिद्रा. ७ प्रचला. ८ प्रचला प्रचला और ९ थिणद्धि निद्रा।*

३ वेदनीय कर्म के दो प्रकार—१ साता वेदनी और २ असाता वेदनी इसमें से साता वेदनीय कर्म का बन्ध १० प्रकार से होवे-१ 'पणाणु कंपया' बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौरिन्द्रय प्राणी की अनुकम्पा (दया) करे. २ 'भूयाणु कंपया' वनस्पति की अनुकम्पा करे. ३ 'जीवाणु कम्पया' पचेन्द्रिय की अनुकम्पा करे. ४ 'सत्ताणु कम्पया'-पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु की अनुकम्पा करे. इन चारों प्रकार के जीवों की) ५ 'अदुक्खणयाए'-दुख नहीं देवे. ६ 'असोयणयाए'-शोक (चिंता) उत्पन्न नहीं करे. ७ 'अझुरणयाए' झुरना न उपजावे-तरसावे नहीं. ८ 'अतिप्पणाए'—रुदन नहीं करावे. ९ 'अपिट्टणयाए'—मार पीट न दे. और १० 'अपरिया वणया'-परीताप नहीं उपजावे और इसके फल ८ प्रकार से भोगवे-१ 'मणुणा सद्दा' मनोज्ञ शब्द (अच्छे) राग रागणी आदि सुनने को मिले. २ 'मणुणा रूवा' मनोज्ञ रूप नाटकादि देखने को मिले. ३ 'मणुणा गन्धा' मनोज्ञ गन्ध अतरादि सुंघने को मिले. ४ 'मणुणा रसा'-मनोज्ञ रस-षट रस भोजनादि अस्वादन को मिले, ५ 'मणुणा फासा' मनोज्ञ स्पर्श-सयनासन भोग विलासादि मिले. ६ मण सुहाय'-मन आनंद में रहे. ७ 'वय सुहाए'-वचन इष्ट मिष्ट होवे और ८ 'काय सुहाए-सुंदर सुघड शरीर पावे और दूसरा असाता वेदनीय कर्म का बन्ध १२ प्रकार का होता है—१ उक्त प्रकार-प्राण भूत जीव सत्व को-१ दुःख दे. २ सोग करावे. ३ तरसावे. ४ रुदन करावे. ५ मारे. ६ परीताप उत्पन्न करे. यह ६ कार्य समान प्रकार से करे और यही ६ कार्य विशेष प्रकार से करे. एवं १२ और इस के फल ८ प्रकार से भोगवे-शब्द, रूप. रस, स्पर्श-अमनोज्ञ (खराब) पावे. मन चिन्तातुर रहे, वचन अनिष्ट अमनोज्ञ होवे और काया से रोगादि दुःख का भुक्ता बने.

४ तीव्र-क्रोध मान-माया लोभवन्त होवे. अधर्म में धर्म माने सो दर्शन मोह और साधु श्रावक हो भ्रष्टाचारी बने सो चारित्र मोह. इन ६ प्रकार से मोहनीय कर्म बन्ध होता है, जिस के फल २८ प्रकार से भोगवे अनन्तानुबन्धी क्रोधादि १६ कषाय, हास्यादि ९ जो कषाय एवं २५ और सम्यक्त्वादि ३ मोहनीय एवं २८ प्रकार की प्रकृतियों का उदय होता है.×

५ सदैव छही काया का घमसान हो सो महा आरंभ, २ महा-तृष्णा वाला होवे सो महा परिग्रही. ३ मदिरा मांस का भोगने वाला और ४ पचेन्द्रिय जीवों को वध करने वाला. इन ४ कारनों से नर्कगति का आयुर्बन्ध करे १-माइलयारा-कपट-दगा करे, २ 'नियडिलयारा'—महा दगाबाज, ३ 'अलीवयणेणं'-झूठ बोले और ४ 'कुडतोलेकुडमाणे'-तोल माप खोटे रक्खे इन ४ कारणों से तिर्यंच गति का आयुर्बन्ध करे. पगई भद्दयारा'-प्रकृति का भद्रिक-सरल स्वभावी २ 'पगइविणियारा'-प्रकृति का विनीत-नम्रात्मा ३ 'साणुकोसीयारा'-दयालु और चार 'अमच्छरियारा'-ईर्षा रहित इन चार कारणों से मनुष्यायुर्बन्ध करे. और १ सराग संयम'-शिष्य शरीरादि पर ममत्व रख संयम का पालन करे, २ 'संयमासंयम'—श्रावक व्रत का पालन करे. ३ 'बालतवोकम्मेणं'-ज्ञान-दया-रहित तपश्चर्या करने वाला. और ४ अकाम निर्जरा-परवश्यता से प्राप्त हुए दुःख समभाव से सहे. इन चार कारनों से देवायुर्बन्ध करे. यों १६ प्रकार से आयुकर्म बन्ध होता है इस के फल चार प्रकार भोगवे—१ नर्कायुबन्धक नर्क में २ तिर्यंचायुर्बन्धक-तिर्यंच में, ३ मनुष्यायुबन्धक मनुष्य में और ४ देवायु बन्धक देव गति में उत्पन्न होते हैं. कर्त्तव्यानुसार दुःख सुख का अनुभव करते हैं.

६ नाम कर्म के दो प्रकार—१ शुभनाम और २ अशुभ नाम इस में से शुभनाम कर्म ४ प्रकार से बन्धे—१ 'कायुज्जुयारा' काया का सरल

× जिन २ कर्म प्रकृतीयों का कथन संक्षेप में लिखा है उन २ का कथन पहिले विस्तार हो गया है।

२ 'भासुज्जुयारा'–भाषा का सरल ३ 'भावुज्जुयारा'–मन का सरल और ४ 'अविसंवाय जोगेणं'–मनादि त्रियोग का विपर्यादि रहित इस के फल १४ प्रकार से भोगवे–१ 'इट्ठा सद्दा'-शब्द (वचन) इष्टकारी होवे २ 'इट्ठारुवा'=रूप इष्टकारी होवे, ३ 'इट्ठागंधा'–गन्ध इष्टकारी होवे. ४ इट्ठारस=रस इष्टकारी होवे ५ 'इट्ठा फासा'–स्पर्श इष्ट कारी होवे ६ 'इट्ठा गई'–चाल चलन इष्ट कारी होवे. ७ 'इट्ठाट्ठिइ'–आयुष्य (जिन्दगी) सुख से व्यतीत करे. ८ 'इट्ठा लवण'–शरीर की लावण्यता मनोहर होवे. ९ 'इट्ठा यसो किर्त्ती'–यश कीर्ती विस्तार पावे. १० 'इट्ठा इट्ठा'–उटाण–कम्म-बल-विरिय पुरसाकार परकम्मे-जैसे दूर रही वस्तु को उठाने की इच्छा हो सो उत्थान, उसे ग्रहण करने गमन करे सो कर्म, उसे उठावे सो बल, ले चले सो वीर्य और यथोचित स्थान जाकर रखदे सो पुरुषाकार पराक्रम इनकी योग्यता इष्टकारी पावे. ११ 'इट्ठ सरया'–इष्ट के दर्शन के समान वारम्वार स्वर (गायन) सुनना जन चहावे ऐसा स्वर (कण्ठ) होवे. १२ 'कंत सरया'--पत्नी को कन्त--पति के समान प्यारा स्वर होवे. १२ १३ 'पिय सरया'–पुरुष को प्रिया (स्त्री) के समान वल्लभ स्वर होवे और १४ 'मणुण सरया'–मन में रमण करा करे ऐसा स्वर होवे।

उक्त नाम कर्मोदय से ९३ तथा १०३ प्रकृति होती हैं–नर्कादि ४ गति. एकेन्द्रियादि ५ जाति औदारिकादि ५ शरीर ओदारिकादि ३ शरीर के अङ्गोपाङ्ग × शरीर के वन्धन, ५ शरीर के संघातन * ६ संघयन ६ संस्थान ५ वर्ण २ गन्ध ५ रस ८ स्पर्श ४ गति की अनुपूर्वी ऐवं ६३ और ६४ राज हंसादि जैसी उत्तम चाल हो सो शुभ विहाय गति. ६५ ऊंटादि के जैसी खराव चाल हो सो अशुभ विहाय गति, (यह ६५ शरीर

× औदारिक वैक्रय और आहारिक यह ३ शरीर धारण होने से इनके अंगोपाङ्ग होते हैं और तेजस कार्मन शरीर अभ्यन्तर सब जीवों के होने से अङ्गोपाङ्ग नहीं होते हैं।

* शरीर के ग्रहन करने योग्य पुद्गलों को ग्रहन कर एकत्र करे सो संघातन और धम्धकार स्थिर करे सो बन्धन कहलाते हैं।

सम्बन्धीय होने से पिण्ड प्रकृति कहलाती हैं) ६६ सर्पादिवत् अपने शरीर से दूसरे शरीर की घात हो सो पराघात नाम. ६७ लोह पिण्ड समान दृढ़ शरीर होकर भी फूल समान हलका शरीर हो सो अगुरु लघु नाम, ६८ सूर्य के समान तेजस्वी हो सो आताप नाम. ६९ सुख से श्वासोश्वास ले सके सो उश्वास नाम, ७० चन्द्र समान शीतल मुद्रा हो सो उद्योत नाम ७१ रोझ पशु समान अपने शरीरके अवयव से अपनी घात हो सो उप-घात नाम. ७२ तीर्थङ्कर नाम. ७३ निर्माण नाम. ७४ त्रस नाम. ७५ बादर नाम. ७६ प्रत्येक नाम, ७७ पर्याप्ता नाम. ७८ स्थिर नाम. ७९ शुभ नाम ८० सौभाग्य नाम. ८१ सुस्वर नाम. ८२ आदेय नाम. ८३ यशो कीर्ती नाम. ८४ स्थावर नाम ८५ सूक्ष्म नाम. ८६ साधारण नाम. ८७ अपर्याप्ता नाम ८८ अशुभ नाम. ८९ अस्थिर नाम ९० दौर्भाग्य नाम. ९१ दुःस्वर नाम. ९२ अनादेय नाम और ९३ अयशो कीर्ती नाम. इनमें दश बन्ध की प्रकृति * मिलाने से १०३ प्रकृति नाम कर्म की हो जाती हैं।

७ गोत्र कर्म के दो प्रकार—१ ऊंच गोत्र और २ नीच गोत्र. इसमें से ऊंच गोत्र का बन्ध ८ प्रकार से होता है—१ 'जाइ अमयेणं'—जाति माता के पक्ष का अभीमान नहीं करे. २ 'कुल अमयेणं'—कुल पिता के पक्ष का अभिमान नहीं करे. ३ 'बल अमयेणं'—बल शरीर के पराक्रम का अभिमान नहीं करे. ४ 'रूव अमयेणं'—रूप शरीर की सुन्दरता का अभि-मान नहीं करे. ५ 'तव अमयेणं'—स्वयं कृत तपश्चर्या का अभिमान नहीं

* (१) औदारिक औदारिक बन्धन, (२) औदारिक वैक्रय बंधन. (३) औदारिक आहारिक बन्धन (४) औदारिक तेजस बन्धन, (५) औदारिक कार्मन बन्धन, (६) वैक्रय वैक्रय बन्धन, (७) वैक्रय आहारिक बन्धन, (८) वैक्रय तेजस बन्धन, (९) वैक्रय कार्मन बन्धन, (१०) आहारिक आहारिक बन्धन, (११) आहारिक तेजस बन्धन, (१२) आहारिक कार्मन बन्धन, (१३) तेजस तेजस बन्धन, (१४) तेजस कार्मन बन्धन और ५ कार्मन कार्मन बन्ध । इन १५ बंध की प्रकृति में ५ बन्धन जो ९३ में गिन लिये हैं बाकी १० यहां जानना ।

करे. ६ 'सुय अमयेणं'—सूत्र—ज्ञान प्राप्त विद्या का अभिमान नहीं करे. ७ 'लाभ अमयेणं'—लाभ प्राप्तिका अभिमान नहीं करे और ८ 'इस्सरी अमयेणं'—ईश्वर्य (माल की) का अभिमान नहीं करे। इसके फल ८ प्रकार से भोगवे—१ 'जाइ विसिट्ठी'—उत्तम जाति पावे, २ कुल विसिट्ठी'—उत्तम कुल पावे. ३ 'बल विसिट्ठी'—बलवन्त होवे. ४ रूव विसिट्ठी'—सुरूपवन्त होवे. ५ 'तव विसिट्ठी'—तपस्वी होवे. ६ 'सुय विसिट्ठी'—विद्वान होवे. ७ 'लाभ विसिट्ठी'—इच्छित वस्तु प्राप्त कर सके और ८ 'इस्सरी विसिट्ठी'—बहुतों का मालिक बने। और दूसरा नीच गोत्र का बन्ध भी ८ प्रकार से होवे उक्त आठों ही प्रकार का अभिमान करने से नीच गोत्र बन्धे जिसके फल भी ८ प्रकार से भोगवे. उक्त जाति आदि आठों ही की हीनता प्राप्त करे।

८ अन्तराय कर्म का बंध ५ प्रकार से होवे—१ किसी को दान देने को मना करे * तो दानान्तराय बन्धे. २ किसी के लाभ प्राप्ति में आवक में हरकत करे सो लाभान्तराय बंधे ३ किसी को खान पान नहीं भोगवने दे सो × भोगान्तराय बन्धे ४ किसी को वस्त्र भूषन मकानादि की हरकत करे सो उपभोगान्तराय बंधे और ५ किसी को धर्म ध्यान तप संयमादि धर्माराधन में हरकत करे सो वीर्यान्तराय बंधे। इनके फल ५ प्रकार से भोगवे १ दान नहीं देसके २ लाभ उपार्जन नहीं कर सके ३ खान पानादि प्राप्त नहीं

* इस वक्त कितनेक हीनाचारी साधु को दान देने को और कितनेक साधु सिवाय अन्य को दान देने का निषेध करते हैं वे भी अन्तराय कर्म का बन्ध करते हैं, देखीये सूयगडांग सूत्र के ११ वें अध्याय में भगवन्त ने कहा है कि-)

गाथा—जे य दानं पसं संति. वह मिच्छंति पाणिणं ॥
जे य णं पडि से हं ति, वित्तिच्छेयं करंति ते ॥ २० ॥

अर्थ—जो त्रस स्थावर जीवों को वध कर दान देते हैं उस देने को जो निषेध करेगा वह लाभान्तराय कर्म का बन्ध करता है और जो उस दान की प्रशंसा करता है वह प्राण घात का अनुमोदक होता है, इसलिये हिंसक दान के निषेध की भी मना है तो निर्दोष दान को अन्तराय देने का तो निषेध किस प्रकार हो सके ?

× उपदेश देकर जीवों को [illegible] छुड़ावे तथा निमित्त किसी मरते जीव को छुड़ावे में अन्तराय नहीं।

कर सके ४ वस्त्र भूषण मकानादि प्राप्त नहीं कर सके और ५ धर्म ध्यान तप संयमादि धर्म आचरन नहीं कर सके।

उक्त प्रकार—६ ज्ञाना वर्णिय की ६ दर्शनावर्णिय की २२ वेदनीय की ६ मोहनीय की १६ आयुष्य की ८ नाम की १६ गोत्र की और ५ अन्तराय की यों सब ८५ प्रकृति आठों ही कर्म बंध की और १० ज्ञाना वर्णिय की ७ दर्शनावर्णिय की १६ वेदनी की ५ मोहनी की ४ आयुष्य की २८ नाम की १६ गोत्र की और ५ अंतराय की यों सब ९३ प्रकृति आठों ही कर्म को भोगवने की हुई दोनों ८५+९३=१७८ प्रकृति हुई इसमें नाम कर्म की १०३ प्रकृति मिलाने सब २८१ प्रकृति आठों कर्म की होती हैं सो प्रकृति बंध।

२ अब आठ कर्मों का स्थिती बन्ध कहते हैं [१ ज्ञानावर्णिय, २ दर्शनावर्णिय, और ३ अंतराय इन तीनों कर्मों की जघन्य स्थिती अंतर मुहूर्त की उत्कृष्टी ३०००००००००००००००० (तीस क्रोडा क्रोड) सागरोपम की। अबाधा काल * जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टा ३००० वर्ष का ४ सातावेदनीय कर्म का जघन्य दो समय की उत्कृष्टा १५००००००००००००००० (पन्दरे क्रोडा क्रोड) सागरोपम की, अबाधा काल जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टा १५०० वर्ष का ४ असातावेदनीय कर्म की जघन्य अंतर मुहूर्त उत्कृष्ट ३०००००००००००००००० (तीस क्रोडा क्रोड) सागरोपम की। अबाधा काल जघन्य अंतर मुहुर्त उत्कृष्टा ३००० वर्ष का ५ मोहनीय कर्म की जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टा ७०००००००००००००००० [सत्तर क्रोडा क्रोड] सागरोपम का। अबाधा काल जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टा ७००० वर्ष का. ६ आयुष्य कर्म की स्थिति गति प्रमाण—नारकी देवता की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष की उत्कृष्टा ३३ सागरोपम मनुष्य

* कर्म का बन्ध हुये पश्चात् जितने कालान्तर में वे उदय भाव को प्राप्त होवे उस अन्तर काल को अबाधा काल कहते हैं।

करे. ६ 'सुय अमयेणं'—सूत्र—ज्ञान प्राप्त विद्या का अभिमान नहीं करे. ७ 'लाभ अमयेणं'—लाभ प्राप्तिका अभिमान नहीं करे और ८ 'इस्सरी अम येणं'—ईश्वर्य (माल की) का अभिमान नहीं करे। इसके फल ८ प्रकार से भोगवे—१ 'जाइ विसिट्ठी'—उत्तम जाति पावे, २ कुल विसिट्ठी'—उत्तम कुल पावे. ३ 'बल विसिट्ठी'—बलवन्त होवे. ४ रूव विसिट्ठी'—सुरूपवन्त होवे. ५ 'तव विसिट्ठी'—तपस्वी होवे. ६ 'सुय विसिट्ठी'—विद्वान होवे. ७ 'लाभ विसिट्ठी'—इच्छित वस्तु प्राप्त कर सके और ८ 'इस्सरी विसिट्ठी'—बहुतों का मालिक बने। और दूसरा नीच गोत्र का बन्ध भी ८ प्रकार से होवे उक्त आठों ही प्रकार का अभिमान करने से नीच गोत्र बन्धे जिसके फल भी ८ प्रकार से भोगवे. उक्त जाति आदि आठों ही की हीनता प्राप्त करे।

८ अन्तराय कर्म का बंध ५ प्रकार से होवे—१ किसी को दान देने को मना करे * तो दानान्तराय बन्धे. २ किसी के लाभ प्राप्ति में अटक में हरकत करे सो लाभान्तराय बंधे ३ किसी को खान पान नहीं भोगवने दे सो × भोगान्तराय बन्धे ४ किसी को वस्त्र भूषन मकानादि की हरकत करे सो उपभोगान्तराय बंधे और ५ किसी को धर्म ध्यान तप संयमादि धर्माराधन में हरकत करे सो वीर्यान्तराय बंधे। इनके फल ५ प्रकार से भोगवे १ दान नहीं दे सके २ लाभ उपार्जन नहीं कर सके ३ खान पानादि प्राप्त नहीं

* इस वक्त कितनेक हीनाचारी साधु को दान देने की और कितनेक साधु सिवाय अन्य को दान देने का निषेध करते हैं वे भी अन्तराय कर्म का बन्ध करते हैं, क्योंकि सूयगडांग सूत्र के ११ वें अध्याय में भगवन्त ने कहा है कि-)

गाथा—जे य दाणं पसंसंति, वह मिच्छंति पाणिणं ॥
जे य णं पडिसेहंति, वित्तिच्छेयं करंति ते ॥ २० ॥

अर्थ -जो त्रस स्थावर जीवों को वध कर दान देते हैं उन देने को जो निषेध करेगा वह लाभान्तराय कर्म का बन्ध करता है और जो उक्त दान की प्रशंसा करता है वह प्राण घात का अनुमोदक होता है, इसलिये हिंसक दान के निषेध की भी मना है तो निर्वद्य दान की अन्तराय कर्म का तो निषेध किस प्रकार हो सके ?

× उपरान्त हेतु औषध [illegible] तथा दया निमित्त किसी मरते जीव को छोड़ा दे तो अन्तराय नहीं।

भरा खड्ग चाटने से किञ्चित मिष्ट लग महा दुःख देने वाला होता है तैसे साता वेदनीय में लुब्ध जीवों किञ्चित सुख से महा दुःख पाते हैं और असातावेदनीय अफीम से भरा खड्ग चाटने से पूर्व पश्चात उभय प्रकार से दुःख भुक्ता होता है ४ जैसे मदिरा पान किया जीव शुद्ध बुद्धि विसर जाता है तैसे मोहनीय कर्मोदय में जीव आत्मिक गुन में भ्रमित बन पुद्गलानन्दी बन जाता है ५ जैसे काराग्रह (कैदखाने) में फंसा प्राणी यथेच्छा गमनागमन नहीं कर सकता है तैसे आयुष्य कर्मोदय से प्राप्त स्थान में रुका रहता है ६ जैसे चित्रकार विचित्र प्रकार के चित्र बनाता है तैसे नाम कर्म के योग जीव विचित्र प्रकार का शरीर सम्बन्ध धारन करता है ७ जैसे कुम्भकार एक ही मृतिका के अनेक प्रकार के वर्तन बनाता है तैसे गोत्र कर्मोदय से एकही प्रकार शरीर कर अनेक प्रकार की जात्यानु भव करता है और ८ जैसे राजा ने तो आज्ञादी के इसे अमुक पारितोपिक दो किन्तु जब कोषाधीश (भंडारी) देगा तबही वह लाभ प्राप्त कर सकेगा तैसेही अंतराय कर्मोदय से इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं कर सकता है. इस प्रकार आत्म प्रदेश और कर्म प्रदेश के सम्बन्ध से आत्मा संसार में विचित्रता को प्राप्त होता है।

९ मोक्ष तत्त्व।

बन्ध का प्रति पक्षी मोक्ष है अर्थात उक्त चारों प्रकार के बन्ध से मुक्त होना छूटना उसही का नाम मोक्ष है यह मोक्ष चार काम से प्राप्त होता है:—उत्तराध्ययन सूत्र के २८ वें अध्याय में कहा है:—

गाथा—णाणेण जाणई भावे, दंसणेणय सद्दहे ॥
चरित्तेणय गिण्हाइ, तवेण परि सुज्झइ ॥३५॥

अर्थात्—१ सम्यग ज्ञान कर जीवाजीव नित्यानित्य शुद्धा शुद्धि लोकालोक इत्यादि सर्व पदार्थों को जान, २ ज्ञान कर जाने हुये पदार्थों को शंकादी दोष रहित यथातथ्य जिस प्रकार जिनेन्द्र ने कहे हैं वैसे ही

तिर्यच की जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टी ३ पल्योपम की. अवाधा काल जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टा संख्यात वर्षायु वाले का आयुष्य के तीसरे नवमें सत्ताईसवें यावत् अन्तिम आयुष्य को तीसरे भाग का, असंख्यात वर्षायु वाले का ६ महिने का ७ नाम कर्म और ८ गोत्र कर्म की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्टी २०००००००००००००००० (वीस क्रोडा क्रोड) सागरोपम की. अवाधा काल २००० वर्ष की यह स्थितीबन्ध जानना.

३ आठ कर्मों का प्रदेश बन्ध--१ ज्ञानावर्णिय कर्मोदय से अनन्त ज्ञान गुन ढका है. २ दर्शनावर्णिय कर्मोदय से अनन्त दर्शन गुन ढका है. ३ वेदनीय कर्मोदय कर अनन्त अव्याबाध-आत्मिक सुख गुन ढका है. ४ मोहनीय कर्मोदय कर अनन्त क्षायिक सम्यक्त्व गुन ढका है, ५ आयुष्य कर्मोदय कर अक्षय अनन्त स्थिति गुन ढका है ६ नाम कर्मोदय कर अरूपिक आत्मिक गुन ढका है, ७ गोत्र कर्मोदय कर अनन्त अगुरू लघुत्व आत्मिक गुन ढका है और ८ अन्तराय कर्मोदय कर अनन्त शक्ति गुन ढका है, यह कर्मों का रसोदय दो प्रकार से होता है. अभव्य तथा एकेन्द्रियादि के तीव्र रसोदय होने से वे पराधीन हो आत्मिक गुन को प्रगट करने में असमर्थ बने हैं और २ भव्यजीवों रसोदय मन्द होता जाता है त्यों त्यों उच्चत्व को प्राप्त होते सम्पूर्ण आत्मिक गुन को प्रगट कर जाते हैं.

४ प्रदेश बन्ध सो-१ जैसे सूर्य के आगे बद्दल आने से मन्द प्रकाश होता है तैसे ज्ञानावर्णिय के आवरण से ज्ञान का मन्द प्रकाश होता है. २ आंख पर पट्टी बंधने से पदार्थों को देख सकता नहीं है या रंगदार चश्मा लगाने से पदार्थ विपरीत भाष होते हैं तैसे दर्शनावर्णिय से पदार्थों को देख सकता नहीं है तथा देखे पदार्थ के यथार्थ जान सकता नहीं है ३ जैसे मधु (सहेत) के

भरा खड्ग चाटने से किञ्चित मिष्ट लग महा दुःख देने वाला होता है तैसे साता वेदनीय में लुब्ध जीवों किञ्चित सुख से महा दुःख पाते हैं और असातावेदनीय अफीम से भरा खड्ग चाटने से पूर्व पश्चात उभय प्रकार से दुःख भुक्ता होता है ४ जैसे मदिरा पान किया जीव शुद्ध बुद्धि विसर जाता है तैसे मोहनीय कर्मोदय में जीव आत्मिक गुन में भ्रमित बन पुद्गलानन्दी बन जाता है ५ जैसे कारागृह (कैदखाने) में फंसा प्राणी यथेच्छा गमनागमन नहीं कर सकता है तैसे आयुष्य कर्मोदय से प्राप्त स्थान में रुका रहता है ६ जैसे चित्रकार विचित्र प्रकार के चित्र बनाता है तैसे नाम कर्म के योग जीव विचित्र प्रकार का शरीर सम्बन्ध धारन करता है ७ जैसे कुम्भकार एक ही मृतिका के अनेक प्रकार के वर्तन बनाता है तैसे गोत्र कर्मोदय से एकही प्रकार शरीर कर अनेक प्रकार की जात्यानु भव करता है और ८ जैसे राजा ने तो आज्ञादी के इसे अमुक पारितोपिक दो किन्तु जब कोषाधीश (भंडारी) देगा तबही वह लाभ प्राप्त कर सकेगा तैसेही अंतराय कर्मोदय से इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं कर सकता है. इस प्रकार आत्म प्रदेश और कर्म प्रदेश के सम्बन्ध से आत्मा संसार में विचित्रता को प्राप्त होता है।

९ मोक्ष तत्त्व।

बन्ध का प्रति पक्षी मोक्ष है अर्थात उक्त चारों प्रकार के बन्ध से मुक्त होना छूटना उसही का नाम मोक्ष है यह मोक्ष चार काम से प्राप्त होता है:—उत्तराध्ययन सूत्र के २८ वें अध्याय में कहा है:—

गाथा—णाणेण जाणई भावे, दंसणेणय सद्दहे ॥
चरित्तेणय गिण्हाइ, तवेण परि सुज्झइ ॥३५॥

अर्थात्—१ सम्यग ज्ञान कर जीवाजीव नित्यानित्य शुद्धा शुद्धि लोकालोक इत्यादि सर्व पदार्थों को जाने, २ ज्ञान कर जाने हुये पदार्थों को शंकादी दोष रहित यथातथ्य जिस प्रकार जिनेन्द्र ने कहे हैं वैसे ही

श्रद्धान कर २ दर्शन कर श्रधान किय पदार्थों में से आत्मा को हितप्रद मोक्षदाता साधनों का साधक बने और ४ चारित्र कर मोक्षदाता साधनों को स्वीकार किया उसे यथा विधी वृद्धमान परिणाम कर पालन कर पार पहोंचावे सो तप।

"समयग् दर्शन ज्ञान चारित्राणी मोक्षमार्गः"—अर्थात् समयग् दर्शन युक्त ज्ञान और चारित्र ही मोक्षमार्ग है ज्ञान और दर्शन तो आत्मा के अनादि अनन्त गुन हैं मोक्ष हुऐ भी कायम रहते हैं ज्ञान बिना दर्शन नहीं दर्शन बिना ज्ञान नहीं दोनों का जोडा है इन को स्वच्छ बना सम्पूर्णता प्राप्त कराने का साधन चारित्र और तप यह सादी सान्त है अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो वहां तक इन की जरूरत है उक्त प्रकार चारों प्रकार के गुनाराधन से ही मोक्ष प्राप्त होता है।

उक्त नवही तत्त्व द्रव्यार्थिक नय कर तो जीव और अजीव इन दोनों तत्व में समाजाते हैं पर्यायार्थिक नय कर पुण्य पाप आश्रव संवर और यह चारों मुख्यता से अजीव बने हैं क्योंकि कर्म सञ्चयक हैं तथा सकर्मी जीव ही निप्पन्न करते हैं और कर्म रूपी चौस्पर्शी प्रयोग से पुद्गल चर्म चक्षुगत हो सके वैसे हैं, इसलिये ही यह हेय त्यागने योग्य हैं किन्तु व्यवहार नयापेक्षा गोणता से जीव पर्याय में भी मिलते हैं और संवर निर्जरा मोक्ष यह तीनों जीव के निजगुन से निप्पन्न हैं इसलिये यह धर्म तत्व होने से उपादेय आचरणिय हैं किन्तु आत्म सम्बन्धी कर्म पुद्गलों को पृथक भिन्न करने का इनका गुन होने से संग्रह नय कर अजीव (पुद्गल) में भी मिलते हैं।

प्रश्न—जीव के अशुभ योग को आश्रव कहने से आश्रव भी जीव होना चाहिये?

उत्तर—जिस प्रकार शीतल पानी को उष्णकर्ता अग्नि है तैसे ही जीव के अशुभ भाव के कर्ता कर्म हैं कर्म सम्बन्ध बिना जो अशुभ भाव होते

हों तो फिर सिद्ध भगवन्त के भी हुये चाहिये किन्तु यह होता नहीं है संसारी जीव अनादि कर्म सम्बन्धी होने से आश्रव का ग्रहण करते हैं इसका कारण कर्म ही है.

प्रश्न– तो शुभ योग संवर होने से यह भी अजीव होना चाहिये?

उत्तर–पच्चीस क्रिया आश्रव में ग्रहण की हैं और पच्चीसवीं क्रिया इर्यावही है वह शुभ योग से लगती है इस लिये शुभयोग भी पुण्य आश्रव का कारण है तथा प्रथम गुणस्थान में शुभयोग तो है किंतु संवर नहीं है इसलिये शुभयोग संवर नहीं तो योग के निग्रह से होता है योग निग्रह कर्ता जीव होने से संवर जीव ही हैं।

सात नय।

सामान नय दो हैं–१ जिस से वस्तु का बाह्य स्वरूप जाना जाय तथा जो अपवाद मार्ग में लागू हो सो व्यवहार नय और २ जिससे वस्तु का अभ्यन्तर स्वरूप जाना जाय तथा उत्सर्ग में लागू हो सो निश्चय। नय विशेष ७ नय हैं–१ नैगम २ संग्रह ३ व्यवहार ४ ऋजुसूत्र ५ शब्द ६ समभिरूढ और ७ एवंभूत.

१ नैगमनय–जिसकी एक गम नहीं अनेक गम अनेक प्रमान रीति अनेक मार्ग कर एक वस्तु को माने. किसी वस्तु में उसके नाम का अंशमात्र गुन हो तो भी उसे पूर्ण वस्तु माने सो सामान. और नाम प्रमाने पूर्ण गुनको धारक वस्तु को माने सो विशेष यों सामानविशेष दोनों माने भूत भविष्य और वर्तमान इन तीनों काल में हुये होने वाले और होते यों तीनों काल के कार्य को माने और निक्षेप चारों ही माने.

२ संग्रहनय–वस्तु की सत्ता को ग्रहण कर थोडे में बहुत समझे एक वस्तु का नाम लेने से उसके सम्बंध में रही है सर्व गुन पर्याय परिवार सहित ग्रहण करे दृष्टान्त- किसी मालिक ने नोकर को आज्ञा दी दांतन लावो! तब वह नोकर ने–दांतन पानी भरा लोटा मिस्सी सुरमा सलाई कांच कंगादि ला दिया। पान लावो! तब पान चुना कत्था

सुपारी मशलादि लादिया किसी ने बगीचे का नाम लिया तो संग्रह नय वाला वृक्ष शाखा पत्र पुष्प फल बावरी बंगलादि सब ग्रहन कर लिया इत्यादि इस नय वाला थोडे में समजने से सामान को ही मानता है किन्तु विशेष नहीं मानता है और नेगमनय वाले के जैसे तीनों काल की बात निक्षेप चारों ही मानता है.

३ व्यवहारनय- वस्तु का बाह्य (प्रत्यक्ष) स्वरूप दृष्टीगत हो उसही गनमय उस वस्तु को माने आचार क्रिया प्रवृति की ओर ही यह दृष्टी रखे किन्तु अन्तः करण के परिणामों की अपेक्षा नहीं करे जैसे नेगमं नय वाले को गुनके अंश की और संग्रह नय वाले को वस्तु के सत्ता की आवश्यकता है तैसे इसे भी आचार-क्रिया प्रवृती की आवश्यकता है दृष्टान्त व्यवहार में कोकिल काली तोता हरा हंसश्वेत यह इन एक ही रंग मय उनको मानेगा और निश्चय में तो पाँचा ही रंग पाते हैं यह संक्षेप में नहीं समझने से सामान नहीं माने केवल विशेष को माने तीन काल की बात निक्षेप चार ही माने.

४ ऋजुसूत्रनय (ऋज+शरल–सूत्र+सुचना)–इसका शरल ही विचार रहता है यह भी सामान नहीं मानता है फक्त विशेष ही मानता है भूत और भविष्य काल की अपेक्षा नहीं करता हुआ केवल वर्तमान काल की ही बात को मानता है दृष्टान्त किसी ने कहा भूत काल में सुवर्ण वृष्टी हुई थी या भविष्य काल में होगी यह कहता है कि यह कथन निकम्मा है क्यों कि इन से अपन को क्या लाभ ? यह एक भाव निक्षेप को ही मानता है दृष्टान्त सामायिक कर बैठे किसी श्रावक को कोई बोलाने आया तब उसकी विचक्षण पुत्र वधुने कहा किरानेवाले की दूकान पर सूंट लेने गये है वहां नहीं मिलने से फिर पूछा तब कहा चमार की दूकान पर जूते खरीदने गये हैं इतने में सामायिक काल समान होने से श्रावक [illegible] मे बोले तू झूठी है। गप्प क्यों मारी

है। पुत्र बधुने कहा "क्या आपका मन (भाव) वहां गया था कि नहीं ?" श्रावक ने आश्चर्य भूत बन पूछा तुझे कैसे मालुम हुई ? उसने कहा आपकी अङ्ग चेष्टा से × इस प्रकार यह एक भाव को ही सत्य मानता है.*

५ 'शब्दनय'—यह शब्द पर ही ध्यान रखता है वस्तु के नाम जैसे उस वस्तु में वह गुन हो या न हो किंतु नाम प्रमाने हो उस वस्तु को मानेगा जैसे--शक्रेंद्र, पुरेंद्र, सुचिपति, देवेंद्र वगैरा अनेक नामों का एक इंद्र अर्थ ही ग्रहन करे लिंग शब्द में भेद भाव नहीं माने यह भी सामान नहीं माने केवल विशेषमाने वर्तमान काल की बात और १ भाव निक्षेप माने.

६ 'समभी रूढनय'—शब्दारूढ हो अर्थ ग्रहण करे अंश गुन कम हो तो भी पूर्ण माने क्यों कि कभी पूर्ण हो जायंगे ऽ। यह शब्द का अर्थ दृढ़ करता है जैसे—जब शक्र सिंहासनारूढ हो सब देवों पर अपना साशन वर्तावेगा तबही शक्रेन्द्र कहावेगा। वज्रायुध धारन कर देवों के वंड का विदारन करेगा तबही पुरेन्द्र कहावेगा इन्द्रानियों के ३२ प्रकार के नाटक का निरक्षण करने वाला सुचिपती कहावेगा सामानिक आत्मरक्षक तीनों परिषध इत्यादि देवों की सभा में उपस्थित होने वाला देवेन्द्र कहावेगा यह लिंग शब्द में भेद मानता है सामान नहीं माने विशेष माने फक्त वर्त्तमान काल की बात और एक भाव निक्षेप माने.

× कितनेक पुत्र बधु को जाति स्मरण ज्ञान कहते हैं।

* गाथा—वत्थ गन्ध मलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ॥
अच्छन्दा जे न भुजन्ति, न से चाइ त्ति वुच्चइ ॥ २ ॥
जेय कन्त पिए भोए, लद्धे विपिट्ठि कुव्वइ ॥
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ ॥ ३ ॥

अर्थात्—त्यागी हो कर—वस्त्रालंकार स्त्री सुख सैय्या इत्यादि का उपभोग तो नहीं करता है किन्तु भोगवने की इच्छा करता है तो उसे त्यागी नहीं कहना ॥ २ ॥ और जो गृहस्थ हो कर प्राप्त हुये इष्टकारी कान्तकारी भोगोपभोगों को छूट देता है अर्थात् वैराग्य भाव से उन्हें भोगवता नहीं है उसे निश्चय त्यागी कहना यह वचन भी ऋजु सूत्र नय के हैं।

ऽ इसी ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के प्रथम प्रकरण में अरिहन्त के लिये कहा है, वे भी इस नय के वचन हैं।

७ 'एवं भूत नय'—जैसा जिसका नाम वैसा ही उसका काम और परिणाम यह तीनों सम्पूर्ण होंय अर्थात् वस्तु अपने गुनमें पूर्ण होकर उस गुन प्रमाने क्रिया में प्रवृत हो उसके द्रव्य गुन पर्याय तथा वस्तु धर्म सर्व प्रत्यक्ष दृष्टीगत होते हों उसी को यह वस्तु कहेगा। एक अंशमात्र भी गुन कर्म कमी हों तो वस्तु नहीं कहे। यह सामान नहीं माने किन्तु विशेष ही माने. वर्तमान काल की बात और निक्षेपा एक भाव माने। दृष्टान्त—जैसे शक्रेन्द्र सिंहासन पर उपस्थित हुए न्याय तो करते हैं किन्तु उनका मन जो देवियों की ओर लगा होगा उनको यह शक्रेन्द्र नहीं कहेगा किन्तु सुचीपति ही कहेगा. ऐसे सर्व स्थान ग्रहण करना अर्थात् जिसका जिस वक्त जैसा उपयोग प्रवृतता होगा उसको यह वैसाही कहेगा. असंख्यात प्रदेश धर्मास्ति काय को ही धर्मास्ति कहेगा किन्तु दो चार धर्मास्ति के प्रदेश को धर्मास्तिकाय नहीं कहेगा. इस नय वाले की दृष्टी केवल उपयोगों की ओर ही रहती है। (श्रावक पुत्र वधु का दृष्टान्त यहां भी लागू होता है)

अब सातों नय पर समुचय दृष्टान्त कहते हैं:—प्रश्न-तुम कहां रहते हो? उत्तर- लोक में रहता हूं. प्रश्न- लोक तीन हैं तुम किस लोक में रहते हो? उत्तर- मध्य लोक में रहता हूं. प्रश्न-मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं तुम कहां रहते हो? उत्तर- जम्बुद्वीप में रहता हूं. प्रश्न- जम्बुद्वीप में ६ अकर्म भूमी के और ३ कर्म भूमी के क्षेत्र हैं तुम कहां रहते हो? उ० भर्तक्षेत्र में रहता हूं. प्रश्न- भर्तक्षेत्र के ६ खण्ड में से तुम कहां रहते हो? उत्तर वैताढ्य पर्वत से दक्षिण के मध्यखंड में रहता हूं प्रश्न—मध्यखंड में [illegible] हैं [illegible] देश में रहते हो। उत्तर मगधदेश में रहता हूं। [illegible] धदे [illegible] ०००० ग्राम हैं तुम किस ग्राम में रहते [illegible] । उ [illegible] प्रश्न--राजगृही नगरी में [illegible] (म [illegible] दी पाडे में. [illegible] न- ना [illegible] में रहते हो?

उ० देवदत्त के घर में रहता हूं. [यह प्रश्नोत्तर नेगम नय वाले के हुऐ.] संग्रह नय वाले ने कहा—देवदत्त के घर में घरमें (खंड) बहुत हैं इसलिये ऐसा कहो कि- मेरे बिस्तर जितनी जगह में मैं रहता हूं. तब व्यवहार नय वाले ने कहा कि- बिस्तर में जगह बहुत है इसलिये ऐसा कहो कि मेरे शरीर में रहता हूं. तब ऋजु सूत्र नय वाले ने कहा- शरीर में हड्डी, मांस, चर्म, केशादि बहुत वस्तु हैं तैसे ही असंख्य सूक्ष्म स्थावर काय के जीव बादर बायु और कृमी आदि जीवों का निवास है इसलिये ऐसा कहो कि- मेरे आत्मा ने जितने प्रदेशों का अवगाहा किया उसमें रहता हूं. तब शब्द नय वाले ने कहा- आत्म प्रदेश के साथ तो धर्मास्ति पंचास्ति के असंख्यात प्रदेश हैं इसलिये ऐसा कहो कि- मेरे स्वभाव में रहता हूं. तब समभीरूढ नय वाले ने कहा कि–योग उपयोग लेश्यादि के प्रयोग से स्वभाव का तो क्षण १ में पलटा होता है इसलिये ऐसा कहो कि--निजात्म गुन में मैं रहता हूं. तब ऐवं भूत नय वाला बोला कि आत्म गुन तो दो हैं ज्ञान और दर्शन और भगवन्त का फरमान है कि-एक समय में दो कार्य नहीं होवे इसलिये ऐसा कहो कि- जिस वक्त जैसा उपयोग प्रवर्तता है वहां हीं रहता हूं.

दूसरा दृष्टान्त—काष्ट लेने जाते हुऐ नेगम नय वाले बढाई (सुतार) से व्यवहार नय वाले ने पूछा कहां जातेहो? उसने कहा पायली लेने × ऐसे ही काष्ट का छेदन करते काष्ट घर को ले जाते तथा बनाते जब २ पूछा तब उसने पायली का ही नाम कहा इतना सुन व्यवहार नय वाला चुप रहा तब संग्रह नय वाले ने कहा धान्य का संग्रह करो तब पायली कहना ऋजुसूत्र नय वाले ने कहा धान्य के संग्रह मात्र से पायली नहीं कही जायगी किन्तु धान्य का माप करोगे तब पायली कहना शब्द नय वाले ने कहा माप करते एक दो आदि बोलोगे तब पायली कहना. तब

× धान्य को मापने का काष्टादि के माप को पायली कहते हैं।

समभी रूढ़ नय वाला बोला किसी कार्य सिर माप करो तब पायली कहना तब एवं भूत नय वाले ने कहा- मापती वक्त मापने में उपयोग प्रवृते तब ही पायली कहना।

उक्त दोनों दृष्टान्त अनुयोग द्वार सूत्र में कहे हैं. तीसरा प्रदेशों का भी दृष्टान्त कहा है किन्तु वह गहन होने से यहां नहीं दिया। यों सातों नय के सम्बन्ध से हरेक कार्य निष्पन्न होता है. दृष्टान्त-किसी ने पूछा धान्य किससे निष्पन्न होता है ? एक ने कहा- पानी से, दूसरे ने कहा- पृथ्वी से, तीसरे ने कहा- हलसे, चौथे ने कहा- बद्दल से, पांचवें ने कहा- बीजसे, छट्ठे ने कहा ऋतु से और सातवें ने कहा- नसीब (तकदीर) से, अब कहिये इन सातों में सच्चा कौन और झूठा कौन ? जो उक्त सात ही अलग २ रहें तो कोई भी कार्य नहीं होवे ? इसलिये सातों ही झूठे और सातों ही एकत्र हों जांय तो वक्त पर हरेक कार्य होजाय इसलिये सातों ही सच्चे। ऐसेही हरेक कार्य सातों नय के सम्बन्ध से होता है इस लिये सातों नय को माने सो सच्चा जैनी और एक नय माने सो मिथ्यात्वी.

उक्त सातों नयों में से—१ नेगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार और ४ ऋजु सूत्र. यह ४ नय तो व्यवहार में और १ शब्द, २ समभीरूढ़, ३ एवं भूत ये ३ नय निश्चय में किसी वक्त ऋजु सूत्र नय को निश्चय में भी ग्रहण करते हैं। जिससे वस्तु के स्वरूप का मुख्यता पना प्रतिभाष हो सो व्यवहार और निज स्वभाव प्रतिभाषे सो निश्चय। अनुयोग द्वार शास्त्र में नय का कथन है।

९ तत्व पर ७ नय।

(१) 'जीव तत्व'—'नेगम नय'--इसने एक अंश को पूर्ण वस्तु मानी और कारण का कार्य माना इसलिये जो प्रज्ञा प्राणादि सहित शरीर के प्रयोग से पुद्गल संयोग से गौ वृषभ मनुष्यादि में गमनादि क्रिया देख

सब कहते हैं यह जीव है। जिसे यह भी जीव मानता है. २ संग्रह नय वाला असंख्यात प्रदेशात्मक अवगाह को जीव माने. ३ व्यवहार नय से इन्द्रियों की सत्ता से द्रव्य योग द्रव्य लेश्या को जीव कहे क्योंकि निर्जीव शरीर में इन्द्रिया की सत्ता नहीं रहती है. ४ ऋजु सूत्र नय वाला उपयोगी को जीव कहे. * ५ शब्द नय से-भूत काल में जीव था वर्तमान में है और भविष्य में जीव जीव ही रहेगा। इस प्रकार जीव का शब्दार्थ मिले उसे जीव कहे (तेजस कार्मन शरीर के प्रयोग से पुद्गल जीव के साथ अनादि हैं और मोक्ष न हो वहां तक रहेंगे) ६ समभीरूढ नय से- शुद्ध सत्ता धारक ज्ञानादि निज गुन में रमण करते क्षायिक सम्यक्त्वी को जीव कहे और ७ एवंभूत नय से सिद्ध भगवन्त को ही जीव कहे. अन्य को नहीं.

२ 'अजीव तत्व'—अजीव के मुख्य ५ प्रकार-१ धर्मास्ति, २ अधर्मास्ति, ३ आकास्ति, ४ काल और ५ पुद्गलास्ति। प्रथम धर्मास्ति पर ७ नय—१ नेगम नय वाला अंश को पूर्ण मानने वाला होने से धर्मास्ति के एक प्रदेश को भी अजीव माने क्यों कि चलाने की सहाय सत्ता उस में भी है. २ संग्रह नय से जड़ चैतन्य सब के चलन गुन की सत्ता धर्मास्ति की है उन चलन करते प्रयोग से पुद्गल को धर्मास्ति माने. यह प्रदेशादि ग्रहण नहीं करे. ३ व्यवहार नय से जीव पुद्गलों की चलन शक्ति में षड गुन हानी वृद्धि × होती है उसे धर्मास्ति कहे. ४ ऋजु

* उपयोग के दो प्रकार- १ शुभ और २ अशुभ मिथ्यात्व मोह के उदय से अशुभ उपयोग होता है सो अजीव है किन्तु नय की अपेक्षा से यहां जीव गिना है।

× १ संख्यात गुणाधिक, २ असंख्यात गुणाधिक, ३ अनन्त गुणाधिक, ४ संख्यात भागाधिक, ५ असंख्यात भागाधिक, ६ अनन्त भागाधिक, ऐसे ही—७ संख्यात गुण हीन, ८ असंख्यात गुण हीन, ९ अनन्त गुण हीन, १० संख्यात भाग हीन, ११ असंख्यात भाग हीन और १२ अनन्त भाग हीन यों ३ बोल गुण आधिक्य और ३ बोल भाग आधिक्य ६ बोल अधिक के और ऐसे ही ६ बोल हीनता के सो षड गुन हानि वृद्धी इन १२ बोलों में से जहां ८ बोल पावे सो चौस्थान वलिया, ६ पावे सो त्रिस्थान वलिया, ४ पावे सो द्विस्थान वलिया और २ बोल पावे सो एक स्थान वलिया जानना।

सूत्र नय वाला भूत भविष्य काल को ग्रहण नहीं करता हुआ जो वर्तमान काल में जो जीव पुद्गलों का गति गमन देखे उसे ही धर्मास्ति कहे. ५ शब्द नय वाला देश प्रदेश की अपेक्षा नहीं रखता फक्त धर्मास्ति के स्वभाव को ही धर्मास्ति कहे. ६ समभीरूढ नय वाला ज्ञानादि गुन से धर्मास्ति के स्वभाव के ज्ञाता को धर्मास्ति कहे. और ७ एवंभूत नय वाला-सप्त भङ्गी सप्त नय इत्यादि से धर्मास्ति के गुन सिद्ध कर सके ऐसे ज्ञाता होवे उसे ही धर्मास्ति कहे। दूसरी अधर्मास्ति पर भी धर्मास्ति की समान ही सात नय कहना विशेष में स्थिर गुन कहना. तीसरी आकास्ति काय-१ नेगम नय से आकाश के एक प्रदेश को आकास्ति कहे. २ संग्रह नय वाला खन्ध देश की अपेक्षा नहीं करता 'एगे लोए, एगे अलोए' अर्थात् एक लोकाकास्ति. एक अलोकाकास्ति को आकास्ति कहे. ३ व्यवहार नय वाला ऊर्द्ध अधोतिर्यक् लोक के आकाश को आकास्ति कहे. ४ ऋजु सूत्र नय वाला-आकाश प्रदेश में रहे जीव पुद्गलों की हानी बृद्धि रूप क्रिया को आकास्ति कहे. ५ शब्द नय वाला-पोले स्थान में अवगाह लक्षण को आकास्ति कहे. ६ समभीरूढ नय वाला विकाश गुन को आकास्ति कहे. और ७ एवंभूत नय वाला-आकाश के द्रव्य गुन पर्याय तथा उत्पाद व्यय धृत गुन के जान को आकास्ति कहे। चौथा काल १-नेगम नय वाला-तीनों काल के समय का गुन एक ही होने से समय को काल कहे. २ संग्रह नय वाला-एक समय से काल चक्र तक के काल को काल कहे. ३ व्यवहार नय वाला-अहोरात्री पक्ष मास वर्षादि को काल कहे. यह अढाई द्वीप वाहिर काल नहीं माने. ४ ऋजु सूत्र नय वाला-भूत भविष्य की अपेक्षा नहीं करता वर्तमान समय को ही काल कहे. ५ शब्द नय वाला-जीव अजीव की पर्याय के पलटने को काल कहे. ६ समभीरूढ नय वाला-जीव पुद्गल की स्थिति के क्षय करने वाले को काल कहे. और ७ एवंभूत नय वाला-काल के द्रव्य गुन पर्याय के ज्ञाता को काल

कहे । पांचवी पुद्गलास्ति काय-१ नेगम नय वाला पुद्गल स्कन्ध के अंश रूप एक गुण की मुख्यता को ग्रहण कर वर्ण गंध रस स्पर्शने के एक अंश को पुद्गल कहे. २ संग्रह नय वाला अनन्त पुद्गल स्कंध को पुद्गल कहे. ३ व्यवहार नय वाला-विशेषा मिस्सा पोगसा पुद्गल का व्यवहार दृष्टीगत हो उसे पुद्गल कहे. ४ ऋजु सूत्र नय वाला-पुद्गल का पूर्ण गलन वर्तमान काल में होवे उसे ही पुद्गल कहे. ५ शब्द नय वाला-पुद्गल के पूर्ण गलन की क्रिया को पुद्गल कहे. ६ समभीरूढ नय वाला-पुद्गल की षड गुन हानी वृद्धि तथा उत्पाद व्यय धृवता को पुद्गल कहे. और ७ एवंभुत नय वाला-पुद्गल के द्रव्य क्षेत्र काल भाव इन के द्रव्य गुन पर्याय * के ज्ञाता का उस में उपयोग हो उसे पुद्गल कहे.

(३) 'पुण्य तत्व'—१ नेगम नय वाला-किसी के यहां धन धान्य द्विपद चतुष्पदादि बहुत ऋद्धी शुभपुद्गल हो उसे पुण्यवान देख पुण्य के कारण को कार्य रूप मान उसे पुण्य कहे. २ संग्रह नय वाला-ऊंचे जाति कुल सुंदरता साता वेदनी इत्यादि पुद्गलों की वर्गणा को देख

* सप्तभङ्गी-१ प्रत्येक पदार्थों अपने २ द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा। से आस्ति रूप है सो स्यात आस्ति, २ वे ही पदार्थ पर द्रव्यादि की अपेक्षा से नास्ति रूप हैं सो स्यात नास्ति ३ सब पदार्थों अपने २ द्रव्यादि की अपेक्षा से तो आस्ति रूप हैं और पर द्रव्यादि की अपेक्षा से नास्ति रूप हैं सो स्यात आस्ति नास्ति ४ पदार्थों का स्वरूप एकान्त पक्ष से जैसा है वैसा कहा नहीं जाय क्योंकि—जो आस्ति कहें तो नास्तिका और नास्ति कहें तो आस्ति का अभाव आवे इसलिये स्यात् अव्यक्तव्य ५ एक ही समय में सब स्वपर्यायों का सद्भाव आस्तित्व है और परपर्यायों का सद्भाव नास्तित्व है, यह दोनों ही भाव एक ही वक्त में कहे नहीं जाय, क्योंकि—जो आस्तित्व कहें तो नास्तित्व का अभाव आवे इसलिये स्यात् आस्ति अवक्तव्यं ६ इसी तरह जो नास्तित्व का अभाव आवे इसलिये स्याद् नास्ति वक्तव्य और ७ आस्तित्व कहने से नास्तित्व का अभाव आवे और नास्तित्व कहे तो आस्तित्व का अभाव आवे और पदार्थ तो दोनों काल में आस्ति नास्ति दोनों ही है परन्तु एक वक्त में कहे जावें नहीं क्योंकि—वाक्य तो क्रम वृती हैं इसलिये स्यात् आस्ति नास्ति अवक्तव्य होय। इन सात भांगों से सर्व पदार्थों का स्वरूप समझना इससे ज्यादा भांगे कदापि नहीं होते हैं।

पुण्य कहे। इसने जीव पुद्गल की एकमता की. ३ व्यवहार नय वाला शारीरिक मानसिक सुख से पुण्य प्रकृति का व्यवहार अवलोकन कर उसे पुण्य कहे ४ ऋजुसूत्र नय से शुभकर्मोदय से इच्छित मनोज्ञ वस्तु की प्राप्ति देख उसे पुण्य कहे ५ शब्द नय वाला वर्तमान काल में सुखोपभोग भोगते को देख पुण्य कहे * ६ समभीरूढ नय वाला जिसके पुण्य प्रकृति के प्रयोग से पुद्गल परिणमने आनन्द में लीन हुआ उसे पुण्य कहे और ७ एवंभूतनय वाला पुण्य प्रकृति के गुण के ज्ञाता को पुण्य कहे.

(४) पापतत्त्व--का कथन भी पुण्य जैसा ही करना सुख के स्थान पर दुःख का कहना.

(५) आश्रवतत्व—१ नैगमनय वाला कर्म रूप परिणमने के पुद्गलों को आश्रव कहे २ संग्रह नय वाला प्रयोग पने से परिणमने वाले मिथ्यात्वादि पुद्गलों के दल को आश्रव कहे ३ व्यवहार नय वाला अप्रत्याख्यानी के अशुभयोग की प्रवृति से अशुभ (पाप) आश्रय और शुभ योग की प्रवृति से शुभ (पुण्य) आश्रव यों दोनों के मिश्राण को आश्रव कहे ४ ऋजु सूत्र नय वाला शुभाशुभ योगों की जो वर्तमान काल में प्रवृती हो उसे आश्रव कहे ५ शब्द नय वाला जो आश्रव आने के परिणामों का स्थान उसे आश्रव कहे ६ समभीरूढ नय से:— जो कर्म ग्रहन करने के कारणों को आश्रव कहे और ७ एवंभूतनय वाला आत्मा के समस्य पने को आश्रव कहे.

---

* द्रव्य दो प्रकार के—जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य गुण सो जीव के ज्ञानादि और अजीव के वर्णादि पर्याय दो—अभाव और कर्म भाव अजीव के द्रव्य गुन पर्याय में अजीव और जीव के द्रव्य गुन पर्याय में जीव ग्रहण करना।

ऋजु सूत्र और शब्द नय में भिन्नता क्या है? उत्तर—ऋजु सूत्र नय वाला तो तीन ही काल में सुख भोगवने वाले को पुण्यवन्त मानता है और शब्द नय वाला फक्त वर्तमान काल में सुख भोक्ता को ही पुण्यवन्त मानता है। दृष्टान्त कोई चक्रवर्ती महाराजा निर्ग्रन्थ हैं उन्हें ऋजु सूत्र नय वाला तो पुण्यवन्त कहेगा क्योंकि उन्होंने भूत काल में सुखोपभोग किया है और भविष्य में करेंगे किन्तु शब्द नय वाला उनको पुण्य वन्त नहीं कहेगा क्योंकि निर्ग्रन्थ पापोदय प्रकृति है। जिस वक्त वे सुखोपभोग भोग कर लाना मानेंगे तब ही पुण्य वन्त कहेगा।

प्रश्न—ऋजु सूत्र नय वाले ने फक्त मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय इन चारों को छोड़ कर फक्त योग को ही आश्रव कहा इसका क्या कारण? मिथ्यात्वादि चारों ही में योग को ग्रहन करने की सत्ता नहीं है और योग में चारों ही को ग्रहन करने की सत्ता है अर्थात् जैसे योग की प्रवृती होती है वैसे ही मिथ्यात्वादि चारों के पुद्गलों का आकर्षन होता है क्योंकि योग उपादान कारण है और चारों ही निमित कारण हैं ¹ इसलिये यहां योग को ही ग्रहण किया है। प्रश्न—आत्मा योग द्वारा अन्तराक्षवर्ती (दूर) के पुद्गलों को ग्रहण करता है कि नहीं? उत्तरः—आत्मावगाही पुद्गलों का ही ग्रहण होता है दूर के नहीं। प्रश्नः—भगवन्त ने एक समय में दो कार्य होने की मना की है तो फिर शुभाशुभ आश्रव कैसे कहा? जैसे शास्त्र में धम्मी वासा अधम्मी वासा और धम्माधम्मी वासा कहा है। तथा मिश्रयोग मिश्रगुणस्थान कहा है तैसेही गोणता से कुछ दूसरे योग का मिलता है किन्तु ‡ मुख्यता में एकही योग की प्रवृती होती है।

सूचना—शुभाशुभ योग में षडगुन हानि वृद्धी होने से एकान्त पने का संभव नहीं होता है क्यों कि केवली के और सकषायी के शुभ योग का अन्तर विचार करने से मालुम होगा कि एकान्त शुभ और एकान्त अशुभ योग मिलना कितना मुशकिल है.

(६) संवरतत्त्व-नेगमनय वाला कारण को कार्य मानता होने से शुभ योग को संवर कहे २ संग्रह नय वाला सम्यक्त्वादि परिणामों को संवर कहे ३ व्यवहार नय वाला पंचमहाव्रत रूप चारित्र को संवर कहे

¹ उपादान और निमित-दृष्टान्त-उपादान मिश्रा गो का, निमित मिला देने वाले का तब दुग्ध हुआ। उपादान दुग्ध का निमित खटाई का तब दही हुआ। उपादान दही का निमित रई का तब मक्खन हुआ ऐसे ही उपादान माता का और निमित मिला पिता का तब पुत्र हुआ। यों सब काम उपादान और निमित के सम्बन्ध से होते हैं।

‡ मुख्यता में हंस श्वेत होता हरा होता काला और गौणता में उसमें पांचों ही वर्ण पाते हैं, यों सर्व स्थान जानना।

४ ऋजु सूत्र नय वाला संवर कर वर्तमान काल के आश्रव का निरूंधन किया उसे संवर कहे ५ शब्द नय वाला सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय, स्थिरयोग को संवर कहे ६ समभीरूढ नय वाला ऋक्ष परिणाम कर मिथ्यात्वादि पंचही आश्रव की स्निग्धता कर कर्म वर्गणा से अलिप्त रहे उसे संवर कहे और ७ एवंभूतनय वाला चतुर्दश गुणस्थान वर्ती अयोगी केवली सलेसी (पर्वत समान) स्थिर अकम्प अवस्था को प्राप्त हुये उसे संवर कहे। भगवती सूत्र में कहा है कि "काल सव्वेसिय आया संवरे, आया संवरस्स अट्ठे" अर्थात् आत्माही संवर है.

(७) 'निर्जरातत्व'-नैगमनय वाला शुभ योग को निर्जरा कहे २ संग्रहनय वाला कर्म वर्गणा के पुद्गलों को झटककर दूर करे उसे निर्जरा कहे ३ व्यवहार नय से तप से कर्मों की निर्जरा होती देख बारह प्रकार के तप को निर्जरा कहे ४ ऋजु सूत्र नय वाला वर्तमान काल में शुभध्यानी हो उसे निर्जरा कहे ५ शब्द नय वाला द्वादशगुनस्थान वर्ती शुभध्यान से सकाम निर्जरा होने के कारन से ध्यानाग्नि से कर्म इन्धन प्रज्वलित होने को निर्जरा कहे ६ समभीरूढ नय वाला शुक्लध्यानारूढ आत्मा को उज्वल कर्ता को निर्जरा कहे और ७ एवंभूत नय वाला सर्व कर्म कलङ्क रहित शुद्धात्मा को निर्जरा कहे.

(८) बन्धतत्व १ नैगम नय वाला बन्ध के कारण को बन्ध कहे २ संग्रह नय वाला रागद्वेष से उत्पन्न होती अष्ट कर्म की प्रकृति को बन्ध कहे ३ व्यवहार नय वाला रागद्वेष कर क्षीर नीर के समान जीव पुद्गल बन्धन से बन्धा दृष्टी गत हो उसे बन्ध कहे ४ ऋजु सूत्र नय वाला जीव कर्म बन्धनानुसार सुखी दुःखी होता जान मांसभक्षनादि अशुभ काम में प्रवर्तक को बन्ध कहे ५ शब्द नय से अज्ञानता से अथित्त व्यामोह पने से कार्य अकार्य का विचार नहीं करता कर्म बन्ध करे उसे बन्ध कहे। इसने कर्म विपाक की प्रकृती को बन्धमाना ६ समभीरूढ

नय वाला आर्तादि कुध्यानारूढ आत्मा को मलीन बनावे उसे बन्ध कहे और ७ एवं भूत नय वाला आत्मा के अशुभ अध्यवसाय से भाव कर्म के संचय को बन्ध कहे.

(९) मोक्षतत्व-निश्चयनयापेक्षा से तो मोक्ष का व्यवहार है ही नहीं किन्तु पर्यायार्थी नय से भेद प्रकाश रूप कहते हैं — १ नेगम नय वाला गति के बन्धन से छूटे को मोक्ष कहे. २ संग्रह नय वाला पूर्व सञ्चित कर्मांश से उज्वलता को प्राप्त हो उसे मोक्ष कहे. ३ व्यवहार नय वाला परित संसारी तथा सम्यक्त्वी को मोक्ष कहे ४ ऋजु सूत्र नय वाला क्षपक श्रेणिप्रवृतक को मोक्ष कहे ५ शब्द नय वाला सयोगी केवली को मोक्ष कहे. ६ समभीरूढनय वाला चतुर्दश गुणस्थानवर्ती सेलेसी करण गुन प्रवर्तक को मोक्ष कहे और ७ एवंभूत नय वाला सिद्ध क्षेत्र स्थित सिद्ध भगवन्त को मोक्ष कहे.

चार निक्षेप

किसी भी वस्तु में गुणावगुण का आरोप निक्षेपों द्वारा होता है वे निक्षेप चार हैं १ नाम २ स्थापन ३ द्रव्य और ४ भाव.

१ नाम निक्षेपा—जिससे वस्तु का ज्ञान होवे वे नाम तीन प्रकार के होते हैं—१ जैसे उज्वल होने से हंस, चैतनता युक्त होने से चैतन. सदैव जिन्दा रहने से जीव प्राणों का धारक होने से प्राणी। इस प्रकार नाम प्रमाने जिसमें गुन पावें सो यथार्थ नाम २ कितनेक मनुष्य व्यक्ति का नाम घूला, कचरा, हीरा, मोती वगेरा रखते हैं किन्तु उस प्रमाने उनमें गुन नहीं पाते हैं. ऐसा गुन रहित नाम हो सो 'अयथार्थ नाम' और ३ हंसी, खांसी, छींक, उबासी यह नाम तो हैं किन्तु इनका कुछ अर्थ नहीं होवे। ऐसे नाम हों सो 'अर्थ शून्य नाम'।

२ स्थापना निक्षेपा--वस्तु की आकृती वा दर्शी हो सो स्थापना निक्षेपा. इसके ४० प्रकार--१ कठ कर्मे वा- काष्ट की, २ चित्र कर्मे वा- चित्र

४ ऋजु सूत्र नय वाला संवर कर वर्तमान काल के आश्रव का निरूंधन किया उसे संवर कहे ५ शब्द नय वाला सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय, स्थिरयोग को संवर कहे ६ समभीरूढ नय वाला ऋक्ष परिणाम कर मिथ्यात्वादि पंचही आश्रव की स्निग्धता कर कर्म वर्गणा से अलिप्त रहे उसे संवर कहे और ७ एवंभूतनय वाला चतुर्दश गुणस्थान वर्ती अयोगी केवली सलेसी (पर्वत समान) स्थिर अकम्प अवस्था को प्राप्त हुये उसे संवर कहे। भगवती सूत्र में कहा है कि "काल सव्वोसिय आया संवरे, आया संवरस्स अट्ठे" अर्थात् आत्माही संवर है.

(७) 'निर्ज्जरातत्व'-नैगमनय वाला शुभ योग को निर्ज्जरा कहे २ संग्रहनय वाला कर्म वर्गणा के पुद्गलों को झटककर दूर करे उसे निर्जरा कहे ३ व्यवहार नय से तप से कर्मों की निर्ज्जरा होती देख बारह प्रकार के तप को निर्ज्जरा कहे ४ ऋजु सूत्र नय वाला वर्तमान काल में शुभध्यानी हो उसे निर्जरा कहे ५ शब्द नय वाला द्वादशगुनस्थान वर्ती शुभध्यान से सकाम निर्ज्जरा होने के कारन से ध्यानाग्नि से कर्म इन्धन प्रज्वलित होने को निर्जरा कहे ६ समभीरूढ नय वाला शुक्लध्यानारूढ आत्मा को उज्वल कर्ता को निर्ज्जरा कहे और ७ एवंभूत नय वाला सर्व कर्म कलङ्क रहित शुद्धात्मा को निर्ज्जरा कहे.

(८) वन्धतत्व १ नैगम नय वाला वन्ध के कारण को वन्ध कहे २ संग्रह नय वाला रागद्वेष से उत्पन्न होती अष्ट कर्म की प्रकृति को वन्ध कहे ३ व्यवहार नय वाला रागद्वेष कर क्षीर नीर के समान जीव पुद्गल वन्धन से वन्धा दृष्टी गत हो उसे वन्ध कहे ४ ऋजु सूत्र नय वाला जीव कर्म वन्धनानुसार सुखी दुःखी होता जान मांसभक्षनादि अशुभ काम में प्रवर्तक को वन्ध कहे ५ शब्द नय से अज्ञानता से ग्रथित व्यामोह पने से कार्य अकार्य का विचार नहीं करता कर्म वन्ध को उसे वन्ध कहे। इसने कर्म विपाक की प्रकृती को वन्धमाना ६ समभीरूढ

नय वाला आर्तादि कुध्यानारूढ आत्मा को मलीन बनावे उसे बन्ध कहे और ७ एवं भूत नय वाला आत्मा के अशुभ अध्यवसाय से भाव कर्म के संचय को बन्ध कहे.

(९) मोक्षतत्व-निश्चयनयापेक्षा से तो मोक्ष का व्यवहार है ही नहीं किन्तु पर्यायार्थी नय से भेद प्रकाश रूप कहते हैं — १ नेगम नय वाला गति के बन्धन से छूटे को मोक्ष कहे. २ संग्रह नय वाला पूर्व सञ्चित कर्मांश से उज्वलता को प्राप्त हो उसे मोक्ष कहे. ३ व्यवहार नय वाला परित संसारी तथा सम्यक्त्वी को मोक्ष कहे ४ ऋजु सूत्र नय वाला क्षपक श्रेणिप्रवृतक को मोक्ष कहे ५ शब्द नय वाला सयोगी केवली को मोक्ष कहे. ६ समभीरूढ़नय वाला चतुर्दश गुणस्थानवर्ती सेलेसी करण गुन प्रवर्तक को मोक्ष कहे और ७ एवंभूत नय वाला सिद्ध क्षेत्र स्थित सिद्ध भगवन्त को मोक्ष कहे.

चार निक्षेप

किसी भी वस्तु में गुणावगुण का आरोप निक्षेपों द्वारा होता है वे निक्षेप चार हैं १ नाम २ स्थापन ३ द्रव्य और ४ भाव.

१ नाम निक्षेपा—जिससे वस्तु का ज्ञान होवे वे नाम तीन प्रकार के होते हैं—१ जैसे उज्वल होने से हंस, चैतनता युक्त होने से चैतन. सदैव जिन्दा रहने से जीव प्राणों का धारक होने से प्राणी। इस प्रकार नाम प्रमाने जिसमें गुन पावे सो यथार्थ नाम २ कितनेक मनुष्य व्यक्ति का नाम भूला, कचरा, हीरा, मोती वगैरा रखते हैं किन्तु उस प्रमाने उनमें गुन नहीं पाते हैं. ऐसा गुन रहित नाम हो सो 'अयथार्थ नाम' और ३ हंसी, खांसी, छींक, उबासी यह नाम तो हैं किन्तु इनका कुछ अर्थ नहीं होवे। ऐसे नाम हो सो 'अर्थ शून्य नाम'।

२ स्थापना निक्षेप--वस्तु की आकृती वा नकल हो सो स्थापना निक्षेपा. इसके ४० प्रकार--१ कठ कम्मे वा- काष्ट की, २ चित्त कम्से वा- चित्र

की, ३ पोत कम्मे वा. पोत—चीड की, ४ लेप कम्मे वा. खडिया आदि के लेपन की, ५ गंट्ठी में वा- सूतादि के ग्रन्थी (गांठों) लगा बनावे सो, ६ पुरी मेवा- भरत- (कसीदे) की. ७ वेरी मे वा- कोरणी- छेदादि की, ८ संघाइ मे वा- संघातन- वस्तु संयोग मिलाकर बनावे सो. ९ अक्खे वा- अकस्मात् किसी वस्तु के पड़ने से आकार बन जाय सो तथा चांवलादि जमाकर बनावे सो. उक्त १० की एक ही आकृति बनावे सो एक वा. और बहुत आकृती बनावे सो बहुअंश. यों १०×२=२० हुये और (१) वस्तु तथा मनुष्यादि प्राणी हो उसके समान ऊंचता, चौड़ापन, लक्षन व्यञ्जन युक्त फोटोग्राफ के जैसा तादृश्य रूप बनावे जिसे अवलोकन कर उस वस्तु का भान हो आवे सो सद्भाव स्थापना और (२) उक्त वस्तु का संयोग मिला मन कल्पित आकृती बनावे जैसे गोल पत्थर पर लेप सन्दूर लगा भैरवादि की स्थापना करे या बिना देखी वस्तु की मूर्ती आदि बनावे. ये यथा तथ्य न होने से असद्भाव स्थापना. यों उक्त २० के दो भेद होने से २०×२=४० प्रकार स्थापना निक्षेपे के ।

३ द्रव्यनिक्षेपा—जिस में जिस वस्तु के गुन नहीं हों सो द्रव्यनिक्षेपा इसके दो प्रकार १ जो उपयोग रहित शुन्य चित चलित परिणाम से सास्त्र का पठन करे तथा उसका अर्थ कुछ नहीं समझ सो आगम से द्रव्यनिक्षेपा और २ नो आगम के ३ प्रकार १ जैसे कोई प्रतिक्रमन का ज्ञाता श्रावक आयुष्य पुर्ण हुओ मर गया किन्तु उसका शरीर पडा है उसे देख कर कहे कि यह आवश्यक का ज्ञाता था यह जाणना शरीर द्रव्यावश्यक दृष्टान्त—रीते घट को देख कहे यह घृत का घट था २ श्रावक के घर पुत्रोत्पत्ती देख कहे यह आवश्यक का ज्ञाता होगा यह भवियद्रव्यावश्यक दृष्टान्त नवे (कोरे) घट को देख कहे घृत का घट होगा और ३ जानग भविय व्यतिरिक्त शरीर द्रव्यावश्यक के ३ प्रकार १ राजा शेठ सेनापति आदि सभा में आकर अवश्य करने योग्य काम करे सो लोकीक द्रव्यावश्यक

२ जेचक्कचिरिय- बकल वस्त्र पहन ने वाले "चमखण्डा"-मृग चर्मादि के रखने वाले ३ 'पांडूरंगा'-भगवे रंग के वस्त्र धारन करने वाले 'पा(स्थे'-गुन बिना नाम तापस इत्यादि निरय नियम प्रमाने ॐ कारादिका ध्यान करे सो कूपरावचनिक द्रव्यावश्यक और ३ 'जे इमे समणगुणमुक्का'-जो साधु के गुन रहित 'जोग छ काय निरणुकंपा'-छ जीव कायाकी दयारहित 'हयइवाउदमा' घोड़े के जैसे उन्मत 'गयाइवा' निरंकुस हाथी के जैसे अंकुश रहित 'घट्ठा' शरीकी सुश्रुपा (सोभा) करने वाले 'मट्ठा'- महावलम्बी 'तिपुट्ठा'-तपरहित पडुरपटा-स्वच्छ वस्त्र धारक 'जिणाणा रहित'-जिनाज्ञा के बाहिर ऐसे जैन के साधु "उभय काल आवसग ठवंती"-दोनों वक्त प्रतिक्रमण करते हैं उसे लोकोत्तर द्रव्यावश्यक कहना.

४ भावनिक्षेपा—जीव के निज गुन ज्ञानादि और अजीव के निज गुन वर्णादि हैं। इस प्रकार जिस के जो निज गुन होवे उसमें प्राप्त हो सो भाव निक्षेपा। इसके दो प्रकार-१ जो शुद्धउपयोग युक्त स्थिर चित्त से अन्तःकरण की रुची से शास्त्र पठन करे और उसका भाव भेद समझे सो आगम से भाव आवश्यक और २ नो आगम के तीन भेद -१ राजा शेठ सेनापत्ति शुद्धोपयोग युक्त प्रातः काल में महाभारत सन्ध्यासमय रामायणादि श्रवण करे × सो लोकीक भाव आवश्यक २ जचक्कचीरिया: पांडु रंगा, चर्म खण्डा, पासत्था शुद्ध उपयोग युक्त ॐ कारादि का ध्यान करे सो कुप्रावचनिक भाव आवश्यक और ३ 'समण'-साधु, 'समणी' साध्वी 'माहाण' श्रावक 'माहाणी'-श्राविका "उभय कालं आवसगठवंती"-दोनों वक्त शुद्ध उपयोग सहित आवश्यक (प्रतिक्रमण) करें सो लोकोत्तर भाव आवश्यक.

उक्त चारों निक्षेपों में से प्रथम तीन निक्षेप गुन विना निरुपयोगी होने से "अवत्थु" कहे हैं और चौथा भाव निक्षेपा सगुण होने से उपयोगी कहा है इस प्रकार चारों निक्षेपों का कथन अनुयोग द्वार सूत्र में कहा है.

× महाभारत और रामायण कुप्रावचन में हैं किन्तु अपने मतो के लिये श्रवन करते हैं इसलिये यहां लौकिक में ग्रहण किया है।

९ तत्व पर ४ निक्षेप

(१) जीवतत्व—१ जीव या अजीव वस्तु का "जीव" ऐसा नाम रखे सो नाम निक्षेपा, २ चित्र मूर्ती आदि स्थापे सो स्थापना निक्षेपा ३ षटद्रव्य में असंख्यात प्रदेशात्म जीव को कहा सो द्रव्य निक्षेपा और ४ उपशम क्षयोपशम क्षायिक और परिणामिक भाव में प्रवर्ते सो भाव निक्षपा ×

(२) 'अजीव तत्व' १— किसी भी जीव अजीव का 'अजीव' ऐसा

× पांच भाव की ५२ प्रकृति—१ उदय भाव की २१—गति ४, लेश्या ६, वेद ३, असिद्ध, अज्ञाणी, अव्रती और मिथ्यात्वी। २ उपशम की दो—१ उपशम सम्यक्त्व और २ उपशम चारित्र, ३ क्षायिक भाव की ९—दानादि पांचों अन्तराय का क्षय; केवल ज्ञान ६ केवल; दर्शन ७ क्षायिक सम्यक्त्व ८ और क्षायिक यथाख्यात चरित्र। ४ क्षयोपशम भाव की १८ ज्ञान ४ प्रथम के, अज्ञान ३, दर्शन ३ प्रथम के, पांच अन्तराय का क्षयोपशम, क्षयोपशम सम्यक्त्व क्षयोपशम चारित्र, और संयमासंयम। ५ परिणामिक भाव की ३—भव्य परिणामी, अभव्य परिणामी और जीव परिणामी। अब ५ भाव के भेद कहते हैं—१ उदय भाव के दो—१ उदय सो आठों कर्मों का और २ उदयनिष्पन्न के दो—१ जीव उदय और २ अजीव उदय। जीव उदय के ३१—गति ४, लेश्या ६, कषाय ४, वेद ३, मिथ्यात्व, अव्रत, अज्ञाणी, असन्नी, आहारतथा संसारस्था असिद्ध और अकेवली। अजीव उदय के ३० शरीर ५ शरीर के प्रणमित पुद्गल ५ वर्ण ५, गन्ध २, रस ५ और स्पर्श ८। २ उपशम भाव के दो—१ उपशम सो आठकर्मों का और २ उपशम निष्पन्न के—११—कषाय ४, राग द्वेष, दर्शन मोह, चारित्र मोह, दर्शन लब्धी, चारित्र लब्धी, छद्मस्त और वीतरागी। ३ क्षायिक भाव के दो—क्षय तो आठ कर्मों का और २ क्षय निष्पन्न के ३७ ज्ञानावर्णिय ५, दर्शनावर्णिय ९, वेदनी २, मोहनी ८ (कषाय ४ राग द्वेष, दर्शन मोह चारित्र मोह) आयुष्य के ४, नाम २, गोत्र २, अन्तराय ५, इन ३७ का क्षय करे। ४ क्षयोपशम भाव के दो—१ क्षयोपशम सो ८ कर्मों का और २ क्षयोपशम निष्पन्न के ३०—ज्ञान ४, अज्ञान ३, दर्शन ३, दृष्टी ३, चारित्र ४ प्रथम के, लब्धी ५, पांच इन्द्रि की लब्धी पूर्व धर, आचार्य, द्वादशांगी के ज्ञान। ५ परिणामिक भाव के दो भेद १ सादी और अनादी। सादी भाव के अनेक भेद—जूना सूरा, जूना घृत, जूना चांवल, पहल, पहलके वृक्ष, गन्धर्व नगर, उलका पात, दिशा दाह, गर्जारव, विद्युत, निर्घात, बालचन्द्र, यक्ष चिन्ह धूंअर, ओस, रज घात, चन्द्रग्रहण, सूर्य ग्रहण प्रतिचन्द्र, प्रति सूर्य, इन्द्र धनुष्य, उदक मच्छ, अमोघ वर्षाद, वर्षाद की धारा, ग्राम, नगर, पर्वत, पाताल कलश, नर्कावास, भुवन, सुधर्मा देवलोक यावत ईषत प्राग भारा प्रमाणु पुद्गल यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनादी प्रणामी के अनेक भेद—धर्मास्ति यावत् जीवास्तिकाय लोक अलोक भव्य सिद्धीक, अभव्य सिद्धिक इति ५ भाव।

नाम स्थापन किया सो नामानिक्षेपा, २ स्थापना कर अजीव स्वरूप बतावे सो स्थापना निक्षेपा, ३ धर्मास्ति का चलन गुन, अधर्मास्ति का स्थिर गुन, आकास्ति का विकाश गुन, काल का वर्तमान गुन और पुद्गल का पूर्ण गलन गुन, इत्यादि द्रव्य का स्वभाव सो द्रव्य निक्षेपा और ४ उक्त पांचा के गुनों का जीवाजीव पर जिस वक्त सद्भाव वर्ते सो भाव निक्षेपा।

(३) 'पुण्य तत्त्व'—१ किसी का 'पुण्य' ऐसा नाम रक्खा सो नाम निक्षेपा. २ 'पुण्य' के अक्षरादि स्थापे सो स्थापना निक्षेपा, ३ शुभ कर्म वर्गणा के द्रव्य जीव के प्रदेशों से परिणमें सो द्रव्य निक्षेपा और ४ पुण्योदय से जीव आनन्दानुभव में गर्क बने सो भाव निक्षेपा।

(४) 'पाप तत्व'--किसी का 'पाप' ऐसा नाम दिया सो नाम निक्षेपा २ 'पाप' ऐसे अक्षरादि स्थापे सो स्थापना निक्षेपा. ३ अशुभ कर्म वर्गणा के पुद्गल जीव के प्रदेश पर परिणमे सो द्रव्य निक्षेपा और ४ पाप प्रकृति का अनुभव कर्ता जीव दुःख वेदे सो भाव निक्षेषा।

(५) 'आश्रव तत्व'--१ 'आश्रव' ऐसा नाम दे सो नाम निक्षेपा. २ आश्रव के अक्षरादि स्थापे सो स्थापना निक्षेपा. ३ मिथ्यात्वादि आश्रव तथा नाम कर्म मोह कर्म की प्रकृति आत्मा के साथ लोलीभूत होकर प्रयोग से कर्म पुद्गल ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होवे सो द्रव्य निक्षेपा और ४ मिथ्यात्वादि प्रकृति का उदय जीवके प्रदेश पर प्रवर्ते सो भाव निक्षेप.

६ 'संवर तत्व'--१ संवर ऐसा नाम सो नाम निक्षेपा. २ संवर ऐसे अक्षरादि स्थापे सो स्थापना निक्षेपा. ३ सम्यक्त्व व्रत धारन कर आश्रव का निरुंधन करे सो द्रव्य निक्षेपा और ४ देश से तथा सर्व से योग का निरुंधन कर आत्मा अकम्प-स्थिर अवस्था प्राप्त करे सो भाव निक्षेपा।

(७) 'निर्जरा तत्त्व'—१ निर्जरा ऐसा नाम सो नाम निक्षेपा. २ निर्जरा के अक्षरादि स्थापे सो स्थापना निक्षेपा. ३ जीव के प्रदेश से कर्म पुद्गल झड कर दूर हो सो द्रव्य निक्षेपा और ४ कर्मदल से आत्मा

निर्मल हो ज्ञानलब्धि क्षयौपशमलब्धि क्षायिकलब्धि धारन करे सो भाव निक्षेप।

(८) 'बन्ध तत्व'—१ बन्ध नाम स्थापे सो नाम निक्षेपा, २ बन्ध के अक्षरादि स्थापे सो स्थापना निक्षेपा. ३ कर्म वर्गणा के पुद्गल आत्म प्रदेश के साथ सम्बन्ध करे सो द्रव्य निक्षेपा. और ४ मदिरा पान के समान बन्धित कर्मों की छाक चडे सो भाव निक्षेपा.

(९) 'मोक्ष तत्व'—१ मोक्ष ऐसा नाम रक्खे सो नाम निक्षेपा. २ मोक्ष ऐसे अक्षरादि स्थापे सो स्थापना निक्षेप. ३ जीव द्रव्य कर्म रहित निर्मल बने सो द्रव्य निक्षेपा और ४ क्षायिक सम्यक्त्व केवल ज्ञान प्रकट हो आत्मा सिद्ध स्वरूपी बने सो भाव निक्षेपा.

चार--प्रमाण

प्रत्येक वस्तु की वस्तुत्वता सिद्ध करने वाले प्रमाण चार हैं-१ प्रत्यक्ष २ अनुमान ३ आगम और ४ उपमा.

१ जिससे वस्तु का प्रत्यक्ष में ज्ञान हो सो प्रत्यक्षप्रमान इसके दो प्रकार-१ इन्द्रिय प्रत्यक्ष और २ नो इन्द्रिय। प्रत्यक्ष इन्द्रिय प्रत्यक्ष के भी दो प्रकार-१ द्रव्येन्द्रिय और २ भावेन्द्रिय। इसमें से द्रव्येन्द्रिय के भी दो प्रकार-१ निर्वृती और २ उपकरन। इसमें से निर्वृती के दो प्रकार-१ जो नेत्रादि इन्द्रियों के आकृती रूप बन कर स्वस्थान में रहे पुद्गलों सो अभ्यन्तर निर्वृती और २ नाम कर्मोदय से पांचों इन्द्रिय के आकार रूप पुद्गल समोह आत्म प्रदेश की सत्ता को अवगाहा कर रहे सो बाह्यनिर्वृती और दुसरे उपकार करने वाले उपकरन भी दो प्रकार के-१ नेत्रों में कृष्ण शुक्ल मडल सो अभ्यन्तर उपकरन और २ धूल तृणादि से आँखों के रक्षक भमुह्-भांपनादि सो बाह्य उपकरन। अब भाव इन्द्रिय के भी २ प्रकार-१ ज्ञानावर्णिय कर्म के क्षयोपशम से इन्द्रियों में जानने की शक्ति प्रगटे सो लब्धि और २ लब्धि के सामर्थ से आत्मा इन्द्रियों के विषय में प्रवृते

अर्थात् समय पर इन्द्रियां यथोचित्त काम देवें सो उपयोग यथा-१ श्रोते-इन्द्रि (कान) सुनने का २ चक्षुरेन्द्रि (आँख) देखने का ३ घ्राणेन्द्रि (नाशिका) वास (गन्ध) को जानने का ४ रसेन्द्रि (जिव्हा) स्वाद जानने का और ५ स्पर्श्येन्द्रि (शरीर) शीतादी को जानने का कामदेती हैं. १ एकेन्द्रिय की स्पर्श्येन्द्रिय का विषय ४०० धनुष्य। २ बेन्द्रिय की स्पर्श्येन्द्रि का ८०० धनुष्य रस इन्द्रि का ६४ धनुष्य। ३ तेन्द्रिय के स्पर्श्येन्द्रि का १६०० धनुष्य रसेन्द्रि का १२८ धनुष्य और घृाणेन्द्रि का १०० धनुष्य। ४ चौरिन्द्रिय के स्पर्श्येन्द्रि का ३२०० धनुष्य रसेन्द्रिय का २५६ धनुष्य घृाणेन्द्रिय का २०० धनुष्य और चक्षुरेन्द्रिय का २९५४ धनुष्य। ५ असज्ञी पचेन्द्रिय के स्पर्श्येन्द्रिय का ६४०० धनुष्य. रसेन्द्रिय का ५१२ धनुष्य घृाणेन्द्रिय का ४०० धनुष्य चक्षुरेन्द्रिय का ५९०८ धनुष्य और श्रुतेन्द्रिय का ८०० धनुष्य और सज्ञी पचेन्द्रिय का स्पर्श्य, रस और श्रोतेन्द्रिय का तो १२-१२ योजन का घृाणेन्द्रिय का ९ योजन का और चक्षुरेन्द्रिय का ४७२६३ योजन का। यह सब उत्कृष्ट, विषय जानना। और २—नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमान के २ प्रकार—१ देशसे और २ सर्वसे इस में देशसे के ४ प्रकार—१ मति ज्ञान, २ श्रुतिज्ञान, ३ अवधिज्ञान और ४ मन पर्यव ज्ञान।

१ बुद्धि कर जाने उस मति ज्ञान के २८ प्रकार—१ श्रोतेन्द्रिय से श्रवन किये का, २ चक्षु इन्द्रिय से देखे हुए का, ३ घृाणेन्द्रिय से वास गृहण किये का, ४ रसेन्द्रिय से स्वादिष्ट वस्तु का, ५ स्पर्श्येन्द्रिय से स्पर्शित विषयों का और ६ मन से विचार के विषय का. इन ६ ही प्रकार के विषय को ग्रहण करे सो १ 'अवग्रह' २ ग्रहण किये का विचार करे सो 'ईहा' ३ विचार किये का निश्चय करे सो 'अवाय'* और ४ निश्चय किये

* जिस प्रकार मृत्तिका के नये बर्तन में बुन्द २ पानी डालने से शोषता २ प्रदेश पूर्ण होने २ पानी ठहरता है तैसे निद्रित मनुष्य की इन्द्रियों दर्शनावर्णीय के उदय से दबी हो जाती है उसे पुकारें तब वे इन्द्रियों पूर्ण होने वह शब्द ग्रहण करे यह "अवग्रह" कौन पुकारता है यों विचारे सो 'ईहा' अमुक ही पुकारता है यों निश्चय करे सो 'अवाय' और ४ बहुत काल बाद स्मरण करे कि अमुक दिन मुझे जगाया था सो "धारणा" यों पचेन्द्रियों पर कहना।

को संख्यात असंख्यात काल तक धारण कर-याद रक्खे सो धारना। यों ६×४=२४ प्रकार हुए और १ विना सुनी देखी बात भी तत्काल उत्पन्न हो जाय सो उत्पात्तिया बुद्धि । २ विनय करने से बुद्धि प्राप्त हो सो विनिया बुद्धि, ३ हरेक काम करते २ उस में अनुभव वृद्धि पावे सो कम्मिया बुद्धि, और ४ बाल, युवा, वृद्धादि वय प्रमाने बुद्धि परिणमे सो परिणामिया बुद्धि। पूर्वोक्त २४ में यह ४ मिलाने से मति ज्ञान के २८ भेद हुए और विशेष प्रकार से ३४० भेद होते हैं। इस में प्रथम श्रोतेन्द्रिय का अवग्रह सो-जैसे अनेक जीवों अनेक शब्द ग्रहण करते हैं जिसमें से मति ज्ञान की क्षयोपशमता प्रमाने—१ कोई एक ही वक्त में बहुत शब्द ग्रहण करे सो बहु. २ कोई थोडे शब्द ग्रहण करे सो अबहु. ३ कोई भेद भाव सहित ग्रहण करे सो 'बहुविधि' ४ कोई भेद भाव नहीं समझे सो 'अबहुविधि' ५ कोई शीघ्रता से समझे सो 'क्षिप्र' ६ कोई विलम्ब से समझे सो 'अक्षिप्र'. ७ कोई अनुमान से समझे सो 'सलिंग'. ८ कोई अनुमान विना समझे सो 'अलिंग'. ९ कोई शंका युक्त समझें सो 'संदिग्ध'. १० कोई शंका रहित समझे सो "असंदिग्ध'. ११ कोई एक ही वक्त में सब समझ जाये सो 'धृव'. और १२ कोई वारम्वार जानने से समझे सो 'अधृव' यों २८ ही बोलों को इन १२ बोलों से १२ गुना करने से २८×१२=३३६ भेद यह अर्थाव ग्रह के हुए और ५ इन्द्री तथा ६ मन में से चक्षुरेन्द्रिय तथा मन दूर रहे पदार्थों को ग्रहण करते हैं बाकी के चार व्यंजन कर अर्थात् स्पर्श्य कर ग्रहण करते हैं वे व्यंजनाव ग्रह के ४ भेद इन में मिलाने से मति ज्ञान के ३४० प्रकार होते हैं.

२ सुन कर जाने उस श्रुति ज्ञान के १४ प्रकार—१ अ. इ. प्रमुख स्वर और क. ख. प्रमुख व्यंजनादि अक्षरों से ज्ञान प्राप्त होवे सो 'अक्षर श्रुत'. २ अक्षर के उच्चार विना खांसी, छींक, हस्त, नेत्रादि की चेष्टा से ज्ञान प्राप्त होवे सो 'अनक्षर श्रुत'. ३ विचारना, निर्णय करना, समुच्चय

अर्थ करना, विशेस अर्थ करना, अनुप्रेक्षा करना और निश्चय करना यह ६ बात सन्नी जीव में पाती हैं. इन ६ बोलों से सूत्रादि धारन करे सो 'सन्नी श्रुत' ४ उक्त ६ बोलों रहित पूर्वापर आलोच विना पढे पढावे सो असन्नी श्रुत' ५ अर्हत प्रणित गणधर गूंथित (रचित) तथा जघन्य दश पूर्वी ज्ञान पूर्ण पठित के रचित ग्रन्थों सो [*] सम्यग् श्रुत ६ अपनी मति कल्पना से बनाये जिसमें हिंसादि पांचो आश्रव सेवन करने का बोध हो जैसे वैद्यक जोतिष काम शास्त्रादि मिथ्याश्रुत: ७ आदि सहित श्रुत ज्ञान सो सादि श्रुत ९ आदि रहित श्रुत ज्ञान सो अनादि श्रुत: ७ अन्त सहित श्रुत ज्ञान सो सपज्जवश्रुत, १० अन्तरहित श्रुत ज्ञान सो अपज्जवश्रुत: [*] ११ दृष्टी-वादांग [*] का ज्ञान सो गमिकश्रुत: १२ आचारंगादि कालिक सुत्र का ज्ञान सो 'अंगमिक श्रुत' १३ द्वादशांग सूत्र सो अंगपविठ और १२ अंग बाहिर श्रुत के दो प्रकार १ सामायिकादि ६ आवश्यक सो आवश्यक और २ कालिक उत्कालि सूत्र सो आवश्यक व्यतिरिक्त.

☞ उक्त मति और श्रुति ज्ञान क्षीर नीर के समान परस्पर सम्बन्धी हैं। जगत् का कोई भी जीव इन दोनों ज्ञान विना नहीं हैं किन्तु सम्यक् दृष्टी के ज्ञान को ज्ञान और मिथ्यादृष्टी के ज्ञान को अज्ञान कहते हैं उत्कृष्ट

---

[*] दश पूर्व से कम पठित के बनाये ग्रन्थों का पूर्ण विश्वास नहीं क्योंकि नव पूर्व तक का ज्ञान अभव्य भी प्राप्त कर सकता है इत्यादि कारण से कमी ज्ञान वाले के बनाये ग्रन्थ सम्यक्श्रुत भी होते हैं और मिथ्याश्रुत भी होते हैं।

[*] सादि अनादि सपज्जव और अपज्जव का खुलासा-१ द्रव्य से-एक जीव पठन पर [illegible] पूरा करे इस अपेक्षा आदि अन्त होने से सादि अन्त [illegible] काल में पढे हैं और भविष्य में पढेंगे इन का आदि अन्त नहीं होने से अनादि अनन्त, [illegible] भरत ऐरावत क्षेत्र में समय का फेरा होनेसे आदि अन्त सहित और महा विदेह [illegible] एक ही राज प्रवर्तने से आदि अन्त रहित। ३ काल से-उत्सर्पनी अवसर्पनी आश्रिय आदि अन्त सहित और नो उत्सर्पनी नो अवसर्पनी आश्रिय आदि अन्त रहित, और ४ भाव से प्रत्येक तीर्थंकर के प्रकाशित भाव आश्रिय आदि अन्त सहित और क्षयोपशमिक भाव आश्रिय आदि अन्त रहित।

[*] दृष्टी वादांग का खुलासा प्रथम खण्ड के चौथे प्रकरण में है।

मति श्रुति ज्ञान का धारक सब द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जानते हैं जिस से श्रुत केवली कहलाते हैं और जातिस्मरण ज्ञान को भी केई मतिज्ञान का चौथा प्रकार धारना में तथा केई श्रुत ज्ञान में समावेश करते हैं जिस से जो संज्ञी के निरन्तर भव ९०० किये हों तो उत्कृष्ट देख सकता है।

३ मर्याद युक्त जाने उस 'अवधि ज्ञान' के ८ प्रकार- १ भेद द्वार- अवधि ज्ञान दो प्रकार से होता है- १ नारकी देवता और तीर्थंकरों को जन्म से ही होता है सो 'भव प्रत्येक' और २ मनुष्य तिर्यंच को करणी करने से होता है सो 'क्षयोपशम प्रत्येक'। २ विषय द्वार- सातवीं नरक के नेरइये को जघन्य आधा कोस उत्कृष्टा एक कोस। छट्ठी नर्क वाले को जघन्य एक कोस उत्कृष्टा १॥ कोस। पांचवीं नर्क वाले को जघन्य १॥ कोस उत्कृष्टा २ कोस, चौथी नर्क वाले को जघन्य २ कोस उत्कृष्टा २॥ कोस। तीसरी नर्क वाले को जघन्य २॥ कोस उत्कृष्टा ३ कोस। दूसरी नर्क वाले को जघन्य ३ कोस उत्कृष्टा ३॥ कोस और पहिली नर्क के नेरइये को जघन्य ३॥ कोस उत्कृष्टा ४ कोस अवधी ज्ञान से जान देख सकते हैं* असुर कुमार जाति के भुवन पति देव को जघन्य २५ योजन उत्कृष्टा असंख्यात द्वीप समुद्र। बाकी के नवनी काय-९ जाति के भुवनपति देवों को जघन्य २५ योजन उत्कृष्टे संख्यात द्वीप समुद्र। वाण व्यन्तर जाति के देव जघन्य २५ योजन उत्कृष्टे संख्यात द्वीप समुद्र। ज्योतिषी देव को जघन्य उत्कृष्टे संख्यात द्वीपसमुद्र। विमानिक देव ऊपर अपने २ विमान की धजा तक तिरछा पल्योपम के आयुष्य वाले संख्यात द्वीपसमुद्र‡ और सागरोपम के आयुष्य वाले असंख्यात द्वीप समुद्र और नीचे-प्रथम दूसरे

* नर्क के जीवों को महा वेदनाके अनुभव से तथा परमाधामी देव के स्मरण कराने से जाति स्मरण ज्ञान होता है जिससे वे पूर्व भव जान सकते हैं किन्तु यह ज्ञान परोक्ष होने से देख सकते नहीं है।

‡ पहिले दूसरे देवलोक के देव का और किल्विषी देव का पल्योपम का आयुष्य है वे ही संख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं अन्य नहीं

देवलोक के देव प्रथम नर्क। तीसरे चौथे देव लोक के देव दूसरी नर्क। पांचवें छट्ठे देवलोक के देव तीसरी नर्क। सातवें आठवें देव लोक के देव चौथी नर्क। नववें, दशवें, इग्यारवें और बारवें देव लोक के देव पांचवी नर्क। नवग्रीवेग के देव छट्ठी नर्क। चार[!] अनुत्तर विमान के देव सातवीं नर्क। और सर्वार्थसिद्ध विमान वासी देव सम्पूर्ण लोक में कुछ कम जाने। सज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग। उत्कृष्टा असंख्यात द्वीप समुद्र। सज्ञी मनुष्य जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग। उत्कृष्टा सम्पूर्ण लोक और लोक जैसे अलोक में असंख्यात खण्ड.[१] ३ संस्थानद्वार-नरक के नेरइय त्रिपाई के आकार अवधिज्ञान में देखें. भुवनपति देव-पाला (टोपले) के आकार व्यन्तर देव पडह (ढफ) के आकार देखें। जोतिषीदेव झालर (घंटा) के आकार। बारहवें देव लोक का देव मृदंग के आकार, ग्रेय वेक के देव फूलों की चंगेरी (छावडी) के आकार, अनुत्तर विमान के देव कुमारिका की कंचुकी के आकार देखें और मनुष्य तिर्यंच अवधि ज्ञान से जाली के आकार अनेक प्रकार से देखते हैं. ४ बाह्याभन्तर द्वार-नेरइये के और देवता के अभ्यन्तर (अंतरिक) ज्ञान

[!] कितने क स्थान पहिले से छट्टे ग्रेवेग तक के देव छठी नर्क और ऊपर ३ ग्रेवेयेक देव सातवीं नर्क देखने का लिखा है।

[१] जो अवधि ज्ञानी अंगुल के असंख्यात भाग क्षेत्र देखे वह काल से आवलिका के असंख्यात में काल की बात जाने, अंगुल के संख्यातवें भाग क्षेत्र देखे सो आवलिका के संख्यात वें भाग की जाने। एक अंगुल क्षेत्र देखे सो एक आवलिका में कुछ कम काल की जाने। प्रत्येक (९) अंगुल क्षेत्र देखे सो पूरी आवलिका की जाने, एक हाथ क्षेत्र देखे सो अन्तर मुहूर्त की जाने, एक धनुष्य क्षेत्र देखे सो प्रत्येक (९) मुहूर्त की जाने, एक कोस क्षेत्र देखे सो एक दिन की जाने; १ योजन देखे सो प्रत्येक (९) दिन की जाने, २५ योजन देखे सो १ पक्ष में कुछ कम जाने; भर्त क्षेत्र पूर्ण देखे सो पूर्ण पक्ष की जाने। जम्बू द्वीप देखे सो १ महीने की जाने। अढाई द्वीप देखे सो १ वर्ष की जाने, १५ वां रुचक द्वीप देखे सो प्रत्येक (९) वर्ष की जाने। संख्यात द्वीप समुद्र देखे सो संख्यात काल की जाने और असंख्यात द्वीप समुद्र देखे सो असंख्यात काल की जाने परम अवधी उत्पन्न हुवे पीछे अलोक देखे वह अन्तर मुहूर्त में केवल ज्ञान प्राप्त करे, अलोक में रूपी द्रव्य नहीं है देखने जैसा कुछ नहीं है परंतु ज्ञान की शक्ति बताई है।

तिर्यंच के बाह्य (बाहिरिक) ज्ञान और मनुष्य बाह्याभ्यन्तर के दोनों प्रकार का अवधिज्ञान होता है. ५ अनुगामी अनानुगामी द्वार-नेरइये देवता के अनुगामी (साथ में ही रहे ऐसा) ज्ञान और तिर्यंच मनुष्य के अनुगामी (साथ आवे ऐसा) और अनानुगामी (जहां उत्पन्न हुआ वहां ही रह जाय ऐसा) दोनों प्रकार का ही होता है. ६ 'देश से सब से'-नेरइये देवता और तिर्यंच के देश से (अपूर्ण) अवधिज्ञान होता है और मनुष्य के 'देश से' 'सव से' दोनों प्रकार का होता है. ७ हायमान वृधमान अवुठिय-द्वार, उत्पन्न हुये बाद घटता जाय सो हायमान, वृद्धिगत होता जाय सो वृद्धमान और उत्पन्न हुआ उतना ही बना रहे सो अवस्थित। नेरइये देवता के अवस्थित अवधिज्ञान और मनुष्य तिर्यंच के तीनों प्रकार का होता है और ८ पडवाइ अपडवाइ द्वार-उत्पन्न हो चला जाय सो प्रतिपाती और बना रहे सो अप्रतिपाति। नेरइये देवता के अप्रतिपाती अवधीज्ञान होता है और मनुष्य तिर्यंच के दोनों प्रकार का अवधिज्ञान होता है.

४ मन के पर्यव (विचार) को जाने ऐसे मनपर्यव ज्ञान के २ प्रकार-१ समान देखे सो ऋजुमति और विशेष देखे सो विपुल मति. दृष्टान्त—किसी ने मन में घट धारन किया. ऋजुमति वाला तो फक्त घट ही देख सकेगा और विपुलमति वाला यह धारित घट-द्रव्य से मृति का धातु का काष्टादिका है । क्षेत्र से पाडलीपुरादि में निष्पन्न हुआ है, काल से शीत उष्णादि काल में बना हुआ है, और भाव से घृत दुग्धादि धारन करने का है यों खुलासे से देख सकता है । ऋजुमति तो प्रतिपाती भी हो जाता है किन्तु विपुलमति अवश्य ही केवल ज्ञान प्राप्त करता है । मन-पर्यव ज्ञानी द्रव्य से रूपी द्रव्य जाने, क्षेत्र से १००० योजन ऊपर ९०० योजन नीचा और अढाईद्वीप प्रमान तिरछा (ऋजु मति २॥ अंगुल कम) जाने । काल से पल्योपम के असंख्यातवें भाग भूत भविष्य काल की जाने और भाव से सब सज्ञी के मन के भाव जाने । मनपर्यव ज्ञान मनुष्य, सज्ञी

कर्म भूमिक, संख्यात वर्षायुवाला, पर्याप्ता, सम्यक दृष्टा संयति अप्रमादो और लब्धिवन्त इतने गुन के धारक को ही उत्पन्न होता है.

अवधिज्ञान से मनपर्यव ज्ञान का विशेपत्व—१ अवधि ज्ञानी से मनपर्यव ज्ञानी के क्षेत्र थोडा है किन्तु विशुद्धता अधिक है. २ अवधि ज्ञान चारों गति वाले को होता है किन्तु मन पर्यव ज्ञान तो केवल मनुष्यगति में साधु को ही होता है. ३ अवधि ज्ञान से जघन्य अंगुल के असंख्यात वां भाग क्षेत्र तथा अधिक भी जान सकता है और मनपर्यव ज्ञान तो अढाई द्वीप प्रमाने ही होता है. ४ जिन रूपी सूक्ष्मपदार्थों को अवधि ज्ञानी नहीं जान सकता है उनको भी मनपर्यव ज्ञानी जान सकता है।

५ अब सर्व से नो इन्द्रि प्रत्यक्ष प्रमान का एकही भेद-केवल ज्ञान यह ज्ञान—मनुष्य सज्ञी कर्म भूमिक संख्यात वर्षायुवाला, पर्याप्ता, सम्यकदृष्टी, संयति, अप्रमादि, अवेदी, अकषाइ चतुघातिक कर्म विनाशक तेरवें गुणस्थान वृती को ही प्राप्त होता है. केवल ज्ञान में सब द्रव्य, सब क्षेत्र सब काल सब भाव हस्तावलवत् प्रकाशित होते हैं. यह ज्ञान अप्रति पाती होता है अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त हुअे वाद जघन्य अन्तर मुहूर्त में उत्कृष्ट ८ वर्ष कम क्रोड पूर्व में अवश्य ही मोक्ष होती है.

२ जिस अनुमान से वस्तु का ज्ञान हो सो अनुमान प्रमान् इसके ३ प्रकार— १ पुव्वं, २ सेसवं, और ३ दिट्ठी साम. १ किसी का पुत्र बाल्यावस्था में विदेश गया वह युवान हो कर पीछा आया तब उसकी माता उसकी शारीराकृति वर्ण तिल मसादि पूर्व के प्रमान कर उसे पहिचाने सो पुव्वं. २ दूसरा सेसवं के ५ प्रकार—१ जैसे कि मयुर को कैकारव शब्द से हस्ति को गुलगुलाट शब्द से अश्व को हेंकार शब्द से रथ को घणघणाट शब्द से इत्यादि कार्य से पहचाने सो 'कज्जेणं'. २ वस्त्र का कारण तंतू किन्तु तंतू का कारण वस्त्र नहीं, गंजी का कारण कडबी (घांस) किन्तु कडबी का कारण गंजी नहीं, रोटी का कारण चून (आटा) किन्तु

चुल का कारण रोटी नहीं, घट का कारण मृतिका किन्तु मृतिका का कारण घट नहीं, मुक्ति का कारण ज्ञान दर्शन चारित्र किन्तु ज्ञानादि का कारण मुक्ति नहीं इत्यादि कारण से वस्तु को पहचाने सो 'करणेणं'. ३ निमक में रस गुन, फूल में गन्धका गुन, सुवर्ण में कसोटी का गुन, वस्त्र में स्पर्श का गुन इत्यादि गुनकर पहिचाने सो 'गुणेणं'. ४ शृंग कर भेंस को विचित्र पाँखों से मयूर को, किलंगी से मुर्गे को, दन्त से सुवर को, खुर से घोड़े को नाखून से व्याघ्र को, केशर से केशरी सिंह को सूंड से हस्ती को, पूंछ से चमरी गौ को, द्वीपद कर मनुष्य को, चतुष्पद कर पशु को बहुत पैरों कर गजाइ को, कंकन (चूडी) कर कुमारिका को कंचुकी कर विवाहिता स्त्री को, शस्त्र कर सुभट को, काव्यालंकार कर पण्डित को, एक दाने को देख सब पके धान्य को. इत्यादि अवयव कर पहचाने सो अवयवगणं और ५ धूम्र के आश्रय कर अग्नि को, वद्दल के आश्रय कर मेघ को, बुगले के आश्रय कर जलाशय (सरोवर) को, उत्तमाचरण से उत्तम पुरुष को. इत्यादि आश्रय से पहचाने सो 'आसेरणं' और तीसरे दिट्ठी साम के २ प्रकार—१ एक रुपै को देख उस जैसे बहुत रूपे को जाने, एक मरूस्थल देश के धोरी बैल को देख उस जैसे बहुत से बैलों को जाने. देशान्तर के किसी एक मनुष्य को देख उस जैसे बहुत मनुष्यों को जाने. एक समदृष्टी को देख उस जैसे बहुत समदृष्टी को जाने. इत्यादि से जाने सो सामान. और २ जैसे कोई विचक्षण साधुजी मार्गातिक्रमण करते बहुत घांस देखी, जलाशय जल पूरित देखे, बाग बगीचे हरे भरे देखे इत्यादि अनुमान से जाने कि भूत काल में वृष्टि अधिक हुई। आगे देखें तो ग्राम छोटा, श्रावक के घर थोडे, घर में सम्पदा भी कम, किन्तु श्रावकों बड़े ही भक्तिवन्त, उदारपरिणाम से दान देने वाले. इस अनुमान से जाने की वर्तमान में कुछ अच्छा होना दिखाता है. आगे चल कर देखते हैं सो पर्वत मनोहर लगते हैं,

अगडम्बगडम् हवा नहीं चलती है ग्राम के बाहिर भी रमणीय लगता है तार टूटने आदि के अपशकुन नहीं होते हैं. इत्यादि अनुमान से जाने की भविष्य में यहां कुछ भला होने वाला है. यह शुभ जानने का कहा. ऐसे ही कोई साधुजीने मार्गातिक्रमण करते घांस रहित भूमी देखी जलाशय खाली देखे, बाग बगीचे सुके देखे तब जाने कि भूत काल में यहां बृष्टी कम हुई है, आगे देखते हैं तो ग्राम बडा श्रावकों के घर भी बहुत सम्पत्ती वाले किन्तु अभिमानी विनयादि गुन रहित, कृपन, उदारता रहित. इस अनुमान से जाने की वर्तमान में यहां कुछ अशुभ होता दिखाता है, आगे चले–पर्वतों अमनोज्ञ लगे, अगड़म् बगड़म् हवा चले, ग्राम के बाहिर भीतर खराब लगे, जमीन धूजे, तारे खिरे इत्यादि अनुमान से जाने की यहां भविष्य काल में कुछ अशुभ होता देखाता है, इत्यादि अनुमान से जाने सो विशेष।

(३) आप्त पुरषों कथित शास्त्रों से वस्तु का ज्ञान हो सो आगम प्रमान इस के ३ प्रकार- जिनेश्वर प्रणित गणधर रचित, तथा दश पूर्व ज्ञान के धारक के रचित शास्त्र सो 'सुत्तागम'. २ सब के समझ में आवे ऐसी किसी भी भाषा में मूल सूत्र के आशयानुसार अर्थ करे सो अत्थागम, और ३ उक्त सूत्र और अर्थ से मिलता हुआ जो कोई कथन हो सो 'तदुभयागम'।

(४) किसी अन्य की उपमा देने से उस खास वस्तु का ज्ञान हो सो उपमा प्रमान. इसकी चौभङ्गी- १ भविष्य काल के प्रथम तीर्थंकर श्री पद्मनाभजी कैसे होंगे तो कहा कि वर्तमान के अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजी जैसे. इत्यादि होती वस्तु को होती उपमा जानना. २ शास्त्र में नर्क स्वर्ग के आयुष्य का प्रमान पल्योपम सागरोपम से बताया सो सच्चा किन्तु पल्ल को कूवे का दृष्टान्त दिया सो वह पल्ल कूप किसी ने भरा नहीं खाली भी किया नहीं इत्यादि उपमा दे सो होती को अनहोती उपमा. ३ द्वार का

नगरी कैसी ? तो कहा कि देवलोक जैसी, जुवार मोती के दाने जैसी, आगीया सूर्य जैसा इत्यादि उपमा दे सो अनहोती को होती उपमा. अश्व के शृंग कैसे ? तो कहा कि गद्धे जैसे, इत्यादि उपमा दे सो अनहोती को होती उपमा. इस प्रकार सर्व स्थान जमावे सो उपमा प्रमान ।

९ तत्त्व पर ४ प्रमाण *

१ 'जीव तत्त्व'—१ जीव का चैतना लक्षण सो प्रत्यक्ष प्रमाण. २ बाल युवा, वृद्धावस्था तथा त्रस के संकुचियं प्रसारीयं लक्षण स्थावर के अंकुर से वृक्षादि पर्याय को प्राप्त हो सो 'अनुमान प्रमान' ३ आकाश वत् अरूपी जीव, धर्मास्ति कायावत् अनादि अनन्त. 'तिलेषु यथा तैलं, पयेषु यथा घृतं' वन्हीसु यथा तेजं. शरीरेषुवापात्मा.' यह सब जीव के ओपमा प्रमान और ४ गाथा—कम्म कत्ता अयं जीवो, कम्म छित्ता जीव वुणाय वी ॥ अरूवी णिच अणाइ, एयं जीवस्स लक्खणं ॥ १ ॥ शुभाशुभ कर्मों का कर्ता भोक्ता और विनाशक, अरूपी अनादि अनंत अर्थात् नित्य यह जीव के लक्षण हैं. इत्यादि शास्त्रिक प्रमाण से जो जीव का स्वरूप सिद्ध किया जाय सो आगम प्रमान ।

२ 'अजीव तत्त्व'—जड़ लक्षण, वर्णादि पर्याय, मिल विछड़ना वगैरा अजीव का देखाय सो प्रत्यक्ष प्रमाण, २ वर्णादि पर्याय पलटने के अनुमान से तथा जीवाजीव की सकम्प अवस्था देख धर्मास्ति का गुन जाने. स्थिर अवस्था देख अधर्मास्ति का गुन जाने. पूरनगलन देख पुद्गल जाने ये अजीव का अनुमान. ३ इंद्र धनुष्य, संध्या रंग, पिंपल का पान, कुंजर का कान सन्ध्या का भान इत्यादि उपमा से पुद्गल का स्वभाव बतावे सो उपमा प्रमान और ४ श्री भगवती सूत्र के २०वें शतक में पुद्गल पर्याय का बहुत विस्तार से कथन कहा है. धर्मास्ति अधर्मास्ति आकास्ति इन तीनों के एक २ द्रव्य स्कंध देश प्रदेश मय हैं. जिनके प्रत्येक प्रदेश की अनंत पर्याय हैं क्यों कि अनंत जीव और पुद्गलों को गति स्थिति अवकाश सहायक होरहे हैं.

* श्री विवाह प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) अनुयोगद्वार में चार प्रमानों का कथन है।

ऐसे काल द्रव्य भी वस्तु को नवी पुरानी बनाने को सहायक है, एक समय में अनंत जीवों का पुद्गल परावर्तन होता है. यह चारों ही द्र अनादि अनंत अरूपी अचेतन हैं। दोंनो द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं आक अनंत प्रदेशी और काल अप्रदेशी और पांचवां पुद्गल द्रव्य से प्रमाणु स्कंध तक प्रवर्तक। एक प्रमाणु की अपेक्षा- १ वर्ण, १ गंध, १ रस अ २ स्पर्श, अनेक प्रमाणुओं के स्कंध में ५ वर्ण, २ गंध ५ रस और ४ स्पर इन १६ गुनों के धारक येही पर्याय से प्रवर्त कर अनंत रूप के धारक ब जाते हैं। पुद्गलों के वर्णादि गुन मिश्री मिठाई के समान सम्बन्धी हैं किन्तु पृथक नहीं हैं। यह पांचों ही अजीव द्रव्य गुन पर्याय कर युक्त हैं. इत्यादि आगम प्रमान.

३ पुण्यतत्त्व—१ अच्छे वर्ण गन्ध रस स्पर्श मन वचन काया सात वेदनी का उदय देखकर पुंण्यवन्त कहे सो प्रत्यक्ष प्रमान. २ जाति कुल बल रूप सम्पदा ऐश्वर्य की उत्तमता देख अनुमान करे कि यह पुण्यवन्त है. यह अनुमान प्रमान. ३ "देवो दो गुदं गो जहा"—इन्द्र के गुरुस्थान दुगुंदक (त्रयत्रिंसक) देवता के समान पुण्यवन्त सुख भोगवते हैं तथा "चंदो इव तारा.ण, रहो इव मणुसाणं'—सितारों के समुह में चन्द्रमा के समान मनुष्यों के वृन्द में भरत महाराजा सोभते हैं. इत्यादि पुण्यवन्त की उपमा सो उपमा प्रमान और ४ "सुचिन्न कम्मा सुचिन्न फला भवंती"—अर्थात् अच्छे कर्म के अच्छे ही (पुण्यरूप) फल प्राप्त होते हैं. देवायु मनुष्यायु शुभानुभाग इत्यादि पुण्य प्रकृतिका कथन शास्त्र में है. जितना सक्कर मिलावे उतना मीठा होता है इसही प्रकार पुण्य के रस में भी षड गुन हानी वृद्धी जानना पुण्य की अनन्त पर्याय और अनन्त वर्गणा हैं। जैसे पुण्योदय से देवायुबन्ध किया किन्तु काल की अपेक्षा से चउठाण वडीया रस होता है। जैसे २ शुभ योग की वृद्धी होती है तैसे २ पुण्य की वृद्धी जानना और भी पुण्य नुबन्धी पुण्य सो—तीर्थ-

कर वत् । पुण्यानुबन्धी पाप- हरकेशी वत् पापानुबन्धी पुण्य सो गोशालक वत् तथा अनार्य राजावत् और पापानुबन्धी पाप सो नागश्रीवत् इत्यादि आगम प्रमान ।

४ 'पाप तत्त्व'—१ जाति कुल वर्ण सम्पत्ती की हीनता देख पापी जानेसे सो प्रत्यक्ष प्रमान. २ दुखी को देख कहे इसके पापोदय हुआ है सो अनुमान प्रमान. ३यह बिचारा नर्क जैसे दुःख भुक्तता है इत्यादि उपमा प्रमान और ४ पाप की प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश इत्यादि शास्त्र में कथन है सो आगम प्रमान ।

५ 'आश्रव तत्त्व'—१ योगों के व्यौपार की प्रवृत्ती सो प्रत्यक्ष प्रमान २ अवृती को देख आश्रवी कहे सो अनुमान प्रमान । ३ तलाव के नाले का, घर के द्वार का, सुई के नाके के दृष्टान्त से आश्रव का स्वरूप समझावे सो उपमा प्रमान और ४ अनन्तानबन्धी, अप्रत्याख्यानी, क्रोध, मान, माया, लोभ, इन कषायों के दल रूप स्कन्ध आत्म प्रदेश से सम्बन्ध करे सो आगम प्रमान ।

६ 'संवर तत्व'—देश से योगों को निरूंध किया देख साधु श्रावक को और सर्व से योगों का निरूंधन करे देख अयोगी को संवरी कहे सो प्रत्यक्ष प्रमान २ सावद्ययोग त्याग के अनुमान से संवरी कहे सो अनुमान प्रमान. ३ नाले को रोकने से तालाव का जलागम रुक जाय, द्वार बन्द करने से कचरा आता रुक जाय सो नौका का छिद्रारोह होने से जलागम रुक जाय ऐसे ही योग्य निरूंधन से आश्रव रुक संवर होवे यह उपमा प्रमान और ४ योगानिरूंधन होने से अकम्प स्थिर अवस्था हो निज गुन में लीन हो सो संवर यह आगम प्रमान ।

७ 'निर्जरा तत्व'—१२ प्रकार के तपश्चारण से कर्मोच्छेद करे सो प्रत्यक्ष प्रमान. २ ज्ञान दर्शन चारित्र क्षयोपशम से सम्यक्त्व की वृद्धी होती देख तथा देवायु की प्राप्ति देख कर्म निर्जरा का अनुमान हो सो अनुमान प्रमान, ३ क्षार पानी से वस्त्र शुद्ध होवे, स्वागा टंकन क्षारादि से

सुवर्ण शुद्ध होवे, वायु प्रयोग से बद्दल दूर हो सूर्य शुद्ध होवे तैसे तपश्चर्या से निर्जरा होवे सो उपमा प्रमान और ४ सम्यक्त्व युक्त तप के फल की वांछा रहित तप करने से सकाम निर्जरा हो आत्म शुद्ध हो सो आगम प्रमान।

८ 'बन्ध तत्त्व'—१ क्षीर नीर के समान जीव पुद्गल के सम्बन्ध से शरीर संयोग प्रयोग से पुद्गल से आत्मा बंधा देखे सो प्रत्यक्ष प्रमान. २ तीर्थंकरों का, केवल ज्ञानियों का, गणधरों का, साधुओं का उपदेश श्रवण कर संशय-व्यामोह भ्रम दूर न हो इम अनुमान से जाने कि इस के प्रकृति आदि बन्ध कठिन है.—जैसे ब्रह्म दत्त चक्रवर्ती को चित्त ऋषीजी ने कहा है कि "नियाणं मसुहं कडं" हे राजा! पूर्व कृत नियाने के दोष से तुझ पर धर्मोपदेश का असर होना मुश्किल है. तथा १ दीर्घ कषायी, २ सदाभिमानी, ३ मूर्ख से प्रीति, ४ महा कोप-वन्त, ५ सदा रोगी और ६ खुजली के रोग वाले को देख कर अनुमान करे कि यह नर्क गति से आया दीखता है, १ महा लोभी, २ अन्य की सम्पदा का इच्छुक, ३ महा कपटी, ४ मूर्ख, ५ बहुत क्षुधा वाला और ६ आलसी इन ६ लक्षणों के अनुमान से जाने कि यह तिर्यंच गति से आया दीखता है १ अल्प लोभी, २ विनयवन्त, ३ न्यायी ४ पाप का भीरू, ५ निराभिमानी, इन ५ लक्षणों से जाने कि यह मनुष्य गति से आया दीखता है, और १ दानी, २ मिष्ट वचनी, ३ माता पिता गुरु का भक्त ४ धर्मानुरागी, और बुद्धीवन्त इन ५ लक्षणों से जाने कि यह देव गति से आया दीखता है, इत्यादि अनुमान प्रमान. और पानी में थोडी शक्कर डालने से थोड़ा और अधिक शक्कर डालने से अधिक मीठा होता है तैसे ही शुभ कर्म के फल और पानी में थोड़ा नमक डालने से थोड़ा खारा, अधिक नमक डालने से अधिक खारा होता है तैसे अशुभ कर्म. यों तीव्र मंद अनुभाग बन्ध जानना जैसे अभ्रक (भोड़ल) के एक पिण्ड में अनेक पुट प्रगटते हैं तैसे ही कर्म वर्गणा के पट आत्म

प्रदेश पर लगते हैं. इत्यादि उपमा प्रमान। और ४ जीव के शुभाशुभ योग ध्यान लेश्या • प्रणाम इत्यादि तथा ४ गति के आवे के १६ लक्षण यह आगम प्रमान।

* ६ लेश्या का यन्त्र।

...र्ण गन्ध रस स्पर्श	लेश्या के लक्षण	स्थिति जघन्य उत्कृष्ट	जघन्य गति	मध्यम गति	उत्कृष्ट गति
...र्ण-कृष्ण ...न्ध-दुर्गन्ध रस-कटुक ...र्श-तीक्ष्ण	पंच आश्रव का सेवन स्वयं करे अन्य के पास करावे, ३ योग ५ इन्द्रियों के, छुट्टे रखे, तीव्रपरिणामसे छकाया का आरम्भ करे; हिंसा करता अटके (डरे) नहीं; क्षुद्र परिणामी दोनों लोक के दुःख से डरे नहीं।	जघन्य अन्तर मुहूर्त; उत्कृष्ट ३३ सागरोपम	भुवनपति; वाण व्यन्तर, अनार्य मनुष्य	५ स्थावर ३ विकलेन्द्रि तिर्यंच पचेन्द्रि	पंचवी, छट्ठी, सातवीं नर्क
वर्ण—हरा ...न्ध-दुर्गन्ध रस-तीखा स्पर्श-खुरदरा	ईर्षावन्त अन्यके गुन सहन्य सके नहीं; तप करे नहीं; ज्ञान को करने नहीं स्वयं ज्ञानाभ्यास करे नहीं अन्य को करने दे नहीं निपट कपटी लज्जा रहित रस गृद्धी महा आलसी फक्त आपके ही सुख चहावे।	जघन्य-अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट १७ सागरोपम	भुवन पति वाण व्यन्तर कर्म भूमी मनुष्य	५ स्थावर ३ विकलेन्द्रि तिर्यंच पचेन्द्रि	तीसरी चौथी नर्क
...-ऊदा ...न्ध	बांका बोले बांका चले अपने दुर्गुन ढके अन्य के प्रगट करे; कठिन वचन बोले अन्य की सम्पदा देख झूरे।	जघन्य-अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट ७ सागरोपम	भुवन-पति; वाण व्यन्तर अन्तर द्वीप मनुष्य	स्थावर ३ विकलेन्द्रि तिर्यंच पचेन्द्रि	प्रथम दूसरी तीसरी-नर्क
	...ी; सरल; कितुहल दमितेन्द्रि, दृढ ...से डरने वाला।	जघन्य-अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट २ साग[illegible]	पृथ्वी, पानी; वन-स्पति जुगल मनुष्य	भुवनपति वाण व्यन्तरजोतिषी तिर्यंच पचेन्द्रि	प्रथम दूसरा स्वर्ग
	...ी कषाय पतली की सदैव उपशांत ...के कम बोले दमितेन्द्रि	जघन्य-अन्तर मुहूर्त; उत्कृष्ट १० सागरोपम	तीसरा-स्वर्ग	चौथा-स्वर्ग	पांचवां-स्वर्ग
	...त्यागे; धर्म ध्यान ...रागद्वेष पतले किये ...द समिती गुप्तिवन्त	जघन्य-अन्तर मुहूर्त; उत्कृष्ट	छट्ठे से बारहवें स्वर्ग तक	९ ग्रैवेयक ५ अनुत्तर	सर्वार्थ सिद्ध विमान

१ 'मोक्ष तत्व'—आत्म प्रदेश कर्माभरन कुछ पतले पड़ने से अशुभ प्रकृतियों का क्षय होवे और शुभ प्रकृतियों का उदय होवे जिस से सम्यक्ज्ञानादि मोक्ष के कारण रूप सद्गुनों का उद्भव होवे. तीर्थंकरादि पद उपार्जन करे. तथा चतु घन घातिक कर्मों का नाश कर केवलज्ञानादि गुन प्रगटे सो प्रत्यक्ष प्रमान। २ दर्शन मोहनी चारित्र मोहनीय के क्षय होने से मोक्षाभिमुख आत्मा बने सो अनुमान प्रमान। ३ दग्ध (भुंने) बीज से अंकुरोत्पत्ती नहीं होवे तैसे सिद्धों के कर्मांकुर की उत्पत्ति नहीं होवे, घृत प्रक्षिप्त अग्नि प्रदीप्त होवे तैसे वीतरागी के ज्ञानादि गुन आदि प्रदीप्त होवें. इत्यादि उपमा प्रमान। और ४ सूत्रोक्त कर्म प्रकृतियां जिस २ प्रकार क्षय करे उस २ प्रकार आत्मा मोक्षाभिमुख उन्नत अवस्था प्राप्त करता जावे, जैसे—(१) अनादि से मिथ्यात्व गुणस्थान में प्रवृतक जीव वीतराग प्रणीत शास्त्रों के भाव को न्यूनाधिक तथा विपरीत श्रधना प्ररूपना स्पर्शना करता हुआ ४ गति २४ दंडक ८४००००० जीव योनि में परिभ्रमन करते अनन्तानन्त पुद्गल परावर्तन किये (२) यह मिथ्यात्व मोहादि प्रकृतियों का क्षयोपशम कर पतन करता हुआ वृक्षच्युत फल पृथ्वी को प्राप्त न हुआ इस प्रकार मिथ्यात्व को प्राप्त न हो वहां तक मिष्टान भोजन को वमन किये के मुंह में गुल चट्ट स्वाद के समान सम्यक्त्व रस का आस्वादन करे वह जीव कृष्ण पक्षी का शुक्ल पक्षी बन अनन्त संसार परिभ्रमन का क्षय कर सिर्फ आधा पुद्गल परावर्तन जितना संसार भ्रमन बाकी रखे सो सास्वादन गुणस्थान वर्ती. (३) यह पुनः सम्यक्त्वाभिमुख सम्यक् गुन को अप्राप्त हो दधी शक्कर मिश्रित भोजन के समान मिथ्यात्व और सम्यक्त्व मध्य खटमीठा बने यह मिश्र गुणस्थानी जीव देश ऊना (कुछ कम) आधे पुद्गल परावर्त संसार भ्रमण कर मोक्ष प्राप्त करने जैसा बने। (४) यह जीव अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क और तीनों मोहनी इन सातों प्रकृतियों का उपशम क्षयोपशम तथा क्षय कर

सद्गुरु सद्देव सद्धर्म सत्शास्त्र पर श्रद्धा कर प्रतीत धर आस्तिक बने साधु आदि चारों तीर्थों का उपासक (भक्त) होवे। यह अवृती सम्यक् दृष्टि गुन स्थानी ने जो पृथम आयुर्बन्धन नहीं किया हो तो वह नर्क गति, तिर्यंच गति, भुवनपति देव, वाणव्यन्तर देव, ज्योतिषी देव, स्त्री वेद और नपुंसक वेद इन सात स्थानों में गमन का आयुर्बन्धन नहीं करे अर्थात् मर कर इन सात स्थानों में नहीं जावे और पृथम बन्ध कर दिया हो तो उसे भोग तत्काल उन्नति स्थान को पृाप्त होवे. (५) यह जीव सात तो उक्त और अपृत्याख्यानावर्णिय कषाय चतुष्क इन ११ पृकृतियों को उपशमादि कर देशवृती गुनस्थानी बन श्रावक के १२ वृत ११ पृतिमा (पृतिज्ञा) नमुकारसी आदि छ मासिक तप इत्यादि धर्म क्रिया में यथा शक्ति पृवर्तक बने यह जीव जो पृतिपाती न हो तो जघन्य तीसरे उत्कृष्ट १५ वें भव में मोक्ष पृाप्त करे. (६) यह जीव ११ उक्त और पृत्याख्यानावर्णिय कषाय चतुष्क का क्षयोपशमादि कर 'प्रमत्त संयती' (साधु) गुनस्थानी बने किन्तु दृष्टी-भाव-भाषा और कषाय इन चारों की चपलता होने से साधुवृत्ती का पालन नहीं कर सके यह भी जघन्य ३ उत्कृष्ट १५ वें भव में मोक्ष पृाप्त करे। (७) यह उक्त १५ और सोलहवां संज्वलन का क्रोध इन १७ पृकृतियों का क्षयोपशमादि कर अप्रमत संयती गुनस्थानी बने. यह मद, विषय, कषाय, निन्दा और विकथा इन पांचों प्रमादों × रहित शुद्ध संयम का पालक जघन्य उस ही भव में उत्कृष्ट तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करे. (८) यह जीव उक्त १६ और संज्वलन का मान इन १७ प्रकृतियों का क्षयोपशम कर नियट्टी बादर गुणस्थानी बने. यहां अपूर्व करण ‡ करे जो प्रकृति का उपशम करे तो उपशम श्रेणी प्र-

× गाथा—सुय केवली आहारग, उजुमइ उवसंतगा विऊ पमाए।
हिंडंति भवमणंतं, तं णतर मेव चउ गइया॥ १॥
अर्थ—श्रुत केवली आहारक शरीरी ऋजुमति-मनःपर्यवज्ञानी उपशान्तमोही, ऐसे उत्तम पुरुषों भी प्रमादाचरण कर चारों गति में अनन्त संसार परिभ्रमण करते हैं।

‡ पहिले जिन कर्म प्रकृतियों का कभी क्षय नहीं किया था उनका क्षय यहां होनेसे यह 'अपूर्व करण' गुन स्थान भी कहलाता है।

तिपन्न हो एकादशम गुणस्थान तक जा कर प्रतिपाती बने और जो प्रकृतियों का क्षय करे तो क्षपक श्रेणी प्रतिपन्न हो नवमें दशवें से बारहवें गुणस्थान हो तेरहवें जावे, केवलज्ञानी बने, यह भी जघन्य उस ही भव में उत्कृष्ट तीसरे भव में मोक्ष जावे। (९) यह जीव उक्त १७ और संज्वलन की माया तथा ३ वेद यों २१ प्रकृतियों का क्षय कर अनियट्ठ बादर गुणस्थानी बने। यह अवेदी शरल स्वभावी जघन्य उस ही भव में उत्कृष्ट तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करे * (१०) यह जीव उक्त २१ और हांस रति, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा यह ६ यों २७ प्रकृतियों का क्षय करे किन्तु किंचित संज्वलन का लोभोदय रहने से सूक्ष्म सम्परायी गुनस्थानी बने यह अव्यामोह अविभ्रम शान्ति स्वरूप जघन्य उस ही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं. (११) यह जीव जो २७ तो उक्त और सज्वलन का लोभ. इन २८ प्रकृतियों का भस्मी आच्छादित अग्नि की तरह उपशमावे वह उपशान्त मोह गुनस्थानी बने. यह यथाख्यात चारित्री बने। यहां जो आयुपूर्ण हो तो अनुत्तर विमान में जावे वहां से मनुष्य जन्म प्राप्त कर मोक्ष जावे और जिस प्रकार वायु से भस्मी उडते अग्नि प्रगट होती है तैसे ही उपशमित संज्वलन लोभोदय हो तो पीछा पड कर दशवें नवमें हो आठवें आवे और सम्हल कर जो पीछी क्षपक श्रेणी करे तो उसही भव में मोक्ष जावे जो नहीं सम्हले तो चौथे आकर सम्यक्त्वी बना रहे तो तीसरे भव तक मोक्ष प्राप्त करे और जो कर्म संयोग से प्रथम गुणस्थान आ जाय तो भी आध पुद्गल परावर्तन के अन्दर ही संसार भ्रमण का अन्त करे. (१२) यह जीव जो उक्त २८ ही प्रकृतियों को पानी से शान्त की अग्नि के समान क्षय करे तो 'क्षीण मोह' गुणस्थानी बने. तब २१ गुनों का

* प्रश्न—अष्टम नियट्टी बादर और नवम अनियट्टी बादर गुण स्थान क्यों कहा? उत्तर—चारित्र मोहनी की अपेक्षा से दर्शन मोहनी बादर (बड़ी) है इसकी निवृत्ती अष्टम गुनस्थान में होती है और किंचित मोहनी की प्रकृती सत्ता में रही इस लिये नवमा अनियट्टी बादर गुणस्थान कहा है यह दोनों ही नाम अपेक्षा वचन हैं।

प्रकाश होवे, यथा—१ क्षपक श्रेणि, २ क्षायिक भाव, ३ क्षायिक-सम्यक्त्व ४ क्षायिक-यथा ख्यात चारित्र, ५ करण सत्य, ६ भाव सत्य, ७ जोग सत्य ८ अमायी, ९ अकषायी, १० वीतरागी, ११ भावनिर्ग्रन्थ, १२ सम्पूर्ण सम्बुड, १३ सम्पूर्ण भावितात्मा, १४ महातपस्वी, १५ महासुशील, १६ अमोही, १७ अविकारी १८ महाज्ञानी, १९ महाध्यानी, २० वृद्धमान परिणामी और २१ अप्रतीघाती हो कर अन्तर मुहूर्त में ५ प्रकार के ज्ञाना वर्णिय, ९ प्रकार के दर्शना वर्णिय और ५ प्रकार के अन्तराय यों तीनों कर्मों की १९ प्रकृतियों का साथ ही क्षय करे कि तत्काल (१३) वह जीव केवल ज्ञान केवल दर्शन सम्पन्न होवे। यह सयोगी, सशरीरी, सलेशी, शुक्ल लेशी, यथाख्यात—चारित्री. क्षायिकत्वी पण्डित वीर्यवन्त शुक्ल ध्यान युक्त जघन्य अन्तर मुहूर्त उत्कृष्ट देशऊन (९ वर्ष कम) रहे फिर (१४) यह जीव-शुक्ल ध्यान के चतुर्थ पाये के ध्याता समुछिन्न क्रिया अनन्तर अप्रति पाती, अनिवृती ध्याता हो मन वचन और काया इन योगों का क्रमसे निग्रह कर श्वासोश्वास का निरूंधन करे अयोगी केवली बने रूपातीत (सिद्ध-स्वरूप) के ध्याता सुदर्शनमेरू समान निश्चल—स्थिर बने हुये—शेष रहे वेदनीय आयुष्य नाम और गोत्र इन चारों कर्मों का क्षय कर शेष औदारिक तेजस और कार्मन इन तीनों शरीरों को छोड़कर एरंड बीज के डोडे के बंध से छूटा हो जैसे उछलता है तैसे बंधन मुक्त बना अग्नि ज्वाला के समान उर्द्ध गमन के स्वभाव से समश्रेणी ऋजुगति आत्म प्रदेश के जितने ही आकाशादि के प्रदेश के सिवाय अन्य आकाश प्रदेश का अवलम्बन नहीं करता विग्रहगति रहित एक समयमात्र में मोक्षात्मा मोक्ष स्थान को प्राप्त कर अनंत अक्षय अव्याबाध अनुपम सुख भोक्ता बने यह आगम प्रमान।

उक्त प्रकार ९ तत्वों के स्वरूप को ७ नय, ४ निक्षेपों, ४ प्रमानों से जाने. यह सूत्र धर्म का स्वरूप आवश्यकीय सिन्धु समान ज्ञान में से बिन्दु समान कथन किया है किन्तु श्रुत ज्ञान में तो द्वादशांगीकादि सब ज्ञान

का समावेश हो जाता है, ऐसा अपरम्पार है. उसमें से यथा शक्ति प्राप्त कर लेना यही मुमुक्षुओं का कर्तव्य है. कहा है कि—

श्लोक—अनन्त शास्त्र बहुलाश्च विद्या अल्पश्च कालो बहु विघ्नता च ।
यत्सार भूतं तदुपास नीयम्, हंसैर्यथा क्षीर मवाम्बु मध्यात ॥१॥

अर्थ—शास्त्रिक ज्ञान तो अनन्त है तैसे ही विद्या भी बहुत हैं किन्तु आयुष्य थोड़ा है और उसमें भी बहुत विघ्न प्राप्त होते हैं. इसलिये जिस प्रकार हंस पक्षी पानी का त्याग कर दुग्ध का ही ग्रहण करता है वैसी ही मुमुक्षुजन सर्व शास्त्र ग्रन्थों में से तत्व रूप सार २ ग्रहण कर लेते हैं. क्यों कि—

श्लोक—अनेक संशयोच्छेदी, परोक्षा अर्थस्य दर्शकं ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य ना स्त्यन्ध एवसः ॥

अर्थ—शास्त्रों का ज्ञान है सो अनेक शङ्काओं का उच्छेद कर परोक्षार्थ का दर्शक सब जीवों के नेत्र तुल्य है, शास्त्र ज्ञान रूप नेत्र जिसके नहीं है वह अंध के समान ही है ।

गाथा—जिण वयण अणुरत्ता, जिण वयण जे करंती भावेणं ।
अमला असं किलिठा, ते हुंति परित संसारी ॥ उत्तरा० अ० ३६॥

अर्थ—जो क्लिष्ट परिणाम रहित निर्मल परिणामी बनकर जिनेश्वर प्रणीत शास्त्र के वचनों में लीन बन जिन वचन की आराधना करता है वह परित संसारी होता है अर्थात् स्वल्प काल में संसार का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करता है ।

—:*:—

परम पुज्य श्री कहान जी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी
पण्डित श्री अमोलक ऋषि जी महाराज विरचित "जैन तत्व प्रकाश"
ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड का द्वितीय 'श्रुत धर्म' प्रकरण समाप्तम्।

प्रकरण तीसरा–मिथ्यात्व।

गाथा–वुझज्जति उट्टिज्जा, बंधणं परियाणिया ।
किं माह बंधणं वीरे किं वा जाणति उट्टइ ॥

सुयगडांग १ श्रुतस्कन्ध अध्याय १

श्री तीर्थंकरों केवल ज्ञानियों और सामान्य साधु आदि वीर महा पुरुषों के उपदेश से मिथ्यात्वादि कर्म बन्धन के कारण और भविष्य में उस का परिणाम (फल) क्या होता है तथा उन कर्म बन्धन का किस किस क्रियानुष्ठानादि के समाचरने से निकन्दन (नाश) होता है मुमुक्षुओं को इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की परमावश्यकता है. क्यों कि जो बन्ध और मुक्ति के कर्तव्य कर्म का ज्ञाता होगा वही बन्धन के कारण से अपनी आत्मा को बचा कर पूर्वोपार्जित कर्म बन्ध का निकन्दन कर मोक्ष के अखण्डित सुख को प्राप्त कर सकेगा।

अब प्रथम कर्मबन्ध से आत्मा को बचाने के लिये कर्मबन्ध का जो मुख्य कारण मिथ्यात्व है उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं:–योग शास्त्र में कहा है कि, "अनित्याशुचि दुःखात्मा ख्यानात्माख्यातिर्विद्या" अर्थात् अनित्य को नित्य अशुद्ध को शुद्ध दुःख को सुख और आत्मा को अनात्मा मानना वही अविद्या (मिथ्यात्व) है। मिथ्यात्व ३ प्रकार का होता है, यथा–१ अभव्यादि कितनेक प्राणी × जिन के मिथ्यात्व का न तो आदि है और न कदापि अन्त होता है उस मिथ्यात्व को "अणाइया अपजवसिया" कहते हैं। २ संसारी जीवों अनादि मिथ्यात्वी होने से कितनेक भव्य जीवों के मिथ्यात्व की आदि तो नहीं है किन्तु वे सम्यक्त्व प्राप्त करने योग्य होने से सम्यक्त्वी बन मिथ्यात्व का अन्त करते हैं इस लिये उस मिथ्यात्व को 'अणाइया सपज्जवसिया" कहते हैं और ३ जो

× अनन्त भव्य जीवों ऐसे हैं कि जो एकेन्द्रिय की पर्याय को छोड़ बेन्द्रिय भी नहीं हुवे और न कदापि होंगे

सम्यक्त्व प्राप्त कर प्रतीपाती हो पुनः मिथ्यात्वी बन जाते हैं उन का मिथ्यात्व आदि और अन्त सहित होने से "साइया सपज्जवसिया" और विशेष में मिथ्यात्व के २५ प्रकार किये हैं—यथा:—

१ "अभिग्रह मिथ्यात्व'—यह अपने माने मत का हटाग्रही होने से 'मेरा सो सच्चा और सब झूठे' ऐसा मान कर सत्यासत्य का निर्णय नहीं करता है. कि बहु—मेरी श्रद्धा में घोटाला हो जाय ऐसे भय से सद्गुरू सङ्ग जिनवाणी श्रवणादि सद्गुण प्राप्ति के उपायों से भी बाचित रहता है. कदापि कोई सन्मार्ग उसे समझावे तो कहता है कि—कुल परम्परा से चला आता हमारे पिता महा पिता का आचरित धर्म को त्याग कर नवे को स्वीकार करना हम अनुचित समझते हैं और बड़े विद्वन, श्रीमान धीमान लोग हमारे मतानुयायी हैं वे सब ही क्या मूर्ख हैं ? ऐसे मिथ्याभिमानी कुमताचारी लोगों को जरा दीर्घ दृष्टि से विचार करना चाहिये कि यदि किसी के पिता महा पिता ने रंडीबाजी शराबखोरी की हो तो क्या उसके पुत्र पोत्र को वैसा करना कोई उचित समझेंगे. यदि किसी का पिता महापिता अन्धा, लंगड़ा दरिद्र हो तो क्या उस के पुत्र पौत्रों भी अङ्ग भङ्ग कर द्रव्य को फैंक वैसे बनेंगे क्या ? किन्तु इस के जबाव में सब नाहीं कहेंगे तो फिर क्या पिता महापिता सद्धर्म के स्वीकार करने में ही आडे आते हैं. प्यारे बन्धुओ ! पिता महापिता के कुकृत्यों को छोड कर सन्मार्ग सदाचार को स्वीकार करना यही सुपुत्रों का कर्तव्य है. और जो श्रीमान धीमान लोगों के उदाहरण से अपने माननीय मत की सत्यता का परिचय देते हैं उन को भी देखना चाहिये कि बड़े २ श्रीमान धीमानों जानते मानते और देखते हुये भी मदिरा पान कर क्या पागल नहीं बनते हैं ? व्यभिचाराचरन नहीं करते हैं अपितु ऐसे अनेक कुमार्गों में प्रवृतक दृष्टिगोचर होते हैं ! भाइयो ! मोहनीय कर्म की सत्ता बड़ी जबर है. जैसे मदिरा पान करने से मनुष्य बेशुद्ध हो जाता है तैसे ही मिथ्यामोहोदय से बेशुद्ध हो तत्त्व में अ-

तत्त्व बुद्धि धारन करता है. दूसरे जीव की प्रीति पाप से अनादि से है, जिस से बिना सुनी देखी और बिना पढाई बातें स्मरन हो जाती हैं. देखिये। रुदन करना, माता के स्तन पान करना, बड़े हुए बाद स्त्री संगादि करना व्योपार में दगा वगैरा करना. इत्यादि कुकर्मों आपसे ही करने लगता है। यह काम अनादि से करता आया है. ऐसा समझ पिता महा पिता तथा श्रीमानादि के सम्मुख देखने की कुछ आवश्यकता नहीं किन्तु अपना हिता-हित का विचार कर उन्मार्ग को त्याग सन्मार्ग को स्वीकारना ही उचित है।

२ 'अनाभिग्रह मिथ्यात्व'—यह उक्त प्रकार हटाग्रही तो नहीं है किन्तु अज्ञानोदय से मूढ बना हुआ. जैसे कुडछी षट रस भोजनों में फिरती हुई भी जड़ता से किसी भी रसके स्वाद का निर्णय नहीं कर सकती है तैसे यह भी सब मतमतान्तरों में रमण करता हुआ धर्माधर्म सत्यासत्य का निर्णय नहीं कर सकता है सबही कों सामान (एकसे) समझता है. कहता है कि—सब मतमतान्तरों में बड़े २ महात्मा विद्वान् धर्मोपदेशक रहे हुये हैं क्या वे झूठे हैं? अपनी कितनीक बुद्धी है सो अपन किसी को बुरा कहें, अपन को इस झगडे में पडने की क्या आवश्यकता है. अपने भाव तो सब सच्चे हैं. हम तो सब को मानते पूजते नमस्कार करते हैं. किसी को भी बुरा नहीं मनाते हैं. इससे ही हमारा उद्धार हो जायगा!

छप्य—सब देव नित्य नमे सबी को गुरु कर माने।
सब शास्त्र नित्य सुने धर्म अधर्म नहीं जाने॥
सब व्रत नित्य करे सबी तीर्थ फिर आवे।
गुन अवगुन नहीं जाने सबीके गुन मुख गावे॥
इम विधी चाल चले, कहो पार कैसे लहे।
असल पुत्र वेश्यातना कहो बाप किसको कहे॥

अर्थात्—जैसे वेश्या का पुत्र पिता का नाम नहीं कह सकता है तैसे यह भी एक देव गुरू का नाम नहीं बता सकता है. इसकी गति तो असे

भ्रष्ट ततो भ्रष्ट के समान हो बीच में ही डूब मरने जैसी होती है ? एसे भोले को जरा विचार करना चाहिये कि जो सब ही मत एक से होते तो फिर मतमतान्तर होता ही नहीं. और अपना २ पक्ष तानते ही नहीं. इस विचार से यह तो सिद्ध होगा कि सब में कुछ ना कुछ भेदान्तर तो जरूर ही है. और इस लिये सब सच्चे नहीं हो सकते हैं किन्तु सब में का एक सच्चा है. वह एक सच्चा कौनसा है ? यह प्रश्न यहां स्वभाविक ही उपस्थित होता है. इसका उत्तर शास्त्रआधार से और स्वानुभव से निरापक्ष न्याय और दीर्घ दृष्टी से विचारते सहज ही प्राप्त होगा कि:—

श्लोक—यथात्मानः प्रियेः प्राण, तथा तस्यापि देहिनः ॥
इति मत्वा न कर्तव्यो, घोर प्राणी वधो बुधे ॥

अर्थात्—जैसे अपने प्राण अपने को प्यारे हैं तैसे सब ही जीवों को आप २ के प्राण प्यारे हैं, हे बुद्धीमानों ? प्राणी का वध घोर पातक का कारन जान कदापि नहीं करना चाहिये ? यह कथन सर्व मान्य है. किन्तु इसका सर्वांश पालन जिस मत में होता हो उसही मत को सत्य मानना. अर्थात् "अहिंसा परमो धर्मः" का जो पालन करते हैं कदापि किञ्चित मात्र छही जीव काय की हिंसा नहीं करते हैं वेही सच्चे धर्मात्मा और उनका प्रवृत धर्म वही सच्चा धर्म और सब कल्पित मत जानना.

प्रश्न—फक्त अहिंसा (दया) में ही धर्म कहा तो फिर सत्य शील सन्तोषादि गुनों में क्या है ?

उत्तर—हे भव्य ! एक दया भगवती में ही सर्व गुणों का समावेश हो जाता है, शास्त्र में दया के मुख्य दो प्रकार कहे हैं, यथा—१ स्वदया और २ परदया. इसमें स्वदया सो अपने आत्मा की दया. इसका अर्थ यह नहीं समझना कि भोगोपभोग के पदार्थों से आत्मा को पोषन कर पुद्गलानन्द में गर्क होना. क्यों कि शास्त्र का कथन है कि "खिणमेतसुक्खा, बहु काल दुक्खा, खाणी अनत्थाण हु काम भोगा. अर्थात्—पांचों इन्द्रियों

को पोषन रूप जो काम भोग है वे अपथ्य आहार के समान क्षिणमात्र सुख के दाता हो इस भव में और भविष्य में नर्क तिर्यंचादि की गति में अनन्त दुःख के दाता हो जाते हैं. इस लिये निश्चय से काम भोग अनर्थ की खान हैं। स्वात्मदया तो उसेही कहते हैं कि हिंसा झूठ चोरी मैथुन ममत्वादि अठाराही पाप के सेवन से दोनों भव में आत्मा महादुख की भोक्ता बनती है। ऐसा ज्ञान दृष्टी से विचार कर पापाचरन से आत्मा को अलग रखे. इस प्रकार स्वात्म के दयालु जन उक्त सब गुनों के धारक होते हैं और २ पृथव्यादि छे हीं जीव काय का रक्षण करना सो पर दया. स्वात्मा की दया करने वाले परात्मा के रक्षक अवश्यही होते हैं इस लिये स्वदया में पर दयाकी नीमा है और पर दया के पालक स्वात्मा के दयालु हों भी और न भी हों इसलिये परात्मा की दया में स्वात्म दया की भजना है. इस प्रकार दया में सब गुनोंका समावेश हो जाता है.* इसलिये दया धर्मी सब गुनों का धारक अवश्यही होता है.

प्रश्न—इस जगत में सब जीवों की दया पालन वाला कोई भी दृष्टीगत नहीं होता है ?

उत्तर—नहीं, नहीं ऐसा कदापि नहीं समझना. इस वक्त भी अनेक साधुमहात्मा पंच महाव्रतों के पालक दृष्टीगत होते हैं, वे स्वात्मा परात्म की पूरी तोर से दया पालते हैं.

प्रश्न—क्या साधु जी के आहार विहारादि कृतव्य करते हिंसा नहीं होती है ?

उत्तर—यद्यपि आहार विहारादि कृतव्यों में अना उपयोग से किंचित हिंसा होती है तथापि उस किंचित हिंसा से कर्म बन्ध नहीं होता है.

* नोट—एकः अहिंसा परमो धर्मः, शेषास्तु गुन विस्तरा।
तस्यास्तु परिरक्षार्थं, पादपस्य यथावृति ॥ १ ॥

अर्थात्--जैसे वृक्ष की रक्षार्थ बाड होती है तैसे ही अहिंसा रूप परम धर्म के रक्षार्थ सत्यादि सब गुन है।

शास्त्र में कहा है कि—

गाथा—जयं चरे जयं चिट्ठे, जयं आसे जयं सए ॥
जयं भुजन्तो भासंतो, पावं कम्मंन वन्धइ ॥

अर्थात्—इर्या समिती पूर्वक यत्ना से चलते हुए, यत्ना से खड़े रहते यत्ना से बैठते, यत्ना से शयन करते, एषणा समिती युक्त यत्ना से भोजन पान करते और भाषा समिती युक्त ढके मुंह से यत्ना से बोलते हुये कर्म बन्ध नहीं × होता है इस प्रकार प्रवृति करते भी जो किञ्चित दोष लगता है उसका पश्चातापादि प्रायःश्चितद्वारा उस पाप से आत्मा को विशुद्ध कर लेते हैं.

प्रश्न—ठीक, साधुजी तो सब की दया पाल सकते हैं किन्तु ग्रहस्थ से यह कैसे बन आवे ?

उत्तर—हे भव्य तुम्हारा कहना सत्य है। यद्यपि गृहस्थ से सम्पूर्ण तया दया पलना मुश्किल है तथापि बन आवे उतनी तो अवश्य पालन करना और जो न बन आवे उस हिंसा को खराब समझना, उस का पश्चात्ताप करना, प्रति दिन कमी करते जाना सर्वथा त्यागने की अभिलाषा करना ओर मौका देख सर्वथा त्याग कर उत्कृष्ट श्रावक का पद या साधु का पद स्वीकार करना, श्रद्धा प्ररूपना तो शुद्ध रखना और यथा उचित स्पर्शना भी करना ऐसे सुज्ञ बन पाखण्ड मतों का त्याग कर अनाभिग्रह मिथ्यात्व छोड़ना।

२ 'अभीनिवेशिक मिथ्यात्व'—कितनेक मिथ्या मतावलम्बी मनुष्य सत्शास्त्रादि के पठन श्रवण से अपने माननीय मत को तो मिथ्या समझ जाते हैं तथापि मान के मरोड़े हुये न तो भेष पलटते हैं और न हटाग्रह का त्याग करते हैं * हम इस मत में अग्रेसर हैं बहुतों के माननीय

× यत्ना पूर्वक भी चलनादि क्रिया करने में योग की प्रवृत्ती होने से क्रियन्तों को पाप कर्म लगता तो है किन्तु बन्ध नहीं पड़ता है यह सर्वज्ञ के वचन का अलौकिक रहस्य बड़ा ही चमत्कारिक है।

* नोट—श्लोक अज्ञःसुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं नरं रञ्जयति ॥१॥ भृर्तृहरिशतक ॥

अर्थ—सर्व अज्ञानी को समझाना सहज है। पूर्ण ज्ञानी को तो बहुत ही सहज है परन्तु लेश ज्ञान से पंडित बनने वाले को समझाना बहुत ही मुश्किल है।

पूजनीय हैं, हमारा मतलब सहज से साध सकते हैं, इसे छोड़ने से यह हमारा मजा नष्ट हो जायगा इत्यादि विचार से उस ही में रचे पचे रहते हैं, उन को कोई गीतार्थ समझावे तो वे उत्सूत्र की प्ररूपना कर अनेक कुहेतु-दृष्टांतों से कुमत को सच्चा बताने की खप (कोशिश) करते हैं, एक जिन वचन का उत्थापन करते हुए उससे मिलते अनेक जिन वचनों के लोपक गोपक बनते हैं। अपने माननीय मत को नुकसान पहुंचाने वाले सत्शास्त्रार्थ को पलट कर उलटा परिणमाते हैं कपोल कल्पित अनेक ग्रन्थों ढालों, सज्झायों, चारित्रों को रच कर भोले जीवों को भ्रम में फंसाते हैं. सुसाधु की सङ्गति से दया दानादि धर्माचरण से उन्हें वंचित रखते हैं, प्रश्न का उत्तर नहीं आने से तत्क्षण क्रोधित बन कर उस पृच्छक का तिरस्कार करते हैं ऐसे निन्हवी अनन्त संसार की वृद्धि करते हुए फूटी नौका के समान अपने साथ अपने अनुयायियों को भी पाताल में ले बैठते हैं ! किन्तु जो आत्म हितेच्छु बनते हैं वे तो 'सच्चा सो मेरा' इस न्याय के पक्षी बने हुए माळूम होते ही तत्काल कुमत को त्याग कर सद्धर्म को स्वीकार करते हैं, कुमतावलम्बियों की सङ्गत से उन के उपदेश श्रवन से अपनी आत्मा को अलग रखते हैं।

४ 'संशयिक मिथ्या तत्व'—कितनेक जैन मतावलम्बियों जिन प्रणित गणधर रचित शास्त्रों को श्रवन पठन कर अपनी कम बुद्धि से शास्त्र का गहन अर्थ समझ में नहीं आने से तथा अन्य मतावलम्बियों के शास्त्र से विरुद्ध देख चित्त को डावाँडोल कर उन जिन वचनों को झूठे जानते हैं। वे भोले इतना भी विचार नहीं करते हैं कि वीतराग भगवान को क्या अपना मत बढ़ाने का अभिमान था या मत पक्ष था जो मिथ्या प्ररूपना कर लोगों को भ्रम में फसावें ? भाइयों ! निश्चयात्मिक बनो कि—वीतराग सर्वज्ञ सब जीवों के एकान्त हितेच्छु निरापक्षी कदापि असत्य प्ररूपना नहीं करते हैं जो जो भाव भगवान ने प्रकाश

है वे सब तहमेव सत्य हैं किंचितमात्र भी मिथ्या नहीं हैं किन्तु जिस प्रकार समुद्र का पानी लोटे में नहीं समा सकता तैसे अपनी अल्पज्ञता में अनन्त ज्ञानी के सम्पूर्ण रहस्य का समावेश किस प्रकार हो सके ? द्वादशांग के पाठी भी जिन वचनों का सम्पूर्ण आशय ग्रहण नहीं कर सकते हैं। तो अपना तो कहना ही क्या ? आत्महितेच्छुयों का कृतव्य है कि जो २ कथन अपने समझ में न आवे उनका खुलासा विशेषज्ञ गीतार्थ के पास से करें. इतने पर भी अपने ग्राहाज में न आवे तो अपनी बुद्धी की खामी समझे. किन्तु वीतराग के बचनों को झूठे न जाने.

५ अनाभोगमिथ्यात्व--यह अनभिज्ञता से अज्ञानता से और भोलपता से एकेन्द्रिय बेन्द्रिय तेन्द्रिय चैरिन्द्रिय असज्ञी पचेन्द्रिय इन सब के होता ही है और बहुत से सज्ञी पचेन्द्रिय को भी लगता है.

६ जैन सिवाय अन्यमत को माने सो लोकिक मिथ्यात्व इसके ३ प्रकार—१ देवगत २ गुरूगत और ३ धर्मगत. ×

(१) जिनमें शास्त्र कथित ज्ञानादि देव के गुन नहीं पावें ऐसे देव नामधारी को देव कर माने सो देव गति मिथ्यात्व, जैसे कितनेक मनुष्यों चित्र के, वस्त्र के, कागज, पत्थर, मृतिका, काष्ट इत्यादि की मूर्ति बना कर उसे देव मानते हैं. वे जड़-अचेतन्य होने से तथा स्थावर काय होने से उनमें ज्ञानादि गुनके न होने से वे देव किसी भी प्रकार से नहीं होसक्ते हैं. और भी विचारिये कि जिन के पास स्त्री है वे काम शत्रु से पराभव पाये हुये विषय लुब्ध हैं, जिनके पास शस्त्र हैं वे शत्रु हत्या के इच्छुक घातक हैं, वादिंत्र रखने वाले अपने तथा दूसरे के उदास मनको वादिंत्र

× श्लोक-अदेव देव बुद्धिर्या, कुधर्मार गुरोचया।
अधर्मे धर्म बुद्धिश्च मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात ॥१॥

अर्थात्—अदेव को देव, कुगुरु को गुरु और अधर्म को धर्म मानने की जो कुप्रथा है वही मिथ्यात्व है।

के सहाय से खुश करना चाहते हैं, माला रखने वाले अपूर्ण ज्ञानी हैं। क्योंकि गिनती स्मरण नहीं रहने से माला रक्खी है, जिनके पास अन्य देवों की मूर्ती हैं वे निर्बल हैं क्योंकि कि वे अन्य की सहायता चाहते हैं, जो स्नान करते हैं वे मलीन हैं, मांस भक्षी अनार्य हैं. अन्न फलादि सचित्त वस्तु के भोगी अव्रती हैं, फूल अत्रादि सूंघने वाले अतृप्त हैं, पूजा के इच्छुक असमर्थ हैं, रुष्ट हुये दुःख और तुष्ट हुये सुख के दाता रागी द्वेषी हैं, प्रतिष्ठा चाहने वाले अभिमानी हैं, ऐसे २ जगत् निन्द्य दुर्गुण जिन में हों उनको देव किस प्रकार माने जावें ? अर्थात् वह देव नहीं हैं. और भी कितनेक कहते हैं कि—ब्रह्म से माया और माया से सत्व, रज, तम, यह तीन गुन और सत्व गुन से ब्रह्मा रजो गुन से विष्णु और तमोगुन से महेश यह तीन देव उत्पन्न हुए. अब जरा विचार करना चाहिये कि- ब्रह्म चैतन्य से जड माया कैसे उत्पन्न हो सकती है. अर्थात् कदापि नहीं होती है, और जैसे मृतिका से घट बनता है किन्तु घट से मृतिका नहीं बनती है तैसेही गुनी से तो गुन उत्पन्न होते हैं किन्तु गुन से गुनी कदापि नहीं होता है. इसलिये तीन गुन से तीन गुनी ब्रह्मादि की उत्पत्ती बताते हैं यह भी कथन मिथ्या है. और इसही लिये ब्रह्मा विष्णु महेश यह देव हैं या मनुष्य हैं या किसी वस्तु का नाम है यह कथन इनको देव मानने वालों के शास्त्र से सिद्ध नहीं होता है। और भी २४ अवतारों को कितनेक ब्रह्म का पूर्ण अवतार मानते हैं कितनेक अंश अवतार मानते हैं. यह भी कथन उनके ही शास्त्र से सत्य सिद्ध नहीं होता है क्यों कि— जो पूर्ण अवतार हों तो सब ब्रह्म उनही में व्याप्त होने से अन्य स्थान ब्रह्म का अभाव हुआ. सब जगत सून्य हुआ तब विश्व व्यापी ब्रह्म कहना मिथ्या ठहरा और अंश अवतार हों तो सब जगत् व्यापी ब्रह्म है फिर उनमें अन्य जीवों मे क्या विशेष रहा ? तथा ब्रह्म खण्डित हुआ. इत्यादि लौकिक शास्त्रों में देव विषय कितनेक कल्पित कथन किये गये हैं. जिन्हें अपनी प्राप्त हुई

द्वारा और शास्त्र के न्याय से विचार कर भ्रम में नही फंसना चाहिये. जो नामधारी देव नृत्य गायनादि कुतुहल से खुशी होते हैं, जो छल-कपट दगा बाजी करते हैं, जो पर स्त्री गमन, पुत्री गमन से भी बचे नहीं हैं, जो जुवा खेल, मांस भक्षन, मदिरा पान, वैश्या गमन, शिकार खेलना, चोरी और जारी से भी बचे नहीं, जिनके देवालयों में पुष्प फल पत्रादि स्थावर जीवों की और बकरे मुरगे भैंसे और मनुष्यादि अनाथ प्राणीयों की हत्या होती है. मांस का ढेर लगता है, रक्त का नाला बहता है, इत्यादि अनेक महा अनर्थ (जुल्म) होते हैं. ऐसों को क्या कोई बुद्धिमान सुज्ञ देव मानेगा क्या ? अर्थात् सुज्ञ तो कदापि नहीं मानेगा. कितनेक भोले जैनी लोग भी नरेन्द्र सुरेन्द्र के परम पूज्य अरहन्त देव के उपासक होकर भी मिथ्या भ्रम से बहक कर धन-स्त्री-पुत्र-आरोग्यतादि की प्राप्ती के लिये उक्त प्रकार के नाम धारी हत्यारे देवों के देव स्थानों में जाते हैं षाष्टांग नमस्कार पूजनादि करते हैं रक्त मांस के स्थान अनेक प्रकार के भोजन बनाकर भोग लगाते हैं आप भी खाते हैं. इस प्रकार सम्यक्त्व से भ्रष्ट बनते हैं. वे भोले जरा विचार भी नहीं करते हैं कि जो देव की मानता से ही पुत्र होता हो तो फिर स्त्री को पति सम्बन्ध की क्या जरूरत है. विधवा वांझ वाली सबही पुत्रवती क्यों नहीं बन जाती और भी जो देवता में इच्छा पूर्ण करने की शक्ति है तो वे तुम्हारी आशा क्यों करते हैं, तुम्हारे से भेट पूजा क्यों चाहते हैं, वे अपनी ही इच्छा प्रथम पूर्ण क्यों नहीं कर लेते हैं. जो तुम्हारे से प्राप्त हुई वस्तु से तृप्त होते हैं वे तुम्हें क्या देवेंगे ! ऐसा जान इस लौकिक देवगति मिथ्यात्व को त्याग देना उचित है ।

(२) जिन में शास्त्र कथित गुरू के गुन नहीं होवे ऐसे नामधारी या भेषधारी कुगुरू को गुरू कर मानना सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व. जैसे बावा जोगी सन्यासी फकीर अवधूत औलिया वगैरा अनेक प्रकार के नाम धारी साधु इस संसार में देखे जाते हैं. जो पृथव्यादि षट्काय जीवों

की हिंसा करते हैं. झूठ बोलते हैं. चोरी करते हैं. स्त्री आदि का सेवन करते हैं, रुपया पैसा धातु आदि धन धारन करते हैं रात्री भोजन करते हैं. कन्द मूल फल पुष्प पत्र मांस मदिरादि का भक्षन करते हैं, गांजा भाग चडस तम्बाखु बीडी चिलम पीते हैं, छापा तिलक अतर तेल माला वस्त्र भूषणादि से शरीर का श्रृंगार करते हैं, रंग बिरंग वस्त्र धारन करते हैं, जटा बढाना भभूत रमाना नग्न रहना इत्यादि अनेक प्रकार के रूप धारन कर पाखण्ड ‡ रचकर उदर पूरण करते हैं जिन में ज्ञान दर्शन चारित्र दया क्षमादि गुन नहीं पाते हैं उनको गुरू कर मानना § सो लोकीक गुरू गत मिथ्यात्व जैन शास्त्र में ३६३ प्रकार के पाखण्डमत निम्नोक्त कहे हैं:—

"३६३ पाखण्डमत"

एकान्तवाद (मत) के स्थापक पंच प्रकार के हैं, यथा—१ काल वादी, २ स्वभाव वादी, ३ नियत (स्वभाव) वादी, ४ कर्म वादी और ५ उद्यम वादी.

---

‡ श्लोक—धर्मध्वजी सदा लुब्धः छाद्मिको लोकदम्भकः,
बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधन तत्परः ।
शठो मिथ्या विनीतश्च बक व्रत चरो द्विजः ॥१॥

अर्थ—धर्म के नाम से लोगों को ठगने वाला, स्त्री में धन में लुब्ध; दगलबाज, अपने मुख से अपनी प्रसंशा करने वाला हिंसक, अन्य के साथ वैरभाव रखने वाला ईर्षालु अन्य के गुन सहन नहीं करने वाला; अपना पक्ष मिथ्या समझ कर भी उसे नहीं छोड़ने वाला; झूटे सोगन खाने वाला थोड़े फायदे के लिये बहुत नुकसान करने वाला; नीच मनुष्य से या उत्तम से भी अपना स्वार्थ साधने वाला; बगुले के समान ऊपर उज्वल और अन्दर मैला इतने लक्षण जिसमें पावे उसे पाखण्डी कहना ऐसा मनुस्मृती के चौथे अध्याय में लिखा है ।

§ श्लोक—वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च । नियमाश्च तपांसि च ।
नवि प्रदुष्ट भावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥९७॥ मनुस्मृती अध्याय २

अर्थ—दुष्टाचारी और अजीतेन्द्रिय पुरुष का ज्ञान त्याग यमनियम तप और यज्ञ आदि कभी भी सफल नहीं होता है ।

१ कालवादी कहता है कि इस जगत के सब कार्य कालानुसार ही होते हैं, जैसे यथा उचित अवस्था के स्त्री पुरुष का संयोग होने से ही स्त्री गर्भ धारन कर उसका यथोचित काल परि पक्क हुए ही पुत्रादि प्रसवती है और बृधावस्था प्राप्त हुए बाद संयोग होने पर भी गर्भ धारन करना बन्द हो जाता है. वह बच्चा भी यथोचित काल प्राप्त होकर ही. बोलता है चलता है. समझने लगता है, विद्याभ्यास करता है, युवावस्था प्राप्त होते विषयाभिलाषी बनता है और वृद्ध वय प्राप्त होते शरीर शिथिल बन जाता है. बाल श्वेत हो जाते हैं यावत् मृत्यु पाता है. मनुष्यों के समान ही स्थावर प्राणीयों पर भी काल की सत्ता है. जैसे जमीन में डाला हुआ बीज यथोचित्त काल प्राप्त हुये ही अंकुर से वृक्ष पर्याय को प्राप्त होता है. पत्र पुष्प फल रसादि के परिणाम को परिणमता है और काल परीपूर्ण हुये सडन गलन हो नष्ट होजाता है. ऐसे ही सृष्टी के कार्य कर्म भी सब कालानुसार ही होते हैं, जैसे उत्सर्पिणी काल में सब पदार्थों में प्रति समय उन्नती अवसर्पिणी काल में अवन्नती सुखमासुखम आदि छहीं आरों का क्रमसे परिवर्तन, शीत काल में शीतलता, उष्ण काल में उष्णता, वर्षा काल में वर्षाद, जो इनमें न्युनाधिक हो जाय तो रोगादि उपद्रवोत्पत्ती हो जाती है, तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव वासदेव केवल ज्ञानी साधु श्रावक इनकी भी उत्पत्ती और व्यवछेद कालानुसार ही होता है, किंबहुना संसार परिभ्रमण काल समाप्त होने से ही आत्मा मोक्षाधिकारी बनता है, यों सब सृष्टी के पदार्थ कालाधिन होने से सब का कर्ता काल ही है इस लिये सब में बलिष्ट काल को ही मानना चाहिये।

२ स्वभाव वादी कहता है कि- सब कार्य स्वभाव से ही होते हैं, जो काल से ही सब कार्य होते हों तो युवावस्था प्राप्त होते स्त्री के मूच्छादि के बाल क्यों नहीं आते हैं? वन्ध्या के पुत्र क्यों नहीं होता है? तैसे ही हस्ततल में बालोतपत्ती का नहीं होना. जिव्हा में हड्डी का नहीं होना

इत्यादि सब स्वभावाधीन ही देखे जाते हैं. वनस्पति की अलग २ जाति. कटु मिष्टादि अलग २ रसका परिगमना स्वभाव प्रमाने ही होता है, जलचरों का जल में स्थलचरों का स्थल पर खेचरों का आकाश में गमनागमन भी स्वभाव से ही होता हैं. काँटे को तीक्षण, अग्नि को उष्ण, पानी को शीतल, वायुका गमनागमन. सिंह में सहासिक पना, सुसले में भीरुत्वता, हंस में शरलता, वगुले में कपटाई, मयुर के विचित्र रंग की पाँखें, कोकिला का मधुर स्वर कौवे का कठिन स्वर, सर्प के दाढ में विष और मणि में विष हरन का गुन, अफीम कटुक, ईख मधुर, पत्थर जल में डुब जाय और काष्ट तिर जाय, कान से शब्द सुनना, आंखों से रूप देखना नाक से गन्ध ग्रहण करना. जिव्हा से स्वाद ग्रहण करना शरीर से स्पर्श वेदना पैरों से चलना हाथों से वस्तु ग्रहण करना, मनकी चपलता, चन्द्र की शीतलता, सूर्य की उष्णता. नर्क में दुःख, स्वर्ग में सुख, सिद्ध निराकार, भव्य मोक्षगमन, अभव्य अनन्त संसार परिभ्रमन धर्मास्ति का चलनगुन, अधर्मास्ति का स्थिर गुन आकाश में विकाशगुन काल का वर्तमान गुन जीव का उपयोग गुन पुद्गल का मिलन विछडन गुन. इत्यादि वस्तु का कर्त्ता कोई भी नहीं हैं सब स्वभाव से होता है इसलिये सब में वलिष्ट स्वभावही है.

३ नियत यने भवितव्यता वादी कहता है कि सब कार्य होनहार प्रमाने ही होते हैं जैसे वसत ऋतु में आम्र वृक्ष के मोर तो बहुत आते हैं किन्तु फल तो होनहार जितने ही लगते हैं. होनहार को कोई भी नहीं टाल सक्ता है. देखिये—मन्दोदरी और विभीषण ने रावण को बहुत ही समझाया किन्तु किसी का भी कहना माना नहीं और होनहार के योग से अपने चक्र से आपही मृत्यु को प्राप्त हुआ। द्वारिका को बचाने को कृष्णजी ने अनेक प्रयत्न किये तो भी वह जल गई, परशुराम ने फरसे से कई क्षत्रियों का क्षय किया होनहार से सम्भूम चक्रवर्ती से वह भी मारा गया. ऐसे अनेक दृष्टांत उपलब्ध होते हैं जिस से जाना जाता है कि

होनहार अटल है। एक समय एक पारधी ने वृक्षारूढ पक्षी की सिकार करने को ऊपर तो अपने पालित सिकरे (बाज) को छोडा और नीचे से आप धनुष्य तान बान का प्रहार करने लगा. इतने में नजदीक के बिल में से एक सर्प ने निकल कर पारधी के पैर में दंश किया जिस से बान छूटा सो ऊपर सिकरा मर गया और नीचे पारधी भी मर गया व पक्षी बच गया। देखिये ! होनहार कितना जबर होता है. इस लिये सब में बलिष्ट नियत ही है।

४ कर्मवादी कहता है कि—सब कार्य कर्मानुसार ही होते हैं. जैसे पण्डित, मूर्ख, श्रीमान, दरिद्री, सुरूप, कुरूप, आरोग्य, सरोग, क्रोधी, क्षमावन्त इत्यादि प्रकार का जो जगत में द्वैत्तापना देखा जाता है वह सब कर्मों की श्रेष्ठता को ही दर्शाता है। और भी सब मनुष्यों आकृति में तो समान ही दिखाते हैं किन्तु एक वाहन में बैठा चलता हैं अनेक मनुष्यों उस के आगे पीछे दौड़ते हैं। कितनेक मनुष्य अनभाते मनमाने भोग पदार्थ भोगवते हैं कितनेक रूक्ष फीकी रावड़ी भी उदर पूर्ण होसके जितनी प्राप्त नहीं कर सकते हैं इत्यादि विचित्रता भी कर्म सम्बन्ध से देखी जाती है। श्री आदिनाथ भगवान को बारह महीने अन्न जल नहीं मिला. श्री पार्श्वनाथजी को कुमठासुर ने जल वृष्टी कर दुःख दिया, श्री महावीर स्वामीजी के कानों में खीले ठोके गये पैरों पर क्षीर पकाया। गोपालों ने रज्जु प्रहार किया इत्यादि अनेक कष्ट १२॥ वर्ष तक पाये। सागर चक्रवर्ती के ६०००० पुत्र साथ ही हुए और साथ ही मर गये सनत्कुमार चक्रवर्ती ७०० वर्ष कुष्ट रोग से ग्रसित रहे, राम लक्ष्मण ने वनवास का कष्ट उठाया, कृष्णजी के जन्म के वक्त गीत गाने वाला और मृत्यु वक्त रुदन करने वाला कोई न रहा। ऐसे २ अनेक महा पुरुषों ने कर्माधीन हो अनेक कष्ट सहे हैं तो अन्य का कहना ही क्या? नर्क, तिर्यंचादि नीच योनि में दुःख दाता और स्वर्गादि ऊंचे स्थानों में सुख

दाता कर्म के सिवाय और कोई भी नहीं है। किंबहु कर्मों के क्षय हुये बिना मोक्ष प्राप्त भी नहीं होता है इस लिये सब में कर्म बलिष्ट हैं।

☞ इस कर्मवादी के स्थान कितनेक ईश्वरवादी कहते हैं कि जो करता है सो ईश्वर ही करता है ईश्वर की आज्ञा बिना पत्ता भी नहीं हिलता है. इस का कथन सविस्तार आगे किया है।

५ उद्यमवादी कहता है कि सब कार्य उद्यम से ही होते हैं, पुरुष की ७२ कला स्त्री की ६४ कला उद्यम से ही प्राप्त होती हैं. मकान वस्त्र भूषन बरतन भोजन इत्यादि सब उद्यम से ही भोगोपभोग में आते हैं, उद्यम से ही मृतिका से सुवर्ण सीप से मोती, पत्थर से रत्न प्रगट कर सकते हैं उद्यम करने से तोता कुत्ता बंदर आदि पशु पक्षी भी अनेक कला सीख सकते हैं बिल्ली उद्यम करती है तो दुग्ध मलाई खाती है और निरुद्यमी मनुष्य भूखे मरता है। उद्यम से ही हनूमान सीता की खबर लाये, राम लंका को गये, लक्ष्मन ने रावन को मारा, कृष्ण जी द्रोपदी को लाये, केशी स्वामी ने नर्क में जाने जैसे कर्म करने वाले राजा प्रदेशी को स्वर्ग में पहुंचा दिया। किंबहु जो सच्चे मन से उद्यम करे तो स्वल्प काल में सब कर्मों को क्षय कर अजरामर अक्षयनिराबाध सुख प्राप्त कर आत्मा परम सुखी बनता है, इसीलिये सबसे बलिष्ट उद्यम ही है।

उक्त प्रकार से पांचों ही वादीयों अपनी २ परशंसा और अन्य की निन्दा करते हुवे एकान्त पक्ष को खींचते हैं इसलिये ही यह मिथ्यात्वी कहलाते हैं किन्तु जो यह पांचों ही एकत्र (शामिल) हो जावें तो सम्यक् दृष्टी बन जावें। दृष्टांत पांच अन्धों को हस्थि देखने की अभिलाषा होते ही एक हस्थि के प्रत्येक अंग का स्पर्श कर स्वस्थान बैठे तब एक ने कहा हस्ति स्तम्भ जैसा है दूसरे ने कहा हस्ति तो अंगरखे की बांह जैसा है. तीसरा बोला—सूप के जैसा है. चौथा बोला झाड़ू जैसा और पांचवा बोला कि हाथी तो चबूतरे जैसा है, परस्पर एक दूसरे को मिथ्या वादी ठहराते आपसमें झगड़ने लगे

तब एक दृष्टी धारक नर बोला कि-तुम अलग २ होतो पांचों ही झूठे हो और एकत्र हो जाओ तो पांचों ही सच्चे हो, स्थम्भ समान हस्ति का पैर है, अंगरखे की वहां समान सूंड है सूप के समान कान हैं, झाडू समान पूंछ और चवूतरे समान पृष्ट है- यों पांचों ही मिलने से हस्ति होता है- ऐसे ही पांचों समवाय के सम्बन्ध से जगत के सब कार्य होते हैं- जैसे प्रातः सन्ध्यादि क्षुधा लगने का वक्त सो काल, सकर्मक जीव को क्षुधा लगने का स्वभाव सो स्वभाव, धान्य पानी चूले वर्तनादि भोजन सामग्री का सब सम्बन्ध आमिले सो नियत, पुण्यात्मा को मनोज्ञ पापी को अमनोज्ञ भोजन की प्राप्ति हो सो कर्म और भोजन वनाना मुख में रख चावना गट २ उतारना सो उद्यम यों पांचों समवाय जैसे भोजन के सम्बन्ध में कहे ऐसे सर्वस्थान लागू होते हैं।

उक्त पृथक २ पांचों समवाय से ३६३ पाखण्डमतः—

१ जो इस प्रकार मतकी स्थापना करते हैं कि जीव सदैव सक्रिय रहता है, अक्रिय कदापि नहीं होता है, अर्थात् संसारिक जितने जीव हैं उनको अनादि अनन्त पुण्य पाप की क्रिया लगती ही रहती है जिस से वे सदैव संसार में रूपान्तर हो परिभ्रमण करते ही रहते हैं. किन्तु मोक्ष कदापि नहीं होती है, यह एकन्त क्रिया ही में मशगूल बने ज्ञानादि गुन की उत्थापना करते हैं इन को क्रिया वादी कहते हैं, इन के १८० प्रकार हैं—उक्त पांचों समवाय स्वात्मा से और परात्मा से यों ५×२=१०, यह १० शाश्वत और अशाश्वत यों १०×२=२०, इन २० को पूर्वोक्त नव तत्वों से नव गुना करने से २०×९=१८० हुए. इन को विचारना चाहिये कि ज्ञान कर के ही क्रिया का स्वरूप जाना जाता है. अज्ञान की क्रिया शून्य कहलाती ही है. दृष्टांत—एक अन्धा और पंगु दोनों मनुष्यों किसी अग्नि प्रज्वलित वन में आ फसे. अन्धे को भयभीत हुआ भ्रमण करता देख पंगु ने उसे अपनी ओर बुलाया वह पंगु के शब्दानुसार उस के

नजीक आया तब पंगु ने उसे समझाया कि अपन दोनों अलग २ रहेंगे तो जल मरेंगे इस लिये तू मुझे तेरे स्कन्धारूढ कर मेरे कथनानुसार चल जिस से अपन दोनों इस अग्नि से बच कर सुखस्थान प्राप्त करें पंगु के कथनानुसार अन्धे ने किया जिस से दोनों ही सुखी बने । इस ही प्रकार संसार रूप बन में लगी मृत्यु अग्नि से बचने के लिये ज्ञान रूप पंगु क्रिया रूप अन्धे की सहायता से शास्त्रज्ञान कथनानुसार प्रवृत्ति कर मोक्ष रूप सुखस्थान प्राप्त कर सकते हैं ।

२ जो इस प्रकार मत की स्थापना करे कि—संसार के सब पदार्थों चराचर (अस्थिर) हैं तैसे आत्मा भी अस्थिर होने से तथा आकाश वत् सर्व व्यापक और निराकार होने से अनादि अनन्त अक्रिय है अर्थात् आत्मा को पुण्य पाप रूप क्रिया का स्पर्श नहीं होता है. इन्हें अक्रिया वादी तथा नास्तिक मति कहते हैं. इन के ८४ प्रकार हैं——उक्त कथित पंच समवाय और इच्छा से जगतोत्पत्ती यों ६ स्वात्मा आश्रिय और ६ परात्मा आश्रिय यों ६×२=१२ इनको पुण्य पाप विना सात तत्त्वों से गुनन करने से १२×७=८४ हुए. इनको विचारना चाहिये कि—जो पुण्य पाप का फल आत्मा को प्राप्त होता न हो तो संसार में कितनेक तो विना परिश्रम भोजन वस्त्र मकानादि सब प्रकार की सुखसामाग्री को जन्म से ही प्राप्त हुए हैं और कितनेक अहोनिश तन तोड़ महापरिश्रम करने पर भी पेट भर अन्न लज्जा ढके जितने वस्त्र भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं. यों संसार की विचित्रता देखी जाती है इसका कारण पुण्य पाप के फल सिवाय और कोई भी नहीं है.

३ जो इस प्रकार मत की स्थापना करे कि—ज्ञानी जन विवादी होते हैं, प्रतिपक्षी का बुरा चिन्तवते हैं, हर वक्त पापसे डरते ही रहते हैं जिससे हमेशा वक्त पाप लगता ही रहता है. इत्यादि कारनों से ज्ञान बड़ा बुरा है. अज्ञानी जन ही अच्छे हैं. कि जो न जानते हैं और न तानते हैं किसी के झगड़े

में नहीं पडते हैं जिससे उनको किसी भी तरह का पाप ही नहीं लगता है. इन्हें अज्ञान वादी कहते हैं इनके ६७ प्रकार हैं—यह विकल्प करते हैं कि—१ जीव की अस्ति है, २ जीव की नास्ति है, ३ अस्ति नास्ति दोनों ही हैं. ४ जीव को अस्ति भी कहना नहीं, ५ नास्ति भी कहना नहीं, ६ अस्ति नास्ति भी कहना नहीं और ७ जीव की अस्ति नास्ति की हां भी नहीं कहना और ना भी नहीं कहना. इन ७ को ९ तत्त्वों से गुनने से ७×९=६३ हुए और —१ सांख्यमत, २ शिवमत, ३ वेदमत और ४ वैष्णवमत. यह ४ मिलाने से ६७ हुए। इनको विचार करना चाहिये कि उक्त कथन जो करते हैं वह ज्ञान से करते हैं कि अज्ञान से ? अज्ञानी का कहना तो कोई भी प्रमान भूत नहीं गिनते हैं और जो ज्ञान से कहते हों तो अपने मुँह से अपने मत का खंडन हुआ. जो असमझ से विष भक्षन करता है तो भी उसे परिणमता है तैसे ही उसे पाप भी लगता है। विष का विषम परिणाम जानने वाला कदाचित् औषधादि निमित्त विष भक्षन किया तो भी अनुपान प्रमाण युक्त खावेगा और उसका प्रतिकार कर प्राणों का रक्षण भी कर सकेगा किन्तु अज्ञानी अ-जान होने अप्रमान विष भक्षन कर अकाल मृत्यु का ग्रास बन जायगा ? तैसे ही ज्ञानी किसी कारणार्थ पाप किया तो भी प्रयोजन से अधिक नहीं करेगा और प्रायः श्चित से पवित्र भी हो सकेगा. परंतु अज्ञानी तो संसार सागर में डूब ही मरेगा.

४ जो इस प्रकार एकान्त वाद स्थापन करे कि- केवल विनय-नम्रता से ही मोक्ष प्राप्त होती है। अनाभिग्रही मिथ्यात्वी के समान कहे कि- अपने तो सब परमात्म रूप हैं क्या कुत्ता क्या बिल्ली क्या पशु और क्या मनुष्य सब ही को नमस्कार करना चाहिये। इसे विनयवादी कहते हैं, इसके ३२ प्रकार- १ सूर्य, २ राजा, ३ ज्ञानी, ४ वृद्ध, ५ माता, ६ पिता ७ गुरू और ८ धर्म, इन ८ को १ मन से अच्छे जानना, २ वचन से गुनानुवाद करना, ३ काया से नमस्कार करना और ४ बहुत मान पूर्वक

नजीक आया तब पंगु ने उसे समझाया कि अपन दोनों अलग २ रहेंगे तो जल मरेंगे इस लिये तू मुझे तेरे स्कन्धारूढ कर मेरे कथनानुसार चल जिस से अपन दोनों इस अग्नि से बच कर सुखस्थान प्राप्त करें पंगु के कथनानुसार अन्धे ने किया जिस से दोनों ही सुखी बने। इस ही प्रकार संसार रूप बन में लगी मृत्यु अग्नि से बचने के लिये ज्ञान रूप पंगु क्रिया रूप अन्धे की सहायता से शास्त्रज्ञान कथनानुसार प्रवृत्ति कर मोक्ष रूप सुखस्थान प्राप्त कर सकते हैं।

२ जो इस प्रकार मत की स्थापना करे कि—संसार के सब पदार्थों चराचर (अस्थिर) हैं तैसे आत्मा भी अस्थिर होने से तथा आकाश वत् सर्व व्यापक और निराकार होने से अनादि अनन्त अक्रिय है अर्थात् आत्मा को पुण्य पाप रूप क्रिया का स्पर्श नहीं होता है. इन्हें अक्रिया वादी तथा नास्तिक मति कहते हैं. इन के ८४ प्रकार हैं—उक्त कथित पंच समवाय और इच्छा से जगतोत्पत्ती यों ६ स्वात्मा आश्रिय और ६ परात्मा आश्रिय यों ६×२=१२ इनको पुण्य पाप विना सात तत्त्वों से गुनन करने से १२×७=८४ हुए. इनको विचारना चाहिये कि—जो पुण्य पाप का फल आत्मा को प्राप्त होता न हो तो संसार में कितनेक तो विना परिश्रम भोजन वस्त्र मकानादि सब प्रकार की सुखसामाग्री को जन्म से ही प्राप्त हुए हैं और कितनेक अहोनिश तन तोड़ महापरिश्रम करने पर भी पेट भर अन्न लज्जा ढके जितने वस्त्र भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं. यों संसार की विचित्रता देखी जाती है इसका कारण पुण्य पाप के फल सिवाय और कोई भी नहीं है.

३ जो इस प्रकार मत की स्थापना करे कि—ज्ञानी जन विवादी होते हैं, प्रतिपक्षी का बुरा चिन्तवते हैं, हर वक्त पाप से डरते ही रहते हैं जिससे उन्हें हर वक्त पाप लगता ही रहता है. इत्यादि कारनों से ज्ञान बड़ा बुरा है. अज्ञानी जन ही अच्छे हैं. कि जो न जानते हैं और न तानते हैं किसी के झगडे

में नहीं पडते हैं जिससे उनको किसी भी तरह का पाप ही नहीं लगता है. इन्हें अज्ञान वादी कहते हैं इनके ६७ प्रकार हैं—यह विकल्प करते हैं कि—१ जीव की आस्ति है, २ जीव की नास्ति है, ३ आस्ति नास्ति दोनों ही हैं. ४ जीव को आस्ति भी कहना नहीं, ५ नास्ति भी कहना नहीं, ६ आस्ति नास्ति भी कहना नहीं और ७ जीव की आस्ति नास्ति की हां भी नहीं कहना और ना भी नहीं कहना. इन ७ को ९ तत्त्वों से गुनने से ७×९=६३ हुए और —१ सांख्यमत, २ शिवमत, ३ वेदमत और ४ वैष्णवमत. यह ४ मिलाने से ६७ हुए। इनको विचार करना चाहिये कि उक्त कथन जो करते हैं वह ज्ञान से करते हैं कि अज्ञान से ? अज्ञानी का कहना तो कोई भी प्रमान भूत नहीं गिनते हैं और जो ज्ञान से कहते हों तो अपने मुँह से अपने मत का खंडन हुआ. जो असमझ से विष भक्षन करता है तो भी उसे परिणमता है तैसे ही उसे पाप भी लगता है। बिष का विषम परिणाम जानने वाला कदाचित् औषधादि निमित्त विष भक्षन किया तो भी अनुपान प्रमाण युक्त खावेगा और उसका प्रतिकार कर प्राणों का रक्षण भी कर सकेगा किन्तु अज्ञानी अ-ज्ञान होने अप्रमान विष भक्षन कर अकाल मृत्यु का ग्रास बन जायगा ? तैसे ही ज्ञानी किसी कारणार्थ पाप किया तो भी प्रयोजन से अधिक नहीं करेगा और प्रायः श्चित से पवित्र भी हो सकेगा. परंतु अज्ञानी तो संसार सागर में डूब ही मरेगा.

४ जो इस प्रकार एकान्त वाद स्थापन करे कि- केवल विनय-नम्रता से ही मोक्ष प्राप्त होती है। अनाभिग्रही मिथ्यात्वी के समान कहे कि- अपने तो सब परमात्म रूप हैं क्या कुत्ता क्या बिल्ली क्या पशु और क्या मनुष्य सब ही को नमस्कार करना चाहिये। इसे विनयवादी कहते हैं, इसके ३२ प्रकार- १ सूर्य, २ राजा, ३ ज्ञानी, ४ वृद्ध, ५ माता, ६ पिता ७ गुरू और ८ धर्म, इन ८ को १ मन से अच्छे जानना, २ वचन से गुनानुवाद करना, ३ काया से नमस्कार करना और ४ बहुत मान पूर्वक

भक्ति करना इन ४ से गुनने से ८×४=३२ प्रकार हुए, यह अन्य मतावलम्बियों से कुछ ठीक है किन्तु इसको विचारना चाहिये कि गुन बिना कोई भी वस्तु मान नहीं पाती है, कमी गुन वाली कम कीमत में जाती है और विशेष गुन वाली विशेष मूल्य पाती है. तैसे ही नमस्कार तो विशिष्ट गुन ज्ञानादि युक्त होगा उसही को किया जायगा. बाकी सब जीवों के साथ नम्र भाव मैत्री भाव रखना सो अच्छा ही है.

उक्त एकान्त पक्षी मिथ्यात्वियों के–१८०+८४+६७+३२=३६३ प्रकार हुए. यह सब शाश्वत अनादि अनन्त हैं किन्तु नामान्तर रूपान्तर होता रहता है यह लौकिक गुरू गत मिथ्यात्व।

(३) जिस कृतव्य का नाम धर्म तो कहते हैं किन्तु वह कृतव्य अधर्म का है उसे धर्म माने सो लौकिक धर्मगत मिथ्यात्व जैसे–१ कितनेक पृथवी काय की हिंसा कर धर्म स्थान देवालयादि बनाने में तालाब कूप बावड़ी आदि खुदाने में धर्म मानते हैं. जो धर्मस्थानादि बनाने से स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति होती तो चक्रवर्ती आदि महाराजाओं सुवर्ण रत्नों के धर्म स्थान बनवाकर स्वर्ग मोक्ष प्राप्त क्यों न कर लेते फिर संयम लेकर महाकष्ट सहने की क्या जरूरत थी? २–कितने ही तीर्थादि के जलस्नान करने से पाप का नाश धर्म की प्राप्ति समझते हैं, किन्तु सब तीर्थों के जल में पखालने से कडुवे तुम्बे का कटुकपना नहीं जाता है तो फिर पाप का नाश किस प्रकार होगा. देखीये स्कन्धपुराण काशी खण्ड षष्टम अध्यायः—

श्लोक–जायंते चम्रियंतेच, जलष्वै जलौकसः॥
नगच्छंति ते स्वर्गं, मविशुद्ध मनोमलः॥

अर्थ–तीर्थस्थान के जलाशय में रहने वाले मच्छ कच्छादि जल चर प्राणीयों जन्म मृत्यु उसही में करते हैं किन्तु उनके मन के मैल की विशुद्धी नहीं होने से वे स्वर्ग में नहीं जाते हैं तो फिर कदा काल स्नान करने वालों का तो स्वर्ग मिलेगा ही कहां से. और भी:—

श्लोक—चित्तंरागादि भिक्लिष्टं, मलिक वचनै मुखम् ॥
जीव हिंसादिभिःकायो, गङ्गा तस्य पराङ् मुखी ॥

अर्थ—जिस का मन रागादि दोष से, वचन अशुद्ध उच्चारण से और काया हिंसादि पापा चरन से मलीन हो रही है उस से गङ्गा जी उलटी नाखुश रहती हैं. [] इस प्रकार पापी जनों को गङ्गा का पानी भी शुद्ध नहीं कर सकता है। यदि तीर्थ स्नान से आत्मा पवित्र होती तो केई तपस्वीयों महा घोर तपाश्चरन कर आत्म पवित्र करने का कष्ट क्यों करते? ऐसे ही कितनेक अग्नि को विश्वदेव कह कर उसकी तृप्ति करने मधुघृतादिक होम कर सदैव जागृत रखने में यज्ञ हवन धुप दीपादि करने में धर्म मानते हैं. किन्तु अग्नि जैसी राक्षसी की तृप्त कदापि कोई कर सकता है? अग्नि दशों ही दिशा में रहे प्राणीयों का भक्षन करने वाली है इसके पौषन से धर्म किस प्रकार हो सकता है? कितनेक कहते हैं कि यज्ञ हवन में होमित पदार्थों की सुगन्ध से ग्राम का देश का रोग नष्ट होता है तो फिर वे प्लेग विशुचीकादि राक्षसी रोगों के ग्रास बनते जन समूह को क्यों नहीं बचा लेते हैं. कितनेक धूम्र से बद्दलोत्पत्ती और उससे जल वृष्टी हो सृष्टी को सुखी करने का साधन बताते हैं. जो ऐसा होता हो तो सारे जगत में पचन पाचनादि क्रिया होने से अपार धूम्र होता है तथा इस समय अंजिनगिरनी आदि केई कारखाने मुल्क में फैल रहे हैं जिसका भी अपार धूम्र सदैव होता है फिर प्राति वर्ष महादुःष्काल से पिडित हो जन समूह क्यों मर रहे हैं? और भी कितनेक कहते हैं कि "यज्ञार्थ

[] कहते हैं कि महाभारत संग्राम के पाप से निवृत्ती पाने की इच्छा से पंच पंडवादि गंगा जी जाने सज्ज हुए तब उनका भ्रम मिटाने कृष्ण जी भी साथ गये और गंगा देवी का स्मरन करने से वह आई तब उनसे पूछा।

चौपाई—मैं तुझ पूछू गंगा माता, हिन्दु मुसलमान दोनों संगाता ॥
तुझ में न्हावे तुझ में धोवे, उनके पाप न किम्हरे खोवे ॥१॥

गंगा देवी ने उत्तर दिया—मैं नहीं जानू कृष्ण विधाता, तुम ही हो जी समर्थ ज्ञाता ॥
मेंडुक मच्छ पूयत परी लोंके। तो भी नहीं रहते जन ज्ञाता ॥२॥

पश्वा श्रेष्ट " अर्थात्- यज्ञ के लिये पशु का हवन करना (जलाना) ही श्रेष्ट है. अश्वमेध—घोडे को, गोमेध—गौ को, नरमेध—मनुष्य को, अजमेध—बकरे को अग्नि में जला डालने से स्वर्ग प्राप्त होता है। हा ! खेदाश्चर्य है कि—जिन जीवों से ही सृष्टी कही जाती है. जो सृष्टी के सब कार्य के साधक हैं, जिन को जलाने में धर्म मानने की धृष्टता करते हैं. अरे ! जुल्म से ही जो धर्म होता हो तो फिर पाप किस[१] में जैसे बेचारे गरीब प्रानीयों को हवन करने का कहते हैं ऐसेही किसी समर्थ का हवन का नाम लें तो मालुम पड़ता कि धर्म कैसा होता है[२] और पाप कैसा होता है? उक्त कुसुत्र के प्रति पादक कहते हैं कि—संसार में दुख से पीडित जीवों का यज्ञ कुंड में हवन कर उन को स्वर्ग में पहोंचा कर सुखी बनाते हैं. उन्हों को यज्ञस्थंम से वन्धे पशु की पुकार श्रवन कर भोज नृप के आगे धनपाल पण्डित कथित कथन पर ध्यान देना उचित है.

श्लोक—नाहं स्वर्गफलोक भोग तृषितो नाम्यार्थितस्त्वं मया ॥
संतुष्ट तृण भक्षणेन सततं साधो न युक्तं तव ॥
स्वर्गे यांति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो ॥
यज्ञं किं न करोषि मातृ पितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवै ॥

अर्थात्—यह पशु कहता है कि—मुझे स्वर्ग सुख की किञ्चित् भी इच्छा नहीं है, और न मैं ने तुम्हारे पास स्वर्ग सुख की याचना की है, मैं तो तृण भक्षन और मेरे कुटुम्बियों के निवास-स्थान में ही स्वर्ग से

[१] श्लोक—युप छित्वा पशु हत्वा, कृत्वा रुधिर कर्द्दमम् ॥
यद्येव गच्छते स्वर्गे, नरके केन गच्छते ॥

अर्थ—पद्योक्त प्रकार से यज्ञ के स्थम्भ का छेदन कर पशुओं को मार कर रक्त का कर्दम मचा कर यदि यज्ञ का कर्ता जो स्वर्ग को चला जायगा तो फिर नर्क में कौन जायगा ?

[२] श्लोक—त्यक्तस्वधर्माचरणा । निर्घृणा पर पीडिका ॥
चण्डाश्च हिंसका नित्य । म्लेच्छास्तह्यविवि कीनः ॥१॥ शुक्रनीती॥

अर्थ—जो अपना (दया) धर्म को छोड कर निर्दय बन अन्य को पीडित करने में खुशी रहता है, सदैव कोपी हिंसक विवेक रहित होता है वही म्लेछ है।

अधिक सुख मान रहा हूं मेरे जैसे निरपराधी प्राणी की घात करना सुज्ञों के लिये किसी भी प्रकार उचित नहीं कही जाती है. यदि यज्ञ कुण्ड में हवन करने से जो स्वर्ग प्राप्त होता हो तो स्वर्ग सुख के इच्छुक तुम्हारे माता पिता पुत्र और भ्रातादि प्यारे स्वजनों को यज्ञ कुण्ड में हवन कर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुंचा देते हो और तुम भी स्वर्ग के प्रार्थी हो यज्ञ करते हो तो स्वयं हवन कुण्ड में जल कर शीघ्र ही स्वर्ग सुख के भोक्ता क्यों नहीं बन जाते हो? और भी देखिये। श्री मद्भागवत के चौथे स्कन्ध के पचीसवें अध्याय में प्राचीन बर्ही राजा ने कुगुरू के उपदेश से भ्रमित बन यज्ञ में हजारों पशुओं का वध कर डाला था उसे नारदऋषि ने किस प्रकार समझाया है सोः—

श्लोक—भो! भो! प्रजापते राजेन्द्र, पशुन पश्य त्वयाध्वरे।
संज्ञा पिताञ् जीव संघानं, निर्घृणा न सहस्रशः ॥७॥
एत्ते त्वा संप्रतिक्षंते, स्मरतो वैशसं तव।
संपरे तमयः कूटै, श्छिदंत्युत्तित्थ मन्यवः ॥८॥

अर्थ—अहो! अहो! प्रजाधीश राजेन्द्र! तै ने वेदाज्ञा को न समझ कर कुगुरू के कुउपदेशानुसार अरडाते हुए बेचारे हजारों पशुओं को यज्ञ कुण्ड में जला दिये यह तैने बड़ा भारी अन्याय किया है, वे सब पशुओं बदला लेने को तेरी मार्ग प्रतीक्षा कर रहे हैं और वारम्वार स्मरण कर रहे हैं. तू यहां से मरा कि वे सब पशु अलग २ जिस प्रकार तैंने उनको मारे हैं वैसे ही तुझे मारेंगे.

और भी देखिये। स्याद्वादमञ्जरी ग्रन्थ में लिखा किः—

श्लोक—देवोपहार व्याजेन, यज्ञ व्याजेन येऽथवा।
घ्नन्ति जन्तून् गत घृणा, घोरान्ति यान्ति दुर्गतिम् ॥१॥

अर्थ—तत्वज्ञ पुरुषों का कहना है कि-जो घृणा (ग्लानी) रहित पुरुष देवता के भेट करने के छल से अथवा यज्ञ के लिये जीवों को मारते

हैं वे घोर दुर्गति (नर्क) में जावेंगे. और वेदान्ती भी कहते हैं कि:—

श्लोक—अन्धे तमसि मज्जम, पशुभिर्ये यजा महे।
हिंसा नाम भवेद्धर्मो, न भूतां ने भविष्यति ॥१॥

अर्थ—यदि हम जो पशुओं से देवतादि की पूजा करें तो अन्धतमस (नर्क) में डूब जावें क्योंकि हिंसा में धर्म न तो कभी हुआ है और न कभी होगा * इस प्रकार अनेक दाखले उपलब्ध होते हैं। शास्त्रों का तो उपदेश एकान्त दयामय है किन्तु कुगुरुओं अर्थ का अनर्थ कर शास्त्र को शस्त्र रूप बना देते हैं। भोले जन उनके भ्रम में फंस कर विचारे डूब मरते हैं किन्तु सुज्ञजनों तो निश्चय समझते हैं कि अग्नि काय देव नहीं है किन्तु स्थावर काय है उसकी तृप्ति किसी भी प्रकार होती नहीं है. और अग्नि का आरम्भ करने में धर्म भी नहीं है। ऐसे ही कितनेक पंखे से वायु प्रयुञ्जकर झूले में झुलाकर वादिन्त्र बजाकर देव गुरू की भक्ति

* पुरान के कर्ता व्यास ऋषि ने यज्ञ करने की रीति इस प्रकार कही हैं।

श्लोक—ज्ञान पालि परिक्षिप्त, ब्रह्मचर्य दयाम्भसि ॥
स्नात्वाति विमले तीर्थे, पाप पङ्का पहारिणी ॥१॥
ध्याग्नि जीव कुण्डस्थ, दम मारुत दीपिते ॥
असत कर्म समित क्षेपै, ग्नि होत्र कुरूत्तमम् ॥२॥
कषाय पशु भि दुष्टै; धर्म कामार्थ नाशकै ॥
शम मन्त्र हुतैर्यज्ञ, विधेहि विहितं बुधैः ॥३॥

अर्थ—तत्वज्ञों का कथन है कि—ज्ञान रूप तालाब में गिरा हुआ दया और ब्रह्मचर्य रूप जल जिस में हो ऐसे तीर्थ में स्नान से पाप रूप कर्दम को दूर करे निर्मल होना फिर जीव रूपी कुण्ड में दम रूप पवन से प्रदिप्त ध्यान रूप अग्नि है उसमें असत कर्म रूप काष्ट को डालकर उत्तम अग्नि होत्र करो। धर्म काम और अर्थ को नष्ट करने वाले शम रूपी मन्त्र की आहुती को प्राप्त हुए ऐसे दुष्ट कषाय रूप पशुओं से ज्ञान ध्यान द्वारा किया हुआ यज्ञ को तुम करो। और भी अश्व मेध सो मन रूप अश्व (घोड़े) को गो मेध सो असत्य वचन रूप गो को अजा मेध सो इन्द्रियों रूप बकरे को और नर मेध सो काम देव रूप नर को इस प्रकार के यज्ञ कुण्ड में प्रक्षेप कर यज्ञ करने से ही स्वर्ग की प्राप्ती होती है और सच्चा यज्ञ यही है।

करने में धर्म मानते हैं. किन्तु ऐसे ढोंग करने से धर्म कभी नहीं होता है ५ ऐसे ही कितनेक लोगों मूल द्रोव शाखा प्रति शाखा पत्र पुष्प फल धान्यादि वनस्पति का आरम्भ छेदन भेदन करने में देव गुरू को चढ़ाने में धर्म मानते हैं. किन्तु विष्णु पुराण में कहा है कि—

श्लोक—मूलाश्च ब्रह्मा त्वचा विष्णु शाखा शंकर मेव च ॥
पत्रे २ देवाणाम् वृक्ष रायं नमस्तुते ॥ १ ॥

अर्थात्—अहो धर्मराज ! वनस्पति वृक्षादि के मूल में ब्रह्म का, त्वचा (छाल) में विष्णु-नारायण का, शाखा में शंकर-महादेव का और पत्ते २ में देवताओं का निवास स्थान है इसलिये वनस्पति नमस्कार और भी स्तुति करने योग्य है किन्तु छेदन करने योग्य नहीं है और वैष्णव भाई तुलसी को विष्णु नारायण की स्त्री कहते हैं और उसी का छेदन कर उसको ही चढ़ाते हैं. यह भोलापन भी खेदाश्चर्य कारक है. क्यों कि उनका ही कहना है कि—

श्लोक—तुलसी पत्रं छेदन्ति, तुलसी मध्ये हरीश्वर ।
अन्त तुलसी छेदन्ति, ते छेदन्ति हरीश्वर ॥

अर्थात्—तुलसी में हरी का निवास स्थान है इसलिये तुलसी का छेदन करने वाला हरीश्वर का छेदन करता है. कहिये ! इससे और क्या अधिक कहें ? धर्म के मर्म को न समझने वाले बहुत से जैन वैष्णव शिव दि धर्मार्थ-बडे २ वृक्षों का जड़ से छेदन करडालते हैं कभी कलीयों द्रोब झलहलते पत्ते फूल फल बीजों का छेदन कर मंडप की सजाई कर के तुर्रे गजरे हारादि से दयालु देव को प्रसन्न किया चाहते हैं यह कितनी भारी मोह मुग्धता है? और भी वे कहते हैं कि सृष्टी के मालिक भगवान हैं तो फिर भगवान की वस्तु भगवान को स्पर्शन करने से किस प्रकार संतुष्ट होंगे? क्या भगवान पत्र पुष्प फलादि के भूखे हैं. वे उनको तुम चढाओगे तबही वे तृप्त होंगे नहीं तो दुखी रहेंगे कैसी वे विचार की बात है,

भगवान का नाम लेकर अपने मन्तव्य को साधना. अर्थात् भगवान तो कुछ खाते नहीं हैं किन्तु मतलबी पुजारी भोले जन को भ्रमा कर भगवान के नाम से भोगोपभोग के पदार्थ प्राप्त कर अपनी इन्द्रियों का पोषन करते हैं कहा है कि "दुनियां ठगना मक्कर से और रोटी खाना शक्कर से" तथा लोभी के स्थान धूतारे भूखे नहीं मरते हैं । इस चरितानु वादानुसार प्रतक्ष जगत व्यवहार की प्रवर्ती दीखती है, ६ और भी इस प्रकार कितनेक अज्ञ लोगों कहते हैं कि-कीडे, चींटी, षटमल डांस मच्छर, युंका सर्प बिच्छु आदि परलय के (मरने वाले) जीव हैं. तो क्या वे कहने वाले अमर हैं ? जो उत्पन्न हुये हैं वे तो सब ही एक वक्त मरने वाले हैं. तथा कितने उक्त जीवों को कंटक (दुःख देने वाले) कह कर मारने में धर्म बताते हैं. तब उनसे पूछा जाता है कि- दुःख देने वाले को क्षुद्र कहते हो तो फिर मारने वाले को महा क्षुद्र कहने में क्या अनीती है फिर तुम्हें कौन छोडेगा ! और भी तुम ईश्वर को कर्ता कहते हो तो फिर जैसे तुम्हें उत्पन्न किये वैसे ही उनको भी उत्पन्न किये. ईश्वर सत्ता को अनुपकारी मानने वाला और उनका वध करने वाला क्या ईश्वर का अपराधी नहीं बनेगा ? कुंभार कृत घट के फोड डालने वाले को बदला लिये बिना कुंभार नहीं छोडता है तो ईश्वर उसे कैसे छोडेगा ? क्या ईश्वर तुम्हारा तो मित्र है और उनका शत्रु है ? देखिये श्रीमद् भागवत के सातवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में ईश्वर का फरमान—

श्लोक—युमष्ट खर मरका खुसरी, सर्पः खगाः माक्षीका ।
आत्मानां पुत्रवत् पश्येत् तेषां मैत्री क्रियते ॥९॥

अर्थ—युंका, ऊंट, गद्धा, बिसमरी, गिलोरी पक्षी और मक्षीका इत्यादि प्राणियों को अपनी आत्मा और प्यारे पुत्र के समान जाने मैत्री भाव धारन करना किन्तु किसी से भी कदापि अन्तर (द्वेत्ता) भाव धारन नहीं करना. देखिये ! माक्षिका, सांप युंकादि जिन को क्षुद्र मानते हैं उन्हीं के

रक्षण करने का शास्त्र का फरमान है और भी देखिये। जिस सांप को वे दुश्मन समझते हैं उसी की नाग पंचमी आदि अवसर पर पूजा करते हैं दुग्ध पान कराते हैं जो सच्चा सांप न मिळे तो पत्थर की सांप की मूर्ती की तथा चित्र बना कर उसकी पुजा करते हैं. पत्थर के सांप की तो पुजा करते हैं और सच्चे सांप को मार डालते हैं ऐसे मूर्खों को किस प्रकार समझाना ? और भी वह ही कहते हैं कि "भुजंग भूषणाय नमः" अर्थात् महादेवजी ने सांप को हृदय का हार बना रखा था. सांप लक्ष्मी नारायण को अपना सर्व शरीर समर्पन कर शैय्या बन गया है ऐसे परमेश्वर के प्यारे और भक्त प्रानी की घात करने वाले की क्या गति और क्या स्थिति होगी ? ऐसे ही कितनेक कहते हैं कि भगवान ने मच्छावतार, कुर्म (कच्छ) अवतार वाराह अवतार, और नरसिंहा अवतार धारन किया है. और वे ही मच्छ कच्छ को भक्षन कर जाते हैं सिंह और वाराह (सूवर) की शिकार करने का धर्म बताते हैं. क्षत्रियों को भ्रम में फंसा कर ईश्वर के प्यारे प्राणियों का बध और भक्षण कराके उनको नर्कावतारी बनाते हैं. * भोले क्षत्रियों उनको ही गुरू मान पूजते हैं ऐसी. अज्ञानता का कहां तक कथन किया जाय। और भोले जनों को आचार और विचार से भ्रष्ट बनाने वाला एक "वाम मार्ग" भी प्रचलित हुआ है वे ५ प्रकार से ही मुक्ति बताते

---

* श्लोक-मद्यासक्तयस्य ना विद्या। नो दया मांस भक्षिणः॥ द्रव्यलुब्धस्यनो सत्यं। स्त्रैणस्य न पवित्रता॥ चाणक्यनीति॥ अर्थ १ घर में आसक्त को विद्या नहीं, मांस भक्षी को दया नहीं, धन के लोभी को सत्य नहीं और स्त्रीयों के संगी को पवित्रता नहीं, इन चारों कर्मों में आसक्त कुगुरूओं का बोध अच्छा कहां से होगा ? यह विचारिये।

श्लोक—हिंसारतं प्रियलुब्धा सर्व कर्मोदि और विना॥
कृष्णा शौच परिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतांगताः॥

अर्थः-महाभारत शान्तिपर्व के १८८ वें अध्याय में भृगु ऋषि ने भार द्वाज से कहा है कि—जो ब्राह्मण हिंसा से तथा असत्य से प्रीति रखता है लोभी धन हर प्रकार के कर्म कर उदर पूरण करता है वह शूद्र है।

हैं वे अपने भैरवयुगल तंत्र शास्त्र में लिखते हैं कि—

श्लोक—मद्यं मांसं तथा मत्स्यं, मुद्रा मैथुन मेव च।
पंच तत्वं मिदं देवी, निर्वाण मुक्ति हेतवे॥

अर्थ—१ मदिरा, २ मांस, ३ मच्छ, ४ मुद्रा और मैथुन यह पंच तत्त्व देवीरूप हैं इन का सेवन ही मोक्ष का हेतु है. फक्त यह एक ही श्लोक बता कर लोगों को भ्रम में फँसा कर अनर्थ मार्ग (कुण्डा पंथ) की स्थापना कर कुमार्ग में प्रवृर्ति कराते हैं. किन्तु पांचों तत्त्व का जो उस ही तंत्र शास्त्र में परमार्थ दर्शाया है उसे भी यहां बता देते हैं:—

श्लोक—ब्रह्मस्थान सरोज पात्र। लसिता, ब्रह्माण्ड तृप्ती प्रदा।
या शुभ्रांशु कला सुधा। विगलिता, सोपान योग्यासुरा॥

अर्थ—ब्रह्म रंध्र से जो सहस्र दल (पत्र) कमल है उस में से निकलता ब्रह्माण्ड तृप्ती दायनी जो सुधा (अमृत) वह सहस्रारस्थित शुभ्र चन्द्र कला में से निकलता रस वही पान करने योग्य सुधा है अर्थात् जो सुधा ब्रह्म तालु में से सहस्र पत्र विशिष्ठ पद्म पत्र में से शरीर का विश्राम मन की शान्ति और आत्मा की तृप्ती प्रदा झरती है वह सुधा सृष्टि प्रलयात्मिका पर बिन्दुस्थिता श्वेत शशि लेख में से निकलती है वही सुधा—वही अमृत (सुरा) साधक को पीने योग्य है।

श्लोक- काम क्रोध सु लोभ मोह पशवश्छित्वाशु ज्ञानासिन॥
मांसं निर्विषयं परात्म सुखदं भुजन्ति तेषा बुधाः॥३॥
ये विज्ञान परा धरातल खरास्ते पुण्य वन्तो नराः।
नाश्नीयात् पशु मांस मात्म विभृत्ते हिंसा पर सजने॥४॥

अर्थ-जो तत्त्वज्ञ पण्डित जन हैं वे ज्ञान रूप खड्ग द्वारा काम क्रोध लोभ और मोह रूप चारों पशुओं का छेदन कर ब्रह्मानन्द प्रद निर्विषय रूप मांस भोगवते हैं जो ब्रह्म ज्ञान परायण पुण्यात्म व्यक्ति हैं वे ही धरा-तल पर देव स्वरूपी हैं ऐसे सब साधु पुरुषों आत्मा की पुष्टी के लिये जीव

हिंसा कर मांस उत्पन्न हुआ है उसे कदापि न खांयगे

श्लोक—अहंकारो दम्भोमद विहुनता मत्सर द्विषा ॥
षडंत मीना वै विषय हर जालेन विद्धृतः॥४॥
पचन् साद्विधा श्री नियमित कौल ऋषि भि ।
विभुञ्जन्ते मत्स्यांश्च जलचरा मीन पिशिता ॥ ५ ॥

अर्थ—संयतेन्द्रिय ब्रह्मज्ञानी पुरुषों अहंकार दमन मद पैशुन्य मत्सर्य और हिंसा रूप छेही मत्स्यों को वैराग्य रूप जाल में पकड कर सत्वगुण विशिष्ट ज्ञानाग्नि से पचा के (वश करके) उन्हीं का उपभोग करते हैं, परन्तु जलचर मच्छों को कदापि नहीं सताते हैं।

श्लोक—आशा तृष्णा जुगुप्सा भय, द्विष द मान घृणा लज्जा भिषक्काः।
ब्रह्मा ग्नावष्टा मुद्राः पर सुकृ ति जनः पाच्य मानाः समन्तात्। ६।
नित्यं मेष्या दयेता नवहित मनसा द्विव्य भावानुरागी।
यो हूनी ब्रह्माण्ड भाण्डे पशुगण विमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा।७।

अर्थ—जो देव भावापन्न सुकृत शाली व्यक्ति (पुरुष) सदा सावधान चित्त से आशा तृष्णा जुगुप्सा (निन्दा) भय घृणा मान लज्जा और अक्रोस (क्रोध) इन आठ मुद्रा का ब्रह्मज्ञान रूप अग्नि में पाक कर भक्षन करते हैं, अर्थात्-इन आठ का दमन करते हैं वेही पशु पाश विछिन्न महात्मा ब्रह्माण्ड में रुद्र जैसे हैं।

श्लोक—या नाडी सूक्ष्म रूपा परम पदगता सेव नियां सुषुमणा।
साकान्ता लिंग मार्हान मनुज रमणी सुन्दरी वार योषी। ८।
कुर्याच्चन्द्राकं योगे युग पवन गते मैथुनं नैव योनो।
रोते योगेन्द्र वन्द्यः सुख मय भवने तां समालिंग्य नित्यं। ९।

अर्थ—जो सुषुमना नाडी मूल में ब्रह्मरन्ध्र पर ब्रह्म स्थान पर्यन्त प्रवाहित हुई है वही सेवन योग्य है अर्थात् उन सुषुमणा के प्रभाव का ही निसेवन करना चाहिये, सुषुमना प्रवाह रूप कान्ता आलिंगन योग्य

है. अर्थात् एकान्त में मुद्रा बन्धनादि द्वारा वही सुषुम्ना प्रवाहि प्राण वायु का निरूंधना करना, इसी का नाम आलिंगन है. सुन्दरी मनुष्यनी आदि का आलिंगन देव भावापन्न साधु पुरुषों के लिये अयोग्य है. चंद्र और सूर्य अर्थात् इंडा और पिंगला इन दोनों नाडी में से बहते वायु का सुषुमणा के साथ संयोग रूप मैथुनासक्त हो योगी परमानन्द समाधि अवस्था को प्राप्त कर सक्ते हैं।

पाठक गणों! ग्रन्थकारों का मुख्य मन्तव्य किस प्रकार का परमार्थक होता है उसे छिपा कर कुगुरूओं अपने स्वार्थ साधन का सच्चा अर्थ छिपा कर किस प्रकार भ्रम में फंसाते हैं, यह दर्शाने के लिये उक्त प्रकार से विस्तार पूर्वक दर्शाया है. ऐसे ही भैरोबा अर्थात् बाप, भवानी माई अर्थात् अम्मा जिन को सारे जगत के मां बाप कहते हैं और उन के सन्मुख ही बकरे मुर्गे भैंसे मारते हैं और उन्हें आप खा जाते हैं. और उस हत्या का पाप उन देवों के सिर रखते हैं. देखिये! मतलब साधने को लोग कितना जबर अन्याय करते हैं, जिस प्रकार सती स्त्री के सिर व्यभिचारिणी का कलंक चढाने से दोषित होते हैं इसी प्रकार दयालु देव के सिर हत्या का कलङ्क चढ़ाने वाले दोषित होते हैं. *

उक्त छही काय के जीवों को श्री मद्भागवत गीता में कृष्ण भगवान ने अर्जुन के सन्मुख अपने समान कहे हैं और उन के घातक को अपनी घात के समान दोषित बताये हैं।

श्लोक—पृथिव्या मप्यहं पार्थ, वायावग्नौ जलेऽप्यहं।
वनस्पति गतश्चाहं, सर्व भूत गतोऽप्यहं ॥१॥

---

* "यंत्त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति सधर्मायगर्हते सो ऽधर्मः

अर्थात् जिन आचरणों की आर्य पुरुष प्रसंशा करें वह धर्म। और निन्दा करें वह अधर्म ऐसा आपस्तंब धर्म सूत्र में कहा है। तथा "यत्तो भ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः सधर्म" अर्थात् जिस कृतव्य से आत्माभ्युदय और कल्यान हो वही धर्म है ऐसा वैसासिक दर्शन में कहा है।

यो मां सर्व गतं ज्ञात्वा, नवि हिंसेत्कदाचन ।
तस्याहं न प्रणश्यामि, न च मांस प्रणश्यति ॥

अर्थ—हे पार्थ ! पृथवी (मट्टी) पानी अग्नि वायु वनस्पति और भूत (हलन-चलन करने वाले जीवों) में मैं व्याप्त हूं, यों मुझे सर्व व्यापक जान कर जो मेरी हिंसा नहीं करते हैं उस की घात मैं भी नहीं करता हूं अर्थात् वह दुखित नहीं होता है। ऐसे ही विष्णु पुराण में भी कहा है।

श्लोक—जले विष्णु स्थले विष्णु विष्णु पर्वत मस्तके ।
ज्वाला माला कुले विष्णु विष्णु सर्व जगत् मय * ॥

अर्थ—जल-पानी में, स्थल—पृथवी में, पर्वत मस्तक-वनस्पति में, ज्वाला-अग्नि में, माला-वायु में और कुले-त्रस प्राणियों में यों विष्णु सर्व जगत में व्यापक हैं।

दृष्टान्त—१ कोई राजा को सन्तुष्ट करने उसके ६ पुत्रों में से किसी पुत्र को घात कर उसको चढावे तो वह खुशी होगा क्या? नहीं, कदापि नहीं, इसी प्रकार परमात्मा के पुत्र या आत्मा समान षटकाय प्राणी में से किसी भी प्राणी की घात कर उनको चढाने से वे कदापि खुशी नहीं होंगे और जब तुम एक रुपये की वस्तु पौने सोलह आने में भी देते नहीं हो तो वे देव क्या ऐसे भोले हैं जो तुम्हारे को नारियल फल फूलादि जैसी निर्माल्य वस्तु में पुत्र लक्ष्मी आदि देवेंगे? + भोले जन दुनियां को ठगते २ देव को भी ठगने का प्रयत्न करते हैं। भाइयों! निश्चय यह समझिये कि देव किसी भी जगत् की वस्तु के भूखे नहीं हैं. देव को सन्तुष्ट करने को अन्तरिक प्रेम सदाचार सद्विचार की ज़रूरत है! निर्दयी कृतव्यों से देव तो

* विष्णु शब्द से यहां जीव समझना चाहिये क्योंकि आत्मा परमात्मा का निज स्वरूप एकही है।

+ पद—देव के आगे घेटा मांगे, सब से नारियल फूटे ।
गोटे सो सो आप ही खावे, उनको चढ़ावे न रोटे ॥
अन्न चले उपरांटे, भंडे के साहब नीते भेटे—कबीर

क्य। किन्तु कोई भी कार्य फलित नहीं होता है । कहा है कि—

श्लोक—नसा दीक्षा नसा शिक्षा, न तद्दानं नत तपः ।
न तद्ज्ञानं न तद्ध्यानं, दया यत्र न विद्यते ॥

अर्थ—जिसके हृदय में दया नहीं है उसकी दीक्षा, शिक्षा, दान, तप, ज्ञान, ध्यान सब निरर्थक हैं कहिये ! इससे और अधिक क्या कहें ? इस लिये हिंसा युक्त जो क्रिया है उसमें जो धर्म मानते हैं उसे लौकिक धर्म गत मिथ्यात्व कहते हैं ।

और भी होली, दिवाली, दशहरा, राखी, गुरु पड़वा, भाई द्वितीय, काजली तृतीया, अक्षय तृतीया, गणेश चतुर्थी, नाग पंचमी, य त्रा (शुभ) षष्ठी, शीतला सप्तमी, जन्माष्टमी, राम नवमी, धूप दशमी, झूलना एकादशी, भीम एकादशी, वच्छ द्वादशी, धन त्रयोदशी, रूप चतुर्दशी, शरद पूर्णिमा, हरियाली अमावस्या इत्यादि मिथ्यात्व तहवारों को मानना उपवासादि व्रत करना. देव देवी की पूजन करना. दीत शनी मंगल बारादि का एकासनादि व्रताचरन करना. यह सब लौकिक धर्म गत मिथ्यात्व कहा जाता है और भी एकादशी महात्म में तो एकादशी वृताचरन करने वाले को ११ काम त्यागने कहे हैं ।

श्लोक—अन्न कंदं त्यागं निद्रा, फल शैय्या च मैथुनं ।
व्यौपार विक्रय क्षुरं, कष्ट दन्तं स्नानं वर्जनं ॥
एकादशी अहोरात्री, अम्बु त्यागी जेनरा ।
सिध्यंति द्वादशं भवं, न च संशय युधिष्ठरा ॥

अर्थात—हे युधिष्ठर १ अन्न, २ कन्द, ३ फल, ४ शैय्या, ५ फूल, ६ मैथुन ७ खरीदना ८ बेचना, ९ मुण्डन, १० काष्ट से दन्त घर्षन और ११ स्नान. इन एकादश काम का त्याग कर वृताचरन करे वह एकादशी तर है. जो मनुष्य एकादशी की अहोरात्रि में पानी भी नहीं पीता है वह द्वादश भव में मोक्ष प्राप्त करता है इसमें संशय नहीं है ।

इस वक्त के लोगों यह कष्ट सहने को असमर्थ होकर अपने मिथ्या-मत को भी सच्चा ठहराने की धृष्टपना कर कहते हैं कि--'आत्मा सो परमात्मा' है तथा "नरकी देही है सो नारायण की देही है" इसे जो कोई दूषित करेगा दुःख देगा वह नर्क में जावेगा. इसलिये एकादशी का व्रताचरण कर के भी विशेष नहीं तो एक लर्धिग तथा तुलसी पत्र और हरी चरणामृत तो जरूर ही ग्रहण करना चाहिये. वह तुलसी पत्र तो किधर रहा किन्तु इस वक्त बहुत स्थानों में देखा जाता है कि अन्य दिनों की अपेक्षा एकादशी के दिन लोग बहु मूल्य और अधिक रस युक्त आहार का सेवन कर अनेक ढोंग मचाते हैं उनको देख एक कवि ने कहा कि:—

सवैया—गिरी और छुहारे खाय, किसमिस और बदाम चाय।
संठ और सिंघाडों से, होत दिल स्वादी है॥
गूंद गिरी कलाकन्द, अरबी और सकरकंद।
कुन्दन के पेड़े खाय, छोटे बडी गादी है॥
खरबूजे तरबूज और आम्ब जाम्बू लिम्बू अर।
सिघांडे के सीरे से भूक को भगादी है॥
कहते हैं नारायण करत हैं दूनी हान।
कहने को एकादशी पन द्वादशी की दादी है॥ १॥

उक्त—प्रकार के कुहेतु लगा कर लोगों को उनमार्ग में लगाने वाले से पूछा जाता है कि—विश्वामित्र जी, पाराशर ऋषि आदि तपस्वीयों ने ६०००० वर्ष पर्यन्त लोह कीटादि भक्षन कर तप किया है, नव नाथ १२—१२ वर्ष तक कांटों पर खडे रहे तप किया है, ऐसे और भी महान तपस्वीयों ने अति दुष्कर तपाचरन कर शरीर को शुष्क काष्ट भूत बना दिया है जिन के तप तेज से ब्रह्मा विष्णु महेश इंद्रादि भी कम्पित होगये हैं ऐसा कथन पुराणों में लिखा हुआ है तो वे सब तपस्वीयों आत्म देव का नर शरीर को कष्ट दे दुःखित करने वाले सब नरक

में गये होंगे क्या ? जो शास्त्र से बात करे उनको तो जबाब भी दिया जावे किन्तु गाल पुराण चलने वाले को किस प्रकार समझा सकें ? संसार के व्यवहारिक प्रत्येक कार्य भी बिना प्रथम कष्ट देखे सफल नहीं होते हैं जैसे विद्याभ्यास करने में भोजन बनाने में और कटुक औषधी ग्रहन कर पथ्य पालनादि में प्रथम कष्ट अन्तर सुख प्राप्त होता है, इस लिये सुख प्रद कष्ट को कष्ट नहीं गिनते हुये कार्यार्थी उस कार्य को बडे आनन्द उत्साह से करते हैं तब ही वे सुखी होते हैं इसही लिये कहते हैं कि "दुःखान्ति सुख" अर्थात् दुख के अन्त में ही सुख की प्राप्ती होती है तैसे ही तपादि धर्माचरण में जो कष्ट होता है वह भी कष्ट नहीं गिना जाता है, दशवैकालिक शास्त्र के आठवें अध्याय में कहा है "देह दुक्खं महाफलं" अर्थात धर्मार्थ शरीर को कष्ट देने में महाफल होता है जो शरीर को सुख देने वाले स्वर्ग में जांयगे और दुख देने वाले नर्क में जांयगे तो राजा महाराजा सेठादि श्रीमानों तो सब स्वर्ग में चले जांयगे और बेचारे गरीबों महा परिश्रम से उदर पूरणा करने वाले सब नर्क में चले जांयगे ! देखिये पाठकों खुशामदी ये गुरुओं श्रीमानों को जैन धर्म से गडबडा कर अपना मतलब किस प्रकार साधते हैं यह देख सावधान रहना और ऐसे मिथ्या वादीयों के फन्द से बचना इस लोकिक मिथ्यात्व का त्याग कर सत्य धर्मी बनना, *

७ लोकोत्तर मिथ्यात्व—इस के भी ३ प्रकार— १ देवगत, २ गुरुगत और ३ धर्मगत, (१) जो गोशालावत् तीर्थंकर नाम धारन करावे किन्तु जिन में तीर्थंकर के गुन अनन्त चतुष्टय अष्टप्रतिहार्यादि नहीं पावें, जो अज्ञानादि अष्ट दश दोषों में से किसी भी दोष कर दोषित

* श्लोक—युक्ति युक्त मुपादेयं वचनं बालकादपि।
त्याज्यं तृण मिवत्याज्य । मयुक्तंपरमेष्ठिना ॥१॥

अर्थ—युक्ति युक्त वचन बालक का भी ग्रहण करने योग्य है और युक्ति रहित ब्रह्मा का कथन भी तृण के समान त्यागने योग्य है

होवें, तैसे ही धातु पाषान मृतिका चित्रादि की आकृती जड रूप तथा स्थावर काय मय जिसे तीर्थंकर माने "अजीणा जिण संकासा" कहे तथा धन स्त्री पुत्र आरोग्यता की प्राप्ति के लिये ग्रह की शान्ति इत्यादि इस लोक के सुख की प्राप्ती के लिये तीर्थंकर का जाप नाम स्मरन करे सो लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व (२) जो रजो हरण मुहपती आदि जैन साधु का भेष धारन करे किन्तु पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति आदि साध के गुन नहीं पाते हों छे काय जीवों का आरंभ करे करावे अच्छा जाने पास्थादि पंच दूषण युक्त होवें उनको गुरू कर माने, तथा इस लोक के धन पुत्रादि सुख की प्राप्ति के लिये निर्ग्रन्थ गुरू की आहार वस्त्रादि से सेवा भक्ति करे सो लोकोत्तर गुरूगत मिथ्यात्व और (३) जैन धर्म सम्बन्धी क्रिया साधने के लिये जैन के तीर्थंकर देव निगून्य गुरू के लिये हिंसादि पाप का आचरन कर उसमें धर्म माने तथा जिससे अक्षय निराबाध मोक्ष के सुख की प्राप्ति होवे ऐसा श्रीजिनेश्वर प्रणित धर्म इस लोक के क्षणिक किञ्चित सुख की प्राप्ती के लिये करे जैसे—धन पुत्र की प्राप्ती के लिये तथा संकट निवारने को अष्टम (तेला) आदि तप करे विद्या वृद्धी के लिये आयम्बिल करे, कहा सामायिक तो होवेगी कमाई इत्यादि इच्छा से सामायिक करे, तपादि धर्म क्रिया कर इस लोक परलोक के सुख का निधान वन्धे—नियाणा करे इस प्रकार से धर्म क्रिया करने की इस वक्त विशेष रूडी प्रचलित द्रष्टी गोचर होती है. इन लोगों को जरा विचार करना चाहिये ?। क्योंकि जो कोई रूपे का माल पन्द्रे आने में दे देता है उसे भी मूर्ख कहते हैं तो फिर जो अमूल्य धर्म को क्षिणिक सुख की प्राप्ती के लिये व्यर्थ गुमा देते हैं उनको क्या कहना चाहिये ? सुज्ञो जिस प्रकार खेत में धान्य वोते हैं उसके पीछे वांस (खाकला) सहज विना इच्छा से ही प्राप्त होता है, इस ही प्रकार मोक्ष प्राप्ती करनी के पीछे स्वर्ग के सुख लक्ष्मी आदि का मिलना स-

हुजूर ही प्राप्त होते हैं, तो फिर धर्म करणी के फल की इच्छा कर घांस के पीछे धान्य का नाश क्यों करना चाहिये ? इत्यादि बिचार से अनन्त जन्म मृत्यु के दुःख का नाश करने वाले धर्म को जो इस लोक परलोक के क्षणिक सुख की प्राप्ति के लिये गुमाने की प्रथा जो इस वक्त प्रचलित है उसे मिटाने का प्रयत्न सब को करना आवश्यकीय है ।

८ 'कुप्रवचनिक मिथ्यात्व'—इस के भी ३ प्रकार-१ देवगत २ गुरू गत और ३ धर्म गत ।

(१) हरिहरादि अन्य मतावलम्बी के देव को, (२) बाबा जोगी सन्यासी फकीरादि अन्य मत के गुरू को, और (३) संध्या स्नान यज्ञ होम धूप दीप पुष्प फलादि चढ़ाना वगैरह क्रिया को, इन तीनों को मोक्ष दाता माने. मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से अङ्गीकार करे सो 'कुप्रावचनिक मिथ्यात्व । मिथ्या शास्त्र में इन की झूंठी माहिमा की है उसे सुन कर सम्यक् दृष्टी को कदापि मोहित होना योग्य नहीं, विचारना चाहिये कि जो देवगुरू आप ही मोक्ष नहीं प्राप्त कर सक्ते हैं तो मुझ मोक्ष दाता किस प्रकार होंगे ? अर्थात् कदापि नहीं होंगे ।

९ 'न्यून रीति मिथ्यात्व'—वीतराग-केवल ज्ञानी प्रणीत शास्त्र से कमी श्रधान प्ररूपन कर. जैसे आत्मा को तिल सरसों अंगुष्टादि प्रमाने कहे. तथा तीसगुप्ताचार्य ने एक प्रदेशिक आत्मा प्ररूपी. तथा अपने मत से अनमिलते शास्त्र के वचन को उड़ा देवे पलटा देवे, मनमाना अर्थ करे.

१० 'अधिक रीति मिथ्यात्व'—वीतराग-केवल ज्ञानी प्रणीत शास्त्र से अधिक प्ररूपना करे, जैसे-एक आत्मा को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यापक कहे. साधु के धर्मोपकरण परिग्रह कह कर साधु को साफ नग्न रहने का कहे । भगवन्त श्री महावीर स्वामी के ७०० केवल ज्ञानी शास्त्र में कहे हैं उन्हें जास्ति कहे अथवा १५०० तापसों को केवल ज्ञान प्राप्त हुवा कहे. इत्यादि.

११' विपरीत रीति मिथ्यात्व—वीतराग केवल ज्ञानी प्राणित शास्त्र से विपरीत प्ररूप ना करे, जैसे—श्वेताम्बर दिगम्बर आदि साधु कहला कर रक्ताम्बर पिताम्बर कृष्णम्बरादि धारन करे, मुंहपती आदि उपकरणों को विपरीत प्रकार रखे. तथा कितनेक मतावलम्बी कहते हैं कि—ब्रह्म ने श्रृष्टि उत्पन्न की + विष्णु पालन करते हैं और महेश (महादेव) संहार करते हैं, कहते हैं कि ब्रह्मा को इच्छा हुई "एको ऽहं बहुस्यां" अर्थात् अब मैं एक का अनेक बनूं

+ सृष्टी की उत्पत्ति के विषय वेदों उपनिषेधों और पुराणादि में नाना प्रकार के विकल्प किये हैं उसमें के कुछ यहां कहते हैं:—(१) कृष्ण यजुर्वेद के तैतिरिय उपनिषद की ब्रह्मवलि में कहा है—"ॐ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः, आकाश द्वायुः, वायोरग्निः; अग्नेराप;, अद्भ्यः पृथ्वी, पृथव्यां औषधयः, औषधीभ्योऽन्नम्, अन्नोद्रितः, रेतसः पुरुषः इति सृष्टि ॥ अर्थात्—वे अथवा इस प्रमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से पानी, पानी से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधी औषधी से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरुष उत्पन्न हुआ इस प्रकार सृष्टी हुई। (२) ऋग्वेद—१—११४-५ में कहा है—"एकं सन्तं बहुधा कल्पयान्ति" अर्थात् यह एक और सत् यानी सदैव स्थिर रहने वाला है, परन्तु उसीको लोगों अनेक नामों से पुकारते हैं। (३) इसके विरुद्ध ऋग्वेद १०-७२-७ में "देवानां पुर्व्येयुगेऽसतः सद् जायते" देवताओं के भी पहिले असत् से अर्थात् अव्यक्त से सत् अर्थात् व्यक्त सृष्टि उत्पन्न हुई। (४) इसके अतिरिक्त किसी न किसी द्रव्य तत्व से सृष्टि उत्पन्न होने के विषय में ऋग्वेद ही में भिन्न २ अनेक वर्णन पाये जाते हैं, जैसे सृष्टी के आरम्भ में मूल हिरण्य गर्भ था। अमृत और मृत्यु दोनों उसकी छाया है और आगे उसी से सारी सृष्टी निर्मित हुई है। (५) ऋग्वेद १०-१२१-१-२ में कहा है पहिले विराट रुपी पुरुष था और उसने यज्ञ के द्वारा सारी सृष्टी उत्पन्न हुई है। (६) ऋग्वेद १०-९० में कहा है पहिले पानी था उससे प्रजापति उत्पन्न हुआ। (७) ऋग्वेद १०-७२-६ में तथा १०-८२-६ में कहा है ऋतु और सत्य पहिले उत्पन्न हुए फिर अन्धकार (रात्री) और उसके बाद समुद्र (पानी) संवत्सर इत्यादि उत्पन्न हुए। (८) ऋग्वेद १०-७२-१ में कहा है सृष्टी के आरम्भ में यह अकेला ही था। ऐसे २ और अनेक प्रमाण मिल सकते हैं और ज्ञान की अपूर्णता के सिद्ध करते हैं क्योंकि एक ही ग्रन्थ में अनेक विकल्प होने का कारन और क्या मान आय और सत्य कथन में दो तीन मत कदापि होते ही नहीं हैं। इससे सिद्ध होता है कि सृष्टी का कर्त्ता मानना यह प्रमाण सिद्ध नहीं है।

पूर्व पक्षी—प्रथम अवस्था में कुछ दुःख होता है तब दूसरी अवस्था धारन करने की इच्छा होती है तो ब्रह्म जो प्रथम एक था तब क्या दुःख था सो अनेक होने की इच्छा हुई ?

प्रति पक्षी—दुःख तो कुछ भी नहीं था किन्तु ऐसे ही कौतुक किया.

पूर्व पक्षी—कौतुक तो सुख के अभिलाषी करते हैं, ब्रह्म प्रथम पूर्ण सुखी होता तो उसे अवस्था बदलने की कुछ आवश्यकता न होती इस से जाना जाता है कि प्रथम की अवस्था में ब्रह्म थोडे सुखी थे तब ही कौतुक कर अधिक सुखी होने की इच्छा हुई और इच्छित कार्य पूर्ण न हुआ वहां तक तो ब्रह्म भी दुःखी ही रहा ?

प्रति पक्षी—ब्रह्म की इच्छा होते ही तत्काल ही कार्य निष्पन्न हो जाता है.

पूर्व पक्षी—यह कथन तो बडे काल की अपेक्षा का है किन्तु सूक्ष्म काल की अपेक्षा से तो इच्छा और कार्य काल में अवश्य पृथकता होती है—प्रथम इच्छा और फिर कार्य.

प्रति पक्षी—ब्रह्म की इच्छा होते ही माया उत्पन्न हो वह सृष्टी निष्पन्न करती है.

पूर्व पक्षी—ब्रह्म और माया का एक ही स्वरूप है या पृथक है ?

प्रती पक्षी—पृथक २ है, ब्रह्म सचिदानन्द है और माया जड है.

पूर्व पक्षी—तुम्हारे माननीय गौतम मुनि कृत न्याय दर्शन के चौथे अध्याय में कहा है कि "व्यक्ता द्व्यक्ता ना प्रत्यक्ष प्रमाण्यात" अर्थात प्रत्यक्ष वस्तु से प्रत्यक्ष वस्तु की उत्तपत्ती प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है इस लिये जड से चैतन्य की उत्तपत्ती तो किसी प्रकार हो सक्ती ही नहीं है. तैसे ही चैतन्य रूप ब्रह्म के अन्दर माया भी रह सक्ती नहीं है. यह तो खण्डन हुआ.

पूर्व पक्षी—अच्छा जीव की उत्तपत्ती ब्रह्म से है कि माया से ?

प्रती पक्षी=ब्रह्म से. पूर्व पक्षी–तो फिर माया से क्या हुआ?

प्रती पक्षी–माया करके जीव को भ्रम में डालते हैं.

पूर्व पक्षी–ब्रह्म और जीव एक हैं या पृथक हैं? जो एक कहोगे तो जीव को भ्रम में डालने से ब्रह्म ही भ्रम में फसे क्यों कि जीव और ब्रह्म एक है. यह तो ऐसा हुआ कि–किसी मूर्ख ने अपनी तलवार से अपना हाथ काट डाला और जो पृथक कहोगे तो जीव के पीछे माया लगा कर बिना कारन जीव को दुःखी किया इससे ब्रह्म निर्दयी हुआ. और जो माया से शरीर बना कहोगे तो माया हड्डी मांस रक्त रूप हुई, यह शारीरिक पुद्गल वर्ण गन्धरस स्पर्श रूपी होने से अरूपी ब्रह्म में किस प्रकार समाये? तब तो ब्रह्म रूपी हुआ. इससे ब्रह्म की अरूपी अवस्था का नाश हुआ,

प्रतिपक्षी–माया से तीन गुन हुये यथा–१ रजोगुन, २ सत्व गुन और ३ तमोगुन.

पूर्वपक्षी–यह तीनों गुन तो चैतन्य के स्वभाव हैं और माया तो जड़ है. तो जड़ से चैतनिक गुन की उत्पत्ति कैसे हुई? जो होती ही है तो कहोगे कि सूखे काष्ट में भी होनी चाहिये।

प्रतिपक्षी–उक्त तीनों गुन से ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों देवों की उत्पत्ति हुई है।

पूर्वपक्षी–मृत्तिका से घट होता है किन्तु घट से मृत्तिका नहीं होती है तैसे गुनी से गुन होते हैं किन्तु गुन से गुनी कदापि नहीं होते हैं. यह तो खण्डन हुआ. अच्छा जो माया से उक्त तीन देवों की उत्पत्ति बताते हो तो फिर मायामय वस्तु पूज्य कैसे होवे?

प्रतिपक्षी–माया से उत्पन्न होते हैं किन्तु माया के आधीन नहीं रहते हैं

पूर्वपक्षी–यह कथन तो तुम्हारे शास्त्र के कथनानुसार ही नहीं मिलता है, क्यों कि ब्रह्मा ने अप्सरा का रूप निरीक्षण करने से चलित हो

साढ़े तीन कोटि तप का नाश कर पंच मुंहधारी बने, पंचम गर्दन मुख का महेश ने छेदन किया. विष्णु ने पृथक २ अवतार धारन करने को क्रोधित बन दैत्यों का संहार किया. कृष्णावतार में वस्त्राहरण (चोरी) कर, ग्वालिनों की इज्जत ली, * द्वारिका जल में डूबी उस का ही रक्षन नहीं कर सके. महेश भीलनी से छलित हुए पार्वती के डर से गङ्गा को जटा में छिपाई. लिङ्ग पतन हुआ. वगैरा २ बहुत बातें हैं. यह सब कर्त्तव्य मायामयी हैं इस लिये माया के आधीन हो कर ही किया चाहिये

प्रतिपक्षी—यह तो भगवान की लीला है.

पूर्वपक्षी—लीला इच्छा से करी कि बिना इच्छा से. जो इच्छा से करी कहोगे तो १ स्त्री सेवन की इच्छा का नाम काम. २ युद्ध की इच्छा का नाम क्रोध. ३ पूजा प्रतिष्ठा की इच्छा का नाम मद, ४ स्त्री आदि के वियोग से रुदन करने की इच्छा का नाम मोह. ५ भोगोपभोग के पदार्थ की इच्छा का नाम लोभ और ६ दैत्यादि के संहार की इच्छा का नाम मत्सर्य. इन षड् गुन को शास्त्र में षड् रिपु कहे हैं, खराब—त्यागने योग्य कहे हैं. ऐसे निन्दनीय कामों को लीला किस प्रकार कही जाय ? इन के आचरन करने वाले ही जब उत्तम-परमेश्वर कहलावेंगे तब क्षमा शील, नम्रता, वैराग्य सन्तोष शमादि गुनों के आचरने वालों को क्या दुष्ट कहोगे ? और जो विना इच्छा से कहोगे तो पराधीन हो माया ने बलात्कार से उक्त कार्य कराये तब तो असमर्थ होने से परमेश्वर ही नहीं रहे.

पूर्वपक्षी—संसारिक जीवों को नीति का शिक्षण देने--कार्य कर्म बताने को लीला की है ।

पूर्वपक्षी—यह तो ऐसा हुआ कि जैसे किसी के पिता ने अपने पुत्र को प्रथम तो व्यभिचार का शिक्षन दिया और जब वह व्यभिचार सेवन करने लगा तब उसे मारा. तैसे ही जीवों को प्रथम तो अनाचीर्ण के

* कृष्ण रामचंद्र आदि महा पुरुषों पर उक्त प्रकार के कलंक चढ़ाने की धृष्टता हम लोगों कदापि नहीं करते हैं कलंक तो उनको ईश्वर मानने वाले ही लगाते हैं ।

कर्त्तव्यें का शिक्षण दिया और वे अनाचीर्ण करने लगे तब उन को नर्कादि दुर्गति में डाल दुःखित किया ? ऐसे अन्यायी को ईश्वर कैसे कहना

प्रतिपक्षी—ईश्वर का अवतार भक्त का रक्षण और दुष्ट के संहार के लिये होता है.

पूर्वपक्षी—दुष्ट ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होते हैं कि विना इच्छा से जो इच्छा से उत्पन्न हुये कहोगे तो ऐसा हुआ कि किसी स्वामी ने नौकर को आज्ञा दे प्रथम तो दुष्ट कृत्य कराया और फिर उसे मारा वह स्वामी नहीं किन्तु अन्यायी ही कहलाता है. और विना इच्छा से कहोगे तो क्या ईश्वर को इतना भी ज्ञान नहीं था कि यह दुष्ट उत्पन्न हो मेरे भक्तों को सतायेंगे इन का संहार करने मुझे पुनः अवतार धारन करने का कष्ट भुगतना पड़ेगा. इस लिये दुष्टों का उत्पन्न होना वन्द कर दूँ ?

प्रतिपक्षी—अवतार धारन करने से ईश्वर की महिमा होती है ?

पूर्वपक्षी—तो क्या अपनी महिमा बढाने के लिये ही भक्तों का पालन और दुष्टों का संहार करता है ? तब ईश्वर रागी द्वेषी हुआ. राग द्वेष तो दुःख का मूल ही है. ईश्वर अवतार धारन कर दुष्ट का संहार किये विना अपनी महिमा नहीं करा सकता है. तब ही उस को अवतार लेने की और अनेक परपंच रच कर भक्त पालन दुष्ट संहार के महा कष्टों में उतरना पड़ता है. क्यों कि जो सहज में काम हो जाता तो इतना कष्ट उठाने की क्या जरूरत थी ? जो ईश्वर की इच्छा प्रमाने ही सब काम होता हो तो महिमा के इच्छुक ईश्वर ने सारी सृष्टि के जीवों से अपनी महिमा ही क्यों न कराई ?

प्रतिपक्षी—हमारे शुक्ल आयुर्वेद बृहदारण्यक के चौथे प्रपाठक के तीसरे ब्राह्मण में कहा है कि "द्वेवाव ब्राह्मणो रूप मूर्तं चैवा मूर्तञ्च" अर्थात्—ब्रह्म जगत् रूप मूर्तिमान और आत्म रूप अमूर्त ऐसे दो रूप हैं इस लिये ब्रह्म सब कार्य कर अलग-जलिप्त रहता है।

पूर्वपक्षी—यह कथन तो आकाश कुसुमवत् निरर्थक है क्यों कि एक ही पदार्थ मूर्ती अमूर्ती दो प्रकार से नहीं होता जो राग द्वेष युक्त कार्य तो करे और लिप्त न होवे, यह तो कदापि हो ही नहीं सकता है ।

प्रतिपक्षी—ब्रह्मा सृष्टी बनाता है, विष्णु पालन करता है और महादेव संहार करता है ।

पूर्वपक्षी—ब्रह्मा के और महादेव के परस्पर बड़ा ही विरोध हुआ क्यों कि वे बनावे वे तोड़े !

प्रतिपक्षी—इस में विरोध किस बात का क्यों कि ईश्वर अपने ही तीन रूप बना तीन काम करते हैं ।

पूर्वपक्षी—प्रथम ही ऐसी क्यों बनाई कि जिस का नाश करना पड़े ! इस से तो ईश्वर या सृष्टी दोनों में से एक का स्वभाव तो अन्यथा हुआ ही. ईश्वर का स्वभाव पलटने का कारण क्या ? (प्रतिपक्षी चुप रहा तब फिर पूछा) अच्छा-किसी को मंदिर बनाने की इच्छा होती है तब वह प्रथम उस का नक्शा (चित्र) बना कर फिर पत्थर काष्ट चूने आदि सामिग्री मिला कर मन्दिर बनाता है तैसे ही उस वक्त क्या दूसरी सृष्टि थी कि जिस का नक्शा ब्रह्मा ने लिया ? तथा-प्रथम ब्रह्म एक ही था तो फिर पृथ्वी बनाने की सामिग्री कहां से लाया ? ब्रह्म में से निकली कहोगे तो ब्रह्म साकार हुआ. पहिले ही थी ऐसा कहोगे तो ब्रह्मवत् वह सामिग्री भी नित्य हुई. यों दोनो ही कथन असंगत हैं. और भी सृष्टी रची तो प्रथम एक ही वस्तु फिर दूसरी वस्तु यों क्रम से बनाई कि अपने अनेक रूप कर सब एक दम बनाई ? यह दोनों ही कथन तुम्हारे शास्त्र प्रमान से असंगत हैं. तब क्या किसी को आज्ञा दे उसके पास से बनवाई तो उस वक्त दूसरा कौन था उस का नाम कहो ? और वह बनाने वाले भी सृष्टि बनाने की सामिग्री कहां से लाये ? (चुप) अच्छा-सृष्टी बनाई तो सब अच्छी २ बनाई कि अच्छी बुरी दोनों बनाई जो अच्छी बनाई

कहोगे तो बुरी का भी बनाने वाला कोई अन्य हुआ चाहिये ? और जो अच्छी बुरी दोनों बनाई कहोगे तो बुरी वस्तु जैसे कि नर्क, सिंह खटमल आदि प्राणी जहर कांटे आदि दुःख दाता वस्तु क्यों बनाई ? क्यों कि यह अच्छी भी नहीं दीखती हैं और ईश्वर की भक्ति भी नहीं करती हैं.

प्रतिपक्षी—अजी! सब अपने २ कर्मानुसार सुख दुःख पाते हैं।

पूर्वपक्षी—तब ब्रह्मा ने तो कुछ नहीं बनाया, ब्रह्मा तो सृष्टी का कर्ता नहीं रहा ? (चुप) अच्छा-जीव को पहिले निर्मल बनाया कि पापी बनाया ? जो निर्मल बनाया कहोगे तो उस को पाप कैसे लग गया ? इस से तो यह सिद्ध होता है कि बनाते वक्त तो बना दिया और फिर ईश्वर के हाथ की बात नहीं रही. और कहोगे कि पाप पीछे से लगा दिया तो विचारे जीव के पीछे पाप लगा कर उसे दुखी क्यों किया ? इस से ब्रह्मा निर्दयी हुआ. इत्यादि कारन से ब्रह्मा को जो सृष्टी का कर्ता कहना है यह कथन प्रमाण सिद्ध नहीं है।

अब जो विष्णु को पालन कर्ता कहते हो तो जीव को दुःख प्राप्त नहीं होने दे उसही का नाम पालन कर्ता—रक्षा कर्ता कहा जाता है, किन्तु यह तो सृष्टी में दृष्टीगत नहीं होता है, अनेक जीवों क्षुधा, तृषा, शीत, ताप, मार ताडादि दुख कर पीड़ित हो रहे हैं सुखी तो बहुत थोड़े देखे जाते हैं. तब विष्णु रक्षक कैसे हुए ?

प्रती पक्षी—दुःख प्राप्त होता है यह तो कर्माधीन है।

पूर्व पक्षी—यह कथन तो ठग वैद्य के जैसा हुआ. रोगी को आराम हुआ तो मेरी औषधि से और रोग वृद्धी पाया या रोगी मरगया तो अपने कर्मों से (चुप) अच्छा जो कर्मों से ही सुख दुख होता है तो फिर विष्णु को रक्षक क्यों कहते हो ?

प्रती पक्षी—विष्णु भक्त वात्सल्य हैं.

पूर्व पक्षी—सोमेश्वर महादेव का देवालय गजनी-महमूद ने तोड़ा तब

उसकी रक्षा क्यों नहीं की ? और भी बहुत से स्थान भक्तों को म्लेछ लोग दुखित करते हैं उनकी रक्षा क्यों नहीं करता है ? जो कहोगे शक्ति नहीं तो क्या विष्णु म्लेछों से भी हीन-शक्ति वाला है और जो कहोगे कि खबर नहीं तो फिर विष्णु को सर्वज्ञ अन्तर्यामी क्यों कहते हो ? और जो कहोगे कि जानते तो थे किन्तु रक्षा नहीं की तो फिर विष्णु भक्त वात्सल्य कैसे हैं ? इत्यादि कारनों से विष्णु को जो सृष्टी का पालन करता मानते हैं यह भी कथन प्रमाण सिद्ध से नहीं है ।

अब जो महादेव (शंकर) को सृष्टी का संहार कर्ता मानते हो तो महेश फक्त प्रलय काल में ही संहार कर्ता है कि सदैव संहार कर्ता है ? अपने ही हाथ से संहार कर्ता है कि अन्य के पास से संहार कराता है ? जो अपने हाथ से सदैव संहार कर्ता कहोगे तो सृष्टी में एक क्षण में अनन्त जीव मर रहे हैं तो सबको अकेला किस प्रकार मार सके ? दूसरे के हाथ से संहार कर्ता कहोगे तो उसका नाम कहो ? और जो कहोगे कि—उनकी इच्छा मात्र से संहार होता है तो क्या महेश की सदैव यही इच्छा बनी रहती है कि—मरो २, ऐसी इच्छा तो दुष्टों की होती है और जो कहोगे कि फक्त प्रलय काल में ही महेश संहार करता है तो ऐसा क्रोध का उद्भव एक दम क्यों हुआ कि विचारे सृष्टी के सब जीवों को मार डाले ? एक जीव को मारने वाला भी हिंसक कहलाता है तो फिर सारी सृष्टी के संहार करने वाले को क्या कहना ?

प्रति पक्षी—ईश्वर ने एक तमाशा बनाया था उसे बिखर डाला, इस में हिंसा किस बात की ।

पूर्व पक्षी—तब तो ईश्वर तमाशगीर होगये जिससे हिंसा का भी पाप नहीं लगा. भाइयों ! पाप भी परमेश्वर का मित्र है जो उनको नहीं लगता है और अन्य को लगता है (चूप) अच्छा, प्रलय काल हुए बाद जीव कहां जायगे ?

प्रति पक्षी—भक्त तो वृह्म में मिल जायगे और अन्य जीव माया में मिल जायगे।

पूर्व पक्षी—प्रलय हुए बाद माया ब्रह्म से क्या पृथक रहेगी जो कि ब्रह्म में मिल जायगी ? जो पृथक रही कहोगे तो माया भी ब्रह्मवत् नित्य हुई और ब्रह्म में मिल जायगी कहोगे तो फिर सब जीव भी ब्रह्म में मिलगये. फिर मोक्ष प्राप्ति का उपाय जप तप शम दम इत्यादि किस लिये करना चाहिये ? क्योंकि महा प्रलय हुए बाद तो सब ब्रह्म में ही मिल जायगे. वे सब ब्रह्म रूपही बन जायगे. अच्छा, पुनः नवी सृष्टी ब्रह्म उत्पन्न करेंगे तब पहिले वाले जीव ही सृष्टी में आयेंगे कि नवे उत्पन्न होंगे ? जो वेही जीव पीछे आन को कहोगे तो फिर वे जीवों ब्रह्म में एकत्र-सामिल नहीं हुए किन्तु पृथक २ रहे। इसलिये ब्रह्म में मिले कहे यह कथन मिथ्या हुआ। और जो नवे उत्पन्न हुए कहोगे तो जीव का अस्तित्व कायम नहीं रहा अर्थात् जीव का भी नाश हो जाता है, तब तो उक्त प्रकार ही मुक्ति का उपाय करना सो भी मिथ्या ठहरा क्योंकि जीव का नाश ही हो जायगा। और भी पूंछते हैं कि माया मूर्ती है कि अमूर्ती ? जो मूर्ती कहोगे तो अमूर्ती ब्रह्म में किस प्रकार मिली ? और जो मूर्ती माया ब्रह्म में मिली तो फिर ब्रह्म भी मूर्ती या मूर्ती मिश्र बन गया। आप जो माया को अमूर्ती कहोगे तो फिर माया से पृथव्यादि मूर्ती (दिखाते हुए) पदार्थ कैसे बने ? इत्यादि कारनों से ब्रह्मा सृष्टी कर्ता विष्णु पालन कर्ता और महादेव संहार कर्ता जो कहते हो सो कथन कपोल कल्पित है किन्तु प्रमाण सिद्ध नहीं है।

अहो भव्यों। उक्त कथन को दीर्घ दृष्टी से विचार कर निश्चयात्मक बनना कि-पृथवी पानी अग्नि वायु वनस्पति द्विन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरेन्द्रिय पशु पक्षी जलचर मनुष्य नर्क स्वर्ग इत्यादि सब पदार्थों को अनादि अनंत मानना। अर्थात् न तो कोई उत्पन्न करता है और न कोई प्रलय (नाश) करता है, जो कोई इनकी आदि बताये तो उनसे पूंछा जावे कि-अंडा-पक्षी,

बीज-वृक्ष, स्त्री-पुरुष, इनमें पहिले कौन हुआ और पीछे कौन हुआ। सब एक २ के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं इसलिये अनादि जानना।

जो कोई ईश्वर वादी पूंछे कि यह विना बनाये कैसे होगये? तो उनसे पूंछा जावे कि ब्रह्म को किसने बनाया? तब वह कहेगा कि-"ब्रह्म तो स्वयं सिद्ध अनादि अनन्त है" तो जैसे तुम ब्रह्म को स्वयं सिद्ध अनादि मानते हो तैसे ही हम भी सृष्टी को स्वयं सिद्ध अनादि अनन्त मानते हैं। देखिये तुम्हारे ही माननीय सिन्द्धात शिरोमणि ग्रन्थ के गोल नामक अध्याय में भास्कराचार्य ने लिखा है:—

श्लोक—भ्रमः पिण्डः शशांक ज्ञकरवि विकुजे।
ज्यार्कि नक्षत्र कक्षा वृतै वृतो वृतसन॥
मृद निल सलिल व्योम तेजो मयोऽयम।
नान्याधारः स्वश कत्यैव चियतिनि येतं॥
तिष्टती हास्य पृष्टे निष्ट विश्वच शाश्वत।
सद नुज मनुजादित्य दैत्यं समतात॥

अर्थात्—चन्द्र बुद्ध शुक्र सूर्य मंगल गुरू शनी और नक्षत्रों के वार्तुल मार्ग से घेरा हुआ और अन्य के आधार बिना पृथवी जल तेज वायु और आकाश मय यह भू पिण्ड गोलाकार हो अपनी शक्ति से ही आकाश में निरन्त्र रहता है और इसके पृष्ट पर दानव मानव देव तथा दैत्य सहित विश्व चारों ही तरफ रहा हुआ है।

अब कोई प्रश्न करे कि जीव को सुखी दुखी करने वाला कौन है? तो उत्तर में कहा जाता है कि जीव पुण्य कर्म का उपार्जन कर उनके फल भुक्तते सुखी होता है और पाप कर्म उपार्जन कर उनके फल भुक्तते दुखी होता है। ऐसाही चाणक्य नीति में भी कहा है—

श्लोक—सुखस्य दुखस्य न कोपी दाता। परोददाति कुबुद्धि रेषा।
पुराकृत कर्म न देव भुज्यते। शरीर कार्य खलुय त्वया कृतम्॥

अर्थ—इस संसार में जीवों को सुख और दुःख का देने वाला कोई भी नहीं है किन्तु सब जीवों अपने कर्मानुसार ही सुख दुःख के फल भोगते हैं. और इसलाम धर्म की किताब में भी ऐसा ही कहा है.

शेर अरब्बी का—"ऐसाली मुजरक बजात मुतसर्र फवी इल्लात"

अर्थात्—जीव दर्याफ्त करने वाला है अपने आप से कबजा रखने वाला है साथ औज़ार के.

प्रश्न—जब जीव शुभ कर्म कर सुखी होने में समर्थ है तो फिर अशुभ कर्म कर दुखी क्यों होता है ?

उत्तर—अज्ञान से तथा मोहोदय की प्रबल्यता से जैसे वकील वैरिष्टरादि मनुष्यों जानते हैं कि—मदिरा पान करने से मूर्ख बनना पडता है तथापि वे मदिरा पान कर पागल बनते हैं. तैसे ही बहुत से जीवों सुख दुःख प्रद कर्म सुख के लिये करते हैं किन्तु उस का परिणाम दुःख रूप ही होता है । और जो सज्ञानी जीवों मोहमन्द होने से दुःख प्रद कर्म का त्याग करते हैं वे सुखी होते हैं. यह सत्य श्रधो !

ऐसे ही कितनेक नास्तिक मति कहते हैं कि—तुम कृत कर्मानु-सार सुख दुःख कहते हो किन्तु उन कर्मों का हमें भान क्यों नहीं होता है । जैसे बाल्यावस्था में किये हुये काम हमें स्मरण रहते हैं तैसे ही भूत जन्म के कृत कर्मों का हमें स्मरण क्यों नहीं होता है ? उन से पूछना चाहिये कि अपन गर्भ समय में थे तब अपनी क्या दशा थी उस का अपने को स्मरण है क्या ? तो उत्तर में नाहीं कहेंगे तथा अपन निद्रिस्थ हुये बाद स्वप्न अवस्था में जाग्रत अवस्था का भान भूल कर जैसा स्वप्न आता है वैसे ही बन जाते हैं तो भाइयों ! क्षणान्तर किये कर्मों का ही भान भूल जाते हैं तो पर भव की बात का क्या कहना ? अज्ञानता की प्राब-ल्यता बडी जबर होती है. इस लिये उक्त प्रकार अन्य कथित कुहेतु में कदापि भ्रम में नहीं फंसना ! सत्य कथन को स्वीकार करना ।

ऐसे ही प्राचीन काल में ७ निन्हव जिन प्रणित शास्त्रों से विपरीत प्ररूपना करने वाले हुये हैं. यथ-(१) चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजी के शिष्य 'जमालीजी' अपने ५०० शिष्यों के साथ फिरते थे। एक दिन ज्वर से पीडित हो शिष्य से कहा मेरे लिये बिछोना बिछावो शिष्य बिछाने लगे तब फिर पूंछा, क्या बिछोना बिछाया? शिष्य ने कहा हां बिछाया! जमाली ने आकर देखा तो पूरा बिछाया नहीं, तब बोले झूठ क्यों बोलते हो? शिष्य ने कहा श्री महावीर स्वामीजी ने कहा है कि "करे माणे करे" अर्थात्-करने लगे उसे किया कहना. × जमाली बोले-यह कथन महावीर स्वामीजी का मिथ्या (झूठा) है. काम पूरा न हुये ही पूरा हुआ कहना. ऐसा बोलने से उन्हों ने मिथ्यात्व उपार्जन कर लिया। (२) श्री वसुआचार्य के शिष्य 'तिश्रगुप्त' एक वक्त आत्म प्रवाद पूर्व की स्वाध्याय करते अधिकार में आया कि-अहो भगवान्! आत्मा के एक प्रदेश को जीव कहना? भगवान् ने कहा-नहीं. यों दो तीन संख्यात की पृच्छा की, तब भी भगवान ने ना कही। अहो भगवान! असंख्यात आत्म प्रदेश में एक प्रदेश भी कम हो तो जीव कहना? भगवान ने कहा नहीं. किन्तु जितने आत्म प्रदेश हैं उतने पूरे होवे तब ही जीव कहना. इस कथन से तिश्रगुप्त ने आत्मा के प्रदेश अन्तिम को जीव मान एक प्रदेशी आत्मा प्ररूपने लगे. गुरूजी ने बहुत समझाया पर समझे नहीं तब गच्छ बाहिर कर दिया। अन्यदा अमलकम्पा नगरी में सुमित्र श्रावक के घर भिक्षार्थ गये तब उस ने एक दाल का और एक चांवल का दाना भिक्षा में दिया तब तिश्रगुप्त बोले-क्यों भाई! मसखरी करते हो? श्रावक बोले नहीं जी! मैं तो आप की श्रद्धा प्रमाने ही करता हूं एक आत्म प्रदेश की अवगाहना अङ्गुल के असंख्यात वें भाग की है और चांवल दाल की अवगाहना अङ्गुल के संख्यात वें भाग की है तो इतना आहार किस प्रकार

× जैसे घर से कोई बम्बई जाने निकला वह बम्बई पहुंचा नहीं भी हो तो भी [illegible] जाता है। इस न्याय से

खंपगा ? यह सुन कर ही उन की श्रद्धा शुद्ध हो गई. श्रावक का उप-कार माना। श्रावक ने भी कहा धन्य है आप के समान संघी ले श्रद्धा शुद्ध करने वालों को. (३) श्री अषाढ़ाचार्य अल्पज्ञ शिष्यों को छोड़ कर आयुष्य पूर्ण कर देवता हुए और पुनः अपने मृतक शरीर में प्रवेशकर शिष्यों को पढ़ाया. शरीर को छोड देवलोक जाते वक्त भेद खुला कर देने से शिष्यों को शकित बना गये, अरे ! अपन ने अव्रती देव को नमस्कारादि किया. न मालूम दूसरे साधुओं के शरीर में देवता भराया होय ? ऐसे विचार से सब साधुओं बन्दना व्यवहार बन्द किया. (४) श्री गुप्ताचार्य के शिष्य रोहगुप्त ने किसी प्रतिवादी के साथ संवाद करते उस ने जीव अजीव दो राशि स्थपी तब रोहगुप्त ने सुत के धागों पर बट चढा उस के सामने रख पूछा यह क्या है ! जो जीव कहे तो सूत का धागा है और अजीव कहे तो हिलता क्यों है ? यह देख प्रतिवादी चुप रहा तब रोहगुप्त ने 'जीवाजीव' की तीसरी राशी स्थापना कर उस का पराजय कर गुरु के पास आ कर सब हकीकत कही. गुरुजी ने कहा, तैने जिन-शास्त्र विरुद्ध यह स्थापना की है इस का 'मिथ्यादुष्कृत्य' दे. इत्यादि बहुत समझाया किन्तु वह मान का मरोडा अपना हट छोडा नहीं (५) धर्मगुप्ताचार्य के शिष्य ने नदी उतरते पैरों को पानी की शीतलता और मस्तक पर सूर्य की उष्णता लगने से 'एक समय में दो क्रिया' की स्थापना की किन्तु समय की सूक्ष्मता का विचार नहीं किया. (६) भगवन्त ने तो जीव के कर्म संबंध दुग्ध में घृत, तिल में तैल, जैसा कहा है और प्रजापति साधु ने सर्प की कांचली जैसे कर्म सम्बन्ध की स्थापना की और (७) अश्वमित्र साधु ने नारकादि गति के जीवों की विपर्याय-क्षण २ में परावृत होने की स्थापना की. इस प्रकार सातों × निन्हवों का कथन उववाईजी सूत्र में कहा है. हे भव्यों ! जिनेश्वर के एक वचन को ही विपरीत प्ररूपने वाले निन्हव

× कितनेक ८ और ९ निन्हव भी कहते हैं उनका कथन शास्त्र में नहीं है।

जिन वचन के लोपक कहलाये तो जो शास्त्रों के अनेक बचनों को उत्थापें, शास्त्र को शस्त्र रूप बना देवें, अनन्त भवों के उद्धारक जिन वचनों को अनन्त भव की वृद्धि करने वाले बना देवें. उन की क्या गति होगी ? अपनी आत्मा के हितेच्छु बन इस कथन को सोच विचार कर मुमुक्षुओं को सत्मार्ग के आराधक बनना ही योग्य है !

इस पञ्चम कलिकाल में परम पवित्र स्याद्वाद मय जैन धर्म में मत-मतान्तरों की भिन्नता से जो विपरीत प्ररूपना होरही है जिसका अवलोकन कर बड़ा ही सखेदाश्चर्य होता है। एक चेइय या चैत्य शब्द ने जैन में कितना झगड़ा फैलाया है, कितनेक कहते हैं कि—चेइये शब्द का अर्थ ज्ञान है और कितनेक कहते हैं प्रतिमा है. ठाणंग सूत्र में कहा है कि—"एए सीमं चउवीसाए तित्थ यराणं चउवीसं चेइय रुक्खा पण्णता" अर्थात् चौबीस तीर्थंकरों को ज्ञान उत्पन्न होने के चौवीस वृक्ष कहे हैं. इस सूत्र पाठ से चेइय शब्द का अर्थ ज्ञान ही सिद्ध होता है. और जो फक्त ज्ञान ही अर्थ करते हैं वे "गुणसिला नाम चेइय" इसका अर्थ क्या गुणसिल ज्ञान कहेंगे ? क्योंकि यह तो बगीचे का नाम है. इत्यादि विचार से निरापक्ष हो जिस स्थान जो अर्थ योग्य हो वही करना उचित है. (२) ऐसेही कितनेक कहते हैं "दया में धर्म" तो कितनेक कहते हैं. 'आज्ञा में धर्म" अब विचारिये कि भगवान की आज्ञा और दया क्या दो हैं ? क्या भगवान कदापि हिंसा की आज्ञा देते हैं ? फिर निर्थक पक्ष तान झगड़ा क्यों करना चाहिये ! (३) कितनेक ऋषभ देव जी के वक्त में बनाई हुई वस्तु को महावीर स्वामी जी के समय तक रही बताते हैं-और भगवती सूत्र के ८ वें शतक के ९ वें उद्देशे में कृत्रिम वस्तु की स्थिति संख्यात काल की कही है. श्री ऋषभदेवजी को हुये तो एक कोटाकोट सागर से कुछ कम काल हुआ है, वह वस्तु किस प्रकार रह सकी ? *

* जो ऋषभकूट पर भूतकाल में हुए चक्रवर्ती का नाम मिटा कर वर्तमान चक्रवर्ती नाम लिखते हैं, इस मिथ्या दाखले से कृत्रिम वस्तु का असंख्यात काल रहना सिद्ध करते हैं किन्तु शास्त्र में नाम मिटाने का लेख है ही नहीं।

(४) भगवती सूत्र के छट्टे शतक के ७वें उद्देसे में—वैताढ्य पर्वत गंगा और सिन्धु नदी ऋषभकूट और समुद्र की खाई (खड्डी) यह ५ भरत क्षेत्र में शाश्वते कहे हैं किन्तु कितनेक शत्रुंजय पर्वत को भी शाश्वता कहते हैं और फिर कहते हैं कि ऋषभदेवजी के समय में यह पर्वत बहुत बड़ा था, क्रमशः घटता २ छट्ठे आरे में बहुत छोटा रह जायगा. तो क्या कभी शाश्वती वस्तु भी कमी ज्यादा होती है। * (५) पन्नवणाजी सूत्र में मनुष्य

* श्री जैन आत्मानन्द सभा भावनगर से प्रसिद्ध होने "आत्मानन्द प्रकाश" मासिक के १५ पुस्तक के १० अंक के २३४ वें पृष्ठ पर छपा है कि "धर्म घोष सूरिए पोताना प्राकृत कल्पमां संप्रति विक्रम अने शाली वाहन राजा आ (शत्रुंजय) गिरीवरना उद्धारक बताव्याछे परन्तु तेनी बधारे सत्यता माटे हजु सुधी कोई विश्वासनीय प्रमाण मली शकयुनथी "बाहड मंत्रि नो उद्धार" वर्तमानमां जे मुख्य मंदिर छे ते विश्वस्त प्रमाणथी जणायछे के गुर्जर महामात्य वाहड (वाग्भट्ट) मंत्री थी उद्धारतथयेल छे। विक्रमनी तेरमी सदीना प्रारंभमां जे वखते महाराजा कुमारपाल राज्य करताहता ते वखते तेना उक्त प्रधाने पोताना पिता उदायन मंत्रीनी इच्छानुसार ते मंदिर बनाव्यु छे। प्रबन्ध चिंतामणीना कर्त्ता मेरुतुङ्ग सूरी आ उद्धारना संबंधमां जणावेछे के काठीयावाडना कोई सुवर नामना मंडलिक शत्रु ने जीतवा माटे महाराजा कुमारपाल राजाए पोताना मंत्री उदयन ने मोटी सेना आपीने मोकल्यो; वढवाण शहरने पासे ए वखत ते पहोंच्यो ते वखते शत्रुञ्जय नजदीक रहेलो जाणी सैन्याने आगल काठीयावाड़मां रवाना कर्यो पोते गिरराजनी यात्रा करवा माटे शत्रुञ्जय तरफ रवाना थयु जलदीथी शत्रुञ्जय उपर पहोंचो त्यां भगवत प्रतिमाना दर्शन वंदना अने पूजन कर्यु ते वखत ते मंदिर पत्थरनु नहीं परन्तु लाकडानुहतु मंदिरनी स्थिति बहुज जीर्णहती अने अनेक ठेकाणे फाट फूट पडीगइहती मंत्री पूजन करी प्रभु प्रार्थना करवा माटे रंग मंडपमां बेठा अने एकाग्रता तथा स्तवन करवा लाग्या ते वखते मंदिरनी कोइफाटमां एक उंदर निकल्यो ते एक दीवानी बत्ती मोंमा लइने पाछो त्यांक चाल्यो गयो आप्रसंग देखीने मंत्रीए दिलगीरी साथे विचार कर्यो के मंदिर काष्टमय अनेजीर्ण होवाथी आवीरीते दीवानी बत्तीथी कोई वखते अग्नि लागी जायतो तीर्थनी भारी आशातना थाशे नेयछे म्हारी आटली संपत्ति तथा प्रभुना शुं कामनाछे ? एम दिलगीर थईते मंत्रीए प्रतिज्ञा करी के आ युद्ध पूर्ण थयाबाद आ मंदिर नो जीर्णोद्धार करीश। काष्टने स्थाने पत्थर ना मजबूत मंदिर बंधावीश वगैरा नन्तर यह मंत्री तो संग्राम में काम आ गया और पिता की आज्ञानुसार वाहड़ और अंबड नाम के दोनों पुत्रों ने सं० १२११ में १६०००००० रुपये खर्च कर अनेक मन्दिर बनवाये। इस कथन से पाठक गणों शत्रुञ्जय पर शाश्वता का तथा जिन मंदिर कब से बने हैं इसका ख्याल अच्छी तरह से कर सकेंगे। शत्रुञ्जय उद्धारको था जो जो नाम बताते हैं उनका ही उनको पूर्ण स्मरना का प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है तो फिर अन्य कथन की सच्चाई कैसे मानी जाय ? शत्रुञ्जय छोटा बड़ा होने का गंगा सिन्धु नदी का प्रमान देते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सीता का पानी कम ज्यादा होता है किन्तु न तो उनकी हो बनी रहती है।

के शरीर के १४ स्थानों में समूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ती कही है और कितनेक थूक में तथा श्वेद (पसीना) में भी समूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ती कहते हैं तो यह १५वा १६ वां स्थान वह शास्त्रपरिमाण से विरुद्ध कहां से लाये ? तथा तिर्यञ्च के शरीर से उत्पन्न होते दुग्ध मक्खनादि में भी समूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति बताते हैं किन्तु यह कथन भी जैन शास्त्र के मूल से अप्रसिद्ध है. (६) भगवती सूत्र के १६ वें शतक के २ उद्देशे में कहा है कि हे गौतम ! शक्रेन्द्र खुले मुंह से बोलते हैं वह सावद्य भाषा और जब मुख पर वस्त्रादि आच्छादन कर बोलते हैं वह निर्वद्य भाषा- जो मुंह पर मुंहपत्ती बिना बांधे बोलते हैं उन से कितने ही वक्त खुले मुंह से बोला जाता है सो भी विचारना चाहिये और जो मुख पर मुँहपत्ती बांधने का निषेध करते हैं उन ही के माननीय ग्रन्थों में मुख पर मुंहपत्ती बांधने का लिखा है—१ औघ निर्युक्ति की १०६३ और १०६४ की चूर्णी में लिखा है कि 'एक बेंत चार अंगुल की मुँहपत्ती में मुख के प्रमाण जितना डोरा लगा कर मुख पर मुँहपत्ती बन्धना चाहिये २ प्रवचन सारोद्धार की ५२१ वीं गाथा में कहा है कि मुंह पर मुंहपत्ती आच्छादन कर बांधनी चाहिये ३ महा निशीथ सूत्र में कहा है मुखवस्त्रिका बगैर प्रतिक्रमण करे वांचना देवे या लेवे, वंदना स्वाध्याय वगैरा करे तो पुरिमढ का प्रायश्चित आवे. ४ योग शास्त्र की वृत्ति के पृष्ट २६१ में लिखा है कि, उड़ कर के गिरते जीव और वायु काय के जीव की उष्ण श्वास से विराधना (हिंसा) से बचने के लिये मुंहपत्ती धारन की जाती है. ५ आचार दिनकर ग्रन्थ में और शायद आदि ग्रन्थों में अनेक प्रमाण मुंहपत्ती बांधने * के प्राप्त होते हैं.

* श्लोक—हस्तपात्र दधानाश्च, तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः,
मलिना न्येव वासांसि, धारयन्तोऽल्प भाषिणः ॥ २१ ॥

शिवपुराण, अध्याय २१.

अर्थ—हाथ में पात्र और मुख पर वस्त्र रखने वाले, मैले वस्त्र धारक और थोड़ा बोलने वाले जैन धर्म के साधु होते हैं। इस प्रकार अन्य मतावलम्बीयों के शास्त्र से भी जैन धर्म के साधु को मुंहपत्ती मुख पर बांधना सिद्ध होता है। और देखो

ऐसे ही *हेमचन्द्राचार्य की रचनानुसार उदयरत्न जी का सं० १७६९ में रचा हुआ जो भूवनभानु केवली का रास है उस की ६९ वीं ढाल में छपा है-ढाल— मुंहपती मुख बांधीरे, तुम वेसो छो जेम गुरूजी, तिम मुख ढूंचा देइनेरे बीजाथी वेसारा केम गु० ॥३॥ मुख बांधी मुनिनी परेरे, पर दोष न वदे प्राणी गु०। साधु विन संसार मेंरे, क्यारे को दीठा क्यांही गु० ॥४॥ ऐसा ही खुलासावार लेख हितशिक्षा के रास में तथा हरीबल मच्छी के रास में है तथा भीमसी मानक की तरफ से प्रसिद्ध हुआ 'जैन कथारत्न कोष' के ७ वें भाग के ४०५ वें पृष्ट की १९ वीं लाइन में छपा है 'उपाश्रयमां रहता साधु सांहला केटला एक साधुओं तो मुंहपत्ती ने बांध्या विनाज बोल्या करे छे।" इस प्रकार शास्त्रों में तथा ग्रन्थों में खुल्ला २ कथन होने पर भी इन ग्रन्थों के मानने वाले ही मुंह पर मुंहपत्ती बांधे बिना ही धर्म क्रिया करते हैं वे जिनेश्वर की और गुरू की आज्ञा के आराधक किस प्रकार कहे जावें ? सो विचारिये. दिगम्बर जैन आम्ना के गोमटसारजी और सुदृष्ट तरंगिनी में लिखा है कि—४८ पुरुष ४० स्त्री और २० नपुंसक यों १०८ एक समय में मोक्ष जाते हैं और यही स्त्री को मोक्ष होने का निषेध करते हैं। तत्वार्थ सूत्र में केवलज्ञानी के ११ परिषहों में क्षुधा परिषह ग्रहन किया है और इसे मानने वाले केवलज्ञानी को आहार का निषेध करते हैं. इस ही सूत्र में १२ स्वर्ग कहे हैं और इसे मानने वाले ही १६ स्वर्ग कहते हैं. अष्टपाहुड सूत्र के बोधपाहुड की ७ वीं गाथा में सिद्ध समाचीन मुनि को सिद्धायतन कहा है. ८ वीं गाथा में शुद्ध ज्ञान के धारक मुनि को चैत्य-देहरा कहा है, त्रिरत्न के

* The Religions of world by John Murdork L. L. D 1902 page 128. The yati has to lead a life of continence He should wear a thin cloth over his mouth to prevent insects from flying into it.

अर्थ—जैन मर्डक एल० एल० डी० नाम के साहब ने ईस्वीसन १९०२ में दुनियां के मत नाम की पुस्तक बनाई है उसके १२८ वें पृष्ट पर छपा है कि ब्रह्मचर्य का पालन करना और सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिये मुंह पर वस्त्र बांधा रखना यह यतीयों का धर्म है।

आराधक मुनि को प्रतिमा कही है. काष्ट पाषणादि की प्रतिमा मानने का निषेध किया है. १३ वीं गाथा में जंगम प्रतिमा मुनी की और स्थावर प्रतिमा सिद्ध की कही हैं. १६ वीं गाथा में आचार्य को जिन-बिम्ब कहा है और २८ वीं गाथा से ४० गाथा तक चार निक्षेप तीर्थंकर का स्वरूप कहा है. उस के मानने वाले ही उस से विपरीत प्रवृर्तते हैं. भगवती आराधना शास्त्र की ७९ वीं गाथा में अपवाद मार्ग से १६ हाथ वस्त्र मुनि को धारन करना कहा है. ११० वें पृष्ट में तिल का चावल का धोवन मुनि को ग्रहन करना कहा है और यही वस्त्रधारी तथा धोवन पानी लेने वाले साधु की निन्दा करते हैं. ऐसे ही साधुमार्गी जनीयों में भी कितनेक स्थानक में रहने वाले साधु को पासत्थे बताते हैं तो कितनेक ग्रहस्थ रहे उस मकान में रहने वाले को जिनाज्ञा विरुद्ध प्रवर्तक बताते हैं. किन्तु स्थानक नाम-तो मकान का है कुछ स्थानक नाम में ही दोष आ कर घुस गया नहीं कैसा भी क्यों न हो साधु को तो शास्त्रोक्त निर्दोष मकान में रहना उचित है. ऐसे ही कितने अपनी सम्प्रदाय के पंथ के साधु को छोड़ अन्य को आहार आदि देने में वंदना नमस्कार करने में एकान्त पाप बताते हैं. मरते जीव को बचाने में भी पाप बताते हैं. जिन के नाम से पूज्य बने हैं उन भगवन्त श्रीमहावीर स्वामीजी को ही चूक गये बताते हैं. जो धर्म का मूल दया दान विनय जिस की साफ जड़ काट डालते हैं. तो और का क्या कहना ?

इस २ प्रकार का विपरीत प्ररूपना योग से स्याद्वाद शैली वाले जैन धर्म में भी चलनी के छिद्र समान मत मतान्तरों कर के जैन धर्म बन रहा है सत्यासत्य की निर्णय की दरकार नहीं रखते हुए अपने २ मत की सजावट और अन्य मत की उत्थापना करने में हीं प्रायः सब जैनियों के सदबल का व्यय मिथ्यात्व की पुष्टी की तरफ हो रहा है और उसही में धर्म मान बैठे हैं. सब जैनियों एक महावीर के मत के अनुयायी होकर भी

परस्पर एक दूसरे को मिथ्यात्वी ठेहरा रहे हैं अहा इति सखेदाश्चर्य। किन्तु सम्यक् दृष्टी तो उक्त सब झगड़ों से अपनी आत्मा को अलग रखते हुए आत्म साधने में ही मशगूल रहते हैं।

१२ धर्म को अधम श्रद्धे प्ररूपे तो मिथ्यात्व। श्री जिनेश्वर प्रणित प्रथमांग आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के चौथे अध्ययन के प्रथमोदेशे में धर्म का स्वरूप निम्नोक्त प्रकार कहा है:—

सूत्र—से बेमी—जेय अतीता जेय पडुप्पन्ना जेय आगमिस्सा अरहंतो भगवंतो ते सव्वेवि एवं माइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवंती एवं परूवेती—सव्वे पाणा सव्वे भुया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा ण अज्जावेयव्वा ण परिघेतव्वा ण परितावेयव्वा ण उद्दवेयव्वा एस धम्मे-सुद्धे-णितिए-सासए-समेच्चलोयं खेयन्नेहिं पवेतिते तं जहा-उठिए सुवा, अणुठिए सुवा, उवरयदंडे सुवा, अणुवरय दंडेसु वा सो वाहिएसु वा, अणोवहिएसु वा, संजोगएसु वा, असंजोगएसु वा, तच्चं चे यं तहा चे यं अस्सिं चे यं पवुच्चइ ॥ १ ॥

अर्थ—श्री सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं कि हे जम्बु! भूत काल में हुए उन तीर्थकरों ने, वर्तमान काल के हैं वे तीर्थकरों और भविष्य काल में होंगे वे तीर्थकरों, इस प्रकार सब ही तीर्थकरों ने ऐसा फरमान किया है, संशय रहित कहा है, द्वादश जाति की परिषद में प्ररूपा है, फट प्रगट उपदेशा है कि- द्वीइन्द्रिय त्रिइन्द्रिय चौरिन्द्रय प्राणी, वनस्पतिभूत, पचेन्द्रिय जीव और पृथवी पानी अग्नि वायु यह सत्व अर्थात सब प्रकार के जीवों की हिंसा करना नहीं, परिताप देना नहीं, बन्धन में डालना नहीं, उपद्रव करना नहीं, दुख देना नहीं—यही धर्म सनातन—शाश्वत है, सब जीवों के खेदज्ञ जिनेश्वर ने ऐसा कहा है. यह कथन (धर्म) धर्माभिमुख बने उनको तथा धर्माभिमुख नहीं बने उनको. जो मनादि त्रिदंड से निवृती पाये उनको, तथा निवृति नहीं पाये उनको, श्रावकों को साधुओं को त्या-

गियों भोगियों और जोगियों अर्थात् सब जनों को आदरणीय आचरणीय कहा है. और यही अहिंसा धर्म तथ्य सत्य सुख दाता है. ऐसे तथ्य सत्य धर्म को मिथ्यामोहोदय तथा कुगुरुओं के उपदेश से भ्रम में फंसकर अधर्म कहे सो मिथ्यात्व ।

१३ अधर्म को धर्म श्रद्धे प्ररूपे तो मिथ्यात्व- उक्त धर्म के लक्षणों से जो उलटा कृतव्य होता हो अर्थात् प्राणी भूत जीव सत्य की घात के काम पूजा यज्ञ हवन कन्यादान ऋतुदान नृत्य गान ख्याल तमासे रास रमनादि कर्तव्यों में धर्म माने सो मिथ्यात्व ।

१४ साधु को असाधु श्रद्धे प्ररूपे तो मिथ्यात्व—पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति, पचेन्द्रिय निग्रह, चार कषायों से उपशान्त ज्ञानी ध्यानी त्यागी वैरागी दमितात्मा इत्यादि साधु के गुन जो शास्त्रों में कहे हैं उन गुनों कर सम्पन्न साधुओं को, मिथ्या मोहोदय से, कुगुरुओं के भ्रमाने से मत पक्ष में बंध मतवाले हुए जीवों असाधु कहते हैं, भगवान के चोर कहते हैं. ढीले पासत्थे या मैले कचेले आदि अपशब्दों से उपहास्य करते हैं, निन्दा करते हैं, गच्छ का पंथ का सम्प्रदाय का पक्ष धारन कर अपने मत को ही सच्चा मानते हुए अन्य कों निन्दा करते हैं, वंदना नमस्कार करने आहार पानी देने से सम्यक्त्व का नाश समझते हैं, इस प्रकार करते हुए बड़े ज्ञानी ध्यानी तपी जपी गुनवन्त आदि चारों तीर्थों के गुणाच्छादक हो मिथ्यात्व उपार्जन कर लेते हैं ऐसे मतवालों को विचारना चाहिये कि भगवन्त महावीर स्वामीजी के समय में भी १४००० साधुओं एक समान गुन के धारक नहीं थे जो होते तो सब ही केवल ज्ञानी बन जाते किन्तु केवली तो ७०० ही हुए हैं तो भी भगवन्त ने सब को साधु ही कहे हैं. जैसे एक हीरा एक रूपे का और एक क्रोड रुपये का सब हीरे ही कहावेंगे. किन्तु कांच के टुकड़े नहीं कहलावेंगे. तैसेही गुनों की न्यूनाधिकता होवे तो भी साधु ही कहे जावेंगे. सब साधुओं के गुन समान नहीं होने

के कारन से ही भगवान ने पांच प्रकार के चारित्रिये और पांच प्रकार के निग्रन्थ का आचार पृथक २ कहा है। ऐसे कथन को ध्यान में लेकर जिनके मूल गुनों का भंग न हो गुरु की आज्ञा में चलते हों व्यवहार शुद्ध हो उन सब सुसाधुओं में समभाव धारन कर इस मिथ्यात्व से अपनी आत्मा को बचाइये.

१५ असाधु को साधु श्रधे तो मिथ्यात्व- उक्त साधु के गुनों रहित गृहस्थ के समान या गुन बिना कोरे साधु के भेष के धारक. दश प्रकार के यति धर्म रहित अठारोंही पाप का स्वयं सेवन करें अन्य से करावें पापाचरन करने वाले का अनुमोदन करे, मानोपेत (प्रमाण) से अधिक तथा श्वेत रंग के सिवाय अन्य पीले, लाल, हरे, काले, भगवे, गुलाबी इत्यादि रंग के वस्त्रों के रखने वाले, षटकाया जीवों के घातक. धातु-परिग्रह के धारक. महा-क्रोधी, महा-अभिमानी, दगलबाज, महा-लालची, निन्दक इत्यादि दुर्गुनों के धारक को साधु माने तो मिथ्यात्व. कितनेक कहते हैं कि- हम तो भेष को वंदन नमन करते हैं उन भोले लोगों को विचारना चाहिये कि- बहुरूपीया या नाटककार पात्र साधु का स्वर-भेष धारनकर आय तो क्या उसको साधु कहा जायगा ? नहीं, कदापि नहीं, "अपने तो गुन की पूजा, निगुने को पूजे वह पंथ ही दूजा" कितनेक कहते हैं कि- पंचमकाल में शुद्धाचारी साधु हैं ही नहीं, जो शुद्धाचार प्ररूपे तो तीर्थ का ही विच्छेद होजाय। ऐसे नास्तिकों और कायरों को समझना चाहिये कि भगवती सूत्र में खुद भगवान ने फरमाया है कि- पांचवें आरे के अन्त तक या २१००० वर्ष तक मेरा शासन चलेगा, यह आशीर्वाद क्या कभी मिथ्या हो सकता है कदापि नहीं फिर अभी तो ढाई हजार वर्ष ही पूरे नहीं हुए हैं। इस वक्त भी बडे २ महात्मा महात्यागी महावैरागी साधु साध्वी श्रावक श्राविका इसी आर्यालय में उपस्थित हैं और पंचम आरे के अन्त तक चार जीव एक अवतारी रहेंगे।

१६ जीव को अजीव श्रधे तो मिथ्यात्व- प्रज्ञा प्राण योग उपयोग हानि वृद्धी इत्यादि लक्षण जो जीव के लक्षण सास्त्र में कहे हैं उन एकेन्द्रि आदि जीवों को जीव नहीं माने. कितनेक कहते हैं कि सब पदार्थ मनुष्य के भोग के लिये ही भगवान ने उत्पन्न किये हैं. जो इनको नहीं भोगेंगे तो यह सडकर निरूपयोगी हो जायँगे. इससे भगवान का अपमान होगा. उनको समझना चाहिये कि- जो मनुष्य के भोग के लिये ही सब वस्तु उत्पन्न की हैं तो फिर सब वस्तु स्वादिष्ट आरोग्य सुख प्रद उत्पन्न करना था किन्तु ऐसा तो देखने में नहीं आता है. कटुक कंटक कठिन जहरीली बेस्वादि वस्तु भी बहुत सी हैं वे भगवान ने क्यों बनाई ? क्या भगवान किसी के साथ मित्रता और किसी के साथ शत्रुता रखता है ? अच्छा तुम्हारे भोग के लिये अन्न फलादि जैसे उत्पन्न किये हैं तैसे सिंह व्याघ्र आदि के भोग के लिये तुम्हारे को भी उत्पन्न किये होंगे ? क्यों कि जैसे तुम्हें फलादि प्यारे लगते हैं तैसे उनको भी मनुष्य का मांस बडा प्रिय कर होता है. तुम भी एक दिन मर कर भस्मभूत हो जाओगे. इस लिये सिंह का भक्ष बनना पसन्द करते हो क्या ? जब सिंहादि का प्रसंग प्राप्त होता है तब बाप के बाप को पुकार कर क्यों जान छिपाते हो ? सिंह तो दूर रहा किन्तु खटमल का आहार तो मनुष्य का रक्त ही है उसके काटने से मनुष्य की जान तो जाती नहीं तथापि उसे तुर्त मार डालते हैं; तो अहो भ्रात ! तुम्हारी जान जैसे तुम्हें प्यारी है तैसे ही उनकी जान भी उनको प्यारी जानना ! फल अन्नादि सब सजीव पदार्थ हैं अपने २ कर्म प्रमाने योनी को प्राप्त हुए हैं किन्तु भगवान ने किसी को भी उत्पन्न नहीं किये हैं. यह निश्चय समझो.

१७ अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व—सूखा काष्ठ, निर्जीव पाषान वस्त्रादि को जीव की आकृती (मूर्ति) बनावे उसे साक्षात तद्रूप माने यह भी मिथ्यात्व है

१८ मार्ग को उन्मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व—ज्ञान दर्शन चारित्र तप दान शील सन्तोष शरलता सत्य इत्यादि जो मुक्ति का मार्ग है उसे कर्म बन्ध का-संसार में परिभ्रमण कराने का मार्ग कहे. दान दया को डुबाने का खाता बतावे सो मिथ्यात्व।

१९ उन्मार्ग को सन्मार्ग श्रद्धे सो मिथ्यात्व—पृथिव्यादि पट् जीव काय की हिंसा, पुष्प फल धूपादि देव को चढाना, स्नान यज्ञ हवनादि करना सातों दुर्व्यसनों का सेवन, स्त्री आदि का भोग, नृत्य नाटकादि जो संसार में परिभ्रमण कराने के काम हैं उसे, कर्म क्षय करने का—मुक्ति का मार्ग कहे सो मिथ्यात्व।

२० रूपी को अरूपी श्रद्धे तो मिथ्यात्व—वायु कायादि कितनेक अष्टस्पर्शी रूपी (साकार—मूर्तिमन्त) पदार्थ हैं किन्तु सूक्ष्म होने से दृष्टी गत नहीं होते हैं तैसे कर्म पुद्गल भी चौस्पर्शी रूपी पुद्गल हैं उन्हें अरूपी कहे तो मिथ्यात्व।

२१ अरूपी को रूपी श्रद्धे तो मिथ्यात्व—धर्मास्ति कायादि जो चलनादि सहायक कर्ता अरूपी है उन्हें रूपी माने तथा सिद्ध भगवान अवर्णे अगंधे अरसे अफासे इत्यादि गुन सम्पन्न हैं उन की लाल रंगादि की स्थापना कर प्रथम ईश्वर की अरूपी अवस्था कह कर फिर कहे कि धर्म के या भक्त स्वरक्षण के लिये २४ अवतार धारन करे हैं सिद्ध. भगवन की मूर्ति बनावे इत्यादि प्रकार से अरूपी को रूपी कहे सो मिथ्यात्व.

२२ अविनय मिथ्यात्व—श्री जिनेश्वर भगवान के, सद्गुरु महाराज के, वचनों को उत्थापे-आज्ञा उल्लंघन करे, भगवान को चूक गये कहे, साधु साध्वी श्रावक श्राविका गुनवन्त ज्ञानवन्त तपस्वी त्यागी वैरागी इत्यादि उत्तम पुरुषों की निन्दा करे, कृतघ्नी बने, छिद्र गवेषी बने सो अविनय मिथ्यात्व।

२३ अशातना मिथ्यात्व—अशातना के ३३ प्रकार १ अरिहंत की

२ सिद्ध की, ३ आचार्य की ४ उपाध्याय की, ५ साधु की ६ साध्वी की ७ श्रावक की ८ श्राविका की, ९ देवता की, १० देवी की, ११ स्थविर की, १२ गणधर की, १३ इस लोक में ज्ञानादि गुन धारन करने वालों की, १४ परलोक में उत्तम गुनों से सुख प्राप्त करने वालों की, १५ सब प्राणी भूत जीव सत्व की, १६ कालोकाल यथोचित क्रिया का समाचरन नहीं करे सो काल की; * १७ शास्त्र के वचन उत्थापे तथा विपरीत परिणमावे सो सूत्र की, १८ जिनके पास शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया उन सूत्र देव की, १९ जिनके पास शास्त्रार्थ धारन किया उन वाचनाचार्य की, इन १९ सों के गुनों का आच्छादन करे (ढके) अवर्णवाद बोले अपमान करे तो आशातना लगे और २० जं वाइद्धं—शास्त्र पद पहिले के पीछे पीछे के पहिले उच्चारे, २१ "वच्चामेलियं"—बीच २ में सूत्र पाठादि छोड़दे, उपयोग सुन्य पढ़े, २२ 'हीणक्खरं' सूत्र पाठ के स्वर व्यञ्जनादि का पूर्ण उच्चार नहीं करे कमी करे, २३ "अच्चक्खरं" अधिक स्वरादि बोले, × २४ 'पयहीणं'—पद पूर्ण उच्चारे नहीं, पद का अपभ्रंश करे, २५ 'विनयहीणं'—विनय भक्ति रहित अहंतामद में छका हुआ ज्ञान पठन करे, २६ 'जोगहीणं' स्वाध्यायादि करती वक्त मन वचन काया के योगों की चपलता करे, २७ 'घोसहीणं'—ह्रस्व दीर्घ के भान रहित पूर्ण सब्दोच्चार नहीं करे, २८ 'सुट्ठुदिन्नं'—विनयवन्त भक्तिवन्त बुद्धिवन्त धर्म प्रदीपक इत्यादि सुष्ट-अच्छे गुणालंकृत को ज्ञान नहीं पढावे, २९ "दुट्ठुपडिच्छियं"—अवी

* जैन ज्योतिष विद्या के प्रचार के अभाव से इस वक्त यथोचित काल के जानने का घोटाला होने से पाक्षिक चौमासिक और संवत्सरी जैसे महापर्व की क्रिया को भी आराधना होना असक्य हो गया है।

× जान कर समझ कर एक अक्षर भी न्युनाधिक करे तो मिथ्यात्वी हो जावे किन्तु ज्ञानावर्णीय को जितनी क्षयोपशमता हुई है उससे जितना बोध अपन को ज्ञान प्राप्त हुआ है उस प्रमाने पठन पाठन करते ज्ञान के आराधक गिने जाते हैं क्योंकि तीर्थंकर के समान तो अन्य किसी की उच्चार नहीं सकता है।

नंत अभिमानी धर्म लुप्पक आज्ञा भंग करने वाले को ज्ञान पढावे, * ३० "अकालेकओ सज्झायं"—कालिक उत्कालिक सूत्र की समझ बिना वे वक्त शास्त्र पढे पढावे, ३१ "काले न कओसज्झायं"—प्रमाद के वश हो स्वाध्याय के काल में स्वाध्यायादि नहीं करे. ३२ "असज्झाय सज्झायं"- ३२ असज्झाय (अस्वाध्याय के योग) में शास्त्र की स्वाध्याय करे और ३३ "सज्झाय न सज्झायं"—प्रमाद वश हो ३३ असज्झाइयों रहित समय में स्वाध्याय नहीं करे. इन १४ प्रकार से ज्ञान गुन का आछादन करे. इस प्रकार ३३ आशातना करे सो मिथ्यात्व।

२४ "अक्रिय मिथ्यात्व"—अक्रिय वादी के समान जो कहता है कि आत्मा सो परमात्मा है इसलिये अक्रिय है अर्थात् पुण्य पाप क्रिया आत्मा को नहीं लगती है, जो पुण्य पाप के भ्रम में फस कर धर्माभिलाषी जनों आत्मा को तृशाते हैं अर्थात् खान पान भोग विलास ऐश आराम से वंचित रखते हैं भूख प्यास शीत ताप ब्रह्मचर्यादि धर्म का पालन कर आत्मा को दुःख देते हैं वे सब नर्क में पड़ेंगे! ऐसे मिथ्या मत स्थापी से ज्ञानी जन कहते हैं कि--वाहरे भाई? तैंने तो परमात्मा को भी नर्क में डाल दिया! भंगी भील चमार कसाई इत्यादि नीच जाति और नीच कर्म वाला बना दिया! अच्छा, फिर आत्मा परमात्मा को पोषने वाले दुखी क्यों दृष्टीगत होते हैं, परभव तो दूर रहा किन्तु इस भव में भी जो आत्मा को काबू में नहीं रखते वे दुखी देखे जाते हैं जैसे—अभक्ष अपथ्य का भक्षन करते हैं वे वात पित कफादि अनेक रोगों से ग्रहासित बन पीडा पाते हैं. चोरी करते हैं वे कारागृह में और व्यभिचार सेवन करते हैं वे गरमी सुजाकादि से सडकर मरते हैं. जूंत खाते हैं अकाल मृत्यु के ग्रास बनते हैं. क्या यही आत्मा

* जैसे सर्प को पिलाया दुग्ध विष रूप परिणमता है तैसे अयोग्य नर को दिया ज्ञान भी मिथ्यात्व की वृद्धी करने वाला हो जाता है। आगे होनहार हो उस को तो तीर्थंकर भी नहीं टाल सकते हैं।

परमात्मा का लक्षण है ? भोले जन आत्मा परमात्मा तो कहते हैं और उनही को काट के खा जाते हैं, ऐसे गपोडीशंख नर्क में जायेंगे कि आत्मा को कब्जू में रखने वाले जायेंगे ? यह निर्णय सुज्ञ जनही कर लेंगे।

२५ "अज्ञान मिथ्यात्व"--मिथ्यात्व के स्थान अज्ञान की सीमा है. अर्थात् मिथ्यात्वी अज्ञानी ही होता है मिथ्यात्व मोहोदय से सब विपरीत प्रतिभाष होता है।

गाथा—सदसदऽविसेसणाओ, भवहेउ जहच्छिओवले भाओ।
णाण फला भावाओ, मिच्छादिट्ठीस्स अण्णाणं॥ १॥

अर्थ—सत असत का विवेक न होने से संसार के कारण रूप कर्मो का बन्ध जैसा का तैसा रहने से और सच्चे ज्ञान का अभाव रहने से मिथ्यात्व दृष्टी जीव अज्ञानी ही होते हैं. अज्ञानवादी के समान 'जाने सो ताने' इत्यादि कुहेतुकर अज्ञान की स्थापना करता है. यह २५ प्रकार के मिथ्यात्व का संक्षिप्त कथन जानना।

गाथा—मिच्छेअ अणंत दोसा, पयडा दीसंति नवि गुण लेसा।
तह विय तं चेव जीवा, हो मो हंध निसेवंति॥१८॥
वैराग्य शतक।

अर्थ—उक्त कथन से स्पष्ट विदित होता है कि- मिथ्यात्व में किंचित मात्र भी गुन नहीं है किन्तु अनन्त दोष का स्थान प्रत्यक्ष है, तथापि मोह अंध बने हुए जीवों उन । आचरन करते हैं ! इति सखेदाश्चर्य !

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषि जी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी पण्डित श्री अमोलख ऋषिजी महाराज विरचित जैन तत्व प्रकाश ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड का तृतीय 'मिथ्यात्व' नामक प्रकरण समाप्तम्।

चारित्र धर्म ।

दूसरे प्रकरण में सूत्र धर्म का स्वरूप दरशाया अब यहां चारित्र धर्म का स्वरूप दरशाते हैं. चारों गति से तथा चारों कषायों से आत्मा तारे सो चारित्र. इसके दो प्रकार—१ सर्वव्रती और २ देशव्रती. इसमें से सर्व वृती साधुजी के धर्माचार का कथन तो प्रथम खण्ड के ३—४ और ५वें प्रकरणों में सविस्तार किया गया है. अब रहा देशवृती चारित्र १ जो मिथ्यात्व आश्रय का निरूंधन कर सम्यक्त्वी बने सो चतुर्थ गुन स्थान वृती सम्यक्त्व दृष्टी श्रावक और २ जो पांचवें गुणस्थान वृती सम्यक्त्व युक्त देश वृतों को स्वीकार करे सो वृतधारी श्रावक. इन दोनों का पृथक २ प्रकरण में आगे कथन किया जायगा ।



प्रकरण चौथा "सम्यक्त्व"

गाथा—नत्थि चरित्त सम्मत्त विहूणा। दंसण ओ भइयव्वं।
सम्मत्त चरित्ताइं, जुगवं पुव्वं च सम्मत्तं॥ २९॥

उत्तराध्ययन० अ० २८

अर्थात्—जिन जीवों के सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई है उन को चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है और जिन जीवों को सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गई है उन में से कितनेक चारित्र अङ्गीकार करते हैं और कितनेक उस भव में चारित्र अङ्गीकार नहीं भी करते हैं. इस लिये सम्यक्त्व में चारित्र की भजना है. किन्तु चारित्र के पहिले सम्यक्त्व की परमावश्यकता है. अर्थात् सम्यक्त्व जरूर होनी ही चाहिये. सम्यक्त्व विना सकाम निर्जरा होती नहीं है. इस लिये सम्यक्त्व विना की हुई करणी निरर्थक कही है और सम्यक्त्व की प्राप्ति होने से अन्य सब गुण क्रमशः प्राप्त हो जाते हैं। यथाः—

गाथा—नादं सणस्स णाणं, णाण विण न होइ चरण गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खं, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।

अर्थ—विना ज्ञान की प्राप्ती सम्यक्त्व की प्राप्ती नहीं, ज्ञान की प्राप्ति विना चारित्र की प्राप्ति नहीं. चारित्र की प्राप्ति विना मोक्ष नहीं मोक्ष विना कर्म से-दुःख से छुटकारा नहीं, अर्थात् सम्यक्त्व से ज्ञान की, ज्ञान से चारित्र की, और चारित्र से मोक्ष की यों क्रमशः सब गुणों की प्राप्ती होने से जीव सब दुःखों से विनिर्मुक्त हो जाता है इस लिये प्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करने की परमावश्यकता है।

सम्यक्त्व प्राप्ती का उपाय और सम्यक्त्व का स्वरूप उत्तराध्ययन जी शास्त्र के २८ वें अध्ययन में निम्नोक्त प्रकार से कहा है।

गाथा—तहियाणं तु भावणं सब्भाविएण उवएस एसेणं।
भावेण सद्दह तस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥१५॥

अर्थ—निश्चय में तो अनन्तानुबन्धी चतुष्क तीनों मोहनीय के क्षयोपशम उपशम तथा क्षय होने से मति श्रुति या जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त होवे जिस से स्वयं बुद्धि कर तथा तीर्थंकर के या सद्गुरू के सद्बोध कर चैतनिक तथा पौद्गलिक वस्तु का भेद विज्ञान प्राप्त होने से जीवाजीव धर्माधर्म यथा तथ्य तादृश्य स्वरूप को जान कर तैसी ही श्रद्धान करे प्रतीत करे उसे सम्यक्त्व तथा समकित कहना।

सम्यक्त्व के ७ प्रकार।

१ 'मिथ्यात्व सम्यक्त्व'—कोई कृत्य तो मिथ्यात्व के वश रहा है और उसकी कर्म सत्ता में से सम्यक्त्व के आच्छादन रूप ७ प्रकृतियों का क्षयोपशमादि हो गया जिस से सम्यक्त्व को तो स्पर्श ली है किन्तु अम्बड सन्यासी वत व मरियंचवत लिङ्ग (भेष) का परिवर्तन नहीं कर सका वह निश्चय में तो सम्यक्त्वी और व्यवहार में मिथ्यात्वी. और अभव्य जीव सद सङ्गतादि प्रसंग से पौद्गलिक सुख प्राप्ति का तथा मान प्रतिष्ठा की अभिलाषी बना व्यवहार में श्रावक का साधु का लिङ्ग तथा व्रत का समाचरन और विशुद्ध प्रकार पालन कर नव पूर्वाधिक ज्ञान भी ग्रहण कर ले किन्तु अभव्यता के स्वभाव से सम्यक्त्वावरणी प्रकृतीयों का क्षयोपशमनादि नहीं करे वह व्यवहार में सम्यक्त्वी और निश्चय में मिथ्यात्वी होने से मिथ्यात्व सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्व गुणस्थान (गुन का स्थानक) गिना है + क्यों कि नेगम नय वाला एक अंश को पूर्ण वस्तु मानता है और व्यवहार नय वाला व्यवहार को नय रूप नों में कहा है।

\+ दिगम्बर आम्नाय के आचार्य का [illegible] मोक्ष में मिथ्यात्व की [illegible] सम्यक्त्व [illegible] गुणस्थानों [illegible] मोक्ष को [illegible] मानते हैं।

२ 'सास्वादन सम्यक्त्व'—कोई मनुष्य उचे प्रसाद पर से पृथ्वी का अवलोकन करता चक्कर आने से नीचे गिर पड़े किन्तु पृथ्वी को अप्राप्त हुआ मध्य में ही रहे तथा आम्र वृक्ष से फल टूटा पृथवी को अप्राप्त हुआ मध्य में रहे, तैसे चतुर्थ गुनस्थान वर्ती उपशम सम्यक्त्व रूप प्रशादारूढ बना पर स्वभाव पृथवी का अवलोकन करता अनन्तानुबन्धी कषायोदय रूप चक्कर आने से पड़ा तथा जीव रूप आम्र वृक्ष का परिणाम रूप फल अनन्तानुबन्धी चतुष्क कषायोदय रूप वायु से प्रेरित हुआ च्युत हो मिथ्यात्व रूप पृथवी को प्राप्त न हुआ ऐसे सास्वादन सम्यक्त्वी को वमन हुए बाद जैसे मिष्ट भोजन का गुलचट्टा स्वाद मुंह में रहा हुआ किंचित् काल में नष्ट हो जाता है तथा डंके की चोट से मुक्त हुई घड़ियाल की झणकार किंचित काल में नष्ट हो जाती है तैसे सास्वादन सम्यक्त्व भी उत्कृष्ट ६ आवलिका ७ समयबाद नष्ट हो वह मिथ्यात्वी बन जाता है. प्रत्येक जीव को इस सम्यक्त्व की प्राप्ती जघन्य १ वक्त उत्कृष्ट ५ वक्त होती है ।

३ 'मिश्र सम्यक्त्व'—जैसे दही और शक्कर के मिश्र न होने से मिलने से खटमीठा स्वाद हो जाता है तैसे कोई मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यक्त्व की ओर गमन करता हुआ प्रति समय मिथ्यात्व पर्याय की हानि करता हुआ और सम्यक्त्व पर्याय की वृद्धी करता हुआ डावांडोल चित्त वृत्ती जो अन्तर मुहुर्त परियन्त रहती है वह मिश्र सम्यक्त्व. दृष्टान्त-ग्राम बाहिर साधु का आगमन सुन वंदन नमन करने का अभिलाषी बना कोई जीव वहां गया और साधुजी तो मिले नहीं किन्तु बाबा जोगी जो मिले उसको वंदन नमन कर सुसाधु के दर्शन के समान ही फल समझा यह सम्यक्त्व प्रत्येक जीव को जघन्य १ वक्त उत्कृष्ट १००० वक्त प्राप्त होती है. ●

● इन तीनों सम्यक्त्वों में सम्यक्त्व के गुन का प्रगाढ गुन तो प्रतिपातीपना और मिथ्यात्व होने से कितनेक इनको सम्यक्त्व नहीं मानते हैं। और कितनेक सास्वादन इन मिश्रोक्त ५ कितनेक वेदक बिना निम्नोक्त ३ ही सम्यक्त्व मानते हैं।

४ 'उपशम सम्यक्त्व'—जैसे नदी में पड़ा हुआ पत्थर पानी के आवागमन से टकरा २ कर गोल बन जाता है तैसे संसार रूपी नदी में अनादि काल से परिभ्रमण करता हुआ जीव रूप पत्थर शारीरिक मानसिक दुःखों से तथा क्षुधा तृषा शीत ताप छेदन भेदनादि अनेक कष्ट अकाम निर्जरा रूप पानी से टकरा २ कर राग द्वेष रूप परिणाम से उत्पन्न हुई अनन्तानुबन्धी और तीन मोहनी आदि कर्म प्रकृति रूप ग्रन्थी की राख से ढकी हुई अङ्गार के समान उपशमावे—ढके किन्तु सत्ता में प्रकृति का उदय बना रहे ऐसे उपशम सम्यक्त्वी तथा उपशम श्रेणी सम्पन्न प्राणी के उपशम सम्यक्त्व अन्तर मुहूर्त काल प्रमाने होती है जैसे बद्दल पतले पड़ने से सूर्य की किरणें झलकती हैं तैसे इस जीव के सम्यक ज्ञान झलकने लगता है. यह प्रत्येक जीव को जघन्य १ वक्त उत्कृष्ट ५ वक्त होती है.

५ उक्त उपशम सम्यक्त के आगे बढते २ "क्षयोपशम सम्यक्त्व" की प्राप्ति होती है. ऊपर कही ७ प्रकृतियों में से अनन्तानु बन्धी चतुष्क का पानी से बुझाई अग्नि के समान क्षय करे और तीनों मोहनिय को राख से ढकी समान उपसमावे तथा—अनन्तानु बन्धी चतुष्क और मिथ्यात्व मोहनी और मिश्र मोहनी का क्षय कर सम्यक्त्व मोहनी को उपसमावे यों तीन प्रकार से क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होती है इसमें सम्यक् ज्ञान विशेष निर्मल बनता है इस सम्यक्त्व का प्रत्येक जीवों को असंख्यात वक्त आवागमन होता है इस लिये इसकी स्थिति असंख्यात काल की है.

६ क्षयोपशम सम्यक्त्व आगे बढी और क्षायिक सम्यक्त्व को अप्राप्त हुआ दोनों के मध्य में एक समय मात्र "वेदक सम्यक्त्व" की प्राप्ति होती है उक्त सातों प्रकृतियों में से चार का क्षय करे दो का उपशम करे और जिस एक का सत्ता में रस है उसे वेदे तथा पांच का क्षय करे एक का उपशम करे और एक को वेदे यह वेदक सम्यक्त्व प्रत्येक जीव को एक ही वक्त प्राप्त होती है, स्थिति—एक समय की.

७ वेदक सम्यक्त्वी दूसरे समय में निश्चय से 'क्षायिक सम्यक्त्व" प्राप्त करता है वह उक्त सातों प्रकृतियों पानी से बुझई अग्नि के समान क्षय करता है यह सम्यक्त्व आये पीछे जाती नहीं है क्षायिक सम्यक्त्वी उत्कृष्ट १५ भव में मोक्ष प्राप्त करता है.

और भी सम्यक्त्व के ५ प्रकार ।

१ 'कारक सम्यक्त्व'—पांचवें छट्ठे और सातवें गुन स्थान वर्ती श्रावक और साधुजी में पाती है. यह अनुव्रत तथा महाव्रतों आतिचार रहित शुद्ध पालते हैं. प्रत्याख्यान तप संयमादि क्रिया स्वयं करे उपदेश आदेश द्वारा अन्य के पास से करावे ।

२ 'रोचक सम्यक्त्व" चतुर्थ गुन स्थान वर्ती जीव श्रेणिक महाराज व कृष्ण वासुदेव वत् जिन प्रणित वचन शास्त्र के द्रढ श्रद्धालु मन से तन से धन से जैनोन्नति के करने वाले. चारों तीर्थ के सच्चे भक्त भक्ति से और शक्ति से भी अन्य को धर्म में प्रवृत्ति करने वाले व धर्म वृद्धि कराने वाले. नमुकारसी आदि तप, सामायिकादि वृत देश वृती सर्व व्रती आचरने के इच्छुक किन्तु प्रत्याख्यानावर्णिय कर्मोदय से समाचर सके नहीं

३ 'दीपक सम्यक्त्व'—दीपक के समान सत्य सरल रुची कारक शुद्ध उपदेशादि प्रकाश द्वारा अन्य अनेकों को सद्धर्मावलम्बी बना, स्वर्ग व मोक्ष के अधिकारी बना दें किन्तु उन के नीचे का (हृदय) का अन्धकार नाश नहीं कर सकें अर्थात् वे ऐसा घमण्ड रखें कि-अपन तो साधु बन गये अब किसी प्रकार का पाप लगता ही नहीं है तथा जो कुछ किञ्चित् पाप लगता है वह भी अपने उपदेश से होते हुये उपकार के द्वारा शुद्ध हो जाता है यों वे अन्तरात्मा में दोष का डर नहीं रखते, व्यवहार न बिगडे इस प्रकार गुप्त अकृत्य भी कर डालते हैं. ऐसी सम्यक्त्व अभव्य तथा दुर्लभ बोधी के पाती है. यद्यपि यह व्यवहार में साधु आदि देखाते हैं तथापि मिथ्यात्व गुनस्थान का उल्लंघन नहीं करते हैं ।

४ "निश्चय सम्यक्त्व"—सम्यक्त्वावरणी कर्म प्रकृतियों का क्षय कर आत्मा में सम्यक्त्व गुन प्रकट हुये हैं वे दिव्य गुन प्रकाशक निजात्म को देव, आत्म पुद्गल के भेद विज्ञान का दर्शक गुरू ज्ञान को और आत्मा के विशुद्ध उपयोग में रमणता पूर्वक विवेक युक्त की हुई क्रिया में धर्म इन तत्वों में निश्चयात्मिक दृढ श्रद्धालु बनते हैं. क्यों कि १ अभव्य आत्मा ज्ञानादि गुन की आराधना नहीं कर सकती है. २ 'विद्या गुरूणा गुरू' ज्ञानाधिक ही गुरू पद प्राप्त करने से गुरुओं का गुरू ज्ञान ही होता है तथा प्रथम ज्ञान गुन प्रगटने से ही नन्तर सम्यक्त्वादि गुन प्रगट होते हैं और ३ शुद्ध उपयोग पूर्वक की हुई धर्म क्रिया ही निर्ज्जरा करता होती है तथा उपयोग की शुद्धी के लिये ही धर्म सम्बन्धनी सब क्रिया की जाती हैं. इस लिये निश्चय में आत्मावलम्बी के यही तीनों सम्यक्त्व के तत्व हैं।

२ 'व्यवहार सम्यक्त्व'—अठारह दोष रहित अरिहन्त को देव कर माने. सत्ताईस गुन युक्त निर्ग्रन्थ को गुरू कर माने और केवलज्ञानी प्रणित दयामय कृतव्य को धर्म माने।

व्यवहार सम्यक्त्व के ६७ बोल।

"१ पहिले बोल श्रधान ४"

गाथा—परमत्थ सत्थवो वा सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वावि।
वावन कुदंसण वज्जणा एए सम्मत्तस्स सद्दहणा॥ उत्तराध्ययन.०

१ 'परमत्थ सत्थवो'—१ मोक्ष प्राप्ति का जो आत्मा का परम उत्कृष्ट अर्थ है उस के साधने का जो ज्ञानादि रत्न त्रय रूप उपाय है जिस के जो ज्ञाता हों उन की सङ्गत करे. क्यों कि—जैसे चन्दन वृक्ष के समीप में रहा ववूल का वृक्ष भी सुगन्धित वन जाता है और निम्ब वृक्ष के समीप में रहे आम्र वृक्ष के फलों में कडुवा पना परिणमाता है तैसे ही सत्संगति से सद्गुन और असत्संगति से असद्गुन का परिणाम होता

है किन्तु याद रखिये कि जितनी शीघ्रता से विष का असर होता है उतनी शीघ्रता से औषधि का असर नहीं होता है तैसे ही असद्सङ्गति का असर बहुत शीघ्रता से हो जाता है और सद्सङ्गति का असर आस्ते २ होता है और परिणाम भी तिसका विष और औषधि जैसा होता है ।

२ सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा—उक्त प्रकार से परमार्थ ज्ञाता और विशेष सुदृष्टी अर्थात्—रत्न त्रय का आराधन पालन करता हों उन की सेवा भक्ति करे, क्यों कि जैसे राज्योपासक राज ऋद्धि का भोक्ता बनता है तैसे ही परमार्थज्ञ सुदृष्टी का उपाशक (भक्त) भी परमार्थज्ञ और सुदृष्टी-सम्यक्त्वी बनता है. ३ "वावन्न वज्जणा"—उक्त प्रकार के परमार्थ धर्म का सम्यक्त्व का वामन कर-छोड़ कर जिनोंने मिथ्यामत का स्वीकार किया है. ऐसे भृष्टों की संगती नहीं करना. क्योंकि—जैसे-व्यभिचारिणी स्त्री सती स्त्रियों को अनहोते कलंकित करती है तथा एक दिवाला निकालने वाला अनेक दिवाले निकालने वालों के नाम जाहिर कर आप सच्चा बना चाहता है तैसे वह भृष्ट भी अनेक सत्पुरुषों के अनहोते दुर्गुनों को कहकर अन्य को भी अपनाता है. भृष्ट बनाता है.

दृष्टान्त—किसी कुबुद्धि मनुष्य को व्यभिचार के दोष में राजपुरुषों ने पकड़ा और उसकी नाक काटकर देश निकाल दिया. वह अपना एब छिपाने साधु का भेष धारन कर नाचने कूदने लगा और लोगों से कहने लगा कि-अभिमान के चिन्ह रूप निकम्मी नाकको दूर करने सेही परमात्मा का साक्षात्कार- दर्शन होता है. अहो मेरे भाग्य ! हा ! हा ! क्या सत् चिदानन्द की मनोरम्य झांकी ! भोले लोगों परमात्माके दर्शनार्थ उत्सुक बने अपनी २ नाक कटा उस के चेले बनने लगे तब वह गुरू मन्त्र सुनाने के बहाने से कान में कहता है कि मैं मेरी बात छिपाने के लिये ऐसा ढोंग करता हूं तू जो मेरे जैसा नहीं करेगा तो मैं भी कहूंगा कि यह कोई जबर पापी जीव है जिस से इसे परमात्मा दर्शन नहीं देते हैं

और लोग भी तुझ नकटा पापी कह कर तिरस्कार करेंगे. यों सुन वह बेचारे भी वैसा ही ढोंग करने लग जाते थे। यों ५०० चेलों की जमात जमा ली। इनका उपदेश सुन कर एक राजा नकटा होने लगा तब उसका जो जैन धर्मी प्रधान था वह बोला कि—भोले राजन्! नकटे होने से कभी प्रभु नहीं दिखाते राजा ने कहा क्या ५०० साधु झूठे हैं? प्रधान ने नकटों के गुरुजी को लालच दे एकान्त महल में ले जा कर पूंछा कि-सच कहो भगवान देखाते हैं क्या? नहीं तो इस जरबन्द से तेरी खाल फोड़ डालेंगे एक दो जेरबन्द के लगते ही वह बोला—मारो मत २ मैं सब सच्च कह देता हूं किसी दोष में आने से राजपुरुषों ने मेरी नाक काट ली. तब ऐब छिपाने को मैं ऐसा करता हूं. हम सब झूठे हैं! यों असत्य प्रकट कर दिया जिस से सुज्ञ लोगों भ्रष्ट होने से बच गये। इति.

ऐसे ही कितनेक जिन प्रणित कठिन और निरालम्बन वृती का निर्वाह नहीं होने से मन्त्रादि अनेक लालच दे कर भोलों को भ्रम में फंसा कर सत्य धर्म से भृष्ट बनाते हैं फिर वे बेचारे पेटार्थी बने हुए तथा मान पूजा के भूखे उन के कहे प्रमाने करते हैं. कोई २ प्रधान के समान ही सुज्ञ बुद्धीवन्त होते हैं वे सम्यक्त्व से भृष्ट हो पाखण्ड फैलाने वाले पाखण्डियों का पाखण्ड जाहिर में रख आत्म सुखार्थीयों को पाखण्ड से बचाते हैं।

४ 'कुदंसण वज्जणा'—कुदेव कुगुरू कुधर्म और कुशास्त्र के मानने वाले, जिन प्रणित कथन से विपरीत क्रिया करने वाले, कदाग्रही मिथ्यात्वी की सङ्गति नहीं करे, क्यों कि- अनन्त काल पर्यन्त अपना आत्मा मिथ्यात्व में रमन किया हुआ है जिस से मिथ्यात्व के साथ बहुत सैंवा होने से मिथ्यात्व की बातों का बहुत शीघ्र असर हो जाता है इस लिये प्रथम से ही दूर रहना अच्छा है. भोले जीवों को भ्रम में फसाने को कितनेक कुदर्शनीयों कहते हैं कि—तुम्हारे ही धर्म के जैसा ही हमारा भी

अहिंसा धर्म है विशेष कुछ भेद नहीं है. यों सुन वे उन का सहवास करने लग जाते हैं फिर वे उसे समझाते हैं कि अपने सुख भोगार्थ की हुई हिंसा को हिंसा गिनना किन्तु धर्मार्थ की हिंसा अहिंसा ही होती है तुम्हारे साधुजी धर्म रक्षणार्थ नदी उतरते हैं इत्यादि सुन भोले भ्रम में फंस जाते हैं और सुज्ञ उत्तर देते हैं कि—एक ही देश में विशेष काल रहने से प्रतिबन्ध हो कर संयम का नाश होने के भय से बचने अर्थात् अटकी गाड़ी को आगे चलाने हिंसा के पाप को कम्पाते पश्चात्ताप युक्त यत्न पूर्वक नदी उतरते हैं वे उस में धर्म नहीं समझते हैं किन्तु पाप ही समझते हैं और उस का प्रायश्चित्त ले शुद्ध होते हैं आगे देशान्तर में विचर कर उपकार भी बहुत करते हैं किन्तु तुम धर्मार्थ हिंसा करें हर्षाते हो और चिकने कर्मबन्ध करते हो तैसा वे नहीं करते हैं तथा तुम्हारे इतने पाखण्ड फैलाने से उपकार व धर्म हुआ भी कुछ नहीं देखाता है और संसार कामार्थ हिंसा में पाप तो तुम भी कबूल करते हो धर्मार्थ हिंसा में पाप नहीं बताते हो. इस धृष्टता का क्या वर्णन करें ? देखिये ! ग्रन्थकार क्या कहते हैं:—

श्लोक—अन्य स्थाने करोति पापं, धर्म स्थाने मुच्यते ।
धर्म स्थाने करोति पापं, वज्र लेपं भविष्यति ॥

अर्थ—संसार में किये हुये पाप की निवृती के लिये तो धर्म स्थान में जो धर्म क्रिया करते हैं और धर्म स्थान में जा कर भी जो पाप करे तो फिर उस से निवृत्ति किस स्थान में होवे अर्थात् फिर पाप निवृत्ति का कोई स्थान रहा भी नहीं. इस लिये जिस प्रकार साधु का नाम धारन कर अनाचार सेवन करने से बज्र कर्म बन्धते हैं तैसे ही धर्म स्थान में की हुई हिंसा भी वज्र कर्मबन्ध करने वाली होती है ! हँसते २ कर्मबन्ध करने हैं किन्तु रोते २ भी छूटने मुश्किल हो जायंगे ! इत्यादि उत्तर से अपनी आत्मा को और अन्य अनेक न्याय प्रिय धर्मात्माओं को पाखण्डियों के फन्द से बचा लेते हैं ।

२ दूसरे बोले लिंग ३

लिंग नाम चिन्ह का है जैसे प्रकाश के चिन्ह से अग्नि को पहिचानते हैं तैसे निम्नोक्त तीनों चिन्ह करके सम्यक्त्वी की पहिचान होती है:—१ जैसे बत्तीस वर्ष का योधा रूप यौवन सम्पन्न सोलह वर्ष की कुमारिका के हाव भाव विलास और संगम में आसक्त बनता है तैसे भव्य—सम्यक्त्वी जिनवाणी श्रवण के आशिक होते हैं जिन वाणी जिन प्रणित शास्त्र श्रवण व पठन करते उस में लुब्ध बन जाते हैं. २ जैसे जठराग्नि प्रदीप्त पुरुष जो एक प्रहर भी क्षुधित न रह सकता हो उसे कर्म योग तीन दिन या सात दिन क्षुधित रहने का प्रसङ्ग प्राप्त हो जावे ऐसे प्रसंग में क्षीरादि मिष्ट इष्ट भोजन प्राप्त हुए उसका वह आदर करे तैसे सम्यक्त्वी जिनवानी श्रवन के तृषित को वानी सुनने का अवसर प्राप्त हुए तहत आदि बचनों से वधाता हुआ आदर पूर्वक ग्रहण करे और ३ जैसे प्रबल्य बुद्धी सम्पन्न को विद्याभ्यास करने की अभिलाषा होवे और उसे शान्त तेजस्वी उत्पाती आदि बुद्धि सम्पन्न पण्डित पढ़ाने वाले का जोग बने हर्षोत्साह युक्त विद्या ग्रहण कर उसे अपनी आत्मा में चिरस्थायी करे, तैसे सम्यक्त्वी हर्षोत्साह युक्त जिन वाणी को ग्रहण करे आत्मा में चिरस्थाई बनावे।

जिस प्रकार का कथन श्रवणित होता है, प्रायः तैसाही विचार होता है और वह कालान्तर में आकृती मय बन विचार की प्रवृती उसही तरफ कराता है. शुद्ध कथन श्रवण से शुद्ध विचार और अशुद्ध श्रवण से अशुद्ध विचार होता है किन्तु शुद्ध से अशुद्ध का असर बहुत शीघ्रता से सचोट होता है . प्रत्यक्ष ही है कि जब वेश्या भडुवे आदिका नृत्य गायन का प्रसंग प्राप्त होता है तब मृदंग तबले में से आवाज निकलती है कि धुबक २ (डुबे २) तब सारंगी में से प्रश्निक आवाज निकलती है कि किण २ (कौन २) तब वह वेश्या मानों उसका प्रत्युत्तर ही देती

हो त्यों घूमती चक्कर लगाती हुई कहती है कि-ये जी भला ये ! + अर्थात ये कुदृष्टी से निरक्षण करने वाले सब डूबते हैं किन्तु प्रेक्षको इन्द्रियों के विषय में लुब्ध हो मुग्ध बने बेचारे इस परमार्थ के अज्ञान बने उसके कामोतेजक हाव भाव कटाक्ष व शब्दों में आशक्त से वारम्वार उसका स्मरण रटन या गायनादि का गान किया करते हैं जैसा विषयोत्पादक शब्दों का अशर होता है तैसा वैराग्य उत्पादक शब्दों का अशर होना बडा मुश्किल होता है. जिस प्रकार करेले का विलम्ब का कीट (कीडा) कटुक रस में ही मजा मानता है और शक्कर में रखने से मरजाता है तैसे ही विषयाशक्त भारी कर्मी जीव डूबने के काम में मेजा मानते हैं और धर्म कथा के नाम मात्र से ही भस्मी भूत बन जाते हैं, यह मिथ्यात्वमती वालों के चिन्ह हैं और जो सम्यक् दृष्टी हैं वे उक्त कथनानुसार जिन वचनों में लीन होते हैं यह सम्यक्त्वी के चिन्ह है।

३ तीसरे बोले विनय १० ।

धर्म का मूल विनय ही है. एक विनय गुन की आस्ति के स्थान अन्य अनेक गुन क्रमशः अकर्षाये हुये चले आते हैं. सम्यक्त्वी के अंग में विनय—नम्रता का गुन स्वभाविक ही पता है, कितनेक खुशामदिये लोगों राजाओं के आगे राजमान श्रीमान् बलवान सम्मुख नम्रता करते हैं किन्तु वह स्वार्थ साधनीय होने से गिनती में नहीं है परमार्थिक बुद्धी से गुनों वृद्ध के सन्मुख की जाय वही गुन कहलाता है. जिसके १० प्रकार हैं—१ अरिहन्त का विनय, २ सिद्ध का विनय, ३ आचार्य का विनय, ४ उपाध्याय का विनय, ५ स्थविर-गुनों वृद्ध वयो वृद्ध का विनय,

+ सवैया—नर नाम धिक्कार के राम रचे, पृद सादु तथा न गमे तिन को ।
दाम देकर रामा बुलाय लई तिहां लागे हैं रामा नचावन को ॥
धिक्कार है धिक्कार है मवंग कहे सब नाल कहे जिन तो किनको ।
रामा दाम सुना के कहे, धिक्कार है धिक्कार है इनको इनको।

६ तपस्वी का विनय, ७ सामान साधु का विनय; ८ गण-सम्प्रदाय का विनय, ६ साधु आदि चतुर्विध संघ का विनय और १० सुद्ध क्रियावन्त का विनय।×

४ चौथे बोले शुद्धता ३,

जिस प्रकार रक्त का भरा वस्त्र रक्त में धोने से शुद्ध नहीं होता है किन्तु अधिक मलीन होता है तैसे ही आरम्भ के कृत्य कर जो आत्मा की विसुद्धी करना चाहते हैं किसी भी प्रकार पवित्र नहीं होते हैं किन्तु विशेष मलीन होते हैं और मलीन बनी आत्मा निरारम्भी कार्य करने पवित्र होती है ऐसा सम्यक्त्वी जो जीव जान कर आरम्भ के कामों से अपने त्रियोग की निवृती करते हैं, आरम्भ काम में रक्त देव गुरू धर्म है उनका त्याग कर निरारम्भी देव गुरू धर्म को- * १ मन से अच्छा जान, २ बचन से उनहीं का गुन ग्राम करे और ३ काय से उहीं को नमन करे।

५ पांचवें बोले दुषण ५

१ शङ्का—श्री जिन प्रणित शास्त्र के कथन में संशय धारन करे कि एक बूंद में, घड़े में, और समुद्र के पानी में असंख्यात जीव कहे हैं यह कथन किस प्रकार सच्चा जाने? सब ही असंख्यात किस प्रकार होवें उन को समझना चाहिये कि-एक को भी संख्या कहते हैं, हजार लाख

× श्लोक—भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै नें याम्बु भिर्भूमि विलम्बिनो घना।
अनुद्धता सत पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥१॥
अर्थ—जैसे फलित होने से वृक्ष नम्र होते हैं और नया जल भराने से मेघ भूमि पर झुक जाता है तैसे ही सत् पुरुष भी सम्पति प्राप्त कर किंचित भी उद्धत नहीं बनते हुये विशेष नम्र बन जाते हैं।

* विशुद्ध क्रिया के जिनका लौकिक व्यवहार शुद्ध हो जो बहुत जन के माननीय हो और वे कदापि ध्यान में विक्षेप न करें ऐसे हो तो भी पन्थ सम्प्रदाय व मत का पक्ष धारन नहीं करते सम्यक्त्वी वो उनका विनय करना उनके आगे नम्र भूत रहना, उनको अपकृत्यका नहीं करना उचित है

और पदार्थ को भी संख्या ही कहते हैं. किन्तु जिस प्रकार एक में और पदार्थ में विशेष है तैसे ही एक बूंद पानी में और समुद्र के पानी में भी जीवों की विशेषता है. ऐसे ही संशय करे कि एक छोटी सी बूंद में असंख्यात जीवों का समावेश किस प्रकार हो सकता है ? उन को समझना चाहिये कि जिस प्रकार क्रोड औषधियों का अर्क निकाल कर तैल बनाया जाता है उस तेल की एक बूंद में भी क्रोड औषधियों का समावेश हो जाता है. मनुष्य के बनाये हुए पदार्थ में भी इस प्रकार समावेश कर सकते हैं तो फिर कुदरती पदार्थ में असंख्यात जीव होवें इस में आश्चर्य ही कौनसा इस २ प्रकार की और भी अनेक शंका करके जिन बचन को मिथ्या समझते हैं वे 'संकाए नासे संमत्त' अर्थात् सम्यक्त्व का नाश कर डालते हैं ऐसा जान सम्यक्त्वी पुरुष मिथ्यात्वीयों कुहेतु-कुदृष्टान्तों से कभी भी जिन बचन में शंका सील नहीं होते हैं जो कथन अपन समझ में न आवे तो अपनी बुद्धि की कसर समझे परन्तु जिन बचनों को तो तहामेव सच ही समझे ।

२ कांक्षा—जैसे किसी ऊंट ने हलवाई की दूकान के पास लींडे किये उस में एक लींडा उछल कर चासनी की कढाई में पड़ गलेफ चढने से वह लड्डू रूप बन गया. और लड्डू के भाव ही बिक गया खाने वाले को गलेफ था वहां तक तो मजा पड़ा आखीर तो लींडा ही था ! तैसे ही बाल तपस्वी नाखून बढाना, उलटे झूलना, शरीर सुखाना पंचाग्नि तपने का कन्द मूलादि भक्षन वगैरा तप कर कन्द मूल के फल अनन्त जीवों की तथा अग्नि के असंख्य जीवों और अग्नि आदि में पड़ते अनेक त्रस जीवों की हिंसा करते हैं। जीवाजीव पुण्य पाप बन्ध मोक्ष के ज्ञान विना अन्य के देखादेखी अज्ञान तप से भोले लोगों को व्यामोह उत्पन्न कर इस लोक में महिमा पूजा और उस कष्ट से परलोक में अभोगिये (नौकर) देवता में उत्पन्न हो कुछ सुख के भोक्ता बन

जाते हैं किन्तु चौरासी के चक्कर से वे छुटकारा नहीं पाते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के ९ वें अध्याय में नमीराज ऋषि ने शक्रेन्द्र से कहा है कि—

गाथा—मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेण तु भुञ्जए।
न सो सुयक्खाय स्स धम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥४४॥

अर्थात्—कोड पूर्व वर्ष पर्यन्त निरन्तर महीने २ के उपवास का तप कर पारने में कुशाग्र पर आवे इतना आहार और अंजली में आवे इतना पानी पीने वाले अज्ञानियों का तप सम्यक् दृष्टि के नमुकारसी (दो घड़ी) के तप की तुल्यना नहीं कर सकता है. क्यों कि सम्यक् दृष्टि का तप तो भव भ्रमन का घटाने वाला होता है और अज्ञानी का तप संसार की वृद्धि करने वाला होता है इस परमार्थ के अज्ञ सम्यक्त्वी उक्त प्रकार के तपस्वियों को देख कर विचारे कि इतना कष्ट-ऐसा दुष्कर तप तो अपने मत में नहीं है इस लिये यह भी मुक्ति का मार्ग है. इस को स्वीकार अपने को भी करना चाहिये यह कांक्षा दोष कहलाता है। सम्यक्त्वी तो जानते हैं कि मोक्ष के मार्ग दो नहीं हैं सच्चा मोक्ष पथ वीतराग प्रणित दया मूल धर्म ही है. वे गान तान नृत्य ख्याल स्नान शृंगार व हिंसक क्रिया से होते हुए अन्य मतावलम्बियों के फितुर से कभी भी व्यामोह को प्राप्त नहीं होते हैं। वीतराग प्रणित जैन धर्म के सिवाय अन्य किसी भी मत की कांक्षा-वांच्छा स्वप्न मात्र में भी नहीं करते हैं।

३ "वितिगिच्छा"—कितनेक जैन धर्मावलम्बियों उपवासादि तप सामायिकादि धर्म करणी दानादि धर्म का स्वयं पालन करते हैं अन्य को पालन करते देखते हैं किन्तु इह लोक सम्बन्धी कुछ फल की प्राप्ति नहीं होती देख कर तथा दुःखी धर्मात्मा को देख कर मन में वहम लाते हैं कि इतनी धर्म करणी का फल कुछ भी दृष्टीगत नहीं होता है इस लिये धर्मार्थ जो इतना कष्ट उठाते हैं यह निरर्थक काया क्लेश तो नहीं है. अमुक को इतने दिन धर्म करते हुए उनको भी अभी तक कुछ फल प्राप्त

नहीं हुआ तो मुझे क्या होने का है ? इत्यादि विचार करे उसे विति- गिच्छा दोष जानना. इन को समझना चाहिये कि-करणी कदापि निष्फल नहीं होती है अच्छी व बुरी सब प्रकार की करणी के फल उस का काल परिपक्क हुए अवश्य ही प्राप्त होंगे। प्रत्यक्ष ही दिखाता है कि औषधि ग्रहण करते तत्काल ही आराम नहीं होता है किन्तु नियमित काल उस का सेवन और पथ्य पालन किये बाद ही गुण करती है. हे भव्य ! थोड़े काल से उत्पन्न हुए रोग का नाश करने में इतना काल लगता है तो फिर अनादि सम्बन्धी कर्म रोग का नाश तत्काल किस प्रकार हो सकता है ? तैसे ही आम्रादि वृक्ष को भी विशेष काल से पानी का सिंचन करते रहते हैं किन्तु फल की प्राप्ति तो उस का काल पूर्ण हुए ही होती है। महा परिश्रम से खेत को शुद्ध कर उस में डाला हुआ बीज भी कालान्तर में फलित होता है, तैसे ही करणी का फल भी अबाधा काल परिपक्क हुये जरूर ही प्राप्त होता है. दृष्टांत—किसी ने पूछा कि ताकत किस पदार्थ के खाने से आती है ? वैद्यराज ने कहा, दूध से, वह पेट भर दुग्ध पान कर मल्लों से कुश्ती लड़ा और हार गया, तब क्रोधातुर हो वैद्यराज से कहने लगा कि तुम झूठी दवा बता कर दूसरे को फजीती कराते हो. वैद्यराज हंस के बोले—बाबा ! मेरी दवाई सच्ची है किन्तु पान करते ही करेगी ! यही दशा उन उछांछले जीव की देखी जाती है कि-जो धर्म करणी के फल की तत्काल अपेक्षा करते हैं. और जो धर्मात्मा को दुःखित अवस्था देखने में आती है वह उस वक्त करते हुए धर्म का फल नहीं है किन्तु पूर्वोपार्जित कर्मोदय का ही फल प्राप्त हुआ है. धर्म तो निश्चय से सुख का ही दाता है किन्तु पूर्वो- पार्जित अशुभ कर्मों का क्षय हुए विना शुभ कर्मोदय किस प्रकार होगा, अर्थात् कदापि नहीं होगा. जिस प्रकार शारीरिक आरोग्यता के लिये पहिले वैद्य जुलाब से कोष्टक शुद्ध करता है अनन्तर औषधि दे सुखी

घनाता है उसही प्रकार धर्म करते जो दुःख प्राप्त होता है वह जुलाब के समान आत्म शुद्ध करता है। अशुभ कर्म का नाश होते ही सुख की प्राप्ती होगी—धर्म करणी का फल सुख रूप होगा इस में किञ्चित् भी संशय नहीं लाना।

श्री उववाईजी सूत्र के उत्तरार्ध विभाग में करणी के फल विषय श्रमण भगवन्त श्री महावीर स्वामीजी ने गौतम स्वामीजी के प्रश्नों का उत्तर निम्नोक्त प्रकार से दिया है—(१) जिस के चारों ओर किला (कोट) होवे सो ग्राम, सुवर्णादि की खान के पास वस्ती होवे सो आगर, जहां कर (हांसल) नहीं लगे सो नगर, जो बहुत बड़ा भी नहीं तैसे बहुत छोटा भी नहीं ऐसा मध्यस्थ वस्ती हो सो कब्बड (कसबा), जिसके नजदीक शहर होवे सो मंडप, जल पथ और स्थल पथ यों दोनों प्रकार के रास्ते जहां होवे सो द्रोणमुख (बंदर), जहां सब प्रकार के पदार्थ मिले सो पाटण, तापसों की वस्ती होवे सो आश्रम, पर्वत पर वस्ती हो सो संवाह, और जहा गौपालक रहते हों सो सन्नीवेस. इत्यादि स्थानों में रहने वाले मनुष्यों भोजन पानी नहीं मिलने से क्षुधा तृषा सहे, स्त्री आदि न मिलने से ब्रह्मचर्य का पालन करे। मरूस्थलादि जैसे स्थान में विशेष पानी नहीं मिलने से स्नान मंजन नहीं करे, वस्त्र स्थान नहीं मिलने से शीत ताप दंश मस्सर मत्कुण (खटमल) आदि दंश इत्यादि कष्ट अकाम (विना मन) स्वल्प काल या विशेष काल पर्यन्त सहे वे पुण्योपार्जन करे और जो मृत्यु के अवसर में शुभ परिणाम आ जावे तो १०००० वर्ष के आयुष्य वाला वाणव्यन्तर जाति के देव होवे। (२) उक्त ग्रामादि के कारागृह (कैदीखाने) आदि में रहने वाले मनुष्यों जिन को काष्ट के खोड़े में लोहे की शृंखला (बेडी) में कब्ज (कैद) किये हों, कोडे लकड़ी दे गुड़ाये, रस्सी (नाड़ा) से जकड़ बन्धे, हस्त पर कान आँख नासिका होष्ट दांत जिह्वा मस्तकादि अङ्गोपाङ्ग का छेदन किया, अंड फोड़, तिल २ जितने शरीर के सूक्ष्म खण्ड किये, खड्डे में

तथा सूवारि में उतारे, वृक्ष से बंध, चन्दनादि की तरह शिला पर घिस, काष्ट की तरह वसूले से शरीर को छीला, शूला में भेदे, घानी में पीले, क्षारादि तीक्षण वस्तु का शरीर पर सींचन किया, अग्नि में जलाये, कर्दम (कीचड़) में गाड़े, भूखे प्यासे रख हला २ कर मार, मृग पतंग भ्रमर मच्छी हस्ति आदि की तरह इन्द्रियों के वश में पड़ मृत्यु पाये, वृत भंग कर उसकी आलोयना बिना किये मृत्यु पाये, वैर विरोध उपसमाये बिना—क्षमाये बिना मृत्यु पाये, पर्वत से तथा वृक्ष से पडकर हस्ति आदि के कलेवर (मृत्यक शरीर) में प्रवेशकर या विषसे शस्त्रसे मृत्यु पाये, इत्यादि कष्टों से पुण्योपार्जन कर मृत्यु वक्त शुभ परिणाम आजावे तो १२००० वर्ष के आयुष्य वाले वाणव्यन्तर देव होवें, (३) उक्त ग्रामादि में रहने वाले जो मनुष्यों स्वभाव से ही भद्रिक- सरल स्वभावी होवे, स्वभाव से ही क्षमावन्त- शीतल स्वभावी होवे, स्वभाव से ही विनीत- नम्रात्मा होवे, स्वभाव से ही क्रोधादि चारों कषायों से उपशान्त होवे, गुप्तेन्द्रिय, गुरू की आज्ञा प्रमाने चलने वाले, माता पिता की भक्ति करने वाले, मात पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करने वाले, अल्प तृष्णा वाले, अल्प आरम्भी, निर्वद्य वृति से उपजीविका के करने वाले आयुष्य पूर्ण कर १४००० वर्ष के आयुष्य वाले वाणव्यन्तर देव होवें, (४) उक्त ग्रामादि में जो स्त्रियों राज अंतेपुर (पडदे) में रहती हैं, विशेष काल परियन्त पति का संयोग नहीं मिलने से, पति का विदेश गमन होने से, पति की मृत्यु होने से, पति की अनमानेती होने से, बाल विधवा प्राप्त होने से, माता पिता भ्राता पति जाति साम सुमर इत्यादि की लज्जा से तथा इनके बन्दोबस्त से मन में भोग की इच्छा करती हुई भी जो ब्रह्मचर्य (शील) का पालन करती हैं, स्नान मंजन तेलमर्दन पुष्पादि की माला, शृंगारादि से शरीर की शोभा नहीं करती हैं, शरीर पर मैल स्वेद धारन किये रहती हैं, दूध, दही, घृत, तेल, गुड़, मक्खन, मदिरा, मांस इत्यादि बलिष्ट व स्वादिष्ट भोजन का त्याग

करती हैं, अल्प आरम्भ समारम्भ से अपनी उपजीविका करती हैं, अपने पति के सिवा अन्य का सेवन जिसने नहीं किया है, ऐसी स्त्रियों ६४००० वर्ष आयुष्य वाले वाणव्यन्तर देव होवें, (५) उक्त ग्रामादि में रहने वाले जो मनुष्यों अन्न और पानी इन दोनों द्रव्य के सिवाय और कुछ भी नहीं भोगवें. ऐसे ही तीन चार पांच यावत् ग्यारा द्रव्य के सिवाय और कुछ नहीं भोगवें, गौ की भक्ति करने वाले, देव का तथा वृद्ध का विनय करे, ता का व्रत का आचरन करे. श्रावक धर्म का शास्त्रों का श्रवण करें. दूध, दही, घृत, तैल, गुड, मदिरा, मांस को भोगने का त्याग करे, सिर्फ सरसव का तेल ग्रहण करें. यह ८४००० वर्ष के आयुष्य वाले वाणव्यन्तर देव होवें, (६) उक्त ग्रामादि में जो तपस्वीयों- अग्निहोत्र करने वाले, सिर्फ एक वस्त्र रखने वाले, पृथ्वी शयन करने वाले, शास्त्र वचन पर श्रद्धा रखने वाले, थोड उपकरण रखने वाले, कमण्डल धारक, फल भक्षी, पानी में रहने वाले शरीर को मृतिका का लेप करने वाले, गंगा नदी के उत्तर के तथा दक्षिण के किनार पर रहने वाले, शंख ध्वनी कर भोजन करने वाले, सदैव खडे ही रहने वाले, उर्द्ध दंड रख फिरने वाले, मृग तापस, हस्ति तापस * पूर्वादि दिशा को पूजने वाले, बल्कल वस्त्र धारक, सदैव राम २ कृष्ण २ रटन करने वाले, खड्डे में बिल में रहने वाले वृक्ष के नीचे रहने वाले, सिर्फ पानी भक्षी, वायु भक्षी, सेवाल भक्षी, मूल आहारी, कन्द आहारी, पत्र आहारी, पुष्प आहारी, स्नान कर भोजन करने वाले, पंचाग्नि तापने वाले, शीत तापादि के कष्टों से शरीर को कठिन बनाने वाले, सूर्य के [illegible] में रहने वाले, प्रज्वलित अंगार के पास [illegible] रहने वाले इत्यादि [illegible] प्रकार का अज्ञान तप करने वाले [illegible] पल्योपम पर एक लक्ष वर्ष के आयुष्य वाले जोतिषी देव होवें [illegible]

* यह एकेन्द्रिय पचेन्द्रिय के पुन्य की तफावत [illegible] जीव के वध में पुन्य [illegible] अपनी उपजीविका चलाने में धर्म [illegible] का वध कर मदन करते थे।

ग्रामादि में कितने दीक्षा धारन करे हुए साधु होवें वे साधु की क्रिया का तो पालन करें किन्तु काम जाग्रत होवे ऐसी कुकथा करने वाले नेत्र [illegible] कुचेष्टा करने वाले, अयोग निर्लज्ज बचन बोलने वाले वादित्र के सहाय से गीत गान करने वाले, स्वयं नृत्य करे अन्य को नचावे, ऐसे कर्म उपार्जन कर, बहुत वर्ष साधु की क्रिया का पालन कर उक्त [illegible] पाप कर्म की आलोचना निंदना किये बिना ही आयुष्य पूर्ण [illegible] पल्य पर एक हजार वर्ष के आयुष्य वाले पहिले सौधर्म देव लोक में कंदर्पि जाति के देव होवें (८) उक्त ग्रामादि में दीक्षित तापस जिनके नाम—संख्यामती, योग के अष्टांग के ज्ञाता तथा साधक, कपिल ❀ कृत शास्त्र के मानने वाले, वन में निवास करने वाले, मग्न रहने वाले, सदैव परिभ्रमण करते रहने वाले, तथा मठावलम्बी रह कर क्षमा शील संतोषादि गुनों के धारक नारायण के उपासक, ऋगवेद, यजुर्वेद, शामवेद, अथर्वणवेद, इतिहास, पुराण, निघण्ट, व्याकरण, साठ तंत्र शास्त्र, शास्त्र

❀ भरतेश्वर चक्रवर्ती के पुत्र मरीचिंव ने श्री ऋषभदेव जी के साथ जैन दीक्षा तो धारन की किन्तु दुष्कर व्रतों को पालन करने असमर्थ हो और पुनः संसारी बनने शरमित बन मन कल्पित लिंग भेष धारन किया, यथा अन्य साधु तो निर्मल व्रत के पालक हैं और मैं व्रत भङ्ग कर मलीन बना इस लिये मुझे भगवें वस्त्र धारन करना उचित है, अन्य साधुओं तो जिनाज्ञा रूप छत्र के धारक है मैंने जिनाज्ञा भङ्ग की इस लिये बांस का छत्र धारन करना उचित है, अन्य साधु तो मनादि त्रिदंड की व्रती वाले हैं मैं तीनों दण्ड से दंडित बना इस लिये त्रिदंड (तीनांनी लकड़ी) रखना उचित है। इत्यादि नया भेष धारन कर ऋषभदेवजी के साथ रहे किन्तु समवसरण के बाहिर रह अन्य को उपदेश करे वैराग्य आवे उसे ऋषभदेव जी के पास दीक्षा दिलावें अन्यदा बीमार हुआ तब वैयावच्च के लिये चेला बनाने की इच्छा हुई उस वक्त एक कपिल नामक गृहस्थ आया वह उपदेश सुन वैरागी बना ऋषभदेव जी पास जाने को कहा किन्तु गया नहीं तब अपना शिष्य बनाया, फिर मरीचिंव मृत्यु पाकर देव हुआ। फिर कपिल के असुरी नामक शिष्य हुआ उसे आचार छोड़ कपिल भी मृत्यु पाकर ब्रह्मदेव लोक में देव हुआ पीछा आ असुरी को पढ़ाया, उसने सांख्य मत के शास्त्र की रचना की नया मत चलाया।

[illegible] धर्म के शास्त्र में भी कहा है कि भगवान का पुत्र मनु मनु का पुत्र मरीचिंव और [illegible] के पुत्र कपिल हुए यह वैष्णव मतानुयायी है।

के छे: अङ्ग, जोतिष इत्यादि शास्त्र और उनका अर्थ गुरूगम से धारन कर स्वयं पारगामी बने दूसरे को पढ़ाये. अक्षरों की उत्पत्ती छंद बनाने की व उच्चारन करने की विधी, अन्वय-पदा छेद करना. इत्यादि योग्यता रखने वाले, दान देना, शुची रहना, तीर्थाटन करना. इत्यादि धर्म को स्वयं पाले, अन्य के पास पालन करावे. यह तपस्वीयों दूसर की आज्ञा से गंगा नदी का पानी ग्रहण करे वह भी छान कर काम में लेवें, दूसरे जलाशय का पानी ग्रहण नहीं करे, गाड़ी घोड़े नौकादि फिरते चलते तिरते किसी भी वाहन में बैठे नहीं, किसी भी प्रकार का नाटक उत्सव ख्याल तमाशा देखे नहीं, बनस्पति का आरम्भ स्वयं करे नहीं, स्त्री आदि चारों विकथा करे नहीं, तुम्ब और मृतिका के सिवाय अन्य धातु पात्र धारन करे नहीं, पवित्री (मुद्रिका) सिवाय अन्य आभरण धारन करे नहीं, गेरू के रंग के सिवाय अन्य रंग के वस्त्र रखे नहीं, गोपी चंदन के सिवाय अन्य किसी वस्तु का तिलक छापा करे नहीं. ऐसे आचार के पालक ब्राह्मण जाति के दण्ड धारक ८ तपस्वी हुये जिनके नाम—१ कृष्ण, २ करकट, ३ अवड, * ४ परासर, ५ कणिय, ६ दीपायन, ७ देवपुत्र, और ८ नारद, ऐसे ही ७

* कंपिलपुर में अम्बड़ संन्यासी ने श्री महावीर स्वामी जी के उपदेश से श्रावक धर्म धारन किया किन्तु अपने मतावलम्बियों को जैन धर्मी बनाने अपना भेष पलटा नहीं। अम्बड़ को विनीत और भद्रिक भाव से बेले २ पारना और दोनों उर्ध्व हस्तकर सूर्य की आतापना लेने से अनेक रूप बनाने की वैक्रेय लब्धी और अवधी ज्ञान लब्धी उत्पन्न हुई यह समाधी मरन कर ब्रह्मदेव लोक में देव हुआ महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य हो मोक्ष जावेगा इस अम्बड़ के ७०० शिष्य (संन्यासी) जेष्ट महिने में कंपिलपुर से पुरमीतालपुर जाते अपने पास का पानी तो पूरन हो गया और पानी लेने की आज्ञा देने वाला अन्य गृहस्थ उस अरण्य में नहीं मिलने से तृषातुर बनें परस्पर कहने लगे अब क्या करना? किन्तु अपने २ व्रत भङ्ग से भयभीत बने किसी ने भी आज्ञा दी नहीं तब नजीक में रही गंगा नदी की तपती वालू रेती में बैठ कर अरिहंत सिद्ध और धर्म गुरु को नमुत्थुनं के पाठ से नमस्कार कर जाव जीव के १८ पाप स्थान के त्रिकरन और त्रियोग से तथा चारों आहार भोगवने के प्रत्याख्यान किये समाधी मरन कर ब्रह्मदेव लोक में दश सागरोपम के आयुष्य वाले देव हुए पाठकों देखिये व्रत की दृढ़ता।

ग्रामादि में कितने दीक्षा धारन करे हुए साधु होवें वे साध की क्रिया का तो पालन करें किन्तु काम जाग्रत होवे ऐसी कुकथा करने वाले नेत्र मुखादि का कुचेष्टा करने वाले, अयोग निर्लज्ज बचन बोलने वाले वादित्र के अभाय से गीत गान करने वाले, स्वयं नृत्य करे अन्य को नचावे, ऐसे कर्म उपार्जन कर, बहुत वर्ष साधु की क्रिया का पालन कर उक्त पाप कर्म की आलोचना निंदना किया बिना ही आयुष्य पूर्ण कर पल्य पर एक हजार वर्ष के आयुष्य वाले पहिले सोधर्म देव लोक में कदर्पि जाति के देव होवें (८) उक्त ग्रामादि में दीक्षित तापस जिनके नाम—संख्यामती, योग के अष्टांग के ज्ञाता तथा साधक. कपिल ॐ कृत शास्त्र के मानने वाले, बन में निवास करने वाले, मग्न रहने वाले, सदैव परिभ्रमण करते रहने वाले, तथा मठावलम्बी रह कर क्षमा शील संतोषादि गुनों के धारक नारायण के उपासक, ऋगवेद, यजुर्वेद, शामवेद, अथर्वणवेद, इतिहास, पुराण, निघण्ट, व्याकरण, साठ तंत्र शास्त्र, शास्त्र

ॐ भरतेश्वर चक्रवर्ती के पुत्र मरिचिंच ने श्री ऋषभदेव जी के साथ जैन दीक्षा तो धारन की किन्तु दुष्कर व्रतों को पालन करने असमर्थ हो और पुनः संसारी बनने शरमित हो मन कल्पित लिंग भेष धारन किया, यथा अन्य साधु तो निर्मल व्रत के पालक हैं और मैं व्रत भङ्ग कर मलीन बना इस लिये मुझे भगवें वस्त्र धारन करना उचित है, अन्य साधुओं तो जिनाज्ञा रूप छत्र के धारक हैं मैंने जिनाज्ञा भङ्ग की इस लिये बांस का छत्र धारन करना उचित है, अन्य साधु तो मनादि त्रिदंड की व्रती वाले हैं मैं तीनों दण्ड से दंडित बना इस लिये त्रिदंड (तीनांनी लकड़ी) रखना उचित है। इत्यादि नवा भेष धारन कर ऋषभदेवजी के साथ रहे किन्तु समवसरण के बाहिर रह अन्य को उपदेश करे वैराग्य आवे उसे ऋषभदेव जी के पास दीक्षा दिलावें अन्यदा बीमार हुआ तब वैयावच के लिये चेला बनाने की इच्छा हुई उस वक्त एक कपिल नामक गृहस्थ आया वह उपदेश सुन वैरागी बना ऋषभदेव जी पास जाने को कहा किन्तु गया नहीं तब अपना शिष्य बनाया, फिर मरीचंच मृत्यु पाकर देव हुआ। फिर कपिल के असुरी नामक शिष्य हुआ उसे मतादि छोड़ कपिल भी मृत्यु पाकर ब्रह्मदेव लोक में देव हुआ पीछा आ असुरी को पढ़ाया, उसने सांख्य मत के शास्त्र की रचना की नया मत चलाया। विष्णु धर्म के शास्त्र में भी कहा है कि भगवान का पुत्र मनु मनु का पुत्र मरीचंच और मरीचंच के पुत्र कपिल हुए यह वैष्णव मानते हैं।

के छे: अङ्ग, जोतिष इत्यादि शास्त्र और उनका अर्थ गुरूगम से धारन कर स्वयं पारगामी बने दूसरे को पढ़ाये. अक्षरों की उत्पत्ती छंद बनाने की व उच्चारन करने की विधी, अन्वय-पदा छेद करना. इत्यादि योग्यता रखने वाले, दान देना, शुची रहना, तीर्थाटन करना. इत्यादि धर्म को स्वयं पाले, अन्य के पास पालन करावे. यह तपस्वीयों दूसरे की आज्ञा से गंगा नदी का पानी ग्रहण करे वह भी छान कर काम में लेवें, दूसरे जलाशय का पानी ग्रहण नहीं करे, गाड़ी घोड़े नौकादि फिरते चलते तिरते किसी भी वाहन में बैठे नहीं, किसी भी प्रकार का नाटक उत्सव ख्याल तमाशा देखे नहीं, बनस्पति का आरम्भ स्वयं करे नहीं, स्त्री आदि चारों विकथा करे नहीं, तुम्बे और मृतिका के सिवाय अन्य धातु पात्र धारन करे नहीं, पवित्री (मुद्रिका) सिवाय अन्य आभरण धारन करे नहीं, गेरू के रंग के सिवाय अन्य रंग के वस्त्र रखे नहीं, गोपी चंदन के सिवाय अन्य किसी वस्तु का तिलक छापा करे नहीं. ऐसे आचार के पालक ब्राह्मण जाति के दण्ड धारक ८ तपस्वी हुये जिनके नाम—१ कृष्ण, २ करकट, ३ अवड, * ४ परासर, ५ कणिय, ६ दीपायन, ७ देवपुत्र, और ८ नारद, ऐसे ही ७

---

* कंपिलपुर में अम्बड़ संन्यासी ने श्री महावीर स्वामी जी के उपदेश से श्रावक धर्म धारन किया किन्तु अपने मतावलम्बियों को जैन धर्मी बनाने अपना भेष पलटा नहीं। अम्बड को विनीत और भद्रिक भाव से बेले २ पारना और दोनों उर्द्ध हस्तकर सूर्य की आतापन लेने से अनेक रूप बनाने की वैक्रय लब्धी और अवधी ज्ञान लब्धी उत्पन्न हुई यह समाधी मरन कर ब्रह्मदेव लोक में देव हुआ महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य हो मोक्ष जावेगा। इस अम्बड के ७०० शिष्य (संन्यासी) जेष्ट महिने में कंपिलपुर से पुरमीतालपुर जाते अपने पास का पानी तो पूरन हो गया और पानी लेने की आज्ञा देने वाला अन्य गृहस्थ उस अरण्य में नहीं मिलने से तृषातुर बने परस्पर कहने लगे अब क्या करना? किन्तु अपने २ व्रत भङ्ग से भयभीत बने किसी ने भी आज्ञा दी नहीं तब नजीक में रही गंगा नदी की तपती बालू रेती में बैठ कर अरिहंत सिद्ध और धर्म गुरु को नमुत्थुनं के पाठ से नमस्कार कर जाव जीव के अठारा पाप स्थान के त्रिकरन और त्रियोग से तथा चारों आहार भोगवने के प्रत्याख्यान किये समाधी मरन कर ब्रह्मदेव लोक में दश सागरोपम के आयुष्य वाले देव हुए पाठकों देखिये व्रत की दृढता।

क्षत्रिय जाति के तपस्वी हुय हैं. जिनके नाम—१ सिलाई, २ शशीहृग, ३ णग्गइ, ४ मगइ, ५ विदेही राजा, ६ राम और ७ बलभद्र. इस प्रकार के ज्ञान के धारक और क्रिया के पालक तपस्वियों उत्कृष्ट दश सागरोपम आयुष्य वाले पाचवे ब्रह्मदेव लोक में देवता होते हैं. (९) उक्त ग्रामादि में फिरने वाले जैन साधुओं जो साधु के आचार का तो बराबर पालन करे किन्तु आचार्य उपाध्याय कुल—गुरुभ्रात, गण—सम्प्रदाय के साधु, इत्यादि गुनवन्तों का प्रत्यनीक (बैरी) बने इनकी निन्दा करे द्वेष भाव धारन करे वह सम्यक्त्व का वमन कर मिथ्यादृष्टी बने और मनुष्यों में चांडाल के जैसे देवता में नीच जाति के जो किलविषी देव हैं उन में उत्कृष्ट तेरह सागरोपम के आयुष्य वाला देव होवे. (१०) उक्त ग्रामादि में सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच-पानी में रहने वाले मच्छादि जलचर, पृथवी पर चलने वाले गौआदि स्थलचर, आकाश में उड़ने वाले हंसादि खेचर, इनमें से किसी की विशुद्ध परिणामों की प्रवृत्ति होते ज्ञानावर्णिय कर्मों का क्षयोपशम हो जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति होवे जिसमे वे जाने की मैं मनुष्य के भव में आचरित वृतों का भङ्ग कर तिर्यंच गति को प्राप्त हुआ हूं किन्तु अब कुछ सुधारा करूं, उक्त ज्ञान से स्मरण हुआ ज्ञान और व्रतों को पुन: गृहण कर पंच अणुव्रतादि आचरन करे सामायिक पौषध * व्रतादि करणी करे, आयु अन्त में क्षेपणा युक्त समाधी मरन कर अठारह सागरोपम के आयुष्य वाले आठवें देवलोक में देव होते हैं. (११) ग्रामादि में आजीविका समण-गोशाला के मत के साधु वे एक दो तीन यावत् अनेक घर के अन्तर से भिक्षा ग्रहन करेंगे तथा विद्युत चमकने से भिक्षा ग्रहन करेंगे. ऐसे अनेक प्रकार के अभिग्रह धारन करने वाले कुछ नियम व्रत का भी आचरन करने वाले आयुष्य पूर्ण कर उत्कृष्ट

* प्रश्न—पानी में रह कर सामायिक प्रतिक्रमण किस प्रकार करते हैं ? उत्तर—जैसे पानी में एकाग्रता होता है जैसे जलचर जीव सामायिकादि व्रत का काल पूर्ण न होवे वहां तक हलन चलन नहीं करते निश्चल रहते हैं।

२२ सागरोपम के आयुष्य वाले बारहवें देव लोक में देव होवें. (१२) उक्त ग्रमादि में विचरने वाले जैन साधु पंचमहाव्रतादि का पालन तो करे किन्तु मद में छके हुए अपनी स्तुति अन्य की निन्दा करने वाले, मन्त्र यन्त्र तन्त्र निमित जोतिष औषधि के प्ररूपने वाले, पाद प्रक्षालनादि तथा पंडुरवस्त्रादि से शरीर की विभूषा करने वाले इस प्रकार बहुत व साधु की क्रिया का पालन कर उक्त पाप की आलोचना निन्दा किये विना ही आयुष्य पूर्ण कर उत्कृष्ट २२ सागरोपम के आयुष्य वाले बारहवें देवलोक में देव होवे. (१३) उक्त ग्रामादि में जिनेश्वर के बचन के गोपने वाले- विपरीत परिणमाने वाले- १ जमाली, २ तिसगुप्त, ३ अषाढ़ाचार्य, ४ अश्वमित्र, ५ गर्गाचार्य, ६ गोष्ट महिला और ७ प्रजापत इन ७ के समान और भी जो कदाग्रही होते हैं वे व्यवहार में तो जैन धर्म की क्रिया के पालक होते हैं किन्तु अशुभ परिणाम से मिथ्यात्व का उपार्जन कर मिथ्यात्वी बन जाते हैं और दुष्कर करनी के प्रभाव से उत्कृष्ट ३१ सागरोपम के आयुष्य वाले नवग्रीवेक में देव हो जाते हैं * १४ उक्त ग्रामादि में रहने वाले कितनेक मनुष्यों मिथ्यात्व का वमन कर चतुर्थ गुणस्थानावलम्बी सम्यक् दृष्टी बने हैं और कितनेक देशव्रताचरन कर श्रावक बने हैं वे श्रुतधर्म चारित्रधर्म का यथा शक्ति स्वयं पालन करते हैं अन्य के पास कराते हैं, सम्यक्त्व व्रत को अतिचार नहीं लगाते हैं, इसलिये सुशील सुव्रती होते हैं. और तहमन से साधु की भक्ति करने वाले होने से श्रमणोपासक कहलाते हैं. ऐसे श्रावकों में से कितनेक श्रावकों ने प्रणाती पातादि पापों का, आरम्भ समारम्भ वध बन्धन, ताडन, तर्जन, स्नान, शृंगार, शब्द, रूप, गन्ध, स्पर्श, इन्द्रियों के

* इन सातों ही निन्हवों का सविस्तार वर्णन मिथ्यात्व प्रकरण में कर दिया है।

* उक्त १३ कलमों में से १० कलम में कहे इन जीवों के सिवाय और सब जीवों की परलो [illegible] से बाहिर होने से आराधिक नहीं कहे हैं। आगे के सब आराधक होते हैं।

क्षत्रिय जाति के तपस्वी हुय हैं. जिनके नाम—१ सिलाई, २ शशीहर, ३ णग्गइ, ४ मगइ, ५ विदेही राजा, ६ राम और ७ बलभद्र. इस प्रकार के ज्ञान के धारक और क्रिया के पालक तपस्वियों उत्कृष्ट दश सागरोपम आयुष्य वाले पाचवे ब्रह्मदेव लोक में देवता होते हैं. (९) उक्त ग्रामादि में फिरने वाले जैन साधुओं जो साधु के आचार का तो बराबर पालन करे किन्तु आचार्य उपाध्याय कुल—गुरुभ्रात, गण—सम्प्रदाय के साधु, इत्यादि गुनवन्तों का प्रत्यनीक (बैरी) बने इनकी निन्दा करे द्वेष भाव धारन करे वह सम्यक्त्व का वमन कर मिथ्यादृष्टी बने और मनुष्यों में चांडाल के जैसे देवता में नीच जाति के जो क्लिविषी देव हैं उन में उत्कृष्ट तेरह सागरोपम के आयुष्य वाला देव होवे. (१०) उक्त ग्रामादि में सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यच-प्रानी में रहने वाले मच्छादि जलचर, पृथवी पर चलने वाले गौआदि स्थलचर, आकाश में उड़ने वाले हंसादि खेचर, इनमें से किसी की विशुद्ध परिणामों की प्रवृत्ति होते ज्ञानावर्णिय कर्मों का क्षयोपशम हो जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति होवे जिससे वे जाने की मैं मनुष्य के भव में आचरित वृतों का भङ्ग कर तिर्यच गति को प्राप्त हुआ हूं किन्तु अब कुछ सुधारा करूं, उक्त ज्ञान से स्मरण हुआ ज्ञान और व्रतों को पुनः गृहण कर पंच अणुव्रतादि आचरन करे सामायिक पौषध * व्रतादि करणी करे, आयु अन्त में क्षेपणा युक्त समाधी मरन कर अठारह सागरोपम के आयुष्य वाले आठवें देवलोक में देव होते हैं. (११) ग्रामादि में आजीविका समण-गोशाला के मत के साधु वे एक दो तीन यावत् अनेक घर के अन्तर से भिक्षा ग्रहन करेंगे तथा विद्युत चमकने से भिक्षा ग्रहन करेंगे. ऐसे अनेक प्रकार के अभिग्रह धारन करने वाले कुछ नियम वृत का भी आचरन करने वाले आयुष्य पूर्ण कर उत्कृष्ट

* प्रश्न—पानी में रह कर सामायिक प्रतिक्रमण किस प्रकार करते हैं ? उत्तर—जैसे चारों गाड़ी में एकाग्रता होता है जैसे जलचर जीव सामायिकादि पूरा का काल पूर्ण न होवे वहां तक हलन चलन नहीं करते निश्चल रहते हैं ।

२२ सागरोपम के आयुष्य वाले बारहवें देव लोक में देव होवें. (१२) उक्त ग्रामादि में विचरने वाले जैन साधु पंचमहाव्रतादि का पालन तो करें किन्तु मद में छके हुए अपनी स्तुति अन्य की निन्दा करने वाले, मन्त्र यन्त्र तन्त्र निमित जोतिष औषधि के प्ररूपने वाले, पाद प्रक्षालनादि तथा पंडुरवस्त्रादि से शरीर की विभूषा करने वाले इस प्रकार वहुत वर्ष साधु की क्रिया का पालन कर उक्त पाप की आलोचना निन्दा किये विना ही आयुष्य पूर्ण कर उत्कृष्ट २२ सागरोपम के आयुष्य वाले बारहवें देवलोक में देव होवे. (१३) उक्त ग्रामादि में जिनेश्वर के बचन को गोपने वाले- विपरीत परिणमाने वाले- १ जमाली, २ तिसगुप्त, ३ अषाढ़ाचार्य, ४ अश्वमित्र, ५ गर्गाचार्य, ६ गोष्ट महिला और ७ प्रजापत * इन ७ के समान और भी जो कदाग्रही होते हैं वे व्यवहार में तो जैन धर्म की क्रिया के पालक होते हैं किन्तु अशुभ परिणाम से मिथ्यात्व का उपार्जन कर मिथ्यात्वी बन जाते हैं और दुष्कर करनी के प्रभाव से उत्कृष्ट ३१ सागरोपम के आयुष्य वाले नवग्रीवेक में देव हो जाते हैं • १४ उक्त ग्रामादि में रहने वाले कितनेक मनुष्यों मिथ्यात्व का वमन कर चतुर्थ गुणस्थानावलम्बी सम्यक् दृष्टी बने हैं और कितनेक देशव्रताचरन कर श्रावक बने हैं वे श्रुतधर्म चारित्रधर्म का यथा शक्ति स्वयं पालन करते हैं अन्य के पास कराते हैं, सम्यक्त्व व्रत को अतिचार नहीं लगाते हैं, इसलिये सुशील सुव्रती होते हैं. और तहमन से साधु की भवित करने वाले होने से श्रमणोपासक कहलाते हैं. ऐसे श्रावकों में से कितनेक श्रावकों ने प्रणाती पातादि पापों का, आरम्भ समारम्भ वध बन्धन, ताड़न, तर्जन, स्नान, शृंगार, शब्द, रूप, गन्ध, स्पर्श, इन्द्रियों के

* इन सातों ही निन्हवों का सविस्तार-वर्णन मिथ्यात्व प्रकरण में कर दिया है।

• उक्त १३ कलमों में से १० कलम में कहे इन जीवों के सिवाय और सब जीवों को करणी जिनाज्ञा से बाहिर होने से आराधिक नहीं रहे हैं। आगे के सब आराधक होते हैं।

विषय सेवन इत्यादि कर्मों से निवृत्ती की है और कितनेक ने नहीं भी की है. किन्तु जीव अजीव पुण्य पाप आश्रव संवर निर्जरा क्रिया अधिकरण (कर्म बन्ध के कारन तथा शस्त्र) बन्ध और मोक्ष इन तत्वों के ज्ञाता बन जिन प्रणित धर्म में ऐसे निश्चल बने हैं कि जिनको देव दानव मानवादि कोई भी कदापि चलायमान नहीं कर सकता है, वे जिन प्रणित पथ में कदापि शंका कांक्षा वितिगिच्छा को प्राप्त नहीं होते हैं, जिनकी हड्डी की मींजियों कृमजी रंग के समान जैन धर्म में रंगागई हैं. वे शास्त्र के श्रवन पठन के अवसर में श्रवन पठन करते हैं, उसका अर्थ परमार्थ सम्यक् प्रकार से हृदय में ग्रहण करते हैं, उसमें संशय उत्पन्न होतो गीतार्थों से पूंछ कर निर्णय करते हैं, किसीसे भी वार्तालाप का प्रसंग प्राप्त होते कहते हैं कि- भो देवानुप्रिय ! एक जिनमत ही अर्थ प्रमार्थ रूप सार है शेष असार है, जिनके हृदय स्फटिक रत्न के समान निर्मल्य हैं अनाथ अपंगों के पोषणार्थ घर के द्वार खुल्ले रखते हैं, उन्होंने जगत पर ऐसा विश्वास अपना जमा दिया है कि वे कदापि राजा के भण्डार में और अन्तेपुर में चले जावें तो उनका अविश्वास न होवे, अष्टमी चतुदशी पक्षी तीर्थंकरों के कल्याणक तिथी को पूर्ण पौषध व्रत करते हैं, अन्न-पानी पक्वान स्वादिम सूत के वस्त्र ऊन के वस्त्र काष्ट तुम्बादि के पात्र, बिछाने को परालादि, रजोहरण, औषधी, भेषज, पथ्या, छोटे पाट. बड़े पाट, स्थानक इत्यादि साधु के देने योग्य वस्तु साधु का जोग बने उदार परिणामों से प्रतिलाभते हैं. इस प्रकार के श्रावकों आयुष्य के अंत में आलोचना निन्दना युक्त समाधी से आयुष्य पूर्ण कर उत्कृष्ट २२ सागरोपम के आयुष्य वाले बारहवें देवलोक में देव होते हैं. (१५) उक्त ग्रामादि में विचरने वाले कितनेक महात्मा ऐसे हैं जिन्होंने त्रिविध २ आरम्भ और परिग्रह अठारह पाप पचन पाचन ताडन तर्जन वध बन्धन स्नान शृंगार शब्दादि पांचों इन्द्रियों के विषय इत्यादि का परित्याग कर साधु बने हैं वे पञ्च महाव्रत पांच

समिती तीन गुप्ति इत्यादि जिनेश्वर की आज्ञा प्रमाने प्रवृतते हैं, यह समाधी भाव से आयुष्य पूर्ण कर जो सर्वतः कर्म क्षय हुये हों तो मोक्ष जाते हैं और जो सातलव जितने आयुष्य में तथा एक बेले के तप से क्षय हों इतने कर्म बाकी रह जावें तो ३३ सागरोपम के आयुष्य वाले सर्वार्थ सिद्धि महा विमान में देव होते हैं. (१६) उक्त ग्रामादि में जो महात्मा राग द्वेष विषय कषाय मोह ममत्व इत्यादि कर्म बंध के हेतु का सर्वतः परित्याग कर यथ ख्यात चारित्र व शुक्ल ध्यान से सर्व कर्मांश का क्षय कर मोक्ष जाते हैं । हे भव्यों ! इस शास्त्र प्रमान से निश्चयात्मक बनों की करणी का फल अवश्य ही प्राप्त होगा. जिनाज्ञानुसार कृत करणी से संसार संक्षिप्त होता है और आज्ञा बिना की शुभ करणी से पुण्य फल अशुभ से पाप फल प्राप्त होता है. ऐसे आस्तिक्य बन वितीगिछा दोष से अपनी सम्यक्त्व को दोषित नहीं करना ।

४ "परपाखण्डी की प्रसंशा"—जैन के सिवाय * अन्य ३६३ पाखण्डियों की सारम्भी क्रिया मिथ्याडम्बर अज्ञान कष्टादि की प्रसंशा—महिमा सम्यक्त्वी कदापि नहीं करे, क्योंकि-सारम्भी क्रिया का अनुमोदक भी उस पापारम्भ के भाग का अधिकारी बनता है, और अनेक सम्यक्त्वीयों के परिणाम असत्य धर्म के तरफ रजु करता है यों वह सम्यक्त्व का घातक और मिथ्यात्व का वृद्धी करता बन जाता है ।

५ "परपाखण्डी का संताव परिचय"—जिस प्रकार दुग्ध में नमक के सम्बन्ध से फट कर न वह दूध रहता है न उसमें मक्खन ही निकलता है और न उसकी तक्र (छाछ) बनती है सब अर्थ साधन में निरर्थक बन जाता है. वैसे ही सम्यक्त्वी पाखण्डियों के परिचय में रहने से "संगत जैसा असर" इस कहावत के अनुसार वे सम्यक्त्व भ्रष्ट बन जाते हैं.

* इन दोनों अतीचारों को आदि में जो 'पर' शब्द लगाया है सो [illegible] दृष्टी से विचार कर पाखण्डी की निन्दा से बचना चाहिये क्योंकि [illegible] अपनी आत्मा की हानि होती है।

न इधर के रहे न उधर के और न आत्मार्थ साधन के रहते हैं. जिस प्रकार सती स्त्रियों व्यभिचारिणी के सङ्ग से सतीत्व से भ्रष्ट बनती हैं और परपुरुष की परसंशा से बदनाम पाती हैं तैसे ही इन दोनों अतिचारों के सेवन से सम्यक्त्वी की यह ही दशा होती है. ×

☞ इन पांचों ही दूषणों का विशेष सेवन करने से सम्यक्त्व का नाश होता है. और थोड़े सेवन से सम्यक्त्व मलीन बनती है, ऐसा जान विवेकी सम्यक्त्वी पांचों ही दूषणों से अपनी आत्मा को बचाकर सम्यक्त्व को निर्मल रखते हैं ।

६ छट्ठे बोले लक्षण ५ ।

१ 'शम'—शत्रु पर मित्र पर और शुभाशुभ वस्तु पर समभाव रखे. उत्तराध्ययन सूत्र के २०वें अध्ययन में अनाथी निर्ग्रन्थ ने श्रेणिक राजा से कहा है ।

गाथा—अप्पा कत्ता विकत्ता य । दुहाण य सुहाण य ॥
अप्पा मित्त ममित्तं च । दुप्पट्ठि ओ सुपट्ठि ओ ॥

अर्थ—जो अपन अपनी आत्मा को सुप्रतिष्ट करे अर्थात् शुभ कर्मों में जोड़े तो उस अच्छे कृत्य का फल अपन को सुख रूप प्राप्त होने से अपनी आत्मा ही अपना मित्र तुल्य होवे और जो अपनी आत्मा को दुष्ट कर्मों में जोड कर दुप्रतिष्ट करे तो उसके फल दुशमन के समान अपन को दुःख देने वाले होवे. इससे सिद्ध हुआ कि जो अच्छा बुरा बनाव अपने लिये बनता है वह अपन कृत्य कर्मों का ही फल है. यह अनुभव सम्यक् दृष्टी को होने से वे "मित्ती मे सव भूए सु वेर मज्झं न केणइ" अर्थात् सब जीव मेरे मित्र हैं मेरा किसी के साथ भी किंचित मात्र वैर

× सवैया—बोलिये न और बोल डोलिये न ठौर ठौर संगत की रंगत एक लागे पर लागे है।
जाय बैठे बागन में वास आवे फूलन की कामनी सेज काम जागे पन जागे है।
काजल की कोटरी में कोई शाना पेसे देखो काजल की एक रेख लागे पन लागे है।
कहे कवी केशवदास इतने का यह विचार कायर की संग शूरा भागे पन भागे है।

भाव नहीं है. यों समभाव धारन करते हैं. निश्चय शुभ कर्मोदय होने से और व्यवहार में मन से किसी का बुरा चिन्तवन नहीं करूंगा. बचन से सब को हित मित सत्य बोलूंगा, काया से किसी को किसी प्रकार का दुःख नहीं पहोंचे ऐसी प्रवर्ती कर नम्रता और सेवक की तरह रहूंगा तो सब प्रानी मुझे मित्र के समान सुखदाता बन जायंगे और निश्चय से अशुभ कर्मोदय से, व्यवहार से मन से दूसरे का बुरा चिन्तवन करेंगे. बचन से मिथ्या कटुक नुकसान कर्त्ता बोलेगें और काया से किसी की हानि करेंगे कष्ट पहुंचावेंगे तो वह दुश्मन बन दुःख देने लग जायगा । कदापि अन्य के साथ अच्छा वर्ताव करते भी वह अपने साथ बुरा बर्ताव करें तो बिचार करें कि इससे मेरा बैरानुबन्ध है जो उदय भाव में आया है * तो "कडान कम्मा न मोक्ख अत्थी" अर्थात कृत कर्म का फल भोगवे बिना छुटकारा होने का ही नहीं है जो किया जिसका सो फल प्रत्यक्षानुभव हो रहा है, किन्तु पुःन द्वेष भावादि कर नये कर्मोपार्जन कर आगे दुखी होना मेरे जैसे ज्ञानी को [illegible] नहीं है. और किसी की तरफ से सुख प्राप्त हो तो समझे कि [illegible] कर्मोदय का फल है तथा सब अपना २ मतलब साधने में तत्पर हैं। मेरा मतलब कोई भी नहीं साधता ‡ ऐसा जान राग भाव धारन नहीं

---

* दोहा—बन्धा सोही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव ।
फल निर्जरा होत है यह समाधी चित्त चाव ॥१॥

‡ सवैया—कौन तेरे मात तात. कौन सुत दारा भ्रात, कौन तेरे न्याती मिले सब ही स्वार्थी ।
अर्थ के खुशाऊ हैं जी धन के चटाऊ, होय तो घटाय लेंगे मिल के धनार्थी ॥
तेरी गति कौन बूझे, स्वार्थ के माहीं रूंजे, भव २ माहीं उलजे कोई न परमार्थी ।
चेतन विचार चित्त अकेला है तू ही नित, उघट चलत आपो आपही अकार्थी ॥
बैरी घर माहें तेरे जानत स्नेही मेरे, दारा सुत वित तेरी लूंटी २ खायगो ।
और ही कुटुम्ब बहु घेरे चारों ओर हंते, मीठी २ बात कही तोखु लपटायगो ॥
संकट पड़ेगा जब तेरो नहीं कोई तब वक्त की वेत कोई काम नहीं आयगो ।
सुन्दर कहत तू तो याही वे विचार देख. तेरे यह किये कर्म तू ही फल पायगो ॥

करे × ऐसे ही शुभाशुभ पुद्गलों के सम्बन्ध में भी विचार करे कि:— पुद्गलों का स्वभाव क्षण भंगुर है। जरा में बुरे के अच्छे और अच्छे के बुरे बन जाते हैं। भोजन भोगवते अच्छा लगता है और वमन होने से वही खराब लगता है. मृतिका पत्थर यों पड़े २ खराब लगते हैं और कोरनी आदि कर आकृती बनाने से तथा योग्य स्थान लगाने से अच्छे लगने लग जाते हैं इस प्रकार जिस की प्रणती में पलटा हो उस पर राग द्वेष करना व्यर्थ है इत्यादि विचार से सम्यक्त्वी हरेक बनाव में सम भावी रहते हैं।

२ 'संवेग'—अंतःकरण में निरन्तर वैराग्य भाव रक्खे।

श्लोक—शारीरं मनसा गंतु, वेदना प्रभवाद्भवात्।
स्वप्नेन्द्र जाल सङ्कल्पाद्भीतिः संवेग उच्यते ॥

अर्थ—देह सम्बन्धी रोगादि दुःख सो शारीरिक और मन सम्बन्धी चिन्तादि दुःख सो मानसिक इन दोनों प्रकार के दुःखों कर सांसारिक जन्तु दुःखित हो रहे हैं और धन कुटुम्बादि पौद्गलिक सम्पदा है सो स्वप्न के तथा * इन्द्रजाल के समान मिथ्या है तथा नाशवान् है ऐसे संयोग में सुख की प्राप्ति किसी भी प्रकार नहीं होती है इस लिये कहा है कि-

---

× श्लोक—नकश्चिन्कस्य चिन्मित्रं न कश्चित्कस्य चिन्द्रपु।
अर्थतस्तु निबध्यन्ते मित्राणिरिपवस्तथा ॥ १ ॥

अर्थ—कोई किसी का भी मित्र शत्रु नहीं है। किन्तु स्वार्थ से ही मित्र शत्रु होते हैं ऐसा महाभारत शान्ति पर्व १३८ अध्याय में कहा है।

* दृष्टान्त—किसी भिक्षुक ने राजस्रद्धी और हलवाई की दूकान पर घेवरादि मिठाई का अवलोकन कर क्षुधा पीड़ित बना हुआ रसोई बनाने को लाये हुये कण्डे को अपने सिर तल रख शयन किया। वह स्वप्न में देखने लगा कि ग्राम का राजा मृत्यु पाने से मैं राजा बन गया हूं और मिजबानी में पेट भर घेवरादि मिठाई खाकर सो गया हूं। इतने में कुत्ता लोथाड़ [illegible] से उस भिक्षुक की आँखें खुल गई और वह रोने लगा तब किसी के पूछने से वह कहने लगा कि मेरी राजस्रद्धी और अभी खाये हुये घेवर सब कहां चले गये? कण्डे [illegible] ही रह गये अब मैं क्या करूं लोगों कहने लगे यह दिवाना हो गया। हे भव्यों यह मनुष्य जन्म और प्राप्त स्रद्धी सब स्वप्न समान है। जो इसका लाभ नहीं लेवोगे तो आयु पूरा होने पर भिक्षुक की तरह रोना पड़ेगा।

"संसारंमि दुक्ख पउरए" अर्थात् यह संसार दुःख कर के प्रचुर—प्रतिपूर्ण भरा है इस विचार से सम्यक्त्वी संसार के सर्व सम्बन्ध से उदासी भाव धारन कर निरन्तर वैराग्य भाव में रमण करते हैं सो सम्वेगी कहलाते हैं

३ 'निर्वेग'—आरंभ परिग्रह में निर्वृती भाव धारन करे क्योंकि आरंभ और परिग्रह है सो महा अनर्थ के कारण हैं, जन्म मृत्यु के बर्द्धक, दुर्गति के दाता, पाप के मूल, दावानल के समान क्षमा शील संतोषादि गुनों के घातक, मित्रता के नाशक वैर विरोध की वृद्धी करता इत्यादि अवगुनों के भण्डार हैं इन को त्यागने से ही आत्मा निज गुन को प्रगट कर सक्ती है ऐसा जान सम्यक्त्वी इन्हें प्रति दिन कमी करते रहें तैसे ही पंच इन्द्रिय के भोगोपभोग की सब सामिग्री राजारिद्धि को प्राप्त हो कर भी उस में लुब्ध नहीं बनते हैं निरन्तर रूक्ष वृती रखते हैं।

४ 'अनुकम्पा'—अनु=हितार्थ, कम्पा=कम्पना-धुजना अर्थात् अन्य प्रानी को दुःखी देख उस की दया करना. कहा भी है।

श्लोक—सत्व सर्वत्र चित्तस्य, दयार्द्रत्वं दयानवः।
धर्मस्य परमं मूल—मनुकम्पा प्रवक्ष्यते॥

अर्थ—महान् पुरुषों का फरमान है कि-धर्म का उत्कृष्ट * मूल अनुकम्पा ही है यह मूल धर्मात्मा के अन्तःकरण में होने से वे सुखाभिलाषी जीवों पर दुःख पड़ा देख उन को अनुकम्पा उत्पन्न होती है तब वे विचारे दुःख से पीड़ित जीवों का यथा शक्ति सुखोपचार कर सुखी बनाते हैं. तीर्थकरों जो सब जीव समझें इस प्रकार वचनातिशय द्वारा देशना फरमाते हैं तैसे ही साधुओं भी क्षुधा तृषा शीत तापादि मार्ग क्रमण में महा कष्ट सहे ग्राम ग्राम में उपदेश करते फिरते हैं जिस का भी मुख्य हेतु जग जन्तुओं को शारीरिक मानसिक दुःख मुक्त करने की

* दोहा—दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण॥१॥

अनुकम्पा ही है। श्रावकों अनाथ अपङ्ग प्राणियों को दुःख से पीडित देख तथा मरणाभिमुख बने देख वस्त्र अन्न धनादि से उन्हें दुःख मुक्त करते हैं यह भी अनुकम्पा ही है, दुःखी जीवों पर कदापि अनुकम्पा उत्पन्न न होवे यही अभव्य के लक्षण हैं. इंगाल मर्दनाचार्य वत् × इस वक्त में कितनेक जैनाभाष अभिग्रह मिथ्यात्वीवत् दुराग्रह कर शास्त्रों के अर्थ को विपरीत परिणमा कर भोले जीवों को भ्रम में फसाने को कहते हैं कि—किसी मरते जीव को द्रव्य देकर बचाओगे तो वह जिन्दा रह कर जो जो पाप करेगा उस की क्रिया (पाप का हिस्सा) तथा दिये हुए द्रव्य से जो पाप कार्य होगा उस की क्रिया उस बचाने वाले को लगेगी इत्यादि कुबोध से जीवों के हृदय की अनुकम्पा का उच्छेद करते हैं वे स्वयं वज्रकर्म का बन्ध करते हैं और "आप डूबंता पांडिया ले डूबे यजमान" इस चरितानुवाद के योग होता है. सम्यक्त्वी जीवों तो जानते हैं कि 'करंता सो भरंता' जो पाप करेगा उस का फल उसे ही भोगना पड़ेगा यह तो सब ही जैन जानते हैं कि पाचवे आरे के जीव मोक्ष नहीं जाते हैं किन्तु धर्म करनी से स्वर्ग लोक की प्राप्ती होती है और देवता तो अव्रती अनेक पापाचरन करने वाले होते हैं। अब जिस साधु के उपदेश से जो धर्माचरन कर देवलोक में जो देवांगनादि का सेवन वगैरा पाप करेगा वो पाप उन साधुजी को लगेगा क्या ? जो इस प्रकार पाप लगता हो तो फिर तीर्थंकरों और साधुओं का धर्मोपदेश धर्म प्रचार करना

× पाडलीपुर नगर के चन्द्रगुप्त राजा ने पक्खीपोषे में स्वप्ना देखा कि ५०० हस्ति के आगे भण्ड सूवर आ रहा है प्रातः काल में ५०० साधु के परिवार से आचार्य आये उनकी परीक्षा के लिये राजा ने रात्री को साधु उतरे थे उस मकान के बाहिर रात्री को कोयले बिछवा दिये। उन्हें देख २ कर जीवों की शंका उत्पन्न होने ५०० साधु तो पीछे फिर गये और आचार्य उन कोयले को खूंदते हुये चले गये तब राजा समझ गया कि यही भण्ड सूवर समान अनुकम्पा रहित अभव्य जीव दीखता है। प्रातःकाल में साधुओं को समझा कर उसको आचार्य पद से दूर किया और योग्य साधु को आचार्य बनाया इस प्रकार अभव्य के अनुकम्पा नहीं होती है।।

ही व्यर्थ हुआ ? जिस प्रकार तीर्थंकरों और साधुओं जीवों को दुःख मुक्त करने के आशय से धर्मोपदेश धर्म प्रचार करते हैं इसी सम्यक्त्वी तथा श्रावक जन भी अनाथ अपंग जीवों को दुःख मुक्त करने के आशय से छुड़ाते हैं उन को "दाणाण सेठं अभयप्पयाणं" इस जिनाज्ञानुसार सब दानों में श्रेष्ठ अभयदान देने का महा फल प्राप्त होता है। क्यों कि कोई चिन्तामणि किसी को दे कर कहे कि इस बदल तेरे प्राण मुझे दे तो वह तत्काल चिन्तामणि फेंक देगा और अपने प्राणों को बचायगा इससे जाना जाता है कि तीन लोक की सम्पदा से * भी प्राण अधिक प्यारा है ! तो फिर थोड़े द्रव्य से अन्ध के प्राण बचें इस लाभ का तो कहना ही क्या ! "आत्मावत् सर्व भूतानि, यः पश्यति सः पश्यति सम्यक् दृष्टी तो अपने प्राणों के समान सर्व प्राणीयों को समझते हैं. और उपाय चले उस प्रकार सब को अभय देते हैं. सम्यक् दृष्टी जीव तो कषाई आदि दुष्ट प्राणी को भी अनुकम्पा कर उसे दुष्ट कर्म छुड़ाने यथा परियत्न करते हैं जो वह दुष्ट कृत्य छोड दे तो ठीक नहीं छोड़े तो उस का कर्म गति प्रबल्य जान उस पर भी द्वेष नहीं करते हैं जिस प्रकार ग्रहस्थ अपने कुटुम्ब को दुःख से बचाने का उपचार करता है त्यों सम्यक् दृष्टी "मित्ती मे सव्वे भूऽसु"—सर्व जगत जंतु को अपना कुटुम्ब जान उन के हित सुख की योजना करते हैं. दान से भी अनुकम्पा अधिक है क्यों कि धन खुटने से दान देना तो बन्द हो जाता है किन्तु अनुकम्पा का झरना तो सम्यक् दृष्टी के हृदय में निरन्तर झरता ही रहता हैं यह अनुकम्पा ही सम्यक् दृष्टी का लक्षण है।

* श्लोक--आयुःक्षणलवमात्रं, नलभ्यते हेम कोटी भिरपि।
तद्गच्छतिसर्व मृषतः काधिकादानी ॥

अर्थ—करोड़ों रुपये खर्चने से भी क्षिणमात्र आयुष्य मिलता नहीं है। इस लिये प्राण मात्र से अधिक दानी कोई भी नहीं है।

५ 'आसता'—श्रीजिनेश्वर प्रणित शास्त्र के कथन पर व धर्म पर दृढ श्रद्धा-प्रतीत रक्खे. कहावत है कि— " आस्ता सुख सासता " आसता (यकीन) से ही मन्त्र यन्त्र तन्त्र जड़ी बूटी औषधी व्यौपार और धर्म आदि यथा रूप फल के देने वाले होते हैं, देखिये भूत काल में हुये अरणकजी कामदेवजी मण्डुकजी * श्रेणिक महाराजा और कृष्ण वासुदेवादि सम्यक् दृष्टी श्रावकों कैसी दृढ श्रधा के धारक थे जिनको प्राणान्त हो ऐसे महा कष्ट देकर और धर्म से विपरीत स्वांग बनाकर देव दानव मानव धर्म से किञ्चित भी परिणामों को‡ चलित नहीं कर सके—श्रधा भृष्ट नहीं बना सके. इस प्रकार उनको दृढ धर्मी देख व दुख देने वाले भी मिथ्यात्व का निकन्द कर सम्यक् दृष्टी बन गये और ऐसी दृढ आसता के प्रताप से वे जीवों एकावतारी अर्थात् एक भव के नन्तर मोक्ष प्राप्त करने वाले तथा सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर गौत्र के उपार्जन करने वाले बनगये । इस वक्त जैनीयों और विशेष में जैन साधुमार्गीयों श्रधा हीन बन कर गोबर के कीले के समान जिधर नमावे उधर नम जाते है और जिधर गुडावे उधर गुड जाते हैं. इससे ही यह महाप्रभाविक जैन धर्म के पालक होकर सदा

* आरणक कामदेव श्रेणिक कृष्ण इनका कथन तो बहुत जैनियों जानते हैं किन्तु मण्डुक श्रावक का कथन प्रसिद्ध में कम है सो यहां उल्लेख करते हैं भगवती सूत्र में कहा है कि राजगृही नगरी के गुन सिलाचैत्य में श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने पंचास्ति काय का व्याख्यान दिया जिसको समझ कालियादि अन्यतीर्थी को न होनेसे वे समव सरण के बाहिर आ उपहास करते मण्डुक श्रावक दर्शनार्थ जाता देख बोले कि तेरे गुरु महावीर तो बड़े गपोड़े मारते हैं आज व्याख्यान में कहा कि धर्मास्ति चलन सहाय देती है वगैरा किन्तु हम तो उसे देख ही नहीं सकते हैं। मण्डुक जो विशेरज्ञ न होने से इस कथन को जानते नहीं थे तो भी उत्पत्तीय बुद्धी से कहा कि यह वृक्ष का पत्ता किससे हिलता है? वे बोले वायु से मंडुक बोले को तुम देखते हो क्या? वे बोले—नहीं फिर वायु का नाम क्यों लेते हो? उत्तर पत्ता हिलता देख मण्डुक जैसे वायु सूक्ष्म है तैसे धर्मास्ति भी सूक्ष्म है इत्यादि ४ प्रत्युत्तर से निरुत्तर कर समवसरण में आये तब भगवन्त महावीर ने चारों तीर्थ के सन्मुख मण्डुक की तारीफ की ।

‡ दोहा—धन देकर तन राखिये, तन दे रखिये लाज ।
धन दे तन दे लाज दे, एक धर्म के काज ॥१॥

प्रभाविक नवकार मन्त्र के स्मरण करने व ... म्यक्त्वी
इज्जत से जन संख्या से सुख से और धर्म ... की का
हैं तरह २ के दुःख से दुखित प्रज्वलित ह ... क्ति ... ीं ४९५
सामग्री को प्राप्त कर व्यवहारिक करण
वृताचरण दुष्कर तपाश्चरण सामायिक पौषधादि ...धिक देखे जाते हैं किन्तु केवल श्रधा की दृढता बिना उस करणी का यथा तथ्य फल प्राप्त नहीं कर सकते हैं. ज्ञान के अभाव से यश पूजा के भूखे बने एक दूसरे के देखा देख प्रति स्पार्धी बन क्रोड़ों का माल कोड़ों में गमा देते हैं, इसलिये चेताना है कि- हे भव्यो ! देह धन यश सुखादि की प्राप्ती तो अनन्त वक्त होगई है उससे कुछ गर्ज सरी नहीं. किन्तु 'सद्धापरमदुल्लहा'—अर्थात् श्रधा की प्राप्ती बड़ी दुर्लभ है. करणी करने में तो महापरिश्रम उठाना पड़ता है सो तो कर लेते हो और करणी का सच्चा फल देने वाला बिना परिश्रम का काम जो "आसता" है उसमें स्थिल बन रहे हो यह बडे खेदाश्चर्य की बात है !! चेतो चेतो ? और सुभाग्योदय से अब सच्चे धर्म की प्राप्ती होगई है तो यशादि की इच्छा का त्याग कर दृढ श्रधा शील बन यथा शक्ति करणी कर जिसका महान फल की यथा तथ्य प्राप्ती करने वाले बनो !

उक्त-सम सम्वेग निर्वेग अनुकम्पा और आसता यह ५ लक्षण जिसमें देखे जाते हों उन्हीं को सच्चे सम्यक्त्वी—समकिती जानना चाहिये !

७ सातवें बोले भूषण ५ ।

१ "धर्म में कुशल होवे"—कौशलता चतुरता पूर्वक किया हुआ कोई भी काम अच्छा होता है इसलिये कार्य कर्ताओं को उस कार्य को निपन्न करने के प्रथम कौशल्यता प्राप्त कर फिर उसका इष्ट कार्य में व्यय कर कार्य

४९६ में पेज का नोट श्लोक—अभयं सर्व भूतेभ्यो यो ददाति दया परः ।
अभय तस्य भूतानि, ददन्ति त्वा शुभ ॥१॥
अर्थ—जो सब को अभय देता है ... सब अभय देते हैं ।

बनाने का प्रयत्न करते हैं वे कर्म से कार्य को अच्छा भी बना हैं. और किसी के छल में ठगाते नहीं हैं. तैसेही सम्यक्त्वी भी धर्म कार्य को अच्छा यथोचित बनाने प्रथम गीतार्थ गुरू आदि के पास शास्त्रार्थ थोकडे गंगेया अनगार के भांगे आदि ज्ञान प्राप्त कर धर्म मार्ग में चतुर बनते हैं और फिर उस ज्ञान के प्रभाव से ज्ञान दर्शन चारित्र रूप धर्म को प्रदिप्त करने के वास्ते अनेक नई २ युक्तियों की योजना कर उपदेश व्रत तपादि में कौशल्यता बता कर भव्यात्माओं का मन उस तरफ़ आकर्षन करते हैं, तैसेही पाखण्डियों के कुतर्कवाद के छलसे छलित नहीं होते हैं. उत्पात्त बुद्धी से कुतर्क का खण्डन सुतर्क से कर सत्य पक्ष स्थापते हैं।

२ 'तीर्थ सेवा करे'—संसार समुद्र के तीर-किनारे पर रहा जो मोक्ष स्थान उसको प्राप्त करने के अधिकारी साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप चार * तीर्थ हैं. इनको धर्माराधन के कार्य में सहायता देना सो सेवा—भक्ति करना यही सम्यक्त्वी का भूषन है. क्योंकि-राजा की सेवा करने से राज सुख, शेठ की सेवा करने से धन सम्पत्ती की प्राप्ती होती हैं तैसे ही उक्त चारों तीर्थ की सेवा भी मुक्त का साधन है. तीर्थ सेवकों का कृतव्य है कि—जब साधु साध्वी का आगमन हो तब यत्ना पूर्वक सन्मुख जा गुण गान करते ग्राम में प्रवेश करावे, यथोचित स्थानक (मकान) आहार पानी वस्त्र पात्र औषधोपचार जो चाहिये सो स्वयं दें अन्य के पास से दिलावे व्याख्यान श्रवन, उपदेश धारन, यथा शक्ति व्रत नियम

* मकसूदाबाद अजीमगंज के बाबू धनपतिसिंह जी की तरफ से छपा हुआ नंदी सूत्र के पृष्ट २२४ में कहा है कि नंदी आदि तथा यात्रा करने के तीर्थ ये सब द्रव्य तीर्थ जिस कर संसार न तीराई मने सावद्य कर्तव्य तीर्थ कर तीरमा नहीं है जो भाव तीर्थ ते चतुर्विध संघ ज्ञानादि कर सहित प्रधान मयी ते माटे जे भावथकी तारे ते भाव तीरथ तथा क्रोधाग्नि दाहा उप शमावी ये। लोभ तृष्णा टाली ये कर्ममलफेडु अथवा ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रिन्हे रही यो तिणमे भाव तीर्थ कही ए।

स्वयं करे अन्य के पास से करावें और मन ... म्यक्त्वी
धर्मोत्पत्ति स्वयं करें अन्य के पास करावें । ... ी का
ग्राम के बाहिर उतरते थे वहां भी लोगों ... हीं
स्वयं अर्पन कर धर्मोन्नति करते थे. किन्तु ...
जीव ऐसे हैं कि घर के निकट रहे साधु के दर्श...
सकते हैं। कहा है:—

दोहा—पुण्य हीन को ना मिले, भली वस्तु का जोग ।
जब द्राक्ष पक्कन लगे, तब काग कंठ हो रोग ॥

भव्यो ! सच समझिये धन सम्पदादि जोग तो अनन्त वक्त मिल गया हैं और फिर भी मिल जायगा किन्तु साधु दर्शन मिलने बहुत मुश्किल हैं। कहा है:—

सवैया—मात मिले सुत भ्रात मिले पुनि तात मिले मन वंछित पाई ।
राज मिले गज बाजि मिले सुख साज मिले युवती सुखदाई ॥
इहलोक मिले परलोक मिले सब थोक मिले वैकुंठ सिधाई ।
सुन्दर सब सम्पत्ति आन मिले पन साधु समागम दुर्लभ भाई ॥

ऐसा जान साधु साध्वी का जोग मिले उन की सेवा से सम्यक्त्वी कदापि वंचित नहीं रहते हैं. ऐसे ही स्वधर्मी श्रावक श्राविका की सेवा भक्ति में लाभ समझना चाहिये । श्रावक करणी की स्वाध्याय में कहा भी है कि—"स्वामी वत्सल करजे घणा, सगपण मोटा स्वामी तणा" अर्थात् मात पिता भ्रात स्त्री पुत्रादि संसारिक सगपन (सम्बन्ध) जो हैं सो सब मतलबी हैं आत्मोद्धार के कार्य में विघ्न कर्ता हैं और धर्मी भाइयों का सगपन है सो परमार्थिक और आत्मोद्धार के कार्य में सहायक है *

* श्लोक-पाप निवारयति योजयते हिताय । गुह्यानि गूहति गुण प्रगटी करोति ।
आपद्गतं च जहाति ददाति काले, सन्मित्र लक्षण मिदं प्रवदंति सन्तः ॥१॥
अर्थ—अच्छे मित्र के लक्षण-पाप से बचावे, हितकार्य में लगावे. गुप्त गुणों को प्रगट करे, आपत्ति में सहायता करे धर्म मित्र ऐसे ही होते हैं।

५ स्वधर्मीयों की वात्सल्यता—सेवा भक्ति करने को सम्यक्त्वी श्रद्धा रहते हैं। ज्ञान के इच्छुक को पुस्तकादि ज्ञान के उपकरणों का, तपस्वी को उष्ण पानी तैलादि ओखद, शयन वस्त्र धारने पारने का, विशेषज्ञ धर्मोपदेशक को सुखोपजीविका का, अनाथ अपंग गरीबों को द्रव्य आहार वस्त्र व्यापारादिक में यथोचित सहाय देते हैं. गुणानुवाद सत्कार सन्मानादि से धर्माराधन में उत्साही बनाते हैं. इस प्रकार सेवा भक्ति स्वयं करते हैं और अन्य के पास से कराते हैं।

३ "तीर्थ के गुण का जाण होवे"—उक्त चार तीर्थ कहे जिनका समावेश गुन की अपेक्षा से दो में हो जाता है. यथा साधु और श्रावक. इसमें साधु के २७ गुन और श्रावक के २१ गुन कहे हैं * जिसका ज्ञाता सम्यक् दृष्टी को अवश्य ही होना चाहिये. क्योंकि—"अपने तो गुन की पूजा, निगुनों को पूजे वह पंथ ही दूजा"-इस वक्त कितनेक मायावी जन उदर पूर्णार्थ गुन की प्राप्ती किये बिना ही श्रावक साधु का भेष धारन कर कल्पित गपोड़ों से भोले लोगों को भरमा कर ठगाई करते हैं. स्वार्थ साधन मन्त्र यन्त्र औषधादि करते हैं तथा कितनेक व्यभिचार सेवन कर धर्म को कलंकित करते हैं. ऐसों को देख भोले जन सच्चे साधु श्रावक को भी ठग समझ कर श्रद्धा भृष्ट बन जाते हैं. जो साधु श्रावक के गुनों को जानते होंगे ऐसे ढोंगियों के भ्रम में नहीं फसेंगे क्यों कि—वे परिक्षा पूर्वक ही उन को मान पान देंगे निगुनों का सहवास मात्र भी नहीं करेंगे और ढोंगियों को पर भ्रष्ट कर जैन धर्म की जोती जागृती रखेंगे. स्वतं दृढ बने हुए अन्य अनेकों को दृढ बनावेंगे.

* श्लोक—गुणिनि गुणज्ञो रमते । न गुण शीलस्य गुणिनी परितोष ॥
अलिरेत्यनीत्र नानपद्म । नदर्दुरस्त्वेक वासोऽपि ॥ १ ॥

अर्थ—गुन के जानने वाला गुनवंत के साथ प्रीति करता है किन्तु गुनहीन गुनी से सन्तोष नहीं पाता है जैसे भ्रमर तो कमल पर आता है और मेंडक छोड़ कर चला जाता है।

४ "धर्म से अस्थिर को स्थिर करं" कोई साधु श्रावक तथा सम्यक्त्वी किसी अन्यमतावलम्बी के सहवास से धर्म भ्रष्ट होजाये तो सम्यक्त्वी का कृतव्य है कि– उसकी शंकोद्धार करने को स्वयं सामर्थ हो तो स्वयं नहीं तो किसी विशेषज्ञ गीतार्थ का योग बना संवाद द्वारा शंका का समाधान करा दृढ बनावे. यदि कोई किसी संकट से प्राप्त धर्म भृष्ट हो और उसके संकट निवारन को स्वयं समर्थ हो तो स्वयं, नहीं तो अन्य की सहायता से उस का संकट विदार्ण कर धर्म में स्थिर करे, कदापि संकट विदारन जैसा कोई उपाय न हो तो उसे समझावे कि कर्म गति बडी विचित्र है⚹ तीर्थंकरों और चक्रवार्तियों जैसे महा पुरुषों को भी कर्म ने नहीं छोडा तो अपनी क्या कथा, किन्तु संकट समय जो संत और सतीयों धर्म में अचल रहे हैं तो किञ्चित् काल में उन का दुःख नष्ट हो महा सुख के भोक्ता बन विशेष में अपने नाम को संसार में अमर कर कर गये ! देखिये ! शास्त्र कथा ढालों आदि में उन ही का नाम सुनने में आता है कि जिन्हों ने संकट में भी धर्म का सुख के समय से अधिक पालन किया है. कर्म को हटाने वाला धर्म ही है, और कोई भी नहीं है इस लिये संकट से मुक्त होने को संकट में अधिक उत्साह से धर्म साधन कीजिये कि जिस से जिस प्रकार सम्मुख होने से कुत्ता भागता है तैसे संकट भी भाग जायगा. धर्म करने को प्रवृत्त हुए होतो कर्म रूप शत्रु के सन्मुख हो उसे हटा कर अक्षय सुख रूप राज प्राप्त करने को हुए हो, वह राज देने को कर्म तुम्हारे सन्मुख आये हैं अब इन से घबराना नहीं चाहिये ! जो क्षत्री संग्राम में उतर भागता है उस की बड़ी खराबी होती है सुवर्ण को तो ज्यों ज्यों ताप अधिक लगता है त्यों त्यों वह गुन में अधिकाधिक

⚹मनहर छंद—आदिनाथ अन्न बिन मास द्वादश रहे। महावीर साढे बारह वर्ष दुख पाये हैं।
सनत्कुमार चक्री कुष्टी वर्ष सातसौ लो ब्रह्मचक्री अन्ध रही नर्क सिधाये हैं॥
इत्यादिक इंद्र नरेन्द्र कर्म वश बने। बिटम्बना सही तेरी गिनती कहलाये हैं॥
कहत अमोलक जिन वचन हृदय तोल, समभाव कर्म नाडे सुखी सोही थाये हैं।

वृद्धि पाता है और पीतल काला पड़ जाता है। अपने को तो सुवर्ण समान होना उचित है. कितनेक भोले संकट के समय ऐसा विचार करते हैं कि मैं धर्म करने लगा तब से ही मुझ पर यह दुःख खड़ा हुआ है, इस विचार से वे धर्म को कलंकित करते हैं, और बज्र कर्म बन्ध करते हैं यह तो निश्चय रखिये कि धर्म करने से कभी दुःख प्राप्त नहीं होता है यह दुःख है सो पूर्व कृत कर्मों का ही परिणाम है सो जैसे हड्डी का ज्वर औषधि के प्रयोग कर नष्ट होने को उभर कर बाहिर आता हैं. तथा जैसे जुलाब के प्रयोग से कोष्टक शुद्ध होता है तैसे धर्म के प्रयोग से ये नष्ट होने को कर्म का जुलाब होता है। जो जुलाब के किंचित् दुःख से घबरा कुपथ्य कर लेता है वह बहुत दुःख पाता है तैसे ही कर्मोदय से धर्म भ्रष्ट बन कुमत आचरन करने वाला भी अनन्त दुःख को प्राप्त होता है। निश्चय रखो अशुभ कर्म नष्ट हुए बिना सुख होगा ही नहीं। यह दुःख है सो सुख का साधक है. इस लिये बहुत खुशी से दुःख को भुक्त सुखी हो जाना चाहिये। "दुःखान्ति सुख" दुख का अन्त होते ही सुख तैयार है। इत्यादि उपदेश व सहायता द्वारा जो धर्म से चलित होते हुओं को अचल करता है वह भी सम्यक्त्व का भूषण है।

५ धर्म में धैर्य वन्त होवे—चौथे बोल में अन्य को धैर्य पिग कहा— "परोपदेश दादाति कुशला, दृष्टन्ते वह वे नरा" अर्थात अन्य को उपदेश कर स्थिर करने वाले तो सृष्टि में अनेक नर हैं किन्तु स्वयं अपनी आत्मा को उपदेश कर्ता बहुत थोडे होते हैं जो * प्रथम अपनी आत्मा को स्थिर कर अन्य को स्थिर करने को परियत्न करेगा उसका उपदेश शीघ्र ही सफल होगा. इसलिये सम्यक्त्वी का कर्तव्य है कि रोग सोग वियोगादि के

---

* श्लोक—परोपदेश वेलायां, शिष्टः सर्वेभवंतिवे।
विस्मरंतिहिशिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते ॥१॥

अर्थ—अन्य को उपदेश करने में तो सब ही कुशल बन आते हैं किन्तु जब अपने पर वक्त [illegible] होता है तब उपदेश भूल जाते हैं। मानव धर्म शास्त्र ॥

प्रसंग में आप अचल रहे आर्तरौद्र ध्यान ध्यावे नहीं, सोग सन्ताप विलापात करे नहीं. दुःख संकट के समय में भी सुखी अवस्था के समान हर्षोत्साही बना हुआ अधिक २ धर्म वृद्धि करे दूसरों के अन्तःकरण पर धर्म की छाप चढ़ालें सच्चे धर्मात्मा का परिचय बतावे. स्वयं के स्वजन कुटुम्ब जो आर्तध्यान सोग सन्ताप करें तो ठपका देकर रोके. मिलने आने वाले सम्बन्धी मित्रादि को अपना किंचित भी दुःख नहीं दर्शाता हुआ वैराग्योपदेश करे. ऐसे धर्मावलम्बी धर्मात्मा स्वयं भी सुखी रहते हैं, और अन्य ॐ को भी सुखी रखते हैं, और संकट के प्रसंग में धैर्य के प्रताप से महाकर्मों की निर्जरा करने वाले होते हैं वैसे ही अनेकों को कर्म बन्धन से बचाकर उन्मार्ग में जाते को सन्मार्ग में लगाते हैं।

☞ उक्त पांच प्रकार के भूषण-अलंकारों से सम्यक्त्वी जन अपनी समकित अलंकृत-भूषित कर अन्य का मन उधर आकर्षित करते हैं।

"८ आठवें बोले प्रभावना ८"

१ पवयण—प्रवचन शास्त्र यही धर्म के सच्चे प्रभावक हैं भूत काल में केवल ज्ञानी तथा श्रुत केवली महा पुरुषों द्वारा जिन प्रणित धर्म का अद्वितीय प्रभाव पड रहा था किन्तु भविष्य में उनका तो अभाव हो गया है अब उनकी वाणी से उद्धृत वचन जो कि आचार्यों द्वारा संकलित किये गये वेही प्रवचन भविष्य में धर्म स्तंभ रूप आधार भूत बन रहे हैं उन का ज्ञान सम्यक्त्वी को प्राप्त करना परमावश्यकीय है इसलिये गुरुगम से स्वयं शास्त्र का श्रवन पठन मनन करे, अन्य को करावे. इस प्रकार ज्ञान में परिपक्व बना सम्यक्त्वी स्वयं की तथा अन्य की आत्मा को उन्मार्ग में गमन करते को रोक कर सन्मार्ग में स्थापन कर सक्ते हैं. ×

ॐ दोहा—धीरज से धोका टले, रहे शरीर भी मस्त।
तामस कभी न ऊपजे, धीरज बड़ी है वस्त ॥१॥

× दक्षिण हैद्राबाद निवासी राजाबहादुर लाला सुखदेवसहाय जी ज्वालाप्रसाद जी ने रू० ४२०००) का अदर खर्च कर ३२ ही शास्त्रों का उद्धार कर १००० स्थान शास्त्र भण्डार कर देने से शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने की अच्छी सुभिता कर दी है।

वृद्धी पाता है और पीतल काला पड़ जाता है। आपने को तो सुवर्ण समान होना उचित है. कितनेक भोले संकट के समय ऐसा विचार करते हैं कि मैं धर्म करने लगा तब से ही मुझ पर यह दुःख खड़ा हुआ है, इस विचार से वे धर्म को कलंकित करते हैं, और वज्र कर्म बन्ध करते हैं यह तो निश्चय रखिये कि धर्म करने से कभी दुःख प्राप्त नहीं होता है यह दुःख है सो पूर्व कृत कर्मों का ही परिणाम है सो जैसे हड्डी का ज्वर औषधि के प्रयोग कर नष्ट होने को उभर कर बाहिर आता हैं. तथा जैसे जुलाब के प्रयोग से कोष्टक शुद्ध होता है तैसे धर्म के प्रयोग से ये नष्ट होने को कर्म का जुलाब होता है। जो जुलाब के किंचित् दुःख से घबरा कुपथ्य कर लेता है वह बहुत दुःख पाता है तैसे ही कर्मोदय से धर्म भ्रष्ट बन कुमत आचरन करने वाला भी अनन्त दुःख को प्राप्त होता है। निश्चय रखो अशुभ कर्म नष्ट हुए विना सुख होगा ही नहीं। यह दुःख है सो सुख का साधक है. इस लिये बहुत खुशी से दुःख को भुक्त सुखी हो जाना चाहिये। "दुःखान्ति सुख" दुख का अन्त होते ही सुख तैयार है। इत्यादि उपदेश व सहायता द्वारा जो धर्म से चलित होते हुओं को अचल करता है वह भी सम्यक्त्व का भूषण है।

५ धर्म में धैर्य वन्त होवे—चौथे बोल में अन्य को धैर्यपिन कहा—"परोपदेश दादाति कुशला, दृष्टन्ते वह वे नरा" अर्थात अन्य को उपदेश कर स्थिर करने वाले तो सृष्टि में अनेक नर हैं किन्तु स्वयं अपनी आत्मा को उपदेश कर्ता बहुत थोडे होते हैं जो * प्रथम अपनी आत्मा को स्थिर कर अन्य को स्थिर करने को परियत्न करेगा उसका उपदेश शीघ्र ही सफल होगा. इसलिये सम्यक्त्वी का कर्तव्य है कि-रोग सोग वियोगादि के

* श्लोक—परोपदेश वेलायां, शिष्टाः सर्वेभवंतिवै ।
विस्मरंतिहिशिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते ॥१॥

अर्थ—अन्य को उपदेश करने में तो सब ही कुशल बन जाते हैं किन्तु जब अपने पर कष्ट उपस्थित होता है तब उपदेश भूल जाते हैं। मानव धर्म शास्त्र ॥

प्रसंग में आप अचल रहे आर्तरौद्र ध्यान ध्यावे नहीं. सोग सन्ताप विलापात करे नहीं. दुःख संकट के समय में भी सुखी अवस्था के समान हर्षोत्साही बना हुआ अधिक २ धर्म वृद्धि करे दूसरों के अन्तःकरण पर धर्म की छाप चढ़ालें सच्चे धर्मात्मा का परिचय बतावे. स्वयं के स्वजन कुटुम्ब जो आर्तध्यान सोग सन्ताप करें तो ठपका देकर रोके. मिलने आने वाले सम्बन्धी मित्रादि को अपना किंचित भी दुःख नहीं दर्शाता हुआ वैराग्योपदेश करे. ऐसे धर्मावलम्बी धर्मात्मा स्वयं भी सुखी रहते हैं, और अन्य ॐ को भी सुखी रखते हैं, और संकट के प्रसंग में धैर्य के प्रताप से महाकर्मों की निर्ज़रा करने वाले होते हैं तैसे ही अनेकों को कर्म बन्धन से बचाकर उन्मार्ग में जाते को सन्मार्ग में लगाते हैं।

☞ उक्त पांच प्रकार के भूषण-अलंकारों से सम्यक्त्वी जन अपनी समकित अलंकृत-भूषित कर अन्य का मन उधर आकर्षित करते हैं।

"८ आठवें बोले प्रभावना ८"

१ पवयण—प्रवचन शास्त्र यही धर्म के सच्चे प्रभावक हैं भूत काल में केवल ज्ञानी तथा श्रुत केवली महा पुरुषों द्वारा जिन प्रणित धर्म का अद्वितीय प्रभव पड रहा था किन्तु भविष्य में उनका तो अभाव हो गया है अब उनकी वाणी से उद्धरत वचन जो कि आचार्यों द्वारा संकलित किये गये वेही प्रवचन भविष्य में धर्म स्तंभ रूप आधार भूत बन रहे हैं उन का ज्ञान सम्यक्त्वी को प्राप्त करना परमावश्यकीय है इसलिये गुरु गम से स्वयं शास्त्र का श्रवन पठन मनन करे, अन्य को करावे. इस प्रकार ज्ञान में परिपक्व बना सम्यक्त्वी स्वयं की तथा अन्य की आत्मा को उन्मार्ग में गमन करते को रोक कर सन्मार्ग में स्थापन कर सक्ते हैं. ×

ॐ दोहा—धीरज से धोक टले, रहे शरीर भी मस्त।
तोमस कभी न ऊपजे, धीरज पक्की है पस्त ॥१॥

× दक्षिण हैदराबाद निवासी राजाबहादुर लाला सुखदेवसहाय जी ज्वालाप्रसाद जी ने रू० ४२०००) का अवर खर्च कर ३२ ही शास्त्रों का उद्धार कर १००० ज्ञान शास्त्र भण्डार कर देने से शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने की अच्छी सुभिता कर दी है।

२ धम्मकहा–धर्मकथा–व्याख्यान उपदेश करके भी धर्म का अच्छा प्रभाव प्रसरित होता है इसलिये सम्यक्त्वी सभा, सोसायटी, कान्फरेन्स, कांग्रेस आदि जन समूह में उपस्थित हो द्रव्य क्षेत्र काल भाव को देख यथोचित सब के समझ में आवे ऐसी किसी भी भाषा में रोचक शब्दों में जिन प्रणित धर्म के तत्वों को अनेक मतान्तरों के दाखिले दलीलों सहित स्याद्वाद शैली से सरल बना कर महा मण्डान से धर्म कथा कह कर सत्यधर्म का प्रभाव अन्य के हृदय में आङ्कित करे।

३ 'निरूपवाद'–अनन्त ज्ञानी प्रणित शास्त्र के संक्षिप्त अनेकार्थी वाक्य वडे ही गहन होने से गीतार्थी विना हरेक के समझ में आना वडा कठिन हैं, * इस लिये कोई अभिज्ञ विपरीत अर्थ कर जैन मार्ग को अपवादित करता हो तो सम्यक्त्वी का कृतव्य है कि सत्यार्थ प्रकाश द्वारा उसका निराकरण कर अपवाद मिटावे. ऐसे ही कोई मिथ्याडम्बरी पाखण्डी जन सम्यक्तीयों को भ्रष्ट करने उद्धत बना हो तो संवाद तथा शक्ति द्वारा उसका पराजय कर सम्यक्त्वी यों को बचावे. और क्षेत्र के मनुष्य के अभिज्ञ साधु को छलने कोई पाखण्डी आवे तो साधु को समक्षा से समझा कर उसके छल से कोई छलित नहीं बने ऐसा उपाय करे. यों हरेक धर्मपवाद का निवारन करे.

४ 'त्रिकालज्ञ'–भूत भविष्य और वर्तमान इन तीनों काल के बनावों को जानने वाला भी धर्म का प्रभावक होता है क्योंकि–भूत काल में हुए भले बुरे पुरुषों का जीवन तथा समय का वर्ताव का ज्ञाता धर्म कर्म की विचित्रता व काल की गहन गति से छलित नहीं होता है आश्चर्य

* सतायधानी पण्डित मुनि श्री रत्नचंद जी ने अर्ध मागधी भाषा का अपूर्व कोष बना गहन शब्दों का स्पष्टी करण कर शब्दोद्धार करने का बहुत अच्छा साहित्य बना बड़ा उपकार किया है।

* थोड़े वर्ष पहिले जर्मन के विद्वान डाक्टर हर्मन जे कोवी ने अंग्रेजी में आचारंग शास्त्र की भाषान्तर में जैन शास्त्र विरुद्ध अर्थ किया था जिसका समाधान विद्वता पूर्वक स्थानक के श्रावकों ने किया था।

व अफसोस को प्राप्त नहीं होता, तदनुसार वर्तमान में द्रव्य क्षेत्र काल भावानुसार सुधारा कर सकता है और ज्योतिष विद्या के प्रभाव से अनुमान प्रमान से भविष्य का ज्ञाता होने वाला दुष्कालोपसर्ग से रोगोपसर्ग से अपने साथ अनेक धर्मात्माओं को भी सुखी रख सकता है तैसे ही काल ज्ञान का ज्ञाता पण्डित समाधी मृत्यु द्वारा स्वयं का तथा अन्य का आत्मोद्धार भी कर सकता है।

५ 'दुष्कर तप'—दुष्कर कठिन घोर तप से भी धर्म की बड़ी प्रभावना होती है क्यों कि—अन्य मतावलम्बीयों में सिर्फ अन्न का त्याग कर मेवा, मिठाई, फल, कन्द, मूलादि से पेट भर—भक्षन कर तप समझते हैं कोई रात को पेट भर खा दिन को भूखे प्यासे रहने में तप समझते हैं. ऐसे करने वाले को भी धन्य २ कहते हैं. तो निरआहार तप को सुन के आश्चर्य पावें यह तो स्वभाविक है इस लिये उपवास बेला तेला अठाई पक्षोपवास मासोपवास यावत् छमासोपवास तथा आयु अन्त में जाव जीव आहार उपाधी त्याग वगैरा तपश्चर्या से सम्यक्तवी धर्म की प्रभावना करते हैं।

६ 'सर्व विद्या का ज्ञाता'—सर्व जगत के पदार्थों को प्रकाश में लाने वाली विद्या ही है इसलिये अनेक विद्याओं का ज्ञाता भी धर्म का प्रभावक होता है. अनेक भाषा अनेक लिपी का ज्ञाता जैन तत्त्वों को उनमें परिणमा कर जाहिर करने से उस २ भाषज्ञ जनों का चित्ताकर्ष धर्म की ओर होता है जिससे धर्म का प्रभाव वृद्धी पाता है तथा वैद्य विद्या मान्त्रिक विद्या आदि विद्या का ज्ञाता सम्यक्त्वी किसी अन्य के किये चमत्कार से विमोह को प्राप्त नहीं होता है और स्वयं के उदर पूर्णार्थ मान प्रतिष्टार्थ उन को प्रयुंजता नहीं है किन्तु धर्म की हानी के समय उस प्रयोग से धर्मोन्नती करता है।

७ "प्रभाट वृताचरण"—दुष्कर वृताचरन करने से भी धर्म का अच्छा प्रभाव पडता है क्योंकि—संसार में ममत्व का मारना बडा कठिन विदित होता है विना ममत्व मारे वृतों का आचरन होता ही नहीं है इस लिये ममत्व पराजयी सम्यक्त्वी महोत्सव पूर्वक बहुत जनके समूह में सशक्त सजोड ब्रह्मचर्य (सील का स्कन्ध) रात्रि को चारों आहार भोगवने के त्याग (चौविअहार स्कन्ध) हरी लिलोत्री का परित्याग (हरिस्कन्ध) सचित्त (कच्चे पानी का स्कन्ध) इस प्रकार अनेक प्रत्याख्यान युवावस्था में कर ममत्वी लोगों को चमत्कार उत्पन्न कर धर्म का प्रभाव वृद्धी गत करते हैं ।

८ "कवीत्व शक्ति"—यह देखा जाता है कि-कितनेक स्थान उपदेश से भी अधिक असर कविता का होता है इस लिये कविता से भी धर्म का प्रभाव अच्छा होता है. जिन सम्यक्त्वीयों को ज्ञानावर्णिय कर्म के क्षयोपशम से कविता बनाने की शक्ति प्राप्त हुई तो उनका कृतव्य है कि विषयोत्पादक विरोध वृद्धक इत्यादि कुमार्गों में उसका व्यय नहीं करते हुये जिनेश्वर के साधु साध्वी श्रावक श्राविका सन्त सती धर्मात्मा पुण्यात्मा के गुणानुवाद रूप स्तवन पद सवैया छन्द वगैरा कविता अध्यात्मिक वैराग्य रसोत्पादक गूढ महनार्थ से भरी हुई बनाकर यथोचित राग में सुना कर लोगों में धर्म प्रभा की वृद्धी करे. जिस जैन धर्म के परम पृताप कर अपनी आत्मा उन्नत अवस्था को प्राप्त हो सुखी व प्रतिष्टा बनी है उस धर्म का प्रभाव अन्य को बता कर सद्धर्म द्वारा सुखी बनाने रूप जो सम्यक्त्वीयों के कृतव्य हैं जो बजाने उक्त आठ प्रकार की प्रभावना में से जितने प्रकार की प्रभावना करने की अपने में शक्ति प्राप्त हुई है उस से प्रभावना कर धर्मोन्नता व वृद्धी करे किन्तु प्रभावक हो मैं प्रभावक हूं मैं धर्म दीपक हूं इत्यादि पृकार का अभिमान करके उस प्राप्त हुते धर्म के महान फल को नष्ट नहीं करे.

९ नववे बोले जयणा—यत्ना ६

१ "अलाप"—विना प्रयोजन अपन को बुलाये विना मिथ्यात्वी से बोले नहीं * और सम्यक्त्वी बतलावे अथवा नहीं भी बतलावे तो उनसे बोले.

२ "संलाप"— मिथ्यात्वी कपट छल के भरे मायावी होते हैं वे सहज में सम्यक्त्व में बट्टा लगादें इस लिये उनके साथ विशेष वार्तालाप नहीं करे और सम्यक्त्वीयों के साथ धर्म चर्चादि वारतालाप वारम्वार करे.

३ 'दान'—दुःखी दरिद्री अनाथ अपङ्गादि की दया कर जो दान करे वह तो सम्यक्त्वी का कर्तव्य है किन्तु इस देने से मुझे मोक्ष मिलेगी इस इच्छा से मिथ्यात्वी को दान नहीं देवे और जो अपने पास श्रेष्ठ देने योग्य वस्तु हो उस की आमंत्रणा सम्यक्त्वी को करे. गरीब स्वधर्मियों की सहायता यथा शक्ति अवश्य करे।

४ 'मान'—मिथ्यात्वीयों का सन्मान नहीं करे क्यों कि-जिस से उसके तरफ आकर्षित होने से सम्यक्त्वी शिथल बन जावे और सम्यक्त्वी का मान सन्मान अवश्य करे मान महात्म्य बढाकर मिथ्यात्वीयों का चित्त सम्यक्त्व की ओर आकर्षित करे।

५ 'वंदना'—मिथ्यात्वीयों के आडम्बर की उनकी हिंसक क्रियाओं की प्रसंशा नहीं करे और सम्यक्त्वी के किये हुए धर्म कृत्य की उदारतादि गुन की बारम्वार प्रसंशा करे।

---

* श्लोक—पाखण्डिनो विकर्मस्थान, बैडालव्रती कानशठान।
हेतुकानवकवृत्तींच; वाङ्मात्रेणापिनार्चयेत ॥३०॥ मनुस्मृती अध्याय ॥४

अर्थ—१ पाखंडी, २ निन्दक, ३ अनाचारी, ४ कुकर्मी, ५ बिल्ली के समान बगल बाज, ६ हिंसा कर उपजीविका करने वाला, ७ दुराग्रही हठीला = आप जाने नहीं दूसरे की माने नहीं ऐसा, ९ कुतर्की, १० गपोड़ी, ११ बकध्यानी, इत्यादिकों का सत्कार वचन मात्र से भी नहीं करना।

६ 'नमस्कार'—मिथ्यात्वी को नमस्कार नहीं करे जिस प्रकार संख श्रावक की स्त्री ने पोखलीजी श्रावक को तिखुत्ता के पाठ से नमस्कार किया है तैसे अपने से जो गुनोंमें वृद्ध वयोवृद्ध स्वधर्मी हों उनको नमस्कार करे और अन्य स्वधर्मीयों से सदैव सविनय-नम्रता से प्रवृते जिस प्रकार वैष्णवों जय गोपाल मुसलमान सलाम आदि अपने देव का नाम ले नमन करते हैं तैसे ही सम्यक्त्वी का कर्तव्य है कि जब किसी को नमन करने का प्रसंग प्राप्त हो तब "जय जिनेन्द्र" शब्द का उच्चारन करे यह सम्यक्त्वी को अपने धर्म को दर्शाने का चिन्ह है। किन्तु जय गोपाल सलाम वगैरा शब्द कह कर अपनी सम्यक्त्व को धर्म को लुप्त गुप्त और कलंकित कदापि नहीं करे।

☞ जिस प्रकार धनेश्वरी अपने धन का चोरादि से रक्षणार्थ का प्रयत्न करते हैं तैसे ही सम्यक्त्वी भी अपने सम्यक्त्व रूप धन का मिथ्यात्व रूप चोर से स्वरक्षणार्थ व सम्यक्त्व के गुन की व सम्यक्त्वीयों को वृद्धि करने उक्त ६ यत्ना समाचरे।

१० दशवें बोले आगार ६।

१ "रायाभिओगेणं" — राजा अथवा राजा के सामन्त नोकरादि कदाचित सम्यक्त्वी की जान माल इज्जत हरन करने की धमकी देकर सम्यक्त्व विरुद्ध कार्य करने का हुकम करे और सम्यक्त्वी राजा के जुल्म से डरता हुआ वह कार्य पश्चाताप युक्त करे तो सम्यक्त्वी का भंग नहीं होवे.

२ "गणाभिओगेणं"—उक्त प्रकार ही सम्यक्त्वी के अन्य मताव-लम्बी कुटम्ब स्वजन जाति के पंचों वगैरा जाति बाहिर करने आदि की धमकी देकर कुल के देव गुरु को नमन पूजन आदि सम्यक्त्व विरुद्धा-चरन करने को कहे और सम्यक्त्वी उनके जुल्म से भयभीत बना वह कार्य पश्चाताप युक्त करे तो सम्यक्त्व का भंग नहीं होवे.

३ "बलाभिओगणं"—कदाचित कोई धनबली जनबली तनबली विद्या (मन्त्रादि) बली सम्यक्त्व विरुद्धाचरण करने का सम्यक्त्वी को कहे. सम्यक्त्वी उसका वशवर्ती बना हुआ उसके जुल्म से डर पश्चाताप युक्त वह कार्य करे तो सम्यक्त्व भंग नहीं होवे।

४ "सुराभिओगेणं"—कदाचित कोई दुष्ट देवता जान माल का नाश करने की धमकी देकर सम्यक्त्व विरुद्धाचरन करने को कहे उसके उपद्रव से डरता हुआ सम्यक्त्वी वह काम पश्चाताप युक्त करे तो सम्यक्त्व का भंग नहीं होवे।

५ "गुरू निगाहो"—(१) कदाचित कोई मात पिता भ्रात बहुतों के माननीय बड़े पुरुष घर से निकाल देंगे आदि धमकी दे सम्यक्त्व विरुद्ध करावे, (२) अपने देव गुरू धर्म की प्रसंशा कोई मिथ्यात्वी करे उस अनुराग से उसका सत्कारादि करे, (३) धर्म की किसी अन्य उत्कृष्ट धर्म लाभ के कार्यार्थ अवसरोचित कार्य करने को कहे इन तीन प्रकार से कोई सम्यक्त्व विरुद्ध कार्य करे तो सम्यक्त्व का भंग नहीं होवे।×

६ "विति कन्तारे णं" रास्ता भूल महा अटवी (जंगल) में पड़ा हुआ सम्यक्त्वी अपने शरीर कुटुम्ब के रक्षणार्थ मर्यादा उपरांत वस्तु को पश्चाताप युक्त भोगवे तथा तहां कोई रास्ता बताने का लालच दे सम्यक्त्व विरुद्धाचरण करने को कहे तब सम्यक्त्वी प्राण स्वजन धनादि के रक्षणार्थ वह कार्य करे तो सम्यक्त्व भंग नहीं हो तथा दुष्कालादिक प्रसंगों में गरीबों की सहायता करे।

इन को कोई छे आगार और कोई छे "छन्डी" (गली) भी कहते हैं यह सब सम्यक्त्वीयों के लिये नहीं हैं. जो सूरवीर धीर साहसिक दृढ सम्यक्त्वी होते हैं जिनकी हड्डी की मींजियों भी किरमजी के रंग समान धर्म से रंगा गई हैं वे तो जान माल इज्जतादि सर्व स्वयं का भी

× इस छट्ठे आगार के अन्तरगत तीसरे आगार का प्रसंग से कथन किया है इस लिये सब समान नहीं समझना।

कदाचित नाश हो जाय तो भी कदापि किञ्चित मात्र भी सम्यक्त्व में दोष लगाते नहीं हैं अरणक कामदेवादि श्रावकों की तरह प्राणान्त संकट में भी कभी चलाय मान होते नहीं हैं. किन्तु जो कायर हैं और संकट में धर्म का निर्वाह नहीं कर सकते हैं वे इन छे आगरों में दृष्टी रख सम्यक्त्व विरुद्ध-आचरण करते हुए भी साफ धर्म से भ्रष्ट तो नहीं बनेंगे इसलिये कहे हैं. सम्यक्त्वीयों को चाहिये कि जब कभी उक्त प्रकार के प्रसंग प्राप्त हे तो उनसे अपनी सम्यक्त्व का बचाव अन्य किसी भी प्रकार से होता नहीं देखें और विरुद्धाचरण करना ही पड़े तब मन में तो ऐसा विचार रखे कि जो मैं पहिले साधु होता तो मुझे दोष लगाने का प्रसंग ही नहीं प्राप्त होता धन्य हैं महापुरुषों को जो इससे जबर प्रसंग में भी किञ्चित दोष नहीं लगाते हैं धिक्कार है मुझे मैं इस प्रकार अकृत्य कर रहा हूं, वही दिन मेरा परम कल्यान का होगा कि जब मैं निर्मल सम्यक्त्व का पालन करूंगा, और उस कारन से तुरन्त निवृत हो गुरू आदि के पास उस पाप की आलोचना निन्दना कर प्रायःश्चित से तत्काल अपनी सम्यक्त्व को शुद्ध करूंगा । *

११ ग्यारहवें बोले भावना ६ ।

१ "धर्म वृक्ष का सम्यक्त्व मूल"—जिस प्रकार वृक्ष का मूल (जड़) मजबुत होने से वह वृक्ष वायु आदि उपद्रव में अटल रहे, शाख प्रति शाखा पत्र पुष्प फल से हरा भरा बना हुआ विविधि प्रकार के सुख देने वाला होता है. तैसे ही धर्म रूपी वृक्ष का सम्यक्त्व रूप मूल हैं वह दृढ रहने से मिथ्यात्व रूप वायु के उपद्रव से पराभव नहीं पाना अचल रहे

* सवैया—राजा का हासिल कौन भरेगा ? जो कोई वस्तु मोल लेवेगा भारी ।
लगा तो दोष को कौन गिनेगा ? साधु श्रावक जो व्रतधारी ॥
जो कोई, दोष लग गया तो, लेकर दण्ड लगा देवो कारी ।
चलेगा अगुर पड़ेगा घोड़े से, गा पड़ेगो कहा गोम्मनदारी ॥१॥

कर कीर्ति रूप शाखा प्रति शाखा से विस्तृत बन कर दया रूप पत्र की छाया सद्गुन रूप पुष्प निरामय सुख रूप फल के स्वाद से पोषक को सुखी रखता है।

२ 'धर्म नगर की सम्यक्त्व कोट तथा द्वार "जिस प्रकार भुवनादि ऋद्धि कर प्रसिद्ध नगर को मजबूत कोट (किल्ला) होने पर चक्री से पराभवित नहीं होता है तैसे ही विविधि प्रकार की करणी रूप ऋद्धि पूर्ण भरा धर्म रूप नगर का जो सम्यक्त्व रूप कोट मजबूत होगा तो पाखण्डी रूप परचक्री उस का पराभव नहीं कर सकेंगे तथा जिस प्रकार द्वार कर के ही नगर में प्रवेश कर सुख प्राप्त कर सकते है तैसे ही सम्यक्त्व द्वार कर के ही धर्म रूप नगर में प्रवेश होता है आत्मिक ऋद्धि के सुख मिलते हैं।

३ "धर्म प्रासाद की सम्यक्त्व नींव"—जो प्रासाद-मकान की नींव मजबूत होने से मन मूजब मंजिलों चढाने पर भी वह स्थिर रह सक्ता है तैसे ही सम्यक्त्व रूप मजबूत नींव (पाये) वाले धर्म रूप मकान पर मन मूजब करणी रूप मंजिलों चढाने से भी वह अचल रह सकता है

४ "धर्म रत्न की सम्यक्त्व मंजूस"—जैसे मजबूत मंजूस—तिजोरी में रत्नादि स्थापित करने से उस को चोरादि हरन नहीं कर सकते हैं तैसे ही सम्यक्त्व रूप मजबूत मंजूस में स्थापन किये हुए धर्म करणी रूप रत्नों को क्रोधादि चोर हरन नहीं कर सकते हैं।

५ "धर्म भोजन सम्यक्त्व भाजन"—जैसे शाग दाल घृत पक्वानादि भोजन थालो आदि भोजन धारन कर रख सकते हैं तैसे ही धर्म करणी सम्यक्त्व ही धारन कर सकती है, भाजन विन भोजन नहीं ठहरे तैसे सम्यक्त्व विन धर्म भी नहीं ठहरता है।

६ "धर्म किरियाणे का सम्यक्त्व कोठा"—जैसे मजबूत कोठे में रखा हुआ बादामादि किरियाणा कीटक मूषक चोरादि उपद्रव से सुरक्षित

रहता है, तैसे सम्यक्त्व रूप कोठे में स्थापित किया धर्म करणी रूप कि-रियान को मिथ्यात्व विषय कषाय आदि किटक मूषक चोर उपद्रव नहीं कर सकते हैं धर्म का रक्षक सम्यक्त्व ही है।

☛ उक्त ६ प्रकार की भावना जो सम्यक्त्वी भाया करते हैं वे सम्यक्त्व और धर्म को अन्योन्य कार्य कारण रूप जान में दृढ-निश्चल रहते हैं।

१२ बारहवें बोले स्थानक ६

१ 'आत्मा है'—घट पटादि के समान आत्मा को प्रत्यक्ष दृष्टीगत नहीं करते हुये कितनेक नास्तिक कहते हैं कि-जैसे सूत्रधार (नाटक) वस्त्रादि के पूतले पुतली को डोरी में बांध नृत्य कराते हैं तैसे ईश्वर भी अपना मन प्रसन्न करने मनुष्य, पशु, पक्षी किटकादि पुतली नचाता है. उस ने डोरी छोड़ी कि सब पड जाते हैं किन्तु आत्मा (जीव) कोई पदार्थ है ही नहीं. उन से पूंछा जाता है कि-उक्त प्रकार की कल्पना करता है वह कौन है? घट पट का मानने और जानने वाला कौन है? शब्द रूप गंध रस स्पर्श का विज्ञान किस को होता है स्वप्नावस्था में देख पदार्थ को जाग्रत अवस्था में स्मरण कराने वाला कौन है? मृत्यु बाद शरीर में से यह ज्ञान गुन नष्ठ हो जाते हैं जिस का कारण क्या है? शरीर से वह कौन निकल जाता है? इत्यादि प्रत्यक्ष लक्षणों से जानना कि वह आत्मा—जीव ही है. आश्चर्य तो यह होता है कि-खुद आत्मा ही आत्मा के आस्तित्व में शंका शील होता है. किन्तु यह शंका जो कर्ता है वही आत्मा है।

२ "आत्मा नित्य है"—उक्त युक्ति आदि प्रमाण से कितनेक आत्मा का आस्तित्व (होना) तो कबूल करते हैं किन्तु कहते हैं कि-पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश, इन पांच भूत से पच्चीस तत्व की

उत्पत्ती होती है * उसमें जीव की उत्पत्ती होती है शरीर में जीव रक्त रूप तथा वायु रूप तथा अग्नि रूप होकर परिणमा है, जब इनका नाश होता है अर्थात् जब शरीर में रक्त वायु अग्नि का नाश हो जाता है तब जीव का भी नाश हो जाता है, और जो जगत् के पदार्थ दृष्टीगत होते हैं वे सब क्षण २ में रूपान्तर पाते देखे जाते हैं ऐसे ही आत्मा का भी रूपान्तर—पलटा होता रहता है. इसलिये आत्मा अनित्य—अशाश्वत है. उनको जानना चाहिये कि न कभी जड़ से चैतन्य की उतपत्ती होती है और न कभी चैतन्य से जड़ की उतपत्ती होती है. जड़ तो सदैव जड़ रूप रहता है और चैतन्य सदैव चैतन्य रूप रहता है, जितने जीव और जितने जड़ के प्रमाणु अनादि काल से हैं उतने ही अनन्त काल तक रहेंगे. प्रमाणुओं में भेद संघात गुन होने से रूपान्तर होता है जीव में यह गुन नहीं होने से सदैव एकही रूप शाश्वत रहता है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्रथम क्षण में जो अनुभव हुआ था वह नन्तर के क्षण में भी बना रहता है. इसलिये वस्तु का तो पलटा होता है किन्तु उसके अनुभावक का पलटा नहीं होता है × जो कभी जीव की उत्पत्ती नाश व क्षण २ में पलटा होता होतो फिर धर्माधर्म पुण्य पाप का फल भोगवने वाला कोई भी नहीं होना चाहिये. यह बात प्रमाण विरुद्ध है.

* (१) काम, क्रोध, शोक, मोह, और भय यह पांच तत्व आकाश के, (२) धावन वलन, प्रसारन, आकुंचन और निरोधन यह ५ तत्व वायु के। (३) क्षुधा, तृषा, आलस, निद्रा और मैथुन यह ५ तेजु (अग्नि) के। (४) लाल, मुत्र, रक्त, मज्जा; और रेत यह ५ अप (पानी) के और ५ हड्डी, नाडी मांस, त्वचा और रोम यह ५ तत्व पृथ्वी के। यों ५ भूत के २५ तत्व होते हैं।

× किसी भी वस्तु का कदापि नाश नहीं है केवल रूपान्तर होता है। घट फूटने से घट की पर्याय का नाश हुआ किन्तु मृतिका का नाश नहीं हुआ उसका तो बारीक चूर्ण हो मृतिका में मिल मृतिका रूप बन गया और सरावलादि पर्याय को प्राप्त हो गया। यों जड़ पदार्थ का भी समूल नाश नहीं होता है तो चैतन्य का तो होवे ही किस प्रकार? घटादि की पर्याय के समान ही शरीर की पर्याय का पलटा होता है किन्तु जीव का नाश कदापि नहीं होता है।

क्यों कि जगत् में कोई सुखी कोई दुखी यों श्रीमान दारिद्री वगैरा विचित्रता देखी जाती है वह पुण्य पाप का ही फल है जन्म से ही मूषक चूहे में वैर देखा जाता है यह कथन पुनर्जन्म के सिद्ध करने वाले हैं जीव ने प्रथम के शरीर में कर्म किये जिसके फल यही भुक्तता है और अब कर्म कर्ता है जिसके फल भविष्य में भोगेगा, यों शरीर का रूपान्तर होता है किन्तु जीव का पलटा नहीं होता है. जीव तो एकही रहता है. इसलिये जीवात्मा शाश्वत है ।

३ "आत्मा कर्ता है"—उक्तादि प्रमान से कितनेक आत्मा की नित्यता को स्वीकारते हैं किन्तु कहते हैं कि-आत्मा स्वाधीन नहीं है ईश्वराधीन है इस लिये ईश्वराज्ञा प्रमाने याने ईश्वर के मन प्रमाने संसार के सारे कार्य होते हैं। जो आत्मा स्वाधीन होता तो दुःखी क्यों होता इस लिये आत्मा कर्ता नहीं है ऐसे मतवाले को समझना चाहिये कि 'करंता सो भरंता' अर्थात् जो कर्म कर्ता होता है उस के फल का भोक्ता भी वही होता है, इस लिये ईश्वरेच्छा से जो संसार के सारे कर्म होते हैं तो उन का फल भी भुक्तने वाला ईश्वर ही होना चाहिये फिर ईश्वर और आत्मा में कोई भी अन्तर नहीं रहा. पिछले प्रकरण में इस सम्बन्ध में अच्छा सम्बाद दर्शाया गया है. और यह सिद्ध किया है कि कर्म का कर्ता आत्मा ही है ।

४ "आत्मा भुक्ता है"—उक्त युक्ति से कितनेक मान्य करते हैं कि कर्ता तो आत्मा है किन्तु कर्म जड़ होने से वे गमनागमन नहीं कर्ता होने से यहां ही रह जाते हैं जीव के साथ नहीं जा सकते हैं इस लिये कृत कर्म के फल भोगवने वाला आत्मा नहीं है इस मतवाले से कहा जाता है कि कर्म जड़ है और स्वयं गमन करने की शक्ति उन में नहीं है यह कथन सत्य है किन्तु जिस प्रकार मदिरा पान करने वाले के पास मदिरा का शीशा तो नहीं जाता है कि तथापि वह जहां जाता है वहां

उसे उस जड़ मदिरा के गुन का परिणाम (गुन) तो मुद्दत पकते ही जरूर ही प्राप्त होता है तैसे ही कृत कर्म का रस आत्म प्रदेश के साथ परिणम कर जीव के साथ जाता है और उस के शुभाशुभ फल अबाधा-अन्तर काल (मुद्दत) पूरे हुए अवश्य ही भुक्तने पड़ते हैं।

५ "आत्मा का मोक्ष है"—उक्त प्रकार के कथनादि से कितनेक आत्मा का आस्तित्व कर्ता भोक्ता पना स्वीकार कर कहते हैं कि यह संसार जिस प्रकार अनादि अनन्त है तैसे आत्मा का और कर्म का सम्बन्ध भी अनादि अनन्त है कर्म करना और उस के फल भुगतना ऐसा सिलसिला अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल चलता रहेगा जो पदार्थ सादि होता है वही सान्त होता है किन्तु अनादि का अन्त कदापि नहीं होता है इस लिये आत्मा का मोक्ष कदापि नहीं होता है इनको जानना चाहिये कि जैसे बाल ब्रह्मचारी के पिता महा पिता का सम्बन्ध तो अनादि से चला आया है किन्तु उस के पुत्र न होने से सम्बन्ध टूट जाता है और अनादि का अन्त हो जाता है. तथा मृतिका का और सुवर्णादि धातु का सम्बन्ध अनादि है और अग्नि क्षार सोहनारादि के संयोग से वह अनादि मृतिका सम्बन्ध छोड शुद्ध हो आप रूप को प्राप्त होता है तैसे ही आत्मा अनादि कर्म सम्बन्ध को त्याग मोक्ष प्राप्त करता है।

६ "मोक्ष का उपाय है"—उक्त कथन श्रवण कर मुमुक्षुओं को मोक्ष प्राप्त करने के उपाय जानने की अभिलाषा स्वाभाविक होती है उनको जानना चाहिये कि- जिस प्रकार सुवर्णकार मृतिका से सुवर्ण को पृथक करने मूश में सुवर्ण को स्थापन कर क्षार और अग्नि के प्रयोग से मृतिका को जला शुद्ध सुवर्ण निकालते हैं.* तैसेही ज्ञान रूप सुवर्णकार द्वारा ज्ञात हुआ कि अष्ट कर्म रूप मृतिका में आत्म सुवर्ण मिश्रित है. इसे पृथक करना

* दोहा—मूस पावग सोहगी, यूं फूंके तना उपाय।
राम चरन चारों मिले, मैल कनक का जाय॥

उचित है. तब २ सब गुन के भाजन समान सम्यक्त्व रूप मूस में आत्मा को स्थापन कर. ३ आत्मा से कर्म मल को पृथक करने वाला चारित्र रूप क्षार का प्रयोग मिला अर्थात् चारित्र धर्म को स्वीकार कर. ४ कर्म रूप मल को जलाकर भस्मी भूत बनाने वाला तप रूप अंगार के पूयोग से अर्थात् द्रव्य तप से वाह्य उपाधी का और भस्म तप से अभ्यन्तर उपाधी को जलाकर आत्मा परमात्मा की ऐक्यता रूप ध्यान से कर्म से आत्मा को पृथक करे. अर्थात् मोक्ष पूप्त करे ।

☞ जिस पूकार भूमन करता जन स्वस्थान को पूाप्त कर स्थिर होता है तैसेही अनादि से मिथ्या मार्ग में भूमन करने वाली आत्मा उक्त षट स्थान का विचार करने से सम्यक्त्व स्थान में स्थिर होता है ।

यह ४ श्रधान, ३ लिंग, १० विनय, ३ शुद्धता, ५ लक्षण ५ दूषन ५ भूषन, ८ प्रभावना, ६ यत्ना, ६ भावना, ६ स्थानक, और ६ आगार यह सब ६७ बोल व्यवहार सम्यक्त्व के हुए इतने गुन जिन की आत्मा में पावें उन्हें व्यवहार से सम्यक्त्वी जानना ।

सम्यक्त्वी की १० रुचि.

१ जैसे गुरु का उपदेश विना सुने ही अम्ब स्तम्भ, बैल इत्यादि को देखने से, चूड़ियों की आवाज सुनने से जाति-स्मरन ज्ञान की प्राप्ती कितनेक महा पुरुषों को हुई है तैसे किसी भी प्रयोग कर जाति-स्मरण ज्ञान प्राप्त होने से पूर्व भव में पठन किये हुए जीवादि ९ पदार्थों द्रव्य क्षेत्र काल भाव से यथा तथा ज्ञान को स्मरण कर जिन प्रणित धर्म को रुचि (कांक्षा) पूर्वक स्वीकार करे. तथा किसी अन्य मतावलम्बी अज्ञान तप से ज्ञानावर्णीय तप का क्षयोपशम होने से विभंग ज्ञान प्राप्त होवे उन से जैन धर्म की शुद्ध प्रवृत्ती देख अनुरागी बनने से अज्ञान का नाश कर अवधी ज्ञानी बन साथ में ही सम्यक्त्व को भी प्राप्त करे और

निरारंभी निष्परिग्रही जैन धर्म की आराधन करने की रुचि वाला बने सो 'निसर्ग रुची ।'

२ तीर्थंकरों का केवलज्ञानियों का तथा समान साधु आदि को उपदेश श्रवन से जीवादि ९ पदार्थों का तत्वज्ञ बन कर धर्म करने की रुचि हो सो 'उपदेश रुची ।'

३ राग द्वेष मिथ्यात्त्व अज्ञान इत्यादि दुर्गुणों का नाश कर आत्मा को ज्ञानादि अनेक सद्गुनों की स्थापन करने वाली अनन्त भव भ्रमन का नाश कर मुक्ति पथ में प्रवृताने वाली ऐसे अनेकानेक गुनों की खान रूप जो जिनाज्ञा है उसे आराधने की रुचि हो सो 'आज्ञा रुचि ।'

४ श्री जिनेश्वर प्रणित तथा गणधरादि दश पूर्व धारक तक के रचित द्वादशाङ्गादि जो सूत्र हैं उन के श्रवन पठन करते कराते अनुभव में परिणमाते अपूर्व अद्भुत ज्ञान के रस में तल्लीन बनी आत्मा उत्साह पूर्वक उस का बारम्बार श्रवन पठन करे सो 'सूत्र रुचि'.

जैसे हल वखरादि से शुद्ध किये खातादि से पोषण किये वृष्टी के पानी से तृप्त किये काली मिट्टी के खेत में डाला हुआ बीज एक का अनेक हो प्रगटता है तैसे ही कषायादि से शुद्ध बने गुरू उपदेश से पोषन किये सन्तोषादि गुन से तृप्त बने भव्य जीव के हृदय रूप खेत में डाला हुआ ज्ञान रूप बीज जिस प्रकार पानी में तेल का बिन्दु प्रसरता है तैसे एक पद के अनेक पद रूप परिणमे विस्तार पावे सो 'बीज रुची ।'

६ जो श्रुत ज्ञान की विशुद्धी से अंगोपाङ्ग पढ़ने दृष्टी वादादि से सूत्रार्थ ज्ञान होने से सम्यक्त्व की प्राप्ती होवे तथा यह भाव दूसरे को सुनाते उस सम्यक्त्व की प्राप्ति होवे सो 'अभिगम रुची ।'

७ जीवादि नव तत्त्व, धर्मास्ति आदि षट्द्रव्य, नैगमादि सात नय नामादि चार निक्षेप, प्रत्यक्षादि चार प्रमाण, को द्रव्य क्षेत्र काल भाव के

विस्तार पूर्वक ज्ञानाभ्यास करते २ सम्यक्त्व की प्राप्ती होवे सो विस्तारुचि।

८ सम्यक्-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप विनय सत्य प्रतिज्ञा इत्यादि पूर्व के पांच समिति तीन गुप्ती रूप आठ प्रवचन माता के पालन करने की इच्छा हो सो 'क्रिया रुची।'

९ कितनेक हलुकर्मी ऐसे भी जीव हैं कि जो जानते तो कुछ भी नहीं हैं किन्तु अनाभिग्रही मिथ्यात्वी की तरह मानते सब ही को हैं वे सत्संग में आ सद्मार्ग से सद्गुनों का संक्षिप्त कथन श्रवन कर तत्काल भाव भेद में समझ जावें और मिथ्यात्व का त्याग कर सद्धर्म का स्वीकार कर लें सो 'संक्षेप रुची।'

१० सम्यक्त्वादि सूत्र धर्म और व्रतादि चारित्र धर्म क्षांतादियती धर्म इत्यादि धर्म का कथन शास्त्र में जिस प्रकार किया है उस ही प्रकार उन को आराधन करने की रुची होवे तथा धर्मास्ति आदि के सूक्ष्म भावों को सन्देह रहित श्रधान करे उत्साह पूर्वक धर्म अनुष्टान को समाचरे सो 'धर्म रुची।'

जैसे ज्वर के नाश होने से भोजन की रुची होती है और रुची पूर्वक भोगा हुआ भोजन सुख कर्ता होता है तैसे ही मिथ्यात्व रूप ज्वर के नाश होने से उक्त दश प्रकार से धर्म समाचरन करने की रुची होती है और रुची पूर्वक-उत्साह पूर्वक किया हुआ धर्म यथा रूप फल को दे अक्षय सुखी बनाता है।

सम्यक्त्वी को हित शिक्षा।

प्रथमाङ्ग आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के चतुर्थ अध्ययन में श्रमण भगवन्त श्री महावीर स्वामी जी ने सम्यक्त्वीयों को निम्नोक्त प्रकार का हित शिक्षन दिया है:—

(१) भूत भविष्य और वर्तमान काल के सबही तीर्थंकरों का फरमान है कि—' द्वि इन्द्रिय त्रि न्द्रिय चतु इन्द्रिय आदि प्राणी को, वनस्पत्यादि भूत को, पचेन्द्रियादि जीव को और पृथ्वी पानी अग्नि वायु आदि सत्त्व की जहां किञ्चित मात्र भी हिंसा कदापि नहीं होती हो किम्वह किञ्चित दुःख मात्र भी उत्पन्न नहीं होता है वहीं सत्य शुद्ध सनातन धर्म रागी त्यागी भोग और योगी एकसा आदरणिय है। (२) उक्त प्रकार के धर्म को स्वीकार कर इसके पालन में कदापि प्रमादी (आलसी) नहीं बनते निरन्त्र सदृढ़ अचल बने हुए पालन स्पर्शन करना। (३) मिथ्यात्वीयों कृत मिथ्याडम्बर पाखण्डाचार को देख कर व्यामोह नहीं पाना। (४) संसार में रहे हुये सम्यक्त्वीयों को भी मिथ्यात्वीयों का अनुकरन (देखा देखी) नहीं करना। (५) जो मिथ्यात्वीयों का अनुकरन नहीं करता है उससे कुमती सदैव दूर रहती है। (६) उक्त धर्म की जिसकी श्रद्धा नहीं है वही बड़ी कुमती है। (७) सब तीर्थंकरों ने श्रवन से सुन कर हृदय चक्षु से देख कर, केवल ज्ञानादि से जानकर और अन्तःकरण के पूर्णानुभव युक्त उक्त प्रकार धर्म का फरमान किया है। (८) संसारी प्राणीयों मिथ्या फास में फंसे हुये ही अनन्त संसार परिभ्रमण करते हैं। (९) तत्व दर्शी महात्मा वेही हैं कि जो प्रमाद को निरन्त्र त्याग कर सावधान वने हुये धर्म पथ में विचरते हैं। इति प्रथमोद्देश ॥

(१) सम्यक्त्वीयों के लिये कर्म बन्धन करने के हेतु भी वक्त पर कर्मों को तोड़ने वाले हो जाते हैं। (२) और मिथ्यात्वीयों के कर्म तोड़ने के हेतु भी कर्म वन्धन कर्ता हो जाते हैं। (३) जितने कर्म वन्धन करने के हेतु हैं उतने ही कर्म तोड़ने के भी हैं। (४) जगत् जन्तुओं को कर्मों से पीड़ित होते अवलोकन कर कौन धर्म करने को उद्यमी न होगा ? अपितु सुखार्थी तो अवश्य ही होगा। (५) विषयाशक्त और प्रमादी जीव भी जैन शास्त्र श्रवन कर धर्मात्मा वन जाते हैं ? (६) अज्ञानीयों

मृत्यु के ग्रास बने हुये भी आरम्भ में तल्लीन बने भव भ्रमन की वृद्धी करते हैं। (७) नर्क के दुख के भी शौकीन कितनेक जीवों हैं वे पुनः २ नर्क गमन करते हुये भी वहां से तृप्त नहीं होते हैं। (८) क्रूर कर्म के करने वाले दुःख पाते हैं और छोड़ने वाले सुख पाते हैं। (९) केवल ज्ञानी के कथन के समान ही दश पूर्व तक ज्ञान के धारक श्रुत केवली का भी कथन होता है। (१०) हिंसा के काम में जो दोष नहीं मानते हैं वेही अनार्य हैं। (११) ऐसे अनार्यों का कथन पागल के बकने के समान है। (१२) जीव की घात करना तो दूर रहा किन्तु जो दुःख भी नहीं देते हैं वेही आर्य हैं (१३) तुम्हें सुख अच्छा लगता है कि दुःख? यह प्रश्न अज्ञानीयों को पूछने से सच्चे धर्म का निश्चय उसके उत्तर से ही मिल जायगा। इति द्वितीयोद्देश ॥

(१) पाखण्डी जनों की चाल चलन पर लक्ष नहीं दे वही धर्मात्मा। (२) हिंसा को दुःखदाता जान हिंसा का त्याग करे. शरीर पर ममत्व नहीं करे. धर्म के तत्व का ज्ञाता बने. कपट रहित क्रिया का समाचरन करे. और कर्म तोडने में सदैव तत्पर रहे वही सम्यक्त्वी। (३) त्रस पहोंचे तहां तक किसी को दुख नहीं देवे वही धर्मात्मा (४) जिनेश्वर की आज्ञा का पालन करे, आत्मा को अकेली जाने, तपश्चरन कर तन को तपावे, वही पण्डित। (५) पुराने काष्ट के समान शरीर का ममत्व का शीघ्रता से त्याग करे और तपाग्नि में कर्म को जलावे वही मुनि। (६) मनुष्य का अल्प आयु जान कर क्रोध को जीते सो वही सन्त। (७) क्रोधादि कषाय के वशीभूत बना जगत दुःखी हो रहा है ऐसा विचार करे वही ज्ञानी. (८) कषाय को उपशान्त कर शान्त बने वही सुखी, (९) क्रोध अग्नि से प्रज्वलित नहीं बने वही विद्वान। इति तृतीयोद्देश।

(१) प्रथम थोड़ा और फिर विशेष यों क्रम से धर्म की और तप की वृद्धी करना चाहिये. (२) शान्ति संयम ज्ञान इत्यादि सद्गुणों की

वृद्धी करने का सदैव उद्यम करना चाहिये (३) मुक्ति का मार्ग बड़ा विकट है ! (४) ब्रह्मचर्य को पालन करने का और मोक्ष प्राप्त करने का सब से बड़ा उपाय तपश्चर्या ही है. (५) जो संयम धर्म से भृष्ट बने हैं वे कुछ भी काम के नहीं हैं. (६) मोह रूप अन्धकार में खुते जीवों जिनाज्ञा का लाभ प्राप्त नहीं कर सकते हैं. (७) गत जन्म में जिन्हों ने जिनाज्ञा का आराधन नहीं किया वे अब क्या करेंगे ? (८) जो ज्ञानी बन कर आरंभ से अपनी आत्मा को अलग रखते हैं वे ही प्रशंसनीय होते हैं. (९) क्यों कि अनेक प्रकार के दुःख आरंभ से ही उत्पन्न होते हैं. (१०) जो धर्मार्थी जन हैं वे प्रतिबन्ध का त्याग कर एकान्त मोक्षाभिमुख अपना लक्ष लगाते हैं. (११) कृत कर्म के फल अवश्य भुगतने ही पड़ेंगे ऐसा जान कर्म का बन्धन करते डरना चाहिये. और (१२) जो सदुद्यमी सत्य धर्मावलम्बी और प्रवर्तक ज्ञानादि गुन में रमन करता, पराक्रमी, आत्म कल्यान की ओर दृष्टी लक्षी बना हुआ पाप कार्य से निवृती पाय और यथार्थ लोक स्वरूप का दर्शक होता है उसे कोई भी दुःखी नहीं कर सकता है.

☞ यह तत्व-दर्शी सत्पुरुषों के अभिप्राय हैं. जो इस प्रमाने चलेगा वह आधि व्याधि उपाधि आदि सब दुःखों का क्षय कर अनन्त अक्षय अव्यावाध सुख का भुक्ता बनेगा।

इस प्रकार सम्यक्त्व का स्वरूप शास्त्रों और ग्रन्थों में दर्शाया है. धर्म का प्रथम पंक्तिया सम्यक्त्व ही है अर्थात् सम्यक्त्व युक्त किया हुआ धर्म महा फल का देने वाला होता है और सम्यक्त्व विना की हुई धर्म क्रिया मोक्ष दाता न होने से निरर्थक कही है।

दोहा—एक समकित पाये विना, तप जप क्रिया फोक।
जैसे मुरदा सिनगार, नासमझ कहै तिलोक ॥

इस लिये धर्म के यथार्थ फल के इच्छुक को सम्यक्त्व अवश्य ही प्राप्त करना चाहिये उत्तराध्ययनी सूत्र के ३६ वें अध्याय में कहा है.

गाथा——सम्म दंसण रत्ता, अनियाण सुक्कलेसमो गाढा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं सुलहा भवे वोही ॥२६२॥

अर्थ—जो जीव मिथ्यात्व और राग द्वेष के मल रहित व क्लेश रहित बने हुए जिन प्रणीत शास्त्रानुसार नियाणे रहित निर्मल करनी के करने वाले हैं वे स्वल्प संसारी होते हैं अर्थात् भवो भव में सुलभता से बोध बीज को प्राप्त कर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करते हैं ।



परम पूज्य श्री कहानऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी महाराज विरचित "जैन तत्त्व प्रकाश" ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड का

चौथा प्रकरण सम्यक्त्व

समाप्तम् ।



* ॐ नमः सिद्धं *

प्रकरण पाँचवाँ—सागारी धर्मः ।

"श्रावकाचार"

श्लोक—श्री सर्वज्ञ पदाब्ज सेवनमतिः शास्त्रागमे चिन्तना ।
तत्त्वातत्त्व विचारणे निपुणता सत्संयमो भावना ॥
सम्यक्त्वे रचता अघोपशमता जीवादिके रक्षणा ।
सत्सागारी गुणा जिनेन्द्र कथिता येषां प्रसादाच्छिवम् ॥१॥

सागार धर्मामृत-

अर्थ—श्री जिनेन्द्र भगवान ने सागारी—श्रावक धर्म के पालन करने वाले के इस प्रकार गुण कहे हैं—श्री सर्वज्ञ-केवल ज्ञानी की आज्ञा का पालन करना वही उन की सेवा जिस में जिन की बुद्धि संलग्न बनी हो, आप्त पुरुषों प्रणित-आगम-शास्त्र जिस का अर्थ जिस के विचारने में जो सदैव तत्पर हों. तत्त्वातत्त्व धर्माधर्म न्याय अन्याय जिस का निर्णय करने के लिये जो बुद्धि को प्रसार करते हों अघ-पाप को घटाने का जो निरन्तर पर्यास करते हों. बेन्द्रियादि त्रस और पृथव्यादि स्थावर जीवों का स्वरक्षन यथा शक्ति करते हों. और जिनेन्द्र की कृपा—मार्गानुसारि होने के जो अभिलाषी हों उनको श्रावक कहना. और भी

श्लोक—न्यायो पात धनो य जन गुण गुरुन्सद्गी स्त्रिवर्गं भज-
न्नन्योन्या गुणं तदर्ह गृहिणी स्थानालयो ह्री मयः ॥
युक्ता हार विहार आर्य समिती प्रज्ञः कृतज्ञो वशी ॥
शृणवं धर्म विधि दयालु रघभी सागार धर्माचरत् ॥ २ ॥

अर्थ—न्याय से द्रव्योपार्जन करने वाले, गुणानुरागी, धर्म अर्थ और काम इन तीनों का सेवन करने वाले, सद्गुरु की सेवा—भक्ति के अनु-

रक्त. कुलवन्ती गृहणी के समान अपवाद की लज्जा धारक तथा अपनी स्त्री को भी धर्म मार्ग में प्रवर्ती कराने वाले, सदैव कुल की धर्म की राज की मर्यादा के अन्दर रहने वाले, श्रावक धर्म के योग्य आहार व्योपार से उपजीविका करने वाले, सत्पुरुषों की महनी करने वाले, सम्मति में सुबुद्धी देने वाले, महा बुद्धिवन्त, अन्य कृत यत्किञ्चित उपकार को महान मानने वाले—कृतज्ञ. काम क्रोध मोह लोभ और मत्सर इन षट् रिपु को स्ववश में रखने वाले, सद् शास्त्र के श्रवण करने वाले, सामायिक प्रत्याख्यानादि धर्म विधी पूर्वक आराधन करने वाले, महा दयावान, पाप कृत्य से भय भीत बने हुये. यह गुन श्रावक को आदरणीय हैं अर्थात् इन गुनों कर शोभित होवे उन्हें ही श्रावक कहना ।

१ आगार घर को कहते हैं और जो घर में रह कर धर्माराधन करते हैं उसको सागारी धर्म कहा जाता है. व्यवहार में इसका अर्थ ऐसा भी करते हैं कि-साधु के व्रत तो माता के समान हैं जो अखण्डित ही ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् साधु के सर्व सावद्य जोग के प्रत्याख्यान तीन करन और तीन योग से होते हैं तथा साधु पंच महाव्रत के धारक—पालक ही होते हैं एक दो व्रत का धारक साधु नहीं कहलाता है। साधु के व्रतों में किसी भी प्रकार का आगार नहीं होने से तथा गृह त्यागी होने से अनगार कहलाते हैं और श्रावक के व्रत सुवर्ण के समान यथा शक्ति ग्रहण कर सकते हैं. कोई एक करन एक योग से और कोई तीन करन तीन योग से ऐसे ही। कोई एक सम्यक्त्व व्रत का धारक और कोई बाराही व्रतों का धारक यों आगार युक्त व्रत के धारक व पालक होने से सागारी धर्मी कहलाते हैं ।

सागारी धर्म के पालक का अपर नाम श्रावक भी कहते हैं. श्रावक शब्द की 'श्रु' धातु है जिसका अर्थ होता है श्रवण करना—सुनना अर्थात् शास्त्र के श्रवण करने वाले को श्रावक कहते हैं और व्यवहार में श्रावक

शब्द इस प्रकार करते हैं:—श्र=श्रद्धावन्त व=विवेकवन्त क=क्रियावन्त अर्थात्—शुद्ध श्रद्धा युक्त विवेक पूर्वक क्रिया करे सो श्रावक, तथा-श्र-शर अ वक=श्रावे. जिस प्रकार तालाब की पालका विनाश न हो इस हेतु से उसमें से पानी निकलने का शर (मोरी आदि) रखदी जाती है उसही प्रकार आश्रव तालाब को संवर रूप पाल बान्ध कर अपना—संसार का रुका हुआ काम चलाने को कुछ छूट रखे सो श्रावक। इन का तीसरा नाम "श्रमणोपासक" भी कहते हैं—श्रमण—साधु उपाशक—भक्त. अर्थात् साधुओं की सेवा भक्ति के करने वाले सो "श्रमणोपासक।"

इस पद की प्राप्ति दो प्रकार से होती है-निश्चय में तो तीन मोहनी अनन्तानुबन्धी चौक और अप्रत्याख्यानी चौक यों ११ प्रकृतियों का क्षयोपशम होने से और व्यवहार में २१ गुण, २१ लक्षन १२ वृत ११ प्रतिमा इत्यादि गुनों के स्वीकारने से.

श्रावक के २१ गुण।

गाथा—अखुद्दो रूववं पगई सोमो लोग पियाओ।
अकूरो भीरु असठ दक्खिन लज्जालु दयालु ॥१॥
मज्झत्थ सुदिट्ठी गुणानुरागी सुपक्ख जुत्तो सुदीह।
विसेसन्नु वृद्धानुग विनीत कयनु परिहिय कत्ता लद्धलखो ॥२॥

१ 'अक्षुद्र'—दुःख प्रद स्वभाव वाले को क्षुद्र कहते हैं, श्रावक अपने अपराधी को भी दुःख-प्रद नहीं होते हैं तो अन्य का तो कहना ही क्या? अर्थात् किसी को भी दुःखदाता न होने से अक्षुद्र होते हैं।

२ 'रूपवन्त'—'यथाकृती तथा प्रकृति" के कथनानुसार श्रावक पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रयोग से हस्त पदादि पूर्ण अंग वाले, कर्ण चक्षु आदि पूर्ण इन्द्रियों वाले सुन्दराकृती तेजस्वी सशक्त शरीर वाले होते हैं।

३ 'प्रकृति सौम्य"—जिस प्रकार रूप कर ऊपर से सुन्दर होते हैं उस ही प्रकार शान्त दान्त क्षमवान शीतल स्वभावी सब से मिलन

स्वभावी विश्वासनीय आदि गुण कर अन्दर से भी सुन्दर होते हैं.

४ "लोक प्रिय"—इहलोक परलोक और उभय लोक विरुद्ध कर्म के त्यागी होने से सब लोगों को प्रियकर लगते हैं, गुणवन्तों की निन्दा दुर्गुणियों की तथा मूर्ख की ठठ्ठा-हंसी, पूज्य पुरुषों से मात्सर्य ईर्षा, बहुतों के विरोधी से मित्रता, देश के सदाचार का उल्लंघन, सामर्थ्य हो स्वजन मित्रों की सहायता नहीं करना. इत्यादि इस लोक विरुद्ध कार्य गिने जाते हैं। कोटवाली ठेकेदारी बन कटाई कृषी कर्म इत्यादि हिंसक उपजीविका यद्यपि इस लोक विरुद्ध नहीं गिने जाते हैं तथापि परलोक में दुःखप्रद होते हैं और सप्त दुर्व्यसन के सेवन * दोनों लोक विरुद्ध दुःखप्रद कर्म हैं इन तीनों प्रकार के निन्दनयि कर्म का त्याग कर जगत जनों के प्रिय पात्र बनते हैं।

५ 'अक्रुरा'—क्रूर स्वभाव क्रूर दृष्टी त्याग कर सरल स्वभावी गुण ग्राही होवे। छिद्र देखने वाले का चित्त सदैव मलीन रहता है इसलिये अन्य के छिद्र कभी अवलोकन करे नहीं, अपनी आत्मा के अवगुण देखं नम्र भूत बने रहे।

६ 'भीरू'—लोक अपवाद से, कर्म बन्ध से, नर्कादि दुःख से डरता हुआ पाप कर्म का लौकिक विरुद्ध कर्म का आचरन नहीं करे।

---

* श्लोक—द्यूतंच मासं च सूरा च वैश्या। पापार्धि चोरी पर दार सेवा॥
एता न सप्त च कुव्यसन लोके। घोराति घोरं नर्क गच्छन्ती ॥१॥

अर्थ—एक हार जीत के जितने काम हैं जैसे कि गंजफादि खेल और सट्टादि व्यापार जुआ कहलाता है। इस व्यसन वाले के धन का इज्जत का नाश कर राजा के पंचों के गुनहगार हो नर्कादि दुर्गति में चले जाते हैं। (२) मांस का आहार हिंसा का सूचक प्रकृती को क्रूर बनाने वाला कुष्टादि रोगोत्पादक पशुओं की और निर्दयी बने मनुष्य के भी घातक हो जाते हैं और आगे नर्क के घोर दुःख भुगतने हैं। (३) मदिरापान बुद्धी शुद्धी नष्ट कर धन इज्जत का नाश कर माता भगिन आदि से व्यभिचार और क्लेश सूचक हो नर्क गमन कराता है। (४) वैश्यागमन—जाति से धर्म से भ्रष्ट होकर बुद्धी का धन का इज्जत का नाश कर गर्मी, सुजाक प्रमेह आदि बीमारी से सड़ २ कर अकाल मृत्यु पाकर नर्क गमन करता है। (५) शिकार—अनाथ गरीब निरपराधी जो घास पानी मिले उस पर निर्वाह चलाने वाले बेचारे जलचर थलचर खेचर जीवों की हिंसा कर नर्क में बैयरों की शिकार बनता है और ६–७ चोरी और जारी (परस्त्री गमन) का कार्य वाला सब का विश्वनीय बन राजा पंच का गुनहगार हो अकाल मृत्यु से मर नर्क में चला जाता है। यों यह सातों व्यसन दोनों लोक में दुःखदाता होने से विरुद्ध कहे हैं।

७ 'असठ'—मूर्ख के समान भली बुरी वस्तु की याने पुण्य पाप के कार्य की गड़बड नहीं करे धर्म अधर्म के फल को पृथक २ समझे अधर्म पाप को घटावे धर्म पुण्य की वृद्धि करे।

८ 'दक्ष'—बड़ा विचक्षण होवे निगहा से मनुष्य को तथा कार्य को समझ जावे, अवसरोचित कार्य करने वाला. पाखण्डियों के छल से छलाय नहीं।

९ 'लज्जालू'—अनन्त ज्ञानी की बडे पुरुषों की लोगों की लज्जा रखता हुआ गुप्त तथा प्रगट कुकर्मों का आचरन नहीं करे वृतों का भंग नहीं करे लज्जा सर्व गुणों का भूषण है।

१० 'दयालु'—दया ही धर्म का मूल है ऐसा जान सब जीवों पर दया करे * दुखी जीवों को देख अनुकम्पा लावे यथा शक्ति सहायता कर दुख मिटावे, मृत्याभिमुखी को बचावे।

११ 'मध्यस्थ'—अच्छी बुरी वस्तु को सुन कर व देख कर राग व द्वेष मय परिणामों को नहीं बनावे किसी भी पदार्थ में गृद्धी पना धारन नहीं करे क्यों कि राग द्वेष व गृद्धता चिकने कर्म वन्ध का कारन है × इस लिये सब पदार्थों में यों अच्छे बुरे बनावों में मध्यस्थ रहे, रूक्ष-शुष्क वृत्ति धारन करे जिस से चिकने कर्मों का बन्धन नहीं बंधे पूर्वोपार्जित कर्म शिथिल हो शीघ्र छुटकारा होवे।

---

* श्लोक—अयं निजः परवेती गणनालघुचेतसाम्। उदार चरितानंतु। वसुधैव कुटुम्बकम।
अर्थ—यह मेरा और यह दूसरे का ऐसा विचार तुच्छ बुद्धि वाले का होता है श्रेष्ट जन तो पृथवी के सब प्राणी को अपने कुटुम्ब समान ही जानते हैं।

× दोहा—जो सम दृष्टी जीव हैं; करे कुटुम्ब प्रतीपाल।
अन्तर से न्यारे रहे, ज्यों धाय खेलावे बाल ॥१॥

अर्थ—जिस प्रकार धाय माता बच्चे का लालन पालन करती हुई अन्तर में समझती है कि यह बच्चा मेरा नहीं है। जो पर्यन्त दुग्ध पान करता है तो पर्यन्त मुझे माता मानता है तैसे ही समदृष्टी भी कुटुम्ब का पालन करते अन्त से अलिप्त रहते हैं ॥

१२ 'सुदृष्टी'—इन्द्रियों में विकार उत्पन्न करने वाले पदार्थों का अवलोकन कर अन्तःकरण को मलीन नहीं बनावे दृष्टी को फिरा लेवे सौम्य दृष्टी ढलते नेत्र से रहे।

१३ 'गुणानुरागी' ज्ञानी तपी जपी संयमी वैरागी शुद्ध क्रिया के पालक ब्रह्मचारी, क्षमाशील, धैर्यवन्त, धर्मप्रदीपक दानेश्वरी इत्यादि गुनवाणों पर अनुराग प्रेम रखे, इनका बहुमान करे महातम बढ़ावे यथा शक्ति सहायता करे गुनों को प्रदीप्त करे समझे कि--अहोभाग्य हमारे हैं कि जो हमारे कुल में ग्राम में ऐसे २ गुनवान उपस्थित हैं इन के सम्बन्ध से अपने कुल व धर्म की उन्नति होगी. वगैरा.

१४ "सुपक्षयुक्त"—न्यायी का पक्ष धारन करे और अन्यायी का पक्ष छोड़े यहां कोई प्रश्न करे कि राग द्वेष करने की प्रथम मना करी अब न्यायी का पक्ष धारन करने को कहते हो इस का कारन? समाधान-जहर को जहर और अमृत को अमृत जानने और कहने को राग, द्वेष नहीं समझना चाहिये क्यों कि सम्यक् दृष्टि उनहीं को कहते हैं कि जो वस्तु के यथा तथ्य स्वरूप को समझे. जब अच्छे बुरे का यथार्थ स्वरूप समझेगा तब ही बुरे को छोड़ कर अच्छे को स्वीकार करेगा इस लिये श्रावक न्याय पक्षी होते हैं तथा श्रावक के माता पिता स्त्री पुत्र मित्रादि शुद्धाचारी धर्मात्मा होने से सुपक्ष युक्त कहे जाते हैं।

१५ 'सुदीर्ह दृष्टि'—किसी भी कार्य के परिणामिक फल को अच्छी दीर्घ दृष्टि से विचार कर जो भविष्य काल में आत्मिक गुन के लाभ का कर्ता सुख का दाता, परिणामिक पुरुषों को श्लाघनीय हो ऐसे कार्य को करते हैं और निन्दनीय दुःखप्रद को छोड देते हैं वे सुखी और श्लाघनीय होते हैं. बिना विचार कार्य का कर्ता पश्चात्तापी होता है।

१६ 'विशेषज्ञ'—गौ का आक का दूध तथा सुवर्ण और पीतल रंग

में तो समान होते हैं * किन्तु गुण में महदाकाशी अन्तर होता है जिस की परीक्षा विशेषज्ञ—विज्ञानी पुरुष ही कर सकते हैं किन्तु ऊपर के रूप से भ्रम में नहीं फसते हैं तैसे ही श्रावक भी नवतत्त्वादि ज्ञान में विशेषज्ञ बन जानने योग्य को जाने आदरने योग्य को आदरे और छोडने योग्य को छोडते हैं।

१७ "वृद्धानुग"—वयो वृद्ध और गुणों वृद्ध की आज्ञा में रहने वाले यथा शक्ति और यथा उचित उनकी सेवा करने वाले. तथा वृद्ध जनों के ज्ञानादि गुन का अनुकरण करने वाले ‡।

१८ 'विनीत'—"विणाओ जिण सासन मूलो"—अर्थात् जिनेन्द्र के शासन का मूल विनय ही है ऐसा जान गुरु आदि जेष्ठ जनों का यथोचित विनय करे. सब से नम्र भूत होकर रहे।

१९ 'कृतज्ञ'—कहा है कि—'कृतघ्न महा भारा' ∆ अर्थात् जो दूसरों के किये उपकारों को नहीं मानता है उससे पृथ्वी भार भूत बन रही है. ऐसा जान किसी ने अपने पर किञ्चित भी उपकार किया हो उसे महा उपकार मान कर उनके उपकार से उरन होने का यथा शक्ति प्रयत्न करे। +

* सवैया—कैसे कर केनकी कणेर एक कहे जाय। आक और गाय दूध अन्तर अधिके रहे। पीली होत तरेही पण रोश करे कंचन की। कहां कागवानी कहां कोयल का टहूका है॥ कहां भानु तेज कहां अगीया विचारा कहां। पूनम का उजियाला कहां अमावस अन्धेरा है। पक्ष छोडी पारखी निहाल देखो नीकोकरी। जैन विन और जैन अन्तर घणेरा है॥१॥

‡ श्लोक—तपः श्रुतः धृति ध्यान, विवेक यम संयमे। यः वृद्धास्ते अत्र शस्तं स्याते न पुनः पलितां कुरे॥१॥

अर्थ—जो तपश्चर्या में धैर्यता में ज्ञान में ध्यान में विवेक में नियम पच्चख्खान में संयम इन्द्रिय दमन में इत्यादि गुणों में वृद्ध (बुढे) होय उनको वृद्ध (बुढे) कहना किन्तु सिर्फ श्वेत बाल के आने से वृद्ध नहीं कहलाते हैं।

∆ श्लोक—नमो को पर्वता भारा, नहीं भारा सु सागरा।
कृतघ्न महा भारा, भारा विश्वास घातिका॥१॥

अर्थ—पृथ्वी कहती है कि मेरे पर पर्वतों का और समुद्रों का कुछ वजन नहीं है परन्तु कृतघ्नी और विश्वास घाती का बड़ा वजन है।

+ ठाणांग सूत्र में तीन जने से उरन होना—उनके उपकार का बदला देना मुश्किल कहा है। यथा—१ गर्भ धारन से योग्य वयस को प्राप्त हो वहां तक अनेक कष्ट स्वयं सेहन

२० 'पर हित कर्ता'—"परोपकाराय पुण्याय:"—अर्थात् परोपकार करना वही पुण्य है ऐसा जान यथा शक्ति यथोचित सदैव पर उपकार करते रहते हैं. कदापि परोपकार कार्य में अपने को दु:ख या किसी प्रकार की हानि होती हो तो भी परोपकार करने से वंचित नहीं रहे ।

२१ 'लब्ध लक्षी'—जैसे लोभी को धन की और कामी को स्त्री की लालसा होती है तैसे श्रावक को ज्ञानादि गुन की लालसा होती है । "खण्ड खण्डे तु पण्डेतु" अर्थात् थोड़ा २ ज्ञान सदैव प्राप्त करने से पण्डित बन जाते हैं, ऐसा जान सदैव नये २ ज्ञान का अभ्यास करते रहते हैं. यों लब्ध लक्षी हो एक २ गुन को ग्रहण करते २ अनेक गुनों के पात्र बन जाते हैं, देखिये ! उत्तराध्ययन सूत्र के २१वें अध्याय में कहा है कि- "निग्गंथे पावयणे, सावए से विकोविए" अर्थात् चम्पानगरी के पालित श्रावक निग्रन्थ प्रवचन (शास्त्र) के अच्छे जानकार थे और तेईस में अध्याय में कहा है 'सीलवन्ता बहु सुया' अर्थात् राजमतीजी सीलवती बहुत सूत्रों की जानने वाली थी. ऐसे और भी बहुत उदाहरण हैं. जिसका अर्थ यह है कि भूत काल में श्रावक श्राविकाओं इस प्रकार शास्त्र के जानकार होते थे. ऐसा जान सामायिक द्वादशांग तक ज्ञान का और सम्यक्त्व से सर्व वृत्ती की क्रिया तक का अभ्यास करते हैं ।

कर अनेक उपचार द्वारा रक्षन करने वाले माता पिता को कोई पुत्र स्वयं स्नानादि करा वस्त्राभुषणों से अलंकृत कर इच्छित भोजन आज्ञानु पालन करें कि यह पृष्ट पर तमाम उमर उठाये फिरे तो भी उरन नहीं होवे । किन्तु जिनेन्द्र प्रणित धर्म उनको अंगीकार करा समाधी मरन करावे तो उरन होवे । २ किसी सेठ ने किसी दरिद्री को द्रव्यादि का सहाय दे व्यापार में लगा धीमान बना दिया और कर्मयोग से वे शेट दरिद्र अवस्था को प्राप्त हो गये उन्हें वह अपना सब धन माल अर्पण कर उक्त माता पिता के कथन प्रमाने तमाम उमर दास बन सेवा करे तो भी उरन नहीं होवे । किन्तु जिनेन्द्र प्रणित धर्म में स्थापन कर समाधी मरन करावे तो उरन होवे और ३ किसी धर्माचार्य का धर्मोपदेश श्रवन कर धर्माचरन कर कोई देव पद को प्राप्त हुआ [illegible] उन आचार्य जी की यथोचित भक्ति करे [illegible] दि [illegible] रक्षन [illegible] वैय्यावच्च करे तो भी उरन नहीं होवे किन्तु [illegible] धर्म से संयम से पतित करे हो [illegible] ।

☞ उक्त २१ प्रकार गुन के धारक होते हैं वे श्रावक कहे जाते हैं. ऐसा जान श्रावक नामधारियों का कर्तव्य है कि उक्त २१ गुनों में से यथा शक्ति गुनों को स्वीकार करें।

श्रावक के २१ लक्षण।

१ 'श्रावक-धन की विषय की तृष्णा को कमी कर अल्प इच्छा वाले होते हैं प्राप्त धन विषय में भी अत्यन्त लुब्धता धारन नहीं करने से अल्प इच्छा वाले होते हैं. २ पृथव्यादि छेः ही काय जीवों के हिंसक कार्यों की वृद्धी नहीं करते हैं किन्तु प्रति दिन कमी करते रहते हैं और अनर्थ दण्ड से सदैव अलग रहने से अल्पारम्भ वाले होते हैं. ३ जितना परिग्रह—सम्पत्ती प्राप्त हुई है उस उपरान्त मर्यादित बनने से तथा उसको भी सन्मार्ग में व्यय कर संकोच करने से और कुव्योपार से द्रव्योपार्जन कर इच्छा रहित होने से 'अल्प परिग्रही' होते हैं. ४ पर स्त्री के त्यागी गृहणी से भी मर्यादित होने से और आचार विचार की शुद्धता वाले होने से 'सुशील' होते हैं. ५ ग्रहण किये व्रत प्रत्याख्यान नियम निरअतीचार चढ़ते परिणामों से पालने से 'सुव्रती' होते हैं. ६ धर्म कृत्य का नित्य नियम पालन करने से 'धर्मिष्ट' होते हैं, ७ मनादि त्रियोग को सदैव धर्म मार्ग में रमण करता होने से 'धर्मवृती' होते हैं. ८ श्रावक धर्म के जो २ कल्प-आचार हैं उनमें उग्र-अप्रतीहत विहार के करने वाले अर्थात् परिषह उपसर्गादि प्राप्त होने पर भी आचार विरुद्ध कृत्य का कदापि आचरन नहीं करने वाले होने से "कल्प उग्र विहारी" होते हैं. ९ निर्वृती मार्ग में ही सदैव तल्लीन बने रहने से "महा सम्वेग विहारी" होते हैं। १० संसारी और हिंसादि अ-कृत्य करते हुये भी उदासीन वृती धारक के होने से "उदासीन" होते हैं. ११ आरंभ और परिग्रह से निवृती के इच्छुक होने से "वैराग्य वन्त"

२० 'पर हित कर्ता'—"परोपकाराय पुण्याय:"—अर्थात् परोपकार करना वही पुण्य है ऐसा जान यथा शक्ति यथोचित सदैव पर उपकार करते रहते हैं. कदापि परोपकार कार्य में अपने को दुःख या किसी प्रकार की हानि होती हो तो भी परोपकार करने से वंचित नहीं रहे ।

२१ 'लब्ध लक्षी'—जैसे लोभी को धन की और कामी को स्त्री की लालसा होती है तैसे श्रावक को ज्ञानादि गुन की लालसा होती है। "खण्ड खण्डे तु पण्डेतु" अर्थात् थोड़ा २ ज्ञान सदैव प्राप्त करने से पण्डित बन जाते हैं, ऐसा जान सदैव नये २ ज्ञान का अभ्यास करते रहते हैं. यों लब्ध लक्षी हो एक २ गुन को ग्रहण करते २ अनेक गुणों के पात्र बन जाते हैं, देखिये ! उत्तराध्ययन सूत्र के २१वें अध्याय में कहा है कि- "निग्गंथे पावयणे, सा वय से विकोविए" अर्थात् चम्पानगरी के पालित श्रावक निग्रन्थ प्रवचन (शास्त्र) के अच्छे जानकार थे और तेईस में अध्याय में कहा है 'सीलवन्ता बहु सुया' अर्थात राजमतीजी सीलवती बहुत सूत्रों की जानने वाली थी. ऐसे और भी बहुत उदाहरण हैं. जिसका अर्थ यह है कि भूत काल में श्रावक श्राविकाओं इस प्रकार शास्त्र के जानकार होते थे. ऐसा जान सामायिक द्वादशांग तक ज्ञान का और सम्यक्त्व से सर्व वृती की किया तक का अभ्यास करते हैं ।

कर अनेक उपचार द्वारा रक्षन करने वाले माता पिता को कोई पुत्र स्वयं स्नानादि करा वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर इच्छित भोजन खाना पालन करें कि यह पृष्ट पर तमाम उमर उठाये फिरे तो भी उरन नहीं होवे । किन्तु जिनेन्द्र प्रणित धर्म उनको अंगीकार करा समाधी मरन करावे तो उरन होवे । २ किसी सेठ ने किसी दरिद्री को द्रव्यादि का सहाय दे व्यापार में लगा श्रीमान बना दिया और कर्मयोग से वे सेट दरिद्र अवस्था को प्राप्त हो गये जबकि वह अपना सब धन माल अर्पण कर उक्त माता पिता के कथन प्रमाने तमाम उमर दास बन सेवा करे तो भी उरन नहीं होवे । किन्तु जिनेन्द्र प्रणित धर्म में स्थापन कर समाधी मरन करावे तो उरन होवे और ३ किसी धर्माचार्य का धर्मोपदेश श्रवन कर धर्माचरन कर कोई देव पद को प्राप्त हुआ वह देव उन आचार्य जी की यथोचित भक्ति करे और दुष्काल दुर्भिक्ष दुष्कालादि में उनका स्थलान्तर पहुँचा वैयावच करे तो भी उरन नहीं होवे किन्तु कदाचित कर्मयोग आचार्य महाराज के परिणाम धर्म से संयम से चलित भये हों उनको यथोचित उपाय कर धर्म में स्थिर करे तो उरन होवे ।

☛ उक्त २१ प्रकार गुन के धारक होते हैं वे श्रावक कहे जाते हैं. ऐसा जान श्रावक नामधारीयों का कर्तव्य है कि उक्त २१ गुनों में से यथा शक्ति गुनों को स्वीकार करें ।

श्रावक के २१ लक्षण ।

१ 'श्रावक-धन की विषय की तृष्णा को कमी कर अल्प इच्छा वाले होते हैं प्राप्त धन विषय में भी अत्यन्त लुब्धता धारन नहीं करने से अल्प इच्छा वाले होते हैं. २ पृथव्यादि छेः ही काय जीवों के हिंसक कार्यों की वृद्धी नहीं करते हैं किन्तु प्रति दिन कमी करते रहते हैं और अनर्थ दण्ड से सदैव अलग रहने से अल्पारम्भ वाले होते हैं. ३ जितना परिग्रह—सम्पत्ती प्राप्त हुई है उन उपरान्त मर्यादित बनने से तथा उसको भी सन्मार्ग में व्यय कर संकोच करने से और कुव्योपार से द्रव्योपार्जन कर इच्छा रहित होने से 'अल्प परिग्रही' होते हैं. ४ पर स्त्री के त्यागी गृहणी से भी मर्यादित होने से और आचार विचार की शुद्धता वाले होने से 'सुशील' होते हैं. ५ ग्रहण किये व्रत प्रत्याख्यान नियम निरअतीचार चढते परिणामों से पालने से 'सुवृती' होते हैं. ६ धर्म कृत्य का नित्य नियम पालन करने से 'धर्मिष्ट' होते हैं, ७ मनादि त्रियोग को सदैव धर्म मार्ग में रमण करता होने से 'धर्मवृती' होते हैं. ८ श्रावक धर्म के जो २ कल्प-आचार हैं उनमें उग्र-अप्रतीहत विहार के करने वाले अर्थात् परिषह उपसर्गादि प्राप्त होने पर भी आचार विरुद्ध कृत्य का कदापि आचरन नहीं करने वाले होने से "कल्प उग्र विहारी" होते हैं. ९ निर्वृती मार्ग में ही सदैव तल्लीन बने रहने से "महा सम्वेग विहारी" होते हैं। १० संसारार्थ [illegible] अ-कृत्य करते हुये भी उदासीन वृती धारक के होने से 'उदासीन' होते हैं. ११ आरंभ और परिग्रह से निवृती के इच्छुक होने से "वैराग्य वन्त"

१२ बाह्याभ्यन्तर एक सी शुद्ध वृत्ती रख निष्कपटी—शरलता के आदर्श होने से "एकान्त आर्य" १३ सम्यक्-ज्ञान दर्शन चरित्राचरित्र रूप मार्ग से प्रवृत्तक होने से "सम्यक् मार्गी" १४ परिणामों से अवृत की क्रिया का निरूंधन सर्वथा कर संसार कार्यार्थ द्रव्य हिंसा * लाचारी से करते हुये भी धर्म के वृद्धक व आत्म साधक होने से "सुसाधु" १५ जैसे सुवर्ण के पात्र में सिंहनी का दुग्ध विनाश नहीं पाता है तैसे सम्यक् ज्ञानादि गुन जिन का कदापि नाश न पावे तथा उन को दिया दान निरर्थक नहीं जावे ऐसे होने से "सुपात्र" १६ मिथ्यात्वी से अनन्त गुण विशुद्ध पर्यव के धारक श्रावक होने से "उत्तम" १७ पुण्य पाप के फल के बन्ध मोक्ष के आस्तिक होने से "क्रियावादी" १८ जिनेन्द्र के और सुसाधु के वचनों में प्रतीतान्त होने से "आस्तिक" १९ जिनाज्ञानुसार करणी के करने वाले होने से "आराधिक" २० मन से सब जीवों से मैत्री भाव गुणाधिक पर प्रमोद भाव, दुःखी पर करुणा भाव और दुष्ट पर मध्यस्त भाव धारन कर, वचन से सत्य तथ्य पथ्य वचनोच्चार तथा सम्यक्त्वी से लगा सिद्ध पर्यन्त गुनवन्तों की कीर्तन कर और धन से धर्मोन्नति के स्थान उदार परिणामों से अमोघ धारा द्रव्य व्यय के कर्ता होने से "जैन मार्ग के प्रभावक" और २१ अर्हन्त के साधु तो ज्येष्ठ शिष्य हैं और श्रावक लघु शिष्य होने से "अर्हन्त शिष्य" होते हैं ।

☞ उक्त २१ लक्षण—चिन्ह जिन में उपलब्ध हों वे ही श्रावक कहे जाते हैं।

---

* हिंसा और अहिंसा की चौभङ्गी—१ कसाई पारधी आदि जो जीवों की हिंसा करते हैं वह द्रव्य से भी और भाव से भी हिंसा। २ हिंसा के त्यागी साधु आहार विहारादि कार्य करते जो हिंसा होत सो द्रव्य से तो हिंसा है किन्तु भाव से अहिंसा। ३ उपयोग रहित साधु तथा द्रव्य लिंगी साधु प्रतिलेखनादि कर गमनागमनादि क्रिया करते हैं वह द्रव्य से अहिंसा और भाव से हिंसा और ४ अप्रमादि तथा केवलज्ञानी साधु के द्रव्य से भी अहिंसा और भाव से भी अहिंसा।

श्रावक के १२ वृत।

जिस प्रकार तालाव के नालों निरूंधन करने से पानी का आगमन रुक जाता है उसही प्रकार इच्छा का निरूंधन करने से पाप आना रुक जाता है उसे ही वृत कहते हैं। इन वृतों का दो प्रकार से आचरन किया जाता है जो सर्वथा इच्छा का निरूंधन कर साधु होते हैं वे सर्व वृती कहलाते हैं और जो आवश्यक्ता जितनी छूट रख इच्छा का निरूंधन कर श्रावक बनते हैं वे देश वृती कहलाते हैं. इन के ५ अणुव्रत ३ गुन वृत और ४ शिक्षावृत यों १२ प्रकार के वृत होते हैं।

५ अणु वृत।

जिस प्रकार पिता की अपेक्षा पुत्र अणु-छोटा होता है उस ही प्रकार साधु के पंच महा वृतों की अपेक्षासे वे ही वृत देश से धारन करने से अणु-वृत कहलाते हैं।

१ "पहिला अणवृत स्थूल प्रणातीपात विरमणं"

जीव दो प्रकार के होते हैं, यथा १ स्थावर जीव सो सुक्ष्म और २ त्रस जीव सो स्थूल (बड़े) गृहस्थों को स्थावर जीव की हिंसा से निवृती करना दुष्कर है इस लिये "स्थूल पणाइ वाया ओ वेरमणं" अर्थात् स्थूल त्रस जीव लट चींटी आदि वेन्द्रिय, युंका खटमल आदि तेन्द्रिय मक्षी पतं-गादि चौरिन्द्रिय और पशु पक्षी मनुष्यादि पचेन्द्रिय इन जीवों को जान कर प्रछी-देख कर मारने का संकल्प कर आकुटी-उपत कर स्वयं हिंसा करे नहीं, अन्य के पास से हिंसा करावे नहीं। यह दो करण और मन से हिंसा करने कराने का विचार करे नहीं, वचन से हिंसा करने कराने को कहे नहीं, काया से हिंसा के कृत्य करे करावे नहीं. यह तीन जोग इस प्रकार दो करन और तीन करन से त्रस जीव की हिंसा से निवृत्ति रूप नियम-वृत का आचरन जावज्जीव पर्यन्त का करे।

पहिले वृत के आगार—१ गृहस्थ से त्रस जीव की हिंसा के कार्य की अनुमोदना--प्रशंसा से निवृती पाना दुष्कर है क्योंकि--नौकरादि से कराये हुए गृह कार्य में किसी जीव की हिंसा होगई हो तो भी उस कार्य को अच्छा जानते हैं तथा राजा प्रमुख संग्राम द्वारा वैरी का पराजय कर आये हो शिकार कर आये हों उनकी प्रशंसा जनता की देखा देख करनी पड़े नजर उत्सव करना पड़े इत्यादि कारनों से अनुमोदन करने का आगार रखते हैं. २ स्वयं के शरीर में तथा मात, पिता, स्त्री, पुत्रादि स्वजन के शरीर में, दास, दासी, गौ, भैंस, घोड़े आदि आश्रितों के शरीर में कृमी आदि जीवोत्पत्ती होगई हो उसके लिये जुलाबादि औषधी मरहम पट्टी आदि करना पडे. ३ पर चक्री आदि शत्रु तथा चोर आदि मारने आया हो उससे अपनी अपने कुटुम्बादि की रक्षा के लिये संग्राम करना पड़े मारना पड़े. ४ पृथ्वी का खोदन करते त्रस की घात हो जाय. पानी को छान कर वापरते भी सूक्ष्म त्रस जीव उसमें रह जाय, अग्नि का आरंभ करते वायु के झपट में आकर, वनस्पति का छेदन भेदन करते गमनागमन शयनासन करते बचाने का उपयोग रखते भी त्रस जीव की हिंसा हो जाय उसका पाप तो लगता है किन्तु वृत भंग नहीं होता है ।

चौवीस स्थान के थोकड़े में छे काय जीवों की ६, पांच इन्द्री की ५ और मन की १ यों १२ अवृत कही हैं उसमें से पंचम गुन स्थान वर्ती श्रावक को त्रस की अवृत के सिवाय ११ अवृत लगती ही हैं। मतलब कि त्रस की हिंसा हो ऐसा कार्य करे सो श्रावक नहीं. इसलिये जिन २ कार्यों में त्रस जीवों की हिंसा होती है उन २ कार्यों में से कितनेक कार्य यहां सूचित करते हैं—१ पहर रात्रि गये बाद सूर्योदय पहिले बुलन्द आवाज से बोलने से चिरमरी (पांखी) जाग्रत हो माक्षिकादि जीवों का भक्षन करती हैं तथा नजदीक में रहने वाले मनुष्य जाग्रत हो मैथुन, खण्डन, पीसन, पाचनादि, आरम्भ करने लग जाते हैं. इसलिये उक्त टाइम के मध्य में जोर से नहीं

बोलना. २ रात्रि में तक्र (छाछ) बनाने से, झाडू से बुहारने से, भोजनादि पचाने से, रास्ते में चलने से, वस्त्रादि धोने से, स्नान करने से, भोजनपान करने से × त्रस जीव की हिंसा भी होती है और जहरीले जानवर की झपट

× श्लोक—मृत स्वजन गोत्रेऽपि सूतकं जायते किल।
अस्तं गते दिवा नाथ भोजनं क्रियते कथं ॥ १ ॥

अर्थ—स्वजन की मृत्यु होने से सूतक गिन भोजनादि नहीं करते हैं तो फिर दिन का नाथ सूर्य अस्त होने से भोजन कैसे किया जायगा।

श्लोक—रक्तं भवती तोयानी। अन्नानि पिशतानां च।
रात्री भोजन सक्तस्य, भोजनं क्रियते कथं ॥२॥

अर्थ—रात्री को अन्न मांस के और पानी रक्त के समान हो जाता है। रात्री को भोजन पान करने वाला ग्रास २ में मांस रक्त खाते हैं।

श्लोक—उदकं नैव पातव्यं, रात्रि यात्र युधिष्टर।
तपस्वीना विशेषणा; गृहीणा च विवेकी नां ॥३॥

अर्थ—हे युधिष्टर! धर्मात्मा गृहस्थकों और साधु को रात्री में पानी भी नहीं पीना चाहिये।

श्लोक-ये रात्रो सर्वदाहारं। वर्जयती सु मेध से ॥
तेषां पक्षोप वासेन, फल मांसेन जायते ॥४॥

अर्थ—जो रात्री में खान पान बिलकुल नहीं करता है। उसको एक महीने में १५ उपवास का फल होता है।

श्लोक—नैवाहुतिं न च स्नान, न श्राधं देवतार्चनम्।
दानं न विहितं रात्रौ; भोजनं तु विशेषतः ॥

अर्थ—रात्री को देव की आहुती स्नान श्राद्ध देव पूजन दान भी नहीं होता है और भोजन तो बिलकुल नहीं होता है।

श्लोक—हृन्नाभि पद्म संकोच; श्चण्डरो चिर पायातः।
अतो नक्तं न भोक्तव्यं, सूक्ष्म जीवद नो दपि ॥आयुर्वेद॥

अर्थ—हृदय कमल और नाभी कमल सूर्य अस्त हुये बाद संकोच पा जाते हैं इस लिये रात्री भोजन रोगोत्पन्न कर्त्ता और सूक्ष्म जीव का घातक है।

श्लोक—मेधा पीपीलिका हन्ति यूका कूर्या जलोंदर।
कुरु ते मक्षिका वान्तीं, कुष्ट रोगं च कोलिका ॥
कंट के दारु खण्डं च, वितनोती गल व्यथाम।
व्यंजनान्तर्निपतितं, तानु विध्यन्ति वृश्चिकं ॥

अर्थ—रात्री को भोजन में चींटी आ जावे तो बुद्धि नष्ट होवे, जूंका खाने में जलोदर होवे मक्खी से उलटी होवे मकड़ी से कुष्ट रोग होय कांटे से कंठमाला होवे, बिच्छू के कांटे से तालु छेद होता है इत्यादि अनेक नुकसान रात्री भोजन से होते हैं।

दोहा—चीड़ी कमेड़ी कागले, रात चुगन नहीं जांय, तो देहधारी मानवी रात पड़े क्यों खाय।
कृष्णा सोमन रात का करे अधर्मी जीव, किंचित जीतब कारने दे नरक की नींव ॥

में आ विपदि भक्षन होने से अकाल मृत्यु भी निपज जाती है. इसलिये उक्त कार्य रात्रि को नहीं करना. ३ पाखाने में दिशा जाने से और मोरी गटरादि में पेशाब करने से असंख्यात समुर्च्छिम मनुष्य कृमी आदि जन्तुओंकी घात होती है और दुर्गन्ध से तथा रोगिष्ट मनुष्य के पेशाब पाखाने पर पेशाब पाखाना होजाने से गरमी आदि बीमारी लग जाती हैं. ४ खड्डे में फटी भूमी में राख, तुस, घास, गोबरादि के ढग पर पेशाब पाखाना करने से उसके आश्रित त्रस जीवों की घात हो जाती है, ५ विना देखे धोबी को कपड़े देने से, खाट पलंगादि को पानी में डुबाने से तथा उनपर गरम पानी डालने से उनके आश्रित त्रस जीवों की घात हो जाती है. ६ दशहरा दीपावली आदि पर्व के दिन जो चातुर्मास में आते हैं उस वक्त षटमालादि जीवों भींतादि में विशेषत्व पाते हैं परन्तु लोक रूढानुसार लीपन धोवन करने से उनकी घात हो जाती है, ७ आटा, दाल, शाख, सूकी तरकारी, पापड़, बड़ी, मेवा पकवानादि बहुत दिन संग्रह कर रखने से उनमें त्रस जीवों की उत्पत्ती हो जाती है. और उनको विना देखे वापरने—खाने से उन जीवों का भक्षन हो जाता है. ७ चूल्हा, चक्की, छाने, लकड़ी, आटा, दाल, शाख, बरतन, वट्टी ऊखल आदि किसी भी वस्तु को विना देखे काम में लेने से त्रस जीव की घात हो जाती है. ८ चौमासे के दिनों में शर्दी अधिक होने से जमीनपर छाने, लकड़ी, मट्टी के वर्तन में कुंथवे आदि जीवों की उत्पत्ती हो जाती है. उनको ऊन तथा सनकी पुंजनी से प्रमार्जन किये बिना काम में लेने से उनकी घात हो जाती हैं. ९ चुल्हे पर परेंडे (पानी के स्थान) पर चक्की पर, टाबल पर, जो छत्त-चंदरवे नहीं लगाने से ऊपर चलते हुए जीवों गिर कर मृत्यु पाते हैं और वस्तु की भी खराबी होती है १० विना छाना पानी वापरने से तथा पानी छाने बाद छन्ने में रही जीवानी की यत्ना नहीं करने से तथा दूसरे सरोवरादि में डालने से बहुत त्रस जीवों की घात होती है * ११ किराने का, धान्य का,

* श्लोक-सूक्ष्माणि जंतू जलाश्रयाणि, जलस्य वर्णाकृति संस्थितानि ।
तस्माज्जलं जीव दयानिमित्तं, निरग्र शूरा परिवर्जयन्ति ॥

मील गिरनी का, मिठाई को तेल घृतादि रस का, लाख चपड़ी गली का, छाने लकड़ का, भाजी फल मेवे इत्यादि के व्यापारों में विशेषत्व त्रस जीव की घात होती है. १३ दूध, दही, घृत, तेल, तक्र, पानी, राब मुरब्बा कांकब आदि परवाहिक (पतले) पदार्थों के वर्तन, दीपक, चूल्हा सिगड़ी खाली वर्तन इत्यादि खुल्ले (विना ढके) रखने से मूषकादि त्रस जीव उस में पड़ मृत्यु पाते हैं. १४ मक्की के भुट्टे, ज्वार के हुरडे बाजरे के पूंख चने के बूंट गेहूं की ऊंबी, बेर नागरबेल के पान, मूले मेंथी की भाजी मिष्ठ फल सड़ी वस्तु इत्यादि में त्रस जीव विशेषत्व पाते हैं इन को भूंजने भक्षन में उन की घात होजाती है. १५ गौ भैंस अश्वादि के रहने के स्थान में धूंवा करने वाले मच्छरादि के घातक होते हैं. १७ जूतों के तले में कीलें नालें लगी होती हैं उसे पहन कर चलने से पैर के नीचे त्रस जीवों का कुचला हो जाता है. इन के सिवाय और भी अनेक काम त्रस जीवों की घात के हैं उनसे निवृत्त कर सच्चा श्रावक बने ।

अर्थ—भागवत पुरान में कहा है कि पानी के रंग जैसे ही शरीर वाले अनेक जीव पानी में रहते हैं इस लिये मदिरा के समान सचित पानी को जान कर जीव दया के निमित सचित तथा विना छाना पानी वापरने को छोड़ देते हैं।

श्लोक—संवत्सरेण यत्पापं, कैवर्त स्याहि जायते ।
एका हेन तदाप्नोती, अपूतं जल संग्रह ॥ १ ॥

अर्थ—मच्छी पकड़ने वाले भोइ को एक वर्ष में जितना पाप लगता है उतना पाप एक दिन विना छाना पानी वापरने से लगता है।

श्लोक—त्रिंशत्यु गुल मानं तु विंशदंगुल मायतो ।
तद्वस्त्र द्विगुणी कृत्य, गालये ज्जलना पीबत ॥ २ ॥
तस्मिन् वस्त्रे स्थितान् जीवान्, स्थापये जल मध्यते ।
एवं कृत्वा पीबे तोय, सायाति परमां गति ॥ २ ॥

अर्थ—२० अंगुल लम्बा और ३० अंगुल चौड़ा ऐसे वस्त्र को दोहरा कर के उसमें पानी छान कर छनने में रही जीवानी को जिस स्थान का पानी हो उस ही में स्थापन करने वाला जीव परमगती देवगती में जाता है। ऐसा महाभारत में कहा है।

अरल छन्द—जल में भीणा जीव थाग नहीं पायरे ।
विन छाना जल पीवे ते पापी होयरे ॥
काढे कपड़े छाने विन नहीं पीजीये ।
जीवानी का यत्न जुक्ति से कीजीये ॥ १ ॥

अब स्थावर जीवों की हिंसा से सर्वतः निवृत नहीं हो सके तो भी निम्नोक्त प्रकार तो मर्यादित अवश्य ही बने—१ 'पृथवी काय'-खेत वाडी करने के, जमीन खोदने के, निमक क्षार खड़िया हिंगलु गेरूं हिरमजी मुलतानी मट्टी आदि पृथवी काय के व्यौपार के, सचित्त क्षारादि से वस्त्र धोने के, सचित्त मट्टी से दांतन करने के, हाथ धोने के चूल्हा कोठी और नया मकान बनाने के इत्यादि प्रकार से पृथिवी काय की हिंसा के प्रत्याख्यान करे नहीं तो मर्यादा तो अवश्य करे, मट्टी के ढेर को खूंदे-नहीं ऊपर बैठे नहीं. पत्थर आदि से तोड़ना फोड़ना करे नहीं यो पृथ्वी काय की यत्ना करे २ 'अपकाय'—नदी, तालाब, कूप, बावड़ी आदि जलाशय (सरोवर) के अन्दर उतर स्नान करने से पानी दुर्गन्धित हो रोगिष्ट होता है और शरीर के स्पर्श से गरम हुआ पानी का वेग जितनी दूर जाता है वहां तक के त्रस और स्थावर जीव मर जाते हैं। अज्ञानी मनुष्य मरे बाद मनुष्य को स्वर्ग में पहुंचाने के वास्ते उस के शरीर की राख हड्डियों को तीर्थ स्थानादि के पानी में डालते हैं, हड्डियों के पानी में पडते ही पानी के उछलने से मच्छादि भी मर जाते हैं तो अन्य जीवों का क्या कहना? तैसे ही राख भी क्षार है इससे उस मिश्रित पानी का वेग जितनी दूर जाता है वहां के जीवों मारे जाते हैं और मरने वाला तो उस ही वक्त जैसी गति में जाना था वहां चला गया। कितनेक ग्रहण पड़े बाद ग्रहण की छांय से बचा जो घर में ढका हुआ पानी है उसे तो बाहिर फेंक देते हैं और जिस सरोवर पर ग्रहण की छांह पडी वह पानी पवित्र मान घर में लाते हैं जो घर में के पानी को ग्रहन लगा तो दूध दही आदि पदार्थों को भी लगा उन को क्यों नहीं फेंकते हैं. पानी फोकट में मिला जान उस को व्यय करने में बड़ी बेदरकारी रखते हैं किन्तु ऐसा नहीं जानते हैं कि पानी जग जीवन है. दूध घृत बिना क्रोड़ों जन्म व्यतीत कर देते हैं किन्तु पानी बिना एक दिन निकालना मुश्किल होता है इस लिये जगत के सब पदार्थों से

अधिक मूल्यवान है ऐसा जान श्रावक मिथ्यात्वीयों की देखी देखी नहीं करते हैं. ग्रहणादि प्रसंग में पानी नहीं फेंकते हैं. पानी में हड्डी राख नहीं डालते हैं. पानी में उतर कर स्नान नहीं करते हैं विना छाने पानी से वस्त्र शरीर नहीं धोते हैं और पीते भी नहीं हैं, पानी के लोटे आदि की झलक नहीं डालते हैं. होली आदि पर्व में भी पानी का नुकसान नहीं करते हैं. कुवे वावड़ी नलादि की मर्यादा करते हैं। कितनेक धर्मात्मा सचित पानी पीने आदि के प्रत्याख्यान भी कर देते हैं. तथा घृत से भी अधिक यत्ना पानी की करते हैं. ३ 'तेऊ काय'—अग्नि दश ही दिशा का शस्त्र है झपट में आते छही काय जीवों का भक्षक है ऐसा जान अग्नि के आरम्भ से आत्मा को विशेष बचना चाहिये. कितने लोगों शरीर आच्छादन करने को अनेक वस्त्रों का योग होने पर भी गरीबों के देखा देखी रास्ते का कूड़ा कचरा एकत्र कर अग्नि में प्रज्वलित कर तथा अलाव सिगड़ी आदि में लकडी छाने आदि संसार के अनेक कार्यों में उपयोग में आने जैसे पदार्थों को जला कर अपने क्षणिक सुख के लिये ताप करते हैं. इस प्रकार ताप ने से रूप का नाश होता है. शरद गरमी की बीमारी प्राप्त होती है. जो वस्त्रादि के लग जाय तो अकाल मृत्यु भी निपज जाती है. कितनेक लोगों लग्नोत्सव दीपावली आदि प्रसंग में क्षणिक मजा के लिये बारूद के ख्याल आतिशबाजी छोडते है इस से वक्त पर मनुष्यों की भी घात हो जाती है तो अन्य प्राणियों का तो कहना ही क्या? अर्थात् यह भी महा अनर्थ का कारण है। दीपावली को लक्ष्मी की पूजा लक्ष्मी के आगमन को करते हैं कि लक्ष्मी में अंगारे लगाने से लक्ष्मी कैसे आयगी? तमाखू पीने का व्यसन भी अभी बहुत बढ़ गया है जिस में कुछ स्वाद नहीं मुंह से दुर्गन्ध निकले हाथ कलेजा जले, क्षयनादिक रोगोत्पन्न हों, अकाल मृत्यु होवे वगैरा दुर्गुन जानते हुए भी हुका चिलम बीडी सिगरेटादि पीते हैं-

इत्यादि अग्नि का आरंभ श्रावक को नहीं करना चाहिये तैसे ही धूप दीप यज्ञ हवनादि धर्मार्थ भी नहीं करना चाहिये ! चूल्हा भट्टी दीपकादि के लिये भी आरम्भ से यत्नवंत होना चाहिये (४) 'वायुकाय' पंखे से झूले से बाजे बजाने से फूंक देने से पटक फटक करने से और खुले मुंह से बोलने से वायुकाय की घात होती है वायु के झपेटे में आ त्रस जीव भी मर जाते हैं इत्यादि वायुकाय की घात न होवे जितना बचाव करना चाहिये वायुकाय की रक्षा होना दुष्कर बहुत है (५)—वनस्पति काय तीन प्रकार की होती है, यथा—१ गेहूं चने ज्वार बाजरा तूके बीज गुठली में एक जीव होते हैं २ हरे फूल फल फली भाजी तृण डाली आदि के सूचिकाग्र भाग जितने टुकडे में असंख्यात जीव होते हैं और ३ कन्द मूलादि में * अनन्त जीव होते हैं, सचित वस्तु भोगवने के त्याग बनें तो बहुत ही अच्छा नहीं तो अन्न बिना तो काम चलना दुष्कर है किन्तु हरितकाय के भक्षन से तो अवश्य बचना चाहिये और कन्द मूलादि का तो स्पर्श भी नहीं करना तो भक्षण करने का तो कहना ही क्या ? अर्थात् अनन्त काय कभी भी खाना नहीं चाहिये ।

दयालु मनुष्यों पांच इन्द्रियों में से कर्ण चक्षु आदि एकेन्द्रिय कर हीन अर्थात बहिरा अन्धा होता है उसे ही देख कर दया करते हैं तो बेचारे पांच स्थावरों तो चारों इन्द्रिय रहित एकेन्द्रिय होने से विशेष दया के पात्र हैं वे तो कर्मोदय कर परवश पड़े कृत कर्म के फलोदय हुए हैं

---

* गाथा—वह मारण, अब्भक्खाण, दाण परधण विलोवणाइण ।
सव्व जहण्ण उदओ, दस गुणिओ एक्कसि कयाणं ॥ १ ॥
तिव्वयरे उ पओसे, सयगुणिओ सय सहस्स कोडि गुणिओ ।
कोडा कोडी गुणो वा, हुज्ज विवागो बहुतरो वा ॥ २ ॥

अर्थ—किसी को मारने से, झूंठा कलङ्क (तहमत) लगाने से दूसरे का धन हरण (चोरी) करने से [illegible] जघन्य एक वक्त उदय आता है [illegible] इस ही प्रकार जघन्य (कम से कम) दस गुना उदय आता है और जो यह कर्म तीव्र द्वेष भाव से किये हों तो सौ गुना हजार गुना लाख हजार यावत् कोड़ा कोड़ गुना फल देना पड़ता है । इस प्रकार कर्मों का परिणाम दुःखदायक होता है ।

उसे भोगव रहे हैं और उन के घातक को व कर्म बन्धते हैं ऐसा ज्ञान श्रावको यथा शक्ति स्थावर काय जीवों की रक्षा करते हैं ॐ।

पहिले व्रत के ५ अतिचार * १ 'वन्धे'—किसी को बंधन में बांधे तो अतिचार लगे. पुत्र भ्रात स्त्री मित्र शत्रु दास दासी आदि मनुष्य गौ बैल भैंस अश्वादि पशु तोता मैना मुर्गा आदि पक्षी सांप अजगर आदि अपद इत्यादि प्राणियों को रस्सी-डोरी शृंखल खोडा बेडी कोठा कोठरी पिंजरा टोपला आदि बन्धनों में डालने से वे बेचारे बेवश पडे हुये अति कष्ट पाते हैं, घबराते हैं, तडफते हैं, ऐसा निर्दय कृत्य श्रावक को करना उचित्त नहीं है. कदाचित् कोई मनुष्य किसी गुन्हे से शिक्षा प्रद हो पशु

ॐ ग्रन्थ में कहा है कि साधु बीस विश्वादया पालते हैं उस अपेक्षा से श्रावक को सवा विश्वादया होती है।

गाथा--जीव सुहुमा थूला; सकप्प आरंभ भवे दुविहा ।
सवराह निरवराह; सविक्खा चेव निरविक्खा ॥ १ ॥

अर्थ--साधु तो त्रस और स्थावर दोनों प्रकार के जीवों की दया पालते हैं किन्तु श्रावक से स्थावर की दया पलनी दुष्कर होने से २० विश्वामें से १० विश्वा कम हुये। साधु जी तो संकल्प कर अर्थात् जान कर और अनजान् से जैसे स्थावर का आरम्भ करते त्रस की घात हो तो यह दोनों प्रकार की हिंसा के त्यागी हैं और श्रावक संकल्प से तो त्रस की हिंसा के त्यागी हैं किन्तु स्थावर का आरंभ करते त्रस की हिंसा भी हो जाती है इस लिये १० विश्वा में से ५ विश्वा कम हुये। साधु तो सअपराधी और निरापराधी दोनों जीवों की रक्षा करते हैं और श्रावक के निरापराधी को मारने के तो त्याग हैं। किन्तु इस व्रत के आचरन करने वाले राजा भी होते हैं उनको संग्रामादि का प्रसंग भी प्राप्त हो जाता है इत्यादि कारन से सअपराधी की रक्षा करना दुष्कर होने से ५ विश्वा में से २॥ विश्वा की ही दया रही और साधु तो सापेक्षा अर्थात् कारणवशात् और निरापेक्षा बिना कारण दोनों प्रकार की हिंसा के त्यागी हैं। और श्रावक निरापेक्षा हिंसा के तो त्यागी हैं किन्तु सापेक्षा हिंसा का त्याग करना दुष्कर है क्योंकि चलते बैल अश्वादि को सहज ही चाबूकादि मार दे तथा शरीर में कृमी आदि जीव सहज ही उत्पन्न हुये उनके लिये जुलाबादि औषधोपचार करते हैं। इस लिये २॥ विश्वा में से १। विश्वा ही दया श्रावक के रहती है।

* जैसे किसी के वस्तु भोगवने के किसी के प्रत्याख्यान हों वह उस वस्तु को ग्रहन करने को यत्न करे सो अति क्रमः २ उस वस्तु के पास जाये सो व्यती क्रम; ३ उसको ग्रहण करले सो, अतिचार और ४ भोगवे लेवे सो अनाचार अति क्रम का पश्चातापः व्यतीक्रम की आलोयणा अतिचार का प्रायश्चित और अनाचार का मूल मः मूलाचार करने का प्रायश्चित होता है।

कावू में नहीं रहते हों नुकशान करते हों और वे वचन को शिक्षा मात्र से नहीं समझते हों उनको यदि बन्धन में डालने का प्रसंग प्राप्त होतो गड्ढा पडजाय वह इधर उधर हलन चलन नहीं कर सकें अग्नि आदि उपद्रव प्राप्त होतो छूट के अपना बचाव नहीं कर सकें. ऐसे मजबूत बन्धनों से नहीं बान्धे. क्योंकि-ऐसा करने से किसी वक्त मृत्यु पाजाय तो पचेन्द्रि की हिंसा का पाप लगजाय । तैसेही पक्षीयों को भी पालना नहीं. क्यों कि सोने के पींजरे में मेवा भक्षन करते भी वे उसे बन्धन समझते हैं । कदाचित् घायल हुये पक्षी को रक्षा निमित पिंजरे में रखना पडे तो आराम हुये बाद बन्धन मुक्त करदे. २ 'वहे'—किसी को प्रहार करे—मारे तो अतिचार लगे. उक्त प्रकार ही कोई गुनहगार वचन और बन्धन से नहीं समझे पशु आदि सीधे रास्ते नहीं चले और उनको लकडी चाबुकादि से प्रहार करने का अवसर प्राप्त होवे तो निर्दय बन कर ऐसा नहीं मारे कि जिससे घाव पडजाय रक्त निकल आय मूर्च्छित हो पडजाय और मृत्यु को प्राप्त होजाय, जिस स्थान पहिले प्रहार किया उस स्थान दूसरी वक्त प्रहार नहीं करे, तैसेही सिर गुदा गुप्तेन्द्रिय हड्डी आदि मर्म स्थानों पर प्रहार करने से उसे बहुत दुःख होता है ऐसा जान ऐसे स्थानों पर भी प्रहार नहीं करे. ३ 'छविछेह'—चमडे का अङ्गोपाङ्ग अवयव का छेदन भेदन करे तो अतिचार लगे, कितनेक अज्ञानी जन गौ भैंस बैल अश्व कुत्ते आदि को आज्ञा में चलाने के लिये नासिका छेदन कर नथ पहनाते हैं, लोह के कांटे की लगाम लगाते हैं, पांवों में कीलें नाल ठुकाते हैं, तथा शोभा निमित्त तथा सांड बनाने को त्रिशूल चक्रादि लोहे के तपा कर उन के अङ्ग पर चिपटाते हैं, कानों का छेदन कर कंगूरे बनाते हैं, पूंछ (दुम) छेदन करते हैं, शृंग काटते हैं, गुप्तेन्द्रिय का छेदन करते हैं, अण्ड फोडते हैं इत्यादि निर्दयता के कर्म श्रावक को करना बिल्कुल उचित नहीं है. कदाचित् लोहू विकार गड गुम्बडादि दुःख से मुक्त करने उन

का अङ्गोपाङ्ग छेदन कराना पड़े तो आराम हुए पहिले उन से कोई भी काम नहीं लेवे. तैसे ही पुत्र पुत्री स्त्री आदि को दागीने पहिनाने के लिये उन के कान नाकादि छेदना पड़े तो उन को विना इच्छा जबरदस्ती से नहीं करावे. ४ 'अइभारे'—अतिभार-वजन लादे तो अतिचार लगे गाडी अश्व बैल भैंसा हमाल मजूर इत्यादि द्वारा कहीं किसी प्रकार का माल पहुंचाने का प्रसङ्ग प्राप्त हो तो जिस की पृष्ट पर स्कन्धपर गड गुमड़े चांदा आदि किसी प्रकार का दर्द हो लंगड़ा, लूला, अपङ्ग, दुर्बल रोगिष्ठ कम उमर वृद्ध या हीनशक्ति वाला हो तो उस पर किसी भी प्रकार का वजन लादें नहीं क्यों कि वह बिचारा बहुत दुःख पाता है और वक्त पर घात भी हो जाती है कदाचित वह गरीब हो और उदर पूरणादि अर्थ वजन उठाना कबूल भी कर ले तो उस की दया कर विना काम लिये ही यथा शक्ति साता देना यह दयालु श्रावकों का कर्त्तव्य है. और जो निरोगी हृष्ट पुष्ट वजन उठाने सामर्थ्य हो तो उस पर भी उस की शक्ति से अधिक देश काल की बंधी हुई सेर मनादि की मर्यादा से अधिक वजन लादे नहीं. प्रमाणोपेत वजन उस पर लाद दिया हो तो उस पर सवारी करे नहीं सवारी करना हो तो वजन की कसर रक्खे मनुष्य को वजन उठाने देती वक्त उस से पूंछले कि तू इतना वजन उठा सकेगा? ज्यादा को कभी कहे नहीं तथा जबरदस्ती से उस पर धरे नहीं तैसे ही शक्ति उपरांत या कोसादि क्षेत्र की मर्यादा से अधिक ले जावे नहीं, और ५ 'भत्तपान विच्छेह'—आहार पानी का व्यच्छेद करे अन्तराय दे तो अतिचार लगे। स्वजन मित्र गुमास्ते दास दासी नौकर गौ अश्वादि पशु इत्यादि अपने आश्रित रहने वाले हों उन का क्रोध के आवेश में आ कर, या किसी गुन्हे की शिक्षा करने के लिये मँहगाई या दुष्कालादि के प्रसंग में भूखे प्यासे रखे नहीं क्यों कि "अन्न मय प्राण और प्राणमय शक्ति" कही जाती है भूख प्यास से क्रोध की वृद्धता

की वैर की वृद्धि होती है. उन की आत्मा में बड़ी ही तलमलाट रहती है कितनेक निर्दय स्वार्थी—मतलबी लोगों वृद्ध रोगादि से निकम्मे हुए मात पितादि स्वजन का दास दासी गौ वृषभादि पशुओं को निर्माल्य ठंडा बासी खराब हुआ भोजन देते हैं. नौकरी कम कर देते हैं, घास दाना पनी भी कम कर देते हैं. गवादि दूध देना बन्द हो जाती है तब उन्हें बांटा नहीं देते हैं और कृतघ्नता कर वृद्ध निकम्मे पशु को कषाई आदि घातकों को बेच देते हैं यह जबर अन्याय करते हैं, ऐसा काम श्रावकों को करना बिल्कुल उचित नहीं है । क्योंकि जिस प्रकार अपन आराम चाहते हैं वैसा ही सब जीव चाहते हैं, स्वयं तो सब प्रकार से सुखी रहना और आश्रितों को तृषाना यह दयालुयों का कृतव्य नहीं है. तथा अपने स्वजनों माता पितादि का अपने पर बड़ा उपकार है. हरेक प्रकार पोषन तोपन कर सुख से शुद्धी की और महा कष्ट से उपार्जन की लक्ष्मी सुपरद कर दी वह इसी लिये वृद्धावस्था में आराम देगा उन के साथ कृतघ्नता व विश्वास घात करना यह घोर पातक है और गुमास्ता दास दासीयों भी उमर भर मजूरी कर वृद्धता रोगादि कारण से निकम्मे बन गये उन को वह दौलत से सुखोपभोगी बन रहे हैं उन को दुःखित अवस्था में छोड़ देना या पगार कम कर आजीविका भंग करना यह भी विश्वास घात है और इन से भी अधिक उपकार पशुओं का है बेचारे निर्माल्य घास फूस खा कर दूध दही मावा मक्खन घृत मलाई तक आदि स्वादिष्ट पदार्थों से तोपन पोपन किया जिस माता का च्यार पांच वर्ष दुग्ध पान करते हैं उस की उम्मर भर सेवा करते हैं तो बचपन से वृद्धावस्था पर्यन्त दुग्ध पान कराने वाली महा माता गवादि प्राणियों की तो कितनी [illegible] चाहिये ? तैसे ही एक माता का दो जने दु[illegible] करने [illegible] भाई का सम्बन्ध रखते हैं तो फिर बैल [illegible] दि के [illegible] भाव[illegible] र धारन करना

चाहिये ? भाई से भी अधिक मदत करता उपकारिक यह पशु होते हैं खेत में हल वखरादि को खेंच अन्न वस्त्र आदि उत्पन्न कर देते हैं कुवे में से पानी निकालना सचा उपरांत वजन लादे तो भी खेंच कर इच्छित स्थान पहुंचा देना, भूख प्यास शीत ताप खाड पहाड़ उजाड़ आदि दुःख की दरकार नहीं रखते हरेक कार्य में सहायक होना सुमित्र के समान प्रेम रखने वाले, सुशिष्य के समान मार ताडादि भी सहकर सेवा करने वाले विश्वासु नौकर की तरह पहरा देने वाले साधु के समान मिले उतने ही आहार पानी में संतुष्ट रहने वाले पशु सिवाय और विरला ही होगा ? ऊन के गरम वस्त्र और कस्तूरी आदि बहू मूल्य पदार्थ पशु द्वारा ही प्राप्त होते हैं किं बहुना उन के शरीर से उत्पन्न होते गोवर मूत्र भी निकम्मे नहीं जाते हैं घर की स्वच्छता करने और रोग हरन करने में उपयोगी होते हैं और मरे बाद भी उन के शरीर का कोई पदार्थ निकम्मा नहीं जाता है। चमड़ की पगरखी वन कांटे कंकर तापादि से पाव की रक्षण करती हैं. हड्डी आदि खातादि में उपयोग आती हैं। ऐसे उपकारिक प्राणियों के साथ विश्वासघात और कृतघ्नता करना यह जबर पाप है ? ऐसा जान धर्मात्मा कदापि दुग्ध देना बन्द करने पर वृद्धावस्था या रोगादि से अशक्त बनने पर न तो उनके खान पान की अन्तराय देते हैं न घर से निकाल देते हैं और न घातकों के आधीन करते हैं किन्तु अपने कुटुम्बीयों के समान ही उनका पालन पोषन उमर भर करते रहते हैं. * कदाचित मनुष्य व पशु से किसी काम का बिगाड़ा होजाय तो विचारना कि जानकर तो कोई खराबी करता ही नहीं हैं कुछ कारन से भूल से या परवशता से होगया होगा. जैसे कोई

---

* श्लोक—यस्मिन जीवति जीवन्ति बहवः सन्तु जीवति।
काकोपि किं ना कुरुते, चंच्वा स्वोदर पूरणम् ॥

अर्थ—जिसके आश्रय से बहुत जीव जिन्दे रहते हैं वही जिन्दा हैं नहीं तो अपना पेट तो कौवा भी भर लेता है।

बच्चा काम खराव कर देता है उसे नादान पशु जान शाने मनुष्य क्षमा करते हैं तैसे ही पशुओं को नादान जान क्षमा करना चाहिये । वचन मात्र की शिक्षा ही बहुत है. किन्तु भूखे, प्यासे रखना अनुचित है. कदाचित ऐसा ही हो कि भूखे प्यास दण्ड दिये बिना सुधार नहीं हो सकता है तो जहां तक उसको खिलावे नहीं वहां तक स्वयं भी खान पान नहीं करना चाहिये. और ज्वरादि रोग की निवृती के लिये लंघन कराना पडे तो वह वात अलग है ।

☞ उक्त पहिले व्रत के पांचों अतीचार अधोगति में ले जाने वाले हैं इनसे अपनी आत्मा को बचाने के लिये जान पना तो जरूर करना चाहिये किन्तु आचरना नहीं । इस प्रकार प्रथम व्रत—दया भगवती की जो जीव सम्यग् प्रकार से आराधन करेंगे वे दोनों लोक में आरोग्यता, बल, यश, जय और ऐश्वर्यतादि अनेक सुखके भोक्ता बन क्रमशे थोडे ही भवों में मोक्ष के अनन्त सुख के भोगवने वाले बनेंगे ।

गाथा—जहा धन्नाण रक्खणट्ठा । करन्ती वइ ओ जहन हे वत्थ ॥
तहा पढम वय रक्खणट्ठा । करन्ती वया इं से साइं ॥१॥

अर्थ—जैसे धान्य के खेत की रक्षा के लिये कांटो की बाड करते हैं तैसे ही इस प्रथम व्रत के रक्षणार्थ आगे के सब व्रत वाड रूप जानना ।

२ " दूसरा अणुव्रत स्थुल मृषा वाद वेरमणं "

साधु के समान सर्वथा प्रकार से मृषा वाद (झूठ बोलने) से गृहस्थ को निवृतना मुशकिल है क्योंकि—ठंर ! पहर दिन आगया और दिन एक घटी भी नहीं आया इत्यादि अनेक प्रकार के छोटे झूट वचन सहज बोला जाता है इसलिये " स्थूल मृषा वाद वेरमणं " अर्थात् बडे मृषा वाद से निवृते. बडे मृषा वाद के शास्त्र कारने मुख्य ५ प्रकार कहे हैं.

१ "कन्नालिके"—कन्या (कुमारिका) सम्बन्धी मृषावाद. कितनेक श्रीमानों अपनी पुत्री को श्रीमानों के घर देने, द्रव्य के लालसियों द्रव्यो-

पार्जन करने पुत्री पिता के सम्बन्धियों तथा अन्यायी पंच महाजनों खुशामदी के वश हो इत्यादि कन्या के लिये झूठ बोलते हैं. अन्धी, काणी, भैंडी, लूली, लंगडी, कुलछली, अंगहीन, रूपहीन, बुद्धिहीन इत्यादि दुर्गुनों को छिपा कर झूठी प्रशंसा कर फंसा देते हैं। लग्न हुए बाद जब उसके दुर्गुन प्रगट होते हैं तब उसके पति को और कुटुम्बियों को बडा ही पश्चाताप होता है. अनेक झगडे खडे होते हैं, सन्ताप और क्लेश से उन दम्पतीओं का जन्म व्यतीत होता है वक्त पर आत्मघात भी निपज जाती है. तैसे ही ८ वर्ष की कन्या को ६० वर्ष के बुड्ढे को और १६ वर्ष की कन्या को ८ वर्ष के पति को बे जोड सम्बन्ध मिलाने से भी अनर्थ उत्पन्न होता है. "बीबी घर जोग और मियां घोरं जोग" तथा "ऊटनी के साथ बकरा" बडा ही खेदाश्चर्य होता है कि इसलाम धर्मी मोमिनों (मुसलमानों) अत्यन्त गरीबी के दुख से पीडित होगा वह भी कन्या की कौडी मात्र ग्रहन नहीं करते हैं किन्तु यथा शक्ति देता है. और दया धर्म धारक महाजन जैसी उत्तम जाती में जन्मे जिनके पूर्वजनों ने पुत्री के घर का पानी भी पीना निषेध किया है और कभी पीते भी नहीं हैं किन्तु वे ही अपने पेट का बच्चा बेचारी अबला को बे जोड सम्बन्ध में फंसाते हुए गाय बकरी की तरह नीलाम करते हुए सारा जन्म हाय २ कर पूरा करें ऐसे दुःख के खड्डे में ढकेलते हुए जरा भी शरम और दया नहीं लाते हैं। कसाई से भी अधिक निर्दय कठोर कलेजे वाले बनकर अपनी प्यारी पुत्री को रक्त मांस शोषन हो रुला २ कर मारे ऐसा घोर कृत्य करते हैं. बे जोड सम्बन्ध और कन्या विक्रय के कारन से माता, पुत्री, पुत्र, बधु, सुसरा, देवर, भौजाई, जिठानी, नौकर इत्यादि के साथ व्यभिचार होने लगता है. गर्भ-पात, बाल-हत्या, बाल-विधवा और आत्म-घात जैसे भी महा जुलम हो रहे हैं. तो भी महाजनों की अकल अभी तक ठिकाने नहीं आई है। अहो ताज्जुब २ !! जो ऐसा कृत्य करते हैं वे श्रावक पद के

बच्चा काम खराब कर देता है उसे नादान पशु जान शाने मनुष्य क्षमा करते हैं तैसे ही पशुओं को नादान जान क्षमा करना चाहिये। वचन मात्र की शिक्षा ही बहुत है. किन्तु भूखे, प्यासे रखना अनुचित है. कदाचित ऐसा ही हो कि भूखे प्यास दण्ड दिये बिना सुधार नहीं हो सकता है तो जहां तक उसको खिलावे नहीं वहां तक स्वयं भी खान पान नहीं करना चाहिये. और ज्वरादि रोगों की निर्वृती के लिये लंघन कराना पडे तो वह बात अलग है।

☞ उक्त पहिले व्रत के पांचों अतीचार अधोगति में ले जाने वाले हैं इनसे अपनी आत्मा को बचाने के लिये जान पना तो जरूर करना चाहिये किन्तु आचरना नहीं। इस प्रकार प्रथम व्रत—दया भगवती की जो जीव सम्यग् प्रकार से आराधन करेंगे वे दोनों लोक में आरोग्यता, बल, यश, जय और ऐश्वर्यतादि अनेक सुखके भोक्ता बन क्रमशे थोडे ही भवों में मोक्ष के अनन्त सुख के भोगवने वाले बनेंगे।

गाथा—जहा धन्नाण रक्खणट्ठा। करन्ती वइ ओ जहन हे वत्थ॥
तहा पढम वय रक्खणट्ठा। करन्ती वया इं से साइ॥१॥

अर्थ—जैसे धान्य के खेत की रक्षा के लिये कांटो की बाड करते हैं तैसे ही इस प्रथम व्रत के रक्षणार्थ आगे के सब व्रत बाड रूप जानना।

२ "दूसरा अणुव्रत स्थूल मृषा वाद वेरमणं"

साधु के समान सर्वथा प्रकार से मृषा वाद (झूठ बोलने) से गृहस्थ को निर्वृतना मुशकिल है क्योंकि—टटोरे! पहर दिन आगया और दिन एक घडी भी नहीं आया इत्यादि अनेक प्रकार के छोटे झूट वचन सहज बोला जाता है इसलिये "स्थूल मृषा वाद वेरमणं" अर्थात् बडे मृषा वाद से निवृतें. बडे मृषा वाद के शास्त्र कारने मुख्य ५ प्रकार कहे हैं.

१ "कन्नालिके"—कन्या (लडकिा) सम्बन्धी मृषावाद. कितनेक श्रीमानों अपनी पुत्री को श्रीमानों के घर देने, द्रव्य के लालचियों द्रव्यो:

पार्जन करने पुत्री पिता के सम्बन्धियों तथा अन्यायी पंच महाजनों खुशा-मदी के वश हो इत्यादि कन्या के लिये झूठ बोलते हैं. अन्धी, काणी, भैंडी, ल्ली, लंगडी, कुलछनी, अंगहीन, रूपहीन, बुद्धिहीन इत्यादि दुर्गुनों को छिपा कर झूंठी प्रशंसा कर फंसा देते हैं। लग्न हुए बाद जब उसके दुर्गुन प्रगट होते हैं तब उसके पति को और कुटुम्बियों को बडा ही पश्चाताप होता है. अनेक झगडे खडे होते हैं, सन्ताप और क्लेश से उन दम्पत्तीओं का जन्म व्यतीत होता है वक्त पर आत्मघात भी निपज जाती है. तैसे ही ८ वर्ष की कन्या को ६० वर्ष के बुड्ढे को और १६ वर्ष की कन्या को ८ वर्ष के पति को बे जोड सम्बन्ध मिलाने से भी अनर्थ उत्पन्न होता है. "बीबी घर जोग और मियां घोरै जोग" तथा 'ऊटनी के साथ बकरा" बडा ही खेदाश्चर्य होता है कि इसलाम धर्मी मोमिनों (मुसलमानों) अत्यन्त गरीबी के दुख से पीडित होगा वह भी कन्या की कौडी मात्र ग्रहन नहीं करते हैं किन्तु यथा शक्ति देता है. और दया धर्म धारक महाजन जैसी उत्तम जाती में जन्मे जिनके पूर्वजनों ने पुत्री के घर का पानी भी पीना निषेध किया है और कभी पीते भी नहीं हैं किन्तु वे ही अपने पेट का बच्चा बेचारी अबला को बे जोड सम्बन्ध में फंसाते हुए गाय बकरी की तरह नीलाम करते हुए सारा जन्म हाय २ कर पूरा करें ऐसे दुःख के खड्डे में ढकेलते हुए जरा भी शरम और दया नहीं लाते हैं! कसाई से भी अधिक निर्दय कठोर कलेजे वाले बनकर अपनी प्यारी पुत्री को रक्त मांस शोषन हो रुला २ कर मारे ऐसा घोर कृत्य करते हैं. बे जोड सम्बन्ध और कन्या विक्रय के कारन से माता, पुत्री, पुत्र, वधु, सुसरा, देवर, भौजाई, जिठानी, नौकर इत्यादि के साथ व्यभिचार होने लगता है. गर्भ-पात, बाल-हत्या, बाल-विधवा और आत्म-घात जैसे भी महा जुलम हो रहे हैं. तो भी महाजनों की अक्कल अभी तक ठिकाने नहीं आई है। अहो ताजुब २ !! जो ऐसा कृत्य करते हैं वे श्रावक पद के

नालायक होते हैं. इसलिये श्रावक कन्यालिक का त्याग करते हैं. तथा इस कन्यालिक शब्द में सब द्विपदी (दो पैर वाली) वस्तु का भी समावेश होता है. जिस प्रकार ऊपर कन्यालिक कथन कहा इस ही प्रकार वर-आलिक का भी जानना कितनेक वर (पति बनने वालों) की उमर को दर्शाने वाक्य पट्टुख चलाते हैं, खिजाब से बाल काले बना पत्थर के दांतों की बत्तीसी जमा आदि ढोंगों से अपनी उमर कम बता कर अन्य को फंसाते हैं यह कर्तव्य श्रावक को करना अनुचित है. तैसे ही दत्त पुत्र देने लेने को, गुमास्ता नौकर दि रखाने को. दुर्गुण छिपाकर सत्यवन्त शीलवन्त दयालु प्रमाणिक साहसिक उद्यमी आदि गुनवान बता कर फंसा देते हैं फिर वह चोर जरादि दुर्गुनी निकल जाय तो दोनों को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं और ऐसे ही तोता मैंना कबूतरादि द्विपदी पक्षियों के सम्बन्ध में जानना इस प्रकार द्वीपदी मृषावाद से निर्वर्तना ।

२ 'गवालिक'– गौ सम्बन्धी मृषावाद चतुष्पदों में गौ श्रेष्ट होने से यहां गौ शब्द ग्रहण किया है किन्तु सब चतुष्पदों का इसमें समावेश होता है इस लिये गौ भैंस बैल भैंसा घोडा हाथी ऊंट बकरा वगैरा पशुओं का व्यापार करना तो श्रावक को अनुचित है किन्तु कदापि घर सम्बन्धी पशुओं को बेचने का प्रसंग प्राप्त हो जावे तो जिस प्रकार अज्ञ लोग जनों औषधादि प्रयोग कर स्तन फुगा कर श्रृंगादि अवयव को वक्र सीधा बना कर और यह गरीब है शानी है दूध बहुत देती है, नकल बहुत करती है इत्यादि मिथ्या गुन बता कर उसे बेच देते हैं और प्रमाने गुन नहीं निकलने से उसे पश्चात्ताप होता है वह पशु भी दुःख पाता है ऐसा कर्तव्य श्रावक को करना अनुचित है इस लिये चतुष्पद झूठ को त्यागे ।

३ 'भूमालिक'–जमीन सम्बन्धी मृषावाद, जमीन दो प्रकार की होती है यथा १ क्षेत्र–खुली भूमिका खेत वाड़ी बाग अड़ाण जंगल तालाव

कुंआ बावड़ी आदि और २ वत्थु-ढकी भूमि का महल, हवेली, घर, दुकान बंगला आदि इन के लिये झूठ बोले-जिस खेत बागादि में धान्य फल फूलादि की थोड़ी अथवा खराब उत्पत्ति होती हो उसे विशेष और अच्छी बतावे. तालाबादि जलाशय का पानी खराब रोगिष्ट हो उसे स्वादिष्ट स्वच्छ आरोग्य अखूट बतावे मकान में व्यन्तर सर्पादि का उपद्रव आदि दुर्गुण युक्त होवे तो भी निरुपद्रवी साताकारी कहे इस प्रकार खराब वस्तु को अच्छी बता दूसरे को फसाने से श्रावक का विश्वास उठ जाता है और भी अनेक दुर्गुन प्राप्त होते हैं, तथा 'भूमालिक' शब्द में सब अपद (बिना पैर की) वस्तु का भी समावेश हो जाता है इस लिये सचित वस्तु, मट्टी पानी वनस्पति फल फूल धान्यादि के लिये अचित वस्तु का वस्त्र भूषण सुवर्ण चांदी वर्तन आदि के लिये और मिश्र वस्तु के लिये भी जो उक्त प्रकार झूठ बोलना है सो भी अनर्थ का कारन है ऐसा जान श्रावक अपद वस्तु के लिये मृषावाद बोले नहीं।

४ "थापण मोसो"-किसी का थापन (रखा हुआ माल) दबा कर झूठ बोले सो थापन मृषावाद। कोई मनुष्य महा परिश्रम और योग्यायोग्य द्रव्योपार्जन कर यह मेरे वक्त पर काम में आवेगा इत्यादि विचार कर अपने स्वजनों से गुप्त रखने के लिये उस प्राणप्यारे द्रव्य को अपने मित्र या साहूकार पर विश्वास ला कर गुप्त पने रख जाय उस द्रव्य के लोभ में लुब्ध हो वह मित्र अथवा साहूकार छिपा दे तथा तोड भांग गला कर रूप परावृत कर दे वह मांगने आवे तब नट जावे "चोर कोटवाल दंडे" इस कहावत प्रमाने अपनी चोरी को छिपाने जो काबू चले तो उस पर झूठा कलंक चढा गरीब की फजीती करे क्योंकि उस का कोई साक्षीदार तो है ही नहीं ऐसा जुल्म देख वह बेचारा दिग्मूढ बन जाता है ऐसे कृत्य से कितने पागल बन जाते हैं, कितनेक झूर २ कर मर जाते हैं और कितनेक तो उस ही वक्त दहशत खा मर जाते हैं ऐसे

नालायक होते हैं. इसलिये श्रावक कन्यालिक का त्याग करते हैं. तथा इस कन्यालिक शब्द में सब द्विपदी (दो पैर वाली) वस्तु का भी समावेश होता है. जिस प्रकार ऊपर कन्यालिक कथन कहा इस ही प्रकार वर-आलिक का भी जानना कितनेक वर (पति बनने वालों) की उमर को दर्शाने वाक्य पटुत्व चलाते हैं, खिजाब से बाल काले बना पत्थर के दांतों की बत्तीसी जमा आदि ढोंगों से अपनी उमर कम बता कर अन्य को फंसाते हैं यह कर्तव्य श्रावक को करना अनुचित है. तैसे ही दत्त पुत्र देने लेने को, गुमास्ता नौकरादि रखाने को. दुर्गुण छिपाकर सत्यवन्त शीलवन्त दयालु प्रमाणिक साहसिक उद्यमी आदि गुनवान बता कर फंसा देते हैं फिर वह चोर जरादि दुर्गुनी निकल जाय तो दोनों को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं और ऐसे ही तोता मैंना कबूतरादि द्विपदी पक्षियों के सम्बन्ध में जानना इस प्रकार द्वीपदी मृषावाद से निवर्तना ।

२ 'गवालिक'– गौ सम्बन्धी मृषावाद चतुष्पदों में गौ श्रेष्ट होने से यहां गौ शब्द ग्रहण किया है किन्तु सब चतुष्पदों का इसमें समावेश होता है इस लिये गौ भैंस बैल भैंसा घोडा हाथी ऊंट बकरा वगैरा पशुओं का व्यापार करना तो श्रावक को अनुचित है किन्तु कदापि घर सम्बन्धी पशुओं को वेचने का प्रसंग प्राप्त हो जावे तो जिस प्रकार अज्ञ लोग जनों औषधादि प्रयोग कर रतन फुगा कर श्रृंगादि अवयव को दक्ष सीधा बना कर और यह गरीब है शानी है दूध बहुत देती है, म ल बहुत करती है इत्यादि मिथ्या गुन बता कर उसे बेच देते हैं पीछे प्रमाने गुन नहीं निकलने से उसे पश्चात्ताप होता है वह पशु भी दुःख पाता है ऐसा कर्तव्य श्रावक को करना अनुचित है इस लिये चतुष्पद झूठ को त्यागे ।

३ 'भूमालिक'—जमीन सम्बन्धी मृषावाद, जमीन दो प्रकार की होती है यथा १ क्षेत्र—खुल्ली भूमिका खेत वाड़ी वाग अडाण जंगल तालाव

कुंआ बावड़ी आदि और २ वत्थु—ढकी भूमि का महल, हवेली, घर, दूकान बंगला आदि इन के लिये झूठ बोले—जिस खेत बागादि में धान्य फल फूलादि की थोड़ी अथवा खराब उत्पत्ति होती हो उसे विशेष और अच्छी बतावे. तालाबादि जलाशय का पानी खराब रोगिष्ट हो उसे स्वादिष्ट स्वच्छ आरोग्य अखूट बतावे मकान में व्यन्तर सर्पादि का उपद्रव आदि दुर्गुण युक्त होवे तो भी निरुपद्रवी साताकारी कहे इस प्रकार खराब वस्तु को अच्छी बता दूसरे को फसाने से श्रावक का विश्वास उठ जाता है और भी अनेक दुर्गुन प्राप्त होते हैं, तथा 'भूमालिक' शब्द में सब अपद (बिना पैर की) वस्तु का भी समावेश हो जाता है इस लिये सचित वस्तु मट्टी पानी वनस्पति फल फूल धान्यादि के लिये अचित वस्तु का वस्त्र भूषण सुवर्ण चांदी वर्तन आदि के लिये और मिश्र वस्तु के लिये भी जो उक्त प्रकार झूठ बोलना है सो भी अनर्थ का कारन है ऐसा जान श्रावक अपद वस्तु के लिये मृषावाद बोले नहीं।

४ "थापण मोसो"—किसी का थापन (रखा हुआ माल) दबा कर झूठ बोले सो थापन मृषावाद। कोई मनुष्य महा परिश्रम और योग्यायोग्य द्रव्योपार्जन कर यह मेरे वक्त पर काम में आवेगा इत्यादि विचार कर अपने स्वजनों से गुप्त रखने के लिये उस प्राणप्यारे द्रव्य को अपने मित्र या साहूकार पर विश्वास ला कर गुप्त पने रख जाय उस द्रव्य के लोभ में लुब्ध हो वह मित्र अथवा साहूकार छिपा दे तथा तोड भांग गला कर रूप परावृत कर दे वह मांगने आवे तब नट जावे "चोर कोटवाल दंडे" इस कहावत प्रमाने अपनी चोरी को छिपाने जो कावृ चले तो उस पर झूठा कलंक चढा गरीब की फजीती करे क्योंकि उस का कोई साक्षीदार तो है ही नहीं ऐसा जुल्म देख वह बेचारा दिगमूढ बन जाता है ऐसे कृत्य से कितने पागल बन जाते हैं, कितनेक झूर २ कर मर जाते हैं और कितनेक तो उस ही वक्त दहशत खा मर जाते हैं ऐसे

विश्वास घातिक मित्र द्रोही जनों का पाप का घडा फूट जाने से इस भव में भी अनेक कष्ट के भोक्ता बनते हैं लगों में फजीहत होते हैं क्यों कि अन्याय से उपार्जन किया द्रव्य कदापि सुखदाता नहीं होता है विशेष काल ठहरता भी नहीं है और कुकर्मियों थापन दवाने वाले पर-भव में भी निर्धनपना अनुत्रियारना तथा नर्क तिर्यच के घोर दुःखों के भोक्ता होते हैं. ऐसा अनर्थ का कारन स्थापन मृषावाद को जान श्रावक त्याग देते हैं. *

५ 'कुडी साक्षी'—झूंठी साक्षी मृषावाद, कितनेक वकील वैरिष्टरादि द्रव्य के लालच में फस कर, कितनेक न्यायाधीशादि रिश्वत खा कर और कितने खुशामदिये लोगों स्वजन सम्बन्धी मित्रादि को न्यायालय (राज सभा) में पंच सभा में लोगों में झूठी साक्षी दे झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा, न्यायी को अन्यायी अन्यायी को न्यायी बना देते हैं, जिस वक्त बेचारा सच्चा मनुष्य झूठा पड जाता है तब उस के आत्मा में बडा ही क्लेश होता है वक्त पर अपघात भी कर लेता है। इत्यादि अनर्थ का कर्ता यह झूंठी साक्षी मृषावाद है और अखीर सत्य तिरे" इस कहावतानुसार जब सत्य प्रगट हो जाता है * तब उन असत्य साक्षीदारों को राजदण्ड पंचदण्ड अपयशादि अनेक संकट प्राप्त हो जाते हैं ऐसा जान श्रावक झूंठी साक्षी (गवा) का त्याग करते हैं।

इस प्रकार उक्त पांचों प्रकार के झूठ में प्रायः सब ही बडे झूठों का समावेश हो जाता है इस के प्रत्याख्यान श्रावक प्रथम व्रत के प्रमाने ही दो करन तीन योग से करते हैं सिर्फ अनुमोदन खुला रहा है क्यों

× यह स्थापना छिपाने का कर्म चोरी का है किन्तु इसमें झूंठ बोलने की मुख्यता होने से यहां ग्रहण किया है।

× दोहा—पाप छिपाया नहीं छिपे छिपे तो मोटे भाग।
दाबी दुबी नहीं रहे रुई लपेटी आग ॥ १ ॥
अर्थात् रुई में अंगार छिपाई हुई छिपती नहीं है तैसे पाप भी छिपता नहीं है।

कि कभी कोई कहे कि तुम्हारी मोटी कन्या का सम्बंध परंच कर अच्छे स्थान कर दिया है, फलाना मकान व खेत बहुमूल्य में बेच दिया है. तुम्हारे पुत्र को झुंठी साक्षी से छोडा दिया है स्थापन रखने वाला मर गया है कोई वारिस नहीं रहा है. वगैरा सुन खुशी आ जाता है. इस से भी आत्मा बचावे तो बहुत अच्छा होवे।

दूसरे वृत के ५ अतिचार।

१ "सहसा भखणे"—सहसात्कार—किसी पर झूठा कलंक चडावे, जैसे कौवा हृष्ट पुष्ट पशु को देख कर दुःखित होता है क्योंकि वहां उसे खाने को नहीं मिलता है तैसे ही दोष गवेषी जनों ज्ञानी गुनी ब्रह्मचारी शुद्धाचारी श्रीमान बुद्धीमान तपस्वी क्षमावन्त इत्यादि गुणों से अलंकृत सज्जनों महापुरुषों को देख कर उनकी कीर्ती महिमा का श्रवण कर उसे सहन नहीं करते हुये मात्सर्य भाव धारन करते हैं। क्योंकि उनके कृत्यों में विघन प्राप्त होता है तब वे उनके गुणों को आच्छादन कर अपना इष्ट साधने के लिये उन पर मिथ्या कलङ्क चडामे को कहते हैं कि—हम उनको अच्छी तरह जानते हैं वे ब्रह्मचारी कहलाते हैं। किन्तु गुप्त व्यभीचार सेवन करते हैं। तपस्वी बजते हैं किन्तु गुप्त आहार करते हैं, क्षमावन्त दीखते हैं बहुत वक्त क्रोधित बन जाते हैं, ऊपर से शुद्धाचार रखते हैं किन्तु अन्दर बडी पोल चलाते हैं। वाक्य पटुत्या से पण्डित जाने जाते हैं किन्तु मैं ने प्रश्नादि द्वारा परीक्षा की है कुछ जानते नहीं हैं। इत्यादि प्रकार के मिथ्यारोप द्वारा वह ज्ञानी गुनी की निन्दा कर वज्र कर्म वन्ध करने वाले इस लोक में और परभव में उस ही प्रकार कलङ्क से कलङ्कित होते हैं, मुख पाकादि रोगों से पीडाते हैं नर्क तिर्यंचादि गतीयों में भ्रमण करते हैं।

२ "रहसा भखण"—रहस्य गुप्त बात प्रगट करे, छद्मस्त भूल पात्र होते हैं। वीतराग के सिवाय प्रत्येक मनुष्यों में गुनावगुन पाते ही हैं।

अपना धोती में सब नंगे हैं अर्थात् वीतराग सिवाय ऐसा विरला ही मनुष्य होगा कि जिस में कुछ दुर्गुन नहीं पावे, दुर्गुनी मनुष्य अपने दुर्गुनों के तरफ लक्ष नहीं देते छिद्रग्राही हो अन्य के अवगुणों को ग्रहण करते हैं और झगडे आदि प्रसंग में अपना बडापना और उस का लघुत्वपना बताने उस के तथा उस के कुटुम्बियों के दुर्गुनों को जाहिर करते कहते हैं क्यों ऊंची नाक कर के बोलता है हम तुझे और तेरे बाप दादे को जानते हैं अमुक अकार्य करने वाला तु अथवा तेरा फलाना ही है ना? ऐसे शब्द सुन कर वह बेचारा शर्मिन्दा बन जाता है, उस के जिगर पर बडा जबर आघात पहुंचता है. वक्त पर अपघात भी कर-लेता है तैसे ही कोई एकान्त में वार्तालाप करते देख उन की अंगचेष्टा-दि से संशय धारन कर राज में जा चुगली करे कि फलाने राजद्रोह की वातें कर रहे हैं जिस से वे बिचारे विना गुनाह पकड़े जांय दुःखित हो और ऐसे ही मित्रों के परस्पर का प्रेम भंग करने चुगली कर झगड़ा करावें इत्यादि अनेक प्रकार से दुष्ट जनों अन्य की गुप्त बातों को प्रगट कर झगडा कराते हैं वे वज्र कर्म के बन्धक होते हैं श्रावकों सब को आत्मोपम जान 'सागरवर गंभीरा' बनते हैं सुनने में या जानने में आई खराब बातों को कदापि मुख से निकालते नहीं है, इस प्रकार रहस्य प्रगट करने के त्यागी होते हैं।

३ 'सदारा मत भेए'—स्व स्त्री के मर्म प्रकाशे, स्त्री के हृदय में बात कम टिकने से वह अपने प्यारे पति पर विश्वास धारन कर उन के सन्मुख हृदय खाली करती है उन में से कोई अयोग्य बात पुरुष कभी किसी के सन्मुख प्रकाश दे और वह उस स्त्री के जानने में आ जाय तो स्त्री की पश्चात बुद्धि होने से वक्त पर वह अपघात कर गुजरती है इत्यादि अनर्थ का जान स्त्री की कही हुई बात अन्य को कहते नहीं हैं. कदाचित मोहा-न पति कोई बात कह भी दे तो सुज्ञ स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह किसी

के सम्मुख कहना नहीं. और कोई मित्र स्वजनादि विश्वासित बन कोई गुप्त बात कहदे तो वह भी किसी से कहना नहीं ।

☞ उक्त तीनों अतीचारों का मुख्य मतलब इतना ही है कि अपने से बन आवे तो गुनवन्तों के गुणानुवाद तो कर देना किन्तु दुर्गुन तो किसी के कभी प्रकाशना नहीं ।

४ "मोसो वएस"—मृषा उपदेश देवे. हिन्सादि पांच आश्रव सेवन करने का उपदेश, अष्टांग निमंत मंत्र यंत्र तंत्र औषधादि का उपदेश पूजा यज्ञ हवन स्नान फूल फलादि ताडव आदि हिंसा धर्म का उपदेश, पुत्र पिता, स्त्री भरतार शेठ नौकर भाइयों इत्यादि में विरोध पडाने का उपदेश स्त्री आदि चारों विकथा. झूठ प्रपंच रच अन्य का पराजय करने की सम्मति इत्यादि प्रकार के उपदेश को मृषा उपदेश कहते हैं. इससे जो आरम्भ और क्लेश निष्पन्न होता है उस पाप का अधिकारी वह उपदेशक होता है. इस लिये निर्थक बातें बनाने का श्रावक को अधिकार नहीं है. कार्योत्पन्न हुए प्रमाणिक * सत्य निर्दोष वचनोच्चार कर आत्मा पाप से बचाते हैं ।

* बोलने के विषय में श्रावक को ८ गुन धारन करना चाहिये (१) बहुत बोलने से कदर नहीं रहती है इस लिये बहुत मतलब वाले कम शब्द बोले । (२) कम तो बोले किन्तु असभ्योग्य वचन थोड़ा सा भी दुःखदाता और निन्दा प्रद बन जाता है इस लिये इष्ट मिष्ट सब को प्यारा लगे ऐसा बोले । (३) मिष्ट वचन तो बोले किन्तु बिना मौके की अच्छी बात भी बुरी लगती है जैसे मुरदे को उठाते " जय गजानन " कोई कह दे तो लोगों लड़ने लग जावे और मौके पर स्त्रियों जमात सम्बन्धीयों को खराब २ अनेक गालियां सुना देती हैं वे बड़े प्यार से सुनते हैं । इसलिए अवसर उचित बोले । (४) अवसरोचित तो बोले किन्तु वाक्य चातुरी से बड़े २ राजा महाराजाओं का और महापरिषदोपस्थित जनों का चित्ताकर्ष कर लेते हैं इस लिये चतुराई युक्त बोले । (५) चतुरता से तो बोले किन्तु अपने मुख से अपनी श्लाघा करने से लघुता होती है और दूसरे के गुन कथन से अपने गुन प्रसिद्ध करने में गौरव बढ़ता है इस लिये अभिमान रहित बोले (६) अभिमान रहित तो बोले किन्तु मार्मिक वचन कलह का अनिष्ट हो जाते हैं । ऐसे बोलने वाले को सज्जन भी बुरा कहते हैं, इस लिये किसी के मर्म (दुर्गुन) प्रकाश नहीं करे । (७) मर्म कारी तो न बोले किन्तु शास्त्र की साक्षी युक्त बोले क्योंकि ऐसे वचन सर्वमान्य प्रतिष्ठ होते हैं

५ "कुड लेह करणे"—झूठा लेख लिखे. कितनेक लालची बनकर या भोले लोगों को लूटने तथा अदावदी वाले को फसाने दगाबाजी कर सो के अंक पर बिन्दी लगाकर हजार बना देते हैं. अन्य के अक्षर जैसे अक्षर बनाकर झूंठी हुण्डी चिट्टी पत्र लिखते हैं. झूंठे रुक्के खत बनाते हैं. रुसवत (लांच) दे झूठी गवाई खडी करते हैं. राज में झूठी अरजी दे फरियाद करते हैं. यह उसे मालुम पडने से वह गरीब दहशत खा जाता है. उसे बडा ही तलतलाट होता है किन्तु क्या करे बिचारे का सत्तावन्त के सम्मुख कुछ उपाय नहीं चलने से अपनी इज्जत बचाने को दागीना कपडा मकानादि बेंचकर या गहने रख कर उसका गड्डा भरता है. ऐसी आपदा में फंस कर कितनेक मुक्त भी हो जाते हैं. कदाचित यह कपट प्रगट हो जाय तो धन की इज्जत की बडी जबर हानी होती है कारागृह आदि शिक्षा भुगतनी पडती है. ऐसे अकृत्य से उत्पन्न किया द्रव्य भी विशेष काल नहीं रहता है. कहा है कि:—

श्लोक—अन्यायो पार्जितं वीतं । दश वर्षानी तिष्टती ॥
प्राप्त पोडश वर्षे । सः मूलस्य विनश्यती ॥१॥

अर्थ—अन्याय से प्राप्त किया द्रव्य दश वर्ष से अधिक नहीं रह सकता है और जो कदाचित् सोलह वर्ष रह जाय तो पहिले प्राप्त किये द्रव्य को भी अपने साथ ले जाता है ।

☞ इस प्रकार दूसरे व्रत के पंच अतिचारों का स्वरूप समझकर सुज्ञ श्रावकों व्रत के रक्षणार्थ उक्त पांचही प्रकार के दोषों से सदैव बच कर रहते हैं ।

इस लिये शास्त्र की साक्षीयुत बोले और ८ शास्त्र की साक्षीयुत तो बोले किन्तु शास्त्र में ज्ञेय जानने योग्य हेय छोड़ने योग्य और उपादेय आदरने योग्य तीनों प्रकार का कथन है इस लिये कितनेक शास्त्र के वचन भी वक्त पर अज्ञजनों को दुःख प्रद हो जाते हैं जैसे "भुकान्दियाणं तमं तमेणं" इस पाट का अर्थ अवसर देख कर ही किया जाता है इस लिये सब प्राणी भूत जीव सत्व को साताकारी वचन बोले ।

झूठ बोलने के मुख्य १४ कारण.

१ क्रोध के वशीभूत बना ऐसा जबर असत्य उच्चारण कर देता है कि वक्त पर पंचेन्द्रिय की घात भी होजावे. २ अभिमान के वश भी ऐसे असंभवित वचन बोलता है कि जाने मेरे समान संसार में कोई न भूतो न भविष्यती. ३ कपट-दगाबाजी तो झूठ का मूल ही है. ४ लोभ के अधीन हो व्योपारियों ब्राह्मणों और नामधारी साधुओं भी झूठ बोलने लगजाते हैं. ५ राग-प्रेम के वश में पुत्रादि को खिलाते हुए झूठ बोलते हैं. ६ द्वेष से रुष्ट होकर दुशमनों पर कलंक चढ़ावे झूठी साक्षी आदि करते हैं ७ हंसी मस्करी में गप्पें मारते हैं. ८ भय के वश राजा शेठ आदि के सम्मुख अपना अकृत्य छिपाने झूठ बोले. ९ लज्जा-शरम के वश दुर्गुन को छिपाने झूठ बोले. १० क्रीडा के वश स्त्री के सम्मुख झूठ बोले. ११ हर्षोत्साह में उत्सवादि में. १२ शोक के वश वियोगादि प्रसंग में. १३ दाक्षिणता से अपनी चतुरता अन्य को बताने और १४ बहुत बोलने से भी झूठ बोला जाता है। श्रावक जनों इन १४ ही कारणों के वशीभूत बनते नहीं हैं कदाचित बन जावें तो झूठ नहीं बोलते हैं !

कितनेक सत्य वचन भी असत्य जैसे ही होते हैं जैसे-अन्धे को अन्धा, काणे को काणा, कुष्ठी को कोढिया, नपुंसक को नामर्द चोर को चोर जार को जार लवाड़ को लवाड़ व्यभिचारी को व्यभिचार, गोले को गोला, विधवा को राण्ड, वन्ध्या को बांझ इत्यादि वचन यद्यपि सच्चे हैं तथापि उन को दुःखप्रद होने से झूठे ही कहे जाते हैं. इस लिये ऐसे वचन भी श्रावक को बोलना उचित नहीं है ×

× श्लोक—न सत्य मपि भाषेत, पर पीड़ा कारकं च।
लोकोपिश्रूयते यस्मात्, कौशिको नर्कं गता ॥१॥

अर्थ—जो वचनोच्चार में अन्य को दुःखोत्पादक हो वह यद्यपि सत्य भी हो तो बोलना नहीं क्योंकि लौकिक शास्त्र में भी सुना जाता है कि कौशिक मुनि अन्य को दुःखप्रद वचन बोलने से नर्क में चले गये।

झूठ का फल—झूठ बोलने वाले के सब सद्‌गुनों लुप्त हो जाते हैं झूठे की प्रतीत नहीं रहती है उस पर कोई विश्वास नहीं करता है झूठे के मन्त्र यन्त्र तन्त्र विद्या औषधि आदि फलित नहीं होते हैं झूठे को वक्त पर अकाल मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है, झूठे को गप्पी लबाड़ लुच्चा बदमाश ठग धूरत आदि कुनामों से लोगों सम्बोधन करते हैं. इत्यादि अनेक दुर्गुन इस लोक में होते हैं और भविष्य में मूकक बोबड़ा कटु भाषी, तोतला, गूंगा, दुर्गन्धि मुख वाला और एकेन्द्रियादि जाति में उत्पन्न होता है ऐसे झूठ के दुःख प्रद फल समझ कर सुज्ञ जनों को झूठ का सर्वतः परित्याग करना चाहिये।

सत्य का फल—सत्यवन्त की ओर सब सद्‌गुण आकर्षित हो चले आते हैं सब का विश्वास पात्र होता है. कृत धर्म का सच्चा फल दाता सत्य ही है * "सत्य की बंधी लक्ष्मी, फिर मिलेगी आय" इस कथनानुसार सत्य ही लक्ष्मी का निवास स्थान है. सत्यवन्त का कार्य शीघ्र ही सिद्ध होता है. सत्य के प्रभाव से बड़े २ भयङ्कर रोग नष्ट हो जाते हैं संग्राम में संवाद में विजय प्राप्त होती है, मन्त्र यन्त्र तन्त्र विद्या औषधादि तत्काल फलित होते हैं, सत्यवन्त निश्चिंत रहता है, किसी से मुंह छिपाना नहीं पडता है, सत्यवन्त का कथन नरेन्द्र सुरेन्द्रादि को भी मान्य होता है बड़े २ पुरुषों सम्मति याचते हैं, दुश्मन भी वशीभूत हो जाता है इस लोक में देवेन्द्र नरेन्द्र का पूज्य हो भविष्य में इष्ट मिष्ट प्रिय आदेय वचनी और स्वर्ग मोक्ष के सुख का भोक्ता बनता है।

* अथर्वण वेद के मण्डुकोपनिषध में कहा है "सत्य मेव जयते नानृतं" अर्थात् जय सत्य से ही होता है नकि असत्य से।

श्लोक—नास्ति सत्य समो धर्मो, न सत्याद्विद्यते परं।
नही तिव्रतरं किंचिद, नृतादिह विद्यते ॥१॥ महाभारत आदि पर्व ॥

अर्थ—इस जगत् में सत्य समान न तो कोई अन्य धर्म है और न कोई अन्य श्रेष्ठ है ते[illegible] ही असत्य के समान अन्य पाप भी नहीं है और बुरी वस्तु भी नहीं है।

तीसरा अणु व्रत स्थूल अदिन्नं दाणाओ वेरमण।

साधु के समान सर्वथा प्रकार से अदत्ता दान—विना दी वस्तु ग्रहण करने से अर्थात् चोरी के करने से गृहस्थ को निर्वृतना मुश्किल है. क्यों कि तृण कंकर धूल आदि निर्माल्य वस्तु गृहण करते किसी की आज्ञा ग्रहण करने की दरकार नहीं रखते हैं तथा मोल लाई हुई वस्तु कदाचित निगाह चूकने से ज्यादा आजाय तो पीछी देने कौन जाते हैं? ऐसे अनेक व्यावहारिक कामों में सहज चोरी लग जाती है। यह चोरी यद्यपि लौकिक विरुद्ध नहीं गिनी जाती है तथापि लोकोत्तर (शास्त्र) विरुद्ध तो जरूर है इस से बचाव होवे तो बहुत अच्छी बात है, नहीं तो निम्नोक्त ५ प्रकार से बड़ी चोरी करने के प्रत्याख्यान तो श्रावक को अवश्य ही करना चाहिये।

१ 'खात दे कर'—गृहस्थ को प्राणों से प्यारा धन होता है. धनेश्वरी अपनी प्राप्त बुद्धि प्रमाणे स्वरक्षण से उस को अपने पास से नहीं जाने देवे, जमीन में और तिजोरी आदि में रखना पहरा चौकी जाग्रत रहना आदि प्रयत्न करते हैं, किन्तु अन्याय से द्रव्योपार्जन करने वाले उस के दुःख की दरकार नहीं करते हुए कोश कुदालादि शस्त्र के प्रयोग से भींतादि फोड़ द्वार पटादि तोड़ तथा भींतादि उल्लंघन कर ऊपर वाट से जो गुप्त पने अंजनादि प्रयोग से द्रव्य स्थान को जान निकाल कर ले जाते हैं जब ग्रहस्थ के यह जानने में आता है तब वह बिचारा दहल जाता है विलापात सन्ताप परितापादि अनेक दुःख से पीडित होता है, कितनेक तो प्राण मुक्त भी हो जाते हैं कदाचित् वह चोर पकडा जाय तो कारागृह मार ताड क्षुधा तृषादि अनेक परिताप को भोग अकाल मृत्यु को प्राप्त हो नर्क के अनेक दुःखों का भोक्ता बनता है ऐसा जान श्रावक इस प्रकार के कर्मों का परित्याग करते हैं।

२ 'गठड़ी छोड'—कोई ग्रामान्तर देशान्तर में जाते तथा चौरादि

से स्वरक्षणार्थ अपने प्राण प्यारे द्रव्य को नौली डब्बा गठरी सदूक पिटारा आदि में रख कर अपने पडोसी पर या स्वजन मित्र साहूकार आदि पर विश्वास ला कर उन के पास रख देते हैं फिर वे लालच में आ कर उसे फाड़ तोड उस में से माल निकाल कर खराब माल भर कर पीछा जैसा का तैसा बना कर वह मांगने आवे तब उस के सुपरद करते हुए अपनी साहूकारी जमाने को कहते हैं कि, भाई ! संभाल लेना फिर हम जवाबदार नहीं हैं। वह भोला उन पर विश्वास रख घर को ले जाता है और बडा ही उमंग के साथ उसे खोल कर देखते ही घबरा जाता है। एक पाई का भी नुकशान गृहस्थ का हो जाय तो उस की अन्न से प्रीति उतर जाती है तो फिर उसकी जिन्दगी का आधार भंग होने से उसे कितना दुःख होता होगा ? इस का विचार कीजिये ! ऐसा विश्वास घातिक महा चोरी का कृतव्य श्रावक त्याग देते हैं।

३ "बाटपाड कर"—कितनेक अन्याय से द्रव्य उपार्जन करने के लालची अपने जैसों की टोली-समुदाय जमा कर रास्ते से जाते लोगों को मार ताड कर लूट खोस करते हैं, खेत ग्राम बाजार घर लूटते हैं निगाह बचा कर जब दागीना काट माल चोर लेते हैं धूर्ताई ठगाई करते हैं किंबहु दागीने के लालच से बिचारे शिशु बच्चे को मार डालते हैं यह महा अनर्थ के कर्म श्रावक को करना अनुचित है इस लिये इस को त्याग देते हैं।

४ "ताला पड कुञ्जी"—कोई घर दूकान भण्डार कोठार तिजोरी संदूकादि पर ताला लगा कर विश्वासु को उस की कुञ्जी सुपरद कर दे वह लालच में आ कर उस की गैर हाजरी में उस ही कुञ्जी से ताला खोल कर तथा कोई तालादि पर लगने जैसी कुञ्जी से कील आदि किसी अन्य से ताला खोल कर सार २ माल उस में से निकाल कर पीछा ताला लगा दे, फिर वह मालिकयादि घरादि में रक्खी हुई वस्तु के

नहीं मिलने से बड़ी ही फिकर में पड जाते हैं किन्तु वह क्या कर किस का नाम लेवे और चोर उस बात को कब कबूल करता है ऐसे विश्वास घातिक चोरी के कृत्य भी दोनों भव में बड़े दुःख प्रद होते हैं. ऐसे अकृत्य का भी श्रावक त्याग करते हैं ।

५ 'पडी वस्तु के धनी को जान गृहण करे'—अर्थात् किसी की वस्तु रास्ते में गिर गई हो या रख कर भूल गया हो वह श्रावक के दृष्टी गत हो जावे और जान जावे कि यह वस्तु फलाने की हैं तो भी उस को उठा कर छिपा कर अपनी बना कर रखना उचित नहीं किन्तु चार मनुष्यों को साक्षी रखे संभाल कर रखे जब उस का मालिक आ जावे तो उस के सुपरद कर दे और जो कोई नहीं मिले तो धर्मार्थ लगा दे ।

☞ उक्त पांचों प्रकार की चोरी करने से राज-दण्ड लोक-भण्ड आदि अनेक दुःख प्राप्त होते हैं लौकिक लोकोत्तर दोनों विरुद्ध यह कुतव्य है इस का श्रावक सर्वतः परित्याग करते हैं ।

तीसरे वृत के ५ अतिचार ।

१ 'तन्हाडे'—चोर की वस्तु ग्रहण करे. कितनेक चोरी कर्म के त्याग करने वाले बहुमूल्य माल थोड़े मूल्य में मिलता देख कर समझ तो जाय कि यह चोरी का है किन्तु विचार करे कि मैं ने चोरी करने के त्याग किये हैं तो चोरी का माल लेने में क्या हरकत है इत्यादि कु-विचार से उस को खरीद कर मन में बहुत प्रसन्न होते हैं कि-आज अच्छी कमाई हुई ? परन्तु ऐसा नहीं विचारता है कि जो यह प्रकट हो जायगा तो दुगुना चौगुना द्रव्य दे कर भी इज्जत की रक्षा करना मुश्किल होगा कितनेक तो धृष्टता कर कहते हैं कि हमें क्या मालूम पडे कि यह चोरी का माल है ? किन्तु लालच के पटल को दीर्घ दृष्टि से देखें तो सहज में ही मालुम हो जायगा कि यह १०० का माल ७५ में देता है तो क्या मुफ्त में आया है तथा चोर की बोली आंखें भी छिपती नहीं हैं

विवेकी श्रावकों लालच में नहीं फंसते हुए चोरी का माल ग्रहन करना भी चोरी के समान जान उस का त्याग करते हैं ।

२ " तस्कर पउगे "—तष्कर-प्रयोग करे अर्थात चोर को सहाय करे * कितनेक लोभी मनुष्य चोरी के माल में अधिक लाभ जानते हुए उसे प्राप्त करने को चोर को चोरी करने का उपाय बतावे खान पान शस्त्र मकानादि में सहाय देवे. चोरी कृत्य से निवृती पाये चोर को डरोमत खुशी से चोरी करो हम तुम्हारा सब माल लेवेंगे कभी किसी प्रकार का संकट पडेगा तो जो तुम्हें सहायता चाहियेगी वह देवेंगे इत्यादि प्रकार से चोर की सहायता करते हैं वे भी चोर कहलाते हैं. राजादि दण्ड के अधिकारी होते हैं, यह कृत्य भी श्रावकों को करना अनुचित है ।

---

* प्रश्न व्याकरण सूत्र में चोर की १८ प्रसूतीकही हैं:—(१) चोर से कहे मैं तुम्हारे शामिल हूं वक्त पर सहायता करूंगा, (२) चोर की सुखसाता पूछे, (३) अंगुली आदि से चोरी करने का स्थान बतावे (४) पहिले साहूकार बन राजा का सेठ का स्थान देख आवे फिर चोर को वह स्थान बतावे। (५) चोर को छिपने का स्थान बतावे। (६) चोर को पकड़ने वाले आवें उनको चोर पूर्व में गया हो तो पश्चिम में और पश्चिम में गया हो तो पूर्व में बतावे यों विपरीत बतावे। (७) चोर के रहने को मकान बैठने के आसन शयन करने को शैया आदि देवे। (८) कहीं से पड़ कर तथा गोली आदि शस्त्र घात से घायल हुये चोर को घर पहुंचानेको अश्वादि वाहन देवें। (९) घर जाने की शक्ति नहीं हो तो स्वयं के घर में गुप्त रक्खे। (१०) चोर का माल खरीदें। (११) चोर का सत्कार करनेको ऊंच स्थान उंचे आसन बेठावें। (१२) घर में चोर होते भी पकड़ने वाले को ना कहे। (१३) घर आये चोर को आहार पानी वस्त्रादि की साता उपजावे जाते को भात (खाने को) साथ दें। (१४) चोर को जिस २ स्थान जो २ वस्तु चाहिये वह पहुंचा देवें। (१५) थक कर आये चोर को तैलादि मर्दन करा उष्ण जलादि में स्नान करावे, गुड़ फिटकड़ी आदि खवावे अग्नि से तपावे घाव पर मलमपट्टी आदि लगावे। इत्यादि साता उपजावे। (१६) चोर को भोजनादि बनाने के लिये अग्नि आदि सामग्री देवे और १८ चोरी कर लाये हुये धन धान वस्त्राभूषन गो अश्वादी पशु को अपने घर में सब प्रकार के बन्दोवस्त के साथ रक्खे। सब प्रकार का सुख चोर को उपजावे। इस प्रकार से चोर की सहायता करने वाला चोर ही कहा जाता है और चोर के समान ही शिक्षा (सज़ा) का अधिकारी राजा के कानून से होता है।

३ "विरुद्ध रजाई कम्मे"—राजा की आज्ञा विरुद्ध काम करे, राज के लाभार्थ और प्रजा के सुखार्थ राज नियमों (कानूनों) का प्रबन्ध करते हैं, उसका पालन करना यह प्रजा का कर्तव्य है. इसका जो भंग करे अर्थात अपने राज में जिस २ प्रकार का व्योपार करने की राजा ने मना की हो वह व्योपार करे, दो राज की सन्धी में रहकर राजाज्ञा विरुद्ध इधर उधर वस्तु लाकर बेचे, कर (हांसल) दाण की चोरी करे, राजा के पुत्र मित्र सामन्त कामेती चपरासी आदि को भरमा कर झगडा उत्पन्न करे, इत्यादि राज विरुद्ध काम करने से राज दण्ड कारागृहादि शिक्षा का भोक्ता बनता है, बहुतों का विरोधी अविश्वासी पना बेइज्जती वगैरा कष्ट प्राप्त होते हैं इसलिये श्रावक को राजाज्ञा विरुद्ध काम नहीं करना चाहिये।

४ "कुड तोले कुड माणे"—खोटे तोल माप रखे, कितनेक लोभी बनिये अन्याय से द्रव्योपार्जन करने को व्योपार में दगाबाजी करते हैं। मासा, तोला, शेर, पसेरी, धडा, मण आदि तोलने के बांट और पायली तपेला कूडा गज हत्थी रज्जू बांसादि लेने के बडे देने के छोटे दिखाने के बराबर यों तीन प्रकार के रख कर चालाकी चलाते हैं. तैसे ही माल देती लेती वक्त तराजू की दण्डी दबाना पलडा झुकाना, गज को सरकाना संख्या (गिनती) में गडबड करना वगैरा कुकर्तव्य द्वारा भोले गरीबों को छलते हैं। गरीब बिचारे सारे दिन तन तोड महापरिश्रम द्वारा चार छै आने प्राप्त करते हैं कि जिस पर ही जिनके सारे कुटुम्ब का निर्भर है जिसकी दरकार नहीं रखने जो कहाते साहूकार और कर्म के चोर * उस

* इस वक्त विलायती वस्तु का व्यापार बहुत बढ गया है—विदेशी शक्कर हड्डियों के चूरे की होती है उसे सफेद बनाने को किसी पशुपति का रक्त मिलाते हैं और घी के स्वच्छ बनाने को गौ का और सुअर का रक्त छांटते हैं। घृत में भी गौ बैल भैंस और सुअर की चर्बी मिलाते हैं। केशर में गौ के बारीक नसों के चूंथे से बना कर सूअर की चर्बी और रक्त मिलाते हैं। विलायती कपड़े पर गौ की सूअर की चर्बी चढा कर मुलायम और स्वेत

विचारे के पल्ले में आधी दमड़ी का भी माल नहीं डालते हैं, यह विश्वास घातिकी महा जुल्मी धन्धा करने में तत्कालिक कुछ लाभ मालुम होता है, किन्तु परिणामिक बहुत हानि है. ऐसा करने से व्योपारियों का विश्वास जन समाज से लुप्त हो धन्धा नाश होने का प्रसंग प्राप्त होता है, राज दण्डादि अनेक बिपत्तियां प्राप्त होती हैं * ऐसा जान श्रावक जन इस प्रकार के सब कामों का त्याग करते हैं।

५ "तपडिरूवग व्यवहार"—तत्प्रति रूप वस्तु मिलाकर बेचें. लालची मनुष्यों अपनी चोरी छिपाने के लिये जिस प्रकार की बहु मूल्य वस्तु होती है उसही प्रकार की हलके मूल्य की वस्तु उसमें मिलाकर बेचते हैं. जैसे कि घृत में चरबी शक्कर में आटा या हड्डी का चूरा. धन्य में धान्य इत्यादि. ऐसे ही कितने ही पुराने वस्त्रों किराने आदि पर रंग चढ़ाकर नये में मिलाकर बेच देते हैं. कितनेक नमूना और बताते हैं और वस्तु और दे देते हैं. ऐसेही चोरी की वस्तु का रूप परावृतन करके उसको भांग तोड़ गलाकर या दूसरा

बनाते हैं। साबुन में भी गौ सूअर की चर्बी की मिलावट होती है। इस प्रकार सभी के उपयोग में सदैव आते हुये पदार्थों में भ्रष्टता की दमड़ी के लालची जीवों ऐसी वस्तुओं को सस्ती मिलती देख कर जाति से धर्म से भ्रष्ट होने का बिलकुल भी ख्याल नहीं रखते हुये उसे खरीद कर पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा में वृद्धी कर नर्क गति के अधिकारी होते हैं, गौ हिन्दू को पूज्य है और सूअर मुसलमानों के हराम है फिर ताज्जुब होता है कि दोनों के धर्म से भ्रष्ट बनाने वाली ऐसी नीच वस्तु को स्वीकार किस प्रकार कर रहे? अब उक्त कथन जग जाहिर हो गया है। सार्संढेन टेलर आदि अंग्रेजों ने ग्रन्थ बना कर उक्त कथन सिद्ध किया है कई अखबारों में जाहिर भी हो गये हैं इस लिये असल हिन्दू और इसलामों को लाजिम है कि ऐसी वस्तु को स्पर्श मात्र भी नहीं कर अपने २ धर्म कर्म से पवित्र बने रहे।

* श्लोक—रहसि रचितमेतज्जार कर्मात्र नीचै लशुनमिव सुभुक याति प्रसिद्धम्।
तदिह सकलगर्ह्यं नैव विद्वान् विदध्यात क्षणिक सुख कृते साध्यतप्रतिष्ठार्थनाशः॥१

अर्थ—नीच मनुष्य का एकान्त किया हुआ जार कर्म खाये हुए लशन के समान लोको में प्रसिद्ध होता है इस लिये विद्वानों निन्दा करें ऐसा कर्म करना नहीं। क्योंकि कदाचित् ऐसे कार्य में सुख किंचित हो जाता है किन्तु भविष्य में धन और कीर्ती का नाश करने वाला होता है।

रंग चढ़ा कर तैसे ही पशुओं का अङ्गोपाङ्ग छेदन कर बेच देते हैं. यह भी बड़ी चोरी है. ऐसे कर्म श्रावकों को करना अनुचित जान इसका त्याग करते हैं।

☞ उक्त प्रकार तीसरे व्रत के अतिचारों का स्वरूप को समझकर जो जो चोरी के कृतव्य हैं वे व्रत के भंग कराने वाले जानकर न्यायोपार्जित द्रव्य पर ही सन्तोष धारन करे कदाचित् दुष्कालादि प्रसंग में वस्तु बहुत महँगी हो जावे तो श्रावकों का कृतव्य है कि अपने धर्म का चमत्कार लोगों को बताने के लिये दुगुना से अधिक लाभ ग्रहण नहीं करे. दूसरे अधिक व्याजोपार्जन करते हैं उनके देखा देख आप नहीं करे किन्तु रूपये पात्र आने से अधिक नहीं ग्रहण करे. इत्यादि हरएक कार्य में सन्तोष धारन करने से लोगों समझेगें कि जैनी लोगों बड़े ही दयालु और सन्तोषी होते हैं।

इस तीसरे व्रत का सम्यक् प्रकार से आराधन करने वाला:— राजा के भण्डार में साहुकार की दुकान में जावे तो उसकी अप्रतीत नहीं होती है. राजों का पंचों का माननीय होता है. जगत् में कीर्ती विस्तार पाती है. सब का विश्वास पात्र होता है. न्याय से उपार्जन की लक्ष्मी बहुत काल स्थिर रहती है, खूब वृद्धी पाती है, और सुखदाता होती है, सदैव निश्चित रहता है. दया भगवती का निवासस्थान होता है. वृतप्रत्याख्यान का निर्मल निर्वाह कर सकता है. अनेक विघ्नों से अपनी आत्मा को बचाता है और "सन्तोषं परम सुखं" अर्थात् सन्तोष के प्रताप से इस लोक में अनेक सुख का भोक्ता हो भविष्य में स्वर्ग के और क्रमसः मोक्ष के सुख का भोक्ता बनता है।

४ चौथा अणुव्रत स्थूल मैथुन का वेरमणं।

साधु के समान सर्वतः ब्रह्मचर्य वृत का पालन गृहस्थ से होना मुशकिल होता है क्योंकि मनुष्य गति में ही जीव कर्मों का सर्वतः नाश

करने को सामर्थ्य बनता है, तब कर्म (मोह) भी अपनी प्रबल्य सत्ता मनुष्यों पर आजमाता है. * इस वक्त जो जीव अपना आपा सम्भाल कर्म के वश में न फंसे तो अपना मोक्ष प्राप्ती का इष्टितार्थ सिद्ध करे किन्तु यह काम सूर वीर साधु महापुरुषों ही कर सकते हैं, अनन्त काल के सम्बन्धी कर्मों का संग परित्याग एकाएक न होने से वे आसते २ कर्मों का संग छोड़ने को प्रथम "स्थूल मैथुन से निवृतते हैं." अर्थात् स्वदारा का सन्तोष कर अपर शेष मैथुन सेवन का परित्याग करते हैं। पञ्चादि साक्षी पूर्वक जिस स्त्री का पाणिग्रहण कर—हाथ पकड़ कर लाये हैं उस को सन्तोषित नहीं करे तो वह आत्मघात तथा व्यभिचार का सेवन कर नाम को कलङ्कित करे इससे भय भीत बने ही उससे सम्बन्ध करते हैं न कि विषय लुब्ध बने हुए. क्योंकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि विषयाशक्तता चिकने कर्म बन्ध का कर्ता होता है गरमी प्रमेहादि रोगोत्पत्ती भी हो जाती है. बुद्धी की बल की मन्दता होती है और हजारों वर्ष कायम रहे ऐसे भोग देवांगना के + साथ अनन्त वक्त भोगवे तो भी तृप्ती नहीं आई तो अब मनुष्य सम्बन्धी अशुची और क्षण भंगुर भोगों से क्या तृप्ती आने वाली है? इस प्रकार के विचारों से सन्तोष धार कर स्वस्त्री से भी दिन को तथा द्वितीय, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या तथा उदिष्ट पर्व अर्थात् तीर्थंकर के पंच कल्याण की तिथियों में सर्वतः बृह्मचर्य पालते हैं क्योंकि दिन को स्त्री सम्बन्ध करने से विषयाशक्ति-निर्लज्जता खराब सन्तान की उत्पत्ती वगैरा दोषोत्पत्ती होती है और तिथियों को स्त्री सम्बन्ध से × कुगति का आयुर्बन्ध

---

* नर्क में भय सज्ञा अधिक, तिर्यंच में आहार सज्ञा अधिक, देवता में परिग्रह सज्ञा अधिक और मनुष्य में मैथुन सज्ञा अधिक होती है।

+ वैमानिक देव के २००० वर्ष पर्यन्त ज्योतिषी देव के १५०० वर्ष पर्यन्त भुवनपती देव के १००० वर्ष पर्यन्त और बाण व्यन्तर देव के ५०० वर्ष तक भोग संयोग रहता है।

× पंच पर्वी का कारन-शास्त्र का कथन है कि असंख्यात वर्षायु वाले नेरीये देवता और युगल मनुष्य का जब ६ महीने का आयु रहता है तब आगे के भव का आयुर्बन्ध

कुगर्भ की उत्पत्ती वगैरा दोषोत्पत्ती होती है * तैसे ही श्रावक एक रात्री में भी दूसरी वक्त सम्भोग नहीं करे. क्योंकि तंडुल वियालिया पइन्ना में कहा है कि एक वक्त मैथुन सेवन किये बाद १२ मुहूर्त पर्यन्त योनी सचित्त रहती है. उत्कृष्ट ९००००० सन्नी मनुष्य और असन्नी मनुष्य की उत्पत्ती होती है. × दूसरी वक्त के सम्भोग में सबका नाश हो जाता

करते हैं और संख्यात वर्ष के आयु वाले तिर्यंच मनुष्य आयुष्य के तीसरे नवमें सत्ता ईसवे यावत् अन्तिम आयुष्य के तीसरे भाग में परभव का आयुर्बन्ध करते हैं। मानो इसी मतलब से करुणा सिन्धु जिनेन्द्र ने और आचार्य ने अशुभ आयु बन्ध न होवे इस लिये पर्व स्थिति कायम की है। जैसे तृतीया और चतुर्थी यह दो भाग गये कि तीसरा भाग पंचमी का आया। ऐसे ही षष्ठी सप्तमी गई अष्टमी आई नवमी दशमी गई एकादशी आई और द्वादशी तृयोदशी गई चतुर्दशी आई। पूर्णिमा और अमावस्या में समुद्र भर्ती का कारण बताते हैं इन दिनों में परभव का आयुर्बन्ध होने का सम्भव है इस लिये सदैव बचे तो ठीक नहीं इन दिनों में तो अवश्य ही संसार के कार्य से विरक्त हो दया सील संतोष समायिक पौषधादि करना कि जिससे कुगति का आयुर्बन्ध नहीं होवे।

* गाथा—मेहुणसण्णा रुढो, णवलक्ख हणेइ सुहुम जीवाणं।
केवलीणा पण्णत्तो, सद्दहियव्वा सया कालं ॥ १ ॥
इत्थी जोणीए संभवंती, बी इंदियातु वे जीवा।
इक्कोवा दोवा तिण्णिवा, लक्ख पुहुत्तं तु उक्कोसं ॥ २ ॥
पुरिसेण सह गयारा, तेसिं जीवाण होइ उद्दवणा।
वेणुग दिट्ठंतेणं, तत्ताय सिलागाराणं ॥ ३ ॥

अर्थ—श्री सर्वज्ञ प्रभु ने कहा है कि स्त्री की योनी में कभी एक कभी दो कभी तीन और उत्कृष्ट नौलक्ष बी इन्द्रियादि सूक्ष्म जीव होते हैं। वे जिस प्रकार बांस नली में भरे हुये तिलों में तप्त की हुई लोह की सलाई प्रवेश ने से जल जाते हैं तैसे स्त्री से पुरुष का सम्बन्ध होते ही वे सब जीवों मर जाते हैं। इस कथन का सत्य श्रधान करो।

गाथा—पंचिंदिय मणुसा, एगणर भुक्तणारी गब्भंमी।
उक्को सं णव लक्खा, जायंती एग हेलाए ॥ १ ॥
णव लक्खाणं मज्झे, जायइ एग दुण्हेय सम्मती।
से सा पुण एमेवय, विलयं वच्चंति तत्थेव ॥ २ ॥

अर्थ—एक वक्त के स्त्री सम्बन्ध में नौलक्ष सन्नी पचेन्द्रिय मनुष्य गर्भ में उत्पन्न होते हैं उनमें किसी वक्त एक कभी दो और कभी तीन बचते हैं बाकी सब नाश पा जाते हैं। ऐसा तंदुल वियालि में कहा है।

× श्लोक—तस्मा धर्मार्थ भिस्त्याज्यं, परदारोप सेवनं।
न यंति परदारस्तु, नर्का नेक विंशती ॥ १ ॥

अर्थ—परस्त्री का गमन २१ वक्त नर्क में डालता है ऐसा जान धर्मार्थी जन परस्त्री का परित्याग करते है।

है। गृहस्थी स्त्री सम्बन्ध पुत्र प्राप्ती के लिये कहते हैं तो ऋतुकाल से निवृत हुए बाद एक वक्त उपरान्त भी जो आत्मा वश में रक्खे तो भी बहुत अच्छी बात है।

चौथे व्रत के ५ अतिचार।

१ "इत्तरिये परिग्गहिया गमणे"—इत्वर-स्वल्प काल की स्त्री से गमन करे, (१) कोई ऐसा विचार करे कि मेरे परस्त्री गमन के प्रत्याख्यान हैं किन्तु वैश्या तो किसी की स्त्री नहीं है इसलिये इसे कुछ द्रव्य दे कर पर पुरुष से गमन नहीं करना ऐसा बन्दोबस्त महीने वर्षादि तक का कराकर मेरी बना कर इसका सेवन करूं तो क्या दोष है ? इत्यादि विचार से वैश्या के साथ गमन करे तो दोष लगे. क्योंकि-जब वह किसी की स्त्री नहीं है तो तेरी कहां से होगी? पंचों की साक्षी से पाणिग्रहण किया जाता है उसके सिवाय सब पर स्त्री जानना. (२) पाणिग्रहण तो होगया किन्तु वह स्त्री ऋतु प्राप्त हो भोग जोग नहो उसके साथ गमन करे तो दोष लगे. क्योंकि-उसे भोग की रुची नहीं होती है किन्तु बलात्कार से पती की आज्ञा को स्वीकार करती है।

२ "अपरिग्गहिया गमणे"—पाणिग्रहण (लग्न सम्बन्ध) नहीं हुआ उसके साथ गमन करे, (१)* कोई ऐसा विचार करे कि मेरे परस्त्री गमन के प्रत्याख्यान हैं. किन्तु यह कुमारिका किसी की भी स्त्री अभी तक नहीं बनी है इसलिये इसके गमन करने में क्या दोष है. इत्यादि विचार से कुमारिका से गमन करे तो दोष लगे, क्योंकि- यह काम राज विरुद्ध पंच विरुद्ध अनीती का है, गर्भ रहने से निन्दा गर्भपात तथा आत्मघातादि दोषोत्पत्ती होती है, जहां तक किसी का नाम स्थापन न होवे वहां तक वह

* सूचना—चौथे व्रत के पहिले अतिचार की पहिली कलम और दूसरे अतिचार की १-२-३ कलम साफ अनाचार है किन्तु इस वक्त ऐसा अर्थ करने की रूढी होने से यहां लिखा है। पहिले अतिचार को दूसरो और दूसरे को चौथो करन अतिचार है।

पर स्त्री ही कही जाती है, (२) कोई ऐसा विचार करे कि विधवा का तो मालक कोई रहा नहीं इसलिये इसे मेरी स्त्री बनाओ तो क्या दोष है, ऐसे विचार से विधवा गमन करे तो दोष लगे, क्योंकि पति की मृत्युबाद भी वह उसही की स्त्री कहलाती है इसलिये पर स्त्री ही है, विधवा गमन से लोकोपवाद व्यभिचार वृद्धी गर्भपात आत्मघातादि दोषोत्पत्ती होती है, (३) कोई विचारे कि वेश्यां तो किसी की स्त्री नहीं है, ऐसे विचार से वैश्या गमन करे तो दोष लगे, (४) कोई विचारे कि मेरा अमुक के साथ सम्बन्ध होगा ऐसा निश्चय तो होगया है, यह मेरी स्त्री होने वाली है, इस का सम्बन्ध करूं तो क्या दोष, इत्यादि विचार से शादी (सगाई) हुई स्त्री के साथ गमन करे तो अतिचार लगे।

☞ क्या कुमारिका क्या विधवा और क्या वैश्या यह सब पर स्त्री कही जाती हैं इनका सेवन उत्तम पुरुषों को बिलकुल ही उचित नहीं है, क्योंकि लौकिक और लोकोत्तर दोनों विरुद्ध यह कर्म हैं, तैसे ही दोनों लोक में दुःख प्रद हैं, कुमारिका सम्बन्धी विधवा सम्बन्धी महा निन्दा पात्र बनता है, बाल हत्या, मनुष्य हत्या, अपघात, अकाल मृत्यु आदि होती है, और वैश्या तो जगत की ऐंठ बाड़ा स्वार्थ की स्त्री है, स्वार्थ वश अन्धे पंगुले बलित कुष्टी चाण्डालादि को भी प्राण प्यारा बनाती है और मतलब छूटे प्राण प्यारे को धक्का मार निकाल देती है; इत्यादि अनेक फजीते होते हैं, गरमी सुजाकादि से सड़ २ अकाल मृत्यु से मर कर पर स्त्री गमनी नर्क में लोह की तप्त पुतली के साथ यम संगम कराते हैं, इत्यादि दोनों भव में दुःख का कारन जान श्रावक परस्त्री का परित्याग करते हैं।

२ "अनंग क्रीड़ा करणे"—योनी सिवाय अन्य अंग से क्रीड़ा करे, कोई विचार करे कि मेरे पर स्त्री गमन के प्रत्याख्यान हैं किन्तु अनंग क्रीड़ा करने में क्या दोष है, ऐसा विचार कर पर स्त्री का अधर चुम्बन कुचमर्दन आलिंगनादि करे तो अतिचार लगे, क्योंकि यह भी एक प्रकार

का व्यभिचार ही है और अनग क्रीड़ा हुए बाद ब्रत पालना मुशकिल है, ब्रह्मचारी को तो गुप्त अङ्गोपाङ्ग का निरीक्षण करने की भी मना है, तैसेही काष्ट पाषाण मृतिका वस्त्र चर्मादि की पुतली के साथ काम क्रीडा करने से भी अनग क्रीडा अतीचार लगता है और कितनेक हस्त कर्म तथा नपुंसक गमन को भी अनंग क्रीडा कहते हैं, यह कर्म मोहोत्पादक विषय वृद्धक है, इस प्रकार से वीर्य पात होने से शारीरिक मानसिक जबर हानि होती है और वीर्य पात न होवे तो भी उन्माद सुजाकादि रोगोत्पत्ती होती है, इस लिये ऐसे निर्थक नीच नालायक कर्म का त्यांग श्रावक करते हैं।

४ "पर विवाह करणे"—स्वजन सिवाय अन्य का लग्न सम्बन्ध करावे. कितनेक अन्य मतावलम्बियों कन्यादानादि में धर्म जान, तथा कितनेक अभिमानियों अपने को सबसे बड़ा बताने नाम मिलाने सम्बन्धियों का ग्राम वालों देश वालों का लग्न सम्बन्ध (व्याह) करते हैं. यह काम श्रावक को करना अनुचित है. क्योंकि यह काम मैथुन बृद्धी संसार बृद्धी का कारण है तथा कदाचित् दम्पत्ती में अनबन हो जाव इत्यादि कारण से अपयश भी होता है इत्यादि दोषोत्पत्ती का कारन जान अन्य का विवाह कराने का परित्याग करते हैं स्वयं के पुत्र पुत्री आदि का संबंध कराये बिना काम नहीं चले तो उनके सिवाय अन्य के संबंध मिलाने के झगड़े में नहीं पड़े।

५ "काम भोगेसु तीव्र अभिलाषा"—काम भोग सेवन की तीव्र अभिलाषा करे, श्रोतेन्द्रिय और चक्षुइन्द्रिय के विषय को काम कहते हैं जैसे—वीणा, हारमोनियम आदि वादिन्त्रों के सहायसे छः राग और तीस रागणी के श्रवण में तल्लीन बने. तैसेही स्त्री के गुप्तांङ्गोपाङ्ग नग्न चित्र नाटक चेटक के निरीक्षण में चक्षुरेन्द्रिय लुब्ध करे। और घ्राण रस स्पर्शेन्द्रिय विषय को भोग कहते हैं. जैसे अतर पुष्पादि के सूंघने में, दूध, दही, घृत, तेल, मिठाई इन पांच विगय के तथा मक्खन सहत मदिरा

और मांस इन नव महा विगयों के भोगने में पड भोजन आरोगने में और वस्त्र भूषण शैय्यासन स्त्री आदि के सेवन में तल्लीन बने सो भोग इस प्रकार पांचों इन्द्रियों के काम भोगों में लुब्ध बने उसे काम भोग में तीव्राभिलाषी कहते हैं. कितनेक जीवों विषयाशक्त बन कर स्नान शृंगारादि से अपने रूप को आकर्षनीय बनाते हैं. पर स्त्री वैश्या आदि के भोगों में लुब्ध बनते हैं, रसायन बन्धन गुटिकादि का सेवन कर विषय वृद्धी करते हैं, भोगोपभोग में लुब्ध हो चिकने कर्म का बन्ध करते हैं, रसायणादि जो कभी फूट निकले तो कुष्टादि राज रोग के ग्रसित बनते हैं, सुजाक शूल चित्त भ्रम कम्पवायु मुर्च्छा सुरती विकलता क्षय रोग निर्बलता आदि अनेक बीमारियों से सड २ कर अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं और "काम पत्थेमाणा अकामा जंति दुग्गइ" अर्थात काम भोग का प्रार्थिक काम भोग का सेवन किये विना ही मर कर नर्कादि दुर्गति में चला जाता है. ऐसा जान श्रावक इस पंचम अतिचार के दोष से अपनी आत्मा को बचाकर विषय वृद्धि के काम से अलग रहते हैं. इच्छा को रोकने को स्वस्त्री के साथ शयन नहीं करते हैं. आम्बिल उपवासादि तप और ब्रह्मचर्य के गुन कीर्तन के सती सन्तो के चारित्रों का पठन कर शान्तात्म बनते हैं.

ब्रह्मचर्य रूप श्रेष्ठ व्रत * के पालक की देवादिक सेवा करते हैं, विश्व में कीर्ति निवास करती है बुद्धि बल रूप तेज की वृद्धि होती है. दुष्टों की ओर से किये मन्त्र तन्त्र जन्त्र मूठ कामण टुमणादि असर नहीं करते हैं. व्यन्तरादि कुदेव उपद्रव नहीं कर सकते हैं अग्नि पानी समान समुद्र स्थल समान, सिंह तथा हाथी बकरी समान, सर्प पुष्प की माला

* श्लोक—एक रात्रौ स्थितस्यापि, या गति ब्रह्मचारिणः।
न सा क्रतु सहस्रेण, प्राप्य स्व युधिष्ठिरः ॥

अर्थ—अहो युधिष्ठिर! एक रात्री ब्रह्मचर्य पालने वाले की जैसी उत्तम गति होती है वैसी उत्तम गति हजार यज्ञ करने वाले की भी नहीं होती है।

समान, बन ग्राम समान जहर अमृत समान, इत्यादि सब अनिष्ट पदार्थों अपने स्वभाव के प्रादुरभाव को प्राप्त हो इष्टकारी बन जाते हैं। प्रति दिन क्रोड २ सौनैये दान में देने से भी एक दिन ब्रह्मचर्य पालन करने का अधिक फल होता है. इस प्रकार ब्रह्मचारी इस लोक में अनेक सुखों को भोगवने वाला हो भविष्य में स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति करता है.

५ "पाँचवाँ अणुव्रत स्थूल परिग्रह वेरमणं"

साधु के समान सर्वतः प्रकार से निष्परिग्रही गृहस्थ का बनना मुश्किल है क्यों कि कहावत है कि 'साधु कौड़ी रखे तो कौडी का, और गृहस्थ के पास कौडी नहीं होवे तो कौडी का" इस प्रकार अपनी इज्जत का संरक्षण करने तथा शरीर कुटुम्ब का निर्वाह करने वगैरा कार्य के लिये द्रव्य की आवश्यकता होती है इस लिये पूर्व पुण्योदय से अथवा न्याय पूर्वक व्यौपारादि से जो द्रव्य प्राप्त होता है उस में संतोष धारन करते हैं अधिक तृष्णा को नहीं बढ़ाते हैं क्यों कि "तृष्णा या परमं दुःखं" तृष्णा ही परम दुःख का कारण है "तृष्णा गुरूजी दिन पाल सरवर," जिस प्रकार विना पाल के तालाब में कितना भी पानी आ जाय तो वह भराता नहीं है तैसे ही तृष्णातुर को कितना भी द्रव्य मिल जाय तो भी उसे सन्तोष नहीं होता है "जहा लाहो तहा लोहो, लाहो लोहो पवड्ढइ" इस शास्त्र के कथनानुसार ज्यों ज्यों लाभ में वृद्धि होती है त्यों त्यों लोभ में भी वृद्धि होती जाती है × प्रत्यक्ष ही देखिये—जिन के

× श्लोक—य दुर्गा मटवी मटती विकटं क्रमति देशान्तरं।
गाहन्ते महनं समुद्र मतनू क्लेशां कृपि कुर्वते ॥
सेवंत कृपणं पति गज गटा संगट्ट दुसं चरं।
सर्पंति प्रधनं धनांधित सतल्लोभिघि स्फुर्जितम् ॥ १ ॥
नित्र उयापित्रिर चटु निरचयं त्यायान्ति नीवैघर्त।
शंभोरस्य गुणाक्त नोपि विदधत्यु चैगुणोक्तीर्नीनं ॥
निर्वेदन विदंति किंचिद् कृतमस्यापि सेवा कृते।
फष्टं कि न मन स्वीनोपि मनुजः फुर्वति विस्तार्थिना ॥ २ ॥
अर्थ—द्रव्यार्थी जन विषम अटवी में परि भ्रमण करते हैं। विकट देशों को उल्लंघते

वृक्ष के पत्ते ही वस्त्र थे, फल कन्दादि ही जिन के भोजन और मृत्तिका का विलेपन ही जिन का शृंगार था ऐसी हीन-स्थिति के मनुष्यों इस वक्त राजा महाराजा बने बैठे हैं तो भी उनकी तृप्ति नहीं हुई है और वे राज सम्पदा की वृद्धि के अर्थ आश्रितों से द्रोह कर और करोडों मनुष्य पशुओं का नाश करा रहे हैं। कदाचित् सारी पृथ्वी का राज्य प्राप्त होजाय तो भी तृप्ति आती है क्या? कदापि नहीं। ऐसे हीन-स्थिति के मनुष्यों इस प्रकार ऊंच-स्थिति को प्राप्त हो कर भी तृप्त न हुए तो क्या कोई हजार पती लक्षपती और क्रोडपती होने से तृप्त होंगे? कदापि नहीं। सिवाय सन्तोष के तो कोई तृप्त होते ही नहीं हैं। इस लिये सुखेच्छु को प्राप्त हुए द्रव्य से ही सन्तोषी बनना चाहिये। कितनेक ऐसा जान कर द्रव्य संग्रह करते हैं कि पश्चात् पुत्रादि सुखोपभोगी बनेंगे. किन्तु उनको विचारना चाहिये कि—"धन कुपूते सञ्चे क्यों? और धन सुपूते सञ्चे क्यों? अर्थात् जो कुपुत्र होगा तो द्रव्य को बर्बाद कर देगा और जो सुपुत्र होगा तो वह तेरे द्रव्य की दरकार ही नहीं रक्खेगा। तू क्यों द्रव्य संचय करने का कष्ट उठाता है और कर्म बन्ध करता है, निश्चय समझो कि कोई किसी को सुखी दुःखी नहीं कर सकता है. कृत कर्मानुसार ही सब दुःख सुख भोगते हैं कोई गरीब माता पिता के पुत्र श्रीमान् बन गये हैं और कोई श्रीमानों के पुत्र भिखारी बन जाते हैं। अभी तो पुत्र रक्षण की चिन्ता करते हो किन्तु जब गर्भाशय में जठराग्नि पर उलटा लटका था तब वहां रक्षण किस ने किया था और बाहिर आने से माता के दुग्ध पान की आवश्यकता होती है वह कौन उत्पन्न कर सकता है? किन्तु वक्त पर दैवयोग सब मिला रहता है * तो क्या आगे को न मिलेगा? दैव प्रमाने वक्त पर

हैं, चढ़े २ समुद्र तीरते हैं, महा कष्ट मय कृषी कर्म भी करते हैं। कृपण की सेवा करते हैं। नीचों के सन्मुख नम्र नमस्कार करते हैं। नमस्कार भी करते हैं। शत्रु के भी गुन गाते हैं। यों महोन्मत्त राजेन्द्रवत् लोभी मनुष्यों धन के लिये क्या क्या नहीं करते हैं अर्थात् सब ही करते हैं।

* सवैया—यद्यपि द्रव्य की सोच करे, कहा गर्भ में कैसो गांठ को लायो।

सब मिला रहेगा। ऐसा जान अन्य के लिये कर्म बन्ध नहीं करना चाहिये. किन्तु आणंदजी आदि श्रावकों ने जिस प्रकार जितना द्रव्य उन के पास था उससे अधिक करने के और रखने के प्रत्याख्यान किये उसही प्रकार मर्यादा करनी चाहिये । कदाचित उस प्रकार तृष्णा का निरूंधन नहीं कर सके तो जितनी इच्छा हो उतने उपरान्त का तो प्रत्याख्यान अवश्य ही करना चाहिये. यदि कोई कहे कि पास तो १०० रुपये भी नहीं हैं और १०००० उपरांत रखने के प्रत्याख्यान किये तो उस से क्या फल ? उन को जानना चाहिये कि—"स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्या" अर्थात् पुरुष का भाग्य (तकदीर) देव भी नहीं जान सकता है तो मनुष्य की क्या कथा ? गो बकरी के चराने वाले भी राजा महाराजा हो गये हैं इस लिये मर्यादा कर तृष्णा को रोकने से सन्तोष प्राप्त हो जाता है कि—मुझे विशेष हाय दौड़ा कर क्या करना है यों वह सुखी हो जाता है × ऐसा जान श्रावकों निम्नोक्त ९ प्रकार के परिग्रह का प्रमाण करते हैं:—

१ "खेत यथा परिमाण"—खुली भूमिका का इच्छित परिमाण-वर्षाद के पानी से धान्यादि की उत्पत्ती होवे वह खेत, कूप, बावड़ी, तलावादि जलाशय के पानी से धान्यादि की उत्पत्ती होवे वह अडाण, अनेक प्रकार के मेवा फल पुष्पादि की उत्पत्ती होवे वह बाग. शाक भाजी फली आदि की उत्पत्ती होवे वह वाडी, घास तृणादि की उत्पत्ती होवे वह वन. इत्यादि खुली भूमिका का परिग्रह काम चले वहां तक तो

जा दिन जन्म लियो जग में, तब केतिक कोटी लिये संग आयो ॥
ताको भरोसो क्यों छोड़े अरे मन, जासो आहार अचेत में पायो ।
ब्रह्म भने जना सोच करे वही, सोचो जो विरह लायो जतायो ॥ १ ॥

× गाथा—जहा २ अप्प लोहो, जह जह अप्प परिग्गह हारंभो ।
तह तह सुह पवडुइ, धम्मस्स य होइ संसिद्धि ॥ १ ॥

अर्थ—जिन २ प्रकार लोभ कमती होता जाता है उस २ प्रकार आरम्भ और परिग्रह भी कमी होता जाता है और त्यों २ सुख और धर्म की भी वृद्धि होती जाती है ।

श्रावकों को रखना उचित नहीं है क्योंकि-इनमें बहुत काल पर्यन्त छै ही काय जीवों का आरम्भ होता है. वक्त पर पचेन्द्रिय जीव की हिंसा हो जाती है. कदाचित काम न चले तो उक्त स्थान की लम्बाई चौड़ाई और नग का परिमाण करे अधिक का प्रत्याख्यान करे बिशेष नहीं रखे और रखे होवें उसमें भी आसरोचित कमी करता जावे।

२ "वत्थु यथा परिमाण"—ढकी हुई भूमिका का इच्छित परिमाण करे. एक मंजिल का होवे वह घर, दो आदि अधिक मंजिल का होवे वह हवेली अथवा महल, शिखर बन्ध होवे वह प्रशाद. व्यापार स्थान दूकान माल भरने का बखार, जमीन अन्दर का घर भुंवरा, बगीचा आदि का घर बंगला, तृणादि की कुटी, इत्यादि जितने की जरूरत होवे उतने नग (संख्या) लम्बाई चौड़ाई की मर्याद कर अधिक के प्रत्याख्यान करे. रहने को मकान होवे तो नया मकान बन्धाने का आरम्भ नहीं करे. क्योंकि-इसमें भी छै काय जीवों की तथा वक्त पर पचेन्द्री का भी घमशान हो जाता है. कदाचित रहने को योग्य स्थान नहीं हो तो बने हुए सीधे मकान भी बहुत मिल सकते हैं. द्रव्य खर्च की ओर नहीं देखना किन्तु अपनी आत्मा को आरम्भ से बचाना. इतने पर भी काम नहीं चले तो मकान की संख्या लम्बाई चौड़ाई की मर्याद कर अधिक मकान बनाने का भी त्याग करे।

३—४ "हिरन सुवर्ण यथा परिमाण"—हिरन=चांदी और सुवर्ण=सोने का इच्छित प्रमाण करे। पेपी लगडी प्रमुख सो बिना घडा सोना चांदी और मुद्रिका, कण्ठी, कड़ा, हार, नेपुरादि भूषन-दागीना सो घडा हुआ सोना चांदी. इनकी कीमत नग वजन आदि का परिमाण करे, पुराने चले वहां तक नये दागीने नहीं बनवावे क्योंकि—जहां अग्नि का आरम्भ होता है वहां छै ही काय की घात होती है. और धातु को गलाने का भी जबर पाप कहते हैं. बने बनाये तैयार दागीने मिलते आरम्भ कर नाहक कर्म बन्ध करना

श्रावक को उचित नहीं है. जो कदाचित काम नहीं चले तो नये दागीने बन वाने के नग तोल और कीमत का परिमाण कर अधिक का त्याग करे.

५ "धन यथा प्रमाण"—नगद द्रव्य का इच्छित परिमाण करे. पाई पैसा एकन्नी दुअन्नी चौअन्नी अट्ठन्नी रुपया मोहर आदि सिक्का चलता हो वह तथा हीरे पन्ने माणक मणी तुरमली लहसनिया प्रवाल रत्न मोती आदि धन की जाति की कीमत व संख्या की मर्यादा करे अधिक रखने के प्रत्याख्यान करे. पृथवी खुदाकर पत्थर चिराकर जवाहरात निकलवाने का तथा सीपों को चिराकर मोती निकलवाने का काम कदापि नहीं करे क्योंकि पृथवी को खोदने तथा अनेक प्रकार के मसालों के प्रयोग से त्रस जीव की भी घात हो जाती है और सीपों तो प्रत्यक्ष बेन्द्रिय प्राणी हैं उनको चीरने से लाल रंग का रक्त जैसा पानी निकलता है तथा वे अरराट शब्द से रुदन भी करती है. ऐसा जुल्म श्रावक को करना बिलकुल अनुचित है. सब प्रकार के पदार्थ सीधे मिलते हैं तो फिर अनर्थ कर्म बन्ध क्यों करना चाहिये. कदाचित नहीं भी चले तो सीप चिराने का काम तो कदापि नहीं करना और जवाहरात निकालने की मर्याद कर प्रत्याख्यान करना ।

६ 'धान यथा परिमाण"—धान्य (गल्ले) का परिमाण—शाल-चावल गेहूं, ज्वार, मोंठ, मक्कई, बाजरा, मूंग, चने आदि चौबीस प्रकार का धान्य और धान्य के जैसे ही राजगरी खसखस प्रमुख अनेक प्रकार के हैं तथा धान्य शब्द में मेवा मिठाई पक्वान घृत गुड़ सक्कर किरियाणा निमक तेल आदि अनेक वस्तु हैं, इनकी घर खरच के लिये जरूरत हो उस से अधिक रखने का सेर मणादि से परिमाण करे अधिक रखने का प्रत्याख्यान करना. इन वस्तुओं को विशेष काल रखने से इन में त्रस जीवों की उत्पत्ती हो जाती है इस लिये इन को रखने के काल का परिमाण करना भी उचित है अधिक काल तक इन को संग्रह कर रखना उचित नहीं है और इन का व्योपार करना तो श्रावकों को

बिलकुल ही उचित नहीं है क्यों कि-इन के सम्बन्ध में रहे अनेक त्रस जीवों की घात होती है तथा उक्त वस्तु के व्यौपारी दुष्काल पड़ने की भावना भी भाते हैं क्यों कि ऐसे प्रसंग में अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं ऐसे आर्त रौद्र ध्यान से चिक्कने कर्म का बन्ध होता है, कदाचित् व्यौपार किये विना काम नहीं चले तो वस्तु के वजन का काल का परिमाण करे अधिक का प्रत्याख्यान करना चाहिये विशेष काल वस्तु को संग्रह कर नहीं रखना तथा दैव का भरोसा रख कर अकाल आदि का खोटा विचार कदापि नहीं करना अपने समान सब को जानना।

७ "द्वीपद यथा परिमाण"—द्विपदी (दो पैर वाली वस्तु) का इच्छित परिमाण करे, मूल्य दे कर खरीद किये स्त्री पुरुष तथा उन के सन्तान जीवन पर्यन्त सेवा करें वे दास दासी। वर्ष भर का यों महीने का पगार का परिमाण कर रखे जावे वे कामेती (नौकर) सदैव मजूरी ठहरा कर रखे वे चेटक (चाकर) दो चक्र वाले रथ गाड़ी आदि वाहन तथा शुकादि पक्षीयों। इनमें से दास दासी नौकर चाकर तो अधिक रखना उचित नहीं है क्यों कि इन से प्रमाद की वृद्धि होती है तथा जितना यत्न पूर्वक काम स्वयं के हाथ से होता है उतना दूसरों के हाथ से होना मुश्किल है कदाचित् रखना ही पड़े तो जहां तक स्वधर्मी का जोग बने वहां तक अन्य धर्मियों को न रखे क्यों कि जिस से स्वधर्मी को सहायता भी पहुंचती है और वह यत्ना और विश्वास पूर्वक काम भी कर सक्ते हैं और परपाषंडी का संस्तव परिचय रूप अतिचार से बचाव भी हो जाता है कदाचित अन्य मतावलम्बियों को रखना पड़े तो उन को स्वधर्मी बनाने का प्रयास करे उन के कार्य पर अच्छी निगरानी रखे जिससे कोई भी काम अयत्ना से न होवे और वे भी दयालु बन जावें. ऐसे ही गाड़ी इत्यादि वाहन भी अधिक नहीं रखे क्यों कि उस से भी प्रमाद की और अयत्ना की वृद्धि होती है कदाचित रखना भी पड़े तो उन

से अयत्ना कम होवे ऐसा विवेक रखे. दासादि तथा सकटादि की संख्या की मर्यादा करे अधिक रखने के प्रत्याख्यान करे. पक्षियों का तो प्रथम वृत में ही निषेध कर दिया है और ऐसा भी प्रमाण करे कि मेरे इतने पुत्र पुत्री हुए बाद मैं ब्रह्मचर्य व्रत को अखण्डित धारन करूंगा।

८ 'चतुष्पद यथा परिमाण''—चतुष्पदी (चार पैर वाला वस्तु) का परिमाण कर गौ भैंस घोड़े हस्ति ऊंट गद्धे बकरे कुत्ते इत्यादि पशुओं का संग्रह करना श्रावक को उचित नहीं है क्यों कि इन के लिये घास आदि वनस्पति की तथा पानी का अधिक आरंभ करना पड़ता है. और मत्सर चिउंटी आदि त्रस जीव की भी घात हो जाती है और भी दुग्ध के लालचें के वास्ते उन के बच्चों को दुग्ध पान करने से छुड़ा कर भोगान्तर कर्म का भी बन्ध करना पड़ता है कदाचित् पशु रखना पड़े तो अन्तराय कर्म बन्धन से और हिंसा कृत्य से बचाव होवे उतना करना चाहिये. तैसे ही इतने चतुष्पद से अधिक नहीं रक्खूंगा ऐसे प्रत्याख्यान करे.

९ 'कुविय धातु यथा परिमाण''—फुटकर धातु की यथा परिमाण करे. तांबा पीतल कांसी सीसा कथीर लोहा जर्मन सिलवर इन के थाल कटोरे घड़े लोटे आदि वर्तनों तैसे ही मृत्तिका लक्कड़ वस्त्रादि के तथा कागज गला कर ठांठा आदि वर्तन बनाते हैं उन का और कीलें खूंटी तथा पहिनने ओढ़ने के वस्त्र इत्यादि जो जो घर विखेर के काम में आती है उन सब का इसमें समावेश करते हैं यह जितनी कमी होगा उतनी उपाधि भी कमी होगा. कहा है "सम्पत्ति उतनी विपत्ति" और भी अधिक विखेरा होने से उन में लीलन फूलन अनन्त जीव त्रस जीव की प्रसंग होता है ऐसा जान अधिक उपाधि बढाना नहीं * जितनी

* श्लोक—अर्थना मिश्वरोयः स्यादिन्द्रियाणा मनिश्वरः।
इन्द्रियाणामानि मैश्वर्या दैश्वर्याद्भ्रश्यतेहिसः ॥ १ ॥

अर्थ—जो धन का मालिक हो इन्द्रियों का मालिक नहीं होता है अर्थात् इन्द्रियों पर काबू नहीं रखता है उसको धन नाश हो जाता है।

की आवश्यकता हो उतने से उपरान्त प्रत्याख्यान करना चाहिये।

इस पांचवें व्रत का एक करन और तीन योग से ग्रहन किया जाता है अर्थात् मैं इतने उपरान्त परिग्रह मन वचन काया के योग से नहीं रखूंगा पुत्रादि अन्य का रखने का और रखते को अच्छे जानने का नियम ग्रहस्थ से होना मुशकिल है, क्यों कि पुत्रादि को व्योपारादि कर धन वृद्धी करने को कह देते हैं तथा उनने लाभ प्राप्त किया सुन कर खुश भी होजाते हैं. इससे भी बचाव करे तो अच्छी बात है।

पांचवें व्रत के ५ अतिचार।

१ "खेत वत्थु परिमाणातिक्रम"—खेत घर का परिमाण अतिक्रमे. मर्यादा करती वक्त एक खेत आदि रखा हो और दूसरा खेत आजावे तब पाहिले की (पाल) मर्यादा तोड़कर दूसरा खेत उसमें मिलाले. तैसेही घरादि की भींतादि तोड़ पहिले के घर में मिलाले तो अतिचार लगे, क्योंकि—प्रमाण करती वक्त लम्बाई चौड़ाई का भी प्रमाण किया है. यदि लंबाई चौड़ाई का परिमाण नहीं भी किया हो तो मन तो साक्षी देता है कि यह दूसरा है. ऐसा काम श्रावक को करना अनुचित है. कदाचित अधिक घरादि आजाये और उसे धर्मार्थ समर्पण करदे तो धर्म होवे।

२ "हीरण सुवर्ण परिमाणातिक्रम"—चांदी सोने का परिमाण अतिक्रमे. मर्यादा से अधिक चांदी सुवर्ण आजावे उसे प्रथम के ढेपे लगाडी या दागीनादि गलाकर तोड कर उसमें मिलावे तथा आप उत्पन्न कर पुत्रादि को दे देवे तो अतिचार लगे. यदि धर्मार्थ लगा देवे तो पुण्य उपार्जन करे।

३ "धन धान परिमाणातिक्रम"—नगद द्रव्य का तथा जवाहरात का और धान का जो परिमाण किया है उससे अधिक रखे तथा आप उत्पन्न कर अपने पुत्रादि को देवे. तो अतिचार लगे क्योंकि इच्छा का निरुंधन करने प्रमाद घटाने को ही परिमाण किया है वह नहीं करता अपने पुत्रादि की मालकी का उसे बता कर आप संतोषी बनना चाहे किन्तु केवल ज्ञानी

से तो भाव छिपे नहीं हैं. जो अधिक हो जावे उसे धर्म-काम पुण्य काम में लगा देवे तो दोषित नहीं बने।

४ "द्विपद चतुष्पद परिमाणाति क्रम"—द्वीपद मनुष्य नौकरादि का तथा सकटादि की और चतुष्पद गौ वृषभ अश्व महिषादि का जो परिमाण किया है उस से अधिक रखे तो अतिचार लगे। गो आदि घर में रहे पशुओं के बच्चे परिमाण करती वखत में आगार रखने का उपयोग रखे तो ठीक है नहीं तो उन को सुखस्थान पहुंचावे तो ही अतिचार से बचसके, कदाचित् लंगड़े लूले पशु को या मृत्यु मुख से बचाये हुये पशु पक्षी अन्य स्थान भेजने योग्य न हों वहां तक दया के लिये रक्षण करने को रखे तो दोष नहीं. लोभ निमित्त नहीं रखना चाहिये।

५ "कुविय धातु परिमाणातिक्रम"—घर बखर के वर्तन भण्ड कुरछी आदि अधिक होगये हों उनको तोड फोड मिलावे. तथा पुत्रादि के नाम का कर के रखे तो अतिचार लगे. एक सुई मात्र भी अधिक रखने से दोषाधिकारी होता है।

☞ तृष्णा यह दुःख का मूल है, द्रव्योपार्जन करने के लिये भी शीत ताप क्षुधा तृषा गुलामी आदि अनेक कष्ट सहने पडते हैं. धन की वृद्धी होने से भी कुटुम्ब का राज का इत्यादि अनेक झगडे पीछे लग जाते हैं, कृपण मनुष्य तो खाते खरचते भी दुखित होते हैं. जो द्रव्य का अग्नि पानी चोरं नुकशान इत्यादि प्रयोग से नाश हो जाय तो भी उनको बडा दुःख होता है. ऐसा जान जो श्रावक सर्वथा तृष्णा का पराजय नहीं कर सके तो उसको आहिस्ते २ पराजय करने को मर्यादित तो जरूर होना उचित है। विचारना कि कितनी भी द्रव्य की वृद्धी हुई तो मेरे क्या काम आने की है हजार अश्व घर में हुये तो मेरी सवारी के काम में तो एक ही आवेगा. कितने ही मकान हुये तो मैं तो एक ही में रहूंगा फिर अधिक बढ़ा कर उनके रक्षणादि की नाहक क्यों उपाधी बढ़ाना ?

इत्यादि विचार से सन्तोष धारनकर मर्यादित होना और जिस धर्म पुण्य के प्रताप से द्रव्य प्राप्त हुआ उसही मार्ग में प्राप्त द्रव्य का जितना सद्व्य होसके उसमें पश्चात नहीं हटना. ज्ञान वृद्धी धर्मोन्नती दया दान सुकृत्य में जितना लगाया जायगा उतना ही तुम्हारा है पश्चात रहेगा उसके मालक दूसरे बन बैठेंगे । इस प्रकार सन्तोष धारन कर धर्म में द्रव्य का विभाग रखने वाले के पास लक्ष्मी अचल रहती है, यशः कीर्ती की वृद्धी होती है. जन समाज में मान महत्व मिलता है. हृदय सन्तुष्ट रहता है यों सुख से इस जन्म को व्यतीत कर आगे स्वर्ग के और क्रमसे मोक्ष के सुख प्राप्त करता है।

तीन गुण व्रत ।

जिस प्रकार कोठार में रखा हुआ धान विनास नहीं पाता है उस ही प्रकार निम्नोक्त तीन गुण व्रत के धारने करने से उक्त पांचों अणु व्रत का स्वरक्षण होता है।

६ छट्ठा दिशा परिमाण व्रत ।

१ उर्द्ध २ अधो और ३ तिरछी यों ३ प्रकार दिशा के हैं. इसके कितनेक—१ पूर्व, २ दक्षिण, ३ पश्चिम, ४ उत्तर, ५ उर्द्ध और ६ अधो यों ६ प्रकार भी करते हैं, कितनेक १ पूर्व, २ अग्नि, ३ दक्षिण, ४ नैऋत्य, ५ पश्चिम, ६ वायु, ७ उत्तर, ८ ईशान ९ उर्द्ध और १० अधो. यों १० प्रकार भी करते हैं, और कितनेक ४ दिशा ४ विदिशा (कूण) ८ अन्तर, उर्द्ध और अधो यों १८ प्रकार* करते हैं किन्तु यहां तो मुख्यता में तीन दिशा ही ग्रहण की हैं. इनमें गमनागमन करने के अमर्यादित को जिस प्रकार द्वार के विना लगाये घर में कचरा आकर भराता है उसही प्रकार सारे

* १८ भाव दिशा—१ पृथ्वी, २ पानी, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ अग्र बीज, ६ मूल बीज, ७ स्कन्ध बीज, ८ पर्व बीज, (यह बनस्पति) ९ बेन्द्रिय, १० तेन्द्रिय, ११ चउरेन्द्रिय, १२ पचेन्द्रिय, (यह ४ त्रस तिर्यञ्च) १३ समुर्च्छिम, १४ कर्म भूमी, १५ अकर्म भूमी, १६ अन्तर द्वीप (यह ४ मनुष्य) १७ नर्क और १८ देवता। इनमें सकर्मी जीव गमनागमन करता है।

से तो भाव छिपे नहीं हैं. जो अधिक हो जावे उसे धर्म-काम पुण्य काम में लगा देवे तो दोषित नहीं बने।

४ "द्विपद चतुष्पद परिमाणाति क्रम"—द्वीपद मनुष्य नौकरादि का तथा सकटादि की और चतुष्पद गौ वृषभ अश्व महिषादि का जो परिमाण किया है उस से अधिक रखे तो अतिचार लगे। गो आदि घर में रहे पशुओं के बच्चे परिमाण करती बखत में आगार रखने का उपयोग रखे तो ठीक है नहीं तो उन को सुखस्थान पहुंचावे तो ही अतिचार से बचसके, कदाचित् लंगड़े लूले पशु को या मृत्यु मुख से बचाये हुये पशु पक्षी अन्य स्थान भेजने योग्य न हों वहां तक दया के लिये रक्षण करने को रखे तो दोष नहीं. लोभ निमित्त नहीं रखना चाहिये।

५ "कुविय धातु परिमाणातिक्रम"—घर बखर के वर्तन भण्ड कुरछी आदि अधिक होगये हों उनको तोड फोड मिलावे. तथा पुत्रादि के नाम का कर के रखे तो अतिचार लगे. एक सुई मात्र भी अधिक रखने से दोषाधिकारी होता है।

☞ तृष्णा यह दुःख का मूल है, द्रव्योपार्जन करने के लिये भी शीत ताप क्षुधा तृषा गुलामी आदि अनेक कष्ट सहने पडते हैं. धन की वृद्धी होने से भी कुटुम्ब का राज का इत्यादि अनेक झगडे पीछे लग जाते हैं, कृपण मनुष्य तो खाते खरचते भी दुखित होते हैं. जो द्रव्य का अग्नि पानी चोर नुकशान इत्यादि प्रयोग से नाश हो जाय तो भी उनको वडा दुःख होता है. ऐसा जान जो श्रावक सर्वथा तृष्णा का पराजय नहीं कर सके तो उसको आहिस्ते २ पराजय करने को मर्यादित तो जरूर होना उचित है। विचारना कि कितनी भी द्रव्य की वृद्धी हुई तो मेरे क्या काम आने की है हजार अश्व घर में हुये तो मेरी सवारी के काम में तो एक ही आवेगा. कितने ही मकान हुये तो मैं तो एक ही में रहूंगा फिर अधिक वड़ा कर उनके रक्षणादि की नाहक क्यों उपाधी वढाना ?

इत्यादि विचार से सन्तोष धारनकर मर्यादित होना और जिस धर्म पुण्य के प्रताप से द्रव्य प्राप्त हुआ उसही मार्ग में प्राप्त द्रव्य का जितना सद्व्य होसके उसमें पश्चात नहीं हटना. ज्ञान वृद्धी धर्मोन्नती दया दान सुकृत्य में जितना लगाया जायगा उतना ही तुम्हारा है पश्चात रहेगा उसके मालक दूसरे बन बैठेंगे। इस प्रकार सन्तोष धारन कर धर्म में द्रव्य का विभाग रखने वाले के पास लक्ष्मी अचल रहती है, यशः कीर्ती की वृद्धी होती है. जन समाज में मान महत्व मिलता है. हृदय सन्तुष्ट रहता है यों सुख से इस जन्म को व्यतीत कर आगे स्वर्ग के और क्रमसे मोक्ष के सुख प्राप्त करता है।

तीन गुण व्रत।

जिस प्रकार कोठार में रखा हुआ धान विनास नहीं पाता है उस ही प्रकार निम्नोक्त तीन गुण व्रत के धारने करने से उक्त पांचों अणु व्रत का स्वरक्षण होता है।

६ छट्ठा दिशा परिमाण व्रत।

१ उर्द्ध २ अधो और ३ तिरछी यों ३ प्रकार दिशा के हैं. इसके कितनेक—१ पूर्व, २ दक्षिण, ३ पश्चिम, ४ उत्तर, ५ उर्द्ध और ६ अधो यों ६ प्रकार भी करते हैं, कितनेक १ पूर्व, २ अग्नि, ३ दक्षिण, ४ नैऋत्य, ५ पश्चिम, ६ वायु, ७ उत्तर, ८ ईशान ९ उर्द्ध और १० अधो. यों १० प्रकार भी करते हैं, और कितनेक ४ दिशा ४ विदिशा (कूण) ८ अन्तर, उर्द्ध और अधो यों १८ प्रकार* करते हैं किन्तु यहां तो मुख्यता में तीन दिशा ही ग्रहण की हैं. इनमें गमनागमन करने के अमर्यादित को जिस प्रकार द्वार के विना लगाये घर में कचरा आकर भराता है उसही प्रकार सारे

* १८ भाव दिशा—१ पृथवी, २ पानी, ३ अग्नि; ४ वायु, ५ अग्र बीज, ६ मूल बीज, ७ स्कन्ध बीज, ८ पर्व बीज, (यह बनस्पति) ९ बेन्द्रिय, १० तेन्द्रिय, ११ चउरेन्द्रिय, १२ पचेन्द्रिय, (यह ४ त्रस तिर्यञ्च) १३ समुच्छिम, १४ कर्म भूमी, १५ अकर्म भूमी, १६ अन्तर द्वीप (यह ४ मनुष्य) १७ नर्क और १८ देवता। इनमें सकर्मी जीव गमनागमन करता है।

जगत् में होते हुए पाप का हिस्सा आता है। मर्यादा करने वाले को जितना क्षेत्र खुल्ला रक्खा है उतने ही में जो पाप होता है उसका हिस्सा आता है बाकी सब बन्द हो जाता है. इसलिये श्रावक—१ "उर्द्ध दिशा का यथा परिमाण"—ऊंची दिशा पहाड पर वृक्ष पर महल पर तार स्थम्भ मीनार पर तथा देवता के या विद्याधर के विमान में गुब्बारा (व्यलून) में यन्त्रिकयान घोडे गरुडा पर सवॉर हो पश्चिम से पूर्व दिशा की पृथ्वी का विभाग ऊंच कहलाता है इसलिये पश्चिम में रहने वाले को पूर्व में जाना पडे तो कोस या हाथ मंजिल का परिमाण कर आगे जाने के प्रत्याख्यान करे. २ "अधो दिशा यथा परिमाण"—नीची दिशा तलघर, भूंयरा सुवर्णादि की खान, गुफा, कूप, वावडी, धान्य भरने की खो और पूर्व का रहने वाला पश्चिम की ओर जाने का काम पडे तो कोस हाथ मंजिल का परिमाण करे आगे जाने के प्रत्याख्यान करे और ३ "तिरिय दिशा यथा परिमाण"—त्रिछी दिशा—पूर्व में दक्षिण में पश्चिम में और उत्तर में इतने कोस से अधिक न जाऊंगा ऐसे प्रत्याख्यान करे. यह प्रत्याख्यान भी पांचवें व्रत के जैसे ही एक करन तीन योग से मर्यादित क्षेत्र से आगे जाकर पांचों आश्रव सेवन के करने किये जाते हैं. किन्तु किसी जीव को बचाने, साधु के दर्शनार्थ, महाउपकारिक काम के लिये और दीक्षा धारन किये बाद जो मर्यादित क्षेत्र के आगे जावे तो व्रत भंग नहीं होवे।

छट्ठे व्रत के ५ अतिचार।

१—३ "उर्द्ध-अधो-तिरिय-दिशा परिणासातिक्रम"—ऊंची नीची और तिरछी दिशा का परिमाण जान कर उल्लंघन कर आगे जावे तो अनाचार लगे और भूल कर नशा के वश हवा में उड कर, रेल में निद्रा आ जाने से, जहाज में तोफानादि हो जाने से या देवता विद्याधर हरन कर ले जाने से कदाचित मर्यादा उपरान्त चला जावे और आश्रव का सेवन करे तो अतिचार लगे. किन्तु जहां स्मृती आवे वहां ही से पीछा फिर जावे

मर्यादित क्षेत्र के अन्दर आवे वहां तक आश्रव का सेवन नहीं करे तो अतिचार नहीं लगे. तैसे ही वायु में उड कर कोई वस्तु मर्यादा उपरान्त चली गई कूपादि में पडगई उसे आप लेने जावे या दूसरे के पाससे मंगावे तो अतिचार लगे. किन्तु विना कहे ही कोई लाकर देवे उसे ग्रहण करे वो दोष नहीं लगे।

४ "क्षेत्र वृद्धी"—क्षेत्र में वृद्धी करे. चारों दिशा में यदि ५०—५० कोस क्षेत्र रखा हो और कदाचित पूर्व में १०० कोस जाने का प्रसंग प्राप्त हो तब विचारे कि पश्चिम में जाने का मेरे कुछ काम नहीं पडता है इसलिये पश्चिम के ५० कोस पूर्व में मिला लेवूं, यों विचार कर पूर्व में ५० कोस से अधिक जावे तो अतिचार. लगे ऐसा काम नहीं करना।

५ "सइ अन्तर धा"—शुद्धी भूल कर जावे, चित्त में प्रमादि कारण से विस्मरण हो जावे कि मैंने पूर्व में ५० कोस रखे हैं कि ७५ जहां तक पूरा स्मरण न हो वहां तक ५० कोस से अधिक चला जावे तो अतिचार लगे।

☞ इस छट्ठे व्रत के धारन करने से ३४३ रज्जू लोक का जो पाप आता था वह रुककर बहुत थोडासा रह जाता है तृष्णा का निरुंधन और मन को शान्ती प्राप्त होती है, भविष्य में स्वर्ग सुख का भोगी हो क्रम से मोक्ष भी प्राप्त होती है।

७ सातवां-उपभोग परिभोग परिमाण व्रत।

आहार—अन्न पानी पक्वान शाक फल अतर तम्बोलादि जो वस्तु एकही वक्त भोग में आवे वह उपभोगिक वस्तु और स्थान वस्त्र भूषन स्त्री शयनासन वर्तन आदि जो वस्तु वारम्वार भोगवने में आवे वह परिभोगिक वस्तु. इन दोनों प्रकार की वस्तु के मुख्यता से २६ प्रकार निम्नोक्त प्रकार से किये हैं. जिसकी मर्यादा श्रावक करते हैं।

१ "उल्लणिया विहं"—शरीर को पूंछ कर साफ करने के तथा शोख निमित हाथ में गले आदि में रखने के टुवाल रूमाल प्रमुख वस्त्र, २ 'दंतण विहं'—दांतों को स्वच्छ करने के काष्ठादि के दांतन ‡ तथा मञ्जन मिस्सी प्रमुख, ३ 'फल विहं' आम जामन नारियल नारंगी आदि वृक्ष के फल खाने के तथा आमले आदि शिर में डालने के फल, ४ 'अभंगण विहं'—अतर फुलेल तेल ‡‡ आदि शरीर के लगाने के द्रव्य, ५ 'उवट्टण विहं'—शरीर को स्वच्छ सतेज करने लोद्रादि द्रव्य पीठी ऊगटणे सावन क्षारादि लगाने के तथा हस्त पैर साफ करने को राख गोबर मिट्टी-धूल लगावे ‖ सो, ६ 'मंजण विहं' घुटने तक पैर कोहनी तक हस्त गर्दन तक मस्तक धोवे वह देश स्नान और नख शिख सब शरीर पखाले वह * सर्व स्नान, ७ 'वत्थ विहं'—ऊन के सूत के रेशम के जरी के शनादि के पहरने ‡ ओढ़ने के वस्त्र, ८ 'विलेवण विहं'—केशर चंदन गोपीचंदन कुंकुम इत्यादि तिलक करने की वस्तु, ९ 'पुप्फ विहं'—चंपा चमेली गुलाब मोगरा केवडा गेंदा

‡ सचित्त मिट्टी से; हरी लकड़ी से; निमक आदि सचित्त वस्तु से, दांतन करना श्रावक का उचित नहीं है।

‡‡ शोख के निमित अतर फुलेल लगाना श्रावक को उचित नहीं है। औषधी निमित लगाना पड़े तो परिमाण करे ।

‖ इस वक्त गाय की सूअर की चरबी भी कितने ही साबुनों में मिलती है, यह हिन्दू इसलाम किसी के भी छूने लायक नहीं है, तैसे ही तेल, पीठी, ऊगटणा, आमले इत्यादि शरीर के लगा कर नदी तालावादि जलाशय में प्रवेश कर स्नान करना उचित नहीं है क्योंकि उसका अंश वह कर जितनी दूर जाता है उतनी दूर पानी के तथा त्रस जीव भी मर जाते हैं।

* स्नान करते गरम पानी में ठण्डा पानी मिलाना नहीं चाहिये, तैसे ही गट्टर पर मोरी पर द्रोबादि हरी पर चींटीयों दीमक के बिल पर भी स्नान करना नहीं; क्योंकि गट्टरादि में कीड़े लीलन फूलन और असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्य होते हैं जिससे असंख्य अनन्त जीवों की हिंसा होती है ।

‡ रेशम के कीड़े मूंह में से तन्तु (तार) निकाल कर अपने शरीर पर लपेटते हैं वे बाहिर निकलने से तार टूट जाते हैं इसलिये उनको गरम २ पानी में डालकर मार डालते हैं इस प्रकार त्रस जीव की हिंसा से रेशम बनता है रेशम के वस्त्र काम में लेने वाले उस हिंसा के हिस्सेदार होते हैं इसलिये रेशमी वस्त्र ग्रहन करना उचित नहीं ।

इत्यादि प्रकार के फूल * १० आभरण विहं'—मस्तक के कान के नाक के मुंह (दांत) के, कंठ के, हस्त के, कमर के, पैर के पहिनने के सुवर्ण चांदी जड़ाव के भूषन-दागीने. ११ "धूप विहं"—पंचाङ्ग दशाङ्ग अगर वत्ती कुदवची इत्यादि सुभिगन्धी धूप तथा राई मिरच छाने आदि का दुर्गन्धी † धूवा. १२ "पेज्जविहं"—दुध रावडी शरवत चाह काफी ऊकाली धनागरस काढ घासा ‡ ठंडाई भांग आदि पीने की वस्तु १३ 'भक्खण विहं"—खाजा दोठा प्रमुख फीके और लड्डु जलेबी वरफी प्रमुख मीठे पक्वान § मिठाई १४ "उदण विहं"—चावल खीचडी थूली घाढ दालिया आदि रधीन की जाति १५ "सुप विहं"—चने मूंग मोंठ उड़द आदि की दाल || तथा २४ प्रकार का धान्य १६ "विगय विहं"—दूध दही घृत तेल गुड़ शक्कर धार विगय ¶ कडाई विगय. १७ "सागविहं" मेथी मूली बथुवे प्रमुख की भाजी, तोरई कंकडी गिलके भींडी कल्लर आदि शाक की जाति * १८

---

* फूल अधिक कोमल होने से उनमें अनन्त जीव होते हैं तथा फूलों में त्रस जीवों का भी निवास स्थान होता है उनका छेदन भेदन करने से उनकी हिंसा होती है कितनेही अज्ञ जीवों देव देवी को फूल चढ़ाने में धर्म मानते हैं. यह कृतव्य भी श्रावक को करना उचित नहीं है।

† सुभिगन्धी तथा दुर्गन्धी वस्तु के धूवें के झपट में आकर मच्छरादि त्रस जीव मर जाते हैं वैसे ही अग्नि के आरम्भ विना धूआँ होता नहीं है और अग्नि छओं दिशा में रहे जीवों का शस्त्र है इसलिये श्रावक को शोख निमित तथा धर्म निमित धूप सेवना उचित नहीं है रोगादि निवारने को धूप देनी पड़े तो उसका नियम करे।

‡ चाहा काफी भांगादि का दुर्व्यसन नहीं लगाना चाहिये क्योंकि वक्त पर वस्तु का संयोग न मिले तो प्राणान्त समान कष्ट प्राप्त होता है। इनके सेवन से हृदय का मांस सड़ जाता है जिससे तरह २ के रोगोत्पत्ती होती हैं और बुद्धि भी मलीन होती है।

§ विदेशी (चीनी) शक्कर किसी के स्पर्श करने योग ही नहीं है यह तो पहिले बता चुके हैं और अधिक मिठाई खाना भी रोग और कृमी उत्पन्न करता है।

|| दाल का संग्रह कर बहुत दिन रखने से उसमें जाले बन्ध जाते हैं त्रस जीव भी उत्पन्न हो जाते हैं इसी लिये विशेष काल नहीं संग्रहना।

¶ दूध घृतादि की धार बन्धती है उसे धार विगय और कढ़ाई में तलते हैं उसे कढ़ाई विगय कहते हैं विशेष विगय का सेवन विषय वृद्धी करता है इस लिये कमी करना चाहिये

* मूली की भाजी आदि कितनेक शाक में त्रस जीवों की उत्पत्ती होती है। ऐसा शाक नहीं खाना कितनेक शाक रोगों से भरे होते हैं और श्रावण भाद्रव महिने में तो बिलकुल ही शाक नहीं खाना. क्योंकि ये नये पत्तों के पूर्ण परिपक्व नहीं होते हैं पशु भी इन दिनों में खराब गोबर करते हैं तो मनुष्य तो धार्मिक किस प्रकार कर सके।

"माहूर विहं"—बदाम पिश्ते चिरौंजी खारक किसमिस द्राक्ष अंगुर अक्रोड आदि मेवा * तथा मुरब्बा १९ "जीमण विहं"=भोजन में जितने पदार्थ भोगने में आवे सो. २० 'पाणी विहं"—नदी तालाब कुआ नाला नल नहर कुण्ड या बरसाती पानी तैसे ही खारी मीठा मैला आदि पानी की जाति. २१ "मुखवास विहं"—पान * सुपारी लवंग इलायची जायफल चूरन खटाई पापड आदि मुख शोदन करने के पदार्थ २२ "वाहन विहं" हाथी घोडे ऊंट बैल प्रमुख चलते गाड़ी बग्गी मोटर से कल स्यानापालखी प्रमुख फिरते हुये, जहाज नाव बोट मछवे प्रमुख तिरते हुए. गभरायान विमान प्रमुख उड़ते हुये जितने सवारी के उपयोग में आवे वाहन. २३ "वाहनी विहं"—पगरखी जूती मुंडे खडाऊं मोजे प्रमुख पैर * में पहिनने के. २४ "संयण विहं"—सैय्या छपर-पलंग पल्यंक खाट माचा खटोली * कौच टेबिल कुरसी पाट बिछौनों वगेरा २५ "सचित्त विहं"—कच्चे दाने कच्ची हरी कच्चा पानी निमक इत्यादि सजीव वस्तु और २६ "द्रव्य विहं"—जितने स्वाद पलटे उतने द्रव्य जैसे गेहूं तो एक वस्तु है जिस की रोटी बाटी बाफले पूडी थूली यों ५ द्रव्य हो गये ऐसे ही पूडी तो एक वस्तु है किन्तु तबे की पूडी कढाई की पूडी यों दो द्रव्य हो गये ऐसे सर्व स्थान द्रव्य के भेद जानना ।

☞ उक्त २६ वस्तु उपभोग परिभोग की कही इन में सब वस्तुयों का समावेश हो जाता है [illegible] का कर्तव्य [illegible] कि जो २ अधिक पाप कारक वस्तु है उन का प[illegible] और [illegible] का भोग किये

---

* द्राक्षादि मेवे का भी [illegible] से न[illegible] हो जाते हैं।
ना[illegible] पान सडे [illegible] वर्ण[illegible] जीवों
फूलन[illegible] जाती [illegible]
[illegible] जूते [illegible] कि
उसके नीचे [illegible] पिच[illegible]
[illegible] [illegible] नहीं
क्योंकि उसके [illegible]

विना अपना काम नहीं चलता होवे तो उन की गिनती का तथा वजन का परिमाण कर अवशेष का परित्याग करे। परिमाण की हुई वस्तुओं में से भी अवसरोचित कमी करता रहे. किन्तु लुब्धता कदापि धारन नहीं करे।

२२ 'अभक्ष' ✻

१—५ बड़ के फल, पीपल के फल, पिंपरी (फंफर) के फल उम्बर (गूलर) के फल, कवीठ इन पांचों ही प्रकार के फलों में सूक्ष्म जीव भी बहुत होते हैं और त्रस जीव की उत्पत्ति बहुत होती है गूलरादि को फोड़ने से प्रत्यक्ष उड़ते हुए जीव उस में से निकलते हैं ६ 'मदिरा' महुए के, खजूर के फल को, द्राक्ष को सड़ाते हैं जिस में वेगिनती के कीड़े उत्पन्न होते हैं उनका भी सामिल अर्क निकलता है। इसके सेवन करने वाले पागल बन बकते हैं. भिष्टा मूत्र के स्थान में गिर जाते हैं. माता भग्नि पुत्री आदि के साथ कुकर्म भी करलेते हैं. मिष्टान खाने को धन माल बरबाद कर कंगाल बनजाते हैं. भक्षाभक्ष का विचार नहीं रखते हैं. चिढ़ कर माता पिता स्त्री पुत्रादि को भी मारते हैं नशे वाज के घर में झगड़ा बहुत बक्त होता है और जो जादा वेग चढ़ जाय तो अकाल काल का ग्रास बन जाता है. इत्यादि महा दुर्गुन का स्थान जान इसलाम धर्म के कुरान शरीफ में नशे मात्र को हराम बताया है. इसलिये इसका आचरन करना बिलकुल ही अनुचित है. ७ 'मांस'—मच्छ कच्छादि जल में रहने वाले, गौ भैंस बकरे आदि ग्राम में रहने वाले, हिरन खरगोश जंगल के रहने वाले, चिड़ी कौवे मुरगे आदि उडने वाले, इत्यादि जीवों की हिंसा होने से ही मांस होता है. पेट का खड्डा पूरा करने के लिये जो संसार के अनेक

☞ ✻ यह २२ के नाम ग्रन्थ से लिखे हैं इन सब को समान पक्ष से नहीं समझना चाहिये। कितनेक बहुत पाप के स्थान हैं कितनेक थोड़े हैं कितनेक स्पर्श करने योग्य भी नहीं हैं और कितनेक का औषधादि में ग्रहण भी करते हैं तथा जिनके बिना तो काम चलना ही मुश्किल है किन्तु बहुत पापकारी वस्तुओं होने से यहां उल्लेख किया गया है पाप कम होवे उतना ही अच्छा।

काम में आने वाले दुग्ध ऊन वस्त्र आदि अनेक पदार्थ के देने वाले तृण आदि निर्माल्य वस्तु से अपनी उपजीविका करने वाले विचारे निरापराधी जीवों को कतल करना यह जबर कृतघ्नता का काम है. प्राचीन काल से प्रचलित नीती है कि—जो कट्टर शत्रु भी मुख में तृण धारण कर लेता है तो उसे भी अभय दिया जाय, फिर तृण भक्षी पशुओं पर घातकीपना तो बिलकुल ही नहीं होना चाहिये और भी वैष्णव धर्म के शास्त्र में मच्छा अवतार कच्छा अवतार वाराह अवतार नृसिंह अवतार पशु योनी में परमेश्वर ने धारन किये कहे हैं. ऐसे परमेश्वर के प्यारे जीवों की घात करना यह कितना जबर अधर्मपने का काम है ? इसका विचार सुज्ञ जनों को अवश्य ही करना और किसी भी पशु की घात कदापि नहीं करना चाहिये और न मांस खाना चाहिये । इसलाम धर्म के पालक पेशाब को बड़ा नापाक समझते हैं और उसका दाग कपडे को न लगने पावे इसलिये ही वजु * करते हैं फिर पेशाब से उत्पन्न हुई वस्तु (गोस्त) तो छूने लायक भी नहीं है । कुरान सरीफ के सुरायन पारा में गोस्त को हराम बतलाया है सुराह हज की ३६वीं आयत में खुद अल्लाह ताला ने फरमाया है कि—गोस्त और लोहू मुझे पहुंचेगा नहीं किन्तु एक परहेजगारी (पाप का डर) ही पहुंचेगा. फिर गोस्त का इस्तेमाल किस प्रकार किया जाय. अंग्रेजों के माननीय बाइबल के २०वें प्रकरण में कहा है—"*Thou Shalt Not Kill*" अर्थात तूं हिंसा नहीं करना. इस प्रकार हिंसा करने की मना है और हिंसा बिना मांस होता ही नहीं है तो मांस खाने की कुदरती मना होगई । यों सब शास्त्रों का मत है और मांस रक्त अशुची से भरा हुआ दुर्गन्धी क्षय गंडमाल रक्तपिती (कोढ) वात पित सन्धीवायु बुखार (मिटफीवर) अतीसार आदि अनेक रोगों का उत्पादक जाति और धर्म से भृष्ट बनाने वाला और भविष्य में नर्कगति

फुट नोट—पेशाब का दाग कपड़े को न लगे इसलिये मट्टी के ढेले से पूंछ लेते हैं ।

में अनेक थम की त्रास का दाता है × इसलिये अभक्ष है. ८ "मद्य"—सहत भी अभक्ष है क्योंकि—सहत की मक्खियाँ अनेक वनस्पति का रस एक स्थान जमा कर उस पर बैठी रहती हैं, उसे भीलादि नीच मनुष्यों अग्नि प्रयोग से उन मक्खियों को जला कर तथा कम्बल में उनकी गठरी बांद कर निचोड लेते हैं. उसमें उन मक्खियों का उनके अण्डों का भी रस सामिल आता है. ऐसा घातिक पदार्थ खाने लायक नहीं है. ९ 'मक्खन' तक (छाछ) से अलग हुए बाद थोडे ही काल में क्रिमी आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं तथा लीलन फूलन आ जाती है. ऐसा मक्खन भी अभक्ष है. १० 'हिम'—वर्फ—कच्चे पानी का जमा हुआ असंख्य जीवों का पिण्ड होता है. ११ 'विष'—जहरीले पदार्थ जैसे कि—अफीम वच्छनाग सोमल भांग गांजा माजूम तम्बाखू इत्यादि नशा उत्पन्न करने वाली वस्तु कितनेक सौख्य निमित और कितनेक रोगादि कारण से लगाते तो सहज

× कितने ही कहते हैं कि हम हमारे हाथ से हिंसा नहीं करते हुये सीधा मोल लेकर मांस खाते हैं उसमें हमें क्या दोष लगता है । किन्तु यह उनका कथन अज्ञानता का है क्योंकि मनुस्मृती के पांचवें अध्याय तीसरे भाग में ८ जन को घातिक कहे हैं यथाः—

श्लोक—अनुमन्ता विशसिता, निन्हन्ता क्रय विक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ताच, खादक श्चेति घातकाः ॥१॥

अर्थ—१ जीव वध करने की आज्ञा देने वाला, २ काटने वाला, ३ मारने वाला, ४ मोल लेने वाला, ५ बेचने वाला पचाने वाला, ७ देने वाला और ८ खाने वाला यह आठों ही घातक हिंसक होते हैं।

श्लोक—मांस भक्षयिताऽमुत्र, यस्य मांस मिहाद्म्यहं ।
एतन्मांसस्य मांसत्वे, निरुक्त मनुर ब्रवीत ॥ २ ॥

अर्थ—मनु जी कहते हैं कि निरुक्ती से मांस का अर्थ मां=मेरे+स=सरीखा अर्थात् जिस प्रकार तू मेरा भक्षन करता है उस ही प्रकार अन्य जन्म में मैं तेरा भी भक्षन करूंगा ऐसा होता है ।

गाथा—आमसुय विपक्कसु मासा सु मांस पेसी सु ।
सायंतिय मुववाओ, भणियो णिगोय जीवाणं ॥ ३ ॥

अर्थ—जैन दिगम्बर आमना के शास्त्र में कहा है कि कच्चे मांस में, पके मांस में, पकते मांस में और भी अनेक प्रकार के मांस की प्रत्येक अवस्था में अप्रमाण निगोदिये जीवों की उत्पत्ती होती ही रहती है ।

है किन्तु फिर छुड़ाना बहुत मुशकिल हो जाता है. इन वस्तुओं के सेवन करने से जो किंचित काल की मस्ती उत्पन्न होती है वह शरीर के मांस को उबाल कर उसके सत्व का परिमाण है। नशेबाज के शरीर का सत्व इस प्रकार थोड़े दिनों में नष्ट भृष्ट हो बलहीन तेजहीन रूपहीन खीजने स्वभाव वाले बन जाते हैं. वक्त पर जो यह वस्तु न मिले तो रो तडफ २ कर अकाल मृत्यु भी पाजाते हैं, तथा अफीम आदि कितनेक जहरीले पदार्थ निष्पन्न करते अनेक त्रस जीवों की घात भी होती है, इसलिये यह भी सेवन करने योग्य नहीं हैं। १२ 'गडे'—अधिक शीत व उष्णता के वक्त आकाश के पानी जमने के योनी स्थान में गर्भ के समान पानी का जमाव होता है, वह साढ़े छै महीने में परिपक्क हो पानी वर्षता है उसे आरोग्य पानी कहते हैं और मध्य में प्रतिकूल वायु आदि के प्रयोग से अपक्व गर्भ पतन होता है तब कंकर पत्थर सिला के समान गारें पडती हैं वे रोगिष्ट और असंख्य जीवों का पिण्ड होने से अभक्ष होता है। १३ 'मिट्टी'—गेरू गोपीचंदन खडिया हिरमची मैनसिल पांचों रंग की मिट्टी निमक आदि कच्ची मिट्टी के खाने से पत्थरी, पाण्डुरोग, उदर वृद्धी, मन्दाग्नि बन्ध कोष्टादि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तथा असंख्य जीवों का पिण्ड होने से खाने योग्य नहीं हैं। १४ "रात्रि भोजन"—सूर्य अस्त हुये बाद सूर्योदय हो वहां तक किसी भी वस्तु का खान पान करना बिलकुल अनुचित हैं कितनेक केवल अन्न नहीं खाते हैं किन्तु पक्वानादि खा लेते हैं, यह भी अनुचित है क्योंकि—" अन्धा भोजन रात्रि का " कहा है, अनेक रोगोत्पत्ती और त्रस जीव का भक्ष भी हो जाता है। मकडी, गिलेहरी, सर्प की गरल आदि रात्रि भोजन में खाकर कई मरगये जिसके अनेक दाखले उपलब्ध हैं। १५ 'पंपोट फल"—अनार जायफल अञ्जीर तीजारे के दोडे इत्यादि बहु बीज फल जो केवल बीज मय होते हैं, जितने बीज उतनेही जीव

उनमें जानना। १६ 'अनन्त काय' * — (१) सूरणकन्द, (२) वज्रकन्द, (३) हरी हलदी, (४) अद्रक, (५) कचूरा, (६) सतवारी, (७) विराली, (८) कुवारी, (९) थोहर, (१०) गुल बेल (११) लसुन, (१२) वंश करेले, (१३) गाजर, (१४) साजी वृक्ष, (१५) पद्मकंदी, (१६) गिरकरणी, [नये पत्ते की बल्ली] (१७) खीरकंद, (१८) थेगकंद, (१९) हरी मोथ, (२०) लोण वृक्ष की छाल, (२१) खिलूडा कंद, (२२) अमृत [अमर] बेल, (२३) मूला, (२४) भूफोड़ा (२५) विरूडा [धान्य के अंकुर] (२६) ढक वथवा, (२७) सुकवाल [कांदे-प्याज] (२८) पाल का साख, (२९) गुठली न बंधी ऐसी कच्ची इमली, (३०) आलू (३१) पिण्डालु और (३२) जिसके तोड़ने से दूध निकले तथा जिसकी सन्धी टूटे बाद उग्ण लगे. मश सन्धी गांठ प्रत्यक्ष दीखती हो किसी भी गुठली वाले फल में गुठली बन्धी नहीं हो और मूंग चने मोंठ आदि भिजोने से जो अंकुरे निकल आवे यह सब अनन्त काय अनन्तान्त जीवों का पिण्ड होने से खाने योग्य नहीं हैं। × १७ 'अथाणा'—केरी निम्बु मिरच आदि का आचार डाला हुआ शीघ्र पकता (गलता) नहीं है. बहुत दिनों बाद फूलन तथा त्रस जीवों की उत्पत्ती हो जाती है सड़ जाता है. ऐसा अथना भी खाने योग्य नहीं हैं। १८ 'घोल बडे'—कच्चे दही को पानी में घोल

---

* श्लोक—लसुनं गजनं चैव, पलांडु पिण्ड मूलक।
मत्स्यो मांस सुरा चैव, मूल कस्तु तो अधिकं ॥ १ ॥
वरं भुक्तं पुत्र मांसं, न च मूल तु भक्षणं।
भक्षणं आयन्ति नर्कं, वर्जनं स्वर्ग गच्छुतो ॥ २ ॥

अर्थ—लसुन, कांदे (प्याज) मूले मांस और मदिरा इनका कदापि भक्षण नहीं करना कदाचित दुष्कालादि प्रसंग में खाने को कुछ नहीं मिले तो अन्यक पुत्र का भक्षन करले किन्तु कंद का भक्षण नहीं करना क्योंकि कंदादि भक्षी नरक में जाता है और त्यागने वाला स्वर्ग में जाता है ऐसा पद्म पुराण में कहा है।

× मनुस्मृती के ५वें अध्याय के ५वें भाग में कहा है कि "अभक्ष्याणि द्विजातीनाम मेध्यप्रभवाणि च" अर्थात् जो शाक कदापि विष्टा मूत्रादि के संसर्ग कर उत्पन्न हुवे पदार्थ हैं वे अभक्ष्य हैं अर्थात् खाने योग्य नहीं हैं।

उसमें बड़े डालते हैं वे कुछ काल बाद खदबदा जाते हैं । १९ बेंगन की आकृती भी खराब होती है और बीज बहुत होते हैं । २० 'अन जान फल'—जिसका नाम और गुन मालुम न हो ऐसे फल के भक्षन से रोगोत्पत्ती और अकाल मृत्य भी हो जाती है । २१ 'तुच्छ फल'—जिसमें खाना थोडा और डालना बहुत जैसे ईख सीताफल बेर जामन और २२ 'रस चलित' जो वस्तु बिगड कर खट्टी मिट्टी और मीठी से खट्टी होगई हो दुर्गुन्धी बनी हो ऐसी वस्तु से रोगोत्पत्ती तथा असंख्यात जीवों की घात होने का सम्भव है । इति ॥

सांतवें व्रत के २० अतिचार ।

भोजन सम्बन्धी ५ अतिचार हैं—१ सचित्त आहारे—काम चले वहां तक श्रावक को सजीव वस्तु कच्चा पानी कच्ची हरी आदि के प्रत्याख्यान करना चाहिये. सचित्त वस्तु भोगवने के प्रत्याख्यान वाले के भोजन में कोई वस्तु आगई और उसका पूरा निर्णय न हो कि यह सचित्त है या अचित्त. तहां तक उसे भोगवना नहीं. जो भोगवले तो अतिचार लगे. कदाचित् सर्वथा सचित्त का प्रत्याख्यान नहीं कर सके तो सचित्त का परिमाण कर अधिक भोगवने के प्रत्याख्यान करने। प्रमाण का विस्मरण होजाय तो जहां तक पूरा स्मरण नहीं हो वहां तक सचित वस्तु नहीं खाना. जो खा लेवे तो अतिचार लगे । २ 'सचित्त प्रति बद्ध आहारे'—अम्बा खरबूजे आदि ऊपर से निर्जीव हैं और अन्दर बीज तथा गुठली सजीव है. तथा वृक्ष से तुर्त का तोडा गोंद तुर्त की बटी चटनी तुर्त का धोवन पानी इस प्रकार की वस्तु को सचित्त प्रति बन्धित कही जाती हैं अम्बादि फल को गुठली को अलग कर तथा चटनी आदि पर पूरा शस्त्र परिणमे पहिले सचित्त का प्रत्याख्यानी उन्हें भोगवे तो अतिचार लगे। ३ 'अपक्क भक्षन'—आम केले आदि पकाने को घासादि में दबाये किन्तु पूरे पके नहीं, हरी तरकारी पूरी पकी (सीजी) नहीं, चने के बूट, गेहूं की उम्बी ज्वार

के उरडे, बाजरे के पूंख, मक्काई के भुट्टे इत्यादि घास की अग्नि में भूंजे उनमें कई दाने सचित्त भी रह जाते हैं, उनको अचित्त की बुद्धी से खावे तो अतिचार लगे । ४ 'दुपक्क भक्षन'—जो वस्तु बहुत पक कर बिगड गई सडगई दुर्गन्धी बनगई त्रस जीव उत्पन्न होगये, ऐसी वस्तु को खावे तो अतिचार लगे । और ५ 'तुच्छ भक्षन'—ईख (सांठे) * सीताफल बोर सेंककी फली आदि जिसमें खाना थोडा और डालना बहुत ऐसी वस्तु को खावे तो अतिचार लगे ।

कर्म (व्योपार) सम्बन्धी १५ अतिचार—१ 'अंगार कर्म'—कोयले बना कर बेचने का तथा लुहार सुनार कुम्हार हलवाई भड़भूंजा धोबी कसेरा धातुमार मील गिरनीयों वगैरा का जो व्योपार अग्नि के आरम्भ से होवे वह । २ 'वन कर्म'—बाग बगीचे बाडी आदि में फल फूल भाजी आदि उत्पन्न कर बेचें, कुंजडे का व्योपार करे, बन में से घास लकडी कंद मूल आदि लाकर बेचे, वृक्षादि का छेदन कर लकडीयों का व्योपार करे, सुतार का चसोड का वेपार करे वह । ३ 'शाकट कर्म'—गाडे गाडी रथ छकडे बग्गी तांगे म्याने पालकी नाव जहाज इत्यादि बनाकर बेचें तथा इनके उपकरण चक तुम्बलादि बेचें । ४ 'भाडी कर्म'—ऊंट घोडे गधे बैल गाडी जहाज आदि अन्य को भाडे से देवे । ५ 'फोडी कर्म'—जमीन खोदने का मट्टी पत्थर कंकर मुरड सिला रत्न के कोयले आदि बेचे, कूप बावडी कुंड तालाब नहर आदि बनाकर बेचें, चक्की घटा ऊखली कुंडी खरल आदि पत्थर के बनाकर बेचें, हल बखर आदि कर पृथ्वी सुधारे, चने मूंग मठ चवले आदि की दाल बनाकर बेचें, सड़क पुल तलावादि बनाने का ठेका लेवे, इत्यादि सब फोडी कर्म जानना । ६ 'दन्त वणिज'—हाथी के दांत *

---

* ईख के छोते सीताफल के बीज रास्ते में डालने से चींटीयों और मक्खीयों का घमशान हो जाता है इसलिये बचाव करना ।

* बहुत गहरा गड्ढा खोद ऊपर पतले बांस बिछा कर कागज की हथनी खडी करते हैं जिसके भोग के लिये जंगली हाथी वहां गड्ढे में पड़ मृत्यु पाता है इसको छुडावें

की हड्डियों का उल्लू व्याघ्र के नाखून का, हिरण व्याघ्रादि के चमडे का जूते पगरखी आदि का चमरी गाय की पूंछ ● चमरका, शंख सीप कोडे कोडी और कस्तूरी आदि का बेपार इस दन्त वणिज में जानना। ७ 'लखि वणिज' ×—लाख चपड़ी गूंद मणसिल धावडी के फूल कसुंवा हड़ताल गुली महुवे साजी आदि क्षार सावुन इत्यादि का बेपार लख वणिज में ग्रहण किया है। * ८ 'रस वणिज'—दूध दही घृत तेल गुड़ शक्कर शरवत मुरब्बा काकब सहत वगैरः प्रवाही (पतले) पदार्थों का बेपार ‡ को रस वणिज कहते हैं। ९ विष वणिज'—जहरीली प्राण घातक वस्तु जैसे कि—अफीम वच्छनाग सामल धतूरा इत्यादि जहरीली औषधियों तथा तलवार खड्ग धनुष्यवान भाला बरछी बन्दूक तमंचा तोप सुई चक्र छुरी कटारी आदि शस्त्र इत्यादि ‡ का बेपार वह विष वणिज। १० 'केस

के चूड़े आदि बनाते हैं। सुना है कि फ्राँस देश में प्रतिवर्ष ७० हजार हाथी मारे जाते हैं जिस पाप के हिस्सेदार हाथी दांत की वस्तु बेंचने वाले खरीदने वाले और वापरने वाले होते हैं। जैनी जैसी दयालु जाति में हाथी दांत के चूड़े पहनने का नीच रिवाज है इसका नाश करना चाहिये ?

● जिन्दी चमरी गौ की पूंछ दगा से काट लाते हैं जिसके चमर बनाते हैं अफसोस है कि धर्म स्थान में भी उनका उपयोग किया जाता है ऐसे दुष्ट रिवाज का नाश करना चाहिये।

× चमड़े की इस वक्त मंहगाई होने का कारण कहते हैं कि मिलों के कलों में भी चमड़ा बहुत लगता है, साहूकारी बहियों के पूठे चमड़े के बनाते हैं और भी चमड़े के पाकीट कमरपट्टे गद्दीयों वगैरहः बहुत वस्तुऐं होती हैं जिन्दे जानवर से भी चमड़े की कीमत अधिक मिलने से अनार्य लोगों सहोंओ पशुओं को घात करते हैं जिस पाप का हिस्सा चमड़े की वस्तु वापरने वाले को लगता है तथा अपवित्र भी होता है इस लिये चमड़े की वस्तु ग्रहण नहीं करना।

* वृक्षों को टोंच कर रस निकाल लाख चपड़ी बनाते हैं जिसमें त्रस जीव कीड़े आदि भी बहुत उत्पन्न होते हैं।

‡ परवाही (पतले) वस्तु में वक्त पर पचेन्द्रिय जीव भी पड़ कर मत्यु प्राप्त होते हैं तथा मिठाई से चींटी कीड़े आदि जीवों की उत्पत्ती भी अधिक होती है वेपारों नीचे पिछला कर तथा वस्तु वापरते मर जाते हैं।

‡ शस्त्रों से जितने जीवों की हिंसा होती है उसका पाप बनाने बेंचने वाले को लगता ही रहता है।

 ... वस्तु जैसे कि—कम्बल
...ज्ञात आदि उन के मौजे डोरी आदि चमरी गाय के
किन्तु जिस से ... को बेचना वह भी केस वणिज में ग्रहण किया
के हिंसादि पाप को अनर्थादण्ड कहते ... तेल निकालने की घानी,
१ "अपध्याना चरित"—खोटा विचार कर, ... तथा गिरनी संचे ... साहित्य

स्वजन मित्र स्थान खान पान वस्त्र भूषन आदि पदार्थों को ... उस के आनन्द में तल्लीन बन हा हा करना और स्वजनों के धन वियोग में तथा ज्वरादि रोग के उद्भव से दुःख में तल्लीन हो हाय कर सिर कूटना यह आर्तध्यान और हिंसा के मृषा के चोरी के भोगोपभोग के संरक्षण के कृतव्य में आनन्द मानना. दुश्मनों की घात या नुकशान का चितवन करना यह रौद्र ध्यान. यह दोनों प्रकार के ध्यान (विचार) श्रावक को करना उचित नहीं है कदाचित उक्त प्रकार के विचार का उद्भव हो तो विचारना कि रे चेतन! देवताओ की ऋद्धी सुख और नर्क के दुःख अनन्त वक्त भुक्त आया तो यह सुख दुःख तो उन के अनन्तवें भाग में भी नहीं हैं तथा पापारम्भ के काम में आनन्द मानने से चिक्कने कर्म का बंध होता है उसे भुक्तती वक्त बड़ा ही दुःख प्राप्त होता है तू नाहक कर्म का बन्ध क्यों करता है इत्यादि विचार से सम भाव धारन करना एक मुहूर्त से अधिक खोटे विचार को रहने नहीं देना।

२ "प्रमादाचरित्त"—प्रमाद आचरन करे प्रमाद ५ प्रकार के कहे हैं:—

गाथा—मद विसय कसाय। निद्दा विगहा पंचम भणिया॥
ए ए पंच पमाया। जीवा पडंती संसारे॥१॥

अर्थ—१ मद-अभिमान २ विषय-पांच इन्द्रियों की २३ विषयों में लुब्धता, ३ कषाय-क्रोधादि का उद्भव, ४ निंदा-निंदा करना या निद्रा लेना और ५ विकथा-स्त्री आदि की निरर्थक विपर्यासोत्पादक कथा करना इन पांचों प्रकार के आचरन करने वाले महा पुरुष भी अनन्त संसार परिभ्रमण करते हैं इस लिये श्रावकों को चाहिये कि इन पांचों को कम करने का सदैव उद्यमी बना रहे।

की हड्डीयों का उल्लू व्याघ्र के नाखून का, हिरण व्या-
जूते पगरखी आदि का चमरी गाय की पंछ
कोडी और कस्तूरी ... सन्नी चेव। मिच्छा णाण तहेवय ॥
७ 'लखि ... ग दोषो माइझंसो। धम्मंमिश्र अणाइरो ॥१॥
जो गाणं दुप्पणीहाणं। पमाओ अट्ठहा भवे।
संसारुत्तार कामेणं। सवहा याज्जे थव्वओ ॥२॥

अर्थ—१ अज्ञानता में रमण करना २ बात २ में वहम धारन करना ३ पापोत्पादक कहानियों नोविल कादम्बरी कोकशास्त्रादि पुस्तकों का पठन करना ४ धन कुटुम्बादि पर अत्यन्त लुब्ध बनना. ५ दुश्मन पर तथा मालिन वस्तु पर द्वेष भाव धारन करना ६ धर्मात्मा का आदर सत्कार नहीं करना तथा धर्म करनी आदर पूर्वक नहीं करनी और ८ खोटा विचार खोटा उच्चार खोटे आचार से त्रियोगों को मलीन करना. यह आठों ही प्रमाद संसार समुद्र से पार होने के अभिलाषी को सदैव त्यागना चाहिये क्यों कि इन से किसी भी प्रकार का लाभ नहीं है। और कर्मबन्ध तो सहज हो जाता है।

कितनेक लोग तास गंजफे शतरंज चौपटादि के खेल में या इधर उधर गपोड़े मारने में खराब, पुस्तकों पढने में ऐसे मशगूल हो जाते हैं कि जिन को टैम का और भूख प्यास शीत तापादि का भी ख्याल नहीं जिससे अनेक प्रकार की बीमारियों से पीडित होते हैं तरह २ के झगडे खडे होते हैं, सज्जनों से भी दुश्मनी कर लेते हैं। जो हार जाता है वह अत्यन्त शर्मिंदा और दुर्ध्यानी वन जाता है यों खेलते २ उसे जुआ का इश्क लग जाता है फिर जुवारी और सट्टेबाज बन कर धन की इज्जत की धूल धानी कर गिरफ्तार वनता है या अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है, ऐसे कुकर्मों में जाती हुई वक्त का जो कभी व्याख्यान श्रवण धर्म पुस्तक पठन सत्पुरुषों के गुनानुवाद सदुपदेशादि अच्छे कार्य में व्यय करे तो धर्मात्मा सत्पुरुष व न जाता है, अनेकों को प्यारा बन, मान महात्म प्राप्त कर सुखी होता है

वणिज'—मनुष्य पशु पक्षी के बालों की बनी हुई ‡ वस्तु जैसे कि—कम्बल धावल दुशाला बनात आदि ऊन के मौजे डोरी आदि चमरी गाय के बाल तथा मनुष्य पशु पक्षी को बेचना वह भी केस वणिज में ग्रहण किया है। ११ 'यन्त्र पीलन कर्म'—तिलादि पील कर तेल निकालने की घानी, कपासादि पीलने की चरखी, ईखादि पीलने के कोलू तथा गिरनी संचे मील अञ्जन घट्टा चक्की तथा इनके लाट चक्र पटे खीले आदि साहित्य बेचे सो § यन्त्र पीलन कर्म जानना। १२ 'निर्लंछन कर्म'—बैल घोडे आदि पशुओं को खसीकर (अन्डे फोडे) ¶ कान नाक शृंग पूंछ का छेदन करे, मनुष्यों को नाजर ‖ बनावे सो निर्लंछन कर्म। १३ 'दवग्गी दावणि कर्म'—बाग बगीचा खेत बाडी जंगल में वृक्ष धान घास आदि उत्पन्न करने कचरा कूडा निवारन करने और भीलादि अनार्य लोगों धर्म निमित भी जो अंगारे लगाते हैं ** वह दवग्ग दावन कर्म कहते हैं. १४ 'सरद्रह तलाव परिशोषन कर्म'—तलाव द्रह [कुण्ड] कुंवा ववी नदी नाला इत्यादि का पानी उलीचकर तथा तालावादि की पाल फोडकर खेत बगीचे को पानी पिलाने के लिये तथा साफ करने के लिये पानी निकाले †† वह 'सर द्रह तालाव परिशोपन कर्म'। और १५ 'असइ जन पोषन कर्म'—असती का

‡ जो टोपी आदि पर पक्षीयों की पांखों लगाते हैं वे जिन्दे पक्षीयों की पांखें उखाड़ लेते हैं बेचारे पक्षी तड़फ २ कर मर जाता है।

§ कपास में कीड़े बहुत होते हैं वे भी चरखे गिरनी की लाट में पिचला कर मर जाते हैं। तथा मिलों तो महारंभ का स्थान है बक्त पर मनुष्य जैसे भी मारे जाते हैं।

¶ बेचारे बेवश अनाथ पशु के गुप्त अंग का भंग करते कितनेक तो अकाल मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं और कितने अति कठोर दुःख को भुक्ते हैं। यह बड़ा ही घोर निर्दयता का काम है।

‖ रजवाड़ों में कितनेक स्थान दासी पुत्र का बचपन में ही अंग भंगकर नामर्द बनाते हैं उनको राणीयों के रक्षणार्थ रक्खे जाते उन्हें नाजर कहते हैं।

** जंगल में दव अग्नि लगाने से एकेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्यन्त बहुत जीवों भस्मीभूत बन जाते हैं।

†† जलाशय में रहे तमाम मच्छादि जीवों पानी के अभाव से तड़फ २ अकाल मृत्यु पा जाते हैं।

पोषन करे अर्थात्- लडकियों को मोल लेकर या दासियों को खान पान वस्त्र भूषनें से पोषन कर उनके पास वेश्या के जैसे कर्म करा कर प्राप्त होते द्रव्य को ग्रहन करे वह, तथा- चूहे मारने को बिल्ली, बिल्ली मारने को कुत्ते आदि का पोषन करे, शिकारी बिल्ली कुत्ते शिखरे आदि का पोषन कर बेचे, तोता मैना सालुंकी कावर कबूतर मुर्गे आदि का पोषन कर बेंचे * इत्यादि असइ जन पोषन कर्म कहे जाते हैं।

☞ उक्त पन्द्रह ही कर्मादान [कर्म बन्धन] के कार्य व व्योपार में त्रस स्थावर जीवों की घात अधिक होने से अनर्थ कारक अतिनिन्दनीय होने से श्रावक को बिलकुल ही आचरनीय नहीं हैं, इस प्रकार २० ही अतिचारों रहित सातवां व्रत का पालन करते हैं उनके मेरू पर्वत जितना तो पाप रुक जाता है और सिर्फ राई जितना ही पाप रह जायगा, शारीरिक आरोग्यता मानासिक शान्ति सुख से अपना जीवन व्यतीत कर भविष्य में स्वर्ग के और क्रमसे मोक्ष के अनन्त सुख के भोक्ता बनते हैं।

८ "आठवां अनर्थदण्ड बेरमाण व्रत"

साधु के समान सर्वथा दण्ड (पाप) से निर्वृतना तो गृहस्थ से होना मुश्किल है इस लिये दण्ड दो प्रकार के कहे हैं. यथा—१ शरीर कुटुम्बादि आश्रितों का पालन पोषन करने षटकाय जीवों का आरंभ किया जाता है इसे अर्थादण्ड कहते हैं। अनर्थादण्ड की अपेक्षा अर्थादण्ड में पाप कम होता है क्यों कि यह किये विना संसार का गाड़ा चलाना मुश्किल है इस लिये श्रावक को भी करना पडता है, तथापि उस में अनुरक्त नहीं बनते हैं किन्तु जो जो कार्य आरंभ विना नहीं होता है उसे करते हुए भी अनुकम्पा और विवेक पूर्वक यथोचित संकुचित करते रहते हैं और अवसर प्राप्त हुए सर्वथा त्यागने की अभिलापा रखते हैं

* असतीयों का व्योपार बड़ा ही निर्लज कर्म और बकपर गर्भपातादि महा दोषका स्थान है। इस प्रकार १५ ही कर्मादान का कार्य बज्र कर्म बन्ध और दोनों लोकमें घोर दुःख का देने वाला होता है।

संसार में डूबे जिसका पाप उस उपदेशक को लगता है. और हाथ में कुछ नहीं आता है. ऐसे अनर्थदण्ड से अपनी आत्मा को दण्डित करना श्रावक को उचित्त नहीं है. इसलिये दो करन और तीन योग से प्रथम व्रत प्रमाने इस व्रत का भी आचरन करे।

आठवें व्रत के ५ अतिचार।

१ 'कंद्रपे'—कामोत्पादक कथा करे स्त्रियों के सम्मुख पुरुष के और पुरुषों के सम्मुख स्त्रियों के हाव भाव विलास खान पान शृंगार भोगोपभोग गमनागमन हंसी मस्करी गुप्त अंगोपंग का वर्णन इत्यादि की कथा करने से कहने वाले और सुनने वाले सब को इन्द्रियों का विकारोद्भव होवे अनेक प्रकार की कुकल्पना और कुकर्म में संलग्न बने इत्यादि अनर्थ निष्पन्न होवे. इस लिये अतिचार लगे।

२ 'कुकुत्य'—कुचेष्टा करे, भृकुटी चढा, आंख टमका, होट बजा, नाशिका बन्द कर उवासी लेना मुख के मल के हस्तपादांगुली बजा नचा कर दीन और विभत्स शब्दोच्चार कर विकारोद्भव होवे ऐसी अंग की चेष्टा करे. तथा होली के दिनों में नग्न पुतला वैठा नग्न रूप धारन कर विभत्स नृत्य गानादि से काम विकार की वृद्धी होवे ऐसे कृत्य करे. सो अतिचार।

३ 'मुखारी'—वैरी के समान नुकशान करने वाले वचन बोले, असम्बन्ध वचन, वचन की चपलता, वाचालता चचे ममे की गाली, रे तू आदि तुच्छ वचन, खराव ख्यालादि जोडना तथा गाना, गालीयां गाना काम राग तथा द्वेप को जाग्रत करने वाले वचन इत्यादि खराव वचनोच्चार को मुखारी वचन जानना। इससे निन्दा झगडे मारामारी आदि अनेक दुःख उत्पन्न होते हैं. इस प्रकार से अज्ञानीयों की नगावरी श्रावक करे तो अतिचार लगे।

४ 'संयुक्ताधिकरण'—शस्त्र का सम्बन्ध मिलावे, ऊखली हो तो मूसल और मूसल हो तो ऊखल नया बनवावे, चक्की का एक पाट हो तो दूसरा

बनवावे चक्कू छुरी तलवारादि का हथा मूठ लगवावे, बोठी धार होगई हो तो तीक्षण करावे, कुल्हाड़ी भाले बरछी हल्ल बखारादि के दण्डा तथा भाल लगवावे इस प्रकार से अपूर्ण उपकरण को पूर्ण करने से वह आरम्भ की वृद्धी करने वाले बन जाते हैं, दूसरा कोई मांगे तो उसको भी देने पडते हैं. जिससे अतिचार लगता है, जो अपूर्ण हो तो सहज ही पाप का बचाव होता है, ऐसा जान अपूर्ण शस्त्र को पूर्ण नहीं करना और अधिक शस्त्रों का संग्रह भी नहीं करना. जो घर में हो उनको इस प्रकार गुप्त रखना कि अन्य के हाथ में नहीं जा सके। और कितनेक मान के मरोडे सकल पंच बन बैठते हैं लग्न मोसर आदि आरम्भ के काम में अगुवा बनकर गुड़ शक्कर गालने का शाकादि बनाने की आज्ञा देते हैं तथा पापारम्भ के कार्य में उतेजना देते हैं, स्वयं करते हैं अन्य के पास कराते हैं. दीपावली, दशहरा, होली आदि के आरम्भ के काम सबके पहिले प्रारम्भ करते हैं उनको देख दूसरे भी करने लगते हैं इत्यादि पापारम्भ के पाप के अधिकारी वे बन अनर्थ आत्मा को दण्डित करते हैं ऐसा श्रावक को करना उचित नहीं है ।

५ 'उपभोग परिभोग अतिरक्त'—भोगोपभोग में अति आशक्त बने, नाटक चेटक ख्याल तमाशे स्त्री पुरुषादि के रूप का निरीक्षण करने में, राग रागनियों वादिन्त्रादि के शब्द सुनने में अतर पुष्पादि सुगन्ध में मनोज्ञ रसवती के उपभोग में स्त्री आदि के सम्बन्ध में अति आशक्त बने, हा! हा! क्या मजा आता है। इत्यादि शब्दोच्चार करे. इस प्रकार भोगोपभोग में मशगूल बनने से रेशम की गांठ के समान अति चिकने कठिन दुर्भेद कर्मों का बन्ध होता है. इस लिये श्रावक अप्राप्त भोगों की इच्छा नहीं करते हैं और प्राप्त भोगों में लुब्ध नहीं बनते हैं. लाला रणजीतसिंह ने वृहदा लोयणा में कहा है ।

दोहा—समझा शंके पाप से, अन समझा हर्षन्त ।
वे लुक्खे वे चिकने, इस विध कर्म बधुन्त ॥

ऐसा जान श्रावकों का कृतव्य है कि फुरसत की वक्त का व्यय खराब काम में नहीं करना धर्म लाभ लेना। कितनेक अज्ञ मनुष्यों साफ रास्ता छोडकर उत्रट में कच्ची मट्टी पानी हरी घास द्रोव दीमक चींटी के नगरे धान्यादि खुंदते हुए चलते हैं, विना काम चलते २ वृक्ष की डाली पत्ते फूल घंस के तृण वगैरा तोड़ डालते हैं, हाथ में छडी हुई तो वृक्ष गौ कुत्ते आदि मारते हैं, अच्छी जगह छोड मिट्टी के ढगपर अनाज के ढगपर तथा थैलों पर हरी घासादि पर बैठ जाते हैं, दुग्ध दही घृत तेल पानी छाछादि के वर्तन बिना ढके रख देते हैं, खांडन पीसन लीपन रांधन धोना सीना वगैरा काम वर्तन वस्तु जमीन को विना देखे ही करते हैं, इत्यादि सब यह परमादाचरित कर्म जानना, इनमें लाभ तो कुछ भी नहीं है और हिंसादि पापों का आचरन हो वज्र कर्म बन्ध जाते हैं कि जो फिर रोते २ भी छुटकारा मुशकिल से होता है, ऐसा जान श्रावकों को प्रमादाचरण करना उचित्त नहीं है।

३ 'हिंस वयणे'–हिंसक वचन बोले, जैसे कि—

गाथा—सुकडेत्ति सुपक्केत्ति। सुछिन्न सुहडे मडे।
सुठिएं सुलट्ठेत्ति। सावज्जं वज्जए मुणी॥

अर्थ–'सुकडे'–मकान वस्त्र भूषन पक्वानादि को देख कहे कि–अच्छे बनाये. 'सुपके'–वृक्षादि के फल तथा माल मसाले वगैरादि युक्त भोजन बहुत अच्छा पककर खाने योग्य बना है. 'सुछिंने'–फल साक भाजी आदि का छेदन बहुत बारीक अच्छा किया है, वृक्षादि का छेदन कर बहुत अच्छा जमाया, काष्ट पत्थरादि में कोरणी बहुत अच्छी की. 'सुहड्डे'–कृपन का धन को चोरादि से हरण हुआ या जलगया या दिवाला निकल गया यह बहुत अच्छा हुआ. 'सुमडे'–दुष्ट पापी कसाई अन्याई पाखंडी तथा सांप बिच्छू खटमल मच्छरादि मर गये यह बहुत अच्छा हुआ. 'सुट्ठिए'– घर दुकान पक्वान दही तथा पुष्पादि हार तुर्रे को देख कर कहे कि इनको बहुत अच्छे जमाये. 'सुलट्ठे'–मनोरम्य स्त्री पुरुष का जोडा देखकर कहे कि यह

पुष्ट युवान हैं इनका लग्न जल्दी करो. यह सब बचन हिंसा की प्रशंसा रूप हिंसा की वृद्धी करने वाले होने से बोले नहीं और भी स्नान करो पुष्प फल धान्यादि बहुत अच्छे और सस्ते हैं, खरीदो खावो, बैठे २ क्या करते हो कुछ धन्दा रुजगार करो, बर्षाद के दिन आये हैं, घर सुधरावो खेत को सुधारो धानादि बोवो, निदनी कटनी करो वगैरा. शीत बहुत पड़ता है तपनी करो, गरमी बहुत पडती है, पानी का छिड़काव करो. घरादि तोडो नया बनावो, लीपो छावो रंगो, आहार बनावो, पानी लावो × इत्यादि जितने हिंसा के काम हैं उनको करने को अन्य को उतेजन देवे. उसमें जितनी हिंसा होवे उस पाप का भागीदार उतेजना देने वाले को होना होता है । और दूसरा अपना मतलब साधने यह काम करे जिस में उतेजना दाता के हाथ में कुछ नहीं आता है और अनर्थ आत्मा दण्डाती है- कर्म बन्धते हैं ।

४ 'पाप कर्मोपदेश'—पाप कर्म का उपदेश दे धर्मशाला देवालय के लिये मकान बन्धाने में कूपादि जलाशय खुदाने बन्धाने में तीर्थ स्नानादि करने में होम यज्ञ धूप दीप रोशनाई करने में धर्म स्थान में पंखा लगाने में नगारा झांज घड़ियालादि वादिन्त्र बजाने में पत्र पुष्प फल धान देव को चढ़ाने में खटमल मच्छर सांप बिच्छू आदि क्षुद्र जानवरों को मारने में, भैंसे बकरे मुरगे आदि का रुद्राणी भैरवादि को भोग देने में, ऋतुदान देने में लग्नादि कराने में इत्यादि हिंसक कामों में धर्म होता है ऐसा उपदेश करे, तथा लड़ाई झगड़े के विषय क्रीड़ा के चौरासी आसनादि का कोकशास्त्र के, जोतिष के, यन्त्र मन्त्र तन्त्र के हिंसक औषधोपचार के शास्त्रों का उपदेश करे. जिसको श्रवन कर जो २ पाप कर्म आचरन करे उस हिंसा का तथा मिथ्या धर्म की वृद्धी होने से अनेकों की आत्मा

× गाथा में मुनि शब्द होने से यह कथन साधु के लिये कहा है किन्तु जिस प्रकार गृहस्थ अपने पुत्र को हित शिक्षा देता है उसे सुन गुमास्ता भी निती मार्ग स्वीकार करता है तैसे श्रावकों को भी भगवन्त की हित शिक्षा मानना उचित है हित शिक्षा सब मान्य होती है ।

समझ सार संसार में, समझा टाले दोष।
समझ २ कर जीवडे, गये अनन्ते मोक्ष ॥

अर्थात्—ज्ञानी--समझकार मनुष्यों पाप कर्म का आचरन करते ही नहीं हैं और कदाचित् करना ही पड़ा तो वे मनमें शंक—डूर लाते हैं जिससे उनकी रूक्षवृती रहने से जैसे रेत की मुट्ठी भींत पर डालने से वह लगकर तत्काल अलग हो जाती है जैसे उनके कर्म तप तथा पश्चातापादि से छूट जाते हैं। समझ प्राप्त किये का यही सार संसार में है क्योंकि इस प्रकार वे पाप को कभी करते २ किसी वक्त सब पाप रहित बन मोक्ष प्राप्त कर लेंगे और जो अज्ञानी अन समझ मनुष्य हैं वे पाप कर्माचरन करते हर्षाय-मान हो लुब्ध बनने से जैसे कर्दम का गीला लोंदा भींत से चिपट जाता है वह फिर भींत की मट्टी लेकर भी मुशाकिल से निकलता है तैसे उनके कर्म भी नर्क तिर्यंचादि गति के महा दुःख दे रो २ कर भी छूटने मुशा-किल होते हैं। लुब्धता से भोगो चाहे रूक्षता से भोगो दोनों ही भावों में वस्तु का परिणाम तो एकही सा होता है, फिर लुब्ध वन चिकने कर्मों का बन्धन करना किंचित सुख के लिये महा दुख उपार्जन करना सुज्ञों को उचित नहीं है।

☞ यह आठवां व्रत में अनर्था दण्ड का संक्षिप्त स्वरूप कहा इस कथन पर से जितने अनर्थ दण्ड के काम हैं उन सब को सुज्ञ श्रावक जानकर अपनी आत्मा को बचावेगा वह अनेक नुकशानों से चिकने कर्मों के बन्ध से बचेगा, सुखोपजीवी हो अखण्डित आयु भोग भविष्य में स्वर्ग मोक्ष के सुख का भोक्ता बनेगा।

☛ ५ अनुव्रत और ३ गुन व्रत जावज्जीव पर्यंत धारन कर सक्ते हैं।

चार शिक्षा व्रत।

१ जिस प्रकार किसी को रत्नादि उत्तम पदार्थ सुपुर्द कर इसे अच्छी तरह संभालना गुमाना नहीं इत्यादि हित शिक्षा देते हैं तैसे ही उक्त आठ

व्रताचरण रूप रत्न की प्राप्ति होने वाले जीवों निम्नोक्त चारों वृतों में प्रवर्ती करने से उनको भूत काल में लगे दोषों का ज्ञान और भविष्य में निर्दोष रहने की सावधानी रूप शिक्षन प्राप्त होने से यह शिक्षा व्रत कहे हैं. २ जैसे शिक्षक पाठक की उपासना कर विद्यापात्र बन संसार में सुखोपजीवी होता है, तैसे चारों शिक्षा व्रतों में प्रवृतक उक्त आठों व्रतों का व्बारम्बार स्मरणादि कर सुख से निर्वाहक हो सकते हैं, इसलिये भी शिक्षा व्रत कहे हैं, और जिस २ प्रकार राजादि गुनहगार को शिक्षा (दण्ड) देकर भूत काल के दोषों की निवृती और भविष्य में सावधान बनाते हैं तैसे ही उक्त आठों वृतों में प्रमादादि बश सेवन किये दोषों की निवृती के लिये निम्नोक्त शिक्षा वृतों में का किसी भी शिक्षावृत का दण्ड दे। भूत काल के दोषों की निवृती और भविष्य में दोषों से बचने को सावधान करते हैं इसलिये भी शिक्षावृत कहे हैं, वे शिक्षा वृत ४ हैं।

९ नवां सामायिक व्रत।

जीवाजीव सब पदार्थों पर तथा शत्रु मित्र पर [१] जिस वक्त शमभाव प्रवर्ती रूप लाभ की प्राप्ति होवे वह निश्चय सामायिक, और व्यवहार सामायिक करना हो तो संसार के सब कार्यों से निवृत्ति भाव धारन कर पुष्प फल धानादि जो सचित्त वस्तु हैं उस से अलग एकान्त स्थान में पौषधशाला उपाश्रय स्थानकादि में संसारिक स्वरूप का दर्शक पगडी अंगरखी दागीना * वगैरा दूर कर पहिरने ओढ़ने के वस्त्र में कोई दाना जन्तु आदि जीव की प्रतिलेखन-प्रेक्षन कर निर्जीव फासुक भूमिका को गुच्छक-पूंजनी से प्रमार्जन कर एक पट आसन विछा कर अष्ट पुड वस्त्र की मुख प्रमाने मुँह-

१ सम=शम+आय=प्रापक (लाभ) +इक=एक समय मात्र यह सामायिक का शब्दार्थ है।

* उपासग दशा सूत्र के छठे अध्याय में कहा है कि-कुंड कोलिया श्रावक ने सामायिक की तब नामांकित मुद्रिका भी दूर रक्खी थीं इससे जाना जाता है कि-सामायिक में अंग पर किसी प्रकार का दागीना नहीं रखना।

पत्ती की प्रतिलेखन कर मुंह पर बान्ध फिर साधु साध्वी हो तो उन को नहीं तो पूर्व तथा उत्तर दिशा की तरफ 'णमो अरिहंताणं'—अरिहन्त को नमस्कार 'णमो सिद्धाणं'—सिद्ध को नमस्कार, 'णमो आयरियाणं'—आचार्य को नमस्कार, 'णमो उवज्झायाणं'—उपाध्याय को नमस्कार, 'णमो लोए सव्व साहूणं'—लोक में रहे सब साधुओं को नमस्कार यों कह कर 'तिक्खुत्तो'—तीन वक्त उठ बैठ कर, 'आयाहीणं'—हाथ जोड, 'पयाहीणं' प्रदक्षिणावत हाथों को घुमाकर, 'वंदामी'- गुणग्राम करे, 'णमंसामी'—नमस्कार करे, 'सक्कारेमी'—सत्कार दे, 'समाणेमी'—सन्मान दे, 'कल्लाणं'—कल्याण कारक जाने, 'मंगलं'— मंगलिक माने, 'देवयं'—धर्म * देव माने, 'चेइयं'- ज्ञानवन्त माने, 'पज्जुवासामी'—पर्युपासना (सेवा) करे, 'मत्थएणवंदामी'—मस्तक कर वंदे। इस पाठ से नमस्कार कर फिर खडा रह कर कहे कि—'आवस्सइ—इच्छा कारण संदह सह भगवन्! इरिया वहियं पडिकम्मामी' अहो भगवन्! आवश्यकता है कि जो आपकी आज्ञा हो तो सामायिक करने के कार्य में जो पाप लगा उसे प्रतिक्रमु ? तब गुरू कहे- 'इच्छं'- तुम्हारी इच्छा. तब शिष्य बोले- 'इच्छामी पडिक्कमिओ'-आज्ञा है यो प्रतिक्रमता हूं, 'इरिया वहियाए'—कार्य में प्रवृती करते, 'विराहणाए'—विराधना हुई हो, 'गमनागमने'—गमनागमन करते, 'पाण कमणे'—प्राणी को खूंदे हो, 'बीकमणे'—बीज-दाने खूंदे हो, 'हरी कमणे'—वनस्पति खूंदी हो, 'ओसा'—ओस का पानी, 'उतिंग'—चींटियों के घर, 'पणग'—फूलन, 'दग' पानी, 'मट्टी'—मिट्टी, 'मकडा'—मकडी के जाले, 'संताणा'—सन्ताप दिया, 'संकमणे'—संक्रमें जो में जीवा विराहिया, जो मैंने जीवों को दुख दिया 'एगेंदिया'—इकेन्द्रिय, 'बेंदिया'—द्विन्द्रिय, 'तेंदिया'—त्रिइन्द्रिय, 'चउरिं-

---

* भगवती सूत्र में ५ प्रकार के देव कहे हैं—१ भव्य द्रव्य देव जो जीव मर कर देवता होंगे उन्हें कहते हैं। २ नरदेव चक्रवर्ती महाराजा को कहते हैं। ३ देवाधि देव तीर्थंकर भगवान को कहते हैं। ४ धर्मदेव साधु को कहते हैं और ५ भावदेव चारों जाति के देव को कहते हैं।

दिया'-चतुरिन्द्रिय, 'पचेंदिया'-पचेन्द्रिय, 'अभिहया'-सम्मुख आते, 'वत्तीया' मसले हों, 'लेसियां'-रगडे हों, 'संघाइया'-एकट्ठे किये हों, 'संघट्टिया'-स्पर्श किया हो, 'परिया विया'-परिताप दिया हो, 'किलामिया'-पीडित किये हों, 'उद्दविया'-उद्वेग (चिन्ता) उत्पन्न किया हो, 'ठाणा उट्ठाणा'-स्थान का पलटा किया हो, 'संकामिया'-संकट में डाले हों, जीवीयाओ विवरोया'-जीवित रहित किये हों, 'तस्स मिच्छामी दुक्कडं'-वह खराब मेरा दुष्कृत्य है॥१॥ 'तस्सुत्तरी करणेणं'-उस पाप को उतारने, 'पायछित्त करणेणं'-प्रायश्चित करने, 'विसोही करणेणं'-विशुद्धी करने, 'विसल्ली करणेणं'-शल्य रहित होने, 'पावाणं कम्माणं निग्घाएणट्ठाए'-पाप की घातार्थ, 'ठामीडा उसगा'-एक स्थान रह कायुत्सर्ग करता हूं. 'अन्नत्थ'-इतना विशेष, 'उससिएणं'-उश्वास, 'निससिएणं'-निःश्वास, 'खासिएणं'-खांसी, 'छिएणं'-छींक, 'जंभाइएणं'-उबासी, 'उडुएणं'-अंग स्फुरण, 'वाय निसग्गेणं'-वायुत्सर्ग, 'भमलिए पित मुच्छाए'-चक्कर पित प्रकोप मूर्च्छा, 'सुहुमेही अंग संचालेहिं'-सूक्ष्म अंग चले, 'सुहुमेहिं खेळ संचालेहिं'-सूक्ष्म कफ चलित होवे, 'सुहु मेहीं दिट्ठी संचालेहिं'-सूक्ष्म दृष्टी चलित हो, 'एवमएहिं आगारेहिं' इत्यादि* मे रे आगार, 'अभग्गो अविराहियो'-इस उपरान्त कायुत्सर्ग का भंग और विराधना नहीं करूंगा. 'हुज्ज में काउसग्गो'-होवो मे रे कायुत्सर्ग, 'जाव-अरिहन्ताणं भगवन्ताणं'-जहां तक अरिहन्त भगवन्त का नाम कहूं, नमोक्कारेणं न पारेमी'-नवकार कह कर पारूं नहीं. 'ताव कायं'-वहां तक काया को, 'ठाणेणं'-एक स्थान रक्खूंगा, 'मोणेणं'-मौनस्थ रहूंगा, 'झाणेणं'-ध्यानस्थ रहुगा, अप्पाणं वोसी रामी'-काया को वोस राता हूं॥२॥ (इस प्रकार दोनों पाठ कह कर दोनों हाथ बराबर सीधे रख पैर के अंगुष्ट पर दृष्टी लगा स्थिर हो कायुत्सर्ग कर मन में "अवरसइ इच्छा

* इत्यादि शब्द से जीव रक्षा के निमित, अग्नि राजादि का उपद्रव होते और पूर्ण रक्षणार्थ मध्य में कायुत्सर्ग पार ले तो दोष नहीं लगे ऐसा जानना चाहिये।

कारण' का अर्थ विचार कर "मिच्छामी दुक्कडं" नहीं कहता हुआ "णमो अरिहंताणं" कह कर कायुत्सर्ग की समाप्ति कर दोनों हाथ जोड कर कहे कि) "लोगस्स उज्जोयगरे"—लोक में उद्योत के कर्ता "धम्मतित्थ-यरे"—धर्म के तीर्थ के कर्ता, * 'जिण'—जिनेन्द्र, अरिहंत'—कर्म नाशक 'कित्तइस्सं'—कीर्तिवंत, 'चौविसंपि केवली'—चतुर्वीं। (२४) केवल ज्ञानी, 'उसभ'—ऋषभ, 'मजीयं'—अजित, 'च'—और 'वंदे'—वंदन करूं, 'संभव' संभव, 'माभिणंदणं'—अभिनन्दन, 'च'—और 'सुमइं'—सुमति, 'च'—और 'पहुमप्पहं'—पद्म प्रभु, 'सुपासं'—सुपार्श्व, 'जिणं'—जिन, 'च'-और 'चंद प्पहं'—चन्द्रप्रभु, 'वंदे'—वंदन करूं, 'सुविहं'—सु विध, 'च'—और पुप्फवंत× पुष्पदंत 'सीयल'—शीतल 'सिज्जंस'—श्रेयांस, 'वास पुज्जं'—वासपूज्य, 'च' और 'विमल'—विमल, 'मणंत'—अनंत 'च'—और 'जिणं'—जिन 'धम्मं-धर्म, 'संति'—शांति 'च'—और 'वंदामि'—वंदन करूं मैं 'कुंथुं'—कुंथु 'अरं' अरह 'च'—और 'मल्लि'—मल्ली 'वंदे'—वंदन करूं 'मुणिसुव्वयं'—मुनिसुव्रत 'नमी'—नेमी 'जिणं'—जिन 'च'—और 'वंदामि'—वंदन करता हूं, 'रिट्ठनेमि रिष्टनेमी, 'पासं'—पार्श्व 'तह' तैसे 'वृद्धमाणं'—वृद्धमान, 'च'--और 'एवं' इन की, 'मय'-मैं, 'अभिथुया'-स्तुति की, 'विहुय रयमला'-दूर किये कर्म रूप रज मैल, 'पहीण जर मरणा'-निवृते जन्म मृत्यु से, 'चौवीसंपि-जिणवरा' चौबीसों ही जिनवर, 'तित्थयरा'-तीर्थंकरों, 'में'-मेरे पर, 'पसि-यंतु'-प्रसाद करो, 'कित्तीय'-वचन से कीर्ति, 'वंदे'-काया से वंदन 'महिया' मन से पूजा, 'जेय लोगस्स'-जो इस लोक में 'उत्तमा सिद्धा'-उत्तम सिद्ध 'आरुग्ग'-रोग रहित, 'बोही लाभं'-सम्यक्त्व का लाभ, 'समाहिवर' समाधि-प्रधान, 'मुत्तमंदितु'-उत्तम दीजिये, 'चंदेसु निम्मलयरा'- चन्द्रमा समान निर्मल कर्ता, 'आइच्चेसु अहियं पयासयरा' आदित्य (सूर्य) के समान

* साधु साध्वी श्रावक और श्राविका इन चारों तीर्थ के स्थापक अरिहन्त होने से तीर्थंकर भी कहे जाते हैं।

× नवें तीर्थंकर के दो नाम हैं-१ सुविधीनाथ जी और पुष्पदन्त जी।

अतीहि प्रकाश के कर्ता, 'सागर वर गंभीरा'-समुद्र के समान प्रधान गंभीर, 'सिद्धासिद्धो ममदिसंतु'-अहो सिद्धा ! सिद्धि स्थान मुझे बताओ ॥३॥ इस प्रकार विधी कर जो साधु तथा बड़े श्रावक वहां उपस्थित हों तो उन के पास * नहीं तो स्वयं पूर्व तथा उत्तराभिमुख खड़ा रह हाथ जोड़ 'करेमि'-करता हूं, 'भंते'-अहो भगवान ! 'सामाइयं'-सामायिक 'सावज्ज जोगं'-सावद्य-दुःख प्रद योग के 'पच्चक्खामी'-प्रत्याख्यान करता हूं 'जाव नियम' जघन्य एक मुहूर्त (४८ मिनिट) पर्यन्त विशेष बने जितने काल पर्यन्त 'पज्जुवासामी'-प्रभुपासना (भगवद्भक्ति) करूंगा, 'दुविहं'-दो करण, 'तिविहेणं'-तीन योग से सावद्य कम न करेमि'-करूंगा नहीं; 'नकारवेमि'- मैं कराऊंगा नहीं (यह दो करण) 'मनसा'-मन से, 'वायसा'-वचन से, 'कायसा'-काया से, ‡ 'तस्स भंते'-अहो भगवन ! इस पाप से' 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रमता पीछा हटता हूं ‡ 'निंदामि'-आत्मा की साक्षी से पूर्व कृत सावद्याचरण की निन्दा करता हूं 'गरिहामि'-गुरू आदि ज्येष्ठ पुरुषों की साक्षी से ग्रहणा (निन्दा) करता हूं 'अप्पाणं वोसिरामि'- आत्मा से सावद्य कर्म को त्यागता हूं इस प्रकार वृत

* गुरु आदि जेष्ट जनों के मुख से वृताचरण करने से कभी कोई विशेष कार्य भी उत्पन्न हो जाय तो वह उनकी शंका कर वृत भंग नहीं कर सके इस लिये बने वहां तक साक्षी पूर्वक ही वृत ग्रहण करना ठीक है ।

‡ दो करण और तीन योग के छे भांगे होते हैं यथा १ करूं नहीं मन से, २ करूं नहीं वचन से ३ करूं नहीं काया से । ४ करावूं नहीं मन से, ५ करावूं नहीं वचन से और ६ करावूं नहीं काया से । इसमें अनमोदना अच्छा जानने के ३ भांगे खुले रह जाते हैं क्योंकि गृहस्थ को मनोनिग्रह होना बहुत ही मुशकिल है । जैसे सामायिक ग्रहण किये बाद कोई कह दे कि तुम्हारे पुत्रादि का लाभ हुआ है । इत्यादी श्रवन कर मन में खुशी आ जाती है वचन से हुंकारादि शब्द निकल जाता है और काया प्रफुल्लित भी बन जाती है इस लिये तीनों अनुमोदन के योग ग्रहण नहीं किये हैं ।

‡ जिस प्रकार अनजान में किसी को ठोकर लग जाय और वह पीछा फिर कर उसकी क्षमा याचले तो उसे क्षमा मिल सकती है तैसे ही प्रतिक्रमण करते अनजान में बने पापों को याद कर पश्चात्ताप करने से वे पाप भी स्थिल पड़ सकते हैं ।

ग्रहण कर बांया घुटना ऊंचा रख बैठ दोनों हाथ जोड़ प्रथम सिद्ध को और फिर अरिहंन्त को यों दो नमुत्थुणं देवे।

नववें व्रत के ५ अतिचार।

१ 'मन दुप्पडिहाणे'--मन में दुप्रतिध्यान (खराब विचार) करे, जंगली अश्व के समान मन सन्मार्ग को छोड़ कर उन्मार्ग में बहुत जाता है इस लिये ज्ञान रूप लगाम से रोक कर सन्मार्ग में प्रवृत्ति कराना यह सामायिक धारी श्रावक का कर्तव्य है। मन के १० दोष कहे हैं, यथा--(१) 'अविवेक'--सामायिक धर्म के फल के अज्ञ जीवों देखा देखी मुँह बान्ध सामायिक कर बैठ जाते हैं और मन में कुकल्पना करते हैं कि इस प्रकार बैठने से क्या फल मिलता है? वगैरा। २ 'यशोवांञ्छा'--मैं सामायिक करूंगा तो मुझे लोगों धर्मात्मा जान कर धन्य २ करेंगे! मेरी यश महिमा होगी। ३ 'धनेच्छा'--फलाना सामायिक करता है उस के व्यौपारादि में लाभ बहुत होता है, तैसे "करूंगा सामाइक तो होगी कमाई" इत्यादि विचार करे। ४ 'गर्व'-मेरे समान निर्दोष और त्रिकाल सामायिक करने वाला कौन है? मैं बड़ा धर्मात्मा हूं ५ 'भय'-मेरे बाप दादा सामायिक बहुत करते थे आगे बैठते थे जो मैं सामायिक नहीं करूंगा तो लोगों मेरी निन्दा करेंगे. तथा सर्पादि भयंकर वस्तु को देख व्याकुल बने. ६ 'नियाना'—सामायिक कर नियाना करे कि मुझे धन स्त्री पुत्रादि ऋद्धी सुख की प्राप्ति होवे. ७ 'संशय'—मैं मेरे संसार के कार्य में हरकत कर सामायिक करता हूं इसका कुछ फल होगा कि नहीं. इत्यादि शंका लावे. ८ 'कषाय'—झगडा कर गुस्से में आ सामायिक कर बैठ जावे. छोटे २ सब काम करते हैं मैं बडा हूं सो सामायिक करूं, सामायिक करूंगा तो मुझे कुछ काम नहीं करना पड़ेगा. सामायिक करूंगा तो कुछ लाभ होगा. इत्यादि विचार से सामायिक करे, ९ 'अविनय' देव गुरु धर्म शास्त्र सम्बन्धी कुविचार करे, पुस्तक माला्दि धर्मोपकरण

नीचे रखे आप ऊपर बैठे, साधु साध्वी आवे तो सत्कार सन्मान नहीं देवे. सकल्प विकल्प परिणाम करे इत्यादि और १० 'अपमान'—दूसरे का अपमान करने के इरादे से अकड कर पृष्ट देकर वगैरा विपरीत तरह बैठे तथा—जिस प्रकार हम्माल वजन से लदा हुआ विचार करे कि—कब घर आवे और हलका होउं तैसेही सामायिक कर घडी हिलाता रहे मिन्टों गिन्ता रहे, सामायिक के अपूर्ण काल में पारने को गडबड करे और छुट्टा होते ही भग जावे. इस प्रकार सामायिक का अपमान करे. इन १० प्रकार के विचार से सामायिक में दोष लगता है और हाथ में कुछ नहीं आता है, ऐसा जान मन को शुद्ध रख धर्म ध्यान करना चाहिये।

२ "वय दुप्पडि हाणे"—वचन दुप्रति ध्यान खराब वचन बोले. विशेष बोलने से सहज में सावद्य वचन बोलने में आता है इसलिये बिना प्रयोजन तो बोलना नहीं और प्रयोजन पर भी १० प्रकार के बचन नहीं बोलना—१ 'अलिक' झूठ वचन, २ 'सहसत्कार'=द्रव्य क्षेत्र काल भाव की योग्यता का विचार बिना किये ही जैसा मन में आवे तैसे वचन बोलें. ३ 'असाधरण'=शुद्ध श्रद्धा का बिनाशक, अन्य मतावलम्बियों के आडंबर की महिमा तथा मिथ्या उपदेश कर दूसरे की श्रद्धा में गडबड करे, ४ 'निरापेक्षा'—शास्त्र की अपेक्षा रहित, परस्पर अनमिलते, विरोध उत्पादक और अन्य को दुःख ओचाट के करने वाले, ५ 'सक्षेप'—नवकार सामायिक प्रतिक्रमण थोकडे सूत्र पाठ वगैरा अपूर्ण उचार करे शीघ्रता से पूर्ण करे. ६ 'क्लेश'—मार्मिक वचन बोलकर पुराने क्लेश की उदीरणा करे तथा नवा क्लेश उत्पन्न करे, ७ 'विकथा'=देशदेशान्तर की, राज राजेश्वरों की, स्त्री के शृंगारादि की, खान पान भोजन बनने का तथा स्वाद की, इत्यादि की कथा करे. ८ 'हास्य'--अंग मूर्ख भोले को हिंसाना करे तथा परस्पर हंसी मस्करी ठट्ठा करे, ९ 'अशुद्ध'--सामायिकादि सूत्र पाठ अर्थ के ह्रस्व दीर्घ मात्रा कम ज्यादा बोले, अयोग्य निर्लज्ज वचन चकार मकारादि

गाली उच्चारे और १० 'मुम्मण'—सुनने वाले की पूर्ण समझ में नहीं आवे ऐसे मणमणाट करते कुछ मुंह में कुछ बाहिर इस प्रकार के वचन यह १० ही प्रकार के बचन बोलने से सामायिक में दोष लगता है आत्मा मलीन होती है अपयश होता है, और लाभ कुछ नहीं होता है. ऐसा जान उक्त प्रकार के बचन सामायिक में बोलना नहीं चाहिये।

१ 'काया दुप्पडि हाणे'—काया-शरीर की अधिक चपलता करने से अनर्थ उत्पन्न हो जाता है इसलिये सामायिक में विना कारन हलन चलन नहीं करना. काया के १२ दोष वर्जन करना चाहिये. १ 'अयोगासन'—पैर पर पैर चढ़ा कर बैठने से अभिमान मालुम पड़ता है तथा वृद्धों का अविनय होता है। तथा श्वेत रंग के सिवाय अन्य रंग का तथा अस्त्र लगे हुये आसन के पटान्तर में उसके रंग जैसे जीव आजाने से घात होजाती है. इसलिये दोनों ही अयोग्य हैं. २ 'चलासन'—सिला पाट प्रमुख डग २ करते हों उस पर बैठने से नीचे रहे जन्तु पिचल जाते हैं. तथा जिस स्थान बैठने से वारम्बार उठना पड़े तथा स्वभाव की चपलता से बारंबार उठ बैठ करने से भी जीव घात होजाती है. ३ 'चलदृष्टी'—दृष्टी की चपलता से बारम्बार इधर उधर अवलोकन करे. स्त्री पुरुषादि के गुप्त अङ्गोपाङ्ग का निरक्षण करे जिससे मन में अशुद्ध भावों का उद्भव होवे लोगों में निन्दा होवे, और कर्मों का भी बन्ध होवे. ४ 'सावद्य क्रिया'—हिसाब नामा लेखा कपड़ा सीना कशीदा निकालना अचित पानी से लीपना वस्त्रों को रमाना. इत्यादि कामों में किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती है ऐसा जान यह काम सामायिक में करे. यद्यपि इनमें हिंसा न भी हो तो भी यह संसार के काम हैं इसलिये सदोष ही हैं. सामायिक में तो धर्म कार्य के सिवाय कोई भी काम नहीं किया जाता है. ५ 'अवलम्बन'—भींत स्थम्भ वस्त्रादि की गांठ इत्यादि के आसरे से बैठने से उसके आश्रित जीवों की घात तथा निद्रादि दोषोत्पत्ती होती है. कदाचित् वृद्धत्व

रोग तपादि की अशक्ति के कारन से बिना अवलम्बन बैठा न रहा जा तो देखे पूंजे बिना टेका ले नहीं और अधिक हलन चलन करे नहीं. ६ 'अंकुचन प्रसारन'–बैठे २ ही बारम्बार शरीर का संकोचन प्रसारन करने से भी जीव हिंसा हो जाती है. ७ 'आलस'–अंगमरोडे बगासे खावे शरीर को इधर उधर पटके. ८ 'मोडन'--हस्त पादादि की अंगुलियों के तथा अन्य शरीर के करड के मरोडे. ९ 'मल'--शरीर का मैल उतारे, प्रमार्जन किये बिना खुजली कुचरे. १० 'विमासन'- कर स्थली पर सिर रख धरणी सम्मुख दृष्टी रख गृह कार्य लेन देन हिसाब व्यौपार रांदन पीसन स्वजन दुश्मन इत्यादि सम्बन्धी विचार (चिन्ता) करे. ११ 'निद्रा'--सामायिक में निद्रा ले और १२ 'वैय्यावच्च'--तपस्यादि कारन बिना हस्त पाद पृष्टादि मालस मर्दन करावे. यों १२ दोष काया के सामायिक में लगाना नहीं चाहिये।

☞ १० मन के १० बचन के और १२ काया के यों ३२ दोष रहित सामायिक व्रत का पालन करने से शुद्ध सामायिक होती है. यह ३ अतिचार हुए।

४ 'सामाइ यस्स संसयस्स करणयाए'--निद्रा मूर्च्छा चित प्रमादि कारण से सामायिक काल का संशय उत्पन्न होवे कि- पूर्ण काल हुआ कि नहीं ? जहां तक उस संशय की निवृती न होवे पूर्ण काल होने का निश्चय न होवे और सामायिक पारले।

५ "सामाइ यस्स अणवट्ठि यस्स अकरणयाए'—सामायिक का पूर्णकाल हुए पहिले सामायिक पारे तथा सामायिक करने का अवसर प्राप्त होने पर भी सामायिक करे नहीं, निन्द्रा विकथा आदि प्रपंच में लगकर व्यर्थ काल गमा देवे तो अतिचार लगे, उक्त पांचों अतिचार रहित शुद्ध सामयिक समाचरने से नवें व्रत का आराधन होता है।

प्रश्न—ऐसी शुद्ध सामायिक इस वक्त होना मुशकिल है इसलिये सदोष सामायिक करने से तो नहीं करना ही अच्छा है।

समाधान--यह तो कहना ऐसा हुआ कि--ए
नहीं तो भूखों ही मरना. पहिरना तो रत्न कम्बल
ऐसे विचार वाला तो बिना मौत मर जायगा.
की अभिलाषा मनमें रखता हुआ जहां तक पक्वान...
तक रोटी से काम चलावे और पक्वान प्राप्ती के कार्य में संलग्न बना रहे तो वक्त पर पक्वान भी प्राप्त कर सकता है, तैसे ही काल संघयन दोष से प्रमादादि कारन से कदाचित शुद्ध सामायिक नहीं बन सके तो जैसी बने वैसा करे दोषों का पश्चाताप और शुद्ध करने का उद्यमी बना रहेगा तो किसी वक्त शुद्ध सामायिक भी कर सकेगा. जितनी सक्कर डालोगे उतना मीठा जरूर ही होगा. याद रखिये ! एक दम किसी भी काम का सुधार होना मुशकिल है. जो दुष्कर से विद्या प्राप्त होती देख पढ़ना छोड बैठे खराब अक्षर देख लिखना छोड बैठे तो वह मूर्ख ही रह जाता है उसके सुधरने की आशा तो आकाश कुसुमवत है किन्तु एक २ अक्षर पढ़ते २ पण्डित और लिखते २ अच्छा लेखक बन जाता है। तैसे ही सदैव सामायिक करते २ और शुद्ध कर ने का उद्यम करते २ शुद्ध सामायिक भी बन जायगी. अहो भाई ! जरा निश्चय सामायिक के शब्दार्थ की ओर दृष्टी पात करो कि एक समय मात्र भी समभाव हो जाय वह निश्चय सामायिक तो क्या एक मुहुर्त काल में एक समय भी शुद्ध परिणाम नहीं आवेंगे ? ऐसा विश्वास रख सदैव सामायिक अवश्य ही करनी चाहिये.

प्रश्न-दिन भर पापाचरन कर एक दो सामायिक की तो उस से क्या होता है ?

समाधान--सैंकडों हाथ डोरी लोटे के साथ कूप में छोड दी तथा पतंग के साथ आकाश में छोडदी शीर्फ दो अंगुल डोर हाथ में रही तब विचार करे कि-दो अंगुल रहे तो क्या और गई तो क्या ? जो डोर छोड

रोग तलोटा और पतंग दोनों गुमा बैठे और दो अंगुल डोरी मजबूत तो ड रख खेंचना प्रारंभ करे तो डोर लोटा और पतंग को प्राप्त करले ऐसे ही सारादिन तो संसार कार्य में गुमा दिया किन्तु दो घड़ी सामयिक बृत को मजबूत पकड रखेगा. याने सामयिक बृत का सदैव समाचरन किया करेगा तो वह वक्त पर रत्नत्रय रूप माल को खींच कर प्राप्त कर सकेगा. ऐसा जान सदैव सामायिक अवश्य करना ।

सामायिक बृत संयम धर्म की बानगी (सेम्पल) है, संयम जावजीव का होने से संयमी शास्त्र विधि प्रमाने खान पान शयनादि कर सकते हैं किन्तु गृहस्थ की सामायिक बृत स्वल्प काल का होन से खान पान शयनादि नहीं कर सकते हैं,

"सामायिक का फल"

गाथा—दिवस २ लक्खं । देइ सुवण्णस्स खंडियं ऐगो ॥ इयगे पुण्ण
सामाइयं । न पहुप्पइो तस्स कोइ ॥ सम्बोध सित्तरी

अर्थ—बीस मण की एक खण्डी होती हैं ऐसी लाख २ खण्डि सुवर्ण की लाख वर्ष पर्यन्त × सदैव कोई दान में देवे उसका एक सामायिक बृत के फल तुल्य नहीं होता है. इतने जबर पुण्य से भी सामायिक का अधिक लाभ है !

गाथा—सामाइयं कुण तो । समभावं सावओ घडीय दुगं ॥
आउ सुरस्स बंधइ । इति अमिताइ पलियाइं ॥ १ ॥
बाणवइ कोडीओ । लक्ख गुणसट्ठी सहस्स पणवीसं ॥
नवसए पणवीसाए । सत्तिय अडभाग पलियस्स ॥ २ ॥

अर्थ—जो श्रावक समभाव से दो घड़ी की एक ही सामायिक करेगा वह ९२५९२५९२५$\frac{3}{8}$ (बाणवे क्रोड उनसठ लाख

× दोहा—लाख खण्डी सोन तणी, लाख वर्ष दे दान ।
सामायिक तुल्य नहीं, भाख्यो श्री भगवान ॥ १ ॥

पच्चीस हजार नवसो पच्चीस पल्योपम और एक पल्योपम के आठवें भाग में के ३ भाग,) देवगति का आयुर्बन्ध करे.

पारने में कुसाग्र पर आवे उतना अन्न और अंजली में आवे जेतना पानी ग्रहन कर मांस २ खमन के पारने क्रोडपूर्व वर्ष पर्यन्त करने वाले अज्ञान तपस्वी के तप का फल एक सामायिक के फल के सोलवें भाग की तुल्यना भी नहीं कर सकता है। ऐसा महालाभ का दाता सामायिक वृत है॥ इसलिये जो विशेष नहीं बन आवे तो सदैव प्रातः, मध्यान और सन्ध्या इन त्रिकाल में तो सामायिक जरूर ही करना चाहिये इससे दूसरा फायदा यह भी हो सकता है कि उक्त त्रिकाल में त्रिजृमक देव अत्रादि रक्षणार्थ आकाश में गमन करते हैं कदाचित् पुण्योदय से उनकी शुभदृष्टि हो जाय तो व्यवहारिक महालाभ भी प्राप्त हो सके, कदाचित् त्रिकाल न बने तो सुबे श्याम दोनों वक्त और उतना भी नहीं बने तो प्रातःकाल में एक सामयिक अवश्य ही करना चाहिये, अन्य मतावलम्बी भी कहते हैं कि--" आठ पहर घर की तो दो घड़ी हर की" और "आठ पहर काम की तो दो घड़ी राम की" आठों पहर घर धन्धे में पच मरते दो घड़ी आत्मोद्धारार्थ तो जरूर ही निकालना चाहिये।

यह सामायिकव्रत का सम्यक् प्रकार से आराधन करने से चित्त को समाधी प्राप्त होती है आत्मा की अनन्त शक्ति प्रकाश में आती है. राग द्वेष दुष्कर शत्रु का नाश होता है. ज्ञानादि त्रिरत्न का लाभ होता है, जन्म जरा मृत्यु रूप आतम दुःख का नाश होता है और भविष्य में स्वर्ग के तथा मोक्ष के अनन्त सुख प्राप्त होते हैं.

१० "दशवा दिशावकासीव्रत"।

पूर्वोक्त छठे व्रत में दिशा की और सातवें व्रत में उपभोग परिभोग का जो परिमाण किया है वह जावजीव पर्यन्त का किया है किन्तु उतने कोस जाने का और उतने भोगोपभोग भोगवने का काम सदैव नहीं

पडता है और अव्रत तो उतने की लगती ही रहती है. इसलिये आत्मार्थी सुज्ञ श्रावक अपनी आत्मा को पाप से बचाने सदैव प्रातः काल में घडी के प्रहर के अहोरात्री के तथा पक्षमासादि के अपना बिछोना कोटडी घर ग्राम तथा माइल कोसादि के आगे स्वेच्छा से जाकर, हिंसा, झूठ, चोरी मैथुन और परिग्रह इन पांचों आश्रवों के सेवन करने के सामायिक व्रत के समान ही दो करन तीन योग से त्याग करते हैं. तैसे ही उक्त प्रकार जितना क्षेत्र (जगह) रखी है उसके अन्दर सातवें व्रत में कहे २६ बोल भोगोपभोग की मर्यादा की है उसमें से जितनी आवश्यकता हो उतने उपरान्त भोगोपभोग भोगवने का परिमाण एक करन और तीन योग से करते हैं. इसमें राजा निकालदे, देवता विद्याधर हरण कर ले जाय उन्मादादि रोग से चला जाय तो आगार तथा साधु के दर्शनार्थ जीव को बचाने आदि कोई बडे उपकार के लिये चला जाय तो भी व्रत भंग नहीं होवे.

दशवें व्रत का सदैव आसानी से समाचरन करने के लिये १७ नियम * की योजना की गई है, यथा—१ 'सचित्त—सजीव वस्तु निमक आदि कच्चीमिट्टी, नल कुआ बावडी तालाव पेरिंडे आदि का पानी, चुल्हा चिलम बीडी दीपकादि अग्नि पंखे झूले वादिन्त्रादि से वायु, फल फूल भाजी फली आदि कच्ची हरी, कच्चा धान्य मेवा आदि सजीव वस्तु २ 'द्रव्य' खाने पीने सूंघने के पदार्थों को, ३ 'विगय' दूध दही घृत तैल मिठाई इस विगय में से एक तो जरूर छोडना चाहियें ४ 'पन्नी' पगरखी मोजे आदि पैर में पहिरने के, ५ 'तंबोल' सुपारी लविंग इलायची चूरन × खटाई आदि ६ 'कुसुम' तम्बाखू (नाश) अतर घृत पुष्पादि सूंघने

* इन १७ नियमों में से सचितपन्नीवाहन अबम बडा स्नान इनके सर्वथा त्याग करना उचित है।

× सचित्त नमक डाल कर जो चूरन बनाया हो वह एक वर्षादि बाद अचित्त गिना जाता है।

की वस्तु, ७ 'वत्थ' पहिरने ओढने के वस्त्र, ८ 'सयन' पल्यक गादी सतरंजी आदि बिछोने ९ 'वाहण' घोडे बैल गाडी तांगे रेल जहाज नाव आदि १० 'विलेपन' तेल पीठी केशर चंदन तथा राख मिट्टी हाथ धोने में लगावे इत्यादि के, ११ 'अबंभ' स्त्री आदि से कुशील सेवन के १२ 'दिशा' पूर्वादि छै दिशा में गमनागमन के, १३ 'न्हावन धोवन' छोटी बडी स्नान के तथा वस्त्रादि धोने के १४ 'भत्ते' खाने पीने की सब वस्तु का समुच्चय वजन का परिमाण, १५ 'असत्ती' पचेन्द्रिय की घात हो ऐसे तलवारादि शस्त्र का त्याग सुई चक्कू कैंची लकडी छडी आदि १६ 'मस्सी' दवात कलम कागज वही तथा जवाहरात कपडे किराने व्याज आदि व्योपार और १७ —'कृषी' खेत बावडी बाड़ी आदि इन १७ प्रकार के नियमों में जो वस्तु संख्या और वजन दोनों का परिमाण करने जैसी है उसका दोनों प्रकार का परिमाण करें और जो दोनों में से एक प्रकार के परिमाण करते जैसी है उसका एक प्रकार परिमाण करे अधिक भोगवने के प्रात्याख्यान एक करन तीन योग से करे और प्रातः समय सन्ध्या समय उसका स्मरण करले भूल से अधिक लग गई हो तो मिथ्या दुष्कृत्य करे इन १५ बोलों का सविस्तार वर्णन सातवें व्रत में कर दिया है.

एक अहोरात्रि या अधिक काल पर्यन्त सचित्त वस्तु को भोगवने का खुले मुंह से बोलने का पगरखी पहनने का पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का संघटा करने का व्यापरादि करने का प्रत्याख्यान कर अन्य के लिये बना हो ऐसा सीधा मिलता अहार और अचित्त पानी को भोगव सारे दिन धर्माराधन में लगा कम से कम ११ सामायिक तो अवश्य करना ऐसा जो 'दयापालन' का व्रत भी इस दशवें व्रत में है. और १० प्रकार के प्रत्याख्यान भी इसही व्रत में ग्रहन किये हैं, यथाः—

१ "नमुकारसी के प्रत्याख्यान"।

"सूरे ऊगे नमुकार* सहियं पच्चक्खामी-असणं पाणं ● खाइमं साइमं अन्नत्था भोगेणं सहस्सागारेणं वोसीरे"॥ पहिले नोकारसी के प्रत्याख्यान में दो आगार—१अन्न० भूलकर कोई वस्तु मुंह में डाल दे और २ जैसे गौ का दुग्ध निकालते छींटा उछल मुंह में पडजाय तैसे कोई भी कार्य करते वस्तु मुंह में पड़जाय।

२ "पोरुषी के प्रत्याख्यान"।

सूरे ऊगे पोरसीहियं‡ पच्चक्खामी-असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्था भोगेणं, सहस्सागारेणं पच्छन्न कालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं समाहि वितियागारेणं वो सीरे.॥ दूसरे पोरुषी के प्रत्याख्यान में ६ आगार—१—२ उक्त प्रकार, ३ बद्दल में सूर्य के छिपने से वक्त मालूम नहीं पड़े तो. ४ दिशा की भूल पडजाने से वक्त मालूम नहीं पड़े तो. ५ किसी अधिक उपकारिक कार्य को साधने गुरू आज्ञा दे तो और ६ परवश पडजाय तो.

३ "दो पोरुषी के प्रत्याख्यान" *

सूरे ऊगे पुरिमड्ढ पच्चक्खामी असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्था भोगेणं, सहस्सागारेणं, पच्छन्न कालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं महत्त-रागारेणं सव्व समाही वितियागारेणं, वोसीरे॥ तीसरे दो पोरुषी के प्रत्याख्यान में ७ आगार—६ का अर्थ उक्त प्रकार और ७ मह० अधिक उपकार के काम के लिये आहार करे तो.

४ "एकासना ‡ के प्रत्याख्यान"

एगासणं पच्चक्खामी-असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्था भोगेणं,

---

* दिन के १६ वें हिस्से को तथा नमोकार मंत्र पढ़ कर जो प्रत्याख्यान पारे जावे उसे नमुकारसी कहते हैं।

● पानी सिवाय तीनों आहार के प्रत्याख्यान कराते वक्त "पाणं" शब्द नहीं कहना।

‡ दिन के चौथे भाग को पोरुषी कहते हैं। * मध्यान काल को दो पोरुषी कहते हैं॥

‡ एक स्थान बैठ एक वक्त भोजन करे वह एकासना।

सहस्सागारेणं (सागारी आगारेणं) आउट्टण पसारेणं, गुरु अब्भुठाणेणं, (परिठावणीया गारेणं) महत्तारागारे, सव्व समाही वित्तियागारेणं, वोसिरे चौथे एकासणा के प्रत्याख्यान के ८ आगार-१-२ उक्त प्रकार, ३ गृहस्थ के आगम से उठे तो, ४ हस्त पैर संकुचन प्रसारन करे तो. ५ गुरु जी का आगम होते सत्कार देने खड़ा हो तो ६ अन्य साधु के आहार बढ़ जाय वह परिठाने का आहार भोगवे तो, और ७-८ उक्त प्रकार,

५ "एकल ठाणा के प्रत्याख्यान"[1]

एकलठाणं पच्चक्खामी—असणं, पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्था भोगेणं, सहस्सा गारेणं, (सागारी आगारेणं) गुरू अब्भुठाणेणं, (परिठावणीयागारेणं) सव्व समाही वित्तियागारेणं वोसिरे ॥ पांचवें एकल ठाणे के प्रत्याख्यान के ७ आगार का अर्थ उक्त प्रकार.

६ 'आयंबिल के प्रत्याख्यान'[2]

आयंबिलं पच्चक्खामी असणं पाणं खाइमं साइमं, अन्नत्था भोगेणं, सहस्सागारेणं लेवालेवेणं, (गिहत्थ संसट्ठेणं) उक्खित्त विवेगेणं, (परिठावणिया[3] यागारेणं) महत्तरा गारेणं सव्वसमाहि वित्तिया गारेणं वोसिरे॥ छट्ठे आयंबिल के प्रत्याख्यान में ८ आगार जिसमें से १-२-६-७-८ का अर्थ तो उक्त प्रकार और ३ रूक्ष रोटी चिकनी रोटी पर रखने से घृत का लेप लगे तैसे किसी का लेप लग जाय तो ४ दातार के हाथ विगय से भरे हैं ५ गुड आदि सूखी वस्तु उस पर रख उठाली उस का स्पर्श लगा हो ।

---

1 भोजन पानी पकडी स्थान बैठ खा पी के फिर सब दिन रात कुछ खावे पीवे नहीं सो एकल ठाणा।

2 भुजा हुआ अनाज का धान पानी में भिजा कर पकडी वक्त खावे फिर सब दिन रात कुछ नहीं खावे सो आयंबिल।

3 आ शब्द ( ) ऐसे कोष्ट के अन्दर लगे हैं ये आगार साधु आश्रिय जानना।

७ "अभत्तह (उपवास) के प्रत्याख्यान ।[*]

सूरे ऊगे अभठं पच्चक्खामि-असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्था [illegible]गेणं सहस्सागारेणं (परिठावणिया गारेणं) महत्तरागारेणं, सव्वसमाही वितीया गारेणं वोसीरे ॥ सातवें उपवास के ५ आगार अर्थ उक्त प्रकार ।

८ "दिवस चरम के प्रत्याख्यान"[†]

दिवस चरिमं पच्चक्खामी असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्था भोगेणं [illegible]गारेणं महत्तरागारेणं, सव्व समाहीवितीयागारेणं वोसीरे ॥ इस के ४ आगार का अर्थ उक्त प्रकार ।

९ "गंठी मुट्ठी के प्रत्याख्यान"[‡]

गंठी सहियं पच्चक्खामी-असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्था भोगेणं सहस्सागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाही वितियागारेणं वोसीरे ॥ इसके ४ आगारों का अर्थ उक्त प्रकार ।

१० निविगई के प्रत्याख्यान ।[§]

निविगइयं पच्चक्खामी—असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्था भोगेणं सहस्सागारेणं लेवा लेवेणं गिहत्थ संसट्ठेणं, उक्खित्त विवगाणं, पडुच [illegible]णं, परिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्व समाहिवितीयागारेणं

---

[*] उपवास को अभतट्ठ भी कहते हैं और "चौथभक्त" भी कहते हैं। बेले को छठभक्त [illegible] "[illegible] भक्त" यों दो २ भक्त अधिक बढ़ा कर इच्छित वृत (उपवास) के प्रत्याख्यान [illegible] ही पाठ से कराये जाते हैं।

[†] थोड़ा दिन बाकी रहे प्रत्याख्यान कर ले वह दिवस चरम प्रत्याख्यान।

[‡] रुमाल, [illegible] वस्त्र को तथा चोटी को गांठ लगा पीछी वह खोले नहीं वहां तक [illegible] नहीं वह गंठी प्रत्याख्यान और बांयें हस्त की मुट्ठी बन्द रखे वहां [illegible] खोले वहां [illegible] नहीं। यह मुट्ठी सहाय प्रत्याख्यान भी इस ही पाठ से होते है।

[§] इनमें पांचों विगय के त्याग किये जाते हैं कितनेक रूखी रोटी खाते हैं।

वोसीरे ॥ इस वृत में ९ आगार जिस में ८ का अर्थ उक्त प्रकार और पुडी रोटी आदि के पुट में किसी विगय का लेप लगा हो इस प्रकार इस दशवें वृत में छोटे बडे सब प्रत्याख्यानों का तथा अतिथि सम विभाग वृत विना ११ व्रतों का भी समावेश होता है।

इस वक्त इस व्रत को समाचरने के दो प्रकार देखे जाते हैं—१ गुजरात काठियावाड कच्छादि देश के निवासी श्रावक तो इस व्रत के पाठ के कथनानुसार प्रातःकाल से ही धर्म स्थान में आ कर दिशा की और उपभोगों की मर्यादा कर सब सचित्त वस्तु भोगवने का स्त्री के संघट्टे आदि पूर्वोक्त दया वृत में कहे प्रमाने मर्यादा का पालन करते हैं अन्य के लिये बना हुआ आहार प्राप्त कर भोगवते हैं और २ मालवा मेवाड मारवाड़ दक्षिणादि देश के श्रावक पानी अफीम तम्बाखू का उपवास में सेवन किया होवे तथा दिन थोडा रहे पौषध व्रत करने आया हो वह दशवां वृत अंगीकार करता है।

"दशवें व्रत के ५ अतिचार"

१—२ 'अणवाणप्पओगे—पेसवाण पओगे' मर्यादा की हुई भूमी के बाहिर से किसी वस्तु को अन्य के पास से मंगावे अथवा भेजे ३ 'सद्दाणुवाए'—मर्यादा के बाहिर रहे मनुष्यादि को शब्द प्रयोग कर बुलावे ४ 'रूवाणुवाए'—छींक उबासी खेंकारा कर ऊंचा नीचा होकर अपना रूप मर्यादा बाहिर मनुष्यादि को दिखा कर बुलाने की चेष्टा करे और ५ 'बहिया पुग्गल-पक्खेवा'—कंकर काष्ट तृणादि फेंक कर बुलाने का संकेत करे इन पांच ही प्रकार से अतिचार लगता है क्यों कि दिशा की मर्यादा २ करन और तीन योग से की गई है उक्त पांचों कामों में तीनों योगों की प्रवृत्ति होती है।

उक्त पांच अतिचार तो केवल दिशा की मर्यादा के ही कहे हैं किन्तु इस वृत में उपभोग परिभोग की भी मर्याद की है १७ नियम

१० प्रत्याख्यान भी इस में ही हैं इस लिये इन के भी अतिचार ५ इस प्रकार कहे हैं यथा-१ जितने द्रव्यादि रखे हैं उन से अधिक प्राप्त हुए उस में मिला कर भोगवे जैसे दुग्ध में शक्कर मिला के एक द्रव्य गिने ※ २ मर्यादा किये उपरन्त के द्रव्य के लिये अन्य से कहे यह रहने दो प्रत्याख्यान पूरे हुए बाद मैं खाऊंगा ४ प्रत्याख्यान की हुई वस्तु को स्वीकार करते प्रसंसा करे और ५ मर्यादित वस्तु में अति आशक्त होवे. इन अतिचारों से आत्मा को बचाना चाहिये।

११ "एकादशवां पौषध व्रत"

ज्ञानादि त्रिरत्न का धर्म और स्वात्मा का तथा छः ही काय जीवों के रक्षण कर परात्मा का पौषन करे वह पौषध व्रत, जिस दिन पौषध व्रत करने का हो उसके पहिले दिन "एगं भत्तं चें भोयणं"—एक वक्त उपरान्त भोजन नहीं करे, अहोरात्री अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करे दूसरे दिन प्रातःकाल में पौपधशाला उपाश्रय आदि धर्म स्थान के तथा घर के एकान्त स्थान में जहां गृहकार्य में दृष्टिगत नहो जहां धान कच्चा पानी हरित काय चिंटी आदि के दर या नगर न हो ऐसे प्रकाशिक स्थान में रायसी प्रतिक्रमण कर दिवसोदय होते ओडने बिछौने के वस्त्र की प्रति लेखना करे ७२ हाथ से अधिक वस्त्र नहीं रखे, रजो हरणादि से भूमिका का प्रमार्जन करे जिससे चिंटी आदि जन्तु प्रवेश करने नहीं पावे, इस प्रकार आसन जमाकर मुंह पर मुंहपत्ती बांधकर इरियावही, तसुत्तरी का पाठ कह कर इर्यावही का कायुत्सर्ग कर नमोकार मन्त्र कहता काउसग्ग पर लोगस्स कहे फिर कहे कि प्रति लेखन विधी पूर्वक नहीं किया हो पृथव्यादि छः काय जीव की विराधना की हो तो तस्समिच्छामि दुक्कडं फिर उक्त प्रकार ही काउत्सर्ग लोगस्स कहकर जो साधु हो

※ स्वाद के द्रव्य मिलावे वे अलग २ गिने जाते हैं किन्तु वे स्वाद की वस्तु मिला कर खावे जैसे दाल और चांवल तो एक द्रव्य गिनने में कुछ हरकत नहीं यह यहां का कथन है

तो उनके पास नहीं होतो वयो वृद्ध जो वृती श्रावक हों उनके पास वह भी नहीं होंतो स्वयं पूर्व उत्तराभि मुख पंच प्रमेष्टी को वंदना नमस्कार कर निम्नोक्त प्रकार पैापध वृत को स्वीकार, यथा।

'इग्यारवां पौषध वृत'—असणं पाणं खाइमं साइमं उचाविहंपि आहारं पच्चक्खामी, अबंभपच्चक्खामी, माला मणग विलेवणं पच्चक्खामी, मणी सुवण्ण पच्चक्खामी, सत्थ मुसलादि सावज्ज जोगं पच्चक्खामी, जाव अहोरतं पज्जुवासामी, दुविहं तिविहणं, न करेमी न कारवेमी मणसा वायसा कायसा तस्स भंते पडिक्कमामी निन्दामी, गारिहामी अप्पाणं वोसीरामी।

इग्यारहवें पौषध वृत में अन्न पानी पक्वान मुखवास ऽपि शब्द से सूंघने आदि की वस्तू के, मैथुन सेवन करने के, पुष्प सुवर्णादि की माला आदि भूषण के, हीरे पन्ने मोती रत्नादि सुवर्णादि के नगो के, तैल चन्दनादि विलेपन तिलक के मुशल खड्ग चक्र आदि शस्त्र के और अन्य को दुःख हो ऐसे मन वचन और काया के योग प्रवर्ताने के प्रथम वृत के अनुसार ही दो करन और तीन योग से प्रत्याख्यान कर के गुरू के तथा पूर्व उत्तराभिमुख बायां घुटना नीचे दबा दाहिना घुटना खड़ा रखे दोनों हाथ जोड़ बैठ कर दो बार नमुत्थुणं कहे फिर छूटे गृहस्थ के पास पौपधाला में रहे रजोहरण गुच्छक लघुनीति परठाणे का भाजन आदि वापरने की आज्ञा ग्रहण करे, फिर अहोरात्री व्याख्यान श्रवन पुस्तक पठन ज्ञान परियट्टन नाम स्मरण धर्म कथा धर्म ध्यान में व्यतीत करे जो कदाचित लघुनीति की बाधा हो तो उपाश्रय में रहे मृत्तिकादिक के भाजन में कारण से निवृती पाकर स्थान के बाहिर परिठावे जाते वक्त "आवस्सई" ३ शब्द कहे, हरी अंकूर चींटी आदि के दर दीमक के नगरे रहित प्रासुक (निर्जीव) जगह को देख कर तथा रजोहरण से प्रमार्जन करे "अणुजाणहा जस्सोग" इस शब्द से शक्रेन्द्र जी की आज्ञा को ग्रहण कर बहकर जाय नहीं, एक स्थान एकत्र हो पड़ा रहे नहीं इस

१० प्रत्याख्यान भी इस में ही हैं इस लिये इन के भी अतिचार ५ इस प्रकार के हैं यथा-१ जितने द्रव्यादि रखे हैं उन से अधिक प्राप्त हुए उस में मिला कर भोगवे जैसे दुग्ध में शक्कर मिला के एक द्रव्य जाने ❀ २ मर्यादा किये उपरन्त के द्रव्य के लिये अन्य से कहे यह रहने दो प्रत्याख्यान पूरे हुए बाद में खाऊंगा ४ प्रत्याख्यान की हुई वस्तु को स्वीकार करते प्रसंसा करे और ५ मर्यादित वस्तु में अति आशक्त होवे. इन अतिचारों से आत्मा को बचाना चाहिये ।

११ "एकादशवां पौषध व्रत"

ज्ञानादि त्रिरत्न का धर्म और स्वात्मा का तथा छैः ही काय जीवों के रक्षण कर परात्मा का पौषन करे वह पौषध व्रत, जिस दिन पौषध व्रत करने का हो उसके पहिले दिन "एगं भत्तं चँ भोयणं"—एक वक्त उपरान्त भोजन नहीं करे, अहोरात्री अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करे दूसरे दिन प्रातःकाल में पौषधशाला उपाश्रय आदि धर्म स्थान के तथा घर के एकान्त स्थान में जहां गृहकार्य में दृष्टिगत नहो जहां धान कच्चा पानी हरित काय चिंटी आदि क दर या नगर न हो ऐसे प्रकाशिक स्थान में रायसी प्रतिक्रमण कर दिवसोदय होते ओडने बिछौने के वस्त्र की प्रति लेखना करे ७२ हाथ से अधिक वस्त्र नहीं रखे, रजो हरणादि से भूमिका का प्रमार्जन करे जिससे चिंटी आदि जन्तु प्रवेश करने नहीं पावे, इस प्रकार आसन जमाकर मुंह पर मुंहपत्ती बांधकर इरियावही, तसुत्तरी का पाठ सम्पूर्ण कह कर इर्यावही का कायुत्सर्ग कर नमोकार मन्त्र कहता काउसग्ग पर लोगस्स कहे फिर कहे कि प्रति लेखन विधी पूर्वक नहीं किया हो पृथव्यादि छैः काय जीव की विराधना की हो तो तस्समिच्छामि दुक्कडं फिर उक्त प्रकार ही काउस्सग्ग लोगस्स कहकर जो साधु हो

❀ स्वाद के द्रव्य मिलावे वे अलग २ गिने जाते हैं किन्तु ये स्वाद की वस्तु मिला कर खावे जैसे राब और घोर तो एक द्रव्य गिनने में कुछ हरकत नहीं यह यहां का कथन है

तो उनके पास नहीं होतो वयो वृद्ध जो वृती श्रावक हों उनके पास वह भी नहीं होतो स्वयं पूर्व उत्तराभि मुख पंच प्रमेष्ठी को वंदना नमस्कार कर निम्नोक्त प्रकार पैाषध वृत को स्वीकार, यथा।

'इग्यारवां पैाषध वृत'—असणं पाणं खाइमं साइमं उचाविहंपि आहारं पच्चक्खामी, अबंभपच्चक्खामी, माला मणग विलेवणं पच्चक्खामी, मणी सुवण्ण पच्चक्खामी, सत्थ मुसलादि सावज्ज जोगं पच्चक्खामी, जाव अहोरतं पज्जुवासामी, दुविहं तिविहणं, न करेमी न कारवेमी मणसा वायसा कायसा तस्स भंते पडिक्कमामी निन्दामी, गारिहामी अप्पाणं वोसीरामी।

इग्यारहवें पैाषध वृत में अन्न पानी पक्वान मुखवास ऽपि शब्द से सुंघने आदि की वस्तू के, मैथुन सेवन करने के, पुष्प सुवर्णादि की माला आदि भूषण के, हीरे पन्ने मोती रत्नादि सुवर्णादि के नगो के, तैल चन्दनादि विलेपन तिलक के मुशल खड्ग चक्र आदि शस्त्र के और अन्य को दुःख हो ऐसे मन वचन और काया के योग प्रवर्त्ताने के प्रथम वृत के अनुसार ही दो करन और तीन योग से प्रत्याख्यान कर के गुरू के तथा पूर्व उत्तराभिमुख बायां घुटना नीचे दबा दाहिना घुटना खड़ा रखे दोनों हाथ जोड़ बैठ कर दो वार नमुत्थुणं कहे फिर छूटे ग्रहस्थ के पास पैाषधाला में रहे रजोहरण गुच्छक लघुनीति परठाणे का भाजन आदि वापरने की आज्ञा ग्रहण करे, फिर अहोरात्री व्याख्यान श्रवन पुस्तक पठन ज्ञान परियट्टन नाम स्मरण धर्म कथा धर्म ध्यान में व्यतीत करे जो कदाचित लघुनीति की बाधा हो तो उपाश्रय में रहे मृतिकादिक के भाजन में कारण से निवृती पाकर स्थान के बाहिर परिठावे जाते वक्त "आवश्यई" २ शब्द कहे, हरी अंकूर चींटी आदि के दर दीमक के नगर रहित प्रासुक (निर्जीव) जगह को देख कर तथा रजोहरण से प्रमार्जन करे "अणुजाणहा जसोग" इस शब्द से शकेन्द्र जी की आज्ञा का ग्रहण कर बहकर जाय नहीं, एक स्थान एकत्र हो पड़ा रहे नहीं इस

प्रकार धीरे २ परीठा कर "वोसीरे" ३ शब्द कह स्थान में आते "निश्यही" ३ शब्द कहता प्रवेश कर, भाजन को सुका कर एकान्त यत्ना से रख कर, पूर्वोक्त प्रकार इर्यावही कायुत्सर्ग लोगस्स कह कर कहे कि—परिठाने की क्रिया यथा विधी नहीं की हो, छै काय जीवों की विराधना की हो तो तस्स मिच्छामी दुक्कडं. कदाचित् बड़ी नीती का कारण उत्पन्न हो तो पोषह में धारन किये वस्त्र मुंहपत्ती आदि वैसे ही रखे, जो शरम आती हो तो वस्त्र से शिर मुख ढककर किसी गृहस्थ के घर से अचित्त पानी लोटे आदि में ग्रहण कर एकान्त फासुक भूमिका में निवृ-तहो सब विधी लघु नीति परीठाने की कही वैसी ही करे, पित्त प्रकोप श्लेषमादि परिठने की भी विधी इसही प्रकार जानना। पौषध व्रत में बिना कारन दिन को शयन नहीं करना, दिन के चौथे पहर में अपने वापरने के वस्त्र रजोहरण गुच्छक और रात्री को लघु नीति बड़ी नीति का काम पड़जाय तो उसके लिये भूमिका की प्रती लेखना कर उक्त प्रकार इरयावही प्रतिक्रमे, श्याम को देवसी प्रतिक्रमण करे पहर रात्रि आवे वहां तक धर्म ध्यान करे फिर निन्द्रा लेने की आवश्यकता हो तो भूमी का बिछौना रजोहरण से प्रमार्जन करे ध्यान स्मरण युक्त हस्त पैरों का विशेष संकोच प्रसारन नहीं करता निद्रा से निवृती पाकर पीछे की प्रहर रात्री रहे जाग्रत हो मौनस्थ धर्म ध्यान करे, सूर्योदय पहिले राइसी प्रतिक्रमण करे, दिव-सोदय हुये वस्त्रादि की प्रतिलेखना करे, जो उसमें मृत्युक जन्तु का कले-वर (शरीर) निकले तो उसका प्रायश्चित ले शुद्ध होवे।

पौषध व्रत के १८ दोष,

१—६ पौषधव्रत में क्षौर मंजन (हजामत स्नान) मैथुन सेवन आहार वस्त्र धोना, दागीने पहरना और वस्त्र तथा हस्तादि रंगना नहीं होता है, इसलिये पौषध करने के पहिले दिन- क्षौर मंजन करे, मैथुन सेवन करे, सरस आहार की वस्तु भोगवे, वस्त्र धुलावे, दागीने पहरने और वस्त्र

तथा इत्यादि रंगे यह ६ काम पौषध के पहिले दिन करे तो दोष लगे, और पौषध धरन किये बाद, ७ अव्रती को सत्कार दे बिछौना दे वैय्यावच करे तो दोष, ८ शरीर की विभूषा करे, शिर के बाल दाढ़ी मूछ धोती की पटली जमावे, ९ स्वयं के तथा अन्य के शरीर का मैल उतारे, १० दिन को शयन करे तथा रात्री को दो पहर से अधिक निद्रा लेवे, ११ गुच्छकादि से शरीर का प्रमार्जन किये बिना कुचेर, १२ देश देशान्तर की राज रजवाड़े की, लड़ाई झगड़े की, स्त्री के शृंगार हाव भाव भोग विलास की भोजन बनाने की स्वाद की इत्यादि विकथा करे. १३ चुगली निन्दा ठट्ठा मस्करी करे, १४ व्योपार लेन देन हिसाब की कथा करे गप्पें मारे. १५ स्वयं शरीर की तथा स्त्री आदि के शरीर का सराग दृष्टी से निरीक्षण करे. १६ गोत्र जाति नाते मिलावे. १७ खुले मुह बोलने वालेसे तथा सचित्त वस्तु जिसके पास हो उससे बात करे और १८ रुदन शोक सन्ताप पौषध व्रत के समाचरन करने वाले को इन १८ दोषों का परित्याग करना चाहिये।

पौषध व्रत के ५ अतिचार

१ "अप्पडी लेहिय दुप्पडी लेहिय सेज्जा संथारए"—जिस स्थान में पौषध किया हो उस स्थान को तथा बिछौने ओढ़ने के वस्त्र पगाल पाट आदि को सूक्ष्म दृष्टी से प्रतिलेखन किये बिना पूरे देखे बिना काम में लेवे तथा हलन चलन शयनासन गमन गमन करे तो अतिचार लगे। क्योंकि बिना देखे तथा कुछ देखे कुछ नहीं देखे चंचल दृष्टी से देखे तो पूरा स्थान दृष्टी नहीं आने से त्रस स्थावर जीव की हिंसा होने का संभव है।

२ "अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सज्जा संथारए"—उक्त प्रकार देखते हुए जो किसी जीव का भ्रम हो अथवा जहां दृष्टी का जोर नहीं पहुंचे ऐसे अंधकार वाले स्थान में रजोहरण गुच्छकादि से बिना प्रमार्जन किये

स्थान पाट पराल और विछाने के वस्त्रादि काम में ले विना प्रमार्जन किये लेवे गमनागमन करे तो अतिचार लगे ।

३ "अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चार पास वण भूमिका"—बड़ी नीत (दिशा) लघुनीत (पेशाब) वमन पित्त आदि परिठाने (डालने) की भूमी की सूक्ष्म दृष्टी से देखे बिना तथा तुष राख गोबर कचरा आदि के ढेर पर परिठावे. तथा देखे कहां और परिठावे कहां तो अतिचार लगे क्योंकि इस प्रकार परिठाने में हिंसा होने का संभव है.

४ "अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चार पासवण भूमिका" दृष्टी से देखते किसी जीव की शंका होवे तथा अन्धकारादि जोग दृष्टि का उपयोग नहीं पहुंचे ऐसे स्थान में रजोहरण गुच्छादिसे प्रमार्जन किये विना लघुनीत बड़ीनीत आदि परिठावे तो अतिचार लगे ।

५ "पोसहो वासस्स सम अणुपालण याए"—पौषध और उपवास का सम्यक् प्रकार से अणुपालन नहीं करे, पोषध उपवास करने की जो विधि कही है उस विधि उस विधि प्रमाण करे नहीं, तथा किये वाद सम्यक् प्रकार से पालन करे नहीं उक्त अष्टदश दोष में का कोई दोष लगावे, अरे ! आज मेरे फलाना काम था मैंने नाहक पौषध कियाइत्यादि प्रकार से पश्चाताप करे, पारने में खाने पीने की वस्तू का विचार कर पौषध हुवे वाद आरंभ के काम करने का निश्चय करे, असम्बन्ध वचन बोले आरंभ वृद्धक वचन बोले अयत्ना से गमना गमन करे, पौषध काल पूर्ण हुए विना पारने की गड़बड़ करे पोषध पारने की प्रतिलेखना चौवीसत्थवादि पूरी विधि नहीं करे तो अतिचार लगे.

☞इस प्रकार पांच अतिचार १८ दोष रहित निर्दोष पौषध व्रत का समाचरन करने से २७,७७,७७,७७,७७७ (सत्ताईस अरब सततर करोड़, सतत्तर लक्ष, सतत्तर हजार सात सौ सतत्तर) पल्यांपम और एक पल्य के ९ भाग में का एक भाग अधिक इतना देवगति का आयु-

बन्ध होता है. यह व्यवहारिक फल जानना निश्चय में तो एक ही पौषध व्रत का सम्यक् प्रकार से आराधन करने वाला अनन्त भव भ्रमण से मुक्त हो थोड़ेही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं, देखिये ! चक्रवर्ती महाराज स्वार्थ साधनार्थ द्रव्य तप और द्रव्य पौषध करते हैं वे १३ तेले के पौषध में षट्खण्ड के राज्य के भोक्ता, क्रोडों देवों को आज्ञा में प्रवर्ताने वाले, ९ निधान १४ रत्न आदि महा ऋद्धि के भोक्ता बन जाते हैं तैसे ही वासुदेवादि अनेक पुरुषों ने एक ही तेले के पौषध व्रत से बडे २ देव को वशवर्ती बना अनेक कार्य कराये हैं तो निश्चय पौषध व्रत जिनाज्ञा प्रमाने आराधन करने के फल का तो कहना ही क्या ? ऐसे आत्म गुन के अनन्त लाभ के दाता पौषध वृत को जान कर, सच्चे श्रावक जो अधिक नहीं बनते तो एक महीने के कृष्णा शुक्ला दोनों अष्टमी के दो और चतुदर्शी अमावस्या का तथा चतुर्दशी पूर्णिमा का बेला कर चार पौषध व्रत यों ६ पौषध वृत अवश्य ही करते थे। इस वक्त के श्रावकों को भी लाजिम है कि जो अधिक नहीं बने तो ६ पौषध वृत तो अवश्य ही करें जो कदाचित ६ नहीं बने तो अष्टमी और पाक्षिक दिवस के चार और चार भी नहीं बन सके तो पाक्षिक के दो पौषध वृत तो जरूर ही करें अन्य मतावलम्बी भी कहते हैं कि "गधे की तरह चर किन्तु एकादशी कर" अर्थात् एक महीने में दो एकादशी का व्रत तो अवश्य ही करे । कितनेक दाम्भिक धर्मावलम्बियों मान की मरोड़ से रुढी प्रमाणे व देखा देखी चतुर्दशी आदि के उपवास तो करते हैं किन्तु संसार का धन्धा उन को इतना प्यारा है कि खाने के दिन भी नहीं छोड़ते हैं और भूखे मरने के दिन भी नहीं छोडते हैं कदाचित् कोई पौषध व्रत करने का इरादा भी करे तो सब दिन घर का धन्धा कर दिन अस्त होने के वक्त दौडते २ आते हैं और बिछौना पटक कपडे खोल पट्टा बांध हाथ जोड धोती की लांग खोलते २ कहते हैं कि मैं ने पाना

नहीं पिया कराये इग्यारवां पौषा पौषो पच्चक्खा की ऐसे तान खूंटी सोते हैं कि दिन उगा देते हैं और नमो हत्थाणं नमो सध्याणं कहते २ कपड़े पहिन बिस्तर बगल में दबा मत्थेण वंदामि कहते हुये ऐसे भागते हैं कि जैसे कैदी कैदसे छूटा. देखिये पाठकों! संसार की लालसा कितनी जबर है और धर्म को कैसा निकम्मा समझते हैं सुज्ञ आत्मार्थी श्रावकों का कर्तव्य है कि ऐसी कुरुढ़ी को निकाल कर के सच्चा परियत्न करना चाहिये और स्वयं भी अज्ञ लोगों के देखा देखी नहीं करना चाहिये किन्तु उक्त विधी प्रमाने शुद्ध पौपध व्रत करना चाहिये शुद्ध पौपधव्रत के समाचरने से आणंदजी कामदेवजी आदि श्रावकों एकभवावतारी हुए हैं।

१२ "अतिथि समविभाग व्रत"

जो भिक्षार्थ सदैव नहीं आवे वैसे ही बारी बान्ध कर तथा दिये हुए भी नहीं आवें जिन के आने की तिथि कोई मुकर्रि न हो * वे अतिथि कहे जाते हैं ऐसे अतिथि विषय कषाय को शमाने वाले होने से श्रमण तथा द्रव्य से अकिंचन (धन रहित) भाव से कर्म ग्रन्थी का भेद करने वाले होने निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं ऐसे साधुओं के लिये सदैव प्राशुक-अचित्त (निर्जीव) और निर्दोष भोजनादिका सम विभाग कर अर्थात् प्राप्त भोजनादि में का कुछ हिस्सा देने के मनोर्थ श्रावक करे उसे अतिथि सम विभाग व्रत' कहते हैं।

गृहस्थ के गृह में जो-भोजन निष्पन्न हुआ है उस में कुटुम्बादि भोगवने वाले सब का हिस्सा है और जो थाली में भोजनादि ग्रहण किया उस में उस ही का हिस्सा है इस लिये अपने हिस्से के भोजनादि

---

* श्लोक—तिथो पर्वोत्सवा सर्व त्यक्ता ये महात्मना।
अतिथि तंविजानीयाच्छेष मभ्यागतं विदु ॥१॥
अर्थ—जिन महात्मा ने तिथी पर्व उत्सवादि का त्याग किया है अर्थात् अमुक दिन ही अमुक के यहां भिक्षार्थ जाना ऐसा नियम बांध कर नहीं आते हैं वे अतिथि कहे जाते हैं शेष भिक्षुक अभ्यागत कहे जाते हैं।

से दान के महालाभ को ग्रहण करने का अभिलाषी बना हुआ श्रावक भोजन के लिये बैठते वक्त पानी आदि सचित्त वस्तु का संघट्टन कर बैठ नहीं क्योंकि सचित्त संघट्टक के पास से साधु कुछ भी ग्रहण करते नहीं हैं. ग्राम में साधु हों या न हों किन्तु किंचित् काल ठहर कर द्वार की ओर अवलोकन करे कि कोई साधु साध्वी पधारे तो उन को देऊं क्यों कि अप्रति बन्ध विहारी साधु अचिन्त्य भी आ जाते हैं जो साधु साध्वी द्दष्टि गत हो जावे तो भोजन में कोई जन्तु न पडे इस प्रकार बंदोवस्त कर तत्काल साधु के सन्मुख आ नमस्कार कर अति आदर पूर्वक भोजन शाला में ले जा कर अढलक वृत्ति-उलट भाव से प्रतिलाभे। साधु को १४ प्रकार की वस्तुएं दी जाती हैं—१ 'असणं'—अन्न की जाति चौवीस प्रकार के धान्य में का जो उस वक्त पकाया तला भूजा जो हाजिर हो सो २ 'पाणं'—धोवन पानी, उष्ण पानी, तक्र (छाछ) अच्छे शरवत, ईख रस आदि हाजिर हो सो. ३ 'खाइमं'—पक्वान सुखडी * अचित्त मेवा मिठाई, ४ 'साइमं'—स्वादिम सोपारी लवङ्ग खटाई चूरन आदि ५ 'वत्थं' वस्त्र सूत के सण के, रेशम के, श्वेत वर्ण वाले. ६ 'पाडिग्गहं'—पात्र लकडी के, तुम्बे के, मट्टी के, ७ 'कम्बलं'—ऊन के वस्त्र, कम्बल, धावल, बनात, फुलालेनादि. ८ 'पायपुच्छणं'—रजोहरण (ओगा) गुच्छक (पूंजनी) तथा बिछाने के लिये जाडा वस्त्र यह ८ वस्तुएं तो दे दिये बाद पीछी ग्रहण नहीं की जाती इस लिये आवघी कही जाती हैं और ९ 'पीढ' आहार पानी रखने को या बैठने को छोटा पाट व चौकी, १० फलग शयन करने का बड़ा पाट तथा पृष्ट विभाग में स्थापन करने का पटिया. ११ 'सेज्जा'—शैय्या, रहने के लिये मकान, १२ 'संथारए' वृद्ध तपस्वी रोगी साधुओं के बिछौने के लिये गेहूं का, शालि का कोई वादिका घास

---

* पके केले, खरबूजे का पना, आम का रस, कतली, फूट, ककड़ी परंड, ककडी बीज रहित फूटे टूटे बादाम, पिश्ते नारियल इत्यादि अचित्त मेवा साधु के काम आ सक्ता है।

(पराल) १३ 'औषध'—सूंठ, अचित्त निमक, × छोटी हरड काली मिरच, आदि औषधि की वस्तु और १४ 'भेसज'—शतपाकादि तैल चूरन गोली आदि बनाई हुई दवा इतने में जिस वस्तु का अपने यहां योग हो उस का आमंत्रण कर देवें, वक्त गड़बड़ करे नहीं, घबरावे नहीं, साधु के पूंछने से जैसी बात हो वैसी सत्य कह दे. झूंठ बोले नहीं शुद्ध (सूजते) लेने वाले को अशुद्ध (असूजता) देवे नहीं क्यों कि इस से कमी आयुष्य का बन्ध होता है। जैसा हो वैसा कह देने पर साधु कहे कि अहो आयुष्मान् गृहस्थ ! यह हमारे को कल्पता नहीं है तब गृहस्थ अपने अन्तराय कर्मोदय जान पश्चात्ताप करे और उस दिन किसी भी प्रकार के प्रत्याख्यान करे। और कदाचित् जैसा हो वैसा कहे बाद भी अशुद्ध आहार कोई रस लम्पटी प्रमादी साधु ग्रहण कर ले तो उस में गृहस्थ का किसी प्रकार का दोष नहीं, क्यों कि गृहस्थ के अभंग द्वार हैं साधु के पात्र में जितना आहार दिया जायगा उतना ही संसार की लाय में से बचा समझो। आहार आदि ग्रहण कर साधु जावे तब उन को सात आठ पांव पहुंचा कर नमस्कार कर कहे कि अहो पुण्यवान् ! आज अच्छा लाभ दिया ऐसी कृपा बारम्बार कीजिये. * जो साधु साध्वी का प्रतिलाभने का अवसर प्राप्त न हो तो ऐसा विचारे कि धन्य है वह ग्राम नगर कि जहां साधु साध्वी विराजमान हैं और धन्य है उन जीवों को कि जो १४ प्रकार का दान प्रतिलाभते हैं।

बारहवें व्रत के ५ अतिचार।

१—२ "सचित्त निक्खेवणिया, सचित्त पेहणिया" साधु सचित्त वस्तु

× निम्बू के आचार में का नमक श्याम को ताव करके गरम किया काला निमक चूरन [illegible] पर्याप्त पके गई हो तथा उस में पानी रस मिश्रित किया हो उस में का निमक काला [illegible] सचित्त हो जाते हैं।

* जिन के हाथ से दान दिया जाता है वही उस का फल प्राप्त करता है दान देने [illegible] जिस को होता है उसे दलाली मिलती है।

के संघट्टन का आहार पानी आदि कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करते हैं ऐसा जानता हुआ भी साधु को देने योग्य वस्तु साधु को नहीं देने के इरादे से सचित्त वस्तु ऊपर या वस्तु के नीचे रखे, विचार करे कि साधु याचना करेंगे तब होती वस्तु को ना तो नहीं कह सकूंगा किन्तु सचित्त का संघट हुआ तो वे ग्रहण नहीं करेंगे, यों सहज ही पाप कट जायगा, ऐसे विचार से ज़बर अन्तराय कर्म का बन्ध होजाता है. इन दोनों अतिचारों से बचने के अर्थी का कर्तव्य है कि साधु के लिये तो सचित्त वस्तु से अलग नहीं करे किन्तु ग्रह कार्य के लिये अलग की हो तो पुनः उसे सचित्त के संघटे से रखे नहीं।

३ 'कालाइकम्मे' कितने ही कृपण और अभिमानी साधु को भिक्षा ग्रहण करने की वक्त तो किवाड़ लगा रखते हैं तथा असूजते रहते हैं और भिक्षा का काल होगये बाद साधु जी के पास आकर अनेक लोगों के समक्ष कहते हैं कि क्या महाराज श्री! गरीब श्रावक पर कृपा कम दीखती है! इतने दिन यहां पधारे हुये पर मेरा घर कभी भी पावन नहीं किया! एक दिन तो तारो! और कितनेक तो कहते हैं कि बड़े २ घरों को पधारते हैं, भाजी रोटी लेने गरीब के घर क्यों आवेंगे? इत्यादिक सुन कर उपस्थित लोगों जाने कि यह बड़ा भाविक श्रावक दीखता है, इस प्रकार ठगाइ करने से भी कर्म बन्ध होते हैं।

४ "परोवयसे"—कितनेक अभिमानी स्वयं अहार देने के योग्य होकर आलस वश उठते नहीं हैं और हुकम चलाते हैं कि साधु जी आये हैं इनको कुछ देदो. * कितनेक नहीं देने के इरादे से अपनी वस्तु को दूसरे की कह. देते हैं।

* श्लोक—दानं प्रियवाक्सहितं। ज्ञानं मगर्वं क्षमान्वितं॥
शौर्यम् वित्तम् त्यागनिर्मुक्तं। दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रय ॥१॥ विष्णु शर्मा॥
अर्थ—प्रिय वाणी युक्त दान, गर्व रहित ज्ञान, क्षमा युक्त शौर्य और परोपकार युक्त धन यह ४ गुन दुर्लभ हैं।

५ "मच्छरीयाए"–(१) साधु तो पीछे पड़े हैं जो नहीं दूंगा तो लोगों निन्दा करेंगे ऐसे विचार से देवे (२) अच्छी वस्तु होते हुए भी वह नहीं देता खराब वस्तु देवे (३) मेरा जैसा कोई भी दातार नहीं है तब ही साधु फिर २ मेरे द्वार को आते हैं ऐसा अभिमान करे (४) साधु का शरीर तथा वस्त्र मलीन देख कर दुर्गुछा करे (५) यह तो हमारे गच्छ के संप्रदाय के साधु नहीं हैं ऐसा जान यथोचित्त भाव भक्ति नहीं करे. फक्तलोक लज्जा कर देवे.

सूत्र–तहारूवं समणं वा महाणं वा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे तस्स हीलिता निन्दिता खिसवीता गरिहिता अवमानिता अमणुन्नेणं अपीय कारगाणं असणं पाणं साइमेणं तेणं पडिलाभितासे असुह दीहा ओताय कम्मप करेंति,

अर्थ–तथारूप जिन शासन के लिंग के धारन करने वाले संयम और व्रत कर पाप कर्म की घात के करने वाले समण-साधु को और माहण-श्रावक को कोई निन्दना ग्रहना अपमान करे अमनोज्ञ अप्रियकारी व्याधी उत्पादक आहार पानी पक्वान मुखासादि प्रतिलाभे वह दीर्घ-लम्बा आयुष्य तो पावे किन्तु दुःख से पीडित हो जन्म पूरा करे।

इस प्रकार बारहवें व्रत के अतिचारों के सेवन से दुःख उत्पत्ती का कारण जान सुज्ञ ऐसे कर्मों से अपनी आत्मा को बचावेंगे और सुपात्र दान का यथोचित लाभ प्राप्त करेंगे व यहां भी यश सुख सम्पत्ति के भोक्ता और देवादि के पूज्यनीय बनेंगे उत्कृष्ट रसायन आवे तो तीर्थंकर गोत्रोपार्जन कर तीसरे भव में तीर्थंकर हो सर्व जगत के पूज्यनीय बन मोक्ष प्राप्त करते हैं। कितनेक युगल मनुष्य में अवतरते हैं, कितनेक देवलोक के सुख के भोक्ता होते हैं यों सुख सुख से देव मनुष्य के भव कर थोड़े ही भवों में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

☛ इस भारतवर्ष के आर्यालय में कितनेक साधु श्रावक व नाम धारी धर्मात्मा ऐसे भी उपस्थित हैं कि जो स्वयं दान देने और अन्य को दिलाने को समर्थ हो कर भी पक्षपात के, द्वेष के, तथा लोभ के वश हो कर स्वयं दान देते नहीं अन्य को देने की मना करते हैं। अपनी सम्प्रदाय के सिवाय अन्य को मिथ्यात्वी, पाखण्डी, भगवान के चोर आदि मिथ्या दूषणों के कलंक चढ़ाते हैं अन्य को देने में सम्यक्त्व का नाशक, भगवान का चोर, तरवार को तीक्षण करने वाला नर्कगामी कह कर भ्रम में फंसा कर अन्य को दान देने के प्रत्याख्यान भी कराते हैं। भोले भक्त ऐसे पाखण्डियों के मिथ्या उपदेश को सत्य मान स्वीकार करते हैं. त्यागी वैरागी जिनाज्ञानुयायी सुसाधुओं के द्वेषी बन जाते हैं। बाबा फकीर और ब्राह्मणादि अन्य मतावलम्बियों से भी जैन साधुओं को खराब समझते हैं दान मान देना तो दूर रहा किन्तु उन का जोर पहुंचे तो उन को अति परिषह उत्पन्न करन किंबहु प्राणान्त करने से भी नहीं चूकते हैं। हा इति खेदाश्चर्य! ऐसे जैन श्रावकों की दिशावलोकन कर आश्चर्य होता है कि भगवन्त ने तो श्रावक के पहिले वृत में अतिचार बताया कि "भात पानी की अन्तराय दी हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड़' डं' और ऋषभदेवजी ने एक बैल के मुंह को छींका चढाया था जिस से १२ महीने तक आहार नहीं पाया, तीर्थंकरों को भी कर्मों ने नहीं छोड़ा तो ऐसों की क्या गति होगी! ऐसे कथन को सोच समझ सम्प्रदायों का पक्षपात नहीं करते हुए सुपात्र का योग प्राप्त होते सम भाव धारण कर यथोचित अढलक दान का लाभ लेना * चाहिये × क्यों कि ११ वृत तो

---

* गाथा—पढमं जइन दाऊन, अप्पाणंपण मिऊण पारेइ।
असइ असइ असुविहियाण, भुंजइ अकर दिसा लो ओ ॥ १॥
साहु न कप्पणिज्ज, जनविदिन्नं कहंचि किंपित है।
धीरा जहुत कारी, सुसावगा तं नं भुंजंती ॥ २॥
वत्थ्ही सयणासण, भक्तपाण भेसज्जं वत्थ पत्ताइ।
जइ विन पज्जत धणो, थोवा उवि अ थोवय देइ ॥ ३॥

तिर्यंच भी धारण करसके हैं किन्तु १२ वां व्रत आर्य मनुष्य सिवाय अन्य कोई निष्पन्न नहीं कर सक्ते हैं। यह मेरे संसार पक्ष के सम्बन्धी हैं इन को देना ही चाहिये कितनेक इस प्रकार राग भाव से देते हैं और यह अपने साधु हैं इन बिचारों को अन्न नहीं देंगे तो दूसरा कौन देगा कितनेक इस प्रकार द्वेष भाव से दान देते हैं, यह दोनों ही भाव दोष के कारण रूप हैं।

☞ यह ५ अणुव्रत ३ गुनवृत और ४ शिक्षा व्रत इस प्रकार १२ व्रतों का संक्षिप्त कथन कहा जो शक्ति हो तो बारह ही वृतों को यथोचित स्वीकार करना श्रावकों का दोयम दर्जे का कर्त्तव्य है कदापि १२ वृत धारण करने मे कायरता आती हो तो इन में से जितने धारण कर सके उतने को स्वीकार कर आगे वृद्धि करना चाहिये।

अर्थ--सुश्रावक प्रथम यथा विधी से आहार आदि देकर फिर पारना करते हैं कदाचित् साधु का योग न हो तो दिशावलोकन कर पारना करते हैं॥ १॥ साधु को देने योग्य जो वस्तु होवे और साधु का योग होवे तो साधु को दिये बिना आप भोगवे नहीं॥२॥ स्थान शैय्या आसन आहार पानी औषध वस्त्र पात्र आदि जो अपने पास हों उसमें का कुछ भी हिस्सा साधु को अवश्य देना। द्रव्य विशेष न हो तो थोड़े में से थोड़ा भी देते रहना॥ ३॥ ऐसा उपदेश माला में कहा है।

× यहां इस मनुष्य लोक में श्रावक के वृत धारण कर फिर वृतों का भङ्ग कर डालता है उसमें से कितनेक आयुष्य पूर्ण कर असंख्यात वें 'अढणयर' नामक द्वीप में संख्यात योजन का लम्बा और चौड़ा मानसरोवर (तालाब) है उसमें मच्छादि पने उत्पन्न होते हैं उस सरोवर के कंठस्थल पर रत्न मय रेती है और सिंहासन भद्रासन हैं वहां जोतिषी देवता क्रीड़ा करने को आते हैं उनको देख अंधग्रह हिया अथवा अनुप्रेक्षा करने से उन मच्छादि को जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ती होने से वे भूत का पश्चात्ताप पूर्वक १२ वृत श्रावक के स्वीकार करते हैं पानी में रहे हुए भी शरीर को स्थिर रख कर सम्वर सामायिक प्रतिक्रमन पौषधोपवासादि धर्म का पालन करते हैं किन्तु मनुष्य लोक के बाहर साधु का योग न होने से तथा स्वयं दान देने योग्य न होने से अतिथी संविभाग वृत नहीं निष्पन्न होता देख पश्चाताप करते हैं वहाँ धर्म आराधन कर आयुष्य के अन्त में उत्कृष्ट आठवें देवलोक तक चले जाते हैं और थोड़े ही भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

श्रावक की ११ प्रतिमा।

उक्त प्रकार १२ व्रतों का समाचरन कर यथा विधि शुद्ध पालन करते २ वैराग्य भाव में वृद्धि करते २ जब विशेष वैरागी बनते हैं तब अधिक धर्म वृद्धि करने के अभिलाषी बने स्वयं के गृह परिग्रहादि को भार जो घर में पुत्र भ्रातादि उस भार का निर्वाह करने समर्थ हों उस के सुपुर्द कर के गृह कुटुम्ब की ममत्व से निर्वृत्ती पा कर धर्म बृद्धि के उपकरण आसन (बैठका) गुच्छक रजोहरण मुख वस्त्रिका माला पुस्तक तथा ओढने बिछाने के वस्त्र भाजन मातरिया आदि ग्रहण कर पौषधशाला में उपाश्रय आदि धर्म स्थानक में आ कर श्रावक की ११ प्रतिमा (प्रतिज्ञा) का यथा विधि समाचरन करते हैं। यथाः—

१ "दंसण प्रतिमा"—एक महीने पर्यन्त निर्मल सम्यक्त्व का पालन करे, शंका कांक्षादि किंचित् दोष लगावे नहीं, ग्रहस्थ को तथा अन्य तीर्थिक को मुजरा सलाम नमस्कारादि करे नहीं, और एकान्तर उपवास करे. २ "व्रत प्रतिमा"—दो महीने पर्यन्त सम्यक्त्व पूर्वक १२ ही व्रतों का ७५ अतिचारों रहित निर्मल पालन करे किंचित् दोष लगावे नहीं, और बेले २ पारना करे. ३ "सामायिक प्रतिमा"—तीन महीने पर्यन्त सदैव सम्यक्त्व वृत पूर्वक त्रिकाल में ३२ दोष राहित शुद्ध सामायिक समाचरे और तेले २ पारना करे. ४ "पौषध प्रतिमा"—चार महीने तक सम्यक्त्व वृत सामायिक पूर्वक १८ दोष रहित प्रत्येक महीने में पूर्वोक्त प्रकार ६ पौषध व्रत का तो अवश्य समाचरन करे और चोले २ पारना करे. ५ "नियम प्रतिमा" पांच महीने परियन्त सम्यक्त्व वृत सामायिक पौषध पूर्वक पांच प्रकार के नियम का समाचरन करे यथाः—१ बडी स्नान करे नहीं, २ क्षौर (हैजामत करावे नहीं, ३ पगरखी आदि पैर में पहिने नहीं ४ धोती की एक लांग खुली रक्खे. ५ दिन को ब्रह्मचर्य का पालन करे और पचोले २ पारना करे. ६ 'ब्रह्मचर्य प्रतिमा'—६ महीने पर्यन्त सम्यक्त्व वृत सामायिक

पौषध और नियम पूर्वक नव बाड विशुद्ध अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करे और छे छे उपवास का आरणा करे ७ 'सचित्त परित्याग प्रतिमा'—सात महीनें पर्यन्त सम्यक्त्व व्रत सामायिक पौषध नियम और ब्रह्मचर्य पूर्वक सर्व प्रकार की सचित्त वस्तु के उपभोग परिभोग के परित्याग करे और सात २ उपवास के पारणे करे. ८ " अणारंभ प्रतिमा "—आठ महीनें पर्यन्त सम्यक्त्वादि सचित्त परित्याग पूर्वक पृथव्यादि छे ही जीव काय की स्वयं आरम्भ (घात) करे नहीं और आठ २ उपवास के पारणे करे. ९ 'पेसारम्भ प्रतिमा'—नव महीने पर्यन्त सम्यक्त्वादि अणारंभ पूर्वक छे ही काय का आरम्भ अन्य के पास करावे नहीं और नव २ उपवास के पारणे करे. १० "उदिष्टकृत प्रतिमा"—दश महीने परियन्त सम्यक्त्वादि पेसारंभ परित्याग पूर्वक छे ही जीव काय का आरम्भ करके उनके लिये कोई वस्तु बनाई हो उसे ग्रहण नहीं करे और दस २ उपवास के पारणे करे. ११ "समण भूत प्रतिमा"— सम्यक्त्वादि दसही बोल पूर्वक इग्यारह महीने परियन्त जैन साधु का लिंग (वेश) धारन करे. तीन करन तीन योग से सावद्य काम का परित्याग करे. विशेष में सिर के दाढी मूछों के बालों का लोचन करे शिखा (चोटी) रखे शक्ति न होतो और भी करावे हैं रजो हरण की दण्डी पर नीस्टीया (वस्त्र) नहीं चढावे धातु पात्र रखे और स्वज्ञाती में से ४२ दोष रहित आहार पानी आदि भिक्षवृती से ग्रहण करे. कोई महाराज आदि शब्द से सम्बोधन करे तब खुल्ला कहदे कि मैं साधु नहीं हूं किन्तु प्रतिमा प्रतिपन्न श्रावक हूं भिक्षा वृती से ग्रहण किंये आहार आदि को उपाश्रय आदि में लाकर मूर्च्छा रहित भोगवे और ग्यारह २ उपवास के पारणे करे. इस प्रकार ११ प्रतिमा के पालन में ५॥ वर्ष लगते हैं. फिर शारीरिक शक्ति की हानि और आयुष्य अंत नजदीक जाने तो झूपणा झूसणा आराहणा (संथारा) करवे. और आयुष्य अधिक हो तो दीक्षा ग्रहण करे. जघन्य श्रावक सम्यक्त्व धारी, मध्यम

श्रावक व्रतधारी उत्कृष्ट श्रावक प्रतिमा धारी कहे जाते हैं।

साधु की अपेक्षा ८ प्रकार के श्रावक।

१ "अम्मा पिय समाणे"— आहार पानी वस्त्र पात्र औषधोपचार स्थानक आदि साधु सम्बन्धी सर्व कार्य की चिन्ता रखे और अवसर पर सर्व प्रकार की साता उपजावे. कदाचित साधु प्रमाद वस समाचारी से चूक जावे और आंखों से देख भी ले तो स्नेह रहित होवे नहीं किन्तु सविनय यथोचित हित शिक्षा दे शुद्ध करावे. ऐसे श्रावक माता पिता समान कहलाते हैं. २ "भाइ समाणे"—साधुओं पर अन्तःकरण से तो अधिक स्नेह रखे किन्तु आलस वश विनय भक्ति कर सके नहीं. कदाचित् साधु पर किसी प्रकार संकट पड़ जायं तो अपने प्राणों को झोंककर सहायता करे ऐसे श्रावक भाई समान कहलाते हैं. ३ "मित्त समाणे"— कदाचित किसी कारण वसात रुष्ट भी हो जाय तो अपने स्वजनों से साधु को अधिक समझे और तत्काल रोष समन कर भक्त बन जावे वह श्रावक मित्र समान. ४ "आय समाणे"—जो जो सूत्रार्थ साधु प्रकाश करे उस का हूबहू अर्थ जिसके हृदय में प्रतिबिम्बत हो सो अयने के समान श्रावक [यह ४ अच्छे और] ५ "सवती समाणे"—अभिमानी कठिण हृदयी छिद्र गवेषी कदाचित साधु कारण वशात अपवाद सेवन करले तो उनके दोष प्रगट कर फजीता करे वह शौक के समान श्रावक. ६ "पडागा समाणे" साधु के वचन का प्रतीत रखे नहीं और पाखण्डियों के अमाने से पताका के समान फिर जावे सो पताका समान. ७ "खाणु समाणे"—साधु का सदबोध श्रवण करके भी अपना कदाग्रह का परित्याग करे नहीं. वह खीले समान और ८ "खरंट समाणे"—हित शिक्षा दाता साधुओं की निन्दा करे. अयोग शब्द से अपमान करे कलंक चढ़ावे वह श्रावक विष्टा अशुची के समान. (यह ४ बुरे श्रावक प्रायः मिथ्या दृष्टी होते हैं किन्तु साधु के दर्शनार्थ आते हैं इसलिये श्रावक कहलाते हैं।)

सच्चे श्रावक के लक्षण।

गाथा—कय वय कम्मो तह सीलवं च गुणवं च उज्जुव वहारी।
गुरू सुसुओ पवयण कुसलो खलु भवओ सधे ॥ १ ॥

अर्थ—१ सम्यक्त्व व्रतादि श्रावक कर्म का सम्यक् प्रकार समाचरन किया हो. २ क्षमा सीलादि गुणों कर अलंकृत हो. ३ न्याय पक्षी सत्य वादी गुणग्राही हो. ४ निष्कपट शरलता से व्यवहार का साधन कर्ता हो ५ गुरू आदि सुसाधु की तथा चतुर्विध संघ की तन मन धन से सेवा-भक्ति कर्ता हो. और ६ प्रवचन शास्त्रों के अभ्यास से कुशल बने हों. वे ही सच्चे श्रावक कहलाते हैं।

गाथा—आगारी सामाइ यंगाणि। सट्ठी काएण फासए।
पोसहं दुहहो पक्खं। एग एयं नहावए ॥ २३ ॥
एवं सिक्खा समावन्ने। गिहि वासेवि सुव्वए ॥
छव्विं पव्वाओ मुच्चई। गच्छे जक्खस्स लोगयं ॥२७॥ उ.अ.५

अर्थ—जो दीक्षा ग्रहण करने अशक्त बने गृहवास में रह कर ही सम्यक्त्व पूर्वक सामायिक व्रत का श्रधान और स्पर्शन करे. कृष्ण शुक्ल दोनों पक्ष में पौषध व्रत करे तथा ऋक्ष व्रती से संसार पक्ष का और प्रेमानुराग रक्त हो धर्म पक्ष का पालन करे. धर्म करणी विषय में एक रात्री की भी हानी नहीं करे. इस प्रकार शिक्षा सम्पन्न जो गृहस्थ हैं उन्हें विशुद्ध व्रती कहना. वे हड्डी, चर्म रक्त मांसादि अशुची से भरे शरीर का परित्यागकर अत्युत्तम जाति के देवता होंगे और थोड़ेही भव में सर्व दुःखों का अन्तकर अनन्त मोक्ष के सुख के भोक्ता बनेंगे।

परम पूज्य श्री कहान जी ऋषि जी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी
श्री अमोलक ऋषि जी महाराज विरचित "जैन तत्व प्रकाश"
ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड का "सागारी धर्म" नामक
प्रकरण समाप्तम।

* ॐ नमः सिद्धं *

प्रकरण छट्वां "अन्तिम शुद्धि"

श्लोक—मृत्यु मार्गे प्रवर्तस्य । वीतरागो ददातु मे ॥
समाधि बोध पाथेयं । यावन्मुक्ति पुरी पुरः ॥

अर्थ—जिस प्रकार दयालु पिता प्रदेश में रहे पुत्र को घर बुलाने के लिये रास्ते की वाकफी के पत्र द्वारा सुख से रास्ता प्रसार करे गृह प्राप्त करले ऐसा बोध और खरची के लिये द्रव्य भेजता है. वैसे ही परम दयालु पिता माह वीतराग देवें ! मैं भी मृत्यु मार्ग में प्रवर्त कर मुक्ति घर प्राप्ति का इच्छक हुआ हूं इसलिये आप मेरे पर कृपा करके मुक्ति सख से प्राप्त कर सकूं ऐसी चित्त की समाधी और ज्ञानादि त्रिरत्न रूप बोध दे कर मुक्ति पुरी में बुला लीजिये ।

मृत्यु के १७ प्रकार ।

१ उत्पन्न हुए बाद जो प्रति समय आयुष्य कमी होती जाती है वह "अविचिय मृत्यु" २ वर्तमान काल में जो शरीर रूप पर्याय प्राप्त हुई है उसका अभाव होवे वह "तद्भव मृत्यु" ३ गत भव में जो आयुबन्ध कर यहां उत्पन्न हुआ वह आयु पूर्ण होवे वह "अवधी मृत्यु" ४ सर्व से और देश से आयु क्षीर्ण होवे तथा दोनों भव में एक ही प्रकार का मृत्यु होवे वह "आद्यन्त मृत्यु" ५ जहर से शस्त्र से अग्नि से पानी से पहाड़ से पड़कर इत्यादि प्रकार से आत्म घात कर ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना रहित अज्ञानता से मृत्यु पावे वह "बाल मृत्यु" ६ सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र सहित समाधी भाव से आयुष्य पूर्ण हो वह "पण्डित मृत्यु." ७ संयम वृत से भृष्ट होकर मृत्यु पावे वह "आसन मृत्यु" ८ सम्यक्त्व श्रावक वृताचरण किये बाद समाधी भाव से मृत्यु पावे वह

"वल पण्डित मृत्यु" ९ माया शल्य नियान शल्य और मिथ्यात्व दर्शन शल्य सहित मृत्यु पावे वह "सल्य मृत्यु" १० प्रमाद के वश हो तथा अत्यन्त संकल्प विकल्प परिणामों से प्राण मुक्त हो वह "पलाय मृत्यु" ११ इन्द्रियों के वश हो कषाय के वश हो वेदना के हंसी के वश मृत्यु होवे वह 'वशात मृत्यु" १२ संयम शील वृतादि का निर्वाह नहीं होने से आपघात करे वह "विप्रण मृत्यु" १३ संग्राम में शूरत्व धारन कर मृत्यु पावे वह "गृद्ध पृष्ट मृत्यु" १४ यथा विधि तीनों आहार के जावजीव प्रत्याख्यान कर मृत्यु पावे वह "भक्त प्रत्याख्याने मृत्यु" १५ संथारा किये बाद अन्य के पास चाकरी—सेवा नहीं कराता हुआ मृत्यु पावे वह "इंगित मृत्यु" १६ आहार और शरीर दोनों के जावजीव पर्यन्त त्याग कर स्ववश हलन चलन किये बिना मृत्यु पावे वह "पादोप गमन मृत्यु" और १७ केवल ज्ञान प्राप्त हुए बाद देहोत्सर्ग हो सो "केवली मृत्यु" यह १७ प्रकार के मृत्यु कथन अष्टपाहुड ग्रन्थ के ५ वें भाव पाहुड में कहा है।

श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के ५वें अध्ययन में मुख्यत्व मृत्युके दो प्रकार कहे हैं-

गाथा—बालाणं अकामंतु । मरण असइ भवे ॥
पंडियाणं सकामंतु । उक्को सेणं सइ भवे ॥

अर्थ—बाल अज्ञानी जीवों अकाम मृत्यु से मरते हैं उनको अनन्त वक्त मरना पड़ता है और पंडित पुरुषों जो सकाम मृत्यु से मरते हैं वे उत्कृष्ट एकही वक्त मरते हैं. फिर उन्हें मरना नहीं पड़ता है याने मोक्ष हो जाते हैं।

जन्म जरा मरण के दुःख से भयभीत बने मुमुक्षुओं को सकाम मरण के स्वरूप को समझने की सहज ही अभिलाषा होती है उनका कर्तव्य है कि- जिस प्रकार किसी शूर वीर धीर क्षत्री राजा पर कोई परचक्री चढाई कर आता है उसके आगम के समाचार श्रवन करते ही उस वीर क्षत्री के

शेस २ में वीर रस व्याप्त हो जाता है और वह तत्काल चतुरंगिगी सेना के साथ सज्ज हो राज सुख की शीत ताप की क्षुधा तृषा शस्त्र अस्त्र के प्रहार के दुख की किंचित भी दरकार नहीं करता हुआ किन्तु उस दुःख को भी सुख का साधन मानता हुआ अपनी कौशल्यता से और प्रबल्यता से शत्रु को सेना सहित कम्पित करता पराजय कर जय विजय वन्त अपने राज को निर्विघ्न करता है, उसही प्रकार सकाम मरन के इच्छक महात्मा काल रूप शत्रु को रोगादि उपलक्षण द्वारा निकट आया जान तत्काल सावधान हो शारीरिक सुख की क्षुधा तृषादि दुख की किञ्चित भी दरकार नहीं करते ज्ञानादि चतुरंगिणी सेना से सज्ज हो सकाम मरन रूप संग्राम द्वारा काल का पराजय कर अनन्त आत्मिक सुख की प्राप्ति रूप राज निर्विघ्न करते हैं।

जो जन्मा है उसे एक दिन मृत्यु जरूरी है उससे बचने का जगत् में कोई उपाय है ही नहीं। फिर मृत्यु को खराब क्यों करना चाहिये? क्यों अनन्त मरण क्यों बढ़ाना चाहिये? एक वक्त के मरने से फिर कभी मरना ही नहीं पड़े ऐसा उपाय क्यों नहीं कर लेना चाहिये? वह उपाय कितना भी विकट हो तो भी एक वक्त मृत्यु से होता हुआ दुःख जितना दुख उसमें नहीं है। ऐसा निश्चयात्मक बन सूर और महात्मा ही सकाम मरन कर सकते हैं और मृत्यु के दुःख से छूट सकते हैं।

सकाम मरन के गुन निष्पन्न नाम इस प्रकार कहते हैं--१ जिससे मुमुक्षुओं की कामना मृत्यु से बचने की सिद्ध हो इसलिये 'सकाम मरन' २ जो सब प्रकार की आधी व्याधी उपाधी से अपने चित्त की निवृती करे समाधी भाव धारन करे सो 'समाधी मरन'। ३ जो जाव जीव पर्यंत तीन या चारों आहार के प्रत्याख्यान करे सो 'अनसन'। ४ जो अंतिम बिछाने में शयन करने सज बने सो संथारा, और सम्यक्त्व देश वृत सर्व वृत धारन किये बाद किसी प्रकार दोष न लगा हो उसे छिपा रखा हो,

उसे माया शल्य से, धर्म तपादि करनी के फल की वांछा रूप नियाना बन्ध रखा हो उस नियान शल्य से और मिथ्या मत की श्रद्धा रूप कोई शल्य अन्तःकरण में रहा हो उस मिथ्यादंशण शल्य से आलोचना निन्दना ग्रहण कर शुद्ध बने सो 'सल्लेषणा' इत्यादि नाम कहे जाते हैं।

सागारी संथारा ।

मृत्य का कुछ भरोसा नहीं है इसलिये अचिन्त मृत्यु आजावे तो उसके लिये धर्मात्मा सदैव शयन करती वक्त में इत्वर (स्वल्प) काल के लिये जो करते हैं उसे "सागारी संथारा"* कहते हैं, वह इस प्रकार किया जाता है-- शयन किये पहले पूर्वोक्त अवश्य ही इच्छा कारण की बिधी पूर्वक चार 'लोगस्स' कायोत्सर्ग कर एक लोगस्स प्रगट कह कर दोनों हाथ जोड़ कहे कि-- "भक्खंती उज्झंति मारंती मरंती कि विउव-सग्गेणं मम आउ अन्त भवन्ति शरीर सम्बन्ध मोह ममच चउविहंऽपि आहारं वोसीरे, सुह समाहाएणं निद्दावइकती तस्स आगार" अर्थात--सर्प सिंहादि भक्षन करले, अग्नि प्रयोग भस्म हो जाय, पानी में बह जाय शत्रु आदि मार जाय आयु पूर्ण हुए मर जाय, किसी भी उपसर्ग द्वारा मेरे आयुष्य का अन्त हो जाय तो शरीर सम्बन्ध मोह ममत्व और चारों प्रकार के आहार भोगवने के त्याग करता हूं और जो सुख समाधी से जाग्रत हो जाऊं तो मैं सब प्रकार खुला हूं। फिर नवकार मन्त्र का स्मरण करता हुआ शयन करे, जाग्रत हुए बाद पूर्वोक्त प्रकार ४ लोगस्स कह कर कहे कि-- "पडिकम्मामि" निद्रा के पाप से निवृतता हूं।

कुण्डलियां छन्द—

* मरवों माथे मनुष्य ने। मरवानो तो छेज ॥ पण परमार्थ करणे। मरवो मुशकिल एज ॥
मरवो मुशकिल एज। सकल संसार संभारे ॥ वहा २ कही सहु विश्व। अहो निश कीर्ती उच्चारे ॥
दाखे दलपतराम। वचन ना पालो यत्नो ॥ मरवानो तो छेज। मनुष्य ने माथे मरवों ॥

संक्षेप में सागारी संथार—दोहा—आहार शरीर उपाधी। पच्चखूं पाप अठार ॥
मरण पांमु तो वोसीरे। जीवुं तो आगार ॥ १ ॥

"पगाम सिज्जाए"--मर्यादा से अधिक बिछोना कियाहो "निमाम सिज्जाए" कमी बिछोना किया हो, "संथारा उवट्टणाय परियट्टणाय"-प्रमार्जन किये बिना बिछोनों का संकोचन प्रसारन किये हो. "आउट्टण पसारणाये"—प्रमार्जन किये बिना हाथ पैर आदि संकोचन प्रसारन किये हो. "छप्पइ संघट्टणाय"-- थुंका षलमल दबाया हो, "कुइए कक्कराइए"--खुल्ले मुंह से बुलाया हो. "छीए जंभाइए"--छींक उवासी मुख ढके लीनती हो, "आमोसे ससर खामोस"--सचित्त वस्तु की विराधना की हो, "आउल माउल"--आकुल व्याकुल हो घबराया हूं "सुवण वतियाए" स्वप्न में, "इत्थी-विपरीया सियाए" स्त्री आदि का संग किया हो, "दिट्ठी विपरीया सियाए"- विपरीत दृष्टी प्रवर्ती हो, "मण विपरिया सियाए"-मन में खराब बिचार हुआ हो, "पाण भोयण विपरिया सियाए"--आहार पानी भोगता हो, "जो मे राई सी अइयार कओ तस्स मिच्छामी दुक्कडं"--रात्री में किसी भी प्रकार का जो मुझे अतिचार लगा हो तो वह पाप दूर होवे ❀ फिर कहना कि "सागारी अणसणस्स पच्चक्खाणं"--आगार युक्त अनसन (संथारा) किया था उसके प्रत्याख्यान. "फासीयं"--स्पर्शे. "पारीयं"--पाले. "सोहियं"--शुद्धता से. "तीरियं"--तीर—पार पहुंचाए. "किट्टियं"--कीर्ती युक्त "आराहियं"--जिनाज्ञा प्रमाने आराधन किये. "अणाए अणुपालित न भवई"- तो भी छद्मस्ती से जिनाज्ञा का यथा तथ्य पालन नहीं हुआ हो तो "तस्स मिच्छामी दुक्कडं" * उसका पाप दूर होवे. यह सागारी संथारे की विधी हुई. चोर सिंह सांप व्यन्तर अग्नि पानी आदि किसी भी प्रकार

❀ पोषध व्रत में तथा रात्री संवर में निद्रा से निवृत्ती पाये बाद भी यह पाठ विधी पूर्वक अवश्य कहना चाहिये।

* नमुकारसी आदि प्रत्याख्यान पारते तथा सामायिक पौषध दया आदि के प्रत्याख्यान पारते यही पाठ कहना चाहिये।

का प्राणान्त हो ऐसा संकट प्राप्त होते तथा बीमारी प्राप्त होते जो अनगारिकी संथारा करने का अवसर न हो वहां भी उक्त प्रकार सागारी संथारा करना उचित है।

"अणगारिक संथारा सलेषणा"

श्लोक—उपसर्गे दुर्भिक्षे जर सिरू जायं च निःप्रतिकारे॥
धम्मो य तनु विमोचन माहु संलेखना मार्याः॥

अर्थ—प्राणान्त उपसर्ग प्राप्त होते, अन्न पानी न मिले ऐसा दुर्भिक्ष दुष्काल प्राप्त होते, बृद्धावस्था से अति जीर्ण शरीर होते, असाध्य रोग प्राप्त होते इत्यादि से प्राण बचाने का कोई भी उपाय प्राप्त न होवे तब तथा काल ज्ञान ग्रन्थ कथित लक्षण से अपने आयु का अन्त समीप प्राप्त होना जान कर * अपने धर्म की रक्षणार्थ जो शरीर का त्याग करते हैं उसे गणधरों ने सल्लेषना तप कहा है।

गाथा—सल्लेहणा दुविहा। अब्भन्तरिया य बाहिरा चेव॥
अब्भन्तर कसाए सु। बाहिरा होइ हु सरीरे॥२११॥ भ०आ०

अर्थ—१ क्रोधादि कषाय को क्षीण करना यह अभ्यन्तर सल्लेषना और शरीर का परित्याग करना वह बाह्य सल्लेषना. यों दो प्रकार की सल्लेषना होती है।

अब सल्लेषना करने की विधी—रीति का सूत्रार्थ कहते हैं--अपच्छिमा मरणांति सलेहणा झूसणा आराहणा"--जो मृत्यु निकट * आई जान धर्म की आराधना करने के लिये सावधान बने उनकी संसार के कामों से मनोकामना निवृती पाने से फिर कोई भी काम संसार का करने का रहा न होवे आत्मार्थ साधन न प्रथम इस भव में सम्यक्त्व पूर्वक वृत धारन

* आयु अन्त के लक्षण- दोहा—अतिगाज नहीं भति बीज नहीं सूत्र न अवडे भार।
फरसो दीसे स्थम्मला, देसा भाजन हार॥१॥

किये बाद उन सम्यक्त्व वृत में सउपयोग जो जो दोष अतिचार लगे हों उनकी गवेषणा (स्मरन) करे. और स्मरण हुए स्ववश परवश मोहवश युक्त जान अनजान में लगे छोटे बड़े सब दोषों को गम्भीराई आदि गुण आचार्यादि साधु के सम्मुख, ऐसे साधु का योग न हो तो साध्वी के सम्मुख ऐसी साध्वी का योग न हो तो श्रावक के सम्मुख, ऐसे श्रावक का योग नहीं हो तो श्राविका के सम्मुख और गंभीरादि गुन युक्त श्राविका का भी योग नहीं होवे तो जंगल में जा पूर्व उत्तराभि मुख सीमन्धर स्वामी जी को नमस्कार कर हाथ जोड़ खड़ा रहे पुकार कहे कि अहो प्रभो ! मैंने अमुक २ अनाचीर्ण का आचरन किया है जिस का प्रायःश्चित अमुक मेरी धारना में है उसे मैं आपकी साक्षी से स्वीकार करता हूं न्यूनाधिक हो तो "तस्स मिच्छामि दुक्कडं" इस प्रकार+निशल्य बन कर फिर जिस प्रकार कृष्ण कोयला अंगार में झोंकने से श्वेत राख मय बनता है उसही प्रकार आत्मा को उज्वल करने संथारा (तप) रूप

+गाथा-ससल्लो जइवि कठुग्गं। घार बीर तवंचरे॥ दिव्वं वास सहस्संतु। तओवितस्स निफलं॥ १॥

अर्थ—अंतःकरण में शल्य धार हजारों वर्ष पर्यन्त की हुई तपश्चर्या निष्फल हो जाती है।

गाथा-लहु अल्हाइ जणणं। अप्प परि निविति अज्जवं सोही॥ दुक्करं करण आढाणं। निसल्लं तच सोइगुणा॥ २॥

अर्थ—मांस २ खमन के तप करने से भी आत्मोद्धार नहीं होता है किंतु अन्तःकरण के शल्य रहित आलोचणा निन्दणा करने से आत्मोद्धार हो जाता है।

निशीथ सूत्र की चूर्णी में कहा है कि-"तंन दुक्करं जंपडि सेविज्जइवे दुक्करं जंसम्मं आलोइज्जति" अर्थात अन्य तपादि धर्म क्रिया करनी जितना दुष्कर नहीं है उतना आलोयणा करना दुष्कर है।

गाथा-निठविअपाव पंका। सम्मं आलोइअ गुरु सगासे॥ पत्ता अणंत सत्ता। सासय सुख अणावाहं॥ १॥

अर्थ—शुद्ध परिणाम से अन्तःकरण के शल्य रहित आलोचणा करने वाले अनन्त जीवो पाप रूप कर्मों का सर्वतः नाश कर अव्याबाध शाश्वत मोक्ष के सुख को प्राप्त हुए हैं।

अंगार में झोकने जहां खान पान भोग विलास के पदार्थ नहीं संसारिक शब्द सुनने में देखने में नहीं आवे त्रस स्थावर जीवों की हिंसा न हो ऐसे निर्दोष पौषधशालादि स्थान में तथा जंगल पहाड़ गुफा आदि स्थान म चित्त समाधी के योग जगह का रजोहरणादि से आस्ते २ प्रमार्जन कर कचरे को किसी पाटी आदि पर ग्रहण कर जहां मनुष्य पशु आदि का विशेष आगमन हो ऐसे स्थान में चौड़ा २ यत्ना से परिठा कर फिर लघु नीती बड़ी नीती पित श्लेषमादि परिठाने की भूमि जहां हरितकाय अंकुर चींटी आदि के बिल न हो उसे आंखों से सूक्ष्म दृष्टी से देख कर फिर संथारा करने का स्थान पौषधशाला आदि स्थान में तथा पर्वतादि में शिला आदि पर आकर प्रति लेखन प्रमार्जना में गमनागमन करते जो पाप लगा हो उसकी निर्वृती के लिये पूर्वोक्त विधी प्रमाने अवश्यही का कायुत्सर्ग कर लोगस्स कह प्रति लेखना में दोष लगा होतो "तस्स मिच्छामि दुक्कडं" कहे फिर जो शरीर कष्ट सहने समर्थ हो तो जमीन सिला आदि पर घस्त्र का बिछोना कर और असमर्थ होतो गेहूं चांवल कोद्रव राला तृणादि का पराल (घांस) साफ सूका बिलकुल दाने (धान) रहित मिल जावे तो उसका २॥ हाथ लम्बा और १। हाथ चौड़ा बिछोना करे उसे श्वेत वस्त्र से ढक कर पूर्व तथा उत्तराभी मुख पर्यकादि जो आसन सुखद मालूम पड़े उस आसन से बैठने की शक्ति नहीं होवे तो इच्छा मुजब स्थिर आसन करे फिर दोनो हाथ जोड़ दशों अंगुली एकत्र करें जिस प्रकार अन्य मतावलम्बी आरती घुमाते हैं तैसे हाथों को दायी बाजू से बाईं बाजू की तरफ उतारता हुआ तीन वक्त घुमाके (फिराके) मस्तक पर स्थापन करें कहे कि "नमोत्थुणं अरिहन्ताणं, 'भगवन्ताणं' अरिहन्त भगवन्त को नमस्कार युक्त स्तवना करता हूं आप 'आदि गराणं'

धर्म की आदि कर्ता, "तित्थय राणं"—तीर्थ के कर्ता, "सहस्स बुद्धाणं" स्वयं प्रति बोध पाये, "पुरुसुत्त माणं" पुरुषोत्तम, "पुरुष सिहाणं" पुरुष सिंह, "पुरुषो बर पुंडरीयाणं"--पुरुषों में प्रधान पौंडरिक कमल समान, "पुरुष वर गन्ध हत्थीणं"- पुरुषों में प्रधान गंध हस्ति समान, 'लोगुत्तमाणं' लोगोत्तम, "लोग हियाणं"--लोक हित कर्ता, "लोगनाहाणं"--लोकनाथ "लोग पइवाणं"-लोक दीपक, "लोग पज्जोयगराणं"-लोक के सूर्य, "अभय दयाणं"--अभय दाता, "चक्खू दयाणं' चक्षु दाता, "मग्ग दयाणं"--मार्ग दाता, "सरण दयाणं"--शरण दाता, जीव दयाणं"--जीवित दाता, "बोही दयाणं"--बोध दाता,--"धम्म दयाणं"-धर्म दाता, "धम्म देसीयणं"--धर्मोपदेशक, "धम्म नाय गाणं"--धर्म नायक, "धम्म सारहीणं"--धर्म सार्थवाही, "धम्म वरचाउरन्तचक्कवट्टीणं"-धर्म, में प्रधान चक्रवर्ती "दवितोताणं सरण गइ पइट्ठा"—द्वीप समान आधार भूत, "अपडी हय वर णाण दंसणं धराणं' अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारक, "वियट्टछउमाणं" निर्वृते छद्मस्त पने से; "जीणाणं जावयाणं"--स्वयं जीते अन्य को जिताते, "ताणणं तारयाणं" स्वयं तिरे अन्य को तारते. "बुद्धाणं बोहियाणं"—स्वयं समझे अन्य को समझाते; "मुत्ताणं मोयगाणं"—स्वयं छूटे अन्य को छुड़ाते "सवन्नु सव्व दरिसीणं"—सर्वज्ञ सर्व दर्शी. "सिवमयलमरूअ-मणंत-मक्खय-मव्वावाह-मपुण रावि ती सिद्धी गइ नाम धेयं" —निरूपद्रब-अचल-आरोग्य-अनन्त-अक्षय-निराबाध-पुनरावृति रहित जो सिद्धी गति नाम का स्थान है उस "ठाणं संपत्ताणं"—स्थान को प्राप्त हुए. "नमो जिणाणं"—उन जिनेश्वर को नमस्कार ॥ यह प्रथम "नमोत्थुणं"—सिद्ध भगवन्त को तैसेही दूसरा नमोत्थुणं अरिहन्त भगवन्त का कहना. विशेष में अन्तिम पद "ठाणं संपताणं'' के स्थान "ठाणं संपाविओ कामस्स" सिद्ध स्थान प्राप्त करने

वाले कहना. फिर "नमोत्थुणं मम धम्म गुरू धम्मोयरिय धम्मोवदेस गस्स' मेरे धर्म गुरू धर्माचार्य धर्मोपदेशक को नमस्कार. इस प्रकार वंदन नमन करके आज इस वक्त परियन्त पूर्व स्माचरन किये सम्यक्त्व व्रत नियम में स्ववश परवश जान अनजान में जो कोई दोष अतिचार लगा हो उस की आलोचना-विचारन कर उससे निवर्तें निन्दे प्रगट कहे और भविष्य के प्रत्याख्यान कर माया निदान मिथ्यादंशण सल्य रहित बने. इस प्रकार शुद्ध निर्मल बन कर भविष्य में "सव्वं पाणाइ वायाओ पच्चक्खामी"—सर्वथा प्राणातिपात (हिंसा) को त्यागता हूं. "सव्वं मुसावायं पच्चक्खामी' सर्वथा मृषावाद झूठ को त्यागता हूं. "सव्वं अदिन्नदाणं पच्चक्खामी"—सर्वथा अदत्तादान (चोरी) को त्यागता हूं. "सव्वं परिग्गहाओ पच्चक्खामी" सर्वथा परिग्रह (ममत्व) को त्यागता हूं. "सव्वं को हं-माणं-माया-लोभं-राग-द्वेषं-कलह-अभ्याख्यानं-पैसुनं-पर परा वायं-राति अराति—माया—मोसमं मिच्छा दंसण सल्लं अकरणी जे जोगं पच्चक्खामी"—सब-क्रोध-मान-माया लोभ-राग-द्वेष-क्लेश-कलंक-चुगली-निन्दा-हर्ष-शोक-गझझूठ-मिथ्या मत का शल्य इन अनाचरणीय जोगों के प्रत्याख्यान तीन करन और तीन योग से करे अर्थात् करे नहीं करावे नहीं करते को अच्छा जाने नहीं मन से वचन से और काया से. यों अठारह ही पाप स्थान के प्रत्याख्यान करके फिर "सव्वं असणं पाणं खाइयं साइयं चउविहंपि आहारं पच्चक्खामी"—अन्न पाणी पक्वान मुखवास और अपि शब्द से सूंघने की आंख में डालने की इत्यादि सब वस्तु के प्रत्याख्यान करता हूं. यों चारों ही आहारादि के प्रत्याख्यान कर फिर "जंपियं इमं शरीरं"—जो यह मेरा प्रिय शरीर "इट्ठं"—इष्ट देव के समान इसकी भक्ति की ऐसा इष्टकारी "कंतं"—पति के समान वल्लभ, "पियं"—स्त्री के समान

प्यारा. " मणुणं "– मनोज्ञ. " मणामं "– मनोरम. " धिज्जं "–धैर्यदाता. " विसासियं"–विश्वासनीय. " समयं "–माननिय. " बहुमयं"–लोभी के बहुत मानने योग्य. "अणुमयं"–दुगुणी जाना तो भी माना "भंडकरंडग समाणे "–आभूषणों के करंड (डब्बे) के समान हिफाजत कर रक्खा. "रयण करंडग भूया"–देवता के रत्न के करंड समान प्राण प्यारा रखा. सोही कहते हैं. " माणं सीया "–शीत (जाड़े) के उपद्रव बचाने को उष्ण वस्त्र कम्बल दुशालादि से ढककर रखा. "माणं उन्हा"–उष्ण (गरमी) के उपद्रव से बचाने को महीन वस्त्र शीतल पानी हवा पंखे पुष्पादि से पोषन किया. "माणं खुहा"–क्षुधा (भूख) के दुःख से बचाने को खान पान मेवा पक्वान इत्यादि रुचिकारक पदार्थों कर पोषन किया. "माणं पिवासा" तृषा (प्यास) के दुःख से बचाने को शीतोदक शरबत बरफ आदि से पोषन किया. "माणं बाला "–व्याल (सर्प) आदि जहरी जानवरों के दंश के उपद्रव से बचाने को मंत्रोपचार जड़ी बूंटी औषधोपचार का बन्दोबस्त किया. " माणं चोरा "–चोर ठग इत्यादि के उपद्रव से शरीर का तथा धन का रक्षण करने को शस्त्र अस्त्र सिपाई मकान ताला कुंजी आदि का बन्दोबस्त किया. "माणं दंसमसगा"–डांस मच्छर षटमलादि से शरीर का स्वरक्षरण करने मच्छरदानी आदि बन्दोवस्त तथा अज्ञानावस्था में धूम्र अग्नि उष्ण पानी आदि के प्रयोग से एक शरीर के रक्षण के लिये अनेक जीवों को मार डाले. " माणं वाहियं पित्तियं कफियं संभीमं सन्नि वाइयं विवहारो गायंका परिसहा उवगा फासाफुसंति "–वादी पित्त कफ श्लेषम सन्नीपात आदि विविध रोगों से शरीर को बचाने के लिये सूंठ मेंथी त्रिफले आदि औषधियों औषधि के मोदक पाक क्वाथ चूरणादि का सेवन किया. शत्रु मित्रादि से उत्पन्न होते अनुकूल प्रतिकूल परिषह तथा व्यन्तरादि से उपसर्ग के लिये काम दमन बन्धन स्थम्भन मारन मोहन मन्त्रादि किये.

बोले कहना. फिर "नमोत्थुणं मम धम्म गुरू धम्मोयरिय धम्मोवदेस गस्स" मेरे धर्म गुरू धर्माचार्य धर्मोपदेशक को नमस्कार. इस प्रकार बंदन नमन करके आज इस वक्त परियन्त पूर्व स्माचरन किये सम्यक्त्व व्रत नियम में स्ववश परवश जान अनजान में जो कोई दोष अतिचार लगा हो उस की आलोचना-विचारन कर उससे निवर्ते निन्दे प्रगट कहे और भविष्य के प्रत्याख्यान कर माया निदान मिथ्यादंशण सल्य रहित बने. इस प्रकार शुद्ध निर्मल बन कर भविष्य में "सब्वं पाणाइ वायाओ पच्चक्खामी"— सर्वथा प्राणातिपात (हिंसा) को त्यागता हूं. "सव्वं मुसावायं पच्चक्खामी" सर्वथा मृषावाद झूंठ को त्यागता हूं. "सव्वं अदिन्नदाणं पच्चक्खामी"— सर्वथा अदत्तादान (चोरी) को त्यागता हूं. "सव्वं परिग्गहाओ पच्चक्खामी" सर्वथा परिग्रह (ममत्व) को त्यागता हूं. "सव्वं को हं-माणं-माया-लोभं-राग-द्वेषं-कलहं-अभ्याख्यानं-पैसुनं-पर परा वायं-रति अरति—माया—मोसमं मिच्छा दंसण सल्लं अकरणी जे जोगं पच्चक्खामी"—सब—क्रोध—मान—माया लोभ—राग—द्वेष—क्लेश—कलंक—चुगली—निन्दा—हर्ष—शोक—गप्पझूंठ—मिथ्या मत का शल्य इन अनाचरणीय जोगों के प्रत्याख्यान तीन करन और तीन योग से करे अर्थात् करे नहीं करावे नहीं करते को अच्छा जाने नहीं मन से वचन से और काया से. यों अठारह ही पाप स्थान के प्रत्याख्यान करके फिर "सव्वं असणं पाणं खाइयं साइयं चउविहंपि आहारं पच्चक्खामी"— अन्न पाणी पक्वान मुखवास और अपि शब्द से सूंघने की आंख में डालने की इत्यादि सब वस्तु के प्रत्याख्यान करता हूं. यों चारों ही आहारादि के प्रत्याख्यान कर फिर "जंपियं इमं शरीरं"— जो यह मेरा प्रिय शरीर "इट्ठं"—इष्ट देव के समान इसकी भक्ति की ऐसा इष्टकारी "कंतं"—पति के समान वल्लभ, "पियं"—स्त्री के समान

प्यारा. " मणुणं "— मनोज्ञ. " मणाणं "— मनोरम. " धिज्जं "—धैर्यदाता. " विसासियं"—विश्वासनीय. " समयं "—माननिय. " बहुमयं"—लोभी के बहुत मानने योग्य. "अणुमयं"—दुगुणी जाना तो भी माना "भंडकरंडग समाणे "—आभूषणों के करंड (डब्बे) के समान हिफाजत कर रक्खा. "रयण करंडग भूया"—देवता के रत्न के करंड समान प्राण प्यारा रखा. सोही कहते हैं. " माणं सीया "—शीत (जाड़े) के उपद्रव बचाने को उष्ण वस्त्र कम्बल दुशालादि से ढककर रखा. "माणं उन्हा"—उष्ण (गरमी) के उपद्रव से बचाने को महीन वस्त्र शीतल पानी हवा पंखे पुष्पादि से पोषन किया. "माणं खुहा"—क्षुधा (भुख) के दुःख से बचाने को खान पान मेवा पक्वान इत्यादि रुचिकारक पदार्थों कर पोषन किया. "माणं पिवासा" तृषा (प्यास) के दुःख से बचाने को शीतोदक शरबत बरफ आदि से पोषन किया. "माणं वाला "—व्याल (सर्प) आदि जहरी जानवरों के दंश के उपद्रव से बचाने को मंत्रोपचार जड़ी बूंटी औषधोपचार का बन्दोबस्त किया. " माणं चोरा "—चोर ठग इत्यादि के उपद्रव से शरीर का तथा धन का रक्षण करने की शस्त्र अस्त्र सिपाई मकान ताला कुंजी आदि का बन्दोबस्त किया. "माणं दंसमसगा"—डांस मच्छर षटमलादि से शरीर का स्वरक्षरण करने मच्छरदानी आदि वन्दोवस्त तथा अज्ञानावस्था में धूम्र अग्नि उष्ण पानी आदि के प्रयोग से एक शरीर के रक्षण के लिये अनेक जीवों को मार डाले. " माणं वाहियं पित्तियं कप्फियं संभीमं सन्नि वाइयं विवहारो गायंका परिसहा उवगा फासाफुसंति "—वादी पित्त कफ श्लेषम सन्नीपात आदि विविध रोगों से शरीर को बचाने के लिये सूंठ मेंथी त्रिफले आदि औषधियों औपाधि के मोदक पाक क्वाथ चूरणादि का सेवन किया. शत्रु मित्रादि से उत्पन्न होते अनुकूल प्रतिकूल परिषह तथा व्यन्तरादि से उपसर्ग के लिये काम दमन बन्धन स्थम्भन मारन मोहन मन्त्रादि किये.

इस प्रकार जिस २ दुःख प्रद स्पर्श का स्पर्श होता जाना उन सबका यथा शक्ति प्रतिकार कर रक्षण किया. मेरी इस अज्ञानता का अब मुझे खेद होता है कि जिस शरीर की मैंने उक्त प्रकार हिफाजत कर प्राण से प्यारा बनाकर रखा वही यह मेरा शरीर अब मुझे दुःख देने लगा। वृद्धावस्था रोगादि अनेक प्रकार के दुःख से पीड़ित करने लगा, ऐसे दगा बाज शरीर का मोह अब मैं परित्याग करूं "चरमेहीं उस्सास निस्सासेहि बोसीरामी"—अन्तिम श्वाशोश्वास परियन्त बोसीराता हूं—यह शरीर मेरा नहीं और मैं इस शरीर का नहीं इस प्रकार ममत्व भाव का परित्याग कर अब जावज्जीव पर्यन्त इस शरीर के रक्षण व सुखोपचार नहीं करूंगा। इस शरीर को वोसीरा कर फिर जल्दी मरजाऊं तो अच्छा इस "काल अणव कंखमाणे विहरामी" मृत्यु की इच्छा नहीं करता हुआ विचरूंगा । यह अनगारिक संथारा का कथन हुआ ।

सल्लेखना-संथारा के पांच अतिचार।

१ "इह लोग संसपउगे"— मेरे संथारे का फल के प्रशाद से मुझे मृत्यु के बाद राजा का रानी का प्रधानादि ओहदेदारी का शेठ का शिठाणी का पद प्राप्त होवे सैना परिवार ऋद्धी सम्पदा श्रेष्ट प्राप्त होवे, सभी का माननीय बनूं. इत्यादि इस लोक सम्बन्धी पद्वी ऋद्धी सुख की अभिलाषा करे तो अतिचार लगे. २ "परलोग संसपउगे"—तैसे ही मेरे संथारे के फल से मुझे इन्द्र का इन्द्रानी देवता देवी का अहेमेन्द्रादि का पद प्राप्त+होवे, इत्यादि पर लोक के ऋद्धी सुख की वाञ्छा करे. ३ "जीवीया संसपउगे"—

+ तपश्चर्या तथा संथरा आदि धर्म करणी करके जो उक्त प्रकार इस लोक पर लोक सम्बन्धी ऋधी सुख अनुबन्ध करते हैं। वे क्रोडों का फल कोडी में गुमाने जैसे कर देते हैं। कभी करणी से विशेष फल मिलता ही नहीं है तैसे ही करणी का फल भी निष्फल नहीं होता है। फिर बांधा कर करणी का फल क्यों गुमाना चाहिये? अर्थात नहीं गुमाना चाहिये निर्वांछक करणी द्वारा मोक्ष प्राप्त होती है इसही पर लक्ष रख महा लाभ लेना चाहिये।

संथारा करने से महिमा पूजा विशेष लोगों का आगमन प्रतिष्ठा देख इच्छा करे कि मैं बहुत जीता रहूं तो अच्छा होवे. ४ "मरणा संसपउगे"—क्षुधा आदि वेदना से पीड़ित—दुःखित हो विचार करे कि—जल्दी मरजाऊं तो अच्छा * और ५ " काम भोग संसपउगे "—अच्छे राग रागनी वादिन्त्रादि सुनने का नाटक चेटक स्त्री आदि के रूप निरक्षण करने का, अतर पुष्पादि सुगन्धी द्रव्य सूंघने का षटरस भोगवने का, स्त्री शनावासनादि भोगवने का नियांणा करे तो अतिचार लगे. सह्लेषना-संथारा धारक महात्मा को उक्त पांचों ही प्रकार के विचार कदापि नहीं करना चाहिये।

श्लोक—किं बहु लिखने न, संक्षेपादिद उच्यते।
त्यागो विषय मात्रस्य, कृतव्योऽखिल मुमुक्षुभि; ॥१॥

अर्थ—विशेश लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं है. संक्षेप में इतना ही कहना काफी है कि--मोक्षाभिलाषी को विषय का सर्वथा परित्याग करना चाहिये।

समाधी मृत्यु (संथारे) वाले की भावना।

१ अहो इति आश्चर्य कि-अनन्त प्रमाणु पुद्गलों का समूह मिलकर यह शरीर पिण्ड निर्माण हुआ और देखते २ ही यह प्रलय होने लगा. देखिये यह कैसी विचित्रता है।

२ अहो जिनेन्द्र भगवान! आपने कहा है कि- अधुव असासयंमि अर्थात् यह पुद्गल पिण्ड (शरीर) अधृव (अस्थिर) और अशाश्वत (अनित्य) है इस कथन का इतने दिन तो मैने ख्याल नहीं किया किन्तु अब शरीर की यह विनाशिक रचना देख निश्चयात्मक बना हूं कि आपका कथन तह मेव सत्य है।

३ जिस प्रकार मनुष्यों के समूह के मिलने से मेला कहलाता है वह

* अधिक जीना या जल्दी मरना यह किसी के वश की बात नहीं है। इच्छा करने से आयुष्य कभी ज्यादा होती नहीं है किन्तु कर्म बन्धन तो अवश्य ही होता है इसलिए निकम्मे विचार से नाहक कर्म बन्धन नहीं करना चाहिये।

कालान्त्र में बिखर जाने से शुन्यारण्य हो जाता है, इसही प्रकार कुटुम्बों के सम्बन्ध से संसार रूप मेला बना है और पुद्गलों के समूह से शरीर-रूप मेला बना है, इसका भी बिखरने का स्वभाव है, जैसे मेले में उपस्थित हुए प्रेक्षक मेला बिखरने की फिकर नहीं करते हैं तैसे मैं (चैतन्य) भी प्रेक्षक हूं फिकर करना मुझे उचित नहीं है।

४ जगत् का कर्त्ता हर्त्ता कोई भी नहीं है, सब पदार्थ स्वभाव से ही मिलते बिखरते हैं तैसेही इस शरीर का भी संयोग स्वभाव से ही बिखरता है मेरे रखने से रहता नहीं और बिखेरने से बिखरता नहीं तो फिर इसके वियोग का फिकर मुझे क्यों करना ? अपितु नहीं करना चाहिये ! होना होगा सो ही होगा !!

५ मैं (चैतन्य) ज्ञायक स्वभाव का कर्त्ता भोक्ता अनुभविक और उत्साह मय हूं वह ज्ञायक स्वभाव अविन्याशी है और शरीर नाशिक है, शरीर का नाश होते भी मेरे स्वभाव का नाश नहीं होता है, इसलिये मुझे फिकर करना अनुचित है।

६ अहा जिनेन्द्र ! इतने दिन इस शरीर को 'मैं' मेरा मानता था, किन्तु अब मुझे सत्य भाप हुआ कि यह मेरी आज्ञा और इच्छा विनाही मेरे कट्टर शत्रु रोग और वृद्धावस्था से मिलगया तथा मृत्यु से मिलने को भी तैयार होगया इसलिये यह मेरा नहीं है, अब रहो चाहे जावो ?

७ रे भोले जीव ! इस शरीर को माता पिता पुत्र कहते हैं भ्रात भगिन भाई कहते हैं, काका काकी भतीजा कहते हैं, मामा मामी भानजा कहते हैं, स्त्री पति पुत्र पुत्री पिता इत्यादि सब अपना २ कहते हैं और तु तेरा मानता है, अब वह यह किस २ का है ? परमार्थ से देखो तो किसी का भी नहीं है क्यों कि इसे कोई भी रखने में समर्थ नहीं है इस लिये सब से ममत्व भाव का त्याग कर और निज स्वभाव में रमण कर किंतु सब से भिन्न चिदात्मक है।

८ रे आत्मन्! यह शरीर सम्पदा इन्द्रजाल की माया के समान है।

श्लोक—बालो यौवन सम्पदा परिगतः क्षिप्रं क्षितो लक्षते।
वृद्धत्वेन युवा जरा परिणत्तौ व्यक्तं स्मा लोक्यते॥
सोऽपि क्वापिगतः कृतान्त वश तो न ज्ञायते सर्वथा,
पश्यै तद्यदि कौतकं किं मपरै स्तैरिन्द्र जालै सखे॥ १॥

अर्थ—अरे मित्र! यह शरीर काल के वशीभूत बना इन्द्रजाल के तमाशे के समान क्षण २ में परावृत होता है उसका जरा अवलोकन कर, बाल्यावस्था में यह शरीर सबको प्यारा लगता है, फिर शनैः २ पुद्गलों प्रादुर भाव को प्राप्त होते युवावस्था में यह शरीर छटादार मनोहर बन स्त्री पुरुषों के मनको हरण करने लग जाता है और इसी प्रकार के पलटते वृद्धावस्था में यही शरीर गलित पलित हो घृणता का सदन बन उन प्यारों को तथा उस पालक को ग्लानी का उत्पादक बन जाता है आखीर मृत्युक बनेन से थे ही स्वजनों तत्काल मोह को परित्यागकर भस्म कर डालते हैं, ऐसी इस शरीर की और कुटुम्बियों की हालत देखता हुआ और जानता हुआ भी मोह का परित्याग नहीं करता है अहो इति खेदाश्चर्य!

९ जो जीता है वह मरता नहीं है और जो मरता है वह जिन्दा रहता नहीं है अर्थात् आत्मा अविनाशी और शरीर विनाशी है, इसलिये मृत्यु शरीर का ग्रास कर सकती है 'न कि आत्मा का?' जबसे शरीर उत्पन्न हुआ तबसे क्षण २ में क्षीण हो ही रहा है किन्तु मैं तो जैसा था वैसाही हूं और वैसाही रहूंगा, मुझे मृत्यु प्राप्त हुई नहीं, होती नहीं और होवेगीभी नहीं, ऐसे निश्चयात्म को मृत्यु का भय होताही नहीं है।

१० मैं आकाशवत् हूं इसलिये अग्नि में जलता नहीं पानी से गलता नहीं वायु से उड़ता नहीं हस्तादि से ग्रहण किया जाता नहीं और न श

भी पाता नहीं, विशेष में आकाश अचैतन्य अमूर्त्ति है और मैं सचैतन्य अमूर्त्ति होने से अधिक सत्तावन्त हूं।

११ जैसे श्रीमान के पुत्र के दोनों बाजु की जेबों में मेवा भरा होने से वह जिधर हाथ डाले उधर स्वादिष्ट पदार्थही मिलता है तैसे मेरे भी दोनों हाथ मेवा है अर्थात् जीता हूं तो संयम पालता हूं, श्रावकव्रत पालता हूं, स्वाध्याय ध्यान दानादि करता हूं और मरगया तो स्वर्ग मोक्ष के सुख का भोक्ता बनूंगा, महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी आदि तीर्थंकरों के गणधरों के साधु साध्वियों के दर्शन का लाभ प्राप्त करूंगा, धर्मोपदेश सुनूंगा, प्रश्नोत्तर द्वारा संशय का उच्छेद कर तत्वज्ञ बन राग द्वेष का उच्छेद करने में समर्थ बनूंगा और मनुष्य जन्म ले संयम तप से कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करूंगा।

१२ जैसे कोई गृहस्थ श्रीमन्त बनकर टूटे फूटे पुराने घरका परित्याग करने बहुत द्रव्य का व्यय कर मनोहर हवेली बनाता है वह तैयार हुई के तुर्त बड़े ही उत्सव और हर्ष पूर्वक पुराने मकान का त्याग कर नई हवेली में निवास करता है तैसे ही यह आत्मा संयम तपादि सद्द्रव्य से श्रीमान बन आधी व्याधी उपाधी से पूरित हरिथ मंस चर्म मय सडन पडन स्वभाव वाले शरीर का त्याग करने पुण्य रूप द्रव्य के भय से तैय्यार हुआ मनोवांछित रूप का कर्त्ता आधी व्याधी उपाधी रहित दिव्य देवता के शरीर में हर्षोत्साह युक्त निवास करते हैं, झोंपडी कुटी कि महल मिला।

१३ जैसे लोभी वणिक क्षुधा तृषा शीत ताप सह देशाटन कर माल का संग्रह करता है, और फिर तेजी के भाव की मार्ग प्रतिक्षा करते जब भाव तेज हुआ कि अति कष्ट से संग्रह किये माल का ममत्व को तुर्त परित्याग कर बेच कर लाभ प्राप्त करता है, तैसेही रे जीव! प्राण प्यारे मन पुद्गल को परित्याग कर क्षुधा तृषा शीत ताप उग्रविहारादि जिस शरीर

से महा कष्ट सह कर तप संयम धर्म रूप जो माल संग्रह किया है उसका मोक्ष रूप लाभ प्राप्त करने के लिए यह मृत्यु रूप तेजी का भाव आया है इसलिये शरीर के ममत्व का परित्याग कर मोक्ष व स्वर्ग रूपी लाभ प्राप्त करलो.

१४ जैसे दिनभर की हुई मजूरी का फल शेठ देताहै तैसे जन्म भर की हुई करणी का फल मृत्यु से प्राप्त होता है. तो अब फल प्राप्त करने को इन्कार क्यों करना चाहिये ? यह मृत्युरूप शेठ जी आए हैं तो आदर सभार लाभ लेना चाहिये.

१५ जैसे किसी राजा को किसी परचक्री राजा ने पकड कारागृह या कटपिंजर में कब्ज कर क्षुधा तृषा ताडन तर्जनादि दुःख से पीडित करता यह समाचार उसका कोई मित्र राजा श्रवन कर दलबल ले आता है और कारागृह से तथा पिंजर से मुक्त कर मित्र को सुखी करता है तैसे ही कर्मरूप शत्रु राजा ने चैतन्य राजा को संसार कारागृह में तथा शरीर रूप पिंजर में कब्ज कर रोग शोग बियोग पराधीनतादि तरह २ के दुखों से पीडित कर रहा है इस दुःख से मुक्त करने यह मृत्यु रूप मित्र राज रोगादि रूप सेना से परिवृत मुझे दुःख मुक्त करने आया है इस लिये यह उपकारिक है.

१६ भूत भविष्य और वर्तमान में जो उत्तम स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को प्राप्त करते हैं वे सब समाधि मरण से ही करते हैं समाधी मृत्यु के सिवाय उत्तम स्वर्ग व मोक्ष के सुख नहीं मिलते हैं इसलिए हे सुखार्थी आत्मान् ! तुझे भी समाधि मरन करना उचित है.

१७ कल्पवृक्ष की छांहमें बैठ शुभाशुभ जैसी वांछा जो करता उसको वैसा ही शुभ वांछा का शुभ और अशुभ वांछा का अशुभ फल प्राप्त होता है, तैसेही मृत्यु भी कल्पवृक्ष के समान है इसकी छांह में बैठकर जो विषय कषाय मोह ममत्वादि खराब इच्छा करता है वा नर्क तिर्यंच

दुर्गति के दुःख का भोक्ता बनता है और जो समत्याग वैराग व्रत नियम सत्य शील दया क्षमा समाधी भाव धारताहै वह स्वर्ग मोक्षके सुख का भोक्ता बनता है, इसलिये शुद्ध व शुभ भाव रखनाही श्रेष्ठ है।

१८ अशुची पूरित फूटे हण्डे के समान सदैव स्वेद श्लेशम मल-मूत्रादि झरते हुये इस अपवित्र जर्जरित औदारिक शरीर के फन्दे से छुडाकर असररिपिना व दिव्य देवता के शरीर को प्रदान करने वाली मृत्यु ही है।

१९ जैसे धर्मोपदेशक मुनि महात्मा अनेक नये उपनय प्रत्यक्ष परोक्ष हेतु दृष्टान्त आदि द्वारा शरीर का स्वरूप समझाकर ममत्व कमी कराते हैं तैसे ही मेरे शरीर में उत्पन्न हुआ यह रोग भी मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण से उपदेश करता है कि रे प्राणी! तू इस शरीर का ममत्व क्यों करता है क्यों कि यह तेरा नहीं है किन्तु मेरे स्वामी काल का भक्ष है।

२० किं वहुना मुनिराज से भी अधिक और असर कारक उपदेश कर्ता मुझे तो यह रोग मालुम पडता है क्योंकि जिस शरीर को मैं प्राण प्यारा मान कर अनेक सुखोपचारों से पोष कर इसकी खूब सुरती कोमलतादि गुणों मे लुब्ध बन रहा था वह प्रेम अनेक उपचार करते भी जब रोग नष्ट नहीं होता है तब स्वभाव से ही नष्ट होजाता है।

२१ रे जीव! यदि इस रोगोदय के दुःख से तू जो घबराता हो सचमुच तुझे यह रोग खराब ही मालुम पड़ता हो इस दुःख से पूरा पूरा कंटाला आता हो तो तू सब बाह्य औषधोपचार का परित्याग करदे क्यों कि यह रोग कर्माधीन है और बाह्य औषधोपचार में रोग मिटाने की सत्ता नहीं है, कदाचित एकाधे रोग कम भी पड गया तो क्या हुआ क्यों कि संख्यात असंख्यात व अनन्त काल में वह पीछे उदय होजाता है किन्तु सब रोगों के और उनकी अचूक चिकित्सा के ज्ञाता श्री जिनेन्द्र भगवान रूप वैद्य-राजेन्द्र की कही हुई परमौषधी समाधी मृत्यु रूपी का सच्चे दिल से

सेवन कर कि जिससे आधी व्याधी उपाधी समूल नष्ट हो अनन्त अक्षय अजरामर अव्याबाध मोक्ष के सुख प्राप्त होवें।

२२ ज्यों २ वेदनीय का जोर अति प्रबल्य होय त्यों २ आपभी अधिक खुश होय क्योंकि जिस प्रकार सुवर्ण का अधिकाधिक ताप लगता है त्यों २ वह अधिकाधिक स्वच्छ शुद्ध निर्मल हो कुंदन बन जाता है तैंसे ही तीव्र वेदनीयों दया में सम परिणाम धारन करने से कठिन कर्मों का भी समूल शीघ्र ही नाश हो आत्म रूप सुवर्ण शुद्ध स्वच्छ निर्मल हो सिद्ध स्वरूप बन जाता है।

२३ जिस प्रकार गज सुकुमालजी ने सोमलके मस्तक पर धरे अङ्गार की महावेदना सही स्कन्धक जी ने उस्तरे से सब शरीर की चमडी उतारने की महा वेदना सही ५०० शिष्यों को पलिक ने घानी में पीले जिसकी महावेदना सही इत्यादि महा पुरुषों ने तीव्र वेदना के वक्त में समभाव रखे तो तत्काल मुक्ति प्राप्ति की तैसे ही तू भी समभाव रखेगा तो शीघ्र ही आत्म कल्याण होगा।

२४ रे प्राणी! तैंने नर्क में क्षेत्र वेदना यमों की मार आदि महा कष्ट सहा, तिर्यंच योनीमें क्षुधा तृषा ताडना परवशता का महा कष्ट सहा, मनुष्यत्व में दरिद्रता पराधीनता से महा कष्ट सहे, देवता में अभोगिक देव हो वज्र प्रहारादि महा कष्ट सहा यों अनादि काल से महा दुख सहा तैसा कष्ट तो यहां नहीं है किन्तु जितने कर्मों की निर्जरा अनन्त काल के कष्ट सहन सेनहीं हुई उतनी बल्कि उससे भी अनन्त गुनी निर्जरा यहां इस प्रबल्य वेदनी को समभाव से सहेगा तो हो जायगा। उक्त सब कष्टों से मुक्त हो परमानन्दी परम सुखी बन जायगा।

२५ जैसे संसार में लेन देन के व्यवहार में जो कर्जदार साहुकार को १०० रुपये बदल कर ९५ रुपये नम्रता से समर्पण कर फारकती मांगे तो वह देदेता है और जो वह धृष्टता करे तो सवाए दाम देने से भी

छुटकारा होना मुश्किल हो जाता है, तैसे ही यह वेदनीय कर्म पूर्वकृ कर्जे को लेने आये हैं इनका नम्रता से चुकाता करदे जिससे थोड़े । में तेरा छुटकारा होजावे ।

२६ यह तो निश्चय समझ ले कि "कडा न कम्मा न मोक्खत्थी" कृ कर्म का बदला दिये बिना कदापि छुटकारा नहीं होने का, अब देने व समर्थ हो क्यों मुंह छिपाता है ? क्यों व्याज वढ़ाता है ? शीघ्र ही खुश से चुकादे ।

२७ जिस प्रकार विचक्षण बानिक महा मूल्य वस्तु को अल्प मूल्‍ में प्राप्त होती देख गुपचुप बड़े ही हर्षोत्साह से खरीद लेते हैं तैसे ही जं स्वर्ग मोक्ष के सुख मुनि महात्माओं दुष्कर तप संयम ध्यान मौनाि करणी द्वारा प्राप्त करते हैं वही सुख केवल समाधी मृत्यु मात्र से भ प्राप्त हो जाते हैं महा मूल्य निर्वाण सुख की समाधी मरण रूप अल्‍ मूल्य में प्राप्त करने का यह अत्युत्तम अवसर प्राप्त हुआ है तो अ प्राप्त करले ।

२८ जिस प्रकार सुभटों धनुर्विद्यादि अभ्यास कर साधन द्वार सिद्ध कर सज्ज रहते हैं और सत्रु का प्रसङ्ग प्राप्त होते उसे सिद्ध विद्या द्वारा शत्रु का पराजय कर साध्य सिद्ध करते हैं तैसे ही रे प्राणी ! तैंने इतने दिन जो ज्ञानाभ्यास और तप संयमादि को साधन किया है वह इसही अवसर को सिद्ध करने के लिये, वह अवसर अब प्राप्त हो गया है इसलिये अब सच्चे मन से रोग मृत्यु आदि शत्रुओं के सम्मुख हो समभाव रख इष्टितार्थ सिद्ध करले ।

२९ जिसका विशेष परिचय होता है उससे स्वाभाविक ही प्रेम कम पड़ जाता है, तैसेही शारीरिक परिचयभी तुझे अनादि काल से है इसका प्रेम भी अब कम होना चाहिये ।

३० वापरते २ जब वस्त्रों जीर्ण हो जाता है तब उस पर का ममत्व

त्याग कर नवा वस्त्र हर्ष पूर्वक धारण करते हैं तैसे ही दिव्य देव शरीर की प्राप्ती होते इस रोगादि से जीर्ण बीत शरीर का मोह भी कम किया चाहिये, पुराना बस्त्र उतारने से ही नवा वस्त्र धारण किया जाता है।

प्रश्न—शास्त्र कारों ने मनुष्य जन्म को बडा दुर्लभ्य बताया है तैसे ही इस शरीर का पालन पोषन करने से ही शुद्ध उपयोग व्रत संयमादि धर्म का साधन हो सकता है इस लिये ऐसे उपकारिक शरीर का रक्षण करना ही उचित है, तुम संथारा कर इसका नाश क्यों करते हो ?

उत्तर—तुम्हारा कहना सत्य है, हम भी ऐसा ही जानते हैं, किन्तु जैसे कोई साहूकार द्रव्यलाभोपार्जन करने दुकान की हिफाजत करते २ किसी वक्त अग्नि प्रयोग हो जाय और उसका उपाय चले वहां तक तो दुकान और द्रव्य दोनों को बचाने का प्रयत्न करता है, जब किसी भी उपाय से दुकान बचने जैसी नहीं देखता है तब उसमें के द्रव्य बचाने का उपाय करता है किन्तु दुकान के साथ धन का नाश नहीं होने देता है, तैसे ही हम इस शरीर रूप दुकान की सहाय से तप संयम परोपकारादि अनेक लाभ उपार्जन करते थे और इस प्रकार के लाभार्थी बन अन्न वस्त्रादि से इसका पोषन भी करते थे, रोग रूप अंगार लगने पर औषधोपचार आदि कर इसे बचाने का भी उपाय किया किन्तु जब मृत्यु रूप महाग्नि लगते इस शरीर का बचाव किसी भी प्रकार होता हुआ नहीं देखते हैं तब इस जलती झोंपडी को छोड़ इसके रक्षण का भी प्रयत्न छोड़ हम अपने ज्ञानादि आत्मिक गुण रूप रत्नों के स्वरक्षण में लगे हैं क्यों कि आत्मिक गुण के प्रसाद से ही अक्षय अनन्त निराबाध मोक्ष के सुख प्राप्त करेंगे।

श्लोक--यस्त विज्ञानवान स्वयत्यमस्कः सदाऽशुचिः ॥
नस तत्यद माप्नोतिस सारंचाधि गच्छति ॥ १ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदाशुचिः ॥
स्तुतत्पद माप्नोति यस्माद भूयो न जायते ॥ २ ॥

अर्थ—जो विवेक रहित मनुष्य मन के पीछे चलता है वह सदै[illegible] अपवित्र रहता है अनन्त संसार परिभ्रमण करता है किन्तु शान्त पद (मोक्ष) प्राप्त नहीं कर सकता है और जो विवेक सम्पन्न मन का ज[illegible] कर निरन्तर शुद्ध भाव में रमण करता है उसे फिर पुनरावर्ती करना [illegible] पड़े ऐसे आनन्द (मोक्ष) पद को प्राप्त होता है। *

समाधी मृत्यु स्थित के ४ ध्यान ।

१ 'पदस्थ'—नमस्कार मन्त्र, लोगस्स, नमोत्थुणं, शास्त्र आलोयना पाठ, स्तवन छन्द महापुरुषों व सतियों के चरित्र में लगा रहे. २ 'पिण्डस्थ'—शरीरोत्पत्ती से प्रलय अवस्था हुई शरीर की विचित्रता पुद्गल परावर्तता रोग असमाधी खियालात, शरीर के बाह्याभ्यन्तरिक अशुद्धी प्रकृति क शरीर और आत्मा की भिन्नता और लोक संस्थान तथा द्वितीय प्रकरण कथित लोक में रहे स्थानों का चिन्तवन प्रथम खण्ड के प्रथम प्रकरण कथित अरिहन्त परमात्मा स्वात्म गुणों की एक्यता भिन्नता पृथक्त्व से अपृथक्त्व और उन गुनों में तल्लीन बने और ४ "रूपातीत"—साथ स्वात्म के गुणों की एकत्रता करे कि जिस प्रकार सत्य चित्त आनन्द मय हैं उसही प्रकार मैं भी सत्। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त त अरूपना, अखण्डितता, अजरामर, अविनाशीपना, सिद्धमं,

* श्लोक— धर्म प्रधानं पुरुषं तपसा हत किल्बिषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्त म्वशरीरिणम् ॥

अर्थ—जिन प्रधान पुरुषों ने तपश्चर्या से की काम का क्षय किया व [illegible] शरीर हो कर परमेश्वर से मिल जाता है ।

है और मेरे में शक्ति रूप है. वह शक्ति गत, व्यक्ति गत होते ही मैं भी सिद्ध बन जाऊंगा, जन्म जरा मृत्यु के जालमें दुखों से विमुक्त हो अज, अजर, अमर, अविनाशी हो जाऊंगा: आधी, व्याधी, उपाधी के झगडे से छूट सत्त चित्त आनन्द मय होकर जिसकी पर्याय का पलटा नहीं होवे, ऐसे धृव और जिसका अंश मात्र नाश न होवे, ऐसे नित्य अनन्त अक्षय सुख मय बनूंगा, * इस प्रकार चारों ध्यान को बाहिरिक भाव से ध्येय रूप बताता तथा शारीरिक १--पदस्थ ध्यान से कम्मर के नीचे के अंग की ओर प्रथम लक्ष रख फिर २ पिण्डस्थ ध्यान सो कम्मर के नीचे के अंग को ओर प्रथम लक्ष को चढा कर फिर ३--रूपस्थ ध्यान सो ग्रीवा के ऊपर के अंग की ओर लक्ष चढाता हुआ ४--रूपातीत ध्यान सो सर्व शरीर व्यापक आत्मा में लक्ष को स्थिर करे, फिर प्रथम आत्म द्रव्य और उसकी पर्याय में ध्यान से गोते खाता श्रेणी सम्पन्न ब्रस एक आत्म द्रव्य में ही रमण करता चतुर्घनघातिक कर्मों को सर्वांश नाश कर केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त कर सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती हो आयु के चारों अघातिक कर्म सर्वांश क्षय कर मोक्ष होवे, अमात्म बने।

कदाचित् शुद्ध ध्यानकी मन्दता और शुभ ध्यान की विशेषता होने से सात लव मात्र या अधिक आयुष्य की न्यूनता होने से अथवा एक अष्टम तप (बेले) के प्रयोग से क्षय होवे इतने या अधिक कर्म अवशेष रहने से उन्हें भोगवने वा विमल पुण्य का पुरुषार्थी बना जीव सर्वार्थ सिद्ध विमान आदि ऊंचे देवलोक में अहेमेन्द्र इन्द्र सामानिक तृयत्रिंसकादि उत्तम देवों के पद

---

* श्लोक--अशब्द मस्पर्श मरूप मव्यय तथाऽरसं नित्य मगन्ध वच्चयत।
अनाद्य नन्तं महतः परं ध्रुवं निचायतं मृत्यु मुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

अर्थ—कठोपनिषद की तृतीय वल्ली में कहा है कि जो शब्द स्पर्श रस रूप गन्ध इनों से रहित सदैव उत्पन्न प्रलय रहित एक से अविनाशी अनन्त अति सूक्ष्म और अचल इतने गुनों से संयुक्त ऐसे परमात्मा को जानने से प्राणी मृत्यु से छूट जाता है अतएव परमात्मा बन जाता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदाशुचिः ॥
स्तुतत्पद माप्नोति यस्माद भूयो न जायते ॥ २ ॥

अर्थ—जो विवेक रहित मनुष्य मन के पीछे चलता है वह सदैव अपवित्र रहता है अनन्त संसार परिभ्रमण करता है किन्तु शान्त पद (मोक्ष) प्राप्त नहीं कर सकता है और जो विवेक सम्पन्न मन का जय कर निरन्तर शुद्ध भाव में रमण करता है उसे फिर पुनरावर्ती करना नहीं पड़े ऐसे आनन्द (मोक्ष) पद को प्राप्त होता है। *

समाधी मृत्यु स्थित के ४ ध्यान।

१ 'पदस्थ'—नमस्कार मन्त्र, लोगस्स, नमोत्थुणं, शास्त्र स्वाध्याय, आलोयना पाठ, स्तवन छन्द महापुरुषों व सतियों के चारित्र पठन श्रवन में लगा रहे. २ 'पिण्डस्थ'—शरीरोत्पत्ती से प्रलय अवस्था परियन्त होती हुई शरीर की विचित्रता पुद्गल परावर्तता रोग असमाधी समय के वैरागी खियालात, शरीर के बह्याभ्यन्तरिक अशुद्धी प्रकृति का परावर्त तथा शरीर और आत्मा की भिन्नता और लोक संस्थान तथा प्रथम खण्ड के द्वितीय प्रकरण कथित लोक में रहे स्थानों का चिन्तवन करे. ३ 'रूपस्थ'—प्रथम खण्ड के प्रथम प्रकरण कथित अरिहन्त परमात्मा के गुणों के साथ स्वात्म गुणों की एकयता भिन्नता पृथक्त्व से अपृथक्त्व बनने का साधन और उन गुनों में तल्लीन बने और ४ "रूपातीत"—सिद्ध के गुणों के साथ स्वात्म के गुणों की एकग्रता करे कि जिस प्रकार सिद्ध परमात्मा-सत्य चित्त आनन्द मय हैं उसही प्रकार मैं भी सत् चितान्द मय हूं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त तप, अनन्त वीर्य, अरूपता, अखण्डितता, अजरामर, अविनाशीपना, सिद्धम, व्यक्ति रूप,

---

* श्लोक— धर्म प्रधानं पुरुषं तपसा हत किल्बिषम।
परलोकं नयत्याशु भस्वान्त स्वशरीरिणम् ॥

अर्थ—जिन प्रधान पुरुषों ने तपश्चर्या से की काम का क्षय किया उनका मित्र स्वरूप प्रगट हो कर परमेश्वर से मिल जाता है।

है और मेरे में शक्ति रूप है. वह शक्ति गत, व्यक्ति गत होते ही मैं भी सिद्ध बन जाऊंगा, जन्म जरा मृत्यु के जालमें दुखों से विमुक्त हो अज, अजर, अमर, अविनाशी हो जाऊंगा. आधी, व्याधी, उपाधी के झगडे से छूट सत्त चित्त आनन्द मय होकर जिसकी पर्याय का पलटा नहीं होवे, ऐसे ध्रुव और जिसका अंश मात्र नाश न होवे, ऐसे नित्य अनन्त अक्षय सुख मय बनूंगा, * इस प्रकार चारों ध्यान को बाहिरिक भाव से ध्येय रूप बताता तथा शारीरिक १--पदस्थ ध्यान से कम्मर के नीचे के अंग की ओर प्रथम लक्ष रख फिर २ पिण्डस्थ ध्यान सो कम्मर के नीचे के अंग को और प्रथम लक्ष को चढा कर फिर ३--रूपस्थ ध्यान सो ग्रीवा के ऊपर के अंग की ओर लक्ष चढाता हुआ ४--रूपातीत ध्यान सो सर्व शरीर व्यापक आत्मा में लक्ष को स्थिर करे, फिर प्रथम आत्म द्रव्य और उसकी पर्याय में ध्यान से गोते खाता श्रेणी सम्पन्न ब्रत एक आत्म द्रव्य में ही रमण करता चतुर्धनघातिक कर्मों को सर्वांश नाश कर केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त कर सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती हो आयु के चारों अघातिक कर्म सर्वांश क्षय कर मोक्ष होवे, अमात्म बने।

कदाचित् शुद्ध ध्यानकी मन्दता और शुभ ध्यान की विशेषता होने से सात लव मात्र या अधिक आयुष्य की न्यूनता होने से अथवा एक अष्टम तप (बेले) के प्रयोग से क्षय होवे इतने या अधिक कर्म अवशेष रहने से उन्हें भोगवने वा विमल पुण्य का पुरुषार्थी बना जीव सर्वार्थ सिद्ध विमान आदि ऊंचे देवलोक में अहेमेन्द्र इन्द्र सामानिक तृयत्रिंसकादि उत्तम देवों के पद

* श्लोक--अशब्द मस्पर्श मरूप मव्यय तथाऽरसं नित्य मगन्ध वच्चयत।
अनाद्य नन्तं महतः परं ध्रुवं निचायतं मृत्यु मुखात्प्रमुच्यते ॥ १५॥

अर्थ—कठोपनिषद की तृतीय वल्ली में कहा है कि जो शब्द स्पर्श रस रूप गन्ध इनों से रहित सदैव उत्पन्न प्रलय रहित एक से अविनाशी अनन्त अति सूक्ष्म और अचल इतने गुनों से संयुक्त ऐसे परमात्मा को जानने से प्राणी मृत्यु से छूट जाता है अतएव परमात्मा बन जाता है।

को प्राप्त हो अत्युत्तम सुखोपभोग को अनेक सागरोपम तक भोग कर पुनः मनुष्य लोक में १० बोलों को प्राप्त करने वाला उत्तम मनुष्य बनें।

गाथा—खित्तं वत्थुं हिरण्णं च। पसवो दास पोरुसं॥
चत्तारी काम खन्धारी। तत्थ से उववज्जई॥१७॥
मित्तवं नायवं होइ। उच्च गोए वण्ण वं॥
अप्पायंके महा पण्णे। अभिजाए जसो बले॥१८॥उ०अ०३,

अर्थ--खेत, बगीचे, २ मेहल, हवेली, ३ धन, धाम, ४ अश्व, गज, आदि पशु तथा दास दासी इन चारों का एक स्कन्ध (१ बोल) जानना जहां इनका योग होवे वहां वह देवता उत्पन्न होवे, २--३ उसके मित्रों और ज्ञाती जनों सुख प्रद होवे, ४ वह उच्च गोत्र वाला होवे, ५ सुरूप वंत होवे, ६ उसका रोग रहित शरीर होवे, ७ महा बुद्धीवंत होवे, ८ विनय वंत होवे, ९ यशस्वी होवे और १० बलवंत होवे, यों दश बोलों को प्राप्त कर भोगावली कर्मोदय हो तो ऋक्षवृती से भोग भोगवे पुनः संयम का समाचरन कर यथाख्यात पालन कर सर्व कर्मांश का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त परिनिर्वाण सब दुखों रहित मोक्ष के अतुल्य सुख का भोक्ता बने।

गाथा—अतुल सुह सागर गया। अव्वा बाह्र अणोवमंपत्ता॥
सव्व मणागय मद्धं। चिट्ठंति सुहि सुहं पत्ता॥२२॥ उववाई॥

अर्थ—सिद्ध भगवंत के सुखको अल्प किसी भी प्रकार के सुख की उपमा लगती ही नहीं है, ऐसे अनोपम अतुल्य निराबाध सुख सागर में गर्क बने अनन्त अनागत (भविष्य) काल में एकान्त सुख ही सुखी रहते हैं।

ॐ शान्ति! शान्ति! शान्ति!

परम पूज्य श्री कहान जी ऋषि जी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी
श्री अमोलक ऋषिजी महाराज विरचित जैन तत्त्व प्रकाश ग्रन्थ
द्वितीय खण्ड का छट्ठा "अन्तिम शुद्धी"
प्रकरण समाप्तम्।



उपसंहार ।

गाथा ।

एस धम्मे धुवे निचे । सासए जिण देसिए ॥
सिद्धा सिज्झंति चाणेण । सिज्झिस्संति तहावरे ॥१॥

तिबेमि ॥१७॥ उत्तरा० अ०१६

अर्थ—इस जैन तत्त्व प्रकाश ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में जो सूत्रधर्म का और चारित्र धर्म का साविस्तार कथन किया गया है वह धर्म भूत काल में जो अनन्त तीर्थंकर हुए उन्हों ने इस ही प्रकार प्रतिपादन किया है वर्तमान काल में महा विदेह क्षेत्र में बीस विहरमान तीर्थंकर विद्यमान हैं वे इस ही प्रकार प्रतिपादन कर रहे हैं और भविष्य काल में जो अनंत तीर्थंकरों होंगे वे इस ही प्रकार प्रतिपादन करेंगे अर्थात् इस ग्रन्थ का जो मूलाशय है वह जिनाज्ञा के सम्मत होने से यह धर्म पर्याय कर के धृव निश्चल है द्रव्य कर के नित्य-सदैव है और वस्तुत्व कर के शास्वत-अविनाशी है इस लिये सत्य है तथ्य है पथ्य है । जिस से सभी को माननीय व आदरणीय है क्यों कि इस धर्म का परमाराधना कर के भूतकाल में अनन्त जीवों ने सिद्धगति प्राप्त की है—सिद्ध हुए हैं. वर्तमान काल में असंख्यात जीवों सिद्ध गति को प्राप्त हो रहे हैं और भविष्य काल में अनन्त जीवों सिद्ध गति को प्राप्त करेंगे—सिद्ध होवेंगे ऐसा श्रमण भगवन्त श्री महावीर स्वामीजी के पञ्चम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जी ने अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री जम्बूस्वामीजी से कहा है.



अन्तिम-मङ्गल।

सूत्र—रायणं धम्मे पेच्च भवेय, इह भवेय हियाए, सुहाए, खेमाए, णिस्सेयसाए, अणुगामीयत्ताये भविस्सइ।

अर्थ—यही धर्म इस जीव को परभव में इस भव में हित का करने वाला, सुख का करने वाला क्षेम—कल्याण का करने वाला निस्तार का करने वाला और अनुगामी—साथ में रह कर क्रमशः मोक्ष के सुख का देने वाला होवेगा. तथास्तु!

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के
शुद्ध क्रियोद्धारक पूज्य श्री खूबाऋषिजी महाराज
तस्य शिष्यवर्य आर्य मुनिश्री चेनाऋषिजी
महाराज तस्य शिष्य शास्त्रोद्धारक
बाल ब्रह्मचारी पण्डित मुनिश्री
अमोलकऋषिजी महाराज
विरचित—

श्री जैन तत्व प्रकाश ग्रन्थ समाप्तम्

